॥ श्री गणेशाय नमः ॥

गुरुमण्डलग्रन्थमालायाश्चतुर्दशपुष्पम्

ब्रह्मवैवर्त्तपुराणम्



(ब्रह्म-प्रकृति-गणेशखण्डात्मकम्)

श्रीमन्महर्षिकृष्णद्वैपायनविरचितम्

श्रीनाथादि गुरुत्रयं गणपतिं पीठत्रयम्भैरवम्,
सिद्धौघं बटुकत्रयम्पदयुगं दूतीक्रमं मण्डलम्।
वीरान्द्व्यष्ट चतुष्कषष्टि नवकं वीरावलीपञ्चकम्,
श्रीमन्मालिनिमन्त्रराजसहितं वन्दे गुरोर्मण्डलम् ॥



५, क्लाइव रो,

कलकत्ता

वैक्रमाब्दः	प्रथमं संस्करणम्	ख्रैस्ताब्दः
२०११	५०००	१९५४

am

YAS.

Era.



Gurumandal Series No. XIV.

THE
Brahma Vaivarta Puranam

(Brahm-prakriti-Ganeshkhandatmkam).

By
MAHARSHI KRISHNADWAIPAYAN VYAS.

5, Clive Row,
Calcutta.

Vikram Era.	First Edition.	Christian Era.
2011	5000	1954

Printed by :
Gopal Printing Works
198/1, Cornwallis St.,
Calcutta - 6.



भगवद्रामानुजपीठाधिपति

वैष्णवाचार्य श्रीदेवनायकाचार्यस्वामिपाद

राजमन्दिर, बनारस।

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

॥ श्री पुराणपुरुषोत्तमाय नमः ॥

समर्पणम्

श्रीमतां विविधज्ञानविज्ञानविचक्षणप्रभविष्णूनां अशेषशास्त्रपारायणैक-दिव्यचक्षुषां तपसा त्यागेन ब्रह्मवर्चसा शमेन दमेन दयया च प्रकाशित-दिव्यगुणौघानां अजस्रं कर्मभक्तिज्ञानत्रिवेणीधाराप्रवाहाय कृतभगीरथपरि-श्रमाणां समस्तभारते स्वविद्वत्ताप्रकाशेन चमत्कृतानेकविद्वत्परिषत्प्रकर्षोत्कर्षवतां शान्तिस्वरूपाणां अधिभूमण्डलं भागवतधर्मप्रसाराय विजयवैजयन्तीसमुत्तोलन-पराणां नानाविलक्षणयुक्तिवादैरपास्तनिर्विशेषप्रतिपक्षजन्मनां विद्वत्कुलभूषणानां सनातनधर्मधुरन्धराणां वैष्णवाग्रगण्यानां उत्तरप्रतिवादिभयङ्कराणां वाराणसीस्थ जगद्गुरुभगवद्रामानुजाचार्यपीठाधिपतीनां श्रीमतां १००८ पूज्यप्रवर भगवत्पाद श्रीदेवनायकाचार्यस्वामिमहाभागानां करकमलेषु श्रीगुरुमण्डलग्रन्थमालाचतुर्दश-पुष्पोपहारीभूतं श्रीब्रह्मवैवर्त्तपुराणमिदं सादरं सविनयञ्च समर्प्यते—

श्रीमतां चरणसेवकः

विजयैकादशीदिनम् — श्रद्धाभक्तिविनम्रः—

विक्रम सं० २०१२ । — राधाकृष्ण मोरः

५, क्लाइव रो, कलकत्ता

॥ श्रीगणेशायनमः ॥

प्रारम्भे हसितं भुजभ्रमकृतैरान्दोलनैर्विस्मितम् ।
म्लानं बाहुलतोपीपड़नभिया प्रोल्लासने भूभृतः ॥
दत्ताः कृष्णकराब्जशायिनि नगे श्रेयांसि पुष्णन्तु वो (नो) ।
गोपीभिर्भुजवल्लिकङ्कण क्वणत्कारोत्तरास्तालिकाः ॥

आमुख

श्रीप्रभुकृपा से पूज्य पिताजी की यह दृढ़ निष्ठा रही है कि अपने पुरुषार्थ से उन्होंने किसी न किसी श्रेष्ठ कर्म के आयोजन में कहीं रहते हुए भीजुटकर उसकी पूर्ण सफलतातक लगे रहने का ही सदा प्रयत्न किया है। मनुष्य की स्वाभाविक अभिलाषा है कि जीऊँ, ज़ागूँ, जानूँ, अधिकार समर्थ बनूँ, आनन्द पाऊँ, और स्वतन्त्र रहूँ। इसकी विशेष व्याख्या तो विद्वज्जन ही करेंगे परन्तु मनुष्य की लोकैषणा, धनैषणा और पुत्रैषणा में उस इच्छा का कुछ-कुछ चित्रण अवश्य मिलता है। जीवन को प्रशस्त करने में पुरुषार्थी महानुभाव इसमें कृतकार्य होते हैं एवं पुरुषार्थ-हीन असफल। आपके दो मुख्य सिद्धान्त हैं; संसार में मनुष्य परमपिता का ज्येष्ठ पुत्र है अपने सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की ज्ञानमय चाभी उसे सौंप कर प्रभु निरपेक्ष होकर उसके क्रियाकलाप को देखते हैं। प्राणीमात्र की रक्षा का पूर्ण दायित्व उसपर रखकर निर्भर हो जाते हैं और उसके श्रेष्ठ कार्यों से प्रसन्न हो सदैव उन्नति के मार्ग को प्रशस्त करते हैं। इसके साथ-साथ मनुष्य अपनी ओर से अहिंसा, सत्य एवं प्रेम का पाठ जगत के प्राणीमात्र को अपने सद् आचरण से पढ़ाकर

सभी को "जीवो और जीने दो" की कला सिखाता है। सृष्टि में कोई भी आर्त न रहने पावे इसके लिये अदम्य उत्साह से यथाशक्ति प्रयत्न करता है। उसकी यह चेष्टा प्राचीनकाल से आरम्भ होकर आजतक नीचे लिखे डिण्डिमघोष करने योग्य मन्त्र का जप करते हुए भारतीय जनपद में हिंसा को नष्ट कर अहिंसा प्रचार के रूप में रहती आई है।

ईशावास्यमिदꣳ सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः मा गृधः कस्यस्विद्धनम्॥
[शुक्ल यजुर्वेद ४० अ० १ मन्त्र]।

ईश्वर का कथन है कि सृष्टि के सारे प्राणी मेरी ही आत्मा हैं; ज्ञान के द्वारा प्राणीमात्र की पूर्णरूपेण रक्षा का ध्यान रखते हुए अपना भोग, जो कि प्रकृति द्वारा निर्दिष्ट किया हुआ है, भोगो। किसी भी प्राणी की शक्ति को (दूध को) हरण करने की भावना मनमें भी न आने दो। यह क्रम मनु, याज्ञवल्क्य, पाराशर, गौतम, अत्रि, वशिष्ठ, पुलह और पुलस्त्य आदि महान् विभूतियों से स्वीकृत होता हुआ संसार के सभी मतमतान्तरों और सम्प्रदायों को लेकर सृष्टि के उत्थानकालतक बराबर चलता रहा जो आज भी विश्वसाहित्य में सन्तवाणी के रूप में भारतीयों के विश्वभ्रातृत्व का उत्कृष्ट उदाहरण और अहिंसक भावना का अपूर्व आदर्श है। विशेषता यही है कि यह सब अमर साधक अरविन्द, महर्षि रमण, विश्ववन्द्य राष्ट्रपिता महात्मा गांधी, कवीन्द्र रवीन्द्र और सुप्रसिद्ध अमर सेनानी सुभाष बाबू के ही भारत में विशेषरूप से प्रचलित हुआ। भगवान् बुद्ध, महावीर तीर्थङ्कर और सम्राट् अशोक के ज्वलन्त आदर्श सिद्धान्तों को आज भी भारत सरकार ने "अहिंसा परमो धर्मः" के रूप में अशोक चक्र के राज्यचिह्न के रूप में प्रधानस्थान देकर अपना शान्तिमार्ग को प्रशस्त किया है यह एक अभूतपूर्व घटना है। ऐसे सभी वरेण्य मानव और प्राणीमात्र के उद्धारक नरपुङ्गवों को हम अपनी श्रद्धाञ्जलि सादर समर्पित करते हैं

जिनके निःस्वार्थ विश्वप्रेम ने मानव को दानव एवं पशु होने से सदा बचाया साथ ही प्राणिरक्षा के सामने अपने जीवन की भी आहुति दे मानव का गौरव बढ़ाया।

दूसरे सिद्धान्त का रूप है शास्त्रप्रचार—इसमें मानव की उदात्त भावनाओं का सभी दिशाओं में विकास होने से जीवनस्तर ऊँचा होगा और सभी प्रकार की आधिव्याधियां सृष्टि से विदा हो जायगी। उन्हें यह इष्ट है कि जिस भारतीय साहित्य ने गङ्गा, यमुना, सिन्धु, सरस्वती और पञ्चाम्बु तथा कृष्णा और कावेरी आदि की रज में उद्भूत होकर विश्व का मार्ग दर्शन किया उसका प्रसार आज के विज्ञानयुग में अधिकाधिक प्रकाशन द्वारा कियाजाय। इसी उद्देश्य से आपने अपने गार्हस्थ्यजीवन को कठिन अनुभवों की कसौटी पर कसते हुए गम्भीर मनन और अध्ययन द्वारा शास्त्रचर्चा के व्याज से विद्वत्समुदाय की सहायता से विशुद्ध पवित्र विचारों का सङ्कलन ग्रन्थ 'गृहस्थधर्म' षष्ठ संस्करणात्मक वितरण किया। इसका स्पष्ट प्रभाव हिन्दीभाषी क्षेत्रों में लोकप्रियता और एक अपूर्व धार्मिक क्रान्ति, उत्साह की लहर, एवं जनजागृति के रूप में स्पष्ट हुआ जिनका प्रत्यक्ष प्रमाण आज भी हमारे ग्रन्थप्रकाशन के सम्बन्ध में प्रतिदिन आनेवाले बीसियों प्रशस्तिपत्र हैं जिनमें कितने हजार तो 'सम्मति और उद्गार' के आकार में गुरुमण्डल के आठवें पुष्प के रूप में सङ्कलित कर दो वर्ष पूर्व प्रकाशित भी किये गये हैं। मुझे आरम्भ से उनके सान्निध्य का लाभ मिला है और इसीलिये उनके अगाध वात्सल्य का पूर्ण अनुभव करने का सुयोग भी। उनकी इच्छानुसार जैसे मैं उनके पदचिह्नों पर चलकर आदर्श नागरिक होने का स्वप्न देखता हूं, उसी प्रकार एक सच्चरित्र पिता में भगवत्सन्निधि समझ पालन, पोषण शिक्षा और दीक्षा द्वारा अपने तुच्छ क्रियाकलाप से उनकी आज्ञा में रहते हुए एक आज्ञाकारी पुत्र होने का भी मुझे गौरव मिले इसके लिये प्रयत्नशील रहताहूं। पूज्य पिताजी अपने सत्यवादपूर्ण जीवन में एक ओर तो अजेय हिमालय के समान सिद्धान्तरूप में अडिग हैं तो दूसरी ओर उसीसे निकलनेवाली कलकल शब्द से विश्व को

मुखरित करनेवाली श्वेताभ पवित्र निर्मल गङ्गा के समान अपने में विश्वबन्धुत्व की भावना (सभी प्राणीमात्र के प्रति सहानुभूतिपूर्ण उदार भाव) रखते हुए पुष्प से भी कोमल हृदय रखते हैं। अपने आदर्श वाक्य "कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामर्ति नाशनम्" के द्वारा उठते-बैठते उन्हें प्राणीमात्र के दुःखको मेटने की याद बनी रहती है और उसीके लिये कृतसङ्कल्प हो दिन-रात भगवान् से प्रार्थना करते हैं।

विक्रम सम्वत् २०१० के चैत्रमास में जब श्री पितुःश्री स्वास्थ्यसुधार के लिये नवलगढ़ गये हुए थे वहां पर अपने पण्डितद्वय श्री ब्रह्मदत्त त्रिवेदी तथा पं० कजोड़ीलाल मिश्र के सहयोग से स्थानीय विद्याविवर्द्धन पुस्तकालय तथा सात्विकजीवनशाला के पुस्तकालय से प्रायः अठारह पुराणों के पारायण का उपक्रम किया। पुराण पूर्ण संख्या में न मिलने के कारण केवल बारह पुराणों की ही आवृत्ति हो सकी। जो लोग आपके स्वाध्याय क्षणों में साथ रहते और उन्हें शास्त्रचर्चा करने का अवसर देते हैं उन्हें शास्त्रीय परम्परानुमोदित नवीन-नवीन अनुसन्धानों से आश्चर्य हुए बिना न रहेगा। मैं तो अपने पिताजी को ही इस सब का श्रेय दूँ तो अत्युक्ति नहीं; फिर भी जिनके निःस्वार्थ कार्यों का सहयोग इन सभी शास्त्रचर्चाओं में हुआ है उन सभी महानुभावों का मैं हृदय से धन्यवाद करता हूं। हां, तो पिताजी को जो धुन सवार होती है उसे वे करके रहते हैं। मत्स्यपुराण के शङ्खचूड़ आख्यान को बार-बार पढ़ते हुए उन्हें वर्तमान शासन की परिस्थिति और कलहप्रिय प्रजा का दयनीय दृश्य व्याकुल करने लगे। आपने सृष्टि को अपने पूर्व गौरवगाथा का स्मरण करा पुरुषार्थ द्वारा स्वर्गतुल्य बनाने के लिये 'मानवजीवन और अहिंसा;' 'गृहस्थधर्म के सिद्धान्त' और 'सृष्टि की रक्षिका मातृजाति' शीर्षक से कई लेखमालायें कलकत्ता के दैनिक 'सन्मार्ग', 'लोकमान्य' एवं 'विश्वबन्धु' पत्रों में निकालीं। फिर तो मूल से ही सबको मानवता का अमूल्य सन्देश मिले इस आशय से पुराणों के प्रकाशन का श्रीगणेश का प्रस्ताव मुझे प्रत्यक्ष आदेशरूप में कलकत्ता लिख भेजा। अभीतक पूर्वपरम्परा के

अनुसार जहां व्यवसाय, वाणिज्य और उद्योगधन्धों में उनके आज्ञाकारी विनयावनत पुत्र के रूप में आदेश पालन करने का मैं अधिकारी हूं वहां घर के सभी कार्यों में उनका आदेश ईश्वराज्ञा रूप में ही हमें इष्ट होता है। यही बात पुराणप्रकाशन के प्रस्ताव के समय भी हुई। कलकत्ते में वाबूजी के अन्यतम कार्यकर्ता और उनके निरुक्त स्मृति सन्दर्भ के सम्पादन में कार्य करनेवाले अपना व्यस्तजीवन का उपयोग शास्त्रों के स्वाध्याय में लगानेवाले श्री रामनाथदाधीच शास्त्री नवलगढ़ निवासी ने निरन्तर परिश्रम कर वाबूजी के स्वदेशवास के सात मास की स्वल्प अवधि में दश हजार श्लोकों के प्रथम पुराण ब्रह्मपुराण को प्रकाशित करने का प्रयत्न किया। अपने उत्साह की सीमा का अक्रिमण कर श्रीमान् वावूजी ने स्वास्थ्य में सुधार होते ही पुराण-परिचय से अपनी भूमिका तैयार की। इसमें अठारहों पुराणों की संक्षिप्त विषय-सूची बड़ी गवेषणा और प्रामाणिकता के साथ बनाई गई। आपका यह लेख वास्तव में पुराणोक्त परिचय के सम्वन्ध में नई सूझ है। यह प्राच्य और पाश्चात्य विद्वानों के पुराण एवं भारतीय समाज के प्रति सम्माननीय सामयिक उद्धरणों से बहुत ही गम्भीर, विद्वत्तापूर्ण एवं मननीय सामग्री प्रस्तुत करता है। विषय की प्रगल्भता और दुरूहता से लम्बा होने पर भी पाठ्य-वस्तु का क्रम पठनीय है साथ ही चारों ओर के पुष्ट प्रमाणों द्वारा उसकी प्रतिपादन शैली विशेष प्रौढ़ हो गई है। वास्तव में पुराणों के सम्बन्ध में सम्पूर्ण आवश्यक सामग्री से सुसज्जित पूर्ण परिचय देनेवाली अपने ढंग की यह एक अभिनव रचना है।

सदा की तरह ही इन महान् ग्रन्थों के प्रकाशन के प्रेरक श्रीमान् पिताजी की इस ब्रह्मवैवर्त महापुराण के विषयों को ध्यान में रखते हुए एक ही मान्यता रही है कि जो पाश्चात्य राष्ट्र शास्त्रचर्चा को तिलाञ्जलि देकर शस्त्र के बल पर परमाणु एवं उद्रजन जैसे संहारास्त्रों के हिंसक प्रयोगों के बल पर शान्ति सुरक्षा और न्याय का दम भरते हैं उनकी आंखें खोली जाय तथा उनका अनुकरण करनेवाली मध्यपूर्व, पूर्व और सुदरपूर्व दक्षिण-पूर्वी

एशिया के अल्पविकसित आत्मनिर्भरता के पथ को प्रशस्त करनेवाले राष्ट्रों को नव-जागरण के प्रभात में ही इस अमूल्य देन से सच्चा मार्ग दर्शन हो; जिसकी आधार-शिला विश्वशान्ति, विश्वबन्धुत्व, कल्याण और अहिंसा के अमर सन्देश देनेवाले इस ब्रह्माण्ड के प्राण इन महापुराणों के पारायण से मन्थन की हुई विचारधारा हो और जनताजनार्दन सच्चे अर्थों में मानवी गुणों को अपनाकर लोकहित में अपना पराया न समझकर लग जाय। इसी उद्देश्य से यह बृहत्प्रकाशन सेवा में प्रस्तुत है।

वैसे तो "न हि कस्तूरिकामोदः शपथेन विभाव्यते" इस अभियुक्तोक्ति के अनुसार किसी प्रकार विद्वत्समुदाय के सामने ब्रह्मवैवर्त के विषयों के लिये निवेदन करना सूर्य को दीपक दिखाना है फिर भी प्रसङ्गवश ब्रह्मवैवर्त के विभिन्न खण्डों का परिचय देना आवश्यक है। यह महापुराण सम्पूर्ण ज्ञान का भण्डार और वैष्णवों के हृदय का हार है। इसके प्रतिपाद्य गोलोकनाथ परब्रह्म आनन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्र और उनकी आह्लादिनी शक्ति राधिकाजी हैं जो नित्य ही गोलोक में गोगोपीगोपगण के साथ रासक्रीड़ा करते हुए सहृदय भक्तगण को अपूर्व अलौकिक आनन्द प्रदान करते हैं। इसमें चार खण्ड हैं—प्रथम ब्रह्मखण्ड; द्वितीय प्रकृतिखण्ड; तृतीय गणेशखण्ड और चतुर्थ श्रीकृष्णजन्मखण्ड है—

सारभूतंपुराणेषु ब्रह्मवैवर्तमुत्तमम् ॥ ४२ ॥

पुराणोपपुराणानां वेदानां भ्रमभञ्जनम्। हरिभक्तिप्रदं सर्वं तत्त्वज्ञानविवर्द्धनम्॥
कामिनां कामदञ्चेदं मुमुक्षूणाञ्चमोक्षदम्। भक्तिप्रदं वैष्णवानां कल्पवृक्षस्वरूपकम्॥
ब्रह्मखण्डे सर्वबीजपरब्रह्मनिरूपणम्। ध्यायन्ते योगिनः सन्तो वैष्णवा यत्परात्परम्॥

यत्रोद्भवश्च देवानां देवीनां सर्वजीविनाम्।
ततः प्रकृतिखण्डे च देवीनां चरितं शुभम्॥
जीवकर्मविपाकश्च शालग्रामनिरूपणम्।
ततश्च कवचस्तोत्रमन्त्रपूजानिरूपणम्॥

कीर्त्तिरुत्कीर्त्तनं तासां प्रभावश्च निरूपितः।
सुकृतीनां दुष्कृतीनां यद् यत्स्थानं शुभाशुभम् ॥
वर्णनं नरकाणाञ्च रोगाणां मोक्षणन्ततः।
ततो गणेशखण्डे च तज्जन्मपरिकीर्तितम् ॥
अतीवापूर्वचरितं श्रुतिवेदसुदुर्लभम् ॥५२॥
गणेशभृगुसम्वादसर्वतत्त्वनिरूपणम् ।
निगूढ़कवचस्तोत्र मन्त्रतन्त्रनिरूपणम् ॥५३॥
श्रीकृष्णजन्मखण्डञ्च कीर्तितञ्च ततःपरम् ।
भारते पुण्यक्षेत्रे च श्रीष्णजन्मकर्म च ॥
भुवो भारावतरणं क्रीड़ाकौतुकमङ्गलम् ।
सतां सेतुविधानञ्च जन्मखण्डनिरूपितम् ॥
सारभूतं पुराणेषु केवलं वेदसम्मितम् ।
विवृतं ब्रह्मकात्स्न्र्यञ्च कृष्णेन यत्र शौनक ! ॥
ब्रह्मवैवर्त्तकं तेन प्रवदन्ति पुराविदः ॥

(उपक्रमाध्यायः)

इस बार ब्रह्मवैवर्त में विषय-सूची बहुत विस्तार से हिन्दी भाषाभाषी जनता के लाभार्थ दी गई है। आशा है, पुराण-प्रेमियों को इससे सन्तोष होगा। अभी कुछ समय से ब्रह्मवैवर्त के तृतीयखण्ड का एक काशीरहस्यभाग बनारस से मिलने की आशा है जो सम्पूर्ण ग्रन्थ को साङ्गोपाङ्ग बनाने और अबतक के छपे ब्रह्मवैवर्त के संस्करणों में विशिष्टता रखनेवाला होगा। भगवत्कृपा से उसको परिशिष्टरूप से ही सम्मिलित करने का विचार है इसके लिये हम श्रद्धेय वैष्णवाचार्य प्रतिवादिभयंकर श्रीदेवनायकाचार्यजी महाराज भगवद्रामानुजपीठा-

धिपति, राजमन्दिर, बनारस के शुभाशीर्वाद से अनुगृहीत हुए हैं। इस ग्रन्थ का सादर समर्पण उन्हीं आचार्यश्री के करकमलों में अर्पित कर मैं अपना कर्तव्य का पालन कर सन्तुष्ट होता हूं। अब इसके प्रकाशन के सम्बन्ध में दो शब्द लिखकर उपसंहार करना चाहता हूं।

इतने बड़े विस्तार को लेकर संस्कृत के ग्रन्थों का सम्पादन वैसे ही कठिन है। प्रूफ संशोधन, भूमिका लेखन, विषय-सूची और शुद्धिपत्र तैयार करने में हमारे श्री मोरप्राच्य शोधप्रतिष्ठान की विद्वन्मण्डली का पूर्ण सहयोग रहा है। प्रभु उन्हें हमारे इस कार्य की पूर्णता के लिये सतत सम्बल और क्षमता प्रदान करते रहे और उनका सदा ही हमें पूर्ण सहयोग मिलता रहे यही शुभ कामना है। पूज्यपाद १००८ श्रीमान् गुरुवर्य आचार्य करुणामय सरस्वती और राजगुरु पण्डित हरिदत्तजी शास्त्री देहरादून का कृतज्ञतापूर्ण आभार मानता हूं। उभय विद्वद्धुरन्धर हैं इनके प्रकाण्ड पाण्डित्य, अद्भुत विवेचन, प्रतिभा,, विलक्षण स्मृति, अपूर्व मेधा और विचित्र वाग्वैदग्ध्य पूर्ण समन्वय शक्ति से हमें शङ्कास्थलों पर विशेष प्रमाणों द्वारा सन्देह निवृत्ति के लिये अवसर और शुभाशीर्वाद मिला है।

पुनः अपने सभी अनुग्राहक सम्मान्य पाठक महानुभावों से अपनी भूलों के लिये प्रार्थना करते हुए आप सभी को अमूल्य सत्परामर्शों के लिये बारम्बार साग्रह अनुरोध करता हूं जिनसे हमें भूलसुधार में सहायता मिलती रहे। अब आप सभी गुणग्रहणैक पक्षपाती महानुभावों की सेवा में अपने परिवार की यह अनुपम भेंट 'पुरा नवं भवति' कहते हुए मुझे आत्मसन्तोष एवं गौरव अनुभव होरहा है।

मुझे आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि आप सभी महानुभाव हमारी अपूर्णताओं को क्षमा करते हुए प्रतिदिन इस दिव्यवाणी के स्वाध्याय प्रसार द्वारा इस परिश्रम को सफल बनायेंगे और जो कुछ तुच्छ सेवा हमसे होगी उससे उन पुराणवक्ता महर्षिकल्प आचार्यों के आदर्शवाक्यों से जनता का विशेष हित सम्पादन करेंगे।

"त्वदीयं वस्तु गोविन्द ! तुभ्यमेव समर्पये"

कार्तिक शुक्ला
देवोत्थापिनी एकादशी
विक्रम सम्वत् २०११

विद्वज्जनचरणसेवक—
राधाकृष्ण मोर
५, क्लाइव रो, कलकत्ता।

श्रीराधाकृष्णौ प्रसीदेताम्

सम्पादकीयं निवेदनम्

श्रीभगवत्कृपया वैष्णवहृदयहारीभूतं श्रीब्रह्मवैवर्तपुराणं सहृदयधुरीणानां विद्वज्जनचूडामणीनां करकमलेषु प्रस्तूयमाना नितरांहृदयतोषं प्रसन्नताञ्चाऽनुभवामः। ग्रन्थेऽस्मिन् कियता विस्तारेण ज्ञानकर्मोपासनरहस्यानां गूढतमं तत्त्वं सविस्तरं प्रकटीकृतमिति विद्वांस एवाऽवगच्छन्ति। गमिष्यन्ति च ग्रन्थस्य पारं प्रतिदिनं पारायणैकशीलाः कृष्णभक्तिविलसितदेहभाजः सज्जनाः। श्रीमतां भगवत्पाद रामानुजाचार्यपीठाधिपतिनां वाराणसेयप्रतिवादिभयङ्करेत्यादिविविधविरुदोपेतानां श्री१००८ देवनायकाचार्यस्वामिमहाभानां करकमलेषु समर्पयन्तः श्रेष्ठिप्रवरवैदिकविचारचर्चापरायणैक शास्त्रव्यवस्था प्रकाशननिपुणामां गीर्वाणवाणीसेवासक्तस्वनामधन्य श्रीमनसुखरायमोरमहोदयानां ज्येष्ठसुपुत्राः श्रीराधाकृष्णमोरमहाशयाः नितरां धन्यवादार्हाः। स्थाने एव यत्सद्धर्मप्रचाराय कृतस्य प्रयत्नस्य पूर्णता गोविन्दगुणानुवादकीर्तनपरायणानां विद्वद्धुरन्धराणां श्रीस्वामिसदृशाचार्यचरणानां कृतेऽपूर्वज्ञानविज्ञाननिधानयोःश्रीराधाकृष्णयोर्भक्तिसञ्ज्ञात्मक पुराणस्यास्य समर्पणं विश्वकल्याणकारणपरमिति निश्चिनुमः। आशास्महेऽस्माकं भ्रमप्रमादालस्यादिदोषवशाद्ग्रन्थेऽस्मिन् त्रुटयःस्युस्ताः गुणग्रहणैकपक्षक्षपातिनो विद्वांसो निपुणं संशोध्यकृतार्थयिष्यन्तीति।

विदुषांविधेयाः

श्रीब्रह्मदत्तत्रिवेदि कजोड़ीलाल मिश्र रामनाथदाधीचाः।

गङ्गादशहरादिनम्
ज्येष्ठ शुक्ला दशमी
२०११ विक्रमाब्दः

श्रीमोरप्राच्यशोधसंस्थानम्
५, क्लाइव रो,
कलकत्ता।

||श्रीगणेशाय नमः ||

ब्रह्मवैवर्तपुराण की विषय-सूची

ब्रह्मखण्ड

शालग्रामशिला की कथा, धर्माधर्म का वर्णन, गणेश का चरित्र तथा स्तोत्र-कवच एवं मन्त्र तथा श्रीकृष्ण भगवान् के जन्म चरित्रों का वर्णन कीजिये।

सूतजी ने कहा—शौनकजी! आपके प्रश्न को मैं भली भाँति समझ चुका हूं आपका प्रश्न ब्रह्मवैवर्त पुराण विषयक है। इसमें (१) ब्रह्मखण्ड में परब्रह्म का वर्णन जिसका ध्यान वैष्णव, योगिराज तथा सन्त करते हैं इन तीनों में कोई भेद नहीं है।

सन्तो भवन्ति सत्सङ्गाद् योगिसङ्गेन योगिनः।
वैष्णवा भक्तसङ्गेन क्रमात् सद्योगिनः पराः॥

इसी खण्ड में देवी, देव तथा सर्व जीवों की उत्पत्ति का वर्णन है।

(२) प्रकृति खण्ड में—देवियों का चरित्र, जीवों का कर्मविपाक, शालग्राम का वर्णन, कवच, स्तोत्र, मन्त्र और पूजा का वर्णन, प्रकृति का लक्षण सुकर्मी तथा दुष्कर्मी मनुष्यों के स्थानों का वर्णन, शुभाशुभ का वर्णन और नरकों का वर्णन किया है।

(३) गणेश खण्ड में—गणेश का जन्म तथा गणेश के अपूर्व चरित्रों का वर्णन, गणेश और भृगु का संवाद और गुप्त स्तोत्र मन्त्रतन्त्र कवचादिकों का वर्णन किया है।

(४) श्रीकृष्ण जन्म खण्ड में—भारत में श्रीकृष्ण का जन्म तथा कर्म, और पृथ्वी का भारहरण एवं सज्जनों की मर्यादा का विधान वर्णित है।

हे शौनकजी! इस प्रकार चारखण्डों से युक्त सर्व धर्मों का सारभूत, पुराणों में श्रेष्ठ, सब आशाओं की पूर्ति करनेवाला यह ब्रह्मवैवर्त पुराण है। इसको सर्व प्रथम श्रीकृष्ण ने ब्रह्मा को दिया। ब्रह्माजी ने महातीर्थ पुष्कर में धर्म को, धर्म ने अपने पुत्र नारायण को, नारायण ने नारदजी को और नारदजी ने व्यासजी को दिया। व्यासजी ने इस पुराण सूत्र को मुझे दिया और मैंने आपको कहा। इसमें अठारह हजार पाठ है सम्पूर्ण पुराण के श्रवण से जो फल मिलता है वह इस अध्याय के श्रवण से मिल जाता है।

२ परब्रह्मनिरूपणम् ५

शौनकजी के प्रश्न करने पर कि ब्रह्म का निरूपण कीजिये तब सौति ने सृष्टि के उपादान कारण रूप में उसका प्रतिपादन किया और नाना लोकों की स्थिति बतलाई।

३ सृष्टिनिरूपणम् ७

सृष्टि के रचना के सम्बन्ध में कई प्रचलित मत हैं कोई पहले जलजन्तु और पशुपक्षियों की उत्पत्ति बताते हैं और बन्दर मानुष आदि के बाद मनुष्य तक पहुंचते हैं। कोई कहते हैं कि अनादि परम्परा प्राप्त इस क्रम का पूरा पता अभी मिलना कठिन है अनुसन्धान चल रहा है। यहाँ ब्रह्मवैवर्त के मतानुसार सृष्टि प्रक्रिया का सामयिक निरूपण पठनीय है :—

सृष्टि के आरम्भ में सम्पूर्ण विश्व शून्यमय निर्जन्तु होकर अन्धकारपूर्ण था; न कहीं वृक्ष थे न पर्वत और न नदी नदादि का कहीं नाम था। जब महान् हिरण्यगभ ने अपने आपको अकेला देखा तो स्वेच्छा से "एकोऽहं बहु स्याम्" की भावना का प्रस्फुरण हुआ। उसके साथ ही सृष्टि के कारणस्वरूप मूर्तिमान् तीनों गुण आविर्भूत हुए; फिर महान् अहंकार, पञ्चतन्मात्रा रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द के साथ उत्पन्न हुए। फिर भगवान् नारायण स्वयं आविर्भूत हुए। वे भगवान् श्रीकृष्ण के सामने हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगे। साथ२ वाम पार्श्व से पाँच मुख एवं तीन नेत्रवाले शङ्करजी का आविर्भाव हुआ उन्होंने शङ्करजी की वहीं स्तुति की।

सौतिजी ने कहा फिर भगवान् श्रीकृष्ण के नाभि कमल से महातपस्वी ब्रह्माजी का तथा वक्षस्थल से धर्म का आविर्भाव हुआ। वाम पार्श्व से कन्या आविर्भूत हुई, जो साक्षात् सरस्वती ही थी उनके मन से महालक्ष्मीजीव परमात्मा की बुद्धि से सर्वाधिष्ठातृ देवी मूल प्रकृति का आविर्भाव हुआ उनसे।

निद्रा, तृष्णा, क्षुत्पिपासा, दया, श्रद्धा, क्षमा आदि हुए। वह आदिशक्ति समस्त पार्षद और आयुधों के साथ भगवती साक्षात् ही श्रीकृष्ण की स्तुति करने लगी और आदि शक्ति वहीं विराजमान हो गई।

४ सृष्टि निरूपणम् १२

प्रभु के रसना के आगे के भाग से देवी सावित्री का आविर्भाव हुआ और फिर मानस से एक पुरुष मन्मथ कामदेव हुए उनके वाम पार्श्व से सबको मोहने वाली रति हुई, उसके पास मारण, स्तम्भन, जृम्भण, शोषण, और उन्मादन नामक पाँच वाण थे, उसने उन बाणों की परीक्षा लेने के लिये उन्हें छोड़ दिया जिससे सभी काम के वशीभूत हो गये। इसी समय अग्नि का आविर्भाव हुआ इस लपेटे में ब्रह्माजी आ गये उसको शान्त करने के लिये भगवान् ने जल को रचा एवं उसका अधिष्ठाता वरुण को वनाया। अग्नि के वाम भाग से एक कन्या का आविर्भाव हुआ जिसे अग्नि की पत्नी स्वाहा नाम दिया गया। वरुण के वामपार्श्व में वरुणानी और विभु के निःश्वास वायु से पवन का आविर्भाव हुआ उसकी पत्नी भी। कृष्ण के काम वाण से वीर्यपात हुआ एक हजार वर्ष तक वह डिम्ब रूप में रहा तब महान् विराट् हुए जो सम्पूर्ण विश्वों का आधार है जिसके एक लोमविवर में सारा विश्व व्यवस्थित है। बड़े भारी समुद्र में शयन करते हुए भगवान् विष्णु के कान से दो दैत्य पैदा हुए और ब्रह्मा को ज्यों ही मारना चाहा कि विष्णु ने उन्हें मार डाला।

५ सृष्टिप्रकारवर्णनम् १४

शौनकजी का प्रश्न "क्या गौ, गोप, गोपी और सभी उनके सहचर गोलोक में नित्य हैं कि कल्पित हैं? इस पर सौति ने काल मान बतलाते हुए सृष्टि की स्थिति बतलाई। इसके अनन्तर गोलोक का वर्णन, गोलोक के रासमण्डल में

रास का सुन्दर निरूपण। प्रधान अधिष्ठात्री रासेश्वरी राधा का वर्णन, वहीं पर

गोप, गोपी, गाय, वत्स और उनके उपकरणों का सुन्दर वर्णन। फिर सारे दिक्पाल डाकिनी, योगिनी आदि की उत्पत्ति का वर्णन।

६ सृष्टिप्रकरणम् १८

श्रीकृष्ण भगवान् ने नारायण के लिये सादर महालक्ष्मी और महासरस्वतीजी, सावित्री को ब्रह्माजी के लिये, मूर्ति को धर्म के लिये, रति को कामदेव के लिये, मनोरमा को कुबेर के लिये और अन्यान्य पुरुष देवताओं को उन-उन स्त्री देवी गण को आदरपूर्वक दे दिया। शङ्कर जी को भगवती सिंहवाहिनी (अमितपराक्रम-शीला) देदी। इस पर भगवान् शङ्कर ने प्रार्थना कर इस अनुपम भेंट को भगवान् की भक्ति में बाधक बताकर टालने को कहा।

तपस्याच्छन्नरूपाञ्च महामोहकरण्डिकाम्। भवकारागृहे घोरे दृढां निगडरूपिणीम्॥
शश्वद्विबुद्धिजननीं सद्बुद्धिच्छेदकारिणीम्।
शश्वद्भिभागसाराञ्च विषयेच्छाविवर्द्धिनीम्॥
नेच्छामि गृहिणीं नाथ! वरं देहि मदीप्सितम्॥

यह गृहिणी का समागम संसाररूपी घोर कारावास में हथकड़ी बेड़ी का काम करती है। सद्बुद्धि को छेदन करती है विषयों के प्रति इच्छा को बढ़ाने वाली है अतः हे नाथ गृहिणी को मैं नहीं चाहता। कृपया मेरा इच्छित वर मुझे दीजिये। आपके चरणों के सेवन, पूजन, वन्दन, और नाम कीर्तन से बढ़कर संसार में दूसरी कोई वस्तु मैं नहीं चाहता। सारी कल्पावस्था तक आपके ध्यान में लगा रहकर नवधा भक्ति ही मेरे जीवन का लक्ष्य हो। यह मेरी कामना है।

"त्वत्सेवने पूजने च वन्दने नामकीर्त्तने। सदोल्लसितमेषाञ्च विरतौ विरतिं लभेत्।१४।
स्मरणं कीर्तनं नामगुणयोः श्रवणं जपः। त्वच्चारुरूपध्यानं त्वत्पादसेवाभिवन्दनम्।१५।
समर्पणञ्चात्मनश्च नित्यं नैवेद्यभोजनम्। वरं वरेश! देहीदं नवधा भक्तिलक्षणम्॥"

सार्ष्टि, सालोक्य, सारूप्य, सामीप्य, साम्य और लीनता ये छै प्रकार की मुक्तियां एवं १८ सिद्धियाँ हैं, सम्पूर्ण वैभव, ब्रह्मपद, विष्णुपद और शिवपद भगवान् की भक्ति की १६ वीं कला की भी बराबरी नही कर सकते।

शङ्करजी को भगवान् कृष्ण का वरदान कि इस महाशक्ति शिवा के साथ तुम्हारा त्रिकालाबाधित सम्बन्ध सदा ही वना रहे। जो कुस्त्री (खराब स्त्री) होती है वह स्वामी के लिये कलहकारिणी वन जाती है बाकी तो कुल की उत्पत्ति से अपने स्नेह से पुत्र पौत्र की उन्नति कर पति का सर्वथा कल्याण करती है। शिव नाम की महिमा और शिवभक्त भगवान् कृष्ण को अत्यन्त ही प्रिय है। सिंहवाहिनी को कृष्ण भगवान् ने अपने यहां रखकर कहा कि कल्प के वाद में सत्ययुग के आरम्भ में दक्ष की कन्या वन तुम शङ्कर की स्त्री बनोगी उसी जन्म में सती के रूप में शरीर को त्यागकर हिमालय की पत्नी के पार्वती रूप में आविर्भूत होकर शम्भु के साथ विहार करोगी। सम्पूर्ण विश्व में शरत्काल में प्रति वर्ष सर्वत्र तुम्हारी पूजा हुआ करेगी, उसमें भगवती के पूजन करनेवाले को यश, कीर्ति, धर्म और ऐश्वर्य सब कुछ मिलेगा श्रीमाया काम वीज भगवती को दिया। ऐसे ही कामदेव, वरुण, कुवेर आदि को नानामन्त्र और सिद्धियां दी तथा बिदा किया स्वयं वृन्दावन में गोपी एवं गोपों के साथ निवास करने चले आये।

७ सृष्टिप्रकरणम् २२

ब्रह्माजी ने मधु-कैटभ के मेद से तपस्या कर पृथ्वी को रच आठ पर्वत समुद्र, नदी, नद, वृक्ष, वनस्पति, ग्राम, नगर सभी बनाये।

"लवणेक्षुसुरासर्पिर्दधिदुग्धजलार्णवान्"

सात ऊर्ध्वलोक, सात पाताल, सप्तद्वीप वनाये इनकी गणना सम्भव नहीं। ये सब अनादि परम्परावच्छेदेन कृत्रिम और स्वप्न के समान अनित्य नश्वर हैं केवल वैकुण्ठ और शिवलोक से ऊपर गोलोक ही नित्य है।

सृष्टि रचने के बाद सावित्री के गर्भ से ब्रह्माजी ने मनोहर चारों वेदों, शास्त्रों, व्याकरण, एवं न्यायादि को ३६ राग एवं रागिणी चारों युग—सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलहप्रधान कलि बनाये। वर्ष, मास, ऋतु, तिथि, दण्ड, क्षण, रात, दिन, वार, सन्ध्या, प्रातःकाल, मातृका, चारों प्रलयकाल, मृत्युकन्यका और व्याधिगण को उत्पन्न कर उन्हें पोषित किया। ब्रह्माजी के पीठ से अलक्ष्मी हुई। नाभि से विश्वकर्मा जो शिल्पी जाति के गुरु हुए। आठ वसु चारों कुमार आदि नाना अङ्गों से हुए। स्वायम्भुव मनु और शतरूपा मनुष्यों के उत्पादन करने में प्रवृत्त हुए। ऋषियों की उत्पत्ति। पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, अत्रि, अङ्गिरा, रुचि, भृगु, दक्ष, कर्दम, पञ्चशिख, वोढु, नारद, मरीचि, वशिष्ठ, हंस और यति हुए इन्हें सन्तान की वृद्धि का ब्रह्मा ने आदेश दिया। फिर नारदजी ने विषयरूपी विष एवं भक्ति रूपी अमृत की तुलना कर इन महर्षियों को बचाकर रखने के लिये अनुरोधपूर्वक निवेदन किया। इसपर ब्रह्माजी ने श्राप दिया कि तूँ नाना जन्मों में भिन्न-भिन्न योनि ग्रहण कर अन्त में लोगों को ज्ञान बाँटता फिरेगा इस पर नारदजी ने क्षमा-प्रार्थना की। भगवान् कृष्ण की भक्ति का माहात्म्य।

ब्रह्माजी ने अपने सब पुत्रों को सृष्टि सञ्चालन का आदेश दिया। मरीचि महर्षि के मानस पुत्र कश्यप प्रजापति हुए। अत्रि के नेत्रों के मल से समुद्र में चन्द्रमा उत्पन्न हुए। पुलस्त्यजी के मानसपुत्र मैत्रावरुण हुए मनु के शतरूपा में तीन कन्यायें हुईं आकूति, देवहूति और प्रसूति जो परम प्रसिद्ध पतिव्रता हुईं तथा प्रियव्रत और उत्तानपाद दो पुत्र हुए। उत्तानपाद के पुत्र ध्रुव हुआ जो परम धार्मिक

प्रवर प्रसिद्ध हुआ। मनुजी ने आकूति को रुचि नामक ऋषिको व प्रसूति को प्रजापति दक्षको एवं देवहूति को कर्दम ऋषि को दिया जिसके गर्भ से भगवान् सांख्याचार्य कपिल हुये। प्रसूति में दक्ष के सकाश से ६० कन्यायें पैदा हुईं जिनमें से ८ धर्म को, ११ रुद्र को, १ सती शिवजी को, १३ कश्यपजी को और बाकी २७ चन्द्रमा को प्रदान कीं। दक्ष कन्याओं के नाम एवं वंश का वर्णन। इस प्रकार सूतजी ने सृष्टि क्रम का सुन्दर वर्णन किया।

भृगुजी के पुत्र च्यवन और शुक्र हुए, क्रतु की क्रिया नाम की स्त्री से बालखिल्य हुए। अङ्गिरा के तीन पुत्र हुए बृहस्पति, उतथ्य और शंम्बर। वसिष्ठ के पुत्र शक्ति हुए उनके पराशर हुए उनके सुपुत्र महाभागवत कृष्ण-द्वैपायन साक्षात् भगवान् व्यासजी हुए। व्यासजी के शिवजी के अंशरूप ज्ञानी प्रवर शुकदेवजी हुए। पुलस्त्य के विश्वश्रवा और उसके धनेश्वर नामक पुत्र हुआ। विश्वश्रवा के पुत्र कुबेर, रावण, कुम्भकर्ण और बिभीषण हुए। पुलह के पुत्र वात्स्य और रुचि के शाण्डिल्य हुए, इनके पांच गोत्रवाले नाना जन हुए, ब्रह्मा के मुख से ब्राह्मण जातियाँ बाहुदेश से क्षत्रिय जातियाँ जङ्घा से वैश्य और पैर से शूद्र जातियां हुईं। (विशाल ब्रह्माण्ड में सभी वर्णों का विशिष्ट स्थान है इनमें छोटे बड़े का कोई अन्तर नहीं सभी मानव अपने-अपने कर्मों से सुगति और दुर्गति को प्राप्त होते हैं।) उनकी संकरता से नाना वर्णसंकर जातियाँ हुईं। वणिक् जातियाँ और सच्छूद्र आदि की उत्पत्ति का इतिहास। सङ्कर जातियों की उत्पत्ति का विवरण एवं जातियों के सम्बन्ध में निर्णय।

११ **विष्णुवैष्णवब्राह्मणप्रशंसा** ४०

सुतपा नामक ब्राह्मण ने भगवान् श्रीकृष्ण की तपस्या एक लाख वर्ष तक की। कृष्ण की अलौकिक ज्योति का उसे अकस्मात् दर्शन हुआ और आकाशवाणी हुई कि हे ब्राह्मण तुम मोक्ष मत मांगना केवल लोकव्यवहार की परम्परा के लिये विवाह करो बाद में अपनी भक्ति और दास्य मैं तुम्हें दूँगा। स्वयं ब्रह्मा ने पितरों की मानसी कन्या को उसे दिया उसमें ब्राह्मण के द्वारा कल्याणमित्र का जन्म हुआ। इस महापुरुष के स्मरण करने से वज्र से भी भय नहीं रहता। वैष्णव ब्राह्मण के सन्तुष्ट होने से भगवान् नारायण स्वयं प्रसन्न हो जाते हैं। ब्राह्मण प्रशंसा के पद। विष्णुमन्त्र की दीक्षा गुरु से लेने से ही सब तरह की सिद्धि होती है।

१२ **गन्धर्वराजस्य प्रशंसा** ४२

उपबर्हण गन्धर्व के रूप में नारदजी का जन्म। पूर्व जन्म में नारदजी ने पिता के साथ विरोधकर क्या किया और उसका परिणाम सुनाने के लिये शौनकजी की प्रार्थना पर सौति ने बताया कि ब्रह्माजी की पूजा पुत्रों के शाप देने से नहीं होती है। इसीलिये ब्रह्माजी की आराधना भी विद्वान् लोग नहीं करते। नारदजी जिस प्रकार गुरुजनों के शाप से गन्धर्व हुए उसकी कथा का प्रसङ्ग। गन्धर्व होकर भी वैभव हुआ परन्तु पुत्र न हुआ इसपर गुरुजी की आज्ञा से उन्होंने पुष्कर तीर्थ में भगवान् शङ्करजी की तपस्या की। भगवान् शङ्करजी का मन्त्र उसे गुरुदेव वशिष्ठ ने दिया था। दिव्य सौ वर्ष तक उसका जप करता हुआ गन्धर्वराज अन्त में शिवजी को प्रसन्न करने में सफल हुआ भगवान् चन्द्रशेखर ने उसे वर मांगने को कहा तो गन्धर्व ने हरि भक्ति औरपरम भागवत पुत्र की याचना की। भगवान् शङ्कर ने कहा कि श्रीकृष्ण की आराधना करनेवाले को कभी कोई पाप ताप नहीं सता सकता अतः तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो

परन्तु तुम दूसरा वर मांगो। गन्धर्वराज ने अपने पहले वरों की पूर्ति न होने पर शिर काट कर चढ़ाने की धमकी दी। तब भक्तों के ऊपर दया करनेवाले भगवान् शङ्कर ने पुत्र रत्न की प्राप्ति का सुन्दर वरदान दिया और अन्तर्धान कर गये।

गन्धर्वराज के पुत्र उपबर्हण को भी गुरु दीक्षा पर भगवान् विष्णु का मन्त्र मिला। एक वार गन्धर्वों की ५० पत्नियों ने उस युवक को इस प्रकार सुन्दर वेष में देख कर मूर्च्छित होकर योग से प्राण छोड़ नया जन्म धारण कर चित्ररथ की कन्याओं के रूप में जन्म लिया। बड़ी होनेपर उन्होंने उपबर्हण गन्धर्व को अपना पति वर लिया जब वह सानन्द तीन लाख वर्ष तक जीवन बिताकर भगवान् में मन लगाने की तैयारी कर रहा था तो रम्भा के नव यौवन को देखकर उसका वीर्य स्खलन हो गया। इसपर ब्रह्माजी ने उसे शूद्र योनि की गति पाने का शाप दिया। उस गन्धर्व ने योग के द्वारा अपना शरीर छोड़ा और उसकी पचास रानियों में प्रधान महिषी ने पति विरह में मार्मिक विलाप किया।

ब्राह्मण बालक के वेश में भगवान् विष्णु का मालावती के पास आना और उस ब्राह्मण बालक का मालावती के साथ सम्वाद होने के प्रसङ्ग में कर्मफल का कथन।

ब्राह्मण ने रोग और व्याधि का बीज शास्त्रानुसार बताकर उसके दूर करने के उपाय बताये। मालावती के सामने कालपुरुष को प्रगट किया गया। व्याधि समूह और यमराज सभी उपस्थित हुए। मालावती ने खुले शब्दों में उससे पूछा

हे धर्मराज आप मेरे पतिदेव के हरने का कारण बताइये। यमराज ने इसपर ईश्वराज्ञा द्वारा मृत्यु कन्याओं को व्याधिरूप में मनुष्य एवं प्राणियों की मृत्यु का कारण बताया।

१६ विष्णुमालावतीसंवादे व्याधिप्रणयनम् ५६

वैद्यकीसंहितावर्णनम्

मालावती के यह पूछने पर कि रोग की उत्पत्ति, शमन और उसे दूर करने का उपाय बताइये तो ब्राह्मण ने परम्परानुसार जैसे आयुर्वेद का प्रादुर्भाव हुआ उसे बताया और वेदाङ्ग के रूप में ही चिकित्सा को एक अङ्ग कहकर इसकी विशेष प्रशंसा की। इसके १६ तन्त्रों में एक से एक बढ़कर रोगों की चिकित्सा बतलाई गई है। व्याधि का ज्ञान और कष्ट का निग्रह करना यही वैद्य का वैद्यत्व है वह आयु का मालिक नहीं है, फिर ज्वर, मन्दाग्नि, पाण्डु, कामल, कुष्ठ, शोथ, प्लीहा, शूल, ज्वरातिसार, ग्रहणी, खांसी, श्वास, मूत्रकृच्छ्र, गुल्म (गोला) रक्तदोष के विकार वाले रोग, विषमेह, कुबड़ापन, गोद, गलगण्ड, भ्रमरी, सन्निपात, विसूची आदि ६४ भेद रोगों के बतलाये। पापों से रोगों की वृद्धि और मृत्यु का आगमन बतलाया और ईश्वरभक्ति से शमन।

चक्षुर्जलञ्च व्यायामः पादाधस्तैलमर्दनम्। कर्णयोर्मूर्ध्नि तैलञ्च जराव्याधिविनाशनम्
वसन्ते भ्रमणं वह्निसेवां स्वप्नं करोति यः। बालाञ्च सेवते काले जरा तं नोपगच्छति॥
खातशीतोदकस्नायी सेवते चन्दनद्रवम्। नोपयाति जरा तञ्च निदाघेऽनिल सेवनम्
प्रावृष्युष्णोदकस्नायी घनतोयं च सेवते। समये च समाहारी जरा तं नोपगच्छति
शरद्रौद्रं न गृह्णाति भ्रमणं तत्र वर्जयेत्। खातेस्नायी समाहारी जरा तं नोपगच्छति

खातस्नायी च हेमन्ते काले वह्निञ्च सेवते।

भुङ्क्ते नवान्नमुष्णञ्च जरा तं नोपगच्छति॥

भुङ्क्ते सदन्नं क्षुत्काले तृष्णायां पीयते जलम् ।
नित्यं भुङ्क्ते च ताम्बूलं जरा तं नोपगच्छति ॥

दधि हैयङ्गवीनञ्च नवनीतं तथा गुडम् । नित्यं भुङ्क्ते संयमी यो जरा तं नोपगच्छति

अर्थात् नेत्रों को ठण्ढे पानी से धोना, व्यायाम करना, तैल का पैरों के तलवे में मर्दन, कान में तेल डालना, और शिर में अच्छे तैल की मालिस करना बुढ़ापा और रोग को दूर करता है। वसन्तऋतु में प्रातः सायं टहलने, चित्रक के सेवन और गहरी नींद लेने और समय पर वाला युवती के साथ सम्भोग करने से वृद्धावस्था नहीं सताती। कूपजल, नदीजल अथवा तालाब या बावड़ी के जल में स्नान, चन्दन का लेपन और गर्मी में ठण्ढी वायु का सेवन ये वृद्धावस्था से दूर रहने के साधन हैं। वर्षा में गर्म जल से स्नान और वर्षा के जल का सेवन तथा समय पर हित, मित और पथ्य आहार के सेवन का स्वास्थ्य पर बहुत सुन्दर प्रभाव होता है। शरदृऋतु में सुन्दर औषध का सेवन, भ्रमणादि का वर्जन, नदी, कूआ, वावड़ी या तालाब में ठण्ढे जल से सदा स्नान करने से वृद्धावस्था नहीं सताती। हेमन्त ऋतु में नदी कुआ, बावड़ी या तालाब में स्नान और अग्नि का सेवन, नवीन और गर्म सुपाच्य भोजन करनेवाले को वृद्धावस्था नहीं आती। खातस्नान के साथ-साथ सुपाच्य रुचिकर और अच्छे अन्न का भूख लगने पर खानेवाला, प्यास लगने पर जल पीनेवाला और नित्य ताम्बूल (पान) का सेवन करनेवाला वृद्धावस्था को नहीं प्राप्त करता। दही, बिना घी निकाला हुआ मट्ठा, नवनीत (मक्खन) और गुड़ का जो संययी व्यक्ति सेवन करता है उसे वृद्धावस्था नहीं सताती।

इस प्रकार सारी रोगविनाशक और शरीर वर्द्धक प्रक्रियाओं को सुनकर मालावती ने उपवर्हण की मृत्यु का कारण ब्रह्माजी द्वारा शाप और संसार में महत्पद की प्राप्ति विपत्ति के विना नहीं हो सकती इस प्रकार जन्मान्तर से उन्नति होना बतलाया है।

सालावती के साथ ब्राह्मण वेष में विष्णु का देवताओं की सभा में जाना और उपबर्हण की मृत्यु का स्पष्टीकरण करने के लिये देववृन्द से पूछना। ब्रह्माजी ने उपबर्हण को शाप दिया उसका कारण बताया और महेश्वर ने तथा धर्म ने देवताओं के आगे विष्णु को न देखकर उस ब्राह्मण से कटाक्ष करते हुए कारण पूछा। इसपर भगवान् ने स्वयं को विष्णु बतलाकर गोलोक, वैकुण्ठ आदि की स्थिति बतलाई और उस गन्धर्व को जिलाने का आदेश दिया।

ब्रह्माजी ने कमण्डलु जल ज्योंही उसपर छिडका त्योंही मन वाणी आदि का सञ्चार अवश्य हो गया परन्तु आत्मा के अधिष्ठान के बिना वह जड़वत् शव के रूप में ही पड़ा रहा इसी समय ब्रह्माजी के वचन से साध्वी ने विष्णु को प्रसन्न किया और भगवान् की कृपा से वह उपबर्हण गन्धर्व उठ खड़ा हुआ अपने सामने उपस्थित देव समूह तथा ब्राह्मण वेषधारी भगवान् विष्णु को प्रणाम किया। देवताओं के वरसे जीवित वह गन्धर्व अपनी राजधानी में लौट आया और इस उपलक्ष्य में बहुत आमोद प्रमोद के साथ खूब महोत्सव मनाया गया। इस महापुरुष के स्तोत्र का वर्णन जो करता है उसकी सम्पूर्ण मनोकामनायें हरि भगवान् की कृपा से पूर्ण हो जाती हैं।

ब्रह्माण्ड को पवित्र करनेवाले श्रीकृष्ण के कवच का वर्णन। इसके साथ ही

सौतिजी ने शङ्कर कवच बताया और वाणेश्वर के द्वारा कहे गये शंकरजी का समस्त पाप ताप को दूर करनेवाला स्तोत्र सुनाया।

उपबर्हण का जन्म किस प्रकार हुआ उसका निरूपण। कान्यकुब्ज देश में द्रुमिल नामक राजा की कलावती नाम की पतिव्रता स्त्री थी जो बाँझ थी। स्वामी के दोष से उस बन्ध्या कलावती ने अपने पति की आज्ञा से नारदजी की तपस्या की। वह यद्यपि उनके सामने आने में असमर्थ थी फिर भी मुनि की समाधि टूटने पर नारदजी ने उसे देखकर सारी बातें पूछीं। उसने वीर्याधान का प्रस्ताव किया और काश्यप नारद ने इस पर कईएक बातें बुरी-भली सुनाई। भोग करने योग्य जो अपनी गृहलक्ष्मी को दूसरे को देने की इच्छा करता है, वह अवश्य उसे छोड़ देती है ऐसी वेदों की घोषणा है। कभी भी वर्णसङ्कर सृष्टि नहीं होने देनी चाहिये ऐसा होने से देवता और पितर उस पतित का जल और श्राद्ध तथा पूजा ग्रहण नहीं करते। इसके बाद वह वृषली मुनि के सामने चुपचाप खड़ी रही और मेनका को देखकर स्खलित वीर्य होने पर उस कलावती ने उसे पी लिया और द्रुमिल को सारे गर्भहेतु के कारण बतलाये। द्रुमिल ने अत्यन्त प्रसन्न होकर उस गर्भाधान की प्रशंसा की तथा सभीको प्रसन्न होकर अतुल धन दान किया। फिर बद्रिकाश्रम में जाकर योग साधना से अपने शरीर को छोड़ा। वहाँ से विष्णुदूतों ने उसे वैकुण्ठ लेजाकर भगवान् का दास बना दिया। इधर भौतिक शरीर को निर्जीव देखकर कलावती विलाप करने लगी और उसने पति के साथ ही चिता में प्राण छोड़ने की पूरी तैयारी की परन्तु ब्राह्मण ने उसे मातः कहकर बचा लिया क्योंकि उसके गर्भ से बालक का आविर्भाव होगा।

जब बालक होकर पाँच वर्ष का हुआ तो उसे पूर्वजन्मों की स्मृति बराबर बनी रही और वह निरन्तर ही जहाँ भगवान् कृष्ण की पवित्र कथा का अनुवाद होता हो वहाँ वह अवश्य ही पहुंचता है। उसे जब माता भी बुलाती तो वह यही कहता कि आता हूं थोड़ी भगवान् की पूजा करलूँ। यह बालक नारद नाम से विख्यात हुआ। वह दिन दूना रात चौगुना बढ़ता गया। उसे जिसे कृष्ण मन्त्र की प्राप्ति हुई उसका वर्णन। इसके बाद नारदजी शाप से छुटकारा पा गये।

ब्रह्माजी के पुत्रों की नाना सुन्दर व्युत्पत्तियों का वर्णन।

भगवान् ब्रह्माने अपने सब पुत्रों को सृष्टि के विधान में लगाकर नारदजी से सृष्टि करने को कहा। उन्होंने कहा कि सम्पूर्ण संसार में गृहस्थ ही प्रधान है और पुण्यशील है। यह स्त्री, पुत्र, पौत्रों का जो मन्दिर है वह बड़ी तपस्या का फल है देव पितर और ऋषि सभी गृहस्थ के नित्य, नैमित्तिक और काम्य विधियों से प्रसन्न होते हैं इसलिये गृहस्थ पालन करना आवश्यक है। नारदजी ने इसपर बहुत ही सुन्दर आदर्श वचन कहकर कि गृहस्थजीवन यदि कृष्णभक्ति विहीन है तो उसका सारा का सारा जीवन ही व्यर्थ है ऐसे घृणित जीवत की भर्त्सना की। आगे उन्होंने बताया कि ज़ीवन में स्त्री के साथ पाणिग्रहण दुःखके लिये है सुख के लिये नहीं साथ ही तप, स्वर्ग, भक्ति और मुक्ति के उन्नत मार्ग पर चलने के लिये बड़ी भारी रुकावट है। साध्वी, भोग्या, कुलटा तीन प्रकार की स्त्रियाँ बतलाई गई हैं। परलोक

के डर से और कामस्नेह से केवल अपने पति की जो सेवा करती है, वह साध्वी है। वस्त्र, अलङ्कार, सुन्दर स्निग्ध आहार जबतक जिस स्त्री को मिलते हैं वह भोग्या है और कुलटा तो कुल की अङ्गार होकर नित्य ही पति को जलाती रहती है। नारदजी कहते हैं सम्भोग से तेज नष्ट होता है 'दिनमें वात करने से यश का क्षय होता है' अधिक प्रेम करने से धन का क्षय होता है और अति आसक्ति होने से शरीर का क्षय होता है। साथ रहने से पुरुषार्थ नष्ट होता है कलह में मान्यता समाप्त होती है उनका विश्वास करने से सर्वनाश होता है हे पितः आप ही कहिये स्त्रीमात्र में क्या सुख है। इस प्रकार पिता से क्षमाप्रार्थनापूर्वक नारदजी ने तपस्या के लिये आज्ञा मांगी। इसपर ब्रह्माजी गले लिपटकर ऊँचे स्वर से रोने लगे वास्तव में मनुष्यों का विछोह भी दुःसह (असह्य) होता है।

२४ नारदम्प्रति दारपरिग्रहार्थं ब्रह्मण उपदेशः ८३

तदनन्तर ब्रह्माजी नारदजी को फिर समझाने लगे और दार परिग्रह के लिये नाना उपदेशपूर्ण वचनों से अपना मन्तव्य प्रगट कर कहा कि कृष्णभक्त को घर में ही तपस्या का फल मिल जाता है।

आदौ भवेद् गृहीलोको वानप्रस्थस्ततः परम्।
ततस्तपस्वी मोक्षाय क्रमएष श्रुतौश्रुतः॥
गृहीभव मुनिश्रेष्ठ! गृहीणां सर्वदासुखम्।
कामिन्यां सुखसम्भोगः स्वर्गभोगात्सुदुर्लभः॥
तद्दर्शनमुपस्पर्शं वाच्छन्त्येव मुमुक्षवः। सर्वस्पर्शसुखात् स्त्रीणामुपस्पर्शसुखं परम्॥
ततः सुखतमंपुत्र दर्शनं स्पर्शनं मुने। नास्ति पुत्रात्परोबन्धुर्नास्तिपुत्रात्परः प्रियः॥
सर्वेभ्यो जयमन्विच्छेद् पुत्रादेकात्पराजयम्॥

इसपर भी नारदजी थोड़े ही मानने वाले थे। उन्होंने भगवान कृष्ण की साधना के लिये मन्त्रदीक्षा मांगी और इसके बाद ही दार परिग्रह करने की

बात कही तब ब्रह्माजी ने पति से, पिता से और विविक्त आश्रम (सन्यासी) वालों से मन्त्रदीक्षा न लेकर जन्मतः प्राप्त अपने इष्टगुरु से मन्त्र लेनेकी बात कही। क्योंकि

पत्युर्मन्त्रं पितुर्मन्त्रं न गृह्णीयाद् विचक्षणः। विविक्ताश्रमिणाञ्चैव न पुत्र सुखदायकः निषेकाल्लभ्यते मन्त्रो गुरुर्भर्त्ता च कामिनी। विद्या सुखंभयं दुःखं पुरुषैः स्वेच्छया न च

अब महेश्वर तुम्हारे गुरु हैं उनके पास जाकर भगवन्मत्र को लेकर फिर मेरे पास आओ। इसके बाद नारदजी पिता के आदेश से शिवलोक को चले गये।

शिवलोक में जाकर नारदजी ने उनकी स्तुति की तथा भगवान् के सम्मुख अपना हार्द (भाव) कहकर उनसे अपनेको दीक्षित करने की प्रार्थना की।

जब शिवजीने सम्पूर्ण स्तोत्र कवच, मन्त्र, ध्यान और पूजा का विधान कह दिया तो नारदजी ने प्रतिदिन करने योग्य आचार प्रसङ्ग के सम्बन्ध में उपदेश करने की प्रार्थना की। भगवान् भूतनाथ देवाधिदेव महेश्वर ने प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त से शय्या त्यागकर रात्रि में शयन तक की आदर्श दिनचर्या का निरूपण किया जिसमें निम्नलिखित मुख्य हैं :—

गुरु इष्टदेव के ध्यानपूर्वक शौच निवृत्ति के लिये वन में एकान्त स्थान पर उत्तराभिमुखादि होकर जावे तदनन्तर जल से हाथ पैर धोकर १६ गण्डूष करे और दन्तमार्जन काष्ठ से अच्छी प्रकार दाँतों को साफ करे फिर जलस्नान कर प्रातः सन्ध्या करे। तर्पण, स्नान, दान, तप, होम, दैवपितृ कर्म के पहिले तिलक को अवश्य धारण करे। तदनन्तर तर्पण और आवश्यक नित्यकार्यों को सम्पादनकर वेद विहित शालग्राम की पूजा करे। शालग्राम शिला का माहात्म्य।

शालग्राम शिलाचक्रं यत्र तिष्ठति नारद। सचक्रो भगवांस्तत्र सर्वतीर्थानि निश्चितम्

शालग्राम की षोडश उपचार या बारह वस्तुओं तथा पञ्चद्रव्यों से पूजा का विधान आता है :—

आसनं वसनं पाद्यमर्घ्यमाचमनीयकम् ।पुष्पं चन्दन धूपञ्च दीप नैवेद्यमुत्तमम् ।।६१।।

गन्ध्यं माल्यञ्च शय्याञ्च ललितां सुविलक्षणाम् ।
जलमन्नञ्च ताम्बूलं साधारं देयमेव च ।।६२।।
गन्धान्नतल्पताम्बूलं विना द्रव्याणि द्वादश ।
पाद्यार्घ्यं जल नैवेद्य पुष्पाण्येतानि पञ्च च ।।६३।।

प्रथम भूतशुद्धि कर प्राणायाम करे अङ्गन्यास एवं प्रत्यङ्गन्यास और मन्त्र न्यास करे। वर्णन्यास के वाद अर्घ्य प्रदान किया जाय।

२७ नराणां भक्ष्याभक्ष्यकर्तव्याकर्तव्य कथनम् . ६३

नारदजी के द्वारा द्विज, गृहस्थ, यति, वैष्णव, विधवा एवं ब्रह्मचारियों के लिये भक्ष्याभक्ष्य के विषय में पूछने पर भगवान् महादेवजी ने कहा कि ब्राह्मणों के लिये भगवान् नारायण के प्रसादरूप में चढ़ाया हुआ हविष्य अन्न भोज्य है अन्य सब त्याज्य है, एकादशी को अन्न सर्वथा त्याज्य है।

ब्राह्मणःकामतोऽन्नं च यो भुङ्क्ते हरिवासरे।
त्रैलोक्यजनितं पापं सोऽपि भुङ्क्ते न संशयः ।।७।।

जन्माष्टमी, शिवरात्रि, रामनवमी और एकादशी को उपवास करने में असमर्थ व्यक्ति अन्न का सेवन न करे हाँ फल मूल जल का सेवन कर सकता है।

नित्यं नैवेद्यभोजी यः श्रीकृष्णस्य च वैष्णवः।
नित्यं यत्नोपवासानां जीवन्मुक्तः फलं लभेत् ।।

भगवान् श्रीकृष्ण को नैवेद्य लगाकर भोजन करनेवाला मनुष्य सौ उपवासों का फल पाता है और वह जीवन्मुक्त है। विधवा स्त्री, यति, ब्रह्मचारी और तपस्वी लोगों के लिये ताम्बूल का सेवन गोमांस के सेवन के बराबर है। ताम्रपात्र में पयःपान और लवण के साथ दुग्ध सेवन गोमांस के समान है। कांस्यपात्र में नारिकेल का जल और ताम्रपात्र में मधु और ईख का रस सुरा के समान है। जो द्विज बांये हाथ से जल पीते हैं वह सुरा पीनेवाले हैं।

अनिवेद्य हरेरन्नं भुक्तशेषञ्च नित्यशः। पीतशेषजलञ्चैव गोमांससदृशं मुने ॥२५॥

मत्स्यादि का मांस सदा ही अभक्ष्य है। प्रतिपदा को कूष्माण्ड, द्वितीया को बृहती भोजन, और पटोल शत्रुओं की वृद्धि करता है तृतीया और चतुर्थी को मूलक का सेवन, पञ्चमी को बिल्व का सेवन, षष्ठी को निम्ब का भक्षण, सप्तमी को ताल का भक्षण शरीर नाशक है। नारिकेल फल का भक्षण अष्टमी के दिन बुद्धि को नाश करता है नवमी को तुम्बी (घिया) दशमी को कलम्बिका, एकादशी को शिम्बीधान्य द्वादशी को पूतिका, त्रयोदशी को बैंगन का भक्षण पुत्र नाश करता है अतः वर्ज्य है, चतुर्दशी, पूर्णिमा, अमावास्या को मांसभक्षण सदा महापातक करनेवाला है अतः उसे कभी सेवन न करे।

सरसों का तैल, पक्वतैल का सेवन प्रातःस्नान में, विशेष रूप से पार्वण श्राद्ध में, व्रत के दिन, कुहू, पूर्णिमा, संक्रान्ति, चतुर्दशी और अष्टमी को प्रशस्त है। रविवार, श्राद्ध, व्रत के दिन स्त्रीसेवन और तिल तैल, मांस, रक्त शाक और कांस्य के बर्तन में भोजन निषिद्ध है। सम्पूर्ण वर्णों के लिये दिन में स्त्रीप्रसङ्ग वर्जित है। रात्रि में दधि भक्षण, दोनों सन्ध्या में शयन, रजस्वला स्त्री में गमन ये नरक के कारण है।

रजस्वला और वीरान्न पुंश्चलि का अन्न, शूद्रयाजक और शूद्र के श्राद्ध का अन्न,

वृषलीपति का अन्न, ज्योतिषी का अन्न और वैद्य का अन्न वर्जित है। अमावास्या,

कृतिका में क्षौर वर्जित है जो व्यक्ति मैथुन और क्षौर कर देव और पितरों का तर्पण करता है वह रुधिर के समान है और दाता नरक में जाता है इसलिये मनुष्य को इनसे बचकर अपनी जीवनी बनानी चाहिये।

२८ ब्रह्मनिरूपणम् ६५

साकार निराकार ईश्वर के सम्बध में प्रश्न पूछने पर भगवान् शङ्कर ने ब्रह्मा का निरूपण किया। पाँचो प्राण साक्षात् स्वयं विष्णु हैं मन ब्रह्मा प्रजापति हैं सम्पूर्ण ज्ञानस्वरूप मैं हूं शक्तिरूपा प्रकृति ईश्वरी है आत्माधीन ही हम सब हैं। कर्म के भोगने के लिये जीव उसका प्रतिबिम्ब है, जैसे--जल से पूर्ण घड़े में सूर्य और चन्द्रमा की परछाया दीखती है और घड़े के फूट जाने पर बिम्ब चन्द्र और सूर्य में लीन हो जाता है वैसे ही सृष्टि के भग्न होनेपर जीव ब्रह्म में मिल जाता है संसार के प्रलय के समय एक परब्रह्म ही स्थित रहता है और हम सब तथा सारा संसार उसी में लीन हो जाते हैं। वह ज्योतिस्वरूप मण्डलाकार है ग्रीष्म के प्रचण्ड मध्याह्न सूर्यों की करोड़ों की संख्या में जैसी प्रभा होती है वैसा है। आकाश के समान विस्तीर्ण है सर्वव्यापक है विनाश रहित है योगिवृन्द के द्वारा सुख से दिखलाई पड़ता है इसको वे ही रात दिन ध्यान करते हैं। परमानन्दस्वरूप परमानन्द का कारण पर प्रधानपुरुष निर्गुण है और प्रकृति से परे है। वहींपर सम्पूर्ण बीजरूपा प्रकृति लीन रहती है जैसे अग्नि में दाहिका शक्ति, सूर्य में प्रभा, दुग्ध में धवलता, जल में शीतलता, आकाश में शब्द, पृथ्वी में गन्ध वैसे ही निर्गुण ब्रह्म और प्रकृति का सम्बन्ध है। सृष्टि के आरम्भ होते ही वह सगुण रूप बनकर उपस्थित होता है और त्रिगुण प्रकृति छायामयी वहाँ विराजमान रहती है यह सुन नारदजी ने भगवान् शङ्कर से प्रार्थना कर विदा ली।

---

२९ **नारायणम्प्रति नारदप्रश्नः** ९९

भगवान् नारायण के पास नारदजी का शुभागमन जब उन्होंने श्रीकृष्ण को ध्यान में मग्न देखा तो निम्नलिखित प्रश्न पूछे। हे प्रभो ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि देवता इन्द्र और मुनिजन किसका ध्यान करते हैं ? सृष्टि किससे होती है और कहाँ लीन हो जाती है ? सम्पूर्ण कारणों का करनेवाला विष्णु कौन हैं ? उनका स्वरूप और कर्म क्या है ? यह आप बतलाने की कृपा करें।

३० **श्रीनारायणकृतस्तवः** १००

भगवान् नारायण ने उन देवाधिदेव भगवान् पूर्ण कलावतार श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द की स्तुति करते हुए श्री नारदजी से उन्हीं के चरणों में ध्यान लगाने का आदेश दिया।

ब्रह्मवैवर्त के ब्रह्मखण्ड की विषय-सूची समाप्त।

श्रीगणेशाय नमः।

२ प्रकृति खण्ड

अध्याय	विषय	पृष्ठाङ्क
१	प्रकृतिचरितसूत्रम्	१०२

सृष्टि में जो कुछ शक्ति विभूति का दर्शन होता है वह सब सर्वव्यापी परब्रह्म की ह्लादिनी शक्ति प्रकृति का ही विलास है। उस अनन्त ब्रह्माण्डों की नायिका महादेवी प्रकृति के सृष्टिविधि में पाँच प्रकार का रूप उपलब्ध होता है गणेश जननी भगवती पार्वती, दुर्गा, राधा, लक्ष्मी और सरस्वती एवं सावित्री। सभी स्त्रियों में ये ओत-प्रोत हैं व्याप्त है। यह अनादिकाल से ही सृष्टि के जनन पालन-पोषण में तत्पर हैं इनकी महिमा किसी से भी नहीं कही जासकती। प्रकृति की यही व्युत्पत्ति है कि प्र=प्रकृष्ट का वाचक, कृति=सृष्टि का वाचक। सृष्टि प्रक्रिया में जो देवी प्रकर्ष रूप में विराजमान रहती है वह प्रकृति है।

स्त्री मात्र की प्रतिनिधि पृथ्वीरूपा है। जैसे पृथ्वी अपने प्रणव श्वांस से वायु के द्वारा तीन गुण है, सत्व, रजस् और तमस्! प्र=प्रकृष्ट सत्त्व कृ=रजस् ति=तमस् त्रिगुणात्मिका सम्पूर्ण शक्ति सम्पन्न और सम्पूर्ण सृष्टि करने में प्रधान प्रकृति कहलाती है। सृष्टि के आरम्भ में योग से विराट ने अपना दो रूप बना दक्षिण अर्द्धाङ्ग से पुरुष और वामाङ्ग से प्रकृति हुई वैसे परमार्थतः स्त्री और पुरुष का भेद नही है सम्पूर्ण संसार ही ब्रह्ममय है। सृष्टि रचने की इच्छा करने पर श्रीकृष्ण के द्वारा प्रकृति ईश्वरी पैदा हुई। उसकी आज्ञा से ही पञ्चविध भेद या भक्तों पर कृपा करने की इच्छा से भगवती प्रकृति के पाँच प्रकार के रूप हो गये

यह जड़ चेतन सब में अधिष्ठात्री रूप में रहती हैं। भगवान् की प्राणभूता है जो-जो पदार्थों में प्राणियों में सत्त्व है वह सब इसी की प्रतिच्छाया है या यह सब यही है क्रमशः दुर्गा, राधा, लक्ष्मी, सरस्वती,सावित्री, पञ्चतत्व दुर्गा, पार्वती, पृथ्वी, राधा राकिणी शक्ति, लक्ष्मी जनतत्त्व, सरस्वती आकाश, सूर्य एवं सावित्री का विधिपूर्वक वर्णन।

२ देवदेव्युत्पत्तिः १०६

प्रकृति के विना परब्रह्म कुछ भी नहीं कर सकते जैसे विना सोने के स्वर्णकार कुण्डल नहीं बना सकता और विना मिट्टी के कुलाल घड़ा नहीं बना सकता वैसे ही प्रकृति के विना ब्रह्म कुछ भी नहीं कर सकता। समृद्धि, बुद्धि, सम्पत्ति, यश का नाम भाग है। उससे युक्त होने से प्रकृति भगवती और भगवती से युक्त भगवान्। श्रीकृष्ण और राधा की विशेष नामों के साथ व्युत्पत्ति और उनकी अलौकिक ह्लादिनी शक्ति राधा की विशेष प्रशंसा। भगवती राधा के साथ भगवान् श्रीकृष्ण ने ब्रह्माजी की आयु तक सुखसम्भोग किया उससे प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान तथा अधः प्राण हुए। इसके बाद उनके जिह्वा के अग्रभाग से शुक्लवर्ण की मनोहर कन्या का आविर्भाव हुआ वह पीतवस्त्र पहने हुए थी वीणा पुस्तकधारिणी रत्न आभूषणों से सज्जित सम्पूर्ण शास्त्रों की अधिदेवता थी। इसी के बाद श्रीकृष्ण द्विधा रूपवाले हो गये। दक्षिण अर्ध दो भुजावाला और वामार्द्ध चार भुजावाला बन गया। उस वाणी को श्रीकृष्ण ने कहा कि तुम इसकी कामिनी बनो। उन नारायण के साथ वह मनोहरा कन्या स्त्री रूप में वैकुण्ठ में चली गई। सौ मन्वन्तरों तक स्वर्णमय डिम्ब को राधिकाजी ने सेवन किया और उसे क्रोध से जल में फेंक दिया इस प्रकार ब्रह्माजीने शाप दिया कि तुमने कोपशील होकर उसको छोड़ दिया अतः अब तुम आगे से विना पुत्रों की होजावोगी।

जब वह डिम्ब (गर्भ का पिण्ड) ब्रह्माजी के सम्पूर्ण वय तक जल में रहा तो समय पर उसके दो रूप हो गये उसके बीच में से रोता हुआ एक बालक अपने प्रकाश से करोड़ों सूर्यों की जगमगाहट को भी फीका करता हुआ निकला। वह भूख से व्याकुल था। उसने महाविराट् रूप में भगवान् श्रीकृष्ण के १६ वें अंश से अपना रूप धारण किया। वह सम्पूर्ण विश्व का आधार है और उसके प्रत्येक रोमकूप में सम्पूर्ण विश्व के ब्रह्माण्डों के प्रदेश रक्षित है। उन विश्व संख्याओं को भगवान् भी नहीं बता सकते। प्रति विश्व में ब्रह्मा, विष्णु और शिव हैं पाताल से ब्रह्मलोक तक ब्रह्माण्ड है उससे ऊपर वैकुण्ठ है उससे ऊपर पचास कोटि योजन पर गोलोक है। सात द्वीपवाली पृथ्वी सात सागर युक्त ४६ द्वीप उपद्वीप समेत असंख्य पर्वतों के साथ ऊपर स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक और नीचे सात पाताल, तलातल रसातल आदि उससे भी ब्रह्माण्ड से ऊपर तपोलोक, सत्यलोक और ब्रह्मलोक की स्थिति है। इस प्रकार से पृथ्वी के अन्तर में सबकुछ है। पृथ्वी के नाश होने पर सबकुछ लय हो जाता है। वह विराट् भगवान् श्रीकृष्ण का ध्यान करने लगा और प्रभुके प्रगट होने से वरदान पाकर वह सृष्टि निर्माण में लग गया।

प्रकृति के पञ्चरूपों में से एक सरस्वती के सम्बन्ध में पूजादि विधान पूछने पर भगवान् नारायण ने संक्षेप से दुर्गा और भगवती राधा के सम्बन्ध में न बताकर आरम्भ में सरस्वती पूजा का विधान बताया, जिसे करने से मूर्ख भी पण्डित बन जाता है। जब श्रीकृष्ण की स्त्री के मुख से यह उत्पन्न हुई तो कामरूपिणी

इस देवी ने भगवान् श्रीकृष्ण की इच्छा की तब श्रीकृष्ण ने कहा हे साध्वि तुम मेरे अंश नारायण को भजो क्योंकि यहाँ पर रहने से राधा जैसी वलवती तुम मानिनी के सामने टिक नहीं सकोगी और न तुम्हारा कल्याण होगा। अतः नारायण की स्त्री बनकर रहो और तुम्हारी पूजा माघ शुक्ल पञ्चमी को विद्यारम्भ में सारे मनुष्य करेंगे यह मेरा वरदान है। इसके अनन्तर सरस्वती के मूलमन्त्र, और सरस्वती कवच का विधान बतलाया गया है। जिसको करने से मनुष्य त्रैलोक्य विजयी तथा बृहस्पति के समान महावाग्मी और कवीन्द्र हो जाता है। वास्तव में यह कवच सम्पूर्ण इच्छित वस्तुओं को देनेवाला है।

श्री याज्ञवल्क्य ने वाग्देवी सरस्वती को जिस स्तोत्र से प्रसन्न किया उससे भगवान् सूर्य के आदेश से उन्हें सिद्धि मिल गई। याज्ञवल्क्यजी के द्वारा जो भगवती का स्तोत्र है उसकी फलश्रुति और विधान का वर्णन।

भगवती सरस्वती गङ्गा के शाप से भारत में नदी रूप में अवतीर्ण हुई और उसमें स्नान करने से अनन्त पुण्यों का फल। लक्ष्मी, सरस्वती और गङ्गा ये तीन भगवान् नारायण की स्त्री है। अपने सौतेले डाह के कारण गङ्गा और सरस्वती का कटु वादविवाद और सरस्वती को मर्त्यलोक में नदी रूप में जाने के लिये गङ्गा का शाप और बदले में गङ्गा को सरस्वती का शाप। फिर नारायण द्वारा महालक्ष्मी जी को मर्त्यलोक में जाकर त्रैलोक्यपावनी तुलसी रूप में रहने को आदेश करना। सभी को जाने के लिये नारायण का आदेश। गङ्गा को शिवस्थान के लिये और

सरस्वती को ब्रह्मा के स्थान पर जाने को कहा गया तदनन्तर स्त्री के वशीभूत रहनेवाले पति के पतन का वर्णन। फिर सरस्वती, गङ्गा तथा लक्ष्मी का भगवान् को अपने लोक में आने के लिये अवधि का पूछना और भगवान् का उन्हें आधे अंश से अपने पास और आधे से मर्त्यलोक में रहकर जन कल्याण करने का आदेश देकर सान्त्वना देना। भगवान् के भक्तों के चरण जहां टिके वह स्थान पवित्र हो जाता है भक्त अपने चरित्रों से संसार का कल्याण कर अन्त में भगवान् में मन लगाते हैं।

भगवती गङ्गाजी द्वारा मर्त्यलोक के कल्याण के लिये संसार में अवतरण। भगीरथ के प्रयत्नों द्वारा भगवान् शङ्कर के शिर पर धारण कर सम्पूर्ण प्रवाह से हिमालय से निकलना। भगवती महालक्ष्मी पद्मावती नाम से और फिर तुलसी रूप से जनकल्याण के लिये इस लोक में आई। कलि के पांच हजार वर्षों के बीतने के बाद यहां पर रहकर भगवान् की आज्ञा से वैकुण्ठ में गमन। केवल काशी और वृन्दावन तीर्थ ही प्रधान रूप से यहां पर रहेंगे। सभी आस्तिक सम्प्रदाय को प्रसन्न करनेवाली परम्परायें धीरे-धीरे ह्रास को प्राप्त हो जायेंगी। इसके बाद सभी मनुष्य आचार हीन विष्णुभक्ति विमुख, शठ, क्रूर, दाम्भिक, हिंसक और दुराचारी बन जायेंगे कहीं भी गुणीजन का आदर नहीं होगा। सभी सारपूर्ण वस्तुयें निःसार हो जायेंगी। प्राणी वर्ग शौर्य और प्रतापहीन हो जायेंगे। सभी बालक स्त्री और पुरुष कुत्सित एवं विकृताकार हो जायेंगे। आपस में बातचीत करते हुए भी लोग अपशब्दों का प्रयोग करेंगे। सभी ग्रामों व नगरों में अरण्य के समान दृश्य हो जायेंगे। सभी नागरिकों पर कर इतना लाद दिया जायगा कि वे उस बोझ से अपना जीवनस्तर ऊँचा नहीं बना सकेंगे और सभी स्थान कृषि से रहित हो जायेंगे। सभी मिथ्यावादी, धूर्त्त, असत्यवादी होंगे। पापी लोग पुण्यात्मा माने जायेंगे, लम्पट पुरुष जितेन्द्रिय होंगे, पुंश्चली पतिव्रता मानी जायगी। पातक करनेवाले

सरपंच कहलायेंगे, भगवान् के नाम पर लोग कमाई करेंगे और कलि आने पर सभी म्लेच्छमय बन जायेंगे। एक हाथ के वृक्ष हो जायेंगे और अङ्गुष्ठमात्र पुरुष हो जायेंगे ऐसे घोर समय में उत्थान के बाद जब पतन की चरम सीमा पहुंच जायगी तो भगवान् नारायण की कला के अंश सम्पूर्ण बलिपुरुषों में श्रेष्ठ विष्णु-यशा नामक ब्राह्मण के पुत्र कल्की रूप में अवतार लेकर दुष्टों से शून्य इस भूमण्डल को तीन रात में बना देंगे। उस समय घोर वर्षा होगी और बारह आदित्य फिर उदय होकर पृथ्वी को सुखा देंगे। इसके बाद कल्प के अनुसार सत्ययुग का आगमन होगा और फिर वेदप्रयुक्त धर्म का प्रचार होकर सभी प्राणियों का सार्वत्रिक विकाश होगा सभी धर्मपरम्पराओं का पालन करेंगे। भगवान् के बड़े भारी भक्त और श्रुति स्मृति पुराणों के अच्छे ज्ञाता सभी होंगे। अधर्मों का लेशमात्र भी फिर नहीं चलेगा। धर्म पूर्ण चारों पादों से युक्त सत्ययुग में होगा, त्रेता में तीन पादोंवाला होगा, द्वापर में दो पाद का रहेगा, कलि में एक पाद वाला और वह भी फिर लुप्तप्रायः हो जायगा। मनुष्यों के ३६० युग बीतने पर देवताओं का एक युग होता है एवं देवताओं के ७१ दिव्ययुगों से एक मन्वन्तर या इन्द्र की आयु का प्रमाण बतलाया गया है १०८ ब्रह्मा की आयु बीतने पर प्राकृत लय हो जाता है। भगवान् कृष्ण में सम्पूर्ण भूतग्राम लीन होता है अतः इसका नाम यथार्थ रक्खा गया यह सब भगवान् कृष्ण की कालकालेश्वर की लीला बतलाई है।

८	पृथिव्युपाख्यानम्	१३५
	पृथिवी पूजामन्त्रः पृथिवीस्तोत्रञ्च	१३७

हरि के निमेष मात्र से ब्रह्मा का पात हुआ उसको प्राकृतिक प्रलय कहा गया है। उस समय लीन प्राणी भगवान् में समा जाते हैं और पृथिवी की स्थिति कहां रहती है और विधान के समय उसका आविर्भाव कैसे हो जाता है। इस

प्रकार नारदजी के पूछने पर नारायण ने भगवान् श्रीकृष्ण को ही सबका उत्पत्ति और तिरोभाव का स्थान बतलाया। मधुकैटभ के मेद से यह सृष्टि बनी ऐसा कोई कहते हैं मेद से उत्पन्न होने से इसका नाम मेदिनी पड़ा। भगवान् वाराह कल्प में इसे समुद्र में से ऊपर ले आये। पृथ्वी की स्तुति।

भूमिदान का फल यदि उसका हरण कोई करे तो नरक का गामी होता है:--

स्वदत्तां परदत्ताम्वा ब्रह्मवृत्तिंहरेत्तु यः। स तिष्ठति कालसूत्रं यावच्चन्द्रदिवाकरौ ।।६।।

भूमि की निरुक्ति सम्पूर्ण प्राणियों का आवास होने से उसकी भूमि सञ्ज्ञा है। वसु=धन रत्नादि देने से उसका वसुन्धरा नाम सार्थक है हरि के उरु से यह जानी गई इसलिये उर्वी नाम रक्खा गया और सम्पूर्ण प्राणिमात्र एवं स्थावरजङ्गम को धारण करने से धरा, धरित्री धरणी हुआ।

भगवती गङ्गा के अवतरण प्रसङ्ग में सगर के वंश का विस्तार से वर्णन

भगवती गङ्गा को सरस्वती के शाप से अनादिकाल में सगर के पुत्रों के उद्धार के लिये मर्त्यलोक में जाने के लिये श्रीकृष्ण भगवान् का आदेश। गङ्गा की अमित महिमा सम्पूर्ण पापताप का नाश करनेवाली यह भगवती गङ्गा है। जाह्नवी के तटपर उसकी पवित्र वायु के सेवन से ही दशगुणा पुण्य लाभ होता है। सामान्य दिनों में केवल स्नानमात्र से ही असंख्य पाप नष्ट होते हैं। विशेष पर्वों पर तो कहना ही क्या। अमावास्या, पूर्णिमा, सूर्य एवं चन्द्रग्रहण के अवसर पर चातुर्मास्य के समय स्नान, दान एवं पुण्य का अनन्तकोटिगुणित फल कहा गया है।

भगवती गङ्गा की स्तुति इसके पूर्व भगवान ने गङ्गा जी को कई वरदान दिये जिसमें गङ्गा नाम स्मरणपूर्वक स्वर्गवासी होनेवाले मनुष्य की भगवान् के यहां सारूप्य मुक्ति विशेष बताई है।

भगवती भागीरथी की भगीरथ ने जो कौथुमशाखा की स्तुति की उसका सविस्तर वर्णन।

भगवती गङ्गा की विभूति कलियुग के पांच हजार वर्ष बीतने पर कहां चली गई। इस पर नारायण ने गोलोक से गङ्गाजी की राधाकृष्ण के शरीर से उत्पत्ति बताकर उस परमपावन धारा की प्रशंसा की और गोलोक में रासेश्वरी राधा के श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द के बाएँ अङ्ग में विराजने पर गङ्गाजी उनके रूप तथा गुणों पर मोहित हुई। इस पर राधा ने श्रीकृष्ण से कहा कि आप बार-बार गङ्गा को ही देख रहे हैं। अतः आप गोलोक से चले जांय आप इसे बहुत अधिक चाहते हैं और आप मेरे थोड़े शब्द से ही छिप गये। आपने बराबर सारे विश्व के प्राणिवर्ग को कुछ न कुछ विभूति दी है आपका क्या क्या गुणानुवाद कहा जाय। राधा द्वारा गङ्गाजल के पान की इच्छा और ब्रह्मादि देवों द्वारा भगवती गङ्गा की प्रशंसा।

भगवान् नारायण को फिर नारदजी ने प्रश्न किया कि भगवान् शङ्कर के सङ्गीत से मुग्ध होकर जब श्रीकृष्ण एवं राधिका द्रव रूप में होगये तो क्या हुआ और उपस्थित लोगों ने क्या किया इसे विस्तार से समझाइये। भगवान् श्रीनारायण बोले—राधाजी के महोत्सव पर जब कार्तिकी पूर्णिमा का दिन था

रासमण्डल की सुन्दर शोभा हो रही थी उसी समय भगवती वीणापाणी सरस्वती

ने सुन्दर शास्त्रीय सङ्गीत से वातावरण को विमुग्ध कर दिया। इसपर ब्रह्माजी, भगवान् कृष्ण, राधिकाजी एवं लक्ष्मीजी अमूल्य रत्न उन्हें भेंटस्वरूप दिये और भगवती दुर्गा ने विष्णुभक्ति दी। संसार में उनके द्वारा धर्म वृद्धि के साथ यश अर्जन हो यह धर्म ने वरदान दिया। अग्नि ने विशुद्ध वस्त्र दिये और वायु ने मणिनूपुर दिये। फिर ब्रह्माजी ने शङ्कर देवाधिदेव को रासोल्लासयुक्त श्रीकृष्ण सङ्गीत के लिये प्रेरणा की। इसपर भगवान् शङ्कर ने इतना सुललित गान किया कि सभी देवतावृन्द मूर्छित होगये जैसे चित्र में चित्रित पुत्तलिका हो। एक क्षण में जब चेतना हुई तो वहां पर जल से पूर्ण स्थल को देखा तथा श्रीराधाकृष्ण को अन्तर्धान। इसपर सभी गोपगोपीवृन्द तथा देवता ब्राह्मण ऊँचे स्वर से रोने लगे। ध्यान लगाकर जब ब्रह्माजी ने देखा तो उन्हें सारा रहस्य हृदयङ्गम हुआ कि भगवती राधा के साथ श्रीकृष्ण पिघलकर जल रूप हो गये। तब ब्रह्मादि देवताओं ने श्रीकृष्ण की आराधना की और उन्हें स्वरूप का दर्शन देकर वाञ्छित वर देने की प्रार्थना की। इसपर आकाशवाणी हुई कि सम्पूर्ण भक्तजन पर दया करनेवाली यह जलरूपा मेरी ही शक्ति है हम दोनों के रूप की फिर क्या आवश्यकता है। इसके दर्शनों से ही मेरा परम पद प्राप्त होगा। यदि आपलोग मुझे ही देखना चाहते हैं तो भगवान् शङ्कर मेरी आज्ञा का पालन करें और ब्रह्माजी भी वेदाङ्ग शास्त्र को बनावें। जिससे संसार में सभी प्राणी लाभ उठाकर मुझे प्राप्त होवें। यदि यह सब आप सबको मान्य हो तो मेरी प्रत्यक्ष मूर्ति के दर्शन सुलभ हैं। इसपर ब्रह्मा ने शङ्करजी को प्रसन्न होकर कहा और शङ्करजी ने गङ्गाजल हाथ में लेकर सत्य प्रतिज्ञा की कि भगवान् विष्णु की मायादि के सम्बन्ध में मन्त्रशास्त्र की रचना कर वेदों का सार उपस्थित करूँगा जिससे भगवान् कृष्ण की आज्ञा का पालन होसके। इसलिये कोई भी व्यक्ति गङ्गाजल लेकर झूठ न बोले नहीं तो ब्रह्मा के वय तक नरक में रहना होगा।

इसपर भगवान् श्रीकृष्ण एवं उनकी आह्लादिनी शक्ति राधिका फिर

आविर्भूत हुए इस प्रकार गङ्गाजी की उत्पत्ति एवं उनकी महिमा के जगन्मान्य प्रभाव का वर्णन हुआ—

१२ गङ्गाया विवाहः १५६

लक्ष्मी, सरस्वती, गङ्गा और लोकपावनी तुलसी भगवान् नारायण की ये चार प्रिया हैं। भगवती गङ्गा कैसे उनकी पत्नी बनी इस प्रकार नारदजी के पूछने पर ब्रह्माजी के मुख से कहे गये उपाख्यान को नारायण भगवान् ने बतलाया। जब राधाकृष्ण के अङ्ग से उत्पन्न गङ्गाजी को राधा ने मान से न देखना चाहा और उसे पान करने को अधीर हो गई तो गङ्गा श्रीकृष्ण भगवान् के चरणों में समा गई। भगवान् विष्णु ने सम्पूर्ण देवगण के मनका अभिप्राय जानकर अपने पैरों के नख के अग्रभाग से उसे गोलोक से वाहर निकाल दिया। इसे राधिका मन्त्र की दीक्षा दी और ब्रह्मा उसे लेकर नारायण को गान्धर्व विवाह से ग्रहण कराने के लिये ले गये। इस प्रकार गङ्गाजी सहित तीन भार्या भगवान् विष्णु के हुई और तुलसी के साथ चार का योग हो गया।

१३ तुलस्यूपाख्यानम् १५७

नारदजी द्वारा तुलसी के कुल, जन्म और प्रभाव के सम्बन्ध में पूछे जाने पर भगवान् नारायण ने दक्ष सावर्णि मनु से लेकर धर्म सावर्णि, विष्णु सावर्णि, देव सावर्णि, राज सावर्णि और वृषध्वज की वंश परम्परा बतलाई। वृषध्वज की शिवनिष्ठा प्रसिद्ध थी उसने भगवान् नारायण, लक्ष्मी और सरस्वती किसीको भी अपना इष्टदेवता न माना। इसपर सूर्य ने उसे भ्रष्टश्री होने का शाप दिया। इसपर सूर्य के पीछे भगवान् शङ्कर त्रिशूल लेकर दौड़े और उन्हें ब्रह्माजी तथा विष्णु के यहां शरण लेने को वाध्य किया। देवता लोग विष्णु की स्तुति करने

लगे। तव विष्णु ने उन्हें अभय का आश्वासन दिया और शङ्करजी के आनेपर

विष्णु भगवान् की स्तुति करने पर भगवान् विष्णु ने उन्हें आने का कारण पूछा और वृषध्वज को शाप देकर भागे हुए सूर्य के पीछे आने का कारण बताकर विष्णु से वृषध्वज के शाप के उद्धार का उपाय पूछा। इसपर भगवान् ने वृषध्वज के पुत्र हंसध्वज और दो पौत्र धर्मध्वज एवं कुशध्वज के बाद लक्ष्मी प्राप्ति की बात कह अन्तर्धान हो गये।

भगवान् नारायण ने कहा कि धर्मध्वज और कुशध्वज दोनों ने कठिन तपस्या से लक्ष्मी को प्रसन्न कर उससे इच्छित वरदान प्राप्त किया। कुशध्वज की पत्नी मालावती के कमला लक्ष्मी की अंशभूता एक कन्या उत्पन्न हुई। वह जन्मतेही वेदध्वनि करती हुई उठ खड़ी हुई इसलिये उसे वेदवती नाम से पुकारा जाता है। उसने भगवान् विष्णु की कठिन तपस्या पुष्करक्षेत्र में एक मन्वन्तर तक की। उसकी तपस्या से प्रसन्न होकर आकाशवाणी हुई।

हे सुन्दरी दूसरे जन्म में साक्षात् भगवान् हरि तुम्हारे पति होंगे फिर वह सन्तुष्ट नहीं हुई और गन्धमादन पर्वत पर जाकर पहले से भी कठिन तपस्या करने लगी। वहांपर रावण को आया देख उसे अतिथि सुलभ सत्कार भावना से सुस्वादु कन्दमूल फल और जल से सम्मानित किया। उस पापी ने एकान्त में ऐसी यौवन प्राप्त स्त्री को देख काममोहित होकर पूछा हे सुन्दरी तुम कौन हो? वह मूर्ख कामवाण से पीड़ित होकर उसे हाथ से ज्योंही खींचकर शृङ्गार करना चाहा वैसे ही उस सती ने कोप दृष्टि से उसे स्तम्भित कर दिया और भगवती पद्मा की आराधना से वह स्वस्थ हो गया और वह स्वयं योगद्वारा देह को छोड़कर परमधाम सिधार गई। रावण भी उसे गङ्गाजी में प्रवाहित कर अपने घर चला गया मार्ग में वह नाना प्रकार से पश्चात्ताप करता हुआ विलाप करने लगा। वही

कालान्तर में साध्वी जनकपुत्री सीतारूप में अवतीर्ण हुई और मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् राम को अपनी कठिन तपस्या से पतिरूप में पाकर धन्य-धन्य बन गई इन्हीं के कारण रावण अन्त में मारा गया। भगवती सीता के साथ अपने पिता श्री के सत्य वचनों को पालन करने के लिये जब राज्यपाट को छोड़कर राघवेन्द्र रामचन्द्र वन को गये तो समुद्र के निकट विप्रवेषधारी अग्निदेव से उनका साक्षात्कार हुआ। श्रीरामचन्द्र को इस प्रकार दुःखी देखकर वह बहुत दुःखी हुए और उन्होंने श्रीराम से कहा कि भगवन् अब आपके लिये सीताहरण का समय आ गया है दैव दुर्निवार्य है मेरी पुत्री को मेरे पास छोड़कर उसकी छाया आप अपने पास रक्खें, फिर परीक्षकाल आने पर आपको सीता देदूँगा देवताओं ने मुझे भेजा है मैं ब्राह्मण वेष में अग्नि हूँ। तब राम ने दुःखी होकर लक्ष्मण के बिना जाने इसे स्वीकार कर लिया और योग से अग्नि ने माया की सीता बनाकर उसी के समान गुण, रूपवाली श्रीराम को देदी। इसी समय रामने सोने का मृग देखा सीता ने उसे लाने के लिये श्रीरामजी को कहा। अब लक्ष्मण की देखरेख में सीता को छोड़ रामचन्द्र ने मायामृग के पीछे रहकर उसे मार दिया और वह परमधाम को चला गया। उसने मरते मरते लक्ष्मण को सम्बोधन कर प्राण छोड़े। इसपर जानकी ने भगवान् रामचन्द्र को खोजने के लिये लक्ष्मण को भेजा और अकेली सीता को पाकर दुष्ट रावण ने छलकर लङ्का में ले जाकर रक्खा। फिर राम ने जानकी का सारा पता पाकर वानरों की सहायता से उस दुष्ट रावण को मार डाला और सीता को प्राप्त किया। अग्निपरीक्षा के लिये जब सीताजी ने अग्निप्रवेश किया तो छाया की सीता ने अग्नि से अपना कर्तव्य पूछा। तब उन्होंने पुष्कर में जाकर तपस्या करने की आज्ञा दी और तीन लाख दिव्य वर्षों तक तप कर स्वर्ग में लक्ष्मी बन गई। सत्ययुग में कुशध्वज की कन्या वेदवती, त्रेता में रामपत्नी और द्वापर में द्रौपदी रूप में हुई। अग्निप्रवेश के समय निकलकर जब शङ्करजी से पतिव्यग्र सीता ने ५ बार पति दो पति दो यह कहा तो शङ्कर ने पांच पति होंगे यह वर

दिया। इसी से वह पाण्डवों की प्रिय स्त्री द्रौपदी बनी। भगवान् श्रीरामचन्द्रजी लंका में विभीषण को राज्य देकर अयोध्या लौट कर ११ हजार वर्ष तक राज्य कर वैकुण्ठ सिधार गये।

१५ धर्मध्वजपत्न्या माधव्यातुलस्याजन्म १६४

धर्मध्वज की पत्नी माधवी के पद्मिनी नामक मनोहर कन्या का जन्म हुआ। उसकी अप्रतिम शोभा से लोग उसकी तुलना करने में असमर्थ रहे इसलिये उसे तुलसी नाम दिया गया। उसने भी भगवान् नारायण मेरे पति हो इस कामना से बड़ी कठिन तपस्या की; गर्मी में पञ्चाग्नि तप, शरद में जल में रहकर और वर्षा में श्मशानों में रहकर उसने कड़ी साधना की। कई हजार वर्ष तक फल और जल पर रही, फिर पत्तों पर, फिर वायु पर, फिर निराहार रहकर उसने भगवान् ब्रह्मा को वर देने को प्रसन्न कर लिया। इसपर तुलसी ने पूर्वजन्म की कथा बतलाई और भगवान् नारायण को पति रूप में पाने की इच्छा कही। ब्रह्माने कहा भगवान् कृष्ण के अङ्ग से उत्पन्न सुदामा नामक गोप का शंखचूड़ के रूप में राक्षस वंश में जन्म हुआ है और उसको तुम तपस्या से मिलोगी और बाद में तुलसी का पेड़ बन सारे संसार में पवित्र बन जाओगी। ब्रह्मा ने फिर तुलसी को राधा मन्त्र की दीक्षा दी और उसे बारह वर्ष जप कर तुलसी द्वारा तपस्या से विराम लेना।

१६ तुलस्या सह शङ्खचूड़स्य मेलनं कथोपकथनञ्च १६७

शङ्खचूड़वृत्तान्तम्

जब तुलसी वन में एकान्तवास कर रही थी तो वह कामज्वर से पीड़ित रहने लगी। भगवान् विष्णु की तपस्या किया हुआ किसी शाप से मर्त्यलोक में दैत्य योनि पाकर शंखचूड़ श्रीकृष्ण के मन्त्र का जप कर विधि के विधान से वहांपर आ पहुंचा। इस प्रकार व्याकुल वह तुलसी अपने वस्त्र से अपना मुँह ढँककर

उस युवा पुरुष को बड़ी लज्जा से ध्यानपूर्वक देखने लगी। शङ्खचूड़ ने इस रमणी को देखकर एकान्त में आने का कारण पूछा और उसके सम्बन्ध में विस्तार से जानना चाहा। इसपर तुलसी ने व्यर्थ में ही किसी अज्ञात कुलवाली ललना से वार्तालाप करना उचित नही समझा और धर्मध्वज की पुत्री के रूप में तपस्या करने की इच्छा से वन में आने का कारण बतलाया। साथ ही तुलसी ने स्त्रीजीवन की भर्त्स्ना की। इसपर स्त्री के दो रूपों की विशद विवेचना कर लक्ष्मी, सरस्वती, दुर्गा, सावित्री, राधा रूप में स्त्रीमात्र को बताकर उनसे होनेवाले सम्पूर्ण संसार के अतीव उपकार गिनाये जो सात्विकतापूर्ण हैं। कृत्यारूप में स्त्रियां संसार के लिये घातक हैं। शंखचूड़ ने ब्रह्माजी की आज्ञा से विवाह करने का अपना प्रस्ताव रक्खा इसपर तुलसी ने योग्य वर कन्या से ही आगामी गृहस्थ जीवन अच्छा रहता है और वर के लक्षण बतलाये। जब सारी बात हो गईं तो ब्रह्माजी प्रगट हुए उन्होंने शङ्खचूड़ को तुलसी के साथ गान्धर्व विवाह करने की बात कही क्योंकि चतुर मनुष्य का चतुर दक्ष स्त्री के साथ सङ्गम गुणवान् ही होता है। इसपर तुलसी का शङ्खचूड़ के साथ गान्धर्व विधि से विवाह सम्पन्न हो गया वह उसे तपोवन से दूसरे स्थान पर ले गया। वह दुर्दान्त दैत्य अपने नगर में जाकर स्वच्छन्द विहार करने लगा। इससे देवतावृन्द बहुत व्यथित हुए और वे सीधे ब्रह्माजी के पास पहुंचे। ब्रह्माजी उनको साथ लेकर शिवलोक गये और शङ्करजी के साथ वे सभी वैकुण्ठलोक में भगवान् विष्णु के यहां अपनी पुकार सुनाने गये। भगवान् के द्वारपालों ने जब शिवजी एवं ब्रह्माजी के साथ देवताओं का आगमन सुनाया तो उनने सबको अन्दर लिवाने की आज्ञा दी। इसपर सभी विष्णु की सभा में चले गये और भगवान् के अलौकिक प्रभाव की प्रशंसा करते हुए अपने आने की बात ब्रह्माजी को अपना प्रतिनिधि बनाकर कही। तब भगवान् ने शङ्खचूड़ के पूर्वजन्म की कथा कही कि किस प्रकार वह सुदामा नामक गोप था और राधाजी के शाप से उसे दानवी योनि मिली। फिर राधा की बहुत

समझाया गया तो उन्होंने कहा कि एक आधे क्षण में शाप का पालन कर वह फिर आ जायगा परन्तु गोलोक का आधा क्षण तो एक मन्वन्तर के बराबर होता है। हे ब्रह्मन्! मेरी शूल लेजाकर शङ्कर उससे युद्धकर उसकी योनि छुड़ा दें तो परम कल्याण हो क्योंकि उसको यह वर दिया गया है कि जब तेरी पत्नी का सतीत्व भङ्ग होगा तो वहीं पर उसकी मृत्यु होजायगी। मैं तुलसी का सतीत्व भङ्ग करूँगा और उसके साथ ही तुलसी की योनि छूट जायगी तथा वह मेरी स्त्री बनेगी। तब विष्णु ने शिव को गदा दी और देवता लोग भारत में चले आये।

१७ शिवेन सह शङ्खचूड़स्य युद्धार्थं पुष्पदन्तप्रेषणम् १७६

ब्रह्माजीने शिवजी को शङ्खचूड़ के संहार के लिये नियुक्त कर अपने लोक में पदार्पण किया। इधर शङ्करजी चन्द्रभागानदी के किनारे अपने कार्य के लिये और देवताओं के उद्धार के लिये जुट गये। इसके लिये उन्होंने अपने पुष्पदन्त को शङ्खचूड़ के पास दूतरूप में भेजा। पुष्पदन्त ने बड़ी कठिनता से उसके राज दरबार में प्रवेश कर शङ्कर के अभिमत युद्ध के सन्देश को कहा। उसका संक्षेप सार यही था कि सम्पूर्ण देवताओं को उनका राज्य दो। श्रीहरि ने शङ्कर को शूल देकर भेजा है कि यदि वह दैत्येश्वर ना कर दे तो युद्ध करके उन्हें राज्य दिलवा दिया जाय। शङ्खचूड़ ने हँसकर प्रातःकाल आकर युद्ध के आह्वान को स्वीकार किया शङ्कर के साथ अब उनके पार्षद एवं गण लोग जुटने लगे। सभी अस्त्र, योगिनीवृन्द भूत, प्रेत, पिशाच, ब्रह्मराक्षस, वेताल, यक्ष, रक्ष और किन्नर लोग आगये। जब शङ्खचूड़ अपने अन्तःपुर में गया तब उस साध्वी तुलसी ने सब बातें सुनी तो उसने काल निकट है यह संकेत देकर सम्पूर्ण जीवन की सार बात करने को कहा शङ्ख चूड़ ने इसपर भगवान् काल की महिमा बताकर भगवान् कृष्ण के चरणों में दृढ़भक्ति करने का उपदेश दिया और अपने पूर्वजन्म की बात कहकर ढाढ़स बँधाया और दोनों आनन्द से केलि विलास में मग्न हो गये।

फिर शङ्करजी ने भगवत्परायण होकर हरिगुणगान का उपदेश दिया क्योंकि वही संसार की आधि और व्याधि को छुड़ानेवाली अचूक रामवाण औषधि है। तब शंखचूड़ ने बड़ी विनय से शंकर भगवान् की बातों को मानते हुए कहा कि देव दानवों का यह शक्ति प्राप्ति के लिये युद्ध अनादिकाल से होता आया है। इसमें कभी उनकी जय कभी हमारी जय चली आई है। परन्तु हमारे साथ सदा ही वहुत बुरा बर्ताव हुआ है। आपको हमारे साथ होड़ लगी है जीतने पर कोई वाहवाही नहीं हारने पर बुराई होगी। शङ्कर ने सारी बातों का उत्तर देकर या तो बात मानने को कहा अन्यथा युद्ध करने की ही धमकी दी।

प्रातःकाल होते-होते शङ्खचूड़ ने नित्यकृत्य से निवृत्त होकर अपने पुत्र को राज्याभिषिक्त किया और तरह-तरह के अपूर्व दान युद्धयात्रा की सिद्धि के लिये किये। उसने लम्बी चतुर्वाहिनी रथ, घोड़े, हाथी और पैदल सेना इकट्ठी की और पश्चिम समुद्र की ओर बढ़कर भगवान् शङ्कर से युद्धार्थ चन्द्रभागा नदी के किनारे साक्षात् उपस्थित हुआ। भगवान् शङ्कर ने शङ्खचूड़ के पूर्व वंश का इतिहास बताते हुए उस की गौरवगाथा गाई और देवताओं तथा दानवों दोनों को ही अपने-अपने अधिकार बराबर मिलें इसके लिये शङ्खचूड़ को कहा। उन्होंने उन्नति एवं अवनति दोनों को ही दिखाकर शङ्खचूड़ से देवतागणों के लिये अधिकार देने की बात कही।

शङ्खचूडने युद्ध के लिये पहले से ही पूरी तैयारी कर रक्खी थी। उसने शङ्कर को प्रणाम कर युद्ध की साजसज्जा से आगे आने को अपने अमात्य

लोगों को आज्ञा दी। अब बड़ा भयङ्कर युद्ध छिड़ गया। देवता लोग भाग गये केवल कार्त्तिकेयस्वामी अकेले बच रहे। उनका शङ्खचूड़ के साथ घोर युद्ध हुआ इसमें दोनों दलों ने महान् वीरत्व दिखलाया और नाना शक्तियाँ भी आ धमकी कई दिनों तक जमकर युद्ध हुआ। अन्त में, आकाशवाणी हुई कि हे कार्तिकेय! यह दानव शंखचूड़ तुम से अवध्य है मारा नहीं जासकता।

२० शिवशङ्खचूड़युद्धम् १८६

शङ्करजी ने अपने गणों के साथ युद्धक्षेत्र में प्रवेश किया। शिवजी को साष्टाङ्ग प्रणाम कर वह युद्ध के लिये तैयार हो गया। युद्ध एक वर्ष तक चला। दोनों दलों में वह अनिर्णयात्मक रूप में ही चलता रहा। तब भगवान् विष्णु वृद्ध ब्राह्मण का वेष धरकर आये और शङ्खचूड़ से कवच की भिक्षा मांगी। शङ्खचूड़ ने कवच उन्हें दे दिया। विष्णु भगवान् उस कवच को लेकर शङ्खचूड़ के रूप में तुलसी के पास आये और माया से उसमें गर्भाधान किया और शंकरजी ने श्रीत्रिशूल से उस दैत्य को भस्म कर दिया। वह भी दिव्य शरीर धरकर गोलोक में कृष्ण भगवान् के यहां चला गया। वहां फिर सुदामा गोप बनकर श्रीकृष्णका पार्षद होकर सानन्द रहने लगा। शंकरजी ने दानव के अस्थिपञ्जर को अपने त्रिशूल से समुद्र में डाल दिया उन्हीं की शंख जाति बनी। इसी कारण से शङ्ख का जल तीर्थ जल के समान पवित्र है और लक्ष्मीकारक है। अपना काम पूरा कर शङ्करजी शिवलोक पधार गये।

२१ तुलसीवृक्षस्य तत्पत्राणाञ्च माहात्म्यम् १९१
शालग्रामचक्रनिर्देशस्तद्गुणकथनञ्च १९५

नारद के यह पूछने पर कि तुलसी में नारायण ने किस रूप में गर्भाधान किया। इसपर नारायण ने कहा कि शङ्खचूड़ के पास से छल से कवच लेकर और

फिर उसीका रूप बनाकर तुलसी के द्वार पर विष्णु पहुंच गये। वहां उन्होंने विजय दुन्दुभी बजाई। जय शब्द सुनकर अपने पति को आया हुआ देख तुलसी अत्यन्त प्रसन्न हुई। उसने छद्मवेषधारी विष्णु से अपनी विजय का कारण पूछा। विष्णु ने सारी मनगढ़न्त कहकर ब्रह्मा द्वारा बीचबचाव होने से शङ्करजी के साथ समझौता हो गया और देवतागण को अपना इच्छित अधिकार मिल गया। ऐसा सुखद सम्वाद सुनाया। जब तुलसी के साथ भगवान् शङ्खचूड़ वेष में रमण करने लगे तो उसे कुछ दूसरा अनुभव हुआ और भगवान् को अपने सामने देखकर उसने शाप दिया कि आपने धर्म का भङ्ग कर मेरे स्वामी को मारा है आपमें दया की भावना तनिक भी नहीं है जाइये आप पाषाण (पत्थर) के समान दयाहीन हो जाइये। आपको अपने भक्त का भी थोड़ासा खयाल नहीं रहता अतः एक जन्म में आप अपनेको भी भूल जायेंगे। अब वह महासती जोर-जोर से रोने लगी और करुण विलाप करने लगी। इसपर भगवान् नारायण ने उसे बोध दिया हे साध्वि ! तुमने पूर्वजन्म में मेरे लिये तपस्या की और शङ्खचूड़ ने तेरे लिये की अब सारा फलाफल भोगकर वह चला गया और तुम्हारे तप का फल देना बाकी है सो अब इस शरीर को छोड़कर दिव्य देह से रास में लक्ष्मी के बराबर शोभा-वाली तुम बनोगी और तेरे केश पास के तुलसी के पुण्य वृक्ष होंगे। तेरे ही नामपर उन्हें भी तुलसी कहा जायगा। हे वरानने सभी पत्रपुष्पों में जो देवपूजा के योग्य होंगे स्वर्ग, मर्त्यलोक, पाताल, वैकुण्ठ और मेरे पास गोलोक में तुलसी के वृक्ष प्रधान रूप में काम में आयेंगे। जहां पुण्यतीर्थस्थान हैं वहीं तुलसी के वृक्ष होंगे।

तुलसीपत्रतोयञ्च मृत्युकाले च यो लभेत्।
स मुच्यते सर्वपापात् विष्णुलोकं स गच्छति ॥८२॥

तुलसी का प्रतिदिन सेवन और तुलसीकाष्ठमाला के जप से अनन्तकोटि पुण्य लाभ होता है। अपने लिये भगवान् विष्णु ने कहा कि गण्डकी नदी के तीर के पास शैलरूप में मैं रहूंगा। वहांपर नानारूप में मेरी शिला मिलेगी उसके पूजन

से सारे पाप ताप नष्ट हो जायेंगे। तुलसीदल का शालग्राम शिलापर चढ़ाने का महान् पुण्य है जो इसे नहीं चढ़ायेगा उसको सात जन्म तक अपनी स्त्री से विछोह (वियोग) रहेगा। इसी प्रकार शङ्ख के सम्बन्ध में भी हरिपूजा का अविभाज्य अङ्ग कहकर वहुत प्रशंसा की गई है। एक बार भी प्रेम होने से किसी का वियोग सहा नहीं जाता है। तुलसिके! तुमने तो एक मन्वन्तर तक उसके साथ गृहस्थ भोगा है तव तो विरह असह्य है ही परन्तु जाओ तुम्हारी पूर्वजन्म की साधना सफल हो। यह कहकर भगवान् चुप हो गये और तुलसी ने अपना शरीर छोड़कर दिव्य शरीर धारण किया और भगवान् के साथ ही वह वैकुण्ठ लोक में चली गई। यह संक्षेप में लक्ष्मी, सरस्वती गङ्गा और तुलसी की कथा हुई जो भगवान् की भार्या बनी और भगवान् के देह से गण्डकी नदी पर शालग्राम शिलायें बनीं जिनकी पूजा से आज भी भक्तगण इच्छित फल पाया करते हैं।

नारदजी के तुलसीपूजाविधान और स्तोत्र के सम्बन्ध में पूछने पर भगवान् नारायण ने जो तुलसी वीजमन्त्र, पूजाविधान और स्तोत्र बताया उसका संक्षेप से विवरण। तुलसी के दिव्य देह धारण करने पर भगवान् नारायण उसे भी लक्ष्मी के समान मानने लगे, इसपर लक्ष्मी ने अप्रसन्न होकर उसे मारा। इस अपमान से लज्जित होकर तुलसी अन्तर्हित हो गई। इसपर भगवान् स्वयं तुलसीवन में गये और तुलसी वीजाक्षर से सिद्धि प्राप्त की। इसके वाद तुलसी ध्यानस्तोत्र और पूजा का संक्षेप से विवरण है।

मद्र देश में महाराज अश्वपति एक प्रबल प्रतापी राजा हुए। उनके मालती नामकी प्रधान महिषी थी उसने गायत्री की आराधना वशिष्ठजी के उपदेश से की परन्तु कोई फल नहीं मिला। तब फिर सौ वर्ष तक राजा ने तपस्या की अन्तमें उसे आकाशवाणी हुई कि हे राजन् १० लाख गायत्री के जप करो। गायत्री जप का माहात्म्य। जपविधान में हाथ के द्वारा स्वतः करने के विशेष फल का वर्णन पराशरजी ने आकर बताया। गायत्री जपके पहले सन्ध्यावन्दन अवश्य कर्तव्य है अन्यथा फलहानि होती है। राजा ने तदनुसार सावित्री का जप और पूजा कर उसे प्रसन्न कर दिया उसका वर भी मिला। इसपर राजा अश्वपति के द्वारा गायत्री विधान का वर्णन।

राजा अश्वपति ने जब सावित्री को प्रसन्न किया तो वह प्रसन्न मुद्रा में स्वयं उपस्थित होकर राजा से बोली हे महाराज जो आपके मन में है और आपकी पत्नी को इच्छित है वह मैं दूँगी। तुम्हारी इच्छा पुत्र की है और स्त्री की इच्छा पुत्री की है। तुम दोनों की ही पुत्री और पुत्र की इच्छा पूर्ण होगी। तब राजा के अपनी स्त्री मालती से कन्या हुई उसका नाम भी सावित्री रक्खा गया। वह दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ती गई यहां तक कि उसकी विवाह के योग्य अवस्था हो गई। उसने भी द्युमत्सेन के पुत्र सत्यवान् को वरने का वर लिया था इसलिये राजा अश्वपति ने उसका विवाह सत्यवान् से कर दिया और खूब दहेज के साथ अपनी पुत्री को श्वसुर गृह भेज दिया। एक वर्ष बीतने पर सत्यवान् अपने पिता की आज्ञा से काठ इन्धन लाने के लिये वन में गया उसी के साथ दैवयोग से सावित्री भी थी।

दुर्भाग्य से वृक्ष से गिरकर सत्यवान् मर गया। उसी समय यम भी अंगूठे के समान उसके जीव को लेकर अपने लोक में जाने लगा तो अपने पीछे आती हुई सती सावित्री को देखा। यमराज के द्वारा कर्मफल का विस्तार से वर्णन करते हुए सावित्री को यमलोक में जाने से रोकना यम द्वारा सत्यवान् की आयु क्षीण थी अतः अब वह कर्मफल के भोगने के लिये जाता है उसके लिये रोकने को मना करना।

२५ कर्मविपाके सावित्रीप्रश्नः २०५

सावित्री ने शुभ कर्म और अशुभ कर्म क्या है इसको लेकर प्रश्न किया। यमराज ने वेदविहित कर्म को ही मङ्गलकर और शुभ बतलाया तथा अवैदिक कर्मों को अशुभ कहा। कर्म को निर्मूल करनेवाली हरिभक्ति ही सच्ची है, हरिभक्त ही मुक्त है उसे किसी प्रकार की जन्म-मृत्यु एवं व्याधि की अवस्था से थोड़ा भी भय नहीं रहता। मुक्ति दो प्रकार की है एक निर्वाण रूप और दूसरी हरिभक्ति स्वरूप। कर्मरूप भगवान् विष्णु बीजरूप से विराजमान हैं अतः जीव कर्मफल भोगता है और आत्मा निर्लिप्त रहती है। देही आत्मा का प्रतिबिम्ब है वही जीव है देह विनाशशील है और पाञ्चभौतिक है। यह सब शरीर पृथिवी, वायु, आकाश, जल और तेज रूप का विकार है। सृष्टिविधि में यह सब सूत्ररूप में रहते हैं इन सबका कारणरूप श्रीकृष्ण भगवान् स्वयं हैं इसे जानकर बराबर स्वस्थ रहकर जीवनचर्या बनाने से ही मनुष्यजीवन की सफलता है। इसपर सावित्री ने कहा आप तो बुद्धि के सागर हैं मुझे बतलाइये कि इस पतिदेव को छोड़कर मैं कहाँ जाऊँ। कृपया यह समझाइये कि किन कर्मों से जीव किन-किन योनियों को प्राप्त करता है, किनसे स्वर्ग मिलता है, किनसे नरकगामी होता है, किनसे भगवान् में भक्ति बढ़ती है और किन कर्मों से मुक्ति होती है। किस कर्म से रोगी और नीरोग होता है किससे दीर्घायु और अल्पायु होता है। अङ्गहीन, काना, अन्धा, बहरा, कृपण,

प्रमादी, लोभी, पागल और नरघातक किन-किन कर्मों से होता है ? किस कर्म से चारों प्रकार की मुक्ति मिलती है ? किससे ब्राह्मणत्व और तपस्वी जीवन मिलता है ? स्वर्ग के भोग और वैकुण्ठ किनसे मिलते हैं ? गोलोक किस कर्म से मिलता है ? नरक कितने प्रकार का है ? उसके भेद बतलाइये। कौन नरकगामी होता है और कितने समयतक वहांपर रहता है। पापियों को किन-किन कर्मों से व्याधियाँ हो जाती हैं आदि-आदि मुझे समझाइये।

२५ कर्मविपाके कर्मानुरूपस्थानगमनम् २०७

सावित्री का वचन सुनकर विस्मित होकर यम ने कहा हे सावित्री १२ वर्ष की कन्या होकर भी तुम्हारा ज्ञान अपूर्व है मानो पहले के विद्वान् योगियों से भी बढ़ी चढ़ी हो अतः मैं प्रसन्न हूं और जैसे पूर्वकाल के असंख्य स्त्री पुरुषों ने जीवन धर्ममय बनाकर आदर्श रक्खा वैसे तुम भी सत्यवान् के साथ सौभाग्यशीला बनो अब तुम्हें जो दूसरा वर इच्छित हो वह कहो। सावित्री ने इसपर कहा कि मेरे पति के ही औरस से मेरे १०० पुत्र हों, मेरे पिता के सौ पुत्र और श्वशुर के आंखें हो जाय और मेरा गृहस्थजीवन सुखपूर्वक व्यतीत होनेपर मैं अपने पतिदेव सत्यवान् के साथ एक लक्ष वर्ष के बाद विष्णुलोक में चली जाऊँ। इसके बाद आप क्रमशः मुझे जीवकर्मविपाक और विश्वविस्तारबीज विशेष रूप से समझाइये।

यमराज ने तथास्तु कहकर जीवकर्मविपाक बताना आरम्भ किया। भारत में जन्म लेने से ही शुभ और अशुभ कर्मों का भोग भोगना पड़ता है क्योंकि यही पुण्यक्षेत्र है और नहीं। देवता, राक्षस, गन्धर्व, दानव और मनुष्य ये कर्म भोगने की योनियाँ हैं परन्तु सभी समजीवी नहीं हैं। अच्छे कर्मों के प्रभाव से ऊँची योनियाँ मिलती हैं बुरे कर्मों के प्रभाव से नीच योनियाँ प्राप्त होती हैं। कर्म को उखाड़ फेंकने में दो प्रकार की युक्ति बतलाई गई है। एक निर्वाण परमपद और दूसरी कृष्णभगवान् की सेवा। जीव कर्म न करने से रोगी और शुभ कर्म

करने से स्वस्थ होता है। कुत्सित कर्म से अन्धा, कूबड़ा, लूला, लंगड़ा बनता है इसी प्रकार सबसे उत्कृष्ट कर्मों के करने से नई नई सिद्धियाँ प्राप्त करता है। हे सावित्री ! मनुष्यजाति में जन्म दुर्लभ है वह भी फिर भारत में तथा श्रेष्ठ ब्राह्मण जाति में तो और भी कठिन; सुकर्म करने में यह जाति ही सबसे उत्तम कही गई है। भारत में विष्णुभक्त द्विज की तो शोभा ही मत पूछो वह भी दो प्रकार का है सकाम और निष्काम। निष्काम विष्णुभक्त का मार्ग प्रशस्त है, उसे कहीं भी रुकावट नहीं। सकाम मनुष्य को कर्म का भोग भोगने को बार बार जन्म लेनेको आना होता है अतः निष्काम भक्ति ही ऊँची है। भगवान् कृष्ण के आराधक गोलोक में जाते हैं और विष्णु के भक्त वैकुण्ठ में। सकाम भक्तिवाले को बार बार जन्म लेकर आना पड़ता है। फिर यम ने भिन्न-भिन्न दानों की भूरि-भूरि प्रशंसा कर उनकी फलश्रुति बतलाई। यम ने बतलाया कि आरब्ध कर्मों का भोग होने से ही क्षय होता है। हाँ, यदि देवतीर्थ में कही मनुष्य की परम गति हुई तो कायव्यूह से वह शुद्ध हो जाता है।

२७ शुभकर्मविपाक प्रकथनम् २११

सावित्री ने स्वर्गादि की प्राप्ति के लिये जो कर्म पूछने चाहे उनका यम ने विस्तार से अन्नदान, धेनुदान, वृषदान, शालग्राम शिला का दान, छत्र, पादुका, शय्या, दीपक, गजदान, अश्वदान, पालकी, पंखा, श्वेत चँवर, सप्ताचल, धान्यादि का जो दान करता है वह विष्णुलोक में जाकर कई लाख वर्षों तक वहाँपर निवास करता है।

सततं श्री हरेर्नाम भारते यो जपेन्नरः। स एव चिरजीवी च ततो मृत्युः पलायते ॥

इसके बाद तिलदान, विवाह के लिये आवश्यक सामग्री का दान, फल के वृक्ष का दान, फलदान, और अपने व्यवहार में आनेवाली सम्पूर्ण वस्तुओं का दान जो योग्य अधिकारी को देता है उसकी परमगति होती है और ऊंची गति

को प्राप्त कर विष्णुलोक में जाता है। फिर भूमिदान, स्वर्णदान, वापी, कूप तड़ाग और धर्मशाला आदि के निर्माण का जो पुण्य करता है वह कल्पान्तजीवी होकर महाराजराजेश्वर बनता है उसको विष्णुलोक की प्राप्ति होती है। यथाशक्ति दानादि करसकने में यदि कोई व्यक्ति असमर्थ है तो उसे भगवान् विष्णु के दिव्य नामों का जप कर अपना ऐहिक कल्याण करना चाहिये। संसार में सभी नाश को प्राप्त होते हैं, परन्तु विष्णुभक्त कभी नष्ट नहीं होते। कार्तिक मास में जो तुलसी और भगवान् को दीप दान करता है उसे अक्षय पुण्य का लाभ मिलता है। माघ में गङ्गा स्नान जब अरुणोदय हो उस समय करनेवाला मनुष्य ६० हजार वर्ष तक भगवान् के मन्दिर में आनन्द करता है। फिर बारह मासों के नाना कृत्यों का वर्णन कर उनके फल बतलाये हैं। भगवान् कृष्ण के गुणानुवाद के साथ यम ने सत्यवान् के साथ सावित्री को लौट जाने की आज्ञा दी।

२८ सावित्रीकृतं यमस्तोत्रम् २१८

सावित्री ने यम के द्वारा भगवान् कृष्ण के गुणानुवाद को सुनकर आँखों में आँसू बहाते हुए गद्गद् होकर भगवान् हरि के नामाक्षर की अमित महिमा स्वयं अपनेआप गाई। सावित्री जैसी साध्वी के द्वारा कृष्ण गुणों की प्रशंसा स्वाभाविक है। उसने कृष्णभक्ति और भगवन्नाम कीर्तन से अपने कुल का उद्धार होना कहा और सुनने तथा बोलनेवाले सभी को समान रूप से उनके जन्म, मृत्यु और बुढ़ापा को हरनेवाला होने के कारण लाभदायक बतलाया। भगवान् के कीर्त्तन से दान, व्रत, तपस्या और योगाभ्यास की सिद्धियाँ भी तुच्छ (छोटी) जान पड़ती हैं। मुक्ति, अमरता और सम्पूर्ण सिद्धियां भी श्रीकृष्ण भक्ति की १६ वीं कला की भी बराबरी नहीं कर सकतीं। फिर अशुभ कर्मविपाक के सम्बन्ध में पूछकर उसने वेदोक्त स्तोत्र से यमराज की स्तुति की। इस स्तुति को प्रातः पढ़नेवाले को किसी प्रकार का पाप-ताप नहीं सताता।

यम ने सावित्री को विष्णुमन्त्र की दीक्षा विधिपूर्वक देकर कर्माशुभविपाक के सम्बन्ध में विस्तार से बतलाया। कुकर्मी को सदा नरक की गति मिलती है। इसके सम्बन्ध में नाना प्रकार के नरककुण्डों को विस्तार से पुराणों में जहाँ-जहाँ वर्णन आया है उसे साररूप में यमराज ने सावित्री को बतलाया। ८०६ कुण्ड हैं, उनमें अग्निकुण्ड, तप्तकुण्ड, क्षारकुण्ड, विट्कुण्ड, मूत्रकुण्ड, श्लेष्मकुण्ड, गरकुण्ड, दूषिकाकुण्ड, वसाकुण्ड, शुक्रकुण्ड, मस्रृक् कुण्ड, मश्रुकुण्ड और कान, आंख, आदि के मलों के कई कुण्ड, मज्जाकुण्ड मांसकुण्ड, नखकुण्ड, लोमकुण्ड, केशकुण्ड, और दुःखद अस्थि कुण्ड, ताम्रकुण्ड, लौहकुण्ड, तीक्ष्णकण्टककुण्ड, विषकुण्ड, घर्मकुण्ड (ताप का कुण्ड) तप्तसुराकुण्ड, प्रतप्ततैलकुण्ड, दन्तकुण्ड, कृमिकुण्ड पूयकुण्ड, सर्पकुण्ड, मशककुण्ड, दशकुण्ड, गरलकुण्ड, वज्रदंष्ट्री जीवों का कुण्ड, बिच्छुओं का कुण्ड, शरकुण्ड, शूल कुण्ड, खड्गकुण्ड, गोलकुण्ड, नक्रकुण्ड, काककुण्ड, सञ्चालकुण्ड, वाजकुण्ड, दुस्तर-बन्धककुण्ड, तप्तपाषाणकुण्ड, तीक्ष्णपाषाणकुण्ड, लार का कुण्ड, असिकुण्ड, चूर्ण-कुण्ड, चक्रकुण्ड, वज्रकुण्ड, कूर्मकुण्ड, ज्वालाकुण्ड, भस्मकुण्ड, पूतिकुण्ड, तप्तशत्त्यप्यसी-पात्र, क्षुरधारकुण्ड, सूचीमुखकुण्ड, गोधामुख, नक्रमुख, गजदंश, गोमुख, कुम्भीपाक, कालसूत्रनरक, अवटोद, अरुन्तुद पांशुभोज, पाशवेष्ट, शूलप्रोत, उल्कामुख, अन्धकूप, वेधन, दण्डताड़न, जालबन्ध, देहचूर्ण, दलन, शोषणङ्कार, सर्पज्वालामुख, जिम्भ, धूमान्ध, और नागवेष्टन इन कुण्डों का विवरण दिया तथा यहाँपर किङ्कर लोक बराबर रक्षक रूप से नियुक्त हैं। वे अपने हाथ में दण्ड, शक्ति, शूल, पाश, गदा लेकर मदोन्मत्त होकर निर्दयता से पापी जीवों के पूर्वकृत पापों का भोग करवाते हैं। आगे किन-किन पापों से किन-किन कुण्डों का वास होता है यह बताया जायगा।

संसार में जो भगवान् की सेवा में लगजाता है मन, बुद्धि और शरीर से शुद्ध है, योगी, सिद्ध और व्रती, तपस्वी एवं ब्रह्मचारी है वह कभी भी नरकगामी नहीं होता है। अपने बन्धुबान्धवों को जो कड़ी वाणी से और दुष्टता से व्यवहार करता है वह अग्निकुण्ड को जाता है। शरीर में जितने लोम हैं उतनी संख्या के वर्षों तक उसमें नरक भोगकर तीन जन्मों तक पशुयोनि पाता है। भूखे प्यासे ब्राह्मण को जो अपने घरपर अतिथि सत्कार के अनुरूप भोजन नहीं कराता, वह तप्तकुण्ड का गामी होता है और शरीर के जितने रोम हैं उतने वर्षों तक रहकर फिर सात जन्म तक पक्षी होता है। रविवार, अर्क की संक्रान्ति, अमावास्या और श्राद्ध के दिन जो कोई अपने कपड़ों में क्षार वा साबुन लगाकर सफाई करता है वह क्षारकुण्ड में जितने कपड़े में सूत के धागे हैं उतने वर्ष तक रहता है बाद में धोबी की योनि पाता है। अपनी दी गई या दूसरे की दी गई ब्राह्मण की वृत्ति को जो हरता है वह ६० हजार वर्ष तक विट् कुण्ड में रहता है। वही उसका भोजन होता है फिर ६० हजार वर्ष तक पृथ्वी पर विष्ठा का कीड़ा बनता है। दूसरे के बनाये गये तालाब पर यदि तड़ाग बनाया जाता है तो दैवदोष का अपराध होने से वह मूत्र कुण्ड में जाता है। जितनी पृथ्वी की रेणुका हैं उतने वर्ष तक उसे खाने वाला कीड़ा बनकर वहीं रहता है, फिर मगरमच्छ की योनि सात जन्म तक लेकर उससे छुटकारा पाता है। अकेला यदि कोई मिष्टान्न खाता है तो श्लेष्म कुण्ड में जाता है और पूरे सौ वर्ष तक उसे खाते हुए अपना जीवन बिताता है फिर सौ वर्ष तक भारत में प्रेत योनि में जाता है श्लेष्म, मूत्र, गर को खाकर फिर छूटता है। पिता, माता, गुरु, स्त्री, पुत्र और अपनी पुत्री को अनाथावस्था में जो पालन नहीं करता वह गर कुण्ड में पड़ता है और वहीं सहस्र वर्ष तक रहकर फिर भूत योनि सौ वर्ष तक भोगकर शुद्ध बनता है। जो अतिथि को देखकर

मुह मोड़ता है या टेढ़ी नजर से अपमान करता है उस पापी के यहाँ देवता और पितर जल नहीं लेते। ब्रह्महत्यादि जैसे जघन्य पापों का फल इसी जीवन में मिलता है। अन्त में दूषिका कुण्ड में गिरने से शुद्ध होता है ऐसा आदमी सात जन्म तक दरिद्र बनता है। ब्राह्मण को दिया हुआ धन यदि दूसरे को दिया जाय तो उसको देनेवाला २०० वर्ष तक वसाकुण्ड में गिरता है फिर चाण्डाल योनि में तीन जन्म रहकर शुद्ध होता है और भारत में गिरगिट योनि सात जन्म तक लेकर फिर दरिद्र और अल्पायु होता है। स्त्री-पुरुष को रज या पुरुष-स्त्री को यदि शुक्र पिलाता है तो शुक्र कुण्ड में गिरता है। १०० वर्ष तक उस कुण्ड का कीड़ा बनकर फिर पृथ्वी का कीड़ा बनता है और शुद्ध होता है बाद में सात जन्म तक व्याध के यहाँ पैदा होकर क्रम से शुद्ध होता है। भगवान् के भक्त को जो भक्ति से विह्वल और अश्रुपातादि से गद्गद हो गया हो यदि कोई उसकी हँसी करता है तो १०० वर्ष तक अश्रुकुण्ड में कीड़ा होता है फिर तीन जन्म तक चाण्डाल होकर शुद्ध होता है। सदा दुष्टता करनेवाला १० वर्ष तक शरीर के मलस्थानों के कुण्ड में गिरता है फिर तीन जन्म में गधा और तीन जन्म में शृगाल (सियार) बनकर शुद्ध होता है। जो बहरे की हँसी या अपमान तथा निन्दा करता है वह कानों के मल के कुण्ड में १०० वर्ष तक रहता है और फिर सात जन्म तक दरिद्री और बहरा होता है और सात जन्म तक अङ्गहीन होकर शुद्ध होता है। जो लोभ से अपना पालन करने के लिये जीव को मारता है वह लाख वर्ष तक मज्जा कुण्ड में कीड़ा होता है। अपनी कन्या का पालन कर बेचनेवाला मांस कुण्ड में पड़ता है, ऐसा व्यक्ति ६० हजार वर्ष तक व्याध होता है फिर वराह, कुत्ता, मेढ़क, जोंक, और कौआ सात-सात जन्म तक होकर शुद्ध होता है। व्रत, उपवास, श्राद्धादि में संयम न कर क्षौर कर्म करता है वह कभी शुद्ध नहीं होता उसे कहीं भी कर्म करने का अधिकार नहीं। इस प्रकार सम्पूर्ण पापों के नाना कुण्डों की गति और परिणाम का विस्तार से वर्णन किया गया है। पाप पुण्य के वास्तव और अतिदेशों के सम्बन्ध

में सावित्री ने जब यम से पूछा तो उसे यह बतलाया गया कि अतिदेशिक से वास्तव का चार गुना हत्या अधिक पाप का फल देती है। जो व्यक्ति किसी भी देवता के मन्त्र की दीक्षा नहीं लेता वह अदीक्षित है उसका कहीं भी अधिकार नहीं। प्रमत्त, पतित आदि के भेद का वर्णन।

३१ सावित्र्युपाख्याने पापिकुण्डनिर्णयः २३०

हरि सेवा के बिना कर्म का खण्डन नहीं होता। शुभकर्म स्वर्ग का जनक है और कुकर्म नरक का जनक है। पुश्चल्यान्न, वेश्यान्न आदि के खानेवाली की गतियाँ बतलाई और अगम्यागमन का सेवन करनेवाले का वज्र पाप नया योनि भोगने पर भी नहीं छूटता इसलिये सदा इनसे बचते रहना मनुष्य का परम धर्म है। पृथ्वी, वायु, आकाश, तेज और तोय देही जनके शरीरों के मूल हैं और सृष्टिविधि में ये ही कारण हैं। पृथिवी आदि पञ्चभूतों से देह निर्मित है वह नश्वर और कृत्रिम है तथा भस्मीभूत हो जाता है। वृद्ध के अङ्गुष्ठ के प्रमाणवाला जीव पुरुषाकार में सूक्ष्म देह धारण कर नाना योनियों में जाता है। यह सूक्ष्म देह न शस्त्र से छिदता है न अग्नि से जलता है न जल में लोहित है। यही भोग योनियों में जाता हुआ प्रभु की कृपा से प्रभुशरण होकर भगवान् के रूप में एकाकार हो जाता है। भक्तों को चार प्रकार की मुक्तियाँ प्राप्त होती हैं उसका निरूपण किया और निष्काम भक्ति की सर्वत्र प्रशंसा की। तदनन्तर सत्यवान् को जिलाकर यमराज ने जाने की तैयारी की। सज्जन पुरुष का वियोग सदा ही दुःखदायी होता है दोनों ही इस सज्जन सङ्गम से प्रभावित हुए और विदा के समय दुःखी होकर रोने लगे। तब यमराज ने सावित्री को कहा कि लाख वर्ष तक भारत में कुशलपूर्वक जीवन बिताकर अन्त में गोलोक में जाओगी। अब तुम घर जाकर सावित्री का व्रत करो। चौदह वर्ष तक ज्येष्ठ मास की कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को यह सावित्री का मङ्गल व्रत है। भाद्र शुक्ल की अष्टमी को महालक्ष्मी का व्रत आठ वर्ष

तक लगातार करने से भगवान् में भक्ति होकर अन्त में उनके लोक की प्राप्ति होती है। प्रति मास प्रति मङ्गलवार को शुक्लपक्ष की षष्ठी को मङ्गल चण्डी के व्रत का विधान है और इसी प्रकार आषाढ़ की संक्रान्ति में सर्वसिद्धि देनेवाली मनसा तथा कार्तिक शुक्लपक्ष में रासेश्वरी राधा का व्रत करना और प्रतिमास की शुक्लपक्ष की अष्टमी को विष्णुमाया भगवती दुर्गा का उपवास धन, सन्तान और सौभाग्य को देनेवाला है। इसे तुम अवश्य करना इस प्रकार कह कर यमराजअपने लोक में तथा सावित्री सत्यवान् के साथ अपने घर को चली गई। सावित्री के पिता को पुत्रों की प्राप्त हुई और उसके श्वसुर को आँखों की ज्योति मिल गई वह स्वनाम-धन्या पतिव्रता एक लाख वर्ष तक सुख से गृहस्थ जीवन बिताकर नित्यलोक गोलोक में चली गई। सूर्य की अधिदेवी तथा सूर्य मन्त्रों की अधिष्ठात्री देवी होने से उसका नाम सावित्री सार्थक हुआ।

३२ यमसावित्री सम्वादवर्णनम् २३४

फिर सावित्री ने इन नरककुण्डों में न जाने का उपाय पूछा और कहा कि भौतिक देह के जलजाने के बाद मनुष्य कैसे और किस शरीर से शुभ और अशुभ कर्मों का भोग भोगते हैं फिर दीर्घकाल तक भोग भोगने पर भी देह का नाश नहीं होता है आदि बातें मुझे संक्षेप से बतलाइये। सम्पूर्ण चारों वेद, धर्मसंहिता, धर्मों का सार, पुराण, इतिहास, पञ्चरात्र आदि में तथा वेदाङ्ग और १८ विद्याओं में सम्पूर्ण इष्टों का सार मङ्गलरूप कृष्णसेवन बतलाया है। यह भगवत्कीर्तन, सेवन, भजन, ध्यान, मनुष्य का जन्म, मृत्यु, बुढ़ापा, रोग, शोक और सन्ताप से छुटकारा करवा देता है। यह सर्वमङ्गलरूप है, परम आनन्द का कारण है, भक्तिरूपी वृक्ष का यह अङ्कुर है और सम्पूर्ण कर्मवृक्ष को जड़मूल से छेदन करनेवाला है। नरक कुण्ड, यमदूत, यम और यम के नौकरों को कृष्ण भक्त कभी नहीं देखते। तीन काल की सन्ध्या करनेवाले आचार में लगे ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य का मार्ग प्रशस्त है।

३३ **कुण्डानां मानलक्षणवर्णनम्** २३५

भिन्न-भिन्न नरककुण्डों की लम्बाई चौड़ाई और गहराई का वर्णन।

३४ **श्रीकृष्णगुणकीर्तनम्** २४१

सावित्री ने जब कृष्णगुणकीर्तन के सम्बन्ध में यमराज से पूछा तो भगवान् के नामगुणकीर्तन का जो सुन्दर निरूपण किया वह पठनीय है। सावित्री ने अपनी कमी बतलाते हुए धर्मज्ञान से शून्य होने की बात कही और अज्ञान को मिटानेवाले कृष्णकीर्तन ज्ञान की पूरी कथा के लिये आग्रह किया। यम ने पूर्वपुरुषों की लम्बी सूची देकर कृष्णभक्तों का गुणानुवाद करते हुए इस शास्त्र के प्रवर्तकों का नाम निर्देश किया उन्होंने सूर्य से प्राप्त भुक्ति मुक्ति के कारण भगवान् कृष्ण के गुणानुवाद का सविस्तर वर्णन किया। भगवान् विष्णु सम्पूर्ण सृष्टि के मूल हैं पालनकर्ता हैं और संहारक हैं इनके आदेश से ही सृष्टि में सम्पूर्ण कार्यक्रम विधिविधान से चलता है। सृष्टि, स्थिति और लय भी उनके द्वारा होता है। भगवान् में ही सारा ब्रह्माण्ड समाया हुआ है।

३५ **लक्ष्म्युपाख्यानम्** २४६

नारदजी ने लक्ष्मीजी के उपाख्यान के लिये भगवान् नारायण से प्रार्थना की। तब भगवान् नारायण ने लक्ष्मीजी के उपाख्यान को विस्तार से बतलाया। सृष्टि के आरम्भ में श्रीकृष्ण के वामांश से रासमण्डल में इस भगवती का आविर्भाव हुआ। वैकुण्ठ में नारायण विष्णु चतुर्भुज और गोलोक में भगवान् श्रीकृष्ण द्विभुज राधा और गोप गोपियों के साथ आनन्द से विहार करते हैं। इन्हीं की कला समस्त संसार में स्त्रीमात्र में विराजमान हैं। सम्पूर्ण संसार में इस देवी की पूजा होती है। सर्व प्रथम क्षीर समुद्र में विष्णु ने इन्हें पूजा फिर

गन्धर्वादि तथा नागों ने पाताल में इनकी पूजाकी। भाद्रपद की शुक्लपक्ष की अष्टमी को ब्रह्मा ने एक पक्ष तक भक्ति से इनकी पूजा की। चैत्र, पौष और भाद्रपद के मङ्गलवार के दिन भगवान् विष्णु द्वारा निर्मित इस महालक्ष्मी देवी की पूजा तीनों लोकों में प्रसिद्ध हो गई।। पौष मास की संक्रान्ति में मनु ने इस भुवन-पावनी की पूजा की जो अबतक भी पूजी जाती है और सद्यः फल देती है। राजेन्द्र मङ्गल ने इसे पूजा। केदार, नल, नील, सुबल सभी ने इसकी अपने लिये पूजा की। ध्रुव ने भी, जो उत्तानपाद का पुत्र था, इसे पूजा। कश्यप, दक्ष, मनु, विवस्वान्, प्रियव्रत, चन्द्र, कुबेर, वायु, यम, अग्नि, वरुण सबने अपने-अपने इच्छित फल पाने के लिये भगवती की साक्षात् पूजा की। इस प्रकार यह सम्पूर्ण ऐश्वर्य, विभूति और सम्पत्ति को देनेवाली है।

२६ इन्द्रम्प्रतिदुर्वाससःशापः २४८

मुनीन्द्रसुरेन्द्रसम्वादः २५१

भगवती महालक्ष्मीजी पृथिवी पर सिन्धु कन्या किस प्रकार हुई इस प्रश्न के उत्तर में नारायण भगवान् ने इन्द्र को दुर्वासा के द्वारा शाप देनेपर जब उसकी श्री जाकर वैकुण्ठ में महालक्ष्मी में मिल गई तो देवता लोग दुःखित होकर ब्रह्माजी के यहाँ गये और ब्रह्माजी के नेतृत्व में भगवान् नारायण की शरण में जाकर उनसे अपनी कष्टकथा सुनाई, तब विष्णु की आज्ञा से देवराज इन्द्र की सम्पत्स्वरूपिणी लक्ष्मी सिन्धु की कन्या हुई और क्षीरसागर के मन्थन के समय लक्ष्मी से वर पाकर लक्ष्मी को वहाँ देखा। दुर्वासा के शाप का कारण पूछने पर भगवान् नारायण ने कहा कि रम्भा के साथ इन्द्र मद्यपान कर रमण करता था। दुर्वासा आये और प्रणाम करते हुए इन्द्रको पारिजात पुष्प से शुभाशीर्वाद दिया और प्रमादी इन्द्र ने यह पुष्प अपने हाथी के मस्तक पर धर दिया जिससे वह शोभा-

गुरु अन्यत्र चला गया इसी पर इन्द्रको शाप दिया। संसार के आवागमन से छुड़ाने का उपाय दुर्वासा ने इन्द्र को भगवान् विष्णु के मन्त्र की उपासना बताया। जन्म से लेकर मरण पर्यन्त सभी अवस्थाओं का वर्णन और सभी का स्वरूप वर्णन।

२७ हरिगुणश्रवणादिन्द्रस्यज्ञानप्राप्तिः २५७

भगवान् हरि के गुणों को सुनकर इन्द्र को स्वरूप का ज्ञान हुआ और वैराग्य में अपना मन लगाया और अमरावती में जाकर उसकी सारी दुर्दशा देखी। तब भगवान् देवगुरु बृहस्पति के पास आकर उसने सारी अव्यस्था सुनाई। बृहस्पति ने इन्द्र को सान्त्वना देते हुए पूर्वजन्म के सुकृत से सम्पत्ति और दुष्कृत से विपत्ति आती है। पहिये की धुरी के समान उत्थान पतन सभी के साथ रहता है। विना भोगे हुए कर्म करोड़ों जन्मतक भी क्षीण नहीं होते उनका भोग अवश्यम्भावी है।

नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि।
अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ॥१७॥

सामवेद की कौथुम शाखा में इसका प्रतिपादन श्रीकृष्ण भगवान् ने विस्तार से किया है। कालभेद, देशभेद, और पात्रभेद से कर्मों की न्यूनता और अधिकता होती रहती है; जैसे, सामान्य दिन में विप्र को दान देने से समफल होता है। अमावास्या, रवि की संक्रान्ति में उसीका सौगुना फल होता है। चातुर्मास्य की पौणमासी को अनन्त फल होता है। सूर्यग्रहण के समय उसी दान का करोड़गुना फल सूर्यग्रहण में उसका दशगुना फल होता है। सामान्य देश में दान का सामान्य फल विशेष देश में जैसे—गंगा देश में दश, सौ और अनन्त गुना फल होजाता है। सामान्य ब्राह्मण को देने से सामान्य फल होता है व जितेन्द्रिय पण्डित को देने से लाखगुना फल होता है। जैसे—दण्ड, सूत्र,

शराव, जल और चक्र से मिट्टी को लेकर कुम्भ (घड़ा) बनता है यही बात कर्म

पर लागू होती है। जो विपत्ति में भगवान् को भजता है उसे कोई भी भय नहीं विपत्ति भी सम्पत्ति का रूप लेलेती है।

सभी देवताओं के साथ भगवान् हरि कृष्णस्मरण करते हुए ब्रह्माजी के यहाँ गये और ब्रह्माजी ने सबका अभिवादन कर देवराज इन्द्र से उनके विशेष शुद्ध कुल की प्रशंसा करते हुए यह आपत्ति क्यों आई इसका कारण पूछा क्योंकि जनः पैतृकदोषेण दोषान्मातामहस्य च। गुरोर्दोषान्नीतिदोषैर्हरिद्वेषी भवेद्ध्रुवम्॥

शिवजी ने जिस पुष्प से भगवान् की पूजा की उस पुष्प को महर्षि दुर्वासा ने आपको दिया और आपने उसका अनादर किया। इसलिये दैव से आप वञ्चित होकर कष्टदशा को प्राप्त हुए हो। अब भगवान् श्रीलक्ष्मीपति के सिवा कोई भी आपकी रक्षा करनेवाला नहीं है अतः वहाँ जाओ। तब ब्रह्मा उन सब देवताओं के साथ इन्द्र को विष्णुलोक में, जहाँ लक्ष्मीजी के साथ वे विराजमान थे, लेगये और सारा वृत्तान्त अथ से इति तक भगवान् विष्णु को निवेदन किया। भगवान् विष्णु ने अभय करते हुए कहा कि जो कोई मेरे भक्त को रुष्ट करता है उसके घरमें पद्मा के साथ मैं नहीं रहता। जो मेरी भक्ति से दूर है, मेरे नाम को बेचता है और अतिथि सत्कार जहाँ नहीं होता उन गृहस्थों के यहाँ लक्ष्मी नहीं रहती। ब्राह्मण निन्दक, धर्मशून्य, भगवान् विष्णु की भक्ति से हीन मनुष्य से लक्ष्मी कोसों दूर रहती है। सूर्योदय में दो वार खानेवाला, दिनमें सोनेवाला और मैथुन करनेवाले के यहाँ मेरी लक्ष्मी नहीं टिकती। शिवपूजा, देवपूजा, अतिथिपूजा और दुर्गा की पूजा जहाँ होती है वहाँ लक्ष्मी स्थिर होकर निवास करती है। लक्ष्मी को भगवान् ने क्षीरसागर में जन्म लेने की आज्ञा दी और देवताओं ने क्षीरसागर को मन्थन कर चौदह रत्न समेत लक्ष्मीजी को प्राप्त किया।

३९ लक्ष्मीनाशात्पुनस्तत्प्राप्तये इन्द्रेण लक्ष्म्याः पूजनम् २६२

भगवान् हरि के गुणानुवाद सुनकर इन्द्र ने लक्ष्मीजी के ध्यान, स्तोत्र आदि के सम्बन्ध में प्रश्न किया। श्रीनारायण ने देवराज इन्द्र को पूजा प्रकार कहा उसने गणेश, दिनेश (सूर्य), अग्नि, विष्णु, शिव, पार्वती की पूजा की और महालक्ष्मी का आवाहन किया। उन्होंने सहस्रदल पद्म की कर्णिका में निवास करनेवाली महालक्ष्मी भगवती का ब्रह्माजी की आज्ञा से षोड़श उपचारों से पूजन किया। इस मूल मन्त्र से भगवती का जप किया। "लक्ष्मीर्माया कामवाणी कमलवासिनी स्वाहा" इस वैदिक द्वादशाक्षर मन्त्रराज से भगवती को प्रसन्न करते ही वे साक्षात् उपस्थित हो गईं। इन्द्र ने गद्‌गद् अश्रुओं की धारा से महालक्ष्मीजी की सच्चे भाव से स्तुति की। इस देवराज इन्द्र के द्वारा किये गये सिद्ध स्तोत्र का जो तीन सन्ध्या तक प्रतिदिन पाठ करता है वह राजराजेश्वर कुवेर के समान धनी होता है। "पञ्चलक्षजपेनैव स्तोत्रसिद्धिर्भवेन्नृणाम्" एक मास तक इस सिद्ध स्तोत्र का लगातार पाठ करनेवाला महासुखी राजेन्द्र होता है।

४० स्वाहोपाख्यानम् २६७

भगवान् नारायण से इन्द्र के द्वारा वेदोक्त स्वाहा के उपाख्यान पूछने पर उन्होंने कहा। सृष्टि के आदिकाल में देवताओं ने अपने आहार के लिये निवेदन किया। ब्रह्मा उन्हें भगवान् के पास ले गये। भगवान् यज्ञरूप में उपस्थित होकर सभी द्विजों के भक्तिपूर्वक दिये गये हविर्दान को ग्रहण किया। परन्तु वह यज्ञभाग देवताओं को नहीं मिला। फिर वे ब्रह्मा के पास आकर अपनी कष्टकथा सुनाने लगे। ब्रह्मा द्वारा प्रकृति की स्तुति। प्रसन्न हुई प्रकृति ने ब्रह्मा से कहा कि वर मांगो। ब्रह्मा ने कहा कि अग्नि में दाहिका शक्ति तुम्हारी ही है इसलिये तुम्हारे नाम से जो आहुति दे वह देवों को मिले यही प्रार्थना है। स्वाहा का निज अभिप्राय का

४३ षष्ठ्युत्पत्तिवर्णनम् २७८

षष्ठी का उपाख्यान का कथन। षष्ठी देवी की उत्पत्ति प्रकृति के छठे अंश से है। स्वायम्भुव मनु का पुत्र प्रियव्रत राजा था। वह तपस्या में ही लगा रहता था। ब्रह्मा की आज्ञा से राजा ने विवाह किया। राजा को पुत्रेष्टि यज्ञ करने से मृत पुत्र की प्राप्ति। उससे अन्य नारीगण एवं रानी को महा दुःख। तत्पश्चात् विमान का आगमन। राजा को देवी का दर्शन। राजा के द्वारा देवी की स्तुति। प्रसन्न हुई देवसेना द्वारा राजा को पुत्र प्राप्ति। राजा ने देवी की पूजा कर ब्राह्मणों को द्रव्यदान किया। प्रत्येक मास में शुक्ल षष्ठी में राजा द्वारा देवी की पूजा। षष्ठी देवी की स्तुति एवं फल कथन।

४४ मङ्गलचण्ड्युपाख्यानम् २८२

मङ्गलचण्डी का उपाख्यान भी भगवान् नारायण ने कहते हुए बतलाया कि मङ्गल नामक मनु की पूज्य अभीष्ट देवी होने से इसका नाम मङ्गलचण्डी हुआ। सर्व प्रथम भगवान् शङ्कर ने त्रिपुर के वध के अवसर पर विष्णु भगवान् की प्रेरणा से पूजा की। त्रिपुर ने शंकरजी के यान को आकाश से गिरा दिया उस समय ब्रह्मा विष्णु के उपदेश से दुर्गा की आराधना की और भगवती दुर्गा ने अभय देकर मङ्गलचण्डी नाम से प्रसिद्ध होकर शंकर की सहायता की और विष्णु के दिये हुए अस्त्र से शंकर ने उस दैत्य को मार डाला। शंकरजी पर देवतावृन्द ने पुष्प वृष्टि की। शंकरजी द्वारा मङ्गलचण्डी का मूलमन्त्र चण्डी का स्तोत्र उसका फल कथन।

४५ मनसादेव्युपाख्यानम् २८४

फिर कथाप्रसङ्ग से मनसा का उपाख्यान भी सुनाया। यह कश्यप की मानसी कन्या होने से मनसा नाम से विख्यात हुई। इसने मनसे भगवान् श्रीकृष्ण की तपस्या कर उन्हें प्रसन्न कर वाञ्छित वरदान प्राप्त किया। स्वर्ग, नागलोक और पृथिवी में गौरी रूप में, नागेश्वरी और नागभगिनी के रूप में पूजा होती है। यही आस्तिक माता प्रसिद्ध है जो जरत्कारु मुनि की स्त्री थी। मनसा के बारह नामों का फल इससे सर्पों का भय नहीं रहता।

४६ मनसापूजाविधानम् २८५

इन्द्रकृत मनसास्तोत्रम् २९१

मनसादेवी का पूजा विधान। मनसा को पहले कश्यपजी ने जरत्कारु मुनि को बिना याचना किये ही दे दी। एक दिन सायंकाल पुष्कर तीर्थ में वट के मूल में थक कर मनसा की गोद में सिर रखकर ही जरत्कारु सोगये। धर्म लोप न हो इस भय से उसने अपने धर्मनिष्ठ पतिदेव को सन्ध्या के लिये जगाया इसपर जरत्कारु ने नाराज होकर पति का अप्रिय करनेवाली स्त्री को भला-बुरा कहा। मनसा ने इसपर कहा कि सन्ध्या के लोप भय से ही आपको जगाया अब मुझे आप क्षमा करें और स्वामी के चरणों में लोटकर विलाप करने लगी। जब मुनि सूर्य को शाप देने के लिये तैयार हुए तो स्वयं भगवान् सूर्य ने उपस्थित होकर क्षमा याचना की और श्रीकृष्ण भक्ति की प्रशंसा कर उन्हें प्रसन्न करलिया। अब मनसा को जरत्कारु ने छोड़ दिया परन्तु ब्रह्मा, शंकर और कश्यपजी के समझाने पर जरत्कारु ने गर्भाधान होने तक मनसा के यहाँ रहना स्वीकार कर लिया और योग द्वारा नाभिस्पर्श कर गर्भ धारण करवा दिया। जरत्कारु ने मनसा को वरदान दिया कि उसकी यह सन्तान तेजस्वी विष्णुभक्त होगी और

प्रेम में विह्वल रहेगी यही जनमेजय के नाग यज्ञ में आस्तिक होकर नागों का त्राणकर्ता हुआ। मनसा का स्तोत्र।

४७ सुरभ्युपाख्यानम् २९३

नारद ने गोलोक से आई हुई सुरभी के विषय में पूछा तो नारायण भगवान् ने गोमात्र की अधिष्ठात्री गौओं की प्रधान यह सुरभी गोलोक में प्रधान हुई यह बतलाया। एक दिन राधिकानाथ को राधाजी के साथ क्षीरपान की इच्छा हुई। अपने वाम पार्श्व से लीला से ही भगवान् ने सुरभी वत्सयुक्त उत्पन्न की और सुदामा ने उसका दूध रत्नभाण्ड में दूह लिया वही भगवान् ने पी लिया और भाण्ड के उलट जाने से उसका क्षीरसरोवर प्रसिद्ध हो गया। वही भगवान् की कृपा से लक्षकोटि गायें हो गईं उनसे संसार धारण किया जाता है। उनका मूल मन्त्र पूजा और स्तोत्र।

४८ राधिकाख्यानम् २९५

प्राचीनकाल में गोलोक में रासमण्डल में मालती मणिका के वन में भगवान् श्रीकृष्ण रत्नसिंहासन में विराजमान थे। उन्हें रमण करने की इच्छा हुई। तब भगवान् के दो स्वरूप हुए दक्षिणाङ्ग में कृष्ण और वामाङ्ग में राधिकाजी का आविर्भाव हुआ। भगवती राधा सम्पूर्ण मुक्तियों को देनेवाली है। वही महालक्ष्मी और गृहलक्ष्मी रूप में सर्वत्र विराजमान है। वही राधा सुदामा के शाप से गोलोक से पृथिवी पर आगईं। वृषभानु के गृह में जन्म लिया उनकी माता का नाम कलावती थी।

४९ हरगौरीसम्वादे राधोपाख्यानम् २९८

भृत्य ने किस प्रकार राधा को शाप दिया इसपर भगवान् ने विस्तार से

सारी कथा समझाई। भगवान् गोलोक में राधिकाजी के साथ रास क्रीड़ा में

लगे हुए थे। उसी समय सुरत के आनन्द में राधिका को चार दूतियों ने जगाया और क्रोधित हो राधिका ने हरि को छोड़ दिया। श्रीकृष्ण भी उसी समय तिरोधान हो गये और मर्त्यलोक में सरिद्रूप से अवतीर्ण हुए। जब श्रीकृष्ण फिर आठ गोपों के साथ अपने घर आये तो उन्होंने राधिका को नहीं देखा और अन्तःपुर में गये। वहाँ पर श्रीकृष्ण को राधिकाजी ने फटकारा और बदले में सुदामा ने उसी समय राधा की भर्त्सना की। तब राधा ने सुदामा को दैत्य होने का शाप दिया। आगे शंखचूड़ रूप में तब तुलसी के पति के रूप में सुदामा हुआ और वृषभानु के यहाँ राधा ने जन्म लिया। भगवान् श्रीकृष्ण ने पृथ्वी के भार को हलका करने के लिये अवतार लेने पर वृन्दावन में सुन्दर रास द्वारा राधा की आह्लादिनी शक्ति का अलौकिक चमत्कार संसार को दिखाया।

५० सुयज्ञोपाख्यानम् ३०२

पार्वतीजी के प्रश्न करने पर कि सुयज्ञ नामक राजा कौन था उसने भगवान् श्रीकृष्ण की ह्लादिनी शक्ति राधा को विप्र शाप से शप्त होकर भी प्राप्त किया जिनके दर्शनों के लिये भगवान् ब्रह्मा को भी ६० हजार वर्ष तक पुष्करक्षेत्र मे उनकी चरणकमलों की रेणु में तप करना पड़ा था। हे शंकरजी आपलोग भी जिनके दर्शन नहीं कर सकते उनको इस महालक्ष्मी का दर्शन कैसे हुआ? भगवान् शंकरजी ने स्वायम्भुव मनु और शतरूपा से आरम्भ कर उत्तानपाद उसके पुत्र ध्रुव और उसका पुत्र उत्कल जिसने पुष्कर में हजारों राजसूय यज्ञ कराये उसीने सम्पूर्ण धन रत्न आदि प्रसन्न होकर ब्राह्मणों को दे दिये उस शोभन यज्ञ को देखकर सुरसंसद् में सुयज्ञ को उच्च स्थान दिलाया। वही सुयज्ञ राजा अन्नदाता, रत्नदाता और सम्पूर्ण सम्पत्तियों को देनेवाला तथा दशलाख गायों के सींग पर रत्न बांधा उन्हें सामग्री से सजाकर दक्षिणा समेत ब्राह्मणों को देता था। उसे इन बड़े भारी दानों को देने पर भी तृप्ति नहीं होती थी। इस प्रकार धर्मजीवन

बिताते हुए उसके पास एक दिन मलिन वस्त्र पहने कण्ठ, ओष्ठ और तालु जिसके तृषा से व्याकुल होनेसे सूख गये हैं, ऐसे ब्राह्मणदेव आये और प्रसन्न चित्त से उन्हों ने सुयज्ञ को आशीर्वाद दिया। राजा ने उसे प्रणाम अवश्य किया परन्तु अभिवादन के लिये थोड़ासा भी खड़ा नहीं हुआ न सभासद ही खड़े हुए उलटे हँसे। इसपर मुनिदेवगण को नमस्कार कर उस द्विजराज ने क्रोध से राजा को शाप दिया कि हे पामर! यहाँ से दूर जाओ और राज्य से च्युत हो जाओ। साथ ही गलत्कुष्ठवाली बुद्धि हो तथा अस्थिर चित्त होओ। जैसे ही उसने सभासदों को, जो हँसे थे उनको शाप देना चाहा तो सबने परिहार किया और ब्राह्मण देवता शान्त हो गये। फिर राजा ने अपनी ओर से क्रोध शान्त करने की प्रार्थना की और सभा से जानेवाले उस ब्राह्मण को सभी मुनियों ने समझाने का प्रयत्न किया।

५१ नृपमुनिसम्वाद ३०४

ब्राह्मण को सनत्कुमार ने कहा कि राजा आपके शाप से भ्रष्टश्री हो गया है। आप आशुतोष हैं उसपर कृपा कीजिये। आप अतिथि रूप में आये। आपका राजा के द्वारा स्वागत होना चाहिये। पुलस्त्य ने राजा का दोष बताकर उसे क्षमा करनेको कहा। पुलह, क्रतु, अङ्गिरा, मरीचि, कश्यप, प्रचेस्, दुर्वासा ने अतिथि, ब्राह्मण, देवता, गुरु आदि को अभिवादन न करनेवाले का अपराध क्षमा योग्य नहीं होता ऐसा कहा। फिर भी आप हम सब के कहने से इसका अपराध क्षमा करें और आतिथ्य ग्रहण करें। राजा ने गोघ्न, स्त्रीघ्न, कृतघ्न, गुरुस्त्री-गामियों और ब्रह्मघ्न लोगों को क्या दोष लगता है इस तरह प्रश्न किया। इसके लिये वशिष्ठ ने गोहत्यारे को एक वर्ष तक तीर्थों में घूमकर और जौ के ही अन्न से अपना गुजारा करे और हाथ से जल पीये ऐसा बताया। सौ गायों को दक्षिणा समेत दान करने से उस पाप से छुटकारा हो जाता है। शुक्राचार्य ने गोहत्या से

दुगुना पाप स्त्रीहत्या में कहा है। बृहस्पति ने स्त्रीहत्या से दुगुना पाप ब्रह्महत्या में कहा। कृतघ्न उससे चारगुना पापी है। फिर राजा ने कृतघ्नों के भेद पूछे। ऋष्य शृङ्ग ने एक प्रकार के कृतघ्न सामवेद के अनुसार बतलाये फिर कात्यायन, सनन्द सनातन ने कृतघ्नों के सम्बन्ध में विस्तार से समझाया। शूद्रान्न भोजन, उनके शव जलाने, और शूद्र स्त्री गमन के दोष पूछे तब पराशर, जरत्कारु ने सारी बातें विस्तार से बताकर उपरोक्त दोषों से सदा बचने को कहा। भरद्वाज और विभाण्डक ने शूद्रों का शव दाह करनेवाले और शूद्रों के यहां पितृश्राद्ध में भोजन करनेवालों को कृतघ्न बतलाया है। उन्हें देव और पितृकार्यों को करने का अधिकार नहीं रहता।

पार्वतीजी ने कृतघ्नों के अन्य-अन्य कर्मफलों के सम्बन्ध में पूछा, तो महेश्वर ने नारायण, नारद, देवल, जैगीषव्य, वाल्मीकि, आस्तिक आदि महर्षियों ने कृतघ्न पुरुषों के कर्म विपाक बताकर कभी भी कृतघ्न न बनने को कहा और राजा से ब्राह्मण को प्रणाम करने के लिये कहा और घर जाकर तपस्या कर फिर आनन्द से ब्रह्मशाप से छूटकर कृतकृत्य हो जाओगे। यह कह सब बिदा हो गये।

पार्वतीजी के महेश्वर को इसके बाद क्या हुआ ऐसे पूछने पर महेश्वर ने कहा कि निन्दाग्रस्त राजा वशिष्ठजी के द्वारा प्रेरित होकर ब्राह्मण के पैरों पर क्षमा याचना के लिये दण्डवत् गिर गया और ब्राह्मण ने क्रोध को त्यागकर आशीर्वाद दिया। इसपर राजा ने आखों में आँसू भरकर हाथ जोड़कर ब्राह्मण से उसके विषय का सारा हाल पूछा और कहा कि आप अपना राज्य, कोष, अपने नौकर चाकर पुत्र और स्त्री को अपने अधिकार में कर लीजिये और मुझे अपना नौकर

रख लीजिये। ब्रह्मा के पुत्र मरीचि और उसके पुत्र कश्यप हुए। कश्यप के पुत्रों ने देवत्व प्राप्त किया। उनमें महाज्ञानी त्वष्टा हुए जिन्होंने दिव्य हजार वर्षों तक पुष्कर में तपस्या की। उन्होंने ब्राह्मणार्थ देवदेव भगवान् हरि की पूजा की। भगवान् से वर पाकर उनके तेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुआ। इसका नाम विश्वरूप रखा, विश्वरूप अतीव कीर्तिशाली थे। उसके विरूप मेरे पितृपाद हुए उनमें सुतपा नामवाला वैरागी मैं हुआ। मेरे गुरुदेव महादेव हैं जिनके अभीष्ट देव सर्वात्मा श्रीकृष्ण प्रकृति से परे हैं। मुझे तो उनके चरणकमलों की चिन्ता है किसी सम्पति की परवाह मैं नहीं करता। मुझे सभी भुक्तियाँ, ब्रह्मत्व या अमरत्व उन भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों में भक्ति के विना मिले तो मैं उन्हें सहर्ष छोड़ दूँगा। संसार के बड़े-से-बड़े अधिकार मुझे जलबिम्ब के समान मिथ्या मालूम होते हैं। मुनियों का आपके यहाँ आना सुनकर उनसे विष्णु भक्ति का आनन्द लूटने को मैं आया था। मुझे शाप न देकर तेरा हित ही साधन किया गया है। हे राजन् अब विशेष विलम्ब मत करो, घर के सभा उत्तरदायित्व वेटे को सौंपकर बाहर हो जाओ और भगवान् श्रीकृष्ण के चरणकमलों में ध्यान लगाओ क्योंकि वही परम तत्व है बाकी तो ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्त मिथ्या है। भगवान् की ही माया से ब्रह्मा, विष्णु और महेश सृष्टि को रचते, पालते और संहार करते हैं। समय पर वर्षा होती है काल, अग्नि आदि पाक करते हैं। प्रति ब्रह्माण्ड में सृष्टि की यह क्रिया चालू है। भगवान् श्रीकृष्ण के लोमकूपों में ही ब्रह्माण्डों के ब्रह्मादि समाये हुए हैं। महान् विराट् क्षुद्र विराट् सभी भगवान् कृष्ण की अनुगामिनी प्रकृति के आधार से चलते हैं वही सब की बीजरूपा है। काल की अखण्ड साधना से ही वे भगवान् श्रीकृष्ण में लीन होते हैं। इस प्रकार सभी कालभीत होकर आविर्भूत और तिरोभूत होते हैं। इसी भांति महेश द्वारा दिये गये सारे दुर्लभ महा ज्ञान को बतलाया।

राजा ने महाविष्णु का आधार और क्षुद्र विराट् ब्रह्मा और प्रकृति, मनु, इन्द्र, सूर्य और चन्द्रमा की आयु का मान पूछा और कहा कि सम्पूर्ण विश्वों के ऊपर कौनसा लोक है उसे मुझे समझाइये। सम्पूर्ण विश्वों का गोलोक आकाश के समान व्यापक सदा डिम्ब रूप श्रीकृष्ण की इच्छा से समुद्भूत श्रीकृष्ण के मुख विन्दु जल से परिपूर्ण यह गोलोक महाविष्णु का मूल है। यह राधेश्वर श्रीकृष्ण का षोडशांश कहा गया है। विष्णु से ऊपर नित्य वैकुण्ठ है यह भी आकाश के समान निःसीम है। यहाँ नारायण भगवान् चतुर्भुज रूप में निवास करते हैं। गोलोक गोलोक है और सुन्दर-सुन्दर रत्नमाणिक्य से जड़े गृह महलों से शोभित है भगवान् के पार्षद, गोप गोपियाँ वहां पर रहते हैं। शिशुरूप में गोपाल-वेषधारी भगवान् श्रीकृष्ण अपनी रासेश्वरी राधिकाजी के साथ रहते हैं। इस प्रकार वैकुण्ठ और गोलोक का वर्णन कर दण्ड, मुहूर्त, घड़ी, दिन, सप्ताह, पक्ष, मास, वर्ष, उत्तरायण और दक्षिणायन, इनका निरूपण किया गया। फिर कृतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुगों के परिमाण बतलाये। मन्वन्तर आदि का वर्णन किया। आद्यमनु ब्रह्माजी के पुत्र मनु हुए शतरूपा उनकी धर्मपत्नी वह सब गुणों से युक्त हुआ। उसने बड़े-बड़े अश्वमेध, नरमेध और गोमेध यज्ञ किये एवं भगवान् शंकर दुर्लभ कृष्ण मन्त्र को प्राप्त कर श्रीकृष्ण का दास्य पाकर गोलोक में चले गये। अपने पुत्र स्वायम्भुव के इस प्रकार मुक्त होने पर ब्रह्माजी बहुत प्रसन्न हुए। उसके प्रियव्रत हुआ प्रियव्रत के वाद दो मनु विष्णुभक्ति परायण इसकें बाद पाँचवां मनु रैवत छठा चाक्षुष मनु, सातवां परमभागवत सूर्य का पुत्र श्राद्धदेव हुआ। आठवां सूर्यपुत्र सावर्णि हुआ, नवम दक्षसावर्णि हुआ, दशम ब्रह्मसावर्णि हुआ, ग्यारहवां धर्मसावर्णि और बारहवां रुद्रसावर्णि, तेरहवां देवसावर्णि और चौदहवां चन्द्रसावर्णि हुआ। जबतक मनु और इन्द्रों की आयु है उतना

ब्रह्मा का दिन उतने ही समय तक ब्रह्मा की रात्रि है। ब्रह्मा का दिन क्षुद्रकल्प कहा जाता है। ब्रह्मा ने रात बीतने पर फिर सृष्टि की रचना की इस ब्रह्मनिशा को क्षुद्रप्रलय कहा जाता है। ऐसे ३० दिन रात तक ब्रह्मा का मास कहा जाता है। कालरात्रि का वर्णन पहले आया है। १२ मास का एक ब्रह्मा का वर्ष और १५ वर्ष के वाद फिर प्रलय होता है यही मोहरात्रि वेदों में कही गई है। ब्रह्मा के निपात के वाद महाकल्प होता है वही महारात्रि कही जाती है। प्रकृति का निमेषकाल भी यही होता है निमेष के अन्त में श्रीकृष्ण की इच्छा से सृष्टि का निर्माण होता है। श्रीकृष्ण निमेष रहित हैं और श्रीकृष्ण में ही सारी प्रकृति आकर युगों के बाद लीन होती है तब उसे प्राकृतिक लय कहते हैं। सम्पूर्ण प्राणियों का संहार कर वह स्वयं कृष्ण के वक्षस्थल में लीन हो जाती है वही मूल प्रकृति और ईश्वरी है इसे ही दुर्गा, नारायणी और सनातनी कहते हैं। इसीमें भी सबकुछ समाया है यह ईश्वर में समाई है। सभी क्षुद्र वैष्णवमय हैं विष्णु में लीन हैं महाविष्णु प्रकृति में और वही परमात्मा में लीन है। प्रकृति योगनिद्रारूप में श्रीकृष्ण के नेत्रों में इस इच्छा से अधिष्ठान करने लगी। प्रकृति का एक दिन का जितना काल है उतने समय तक वृन्दावन में श्रीकृष्ण की निद्रा होती है यही प्रलयकाल है। उनके जागने पर सर्व सृष्टि होती है उनका वन्दन, स्मरण, ध्यान, अर्चन, कीर्तन और उनके गुणों का स्मरण महापातक नाशन है। इसके बाद सुयज्ञ के द्वारा भगवान् शिव का प्राकृतलय के समय में लीन होने पर भी मृत्युञ्जय नाम कैसे हुआ यह पूछने पर सुतपा ने सारा सृष्टिक्रम विस्तार से बतलाया।

ब्रह्मा के वय के अन्त में मृत्युकन्या जलबिम्ब के समान नष्ट हो गई यह सब लोकों की संहर्त्री है और ब्रह्मादिको अपने में समेट लेती है। भगवान् शंकर ने मृत्युकन्या को जीता न कि शम्भु को मृत्यु ने। पुण्य वृन्दावन में कृष्ण ने प्रलयकाल के अपने वामांश से उत्पन्न राधिका में गर्भाधान किया। ब्रह्मा के वयपर्यन्त राधा

ने गर्भ धारण किया तब गोलोक में उस डिम्ब को जन्म दिया फिर दुःखी हृदय से उस डिम्ब को विश्वगोलोक में भेजा अपने पुत्र को इस प्रकार छोड़ने से बार-बार महादेवी राधा रोने लगी। श्रीकृष्ण ने उसे कई प्रकार योग से समझाया। उस डिम्ब से सबका आधार महाविराट् हुआ। इस प्रकार सारी सृष्टि का वर्णन सुनकर सुयज्ञ राजा कृतकृत्य हुआ और भगवान् शंकर की शरण में जाने के लिये गुरुजी के विषय में पूछने लगा। भगवान् कृष्ण की भक्ति से ही शंकर भगवान् की प्राप्ति हो जाती है। इसके बाद राजा को सुतपा ने राधाजी का पूजा विधान, स्तोत्र, कवच, मन्त्र और सामवेदोक्त ध्यान बतलाया। इसे लेकर तपस्या के लिये भेज दिया। सब को विलाप करते छोड़ राजा वन में तप करने चला गया। एक सौ दिव्य वर्ष तक उसने परम मन्त्र का जप करते हुए कठोर तपस्या की। तब रथ में विराजती हुई परमेश्वरी को देखा उनके दर्शनमात्र से ही वह निष्पाप हो गया। सुतपा मनुष्य का शरीर छोड़कर दिव्य मूर्ति धारण कर देवीजी के विमान से ही गोलोक चला गया। उसने वहाँ सभी अलौकिक दिव्य-मूर्तिसम्पन्न गोप गोपीवृन्द से घिरे हुए भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र परब्रह्म को देखा। उन्हें देख राजा ने तुरन्त रथ से उतरकर अश्रु गद्गद् नेत्र से प्रणाम किया और परमात्मा ने अपना दास्य प्रदान किया तथा इच्छित वर से राजा कृतकृत्य हो गया। श्रीराधामाधव भगवान् का स्मरण करनेवाला सदा ही उनका भक्त होकर आनन्द लाभ करता है।

५५ राधिकोपाख्याने राधापूजास्तोत्रम् ३२३

भगवान् शंकरजी ने पार्वतीजी के पूछने पर बताया कि श्रीकृष्ण और मेरे रहते राधा मन्त्र को ही क्यों ग्रहण किया। इसका कारण यह था कि राधा मन्त्र से अति शीघ्र सिद्धि मिल जाती है। इस प्रकार राधिका मन्त्र की दीक्षा देकर ध्यान, पूजा, जप का प्रकार बताकर भगवान् शंकर ने राधाजी की स्तुति

कही। फिर श्रीकृष्ण और राधिका के वार्तालाप के रूप में श्रीकृष्ण द्वारा राधाजी के रूप, गुण और प्रभाव का दिव्य वर्णन। इस राधा गुणाख्यान के द्वारा सभी दक्षकन्या परमात्मा को मिलीं व सावित्री ब्रह्मा को। इसका प्रतिदिन पाठ करनेवाला पुत्रार्थी पुत्र पाता है और रोगी रोगमुक्त हो जाता है। कार्तिक की पूर्णिमा को राधा की पूजा कर पढ़नेवाले को अचल लक्ष्मी और राज्यश्री मिलती है। स्त्री सुननेवाली स्वामी के सौभाग्य को पाती है। इस स्तोत्र को भक्ति से सुननेवालों को बन्धन से छुटकारा होता है और अन्त में गोलोक में परमपद प्राप्त करता है।

५६ राधाकवचवर्णनम् ३२६

भगवती पार्वती ने राधापूजा विधान सुनकर शंकरजी से राधाकवच के विषय में पूछा और भगवान् शंकर ने कवच की महिमा बतलाकर उसके पाठ का फल बताया। जगन्मङ्गल इस कवच का प्रजापति ऋषि है। रासेश्वरी स्वयं गायत्री देवी हैं श्रीकृष्णभक्ति सम्प्राप्ति का विनियोग है। इस कवच को हर प्रकार से गोपनीय रखना चाहिये। सभी को भगवती राधा के स्तोत्र का जप करने से सबसे उच्च पद प्राप्त होता है।

५७ दुर्गोपाख्यानम् ३३२

भगवती राधा के १६ नामों का विस्तार से वर्णन। इन १६ नामों की प्रथम सृष्टि के आदि में गोलोक में रासमण्डल में पूजा की गई। फिर मधुकैटभ से डरकर ब्रह्मा ने, फिर त्रिपुरारि भगवान् शंकर ने त्रिपुर से प्रेरित होकर फिर दुर्वासा के शाप से भ्रष्टश्री होकर महेन्द्र ने पूजा की और भगवती ने सम्पूर्ण आधि-दैविक, भौतिक एवं दैहिक पापतापों से संसार का उद्धार किया। दूसरे कल्पों में

सुरथ राजा और मेधस के शिष्य समाधि वैश्य ने वेदोक्त प्रकार से राधाकवच

के द्वारा भगवती की मृण्मयी मूर्ति बनाकर पूजा की। राजा और वैश्य को यथेच्छित वर दिया। राजा अपने खोये हुए राज्य पाकर राजपाट करने लगा और वैश्य अपना शरीर त्यागकर गोलोक में भगवती दुर्गा के वर से चला गया। वह नाना भोग भोगकर दूसरे कल्प में सावर्णि मनु हुआ।

५८ दुर्गोपाख्याने तारोपाख्यानम् ३३५

सुरथ, समाधि और मेधस ऋषि के सम्बन्ध में नारद के पूछने पर नारायण ने अत्रि के पुत्र चन्द्रमा से बुध तारा में उत्पन्न हुए। बुध के पुत्र चैत्र और चैत्र का सुरथ हुआ। नारद ने बृहस्पतिजी की पत्नी तारा में चन्द्रमा से कैसे बुध हुए इस व्यतिक्रम का कारण पूछा। इस प्रकार कामयौवनोन्मत्त चन्द्रमा द्वारा आसक्त होकर तारा के साथ सम्भोग बलात्कार से ही होना बताया। तारा ने बहुत रोका परन्तु लम्पट अपने दुराग्रह से नहीं माना तब शुक्र ने चन्द्रमा को सत्यमार्ग वताया और विप्रपत्नीगमन में महापातक बतलाया। फिर शुक्र ने चन्द्रमा को अपने तपोबल से शुद्ध किया। बहुतसे महापातकों का चन्द्रमा के गुरुपत्नी के साथ अनुगमन करने के महापातकों का वर्णन। शुक्रजी द्वारा चन्द्र को शुद्ध करने पर तारा को समझाबुझाकर बृहस्पति के पास भेजना।

५९ बृहस्पतेस्तारान्वेषणाय शिवप्रेषणम्

तारा के नदी से स्नान करके आने में विलम्ब होते देख बृहस्पतिजी को बहुत अधिक चिन्ता हुई उन्होंने अपने शिष्य को ताराको खोजने के लिये स्वर्ण नदी के किनारे भेजा। चन्द्र के इस दुःसाहसपूर्ण निन्दित कर्म की सूचना जब बृहस्पति को मिली तो वे मूर्छित हो गये और फिर चेतना पाकर अपने मनके उद्गार शिष्यों को कहने लगे।

स्त्री विना घर वन के समान है। जिस घर में सती स्त्री प्रिय बोलनेवाली

पतिव्रता न हो वह घर वन है। जिसकी पतिसाध्वी पतिव्रता को दैवने हर लिया उसका घर वन के समान है।

यस्यमातागृहेनास्ति गृहणी वा सुशासिता। अरण्यंतेनगन्तव्यं यथाऽरण्यं तथा गृहम्
प्रियाहीनं गृहं यस्य पूर्ण द्रविणवन्धुभिः। अरण्यंतेनगन्तव्यं यथाऽरण्यं तथा गृहम्॥
भार्याशून्यावनसमाः सभार्याश्च गृहा गृहाः। गृहिणी च गृहं प्रोक्तं न गृहंगृहमुच्यते

अशुचिः स्त्रीविहीनश्च यथा मन्दो हुताशनः।
प्रभाहीनो यथा सूर्यः शोभाहीनो यथा शशी॥
शक्तिहीनो यथा जीवो यथात्मा च तनुं विना।
विना ऽऽधारं यथाऽऽधेयो यथेशः प्रकृतिम्विना॥

न च शक्तो यथा यज्ञः फलदां दक्षिणाम्विना। कर्मणांचफलं दातुं सामग्रीमूलमेवच

विनास्वर्णं स्वणकारो यथाशक्तः स्वकर्मणि।
भार्याः मूलाः क्रियाः सर्वाः भार्यामूलागृहास्तथा॥

भार्या मूलं सुखंसर्वं गृहस्थानां गृहे सदा। भार्यामूलः सदा हर्षो भार्यामूलश्चमङ्गलम्
भर्यामूलश्चसंसारो भार्यामूलश्च सौरभम्। यथा रथश्च रथिनां गृहिणांश्च तथा गृहम्

यथा जलं विना पद्मं पद्मं शोभा विना यथा।
तथैव च गृहसुखं गृहिणां गृहिणीम्विना॥

गृह की लक्ष्मी न रहने से संसार में सबकुछ सूना है क्योंकि देव, पितर और सभी माङ्गलिककार्यों में उसकी आवश्यकता रहती है। इस पर बृहस्पति ने इन्द्र को अपना भाव कहा और इन्द्र ने तुरन्त तारा को लानेकी बात कहकर उसके लिये प्रयत्न करने लगे। वे दोनों ब्रह्मा के पास गये और ब्रह्मा ने उन्हें गुरुरूप में सदुपदेश दिया और तारा के गर्भ को शुद्ध करने के लिये सनत्कुमार भगवान् ने उसे उसका व्रत करवाया। इससे प्रसन्न होकर श्रीकृष्ण ने तारा के सामने आकर उसे इच्छित वर प्रदान किया।

शिवजी के पास जाकर बृहस्पति ने क्या कहा इसका उत्तर नारायण ने दिया कि शंकर के पास जाते ही बृहस्पति का अभिवादन किया गया और उन्हें आसन पर बैठाकर सारी वातें पूछी गईं। शंकर ने उनके शोक का कारण पूछा क्या दैवदोष से तपस्याहीन हो गई कि सन्ध्याहीन हो गये ? क्या भगवान् श्रीकृष्ण में भक्ति नहीं रही क्या अतिथिसेवा नहीं हुई ? आपके शिष्य इन्द्र देवराज हैं और गुरु भगवान् वशिष्ठ हैं। सन्तजन पर प्रशंसक होते हैं।

पुत्रेशशसितोये च समृद्धे च पराक्रमे। ऐश्वर्ये वा प्रतापे च प्रजाभूमिधनेषु च॥

वचनेषु च बुद्धौ च स्वभावे च चरित्रतः।
आचारे व्यवहारे च ज्ञायते हृदयं नृणाम् ॥२१॥
यादृग्येषां च हृदयं तादृक् तेषां च मङ्गलम्।
यादृग्येषां पूर्वपुण्यं तादृक् तेषां च मानसम् ॥२२॥

अतः आप इसका कारण बतलाइये। बृहस्पति ने कर्मवश की बात कहकर अपना आत्मनिवेदन किया। इसपर शंकर ने वैष्णवभक्तों का कष्ट स्वयं श्रीकृष्ण दूर करते हैं बता भगवान् श्रीकृष्ण के भक्तों की प्रशंसा की। भगवान् शंकर द्वारा श्रीकृष्णभक्त बृहस्पति को लक्ष्मी माया का कामबीज प्रदान। बृहस्पति द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण में मन लगाने की बात कहना। इन्द्र के द्वारा भगवान् विष्णु के यहाँ जाकर सारी बात कहकर तारा को प्राप्त करने का उपाय।

६१ **ब्रह्मणः शुक्रगृहेगमनम्** ३५०

गुरुपत्नी के लिये शुक्राचार्य के यहाँ ब्रह्मा का जाना। शुक्र ने ब्रह्मा को आते देखकर उनकी स्तुति की और अभिवादनपूर्वक सत्कार किया और ब्रह्मा से आने का कारण पूछा। ब्रह्मा ने शुक्र से गुरुपत्नी तारा को चन्द्रमा द्वारा हरने की बात कही और उसका पक्ष भी शुक्राचार्य ले रहे हैं। अतः मैं देवताओं की ओर से यह कहने आया हूं कि या तो तारा को दो या कामी चन्द्र को छोड़ो। शुक्र ने

शङ्करजी को छोड़कर सभी देववृन्द को खुला आह्वान किया कि वे युद्ध करें। ब्रह्मा ने फिर कहा कि भगवती काली और शिव के पार्षद वीरभद्रादि तथा कालाग्नि रुद्र तथा राधा कवच कण्ठवाले श्रीविष्णु के युद्ध में आते ही तुम दैत्यों में कौन उनके सामने टिक सकेगा।

प्रह्लाद ने ब्रह्माजी को विनय से प्रत्युत्तर दिया कि अवश्य ही भगवान् विष्णु मधुकैटभ और हिरण्यकशिपु को मारनेवाले हैं फिर भी वह परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्ण की ही कला हैं। वही सबके अन्तरात्मा अपने सुदर्शनचक्र से हम सभी की रक्षा करते हैं। उनसे तो कोई भी बलवान् नहीं कहा जासकता। मैं श्रीकृष्ण की शरण में होकर सभी को युद्ध के लिये आह्वान करता हूं। भगवान् की कृपा का ही सारा बल है। यदि मेरे पिता मरे तो वे विष्णु की निन्दा से। शंखचूड़ निर्बन्ध (अभिमान से) मधुकैटभ झूठे दर्प से। त्रिपुर तो हमारा सेवक था फिर भी शंकर प्रेरित वह मरा था। तब ब्रह्मा ने दोनों पक्षों को युद्ध से शक्ति, बल और सैन्य का दुरुपयोग बतलाकर दैत्यराज प्रह्लाद से तारा की भिक्षा मांगी और विमुख भिक्षुक के जाने पर गृहस्थ भी पापों का भागी होता है यह कहा। फिर सनत्कुमार, सनन्दन, सनक और ऋषियों ने भी बृहस्पति की स्त्री तारा को लौटाने की धर्मसङ्गत मांग की। इसपर प्रह्लाद ने शुक्राचार्य से ही वह कार्य हो सकता है, यह बताकर उन्हीं के पास जानेको ब्रह्मादि देवगण और ऋषि मुनियों को सत्परामर्श दिया। तब सब शुक्रजी से प्रार्थना करने लगे और उन्होंने तारा तथा चन्द्र को लौटा दिया। प्रह्लाद सभी ब्रह्मादि देवगण व मुनिवृन्द को प्रणाम कर घर लौट आया। इधर चन्द्रमा तथा तारा दोनों ही ब्रह्माजी के चरणों पर गिर पड़े। चन्द्रमा को अपनी भूल स्वीकार करने पर ब्रह्मा ने क्षमापूर्वक गोद में उठा लिया और कृपालु ब्रह्माजी ने कहा हे तारे अब डरो मत तुम सौभाग्ययुक्त बनोगी क्योंकि प्रायश्चित्त ही दुर्बलों का जो बलीजन से हरी गईं एकमात्र उपाय है।

दुर्वला बलिनाग्रस्ता निष्कामात्प्रच्युता भवेत् ।
प्रायश्चित्तेन शुद्धा सा न स्त्री जारेण दुःष्यति ।।
सकामा कामतो जारं भजते स्वसुखेन च ।
प्रायश्चित्तान्न शुद्धा सा स्वामिना परिवर्जिता ।।

उन्होंने उसके गर्भ की स्थिति किस से हुई यह पूछा तो तारा ने चन्द्रमा को उसका कारण बतलाया। इसके बाद तारा ने सुन्दर कुमार को जन्म दिया और चन्द्रमा उसे लेकर ब्रह्माजी को प्रणाम कर चला गया। ब्रह्माजी तारा को देवगुरु बृहस्पतिजी को देकर तथा देवगण को अभय दान कर अपने भवन सिन्धु के तट पर चले गये।

एक वार बुध ने युवक होने पर घृताची के गर्भ से उत्पन्न कुवेर की कन्या चित्रा को नन्दनवन में देखा। यह बारह वर्ष की यौवन के उद्गम अवस्था में थी। उस चन्द्रमा के पुत्र बुध ने उसे गान्धर्व विधि से ग्रहण कर एकान्तस्थान में उसमें वीर्याधान कर दिया। उसके चैत्र नामक पुत्र हुआ जो धर्मात्मा, प्रतापी, दानी हुआ। चैत्र को राजाधिरथ उसके सुरथ हुआ इसी सुरथ ने वैश्यसमाधि के साथ भगवती दुर्गा की सरिता के किनारे पूजा की थी। यह वैश्य धर्मात्मा जयी और क्रिया कुशल था परन्तु दुर्दैव से धन के लोभ में आकर स्त्री पुत्रादि सभी ने इसे घर के वाहर निकाला। भगवती दुर्गा के ध्यान से यह फिर समृद्धि-शाली हुआ। राजा को मनुत्व और निष्कण्टक राज्य मिला।

६२ राज्ञः सुरथस्य वैश्यसमाधेश्च विवरणम् ३५६

राजा को मेधस मुनि से ज्ञान प्राप्ति और वैश्य को मुक्ति कैसे मिली नारदजी के इस प्रश्न के उत्तर में नारायण ने कहा कि ध्रुव का पौत्र उत्कल का पुत्र नन्दि महा प्रतापी था। उसने सुरथ राजा के देशों पर अधिकार कर लिया। जब सुरथ अकेला रह गया तो वह रात्रि में घोड़े पर चढ़कर घोर

जङ्गल में निकल गया। पुष्पभद्रा नदी के तट पर उसने वैश्य को देखा और उनमें गहरी मित्रता हो गई। पुष्कर क्षेत्र में वैश्य के साथ राजा मेधस ऋषि के आश्रम में गया। वहां अपने आश्रम में शिष्यवृन्द को उन्होंने दुर्लभ ब्रह्मतत्त्व समझाते हुए देखा। राजा सुरथ और वैश्य समाधि ने मुनिको प्रणाम किया। मुनि ने उनको शुभाशीर्वादपूर्वक अभिवादन किया और उनको कुशल प्रश्न पूछा तो राजा ने अपना राज्य निष्कासन का वृत्तान्त वतलाया और राज्य प्राप्ति का उपाय पूछा और वैश्य के सम्बन्ध में वतलाया कि वह वैश्य धन के लोभी स्त्री पुत्रादि से निकाला गया है। क्योंकि प्रतिदिन अपने उपार्जित धन में से वह अपने स्त्री पुत्रादिकों के मना करने पर भी खूव रत्न, मणिमाणिक्य प्रतिदिन ब्राह्मणों को दिया करता था। जव उन वेटे, पोते, भाई वन्धुओं ने इसे खोजकर घर जाने को आग्रह किया तो यह ज्ञान पाकर ऊँचा वैराग्य का अभ्यास करने का दृढ़ निश्चय कर भगवान् में भक्ति करने का उपाय ढूँढ़ रहा है। वाद में इसके पुत्र भी अपने पिता के वियोग में शोक से दुःखी होकर वन में. जाकर वैरागी हो गये। अव इसे निष्काम भगवान् का दासत्व मिले ऐसा उपाय वतलाइये। मेधस ने भगवती कृपामयी कृष्ण की विष्णुमाया का चमत्कारपूर्ण प्रभाव बताकर उन्हीं की कृपा से कृष्णभक्ति का आनन्द लाभ हो सकता है यह सिद्धान्त कहा। नाना जन्मों के वाद शंकर की भक्ति से विष्णु भक्ति का और विष्णुभक्ति से निर्गुण कृष्ण की भक्ति के सवल मार्ग का रहस्यपूर्ण वर्णन कर श्रीमेधस ने कृष्णभक्त से ही कृष्ण मन्त्र को लेकर अपना मार्ग प्रशस्त करने को कहा। भगवान् की भक्ति दो प्रकार की है एक विवेचना और दूसरी आवरणी। प्रथम भक्त को दी जाती है और दूसरी आवरणी से सारा जगत् लीला नाटक के सूत्रधार से संचालित होकर अपना भाग ग्रहण करता है। मैं भी भगवान् शंकर से कृष्णभक्ति का ज्ञान लेकर अपना जन्म सफल करने में लगा हूं। जाओ भगवती की आराधना करो। नदी तीर पर जाकर वही तुम्हें कामनापूर्ण

आवरणी बुद्धि देगी जिससे सब ठीक हो जायगा। निष्काम वैश्य को भगवंती विवेचना शक्ति देगी जिससे उसे भगवती के चरणों का सहज ही लाभ होगा। इसपर उन दोनों ने दुर्गास्तोत्र और कवच द्वारा भगवती को प्रसन्न किया। वैश्य को मुक्ति और राजा को मनु का पद तथा इच्छित ऐश्वर्य मिला।

६३ सुरथसमाधिमेधससम्वादे प्रकृतिवैश्यसम्वादः ३५८

राजा को कैसे प्रकृति की भक्ति का लाभ हुआ और वैश्य को किस पूजा-विधान, मन्त्र, जप, स्तोत्र, और कवच से हुआ इसके विषय में जिज्ञासा करने पर नारायण ने कहा कि राजा और वैश्य दोनों को सुमेधस ने ध्यान, स्तोत्र, कवच का उपदेश किया। उसकी ही पुष्कर में एक वर्ष तक तीन काल उन दोनों ने साधना की। भगवती ने प्रसन्न होकर उन्हें यथेच्छ वरदान दिया। वैश्य को चेतना देकर जब भगवती ने वर मांगने को कहा तो उसने भगवती चरण में रहकर कभी नाश न होनेवाले सम्पूर्ण वस्तुओं का सार वर मांगा। प्रकृति ने भगवान् की नवधा भक्ति का वर्णन कर उसकी साधना करनेवाले सफल मुनीश्वर देवगण का परिगणन किया और भगवान् कृष्ण की भक्ति का उपदेश दिया। "कृष्ण" इस नाम का पुष्कर में दशलाख के जप का आदेश दिया जिसे पूर्ण कर वैश्य भगवान् कृष्ण का परमपद पाकर उनका दास बना।

६४ राज्ञः सुरथस्य दुर्गापूजनम् २६१

फिर नारायण ने राजा के द्वारा भगवती के पूजन का विस्तार से वर्णन किया। सुरथ ने स्नान, आचमन और न्यासत्रय कर (कर, अङ्गअङ्गाङ्ग, न्यास) भूतशुद्धि की तथा प्राणायाम कर शंखशोधन किया। फिर भगवती की मिट्टी की मूर्ति बनाकर उनका आवाहन किया। फिर देवी के दक्षिण भाग में कमलालय की स्थापना की और गणेश, सूर्य, अग्नि, विष्णु, शिव, पार्वती छओं देवों की पूजा

विधिविधान से की। फिर मूल प्रकृति ईश्वरी का सुन्दर ध्यान किया। इसे भक्तों को सुरथवैश्य की पूजा के अनुसार ही सदा कर आनन्द लूटना चाहिये। स्तोत्र का विधान पूजा तीन प्रकार की है। सात्विकी, राजसी और तामसी। वैष्णवों की सात्विकी, शाक्तादि की राजसी व अदीक्षित और अन्य सज्जन लोगों की तामसी पूजा है। "दुर्गा" यह नामजप मात्र से ही कष्टों का विनाश हो जाता है। पूजा षोडश उपचार से की जानी चाहिये। इसी प्रकार छओं देवताओं की, फिर जगदम्बिका, अष्टनायिका, अष्टदलकमल में स्थापित कर आराधना करे। इसके बाद महाभैरव, असिताङ्ग भैरव, ससभैरव, कालभैरव, क्रोधभैरव, ताम्रचूड़ और चन्द्रचूड़ की पूजा करे। फिर नवशक्ति जैसे वैष्णवी, ब्रह्माणी, माहेश्वरी, रौद्री, नारसिंही, वाराही इन्द्राणी कार्तिकी तथा सर्वमङ्गला की पूजा कर फिर शंकर, कार्तिकेय, सूर्य, चन्द्र, अग्नि, वायु, वरुण और देवी की दासी तथा वटुक और चतुःषष्टि योगिनी की विधिविधान से पूजा करे। कवच को गले में बांधकर पठन करे। फिर वलिदान विधान कर भगवती को प्रसन्न करे। वलिदान के बांद भगवती को प्रणामादि कर ब्राह्मण को दक्षिणा देवे।

६५ दुर्गोपाख्याने दानकथनम् ३६६

श्रीनारायण ने नारदजी द्वारा स्तोत्र, कवच, पूजा के फल को जानने की इच्छा पर आर्द्रा में देवी को बोधन कर मूल से प्रवेश करे और श्रवण में विसर्जन करे, यह कहा। भगवती के बोधनोत्सव का आर्द्रायुक्त नवमी को यदि कोई करता है तो उसे शतवार्षिकी पूजा का फल मिलता है। सुरथ की पूजा से भगवती सन्तुष्ट हुईं और राजा से यथेच्छ वर मांगने को कहा। उसे अभीष्ट राज्य और शत्रुनाश होने का वर देकर अन्त में ज्ञानरूप कृष्णभक्ति का उपदेश किया। कृष्ण नाम के गुण प्रभाव का वर्णन कर भगवती अन्तर्धान कर गईं। राजा भी अपनी आराध्या को प्रणाम कर राज्य पाकर घर चला गया।

६६ श्रीकृष्णकृत दुर्गास्तोत्रम् ३७१

प्रकृति के कवच स्तोत्र के सम्बन्ध में नारदजी द्वारा पूछने पर श्रीनारायण ने जब-जब श्रीकृष्ण ने गोलोक रासमण्डल में राधा की स्तुति की तथा मधुकैटभ युद्ध में विष्णु ने फिर त्रिपुरारि शंकर ने एवं वृत्रासुरवध के समय देवराज इन्द्र ने एवं मनुष्यों, देवतावृन्द और सुरथादि राजाओं ने कल्प-कल्प में आराधना की उस स्तोत्र को बताया। इसकी फलश्रुति सर्वत्र विजय ही प्रकृति की साधना का फल और उनके श्रीचरणों में भक्ति द्वारा भक्त का उद्धार बतलाया गया।

६७ प्रकृतिकवचापरनामक ब्रह्माण्डमोहन कवचम् ३७१

नारदजी के अनुरोध से श्रीनारायण ने प्रकृति कवच अथवा ब्रह्माण्डमोहन कवच का उपदेश किया। सिद्धकवच करने के लिये इसका पांच लाख जप करना आवश्यक है। गणपति मूलप्रकृति के ही पुत्र हैं उनके आविर्भाव के भगवान् श्रीकृष्ण ही श्वांस से मूल कारण है। ब्रह्मवैवर्तप्रकृतिखण्ड को सुनकर नानाप्रकार से ब्राह्मण भोजन, दान और जपतप करानेवालों को अनन्त फल और पुत्रपौत्र-लक्ष्मी की अनन्तकाल तक प्राप्ति तथा अन्त में भगवान् श्रीकृष्ण में निश्चला भक्ति होकर गोलोक में परमपद की प्राप्ति होती है।

॥ शुभम्भूयात् ॥

श्रीगणेशाय नमः।

अथ तृतीयं गणपतिखण्डम्

श्रीकृष्ण परब्रह्म की कृपा से गणेशजननी भगवती पार्वतीजी की असीम अनुकम्पा से गणेश आविर्भाव के वृत्तान्त की विषयसूची का वर्णन प्रस्तुत है—

श्री नारदजी ने प्रकृतिखण्ड के अमृत समुद्रमय आख्यान में खूब स्नान कर अपनी हार्दिक प्रसन्नता व्यक्त करते हुए गणेशखण्ड के लिये श्रीमन्नारायण से सादर निवेदन किया। उन्होंने गणेश के भगवती पावती के गर्भ से जन्म को लेकर प्रश्न किया। उनका प्रादुर्भाव किस देव के अंश से हुआ वह योनि सम्भव है कि अयोनि सम्भव ? उनका तेज, पराक्रम, तपस्या, ज्ञान और निर्मल यश कैसा है ? सभी नारायण, ब्रह्मा, शिवशंकर आदि के विद्यमान रहते हुए उनकी पूजा क्यों प्रथम विहित है ? इनका जन्म पुराणों में सारपूर्ण और रहस्यमय गाया गया है। यह हाथी के मुखवाले और एकदन्त क्यों हैं आदि प्रश्नों की झड़ी लगादी। भगवान् नारायण ने कहना आरम्भ किया कि सभी दैत्यों का संहार कर जब दक्षकन्या भगवती ने अपने स्वामी की निन्दा को सहन न कर दक्ष यज्ञ में देह छोड़ दिया तो योग से वह हिमालय के यहां कन्या रूप में उत्पन्न हुईं। विवाहयोग्य अवस्था में हिमालय ने उनका विवाह भगवान् शंकर से कर दिया। भगवान् शंकर और भगवती पार्वती नर्मदा के तट पर सुन्दर पुष्प उद्यान में देवों के हजार वर्ष पर्यन्त शृङ्गारपूर्ण रतिलीला में मग्न हो गये।

दोनों ही एक दूसरे के अङ्गस्पर्श से मूर्छित होगये। उस एकान्त स्थान में उनकी यह मनोमुग्धकारिणी सम्भोगलीला देखकर देवगण को चिन्ता हुई। वे लोग ब्रह्माजी को नेता बनाकर नारायण के पास गये और उनसे सारी बातें ब्रह्माजी के द्वारा कहलाई। शंकर भगवान् और भगवती पार्वती के इस सम्भोग से जो सन्तान होगी उसके भविष्य के लिये भी उन्होंने नारायण से पूछा। भगवान् नारायण ने कहा कि आपलोग मेरी शरण आये हैं आप निर्भय रहिये। आप सब मिलकर एक उपाय कीजिये कि शंकर का वीर्य भूमि में गिरे, नहीं तो पार्वतीजी के पेट में गर्भाधान होने से वह सन्तान देव और असुर दोनों के लिये ही घातक होगी। तब देवगण नर्मदा किनारे शंकर पार्वती को विघ्न कर जगाने के लिये गये तथा ब्रह्माजी अपने स्थान पर लौट गये। देवराज इन्द्र ने कुबेर को, कुबेर ने वरुण को, वरुण ने वायु को और वायु ने यम को, यमने अग्नि को, अग्नि ने सूर्य को, सूर्य ने चन्द्रमा को और चन्द्रमा ने ईशान को रति में भङ्ग डालने के लिये परस्पर कहा परन्तु किसी की हिम्मत न हुई। तब देवराज इन्द्र ने थोड़ा शिर टेढ़ा कर महादेवजी को कहा—हे योगीश्वर महादेव आपको प्रणाम है क्या करते हैं ? इसी प्रकार सूर्य, चन्द्र और पवन ने बारी-बारी से उन्हें उद्बोधन करने का प्रयत्न किया परन्तु पार्वतीजी के डर से सम्भोग अवस्था में उठने का प्रयत्न शंकरजी न कर सके। जब फिर भय से व्याकुल देवगण को स्तुति करनेको उद्यत देखा तो उन्होंने पार्वतीजी को छोड़कर अलग होने का प्रयत्न किया उसी बीच में उनका वीर्य भूमि पर गिर गया उससे स्कन्द हुए। इस मनोहर कथा का प्रसङ्ग स्कन्द जन्म के प्रकरण में आयेगा।

२ **क्रीड़ाविरतेन शिवेन देवदर्शनम्** ३७५

श्री नारायण ने कथा प्रसङ्ग का क्रम जारी रखते हुए कहा कि महादेवजी ने रति से उठकर अपने सामने देवगण को देखा और उन्हें यह परामर्श दिया कि

आप सब यहां से पार्वतीजी क्रोधित न हो जांय इसलिये भाग जाइये। जब पार्वतीजी उठी तो अखिलब्रह्माण्ड के संहार करनेवाले भगवान् शंकरजी कांपने लगे। अपने सामने देवगण को न देखकर उन्होंने अपने क्रोध को स्तम्भित कर लिया और वोलीं कि आज से देवतागण व्यर्थवीर्य हो जांय। भगवती क्रोध से आंख लाल करती हुई लज्जितसी भूमि खोदने की चेष्टा करने लगीं। भगवान् ने डरते-डरते पार्वतीजी को छाती से लगाकर वैठाया और इस प्रकार मधुर वचन बोले—हे मेरी सौभाग्यरूपे प्राणाधिष्ठात्रीदेवते पार्वती रुष्ट क्यों हैं। मुझ निरपराध पर प्रसन्न होओ तुम्हें क्या इष्ट है कहो। मैं तुम्हारे प्रताप से ही शिव हूं नहीं तो शव तुल्य हूं तुम ही प्रकृति, वुद्धि, क्षमा, दया, तुष्टि, पुष्टि, शान्ति, क्षान्ति, क्षुधा, छाया, निद्रा, तन्द्रा एवं सम्पूर्ण प्राणियों का आधार सर्वस्व और वीजस्वरूपिणी हो, अव मुझे अपने क्रोध से दग्ध हुए को जिलाओ। तव भगवती ने क्रोधयुक्त होने पर भी मनोहारी वचन कहे—हे भगवन् आप सम्पूर्ण प्राणियों में स्थित हैं आप सर्वज्ञ को मैं क्या कहूं। सम्पूर्ण विभव आदि के सुख को एक ओर रख दीजिये और अपने पति के सम्भोग सुख को एक ओर तो स्त्री के लिये अपने पतिदेव के साथ रति सुख ही अधिक प्रिय होगा। इससे भङ्ग होने से स्त्री को अत्यन्त पीड़ा होती है। उसके वरावर स्त्री के लिये बड़ा दुःख कोई नहीं है।

कन्तानां कान्तविच्छेदः शोकः परमदारुणः। कृष्णपक्षे यथा चन्द्रः क्षीयमाणो दिने दिने
तथा कान्तं विना कान्ता क्षीणा कान्त क्षणे क्षणे ॥२८॥

कान्ता रमणियों के लिये पति का विछोह परम दारुण शोक का कारण होता है। जैसे कृष्णपक्ष में चन्द्रमा की कला दिन-दिन घटती जाती है वैसे ही स्त्री की कला पति के बिना क्षण-क्षण क्षीण हो जाती है।

चिन्ताज्वरश्चसर्वेषामुपतापश्च वाससाम्।

साध्वीनां कांतविच्छेदस्तुरगानाञ्च मैथुनम् ॥२९॥

रतिभङ्गो दुःखमेकम् द्वितीयं वीर्यपातनम् । दुःखातिरेकदुःखञ्च तृतीयमनपत्यता ॥२३

आपके रहते मुझे रतिभङ्ग, वीर्यपतन और पुत्र न होने के तीन-तीन दुःख हों इससे अधिक दुःख संसार में मेरे लिये और क्या होसकता है ।

त्रैलोक्य के स्वामी आपको पति पाकर भा मेरे सन्तान न हो, जिस स्त्री के रतिसुख से प्राप्त सन्तान न हो उसका जन्म व्यर्थ है । सद्वंश में सत्पुत्र ही गृहस्थ का सब कुछ है कुपुत्र तो कुल का अङ्गार है, नाश करनेवाला है । स्वामी अपने अंश से अपनी स्त्री के गर्भ से जन्म लेता है । साध्वी स्त्री माता के समान हितकारिणी है । असाध्वी वैरी के समान सन्ताप देनेवाली है । "मुखदुष्टा योनिदुष्टा चैवाऽसाध्व्यति हि स्मृता" अब आप ही बताइये मैं क्या उपाय करूँ ? इसपर शंकरजी ने हँसकर पार्वतीजी को सान्त्वना देते हुए कहा—

३ पार्वतीम्प्रति हरिव्रतकरणाय शिवस्योपदेशः ३७७

महादेवजी ने कार्यसिद्धि के लिये उपाय बतलाया । उन्होंने पुण्यक नामक व्रत को भगवान् हरि की आराधना करते हुए करनेका परामर्श दिया । यह वाञ्छाकल्पतरु है, सबका सार है, सुखदेने वाला और पुत्रदाता है, सम्पूर्ण सम्पत्ति का दाता भी यही है । इसलि इसको पालन करो तुम्हें व्रत के आराध्य कृष्ण अवश्य वाञ्छित फल देंगे । अब तुम हरि मन्त्र को लो पितरों के मुक्ति-कारण इस व्रत को करते हुए इष्टसिद्धि पाओगी । यह कहकर उन्होंने शीघ्र गङ्गाजी के तटपर जाकर बड़े प्रेम से भगवान् श्रीकृष्ण के स्तोत्रयुक्त कवच और पूजाविधान के नियमों को बताया ।

भगवती श्रीपार्वती ने सम्पूर्ण व्रतविधान सुनकर इसका विस्तार से वर्णन जानना चाहा। पिता अपनी कन्या को कौमारावस्था में सब प्रकार से भरण-पोषण कर योग्य बना देता है। युवावस्था में पति उसकी शक्ति का ह्रास नहीं होने देता और वृद्धावस्था में पुत्र उसकी सेवाकर अपना जन्म सफल करते हैं। सुन्दर पति को देकर कन्यापिता धन्य होता है। पति गृहस्थ में उसे सब प्रकार सुखीकर वृद्धावस्था में पुत्रों को उसका भार सौंपकर कर्तव्यपालन करता है। तीन भाईयों की बहन भाग्यवती है, उससे कम भाग्यशालिनी दो भाई वाली, उससे कम एक भाई वाली और एक भी न होनेपर तो वह वेचारी अधमा है। मुझे पुत्ररत्न की आवश्यकता है आप कृपाकर उसकी व्यवस्था कीजिये। तब शंकरजी ने पुण्यक व्रत का आरम्भ माघ शुक्ल त्रयोदशी को करने का विधान कहा। प्रातःकाल स्नान-ध्यान से निवृत्त होकर स्वस्तिवाचन के साथ घटस्थापन किया जाय। पुरोहित को वरण कर षोडशोपचार से भगवान् श्रीकृष्ण का पूजन हो। इसका विधान साङ्गोपाङ्ग होना चाहिये। थोड़ीसी भी त्रुटि होने से अङ्गहानि होती है तो फल में भी हानि सम्भव है। नाना द्रव्यों से भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र की पूजा का नाना फल सङ्कल्प में श्रीकृष्ण प्रीत्यर्थ कहना चाहिये। पुष्पाञ्जलि के बाद सौ प्रणाम करे और छ मास तक हविष्य अन्न खावे। एक पक्ष तक हवि जल का पान करे। रात्रि में कुशासन पर बैठकर जागरण करे आठ तरह के मैथुनों को छोड़ दे। व्रत की समाप्ति पर पूर्ण सामग्री सजाकर तिल होम कर ब्राह्मण भोजन और दक्षिणा देवे। इस व्रत का यही फल है कि भगवान् में दृढ़ अचल भक्ति होती है और भगवान् हरि के समान ही सर्वगुणनिधान पुत्र उत्पन्न होता है और व्रत करनेवाली स्त्री को सौन्दर्य, स्वामी का सौभाग्य, ऐश्वर्य और विपुल धन की प्राप्ति होती है। अब महेश्वरी तुम व्रत करो तुम्हें पुत्ररत्न की प्राप्ति होगी।

व्रतविधान को सुनकर पार्वतीजी की उत्कण्ठा व्रतमाहात्म्य को सुनने के सम्बन्ध में हुई। महादेवजी ने कथा आरम्भ की। प्राचीन समय में शतरूपा ने जो मनु की पत्नी थी वह पुत्र न होने से अत्यन्त दुखित होकर ब्रह्माजी के पास जा बन्ध्या के पुत्र होने का सफल उपाय पूछा।

तज्जन्मनिष्फलं ब्रह्मन्नैश्वर्य्यंधनमेव च। किञ्चिन्न शोभते गेहे विना पुत्रेण पुत्रिणाम्॥

पुत्र के बिना सब सूना है। पुत्र सुखदेनेवाला, मोक्षदाता व प्रीतिदाता है। अपुत्र का मुख कोई नहीं देखना चाहता। स्वयं वह भी लज्जित होता है। ब्रह्माजी ने उसे माघ शुक्ल त्रयोदशी को सुपुण्यक व्रत करने का आदेश किया। इसे एक वर्ष तक लगातार करना चाहिये और इसकी समाप्ति बताई।

नारदजी द्वारा व्रत के आरम्भ का विधान पूछने पर नारायण भगवान् ने दिव्य कथा और व्रत का विधान कहा। जब भगवान् शंकर साक्षात् तपस्या करने चले गये तो भगवती पार्वती ने शंकरजी की आज्ञा से पुण्यक व्रत को आरम्भ किया। इस अवसर पर ब्रह्माजी विष्णु आदि देवगण सनक, सनन्दन व सनत्कुमार आदि बड़े-बड़े ऋषि महर्षि उपस्थित हुए। उस समय बड़ी भारी सभा जुटी और उसमें नाना प्रकार के गीत, नृत्यवादित्रों से शंकरजी ने सबका स्वागत किया। ब्रह्माजी की प्रेरणा से शङ्करजी ने हाथ जोड़कर भगवती पार्वती के पुण्यक व्रत करने की इच्छा की बात कही। उन्होंने अपने रतिभङ्ग और पार्वतीजी

के शोक, क्रोधयुक्त वचनों को ब्रह्माजी से कहा और पुत्राभिलाषा होने से उसे पूर्ण करने का उपाय जानना चाहा, साथ ही स्त्री स्वभाव को लेकर अपना मन्तव्य रक्खा।

दुर्निवार्य्यश्च सर्वेश स्त्रीस्वभावश्च चापलः।
दुस्त्यजं योगिभिः सिद्धैरस्माभिश्च तपस्विभिः ॥२४॥

स्त्रीस्वभाव अत्यन्त चपल होता है वह किसी के समझाये नहीं ठीक होता इतना होनेपर भी स्त्रीरूप के वश में योगी लोग सिद्धगण और हम तपस्वी भी हैं। यह मोह का कारण है, सम्पूर्ण माया का पिटारा कामवर्द्धन का कारण कामदेव का ब्रह्मास्त्र, मोक्ष के द्वार को बन्द करने का किवाड़ और हरिभक्ति को रोकनेवाला यह है। वैराग्य नाश का बीज है, रागादि को बढ़ाता है। साहसों का समूह, दोषों का घर, अविश्वासों का क्षेत्र और स्वयं मूर्तिमान् कपट है। अहङ्कार का आश्रय सदा ही मुख में अमृत लगे हुए विषकुम्भ के समान यह रहती हैं। सभी के लिये असाध्य है, दुस्साध्य कलह के अङ्कुर का बीज है। अतः आपलोग पार्वतीजी के लिये परिणाम में सुखावह कोई पुत्र प्राप्ति का सुन्दर उपाय बता दीजिये। इसपर भगवान् विष्णु ने सुपुण्यक व्रत का माहात्म्य वतलाया और श्रीकृष्णभक्ति का अमोघ रहस्य कहकर श्रीकृष्ण भक्तों का मार्ग सदैव निष्कण्टक बतलाया और भगवती पार्वती के लिये इस व्रत को करने का विधान बतलाकर उसके प्रभाव से गोलोकनाथ श्रीकृष्ण स्वयं पार्वती के गर्भ से उत्पन्न होंगे यही गणेश नाम से प्रसिद्ध हो जायेंगे यह कहा। गजानन, एकदन्त आदि नामों की कथा।

भगवान् विष्णु के आदेश से शङ्करजी ने पार्वतीजी को व्रत का विधान बताया। उन्होंने सुन्दर वेषभूषा पहनकर शुभ दिन में रत्नकलशादि की स्थापना कर मुनिवृन्द की विधिविधान से पूजन कर पुरोहित, आचार्य, दिक्पाल, देव, नाग, मनुष्य एवं ब्रह्मा, विष्णु, महेशादि की पूजा कर स्वस्तिवाचन के साथ भगवान् श्रीकृष्ण का मङ्गल घट में आवाहन किया और षोडश (सोलहों) उपचारों से भक्तिपूर्वक पूजा की। इस व्रत में जो उपकरण (सामग्री) देने की थी उसे सुव्रता सती पार्वती ने मन्त्र सहित प्रदान की। तिल और घृत की तीन लाख आहुतियों से हवन किया। देवता, अतिथि और ब्राह्मणों की सम्पूर्ण साधनों से पूजा की। यह क्रम एक वर्ष तक प्रतिदिन चलता रहा। एक वर्ष के बाद समाप्ति दिवस पर पुरोहित ने भगवती पार्वती से पति को दक्षिणा में मांगा। भगवती इसपर मूर्छित होकर गिर पड़ी। तब शङ्करजी ने उन्हें दक्षिणा न देने पर फलहानि का भय बताया और धर्म, देवता, मुनिवृन्द ने दक्षिणा के विषय में पार्वती को समझाया तब भगवती ने पति को दक्षिणारूप में माँगने पर आपत्ति उठाई कि पति के देने से स्त्री के पास फिर रह क्या जायगा।

भर्तुर्वंशश्चतनयः केवलं भर्तृमूलकः। यत्र मूलं भवेद्भ्रष्टं तद्वाणिज्यञ्च निष्फलम्॥

इस प्रकार जब पार्वतीजी एवं धर्म, देवता और मुनिगणों का दक्षिणा के विषय में विचार चल रहा था तो भगवान् चतुर्भुज श्रीकृष्ण रथ से वहां उपस्थित हुए। उन्हें देववृन्द ने प्रणाम किया और उन्होंने देववृन्द को सृष्टि का स्वरूप, उत्पत्ति, स्थिति और लय का कारण बताया। सम्पूर्ण प्राणिमात्र का आधार प्रकृति

को बताकर गोलोकनाथ द्विभुज और वैकुण्ठनाथ चतुर्भुज विष्णुरूप का महत्त्व समझाया और पार्वतीजी को अपने प्राणनाथ शङ्करजी को देकर फिर उचित मूल्य द्वारा उन्हें पुनः प्राप्त करने का उपाय कहा। गौएँ विष्णु की देहरूपा हैं शिवजी विष्णु के साक्षात् शरीर हैं अतः आप गोमूल्य देकर स्वामी को ग्रहण करें। पार्वतीजी ने वैसा ही किया और एक लाख गौओं को बदले में देकर शङ्करजी को फिर मांगा। इसपर सनत्कुमार ने ना किया इससे पार्वती को कष्ट हुआ। उन्होंने शङ्कर का ध्यान किया और सामने महत्तेजः पुञ्ज भगवान् का रूप प्रकट हुआ। उसकी क्रमशः विष्णु, ब्रह्मा, महादेव, धर्म, देवता, मुनिगण, सरस्वती, सावित्री, लक्ष्मी, हिमालय और पार्वतीजी ने भक्तिभाव से स्तुति की। पार्वती ने भगवान् शंकर के तीन जन्म में पति होने के विषय को लेकर इस जन्म में भी सौभाग्य से उनके पति होने एवं पुत्र न होने का प्रकरण कहकर स्तुति की। उन्होंने भगवान् से उनके समान ही पुत्ररत्न की प्राप्ति हो यह कामना की। इस पार्वतीकृत स्तोत्र को संयत होकर सुननेवाले को भगवान् विष्णु के समान पुत्ररत्न की प्राप्ति होती है। एक वर्ष तक हविष्य भोजन कर इस व्रत को करनेवाले को सुपुण्यक व्रत का अवश्य ही फल मिलता है।

भगवती पार्वती के स्तवन से प्रसन्न होकर देवाधिदेव श्रीकृष्ण ने अपना दुर्लभ अनुपम सौन्दर्य सौकुमार्यपूर्ण रूप दिखाया उनके साथ चारों ओर गोप एवं गोपिका बैठे हैं और राधा उनके पास विराजमान हैं। उस रूप को देख मुग्ध होकर ऐसे ही सुन्दर पुत्र की अभिलाषा उनने की। भगवान् 'तथास्तु'

कहकर अन्तर्धान करगये। उन्होंने फिर सबको यथाविधि सन्तुष्ट किया और प्रभूतदान से सबको तृप्त किया। स्वयं शङ्करजी के साथ ब्राह्मणों को भोजन दक्षिणा से राजीकर आप प्रसाद पाकर सुन्दर शय्या पर पार्वतीजी सो गईं। उस रतिलीला के अन्त में वीर्यपतन काल में विष्णु वृद्ध ब्राह्मण का वेष धरकर आ पहुंचे और सब तरह से शङ्कर को तथा पार्वती को उद्बोधन दिया। इसपर पार्वती और शङ्करजी बीच में ही उठकर वस्त्र पहनकर उस रतिभवन के द्वार पर खड़े ब्राह्मण के पास गये और उसे आने का कारण पूछा। शङ्करजी ने उससे नामपन्था पूछा और पार्वतीजी ने अपने द्वार पर आये हुए वृद्ध अतिथि का सत्कार कर अतिथि पूजन का फल बतलाते हुए अपनेको धन्य कहा।

अपूजितोऽतिथिर्यस्य भवनाद्विनिवर्तते।
पितृदेवाग्नयः पश्चाद् गुरवो यान्त्यपूजिताः ॥ ६ ॥
यनि कानि च पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च।
तानिसर्वाणि लभते नाभ्यर्च्च्यातिथिमीप्सितम् ॥

ब्राह्मण ने भूख-प्यास से पीड़ित अपनेको बतलाकर आहार पाने की बलवती इच्छा प्रगट की। ब्राह्मण ने पांच प्रकार के पिता बतलाये।

विद्यादाताऽन्नदाता च भयत्राता च जन्मदः।
कन्यादाता च वेदोक्ता नराणां पितरः स्मृताः ॥
गुरुपत्नी गर्भधात्री स्तनदात्री पितुः श्वसा।
श्वसा मातुः सपत्नी च पुत्रभार्य्यान्नदायिका ॥
भृत्यः शिष्यश्च पोष्यश्च वीर्यजः शरणागतः।
धर्मपुत्राश्च चत्वारो वीर्यजो धनभागिति ॥ ४ ॥

मैं बुड्ढा ब्राह्मण आपके शरण में आया हूं मेरा अब अन्न से उपकार कीजिये। आगे उसने भगवद्भक्ति की प्रशंसा कर उनके चरणों की भक्ति मांगी। ब्राह्मण ने कर्म के भोगादि से लेकर भगवत्स्मरण एवं भगवत्प्रीत्यर्थ कर्म की प्रशंसा

करते हुए हरिभक्ति एवं विष्णु मन्त्र की अपूर्व प्रशंसा की और भगवान् की भक्ति में एकमात्र कारण ही उसने पार्वतीजी को बतलाया और उनके पुत्र गणेश को साक्षात्कृष्ण का ही रूप कहा। उनकी उत्पत्ति श्रीकृष्ण भगवान् के अंश से हुई है। इसके पूर्व ही वह ब्राह्मण अन्तर्धान कर गया और उनके रूप माधुर्य का सुन्दर वर्णन किया।

वृद्ध ब्राह्मण के रूप में श्रीविष्णु के द्वारा बिना पूजा लिये ही चले जानेपर भगवती पार्वती ने उनकी बहुत खोज की पर कहीं पता न चला इसपर आकाशवाणी हुई कि हे पार्वति! आप शान्त होइये और शय्या पर अपने घर में लेटे हुए सुपुत्र को देखिये। यह तुम्हारे द्वारा किये गये पुण्यक व्रत का फल है और वह ब्राह्मण भूखा नहीं स्वयं साक्षात् विष्णु थे। इस पर पार्वतीजी अपने भवन में लौट आईं और अपने पुत्र को उमा-उमा कहकर स्तन के लिये रोते हुए देखा। भगवती पार्वती शङ्करजी के पास गईं और उनसे गणेशजन्म का सारा वृत्तान्त कहा। शङ्करजी अपने पुत्र को देखकर बहुत प्रसन्न हुए और पुत्रप्राप्ति की बहुत प्रकार से प्रशंसा की। भगवती पार्वती ने उस बालक को गोद में लेकर स्तन पान कराया।

पुत्र प्राप्ति के उत्सव पर भगवती पार्वती और शङ्करजी ने अधिकारी ब्राह्मण और याचक वर्ग को प्रचुर मात्रा में दान दिया। इसी प्रकार हिमालय ने भी अपने नाती के जन्म के उपलक्ष्य में खूब दान दिया। सभी गणेशजी की मङ्गल

कामना करते हुए लौटे और सभी देववृन्द ने इस उत्सव का अमित आनन्द लूटा। सभी देवगण, विष्णु, ब्रह्मा, महादेव, लक्ष्मी, सरस्वती, सावित्री, हिमालय, मेनका, वसुन्धरा, पृथ्वी और भगवती पार्वती ने मंगलाशासनपूर्वक शुभाशीर्वाद दिया एवं ब्राह्मण वन्दीजन ने मङ्गल कामना की। गणेशजन्म की इस सुमङ्गलाध्याय के पढ़नेवाले का सदा मङ्गल होता है। इसके पाठ करनेवाले की इप्सित मङ्गल कामना पूर्ण होती है। यह मङ्गलाध्याय जिस किसी के यहाँ होता है उसका मङ्गल होता है। यात्रा में पुण्याह के दिन इसको मन लगाकर सुननेवाले को सब अभीष्ट मिलते हैं।

११ गणेशदर्शनार्थं शनैश्चरागमनम् ४०८

शनिपार्वतीसम्वादः ४०९

जब गणेशजन्म के उपलक्ष्य में शङ्करजी के यहां देवगण आनन्दपूर्वक उत्सव मना रहे थे उसी समय महायोगी सूर्यपुत्र शनैश्चर वहां पहुंच गये। श्यामवर्ण शनैश्चर अहर्निश भगवान् कृष्ण के नाम में लगे हुए सभी देवगण को प्रणाम कर उनकी आज्ञा से शङ्करजी के भवन में श्रीगणेश को देखने गये। द्वार पर हाथ में त्रिशूलधारी विशालाक्ष को देखकर उससे अन्दर जाने की आज्ञा मांगी। विशालाक्ष ने पार्वतीजीकी आज्ञा से शनैश्चर को जाने दिया। अन्दर जाकर गणेशजी की मङ्गल कामना करते हुए आशीर्वाद देकर नीचा शिरकर वह वहीं बैठ गये। जब पार्वतीजी ने नीचे शिर करने का कारण पूछा तो कर्म की गति का वर्णन करते हुए शनैश्चर ने अपनी स्त्री चित्ररथ की पुत्री के द्वारा उसके ऋतुस्नाता होनेपर न जानेपर जो शाप दिया उसीके कारण किसीको देखने से वह नाश हो जाता है यह कहा। यद्यपि बाद में उसे मनाया भी गया परन्तु वह शाप को लौटा न सकी।

पार्वतीजी ने हँसी में टालते हुए शनि से बालक को देखने के लिये जोर दिया। शनैश्चर ने ज्यों ही अपनी दक्षिण आँख के कोण से बालक के शिर को देखा वैसे ही उसका शिर अलग होगया और गोलोक में श्रीकृष्ण के यहाँ चला गया। इस दुर्घटना से पार्वतीजी को बड़ा भारी खेद और शोक हुआ। सभी देवगग को इस अघटित घटना से विस्मय हुआ। सभी लोग मूर्छित हो गये। इसपर भगवान् विष्णु ने गरुड़ पर चढ़कर पुष्पभद्रानदी के किनारे एक वन में हथिनी के साथ सोये हुए गजेन्द्र को देखा। अपने सुदर्शनचक्र से उसका शिर छेदकर गरुड़ के ऊपर चढ़कर वे पार्वती के यहां जाने लगे। इधर वह हस्तिनी बच्चों के साथ अपने पति के अङ्ग विच्छेद से क्रोधित होकर विलाप करने और रोने-पीटने लगी। इससे विष्णु ने उसको दूसरे हाथी का सिर लगा दिया और उसको कल्प पर्यन्त आनन्द से जीवन विताने का वरदान दिया। कैलास पर आकर पार्वतीजी को जगाकर शिशुको गोद में रख उसके हाथी का शिर लगा दिया और बालक को आध्यात्मिक ज्ञान दिया। विष्णु भगवान् द्वारा कर्म के शुभाशुभ फलों के भोगों का वर्णन करते हुए भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द की कलाओं का महत्त्वपूर्ण वर्णन और उन्हीं के कलाअंश होने से गणेशजी की प्रशंसा। ब्रह्मा, विष्णु और देवगण सभी ने गणेशजी को भूरि-भूरि आशीर्वाद दिये। शङ्करजी ने मृतजीवित बालक की शान्ति करने के लिये ब्राह्मणों को खूब दान दिया। हिमालय ने भी इसी प्रकार ब्राह्मणभोजनादि से सब मङ्गल साधन जुटाये। श्रीविष्णु ने इस अवसर पर वेदों और पुराणों का पाठ करवाया। स्त्रीसुलभ स्वभाववश पार्वतीजी ने क्रुद्ध होकर शनैश्चर को शाप दिया कि जाओ तुम अङ्गहीन बन जाओ। इसपर सूर्य, कश्यप और यम रुष्ट होकर सभा से

उठकर चले गये। जब ब्रह्मा उन्हें मनाने गये तो कश्यप ने कहा कि शनि का बालक की माता के अनुरोध करने पर देखने से कोई दोष नहीं। सूर्य ने अपने पुत्र के अङ्गहीन होने की बातपर शनि को निरपराध कहकर बदले में गणेशजी के अङ्गहीन होने का शाप दिया। यमने कहा कि यह कहां का न्याय है कि देखने की आज्ञा देने पर और सारी बात जानने पर भी शनि को शाप दिया गया। हम भी शाप देते हैं मारनेवाले को मारने में क्या कोई अधर्म है ? ब्रह्माजी ने बीचवई कर उन्हें समझाया कि स्त्री के चपल स्वभाव से यह सब हुआ आप लोग क्षमा करें और पार्वती को कहा कि अपने बालक को देखने की आज्ञा देकर निर्दोष अतिथि को आपने क्यों शाप दिया ? ब्रह्माजी के समझाने-बुझाने पर पार्वतीजी ने शाप छुड़ाने का और वर देने का उपक्रम किया। इसपर शनि को ग्रहराज होने, चिरंजीव और हरिभक्तिपरायण होने का वरदान दिया गया। शाप के अमोघ होने से थोड़ा-थोड़ा खञ्ज होओगे यह कहा। इस प्रकार आपसकी समझौते की भावनां से आनन्द छा गया और शनि विदा हो गये।

१३	विष्णुकृतं गणेशस्तोत्रं	४१४
	विष्णुकृतं गणेशकवचम्	४१७

विष्णु भगवान् ने शुभ समय में देवगणों के साथ बालक गणेश की पूजा की और सबसे प्रथम देवगण में उनकी पूजा होने एवं सर्वपूज्य होने का वरदान दिया। भगवान् विष्णु ने विघ्नेश, गणेश, हेरम्ब, गजानन, लम्बोदर, एकदन्त, शूर्पकर्ण और विनायक आदि नाम निकाले तथा खूब शुभाशीर्वाद दिये। धर्म ने सिद्धासन, ब्रह्मा ने कमण्डलु, शङ्कर ने योगपट्ट और दुर्लभतत्त्वज्ञान, इन्द्र ने रत्नसिंहासन, सूर्य ने मणिकुण्डल, वरुण आदि देवताओं ने नाना आभूषण और पृथिवी ने वाहन के लिये मूषक दिया। सभी ने भक्ति से पूजा की और देवगण ने

वेदमन्त्रों से गणेशजी को स्नान कराया और गणेशमन्त्र से हिमालय ने पूजा की और दान दिया। तब विष्णु ने गणेशजी का स्तोत्र और कवच पाठ किया। इनके पठन करने से अनन्त फल की प्राप्ति होती है।

१४ कार्तिकेय प्रवृत्तिप्राप्तिः ४२०

प्रथम आदि सर्ग में जो रतिसङ्गम भगवती पार्वती एवं शंकरजी ने किया उससे प्राप्त शङ्कर के अमोघ वीर्य के विषय में पार्वतीजी ने विष्णु भगवान् से जिज्ञासा की और विष्ण भगवान् ने देववृन्द को उस वीर्य की खोजकरने को विशेष जोर दिया। सभी देवगण ने उस वीर्य के हरनेवाले को भला बुरा कहा। इसपर विष्णु ने कहा कि जब देवताओं ने उसे नहीं लिया तो फिर किसने लिया? तब धर्म ने कहा वह पृथ्वी पर गिरा; पृथ्वी ने कहा मैंने उसे धारण न कर सकने के कारण अग्नि में डाल दिया। अग्नि ने भी अपनी असमर्थता बतलाकर उसे शरों के वन में डाल दिया। वायु ने उस वीर्य से सुन्दर बालक होने की बात कही। चन्द्र ने कृत्तिकागण द्वारा उसके पालन-पोषण की बात प्रकट की और उसका कार्तिक नाम का रहस्य बतलाया। इसपर पार्वती ने प्रसन्न होकर अति मात्रा में दान दिया।

१५ शिवदूतैः कृत्तिकाभवनगमनम् कार्तिकतादिसंवादश्च ४२३

पार्वतीजी के साथ शङ्कर ने कार्तिक के जन्म की बात सुनकर अपने महाबलशाली वीरभद्र, विशालाक्ष आदि पार्षदों को कृत्तिकागण के भवन को घेरने के लिये भेजा। इसपर कृतिकागण डर गईं और कार्तिक को सारा वृत्तान्त कहा गया। नन्दिकेश्वर ने कार्तिक को कहा कि गणेशजन्म के मङ्गलोत्सव और वहां परतुम्हारे प्रकरण को लेकर खोजने की आज्ञा देने पर क्रमशः कृत्तिका स्थान में तुम्हारा ठीक ठिकाना बताया गया अतः अब तुम हमारे साथ चलो। कृतिकागण

को लेकर विष्णु देवताओं के साथ तुम्हारा अभिषेक करेंगे और तुम्हें तारक दैत्य को मारने के लिये सब प्रकार के शस्त्रास्त्र देंगे। अतः महत्त्वपूर्ण जीवनवाले महान् पुरुष कहीं एकान्त में थोड़े ही रहते हैं- ऐसा समझकर हमारे साथ चलो। इसपर कार्तिक ने पूर्व जन्मों की सारी कथा कहकर भगवान् श्रीकृष्ण की प्रकृतीश्वरी साक्षात् पार्वतीजी को अपनी माता कहा क्योंकि उसके स्वामी भगवान् शङ्कर के वीर्य से मेरा जन्म हुआ है और कृत्तिकागण का मैं पोष्यपुत्र हूं क्योंकि उनके स्तनपान से ही मैं पालापोसा गया हूं। हे नन्दिकेश्वर ! मैं शैलकन्या पार्वती के गर्भ से उत्पन्न नहीं हूं। वह मेरी धर्म-माता हैं और ये सर्वसम्मत मातायें हैं— स्तनदात्री, गर्भदात्री, भक्ष्यदात्री गुरुप्रिया। अभीष्टदेवपत्नी च पितुः पत्नी च कन्यकाः सगर्भकन्या भगिनी पुत्रपत्नी प्रियाप्रसूः। मातुर्माता पितुर्माता सोदरस्य प्रिया तथा मातुः पितुश्चभगिनी मातुलानी तथैव च। जनानां वेदविहिता मातरः षोडशस्मृताः

ये कृत्तिका कोई छोटी माया नहीं हैं। ये ब्रह्माजी की कन्या हैं और महाविभूति सम्पन्न हैं। ये तीनों लोकों में पूजित हैं। जब विष्णु ने तुम्हें कहा है तो मैं शङ्करजी का पुत्र हूं आओ चलें देवगण के दर्शन करें।

१६ कार्तिकगमनम् ४२६

कार्तिक ने कृतिकागण को सारी अच्छी तरह से सान्त्वना देकर उनसे शङ्करजी के यहां जाने के लिये आज्ञा मांगी और सम्पूर्ण जगत् दैवाधीन कहकर उन्हें भगवान् कृष्ण के भोजन करने की बातें कही। यह जगत् जलबुद्बुद के समान अनित्य हैं। मूर्ख लोग माया से सबकुछ करते रहते हैं। जब वह विदा होने की तैयारी करने लगे तो सुन्दर रथ वहां आगया और कृत्तिकागण ने दु:खी हृदय से अपना प्रेम का भाव प्रगट किया और अपने पुत्र के गमन वियोग से मूर्छित होकर गिर पड़ीं। कार्तिक ने उन्हें आध्यात्मिक ज्ञान की चर्चा से समझाकर रथपर सवार होकर यात्रा की। मार्ग में पूर्ण पूर्णकलश, द्विज, वेश्या,

सफेद धान्य, दर्पण, दधि, घृत, मधु, लाज, फूल, दूब, अक्षत आदि शुभशकुन के पदार्थ मिले। कैलास पहुंचने पर भगवती पार्वती को उनके मङ्गलाशासन के लिये प्रचुर सज्जा करते हुए देखा। सभी को उपस्थित देख पार्वती के सामने रथ से उतर कर कार्तिक ने प्रणाम किया और क्रमशः सबको दण्डवत् प्रणाम के साथ अभिवादन किया। सभी ने कार्तिक को शुभाशीर्वाद से वर्द्धापन किया।

१७ कुमाराभिषेकः ४२८

अब विष्णु ने शुभलग्न में रत्नसिंहासन पर कार्तिक को बिठाकर वेदमन्त्र से अभिषिक्त तीर्थों के जल से स्नान कराया। ब्रह्मा ने उसे प्रज्ञा एवं सन्ध्यामन्त्र, विष्णुमन्त्र और कवच, स्तोत्रादि वेदों ने दिये शङ्करजी ने पाशुपत संहारास्त्र आदि दिये। अन्य सभी देवतागण ने उन्हें अपने-अपने विशेष आयुध दिये और कार्तिक का अभिषेक कर अपने-अपने घर चले गये। समय आने पर भगवान् शङ्कर ने स्कन्दकार्तिक और गणेश का विवाह कर दिया। इस प्रकार संक्षेप में, कार्तिक के मिलने से सारे देवगणों में आनन्द और उत्साह की लहर दौड़ गई।

१८ विघ्नेशविघ्नकथनम् ४३०

नारदजी ने भगवान् विघ्ननाशक गणेशजी के मस्तक छेदन के विघ्न को लेकर प्रश्न किया। इसपर पुराने इतिहास से भगवान् नारायण ने उनका समाधान किया। उन्होंने कहा कि पुराकल्प में एक बार शङ्करजी ने अपने भक्त माली और सुमाली के मारने सूर्य के ऊपर शूल से प्रहार किया। इसपर वह मूर्छित होकर रथ से गिर पड़ा। उसे इस अवस्था में कश्यपजी ने देखा और अपनी गोद में लेकर शोक से अतीव विलाप किया। अपने निष्प्रभ पुत्र की हीन अवस्था देखकर कश्यपजी ने शङ्करजी को शाप दिया कि जैसे मेरे पुत्र को छाती में प्रहार कर उसे छिन्न किया है वैसे ही तुम्हारे पुत्र का भी शिर छिन्न होगा।

जब आशुतोष भगवान् शङ्कर का क्रोध शान्त हो गया तो उन्होंने ब्रह्मज्ञान द्वारा सूर्य को उसी क्षण जिला दिया। सूर्य भगवान् चेतना पाकर उठे और कश्यपजी एवं शङ्करजी को सामने देखकर भक्ति से प्रणाम किया और शङ्कर को दिये गये शाप का वर्णन सुनकर सूर्य ने अपने पिता को भला-बुरा कहा और सभी सूर्य को आशीर्वाद देकर अपने-अपने स्थान को चले गये। माली और सुमाली के कोढ़ निकल आई उन्हें ब्रह्मा ने सूर्य की प्रार्थना करने की बात कही और सूर्य कवच के पाठ से स्वस्थ होने का रहस्य कहा। वे दोनों पुष्कर जाकर त्रिकाल स्नान कर सूर्य के मन्त्र का जप करते रहे। सूर्य को भक्ति से सन्तुष्ट कर उन्हें पूर्व स्वरूप मिल गया और वे आनन्दपूर्वक जीवन बिताने लगे।

१९ भास्करपूजनं स्तोत्रञ्च ४३२

नारद ने सूर्य पूजा का स्तोत्र, कवच आदि को विस्तार से बताने के लिये जो प्रश्न किया उसके उत्तर में ब्रह्माजी द्वारा सूर्य कवच के पारायण की विधि का विस्तार से वर्णन बताया। इसे बृहस्पति ने इन्द्र को हजार भग होने पर प्रीतिपूर्वक साधन करनेको बतलाया था। इस कवच का अनन्त फल सभी रोगों से छुटकारा और इष्टसिद्धि की प्राप्ति होती है।

२० गजमुखयोजनहेतुकथनम् ४३४

फिर नारदजी ने गणेशजी के हाथी के मुह को लगाने के विषय में पूछा। इसपर श्रीनारायण ने पाद्मकल्प का पुरातन इतिहास समझाया। एक बार पुष्पभद्रानदी के किनारे, महेन्द्र देवराज बैठे थे। उस समय रम्भा को खूब सजी-सजाई देखकर उनको कामविकार हो गया और उसने इन्द्रिय चपलता से रम्भा को बुलाया और कई प्रकार के फुसलानेवाले चाटुकारी वाक्यों से उसे आकृष्ट करने का प्रयत्न किया। इसपर रम्भा ने कामी को भ्रमर के समान एक

पुष्पको छोड़कर दूसरे पुष्प पर बैठने की वृत्तिवाला कहकर फिर अपना मनका भाव कहा। इन्द्र ने कामशास्त्रानुसार उसके साथ रति की। इस प्रकार वह काममत्त इन्द्र सुख से दिन बिताने लगा। एक दिन दुर्वासा संयोग से आगये उन्होंने भगवान् विष्णु के यहां से लाये गये पुष्प को इन्द्र को उपहार देकर पुष्प धारण का माहात्म्य कहा। देवराज ने उपेक्षा करके इस पुष्प को रम्भा को दे दिया। रम्भा ने इसे हाथी के मस्तक पर रख दिया। जब रम्भा ने देवराज को भ्रष्टश्री देखा तो वह देवगण के यहां स्वर्ग में चली गई। देवराज को छोड़कर वह महाबली हाथी उस फूल को फेंककर जंगल में चला गया वहां पर एक हथिनी के साथ कामोन्मत्त होकर खूब आनन्द से रमण किया और उसके सन्तान फैलने लगी। भगवान् विष्णु ने उस पुष्प के प्रभाव से उसका मस्तक गणेश के मस्तक के स्थान पर लगाया। यही मस्तक का रहस्य है।

२१ शक्रलक्ष्मीप्राप्ति ४३८

नारद ने ब्रह्माजी के शाप से देवता कैसे लक्ष्मी हीन हो गये और फिर कैसे उन्हें लक्ष्मी प्राप्त हो गई इसके लिये पूछा इसपर श्रीनारायण ने कहा कि रम्भा से पराभूत वह इन्द्र जब अमरावती आया तो वहां सब प्रकार से दैत्यग्रस्त बन्धुहीन और वैरिगण से घिरी हुई पुरी को देखकर उसे अत्यन्त दुःख हुआ। अपने दूत से नगरी की सारी दुर्दशा सुनकर वह बृहस्पतिजी के पास गया। वहां से वह इन्द्र के साथ ब्रह्माजी की सभा में चले गये और ब्रह्माजी की स्तुति कर अपने आने का सारा वृत्तान्त कहा। इसपर ब्रह्माजी ने अपने प्रपौत्र सम्बन्ध का स्मरण कराकर इन्द्र के दुराचार सम्बन्धी दुष्कृत्यों को फल समेत कहा और श्रीहीनता का कारण दुर्वासा द्वारा दिये गये भगवान् विष्णु के पुष्प के उपहार को गजेन्द्र के सिरपर उपेक्षा बुद्धि से डालना ही बताया और परस्त्री सेवन से मनुष्य को सदा ही दरिद्र होना पड़ता है। इसका उपाय उन्होंने

भगवान् नारायण का भक्तिभाव से भजन बताया। ब्रह्माजी ने उसे नारायण का कवच दिया। उसने देवगुरु बृहस्पतिजी के साथ देवतागण को लेकर उस मन्त्र और कवच का पुष्कर में जप किया। उसने एक वर्ष तक निराहार रहकर साधना की। इसपर प्रसन्न होकर भगवान् श्रीहरि साक्षात् प्रगट होगये और इन्द्र को इच्छानुसार वर दिया, साथ ही लक्ष्मीस्तोत्र, कवच और ऐश्वर्यवर्धन मन्त्र दिया। इन्द्र ने क्षीरसागर में जाकर उस लक्ष्मीस्तोत्र और कवच का विधि विधान से पाठ कर लक्ष्मीजी की फिर कृपा प्राप्त की। और अमरावती पर अधिकार किये हुए दैत्यों को हरा कर देवगण को अपने-अपने स्थान पर फिर प्रतिष्ठित कर दिया।

२२ लक्ष्मीस्तोत्रं कवचञ्च ४३९

श्रीनारायण ने कहा पुष्कर में तपस्या करते हुए इन्द्र के सामने साक्षात् हरि प्रगट हुए और इच्छित वर मांगने को कहा। इन्द्र ने लक्ष्मी प्राप्ति का वर मांगा इसपर भगवान् ने इन्द्र को महालक्ष्मी कवच और लक्ष्मीस्तोत्र दिया और वह अन्तर्धान हो गये और इन्द्र लक्ष्मजी को प्रसन्न करने के लिये देवगण के साथ श्रीविष्णु की आज्ञा से क्षीरसागर के तटपर चले गये।

२३ महालक्ष्मीचरितम् ४४२

इन्द्र ने महालक्ष्मी के कवच को सद्रत्नगुटिका में रखकर अपने गले में बांधकर मनसे दिव्यस्तवन का स्मरण करते हुए भगवती को प्रसन्न करने में समय लगाया। देवगण भी अति दीन भाव से आंखों में आंसू लाकर और विनम्र होकर जगद्धात्री की पूजा में लगे। भगवती प्रसन्न होकर प्रगट हुईं और ब्राह्मण यदि उनके पास रहने की आज्ञा दें तो रहने का आश्वासन दिया। इसपर सभी ब्राह्मण वहां उपस्थित हो गये। इनमें अङ्गिरा, प्रचेता, क्रतु, भृगु, पुलस्त्य,

मरीचि, और अत्रि आदि प्रमुख हैं। इन्होंने ईश्वरी लक्ष्मी की पूजा विधिविधान से की और लक्ष्मीजी से देवभवन तथा मर्त्यलोक में जाने की प्रार्थना की। इसके बाद महालक्ष्मीजी ने पुण्यवान्, सुनीति को जाननेवाले गृहस्थ और राजा लोगों के पास रहने की बात कहकर जिनके पास वह नहीं रहतीं उन व्यक्तियों और स्थानों की विस्तार से गणना की। इसपर देवता, ऋषियों एवं मुनिगण ने भगवती को प्रणाम किया। फिर देवगण को निश्चल लक्ष्मी की प्राप्ति हो गई।

२४ गणेशस्य एकदन्तत्व विवरणम् ४४४

नारदजी ने भगवान् नारायण से गणेशजी के एकदन्त होने के सम्बन्ध में पूछा। भगवान् ने कहा एक बार कार्तवीर्य जङ्गल में शिकार खेलने के लिये गया। वहां बहुत मृगों की शिकार कर वह बहुत थक गया। दिन बीतने पर सन्ध्या के समय वह जमदग्नि ऋषि के आश्रम के निकट अपनी सेना के साथ ठहर गया। प्रातःकाल उठकर स्नान, सन्ध्या से निवृत्त होकर उसने दत्तात्रेय द्वारा दिये गये मन्त्र का जाप किया। मुनि ने राजा को शुष्क औष्ठ, कण्ठ, तालु-वाला देखकर प्रेम से कुशल पूछा। राजा ने सादर विनम्र प्रणाम किया और ऋषि ने उन्हें शुभाशीर्वाद से वर्द्धापन किया। राजा ने अपने अनशन का सारा वृत्तान्त कह सुनाया। राजा को मुनि ने निमन्त्रण दिया और कामधेनु से आकर सारी बातें कह दीं। माता कामधेनु से सान्त्वना पाकर जमदग्नि प्रसन्न हुए। उस कामधेनु ने सम्पूर्ण भोज्य सामग्री और पाकपात्र दिये। महर्षि ने परिपक्व फल, मिष्टान्न, दुग्ध, घृत, शर्करा, मोदक, ताम्बूलादि सम्पूर्ण सामग्री से राजा को सेना सहित भोजन कराया। इसपर विस्मित होकर राजा ने पूछा कि मेरे से असाध्य इतनी विशाल सामग्रियां कहां से आईं। इसपर उसके सचिव ने कपिला गौ का ही सारा महत्त्व बतलाया। इसपर लोभी राजा ने महर्षि जमदग्नि से उस कामधेनु को मांगा। कर्म की विचित्र गति है पुण्य कर्म से

पुण्यगति और पापकर्म से दुर्गति होती है। कर्म में बन्धे जीव की गति और विस्तार का कोई पता नहीं। अतः सज्जन पुरुष सदा ही कर्म का क्षय किया करते हैं।

सा विद्या तत्तपोज्ञानं स गुरुः स च बान्धवः।
सा माता स पितापुत्रस्तत्क्षयं कारयेत्तु यः॥

इस कर्मभोग के रोग को कृष्णभक्ति रसायन से भक्त वैद्य ही शमन करता है। भगवती जगद्धात्री महामाया ही इसमें प्रधान है। कार्तवीर्य माया से मोहित होकर महर्षि जमदग्नि से कामधेनु को मांगने के लिये बड़ी अनुनय विनय करने लगे। मुनि ने बहुत टालमटोल की। अन्त में राजा ने हठ से कामधेनु को लाने के लिये नौकर को भेजा। महर्षि ने कपिला के पास जाकर अपना दुःख कहा। इसपर कामधेनु ने कहा कि यदि राजी होकर आप राजा को मुझे देंगें तो मैं सहर्ष जाऊँगी नहीं तो कभी भी नहीं जाऊँगी। आप सन्तोष करें। यह कहकर कामधेनु ने कई शस्त्र अस्त्र और बड़ी सेना रच डाली। उसके शरीर से कई कोटि नाना भील जातियां उत्पन्न हुई। मुनि को अब निर्भय रहने का आश्वासन दिया। इस सब तैयारी का पता राजा के नौकरों ने उसे तत्काल दिया इससे उसे बड़ी चिन्ता हुई।

२५ जमदग्नि कार्तिवीर्यार्जुनयुद्धम् ४४८

महर्षि जमदग्नि के पास दुःखित हृदय से कार्तवीर्य ने अपना दूत भेजा कि मुझ अतिथि को चाहे तो आप युद्ध दें चाहे अपनी कामधेनु। मुनि ने कहा कि कामधेनु को बलात् राजा मांगता है तो मैं उसें युद्ध ही देना चाहता हूं। युद्ध की पूरी तैयारी के बाद राजा ने महषि को प्रणाम किया और तुमुल युद्ध हुआ। राजा मूर्छित होकर गिरपड़ा, तब कृपानिधि महर्षि ने अपनी सारी सेना को समेट लिया और कमण्डलुजल से शरीर को छिड़क कर आशीर्वाद दिया कि जाओ

जय हो। फिर राजा ने प्रणाम कर महर्षि से आशीर्वाद लिया और राजा को स्नान, भोजन कराकर जाने के लिये कहा। ब्राह्मण स्वभाव से ही कोमल होते हैं। दूसरे लोग छूरे की धारा के समान असाध्यवदाष्य। राजा नहीं माना और अपने हठ को फिर से दोहराया "या तो युद्ध करो या कामधेनु दो।"

२६ पुनः जमदग्नि कार्तवीर्यार्जुनयुद्धम् ४४९

महर्षि ने राजा की हठ भरी बातों को सुनकर उसे नीतियुक्त वचन कहे। हे राजन् देखो तुम्हारा कितना आतिथ्य किया गया। जब तुम युद्ध में मूर्छित होगये तो तुम्हें आशीर्वाद देकर चेतना दी। इसपर भी युद्ध करने की बात को राजा ने बार-बार दोहराया। युद्ध आरम्भ हुआ। कपिला कामधेनु के प्रताप से महर्षि ने राजा को मूर्छित कर दिया। फिर क्रमशः राजा ने अग्निवाण, वरुणास्त्र, गान्धर्व, नागास्त्र, गारुड़ास्त्र, माहेश्वर, वैष्णव, जृम्भणास्त्र एवं नारायणास्त्रों का प्रयोग किया जिनका समुचित उत्तर उन-उन शस्त्रों के प्रतिकार के अस्त्रों को काम में लेकर मुनि ने दिया। राजा फिर मूर्छित होकर गिर गया। इसपर मुनि ने दया कर उसे चेतना प्रदान की। उठते ही राजा ने अपनी शूल को लेकर मुनि के ऊपर आक्रमण किया पर मुनि ने उसे बीच में ही काट दिया। ब्रह्माजी ने आकर बीचबचाव किया और उनके कहने से वह घर लौट गया।

२७ ससैन्यस्य राज्ञः मुनितपोवने पुनर्गमनम् ४५१

घर से लौटकर फिर जमदग्नि के आश्रम में पूरी सेना की तैयारी कर राजा गया। इस विशाल सेना की सामग्री को देखकर महर्षि जमदग्नि के आश्रम के लोग मूर्छित हो गये और राजा बल से धेनु को लेकर घर जाने को तैयार होगया। महर्षि ने वाणों का एक ऐसा जाल बिछाया कि सारी सेना बिंध गई। राजा बार-बार मूर्छित हुआ परन्तु मुनि ने उसे नहीं मारा परन्तु उस दुष्टात्मा ने अपने

सब शस्त्रों की सामर्थ्य की परीक्षा कर फिर अन्त में शक्तिबाण का उपयोग किया। उसने मुनि की छाती को पार कर अपने स्थान में हरि के पास शरण ली और मूर्छित होकर मुनि के वहीं प्राणपखेरू उड़ गये वह ब्रह्मलोक में चले गये। राजा ने ब्रह्महत्या का प्रायश्चित्त कर अपनी राजधानी की ओर प्रस्थान किया। उधर कपिला भी तात! तात!! कहती हुई गोलोक चली गई और वहां श्रीकृष्ण को यह सारी घटना उसने कह सुनाई। कामधेनु को कृष्ण ने ब्रह्माजी को दिया, ब्रह्माजी ने भृगु को, और भृगु ने प्रसन्न होकर पुष्करक्षेत्र में जमदग्नि को दिया। इधर रेणुका ने पति को स्वर्गत सुनकर महर्षि जमदग्नि के शव के पास जाकर उसे गोद में लेकर विलाप किया और मूर्छित हो गई। रेणुका ने अपने पुत्र परशुराम को याद किया। योग के प्रभाव से परशुराम ने पुष्कर से आकर बहुत विलाप किया और सुन्दर चिता तैयार की। रेणुका ने राम को छाती से लगाया और कपोल तथा शिर में चुम्बन कर जोर-जोर से रुदन किया और परशुराम को तपस्या करने के लिये कहा। परशुरामजी ने माता की आज्ञा को अनसुनी कर २१ बार पृथ्वी को क्षत्रियों से शून्य कर दूँगा यह प्रतिज्ञा की। इस पर भी ११ आततायी लोगों को मारने की वेद आज्ञा देते हैं। इससे प्रसन्न होने को माता से कहा।

पितुः शासनहन्तारं पितुर्वधविधायकम्। यो न हन्ति महामूढो रौरवं स व्रजेद्ध्रुवम्।
अग्निदो गरदश्चैव शस्त्रपाणिर्धनापहा। क्षेत्रदारापहारी च पितृबन्धुविहिंसकः ॥४६
सततं मन्दकारी च निन्दकः कटुवाचकः। एकादशैते पापिष्ठा वधार्हा वेदसम्मताः॥
द्विजानां द्रविणादानं स्थानान्निर्वासनं सति। वपनं ताडनञ्चैव धर्म्ममाहुर्म्मनीषिणः

रोते हुए परशुरामजी को रेणुका ने ज्ञान दिया और कर्मबन्धन के लिये भगवद्भक्ति को ही एक मात्र उपाय बतलाया।

रेणुका ने भृगु से कहा कि ऋतुधर्म का आज चतुर्थ दिवस है अतः तुम अकस्मात् ही पूर्व पुण्यों के प्रताप से उपस्थित हो गये हो अतः मेरे स्वामी के साथ सती होने की व्यवस्था के सम्बन्ध में निर्णय दो। इसपर भृगुजी ने चतुर्थदिवस पति के लिये शुद्ध कहा गया है न कि दैव और पितृकार्यों के लिये। इसलिये महर्षि के साथ सती होकर स्वर्गयात्रा करने की प्रार्थना की।

स पुत्रो भक्तिदाता यः साचस्त्रीयाऽनुगच्छति।
सबन्धुर्दानदाता यः स शिष्यो गुरुमर्चयेत्॥
सोऽभीष्टदेवो यो रक्षेत् स राजा पालयेत्प्रजाः।
स च स्वामी प्रियाधर्मे मतिं दातुमिहेश्वरः॥
स गुरुर्धर्मदाता यो हरिभक्तिप्रदायकः। एते प्रशंस्या वेदेषु पुराणेषु च निश्चितम्॥

फिर भृगु से रेणुका ने स्वामी के साथ जाने योग्य और न जाने योग्य स्त्रियों के लिये पूछा। इसपर भृगु ने वालक पुत्रवाली, गर्भिणी, अऋतुमती, रजस्वला, कुलटा, गलित व्याधिवाली पतिसेवाहीन, कटु बोलनेवाली अभक्त स्त्री अयोग्य है तथा दूसरी सब पति को प्राप्त करती हैं। कृष्णभक्त पति के पीछे साध्वी उसे प्राप्त करती है। फिर रेणुका ने भृगुजी के धर्मयुक्त वचन अपने जीवन में पालने के लिये कहा और पति के साथ सती होकर ब्रह्मलोक को गई। तव फिर ब्रह्माजी के यहाँ जाकर परशुरामजी ने कार्तवीर्य की दुष्टता और पिताजीकी स्वर्गगति का वर्णन किया और अपनी प्रतिज्ञा कह सुनाई। ब्रह्माजी ने प्रकृतिगत जन्म-मरण के इस अनादि प्रवाह में इस प्रतिज्ञा को बाधक कहकर शिवजी के पास जाकर उपाय पूछने को कहा।

२९ परशुरामस्य शिवसमीपेगमनम् तपस्यीद्योगंश्च ४५९

परशुराम ब्रह्माजी से आज्ञा लेकर शिवलोक को गये। वहां द्वार पर दो भयानक आकृतिवाले द्वारपालों को उन्होंने देखकर मनमें डरते हुए कहा कि मेरे साथ कार्तवीर्य का सहज वैर पिताजी के द्वारा अच्छा व्यवहार करने पर भी उन्हें मारने के कारण हो गया है। इसपर ब्रह्माजी ने मुझे भगवान् शंकरजी के दर्शनों के लिये कहा है मुझे शिवजी से मिलने का अवसर दो। शङ्करजी ने परशुरामजी को लिवालाने की आज्ञा दी और उनने शङ्करजी की सभा में पार्षद-गण, कार्तिकेय, गणेश, माता पार्वती आदि को देखकर विनम्र भाव से प्रणाम किया और भगवान् की भक्तिभाव से स्तुति की। भगवान् शङ्कर बहुत प्रसन्न हुए और परशुरामजी को आशीर्वाद प्रदान किया।

३० शिवशिवासमीपे परशुरामस्य वरप्रार्थनम् ४६२

पार्वती एवं शङ्करजी के यहां जानेपर शङ्करजी ने परशुराम को आने का कारण पूछा। परशुराम ने पिता के असामयिक दारुण मृत्यु का आदि से अन्त तक वर्णन कर कार्तवीर्य की कृतघ्नता की निन्दा की और २१ बार निःक्षत्रिय भूमि को करने की अपनी दृढ़ प्रतिज्ञा कहकर अपनी रक्षा करने और शरण में आनेकी बात कही। शङ्कर पार्वती दोनों ही इस विषय को सुनकर हक्के-बक्के रह गये और परशुराम को हर सम्भव उपाय से समझाया। परन्तु परशुराम ने मरने की कड़ी धमकी दी और अपने निस्तार का उपाय पूछा। इसपर शङ्करजी ने पार्वती और भद्रकाली को समझाकर उनके निर्देश से भृगु को त्रैलोक्यविजय नामक कवच, पूजाविधान, मन्त्र, और सम्पूर्ण अस्त्र-शत्र चलाने की विद्या सिखाई। परशुराम ने दीर्घकालतक विद्यायें सीखकर, और तीर्थ में मन्त्रसिद्धि कर शङ्कर को प्रणाम कर अपने स्थान की ओर गमन किया।

३१ तुष्टेन शिवेन स्वकवचादिदानम् ४६४

शङ्कर ने प्रसन्न होकर जो कवच दिया उसके सम्बन्ध में नारदजी ने विस्तार से पूछा। इसपर श्रीनारायण ने त्रैलोक्यविजय कवच का अविकल विधान पाठ और सिद्धि विधान कहा। इसको सिद्ध करनेवाला जीवन्मुक्त हो जाता है। कवच की अद्वितीय फलश्रुति।

३२ परशुरामाय स्तोत्रमन्त्रपूजाप्रदानम् ४६७

परशुराम ने इसके बाद स्तोत्र, मन्त्र और पूजाविधान पूछा। इसपर शङ्करजी ने "ॐ श्रीं नमः श्रीकृष्णाय परिपूर्णतमाय च" यह सोलह अक्षरों का मन्त्र बताया। इसकी पांच लाख संख्या जपने से सिद्धि होजाती है साथ ही इसके जप का दशांश हवन, उसका दशांश अभिषेक, उसका दशांश तर्पण और उसका दशांश मार्जन करना आवश्यक है। भगवान् श्रीकृष्ण की राधा सहित सम्पूर्ण देवगण ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर के साथ पूजा की गई। गणेश, दिनेश, अग्नि, पार्वती, विष्णु एवं शिव की पूजा कर सामवेदोक्त स्तोत्र बताया। इसको कहकर उन्होंने पुष्करराज में जाकर तपस्या करने को आदेश दिया। जिससे मन्त्रसिद्धि के साथ सम्पूर्ण वाञ्छित मिलेगा।

३३ परशुरामस्य तपश्चरणम् ४७२

परशुराम पुष्कर तीर्थ में गये और भगवती दुर्गा एवं काली समेत शङ्करजी को प्रणाम कर इस मन्त्रराज को भगवान् श्रीकृष्ण का ध्यान करते हुए प्राणायामादि से मन और शरीर को संयम कर सिद्ध किया। इसपर श्रीकृष्ण प्रसन्न होकर प्रगट हुए। परशुराम ने तब २१ बार पृथ्वी को क्षत्रियविहीन करूँ यह वर मांगा और श्रीकृष्ण भगवान के चरणारविन्द में भक्ति मांगी। 'तथास्तु' कहकर श्रीकृष्ण

अन्तर्धान हो गये। उसी समय भगवान् को ज्योंही भक्तिपूर्वक प्रणाम कर रहे थे कि उनका दहिना अङ्ग फड़कने लगा। मङ्गलसूचक सुस्वप्न आये और समय की प्रतीक्षा कर कार्तवीर्य से युद्ध करनेकी वह तैयारी करने लगे। जाते समय उन्हें मङ्गलकारी शुभ शकुन हुए। रात्रि में भी जयसूचक मङ्गलमय स्वप्नों के दर्शन होने से उन्हें अपनी विजय के लिये मनमें दृढ़ विश्वास हो गया।

३४ परशुरामस्य राजसमीपे दूतप्रेषणम् ४७४

नर्मदा के किनारे अपने भाई-बन्धुओं के साथ आकर परशुराम ने अपना दूत युद्ध के आह्वान के लिये और २१ बार बिना क्षत्रियों की पृथ्वी बना देने की प्रतिज्ञा को बताने के लिये राजा के पास भेजा। युद्ध का आमन्त्रण मानकर ज्योंही राजा तैयारी कर जाने लगा तो उसकी स्त्री ने रोका। इसपर कार्तवीर्य ने अपनी आशंकामूल भीति को रानी से कहकर अपने दुःस्वप्नों की बातें विस्तार से कही। इसपर उसकी स्त्री मनोरमा ने युद्ध न करने के लिये अपने पति कार्तवीर्य को समझाया। विप्र के साथ विरोध न कर सदा विनम्रभाव से झुकने में ही अपना सब का हित है। सती स्त्रियों के लिये सौ पुत्रों से भी अधिक प्रिय पति ही वेदों में साक्षात् भगवान् हरि ने बतलाया है। कार्तवीर्य ने अपनी स्त्री को बार-बार न रोकने के लिये समझाया और काल की विचित्र गति कहकर अपनी मृत्यु जब परशुराम के हाथ में ही लिखी है तो फिर टालनेवाला कौन है। इस प्रकार सान्त्वना देकर अपनी अक्षौहिणी सेना को लेकर कार्तवीर्यार्जुन ने गले से गले मिलकर स्त्री से युद्ध के लिये विदा मांगी।

३५ राज्ञो युद्धयात्रा ४७६

राजा के जाने के पहले ही मनोरमा ने अपने शरीर को योगमाया से षट्चक्र भेदन कर परब्रह्म में अपनेको मिला लिया। राजा ने उस सती

को मृत देखकर बहुत विलाप किया परन्तु अब क्या होसकता था। इसपर आकाशवाणी हुई और उसने घोषणा की कि हे राजन् स्थिर रहो रोदन मत करो। दत्तात्रेय तुम्हारे गुरु हैं तुम ज्ञानी जनमें श्रेष्ठ हो यह संसार जल के बुलबुलों के समान है। वह मनोरमा कमलालय के यहां चली गई अब तुम भी शीघ्र ही युद्ध में जाकर वैकुण्ठ का मार्ग ग्रहण करो। इसपर शोक को छोड़कर राजा ने अपनी प्राणप्यारी मनोरमा के लिये चन्दनकाष्ठ की चिता बनाई और अपने पुत्र से उस का दाह संस्कार करवाया और और्ध्वदेहिक क्रिया के बाद मनोरमा के पुण्य से ब्राह्मणादि को प्रचुर धनधान्य प्रदान किया। राजा दुःखी हृदय से युद्धभूमि में गया परन्तु मार्ग में उसे अशुभ शकुन होते चले गये। युद्धक्षेत्र में जाकर राजा ने भृगु एवं परशुराम को प्रणाम किया और राजा को भृगु ने स्वर्ग जाओ यह आशीर्वाद दिया। फिर रथ पर चढ़कर ब्राह्मणों को उसने युद्ध करने के पहले प्रचुर मात्रा में दान दिया। परशुराम ने कार्तवीर्य से उसके इस दुष्टाचरण का कारण पूछा। इसपर राजा ने ब्राह्मण, मुनि, योगी, भक्त चारों वर्णों की परिभाषा बताकर कामधेनु के प्रति आकर्षण ही राजसी राजा के लोभ का और महर्षि जमदग्नि की मृत्यु का कारण बना। इसके बाद युद्ध में कार्तवीर्य मारा गया और उससे शिव कवच लिया। शिवकवच का वर्णन।

३६ सुचन्द्रेण नृपतिना सह रामस्ययुद्धम् ४०६

मत्स्यराज के बाद कार्तवीर्य ने नाना देशों के राजाओं को लड़ने के लिये भेजा परन्तु सभी परशुराम के सामने हतवीर्य हो गये। तीन रात तक राजाओं के साथ युद्ध किया और बारह अक्षौहिणी सेना को अपने फरशे से मार गिराया। अब सूर्यवंशी राजा सुचन्द्र इन राजाओं का मरा देख अपने एक लाख राजाओं के साथ आया। उसे भी परशुराम ने सेना समेत फरशे से मौत के घाट उतारा। परन्तु सुचन्द्र के गले में कालीकवच होने से उसकी रक्षा साक्षात भगवती काली

महामाया ने की। इसपर परशुरामजी को आश्चर्य हुआ। ब्रह्मा ने आकर परशुरामजी से सारी बात कही और दशाक्षरी महाविद्या को सुचन्द्र से मांगने के लिये कहा तब ही कार्य में सिद्धि हो सकती है अन्यथा नहीं।

३७ कालीकवचम् ४८६

नारदजी ने भद्रकाली के कवच के सम्बन्ध में पूछा। श्रीनारायण ने विस्तार से श्रीकालीकवच का विधान समझाया।

३८ सुचन्द्रं पतितंदृष्ट्वाऽपरैः राजभिः सह रामयुद्धम् ४९०

रामेणपाशुपतास्त्रग्रहणम् ४९१

विष्णुना रामाय लक्ष्मीकवचकथनम् ४९३

सुचन्द्र युद्ध में पराजित होकर मारा गया तब राजाओं ने परशुराम से युद्ध किया। सुचन्द्र के पुत्र पुष्कराक्ष से जब युद्ध हो रहा था तो परशुराम के भाइयों ने शूल फेंका तो वह फूल की मालिका बनाई। ऐसे ही विचित्र चमत्कार उसने दिखाये। तब अन्त में शङ्कर भगवान् की साधना से परशुराम ने पाशुपत अस्त्र धारण किया परन्तु भगवान् नारायण ने बीच में ही विप्र का वेष धरकर पुष्कराक्ष को मारने और कार्तवीर्य पर जय पाने के लिये लक्ष्मीकवच की साधना की बात कहीं। परशुराम ने नारायण से परिचय पूछकर पुष्कराक्ष और उसके पुत्र के पास से कवच लाने के लिये याचना की। विष्णु भगवान् स्वयं उनके पास गये और दोनों पितापुत्र से उस कवच को मांग लिया। नारद के पूछने से श्रीनारायण ने बताया कि इस कवच को सनत्कुमार ने पुष्कराक्ष को दिया। यह मन्त्र दश अक्षरों का है। फिर लक्ष्मी कवच का पाठ परशुराम को दिया जिससे वह विजयी बने।

श्रीनारदजी के द्वारा दुर्गाकवच के विषय में पूछने पर श्रीनारायण ने ब्रह्माण्डविजय दुर्गा कवच का अविकल वर्णन किया।

उन दोनों कवचों को लेकर सहस्राक्ष और उसके पुत्र को परशुराम ने एक सप्ताह तक युद्ध कर मार दिया। अब कार्तवीर्य स्वयं युद्ध में आ उपस्थित हुआ। जब आमने-सामने दोनों आये तो रथ से उतरकर राजा ने परशुराम को प्रणाम किया। परशुराम ने समयोचित आशीर्वाद दिया कि जाओ सकुशल स्वर्ग में रहो। अब भयङ्कर युद्ध हुआ और परशुराम राम के भी इसमें दांत खट्टे होगये। एकाएक आकाशवाणी हुई कि कार्तवीर्य के पास कृष्णकवच है। शम्भु उसे मांग कर परशुराम को देसकते हैं। इसपर शंकरजी ने जाकर कार्तवर्य से मांगकर कृष्णकवच परशुरामजी को दिया। देवगण अपने-अपने स्थानों को चले गये और परशुरामजी ने कार्तवीर्य को फिर युद्ध के लिये बुलाया और कालभेद से जय तथा विजय और पराजय होने की बात कही। इस प्रकार प्रणाम कर कार्तवीर्य ने कालभगवान् की सारी विडम्बना कह सुनाई और श्रीकृष्ण की प्राणाधिष्ठात्री प्रकृति माहेश्वरी की विस्तार से लीला गाई। इसके बाद कार्तवीर्य रथपर चढ़कर युद्ध के लिये तैयार हुआ और ब्रह्मास्त्र से परशुरामजी द्वारा मारा गया। उन्होंने इस प्रकार २१ बार पृथ्वी को क्षत्रियविहीन बना दिया। इसपर प्रसन्न होकर सारे देवगण ने पुष्पवृष्टि की और ब्रह्माजी ने आकर कण्व-शाखोक्त सदुपदेश कहा। उन्होंने पिता, माताओर गुरुजन की भूरि-भूरि प्रशंसा की और भगवान् में भक्ति कर श्री गुरुचरणों की शरण में होने का आदेश दिया।

अब अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर परशुराम कैलाश पर भगवान् परम गुरु शिव को नमस्कार करने गये वहां पर माता पार्वती, गणेश, और कार्तिकेय सबको देखा सबसे बातचीत कर ज्योंही परशुराम जाने लगे तो गणेश ने उन्हें रोका और भगवान् शंकर अभी निद्रित है उनके जागने पर उनसे आज्ञा लेकर मैं भी साथ ही चलूंगा इसलिये कुछ समय तक ठहरने की सलाह दी। इसपर परशुरामजी ने बृहस्पति समान युक्तियुक्त वचन कहा।

जिन भगवान् शंकर के प्रसाद से मैंने २१ बार पृथ्वी को क्षत्रियों से शून्य कर दिया और महावीर कार्तवीर्य तथा सुचन्द्र को मारा उनके दर्शन और माताजी के दर्शनों से कृतकृत्य हो मैं शीघ्र ही घरपर जाऊँगा। जिन महादेवाधिदेव जगद्गुरु शंकरजी ने नानाविद्या और दुर्लभ शास्त्रों को पढ़ा उन परम गुरु शंकरजी के दर्शन करने की इच्छा है। इसके उत्तर में श्रीगणेश ने कहा हे भ्रातः! कुछ क्षण ठहरो। एकान्त में स्त्रीयुक्त पुरुष को न देखे। उनके रङ्ग में भङ्ग करनेवाला कालसूत्रनामक नरक में जबतक सूर्य, चन्द्रमा की स्थिति है तबतक रहता है। विशेष रूप से माता, पिता, गुरु और राजा को सुरतसङ्ग में बिलकुल न देखे। ऐसा करनेवाले का सात जन्म तक स्त्री विच्छेद होता है।

श्रोणीवक्षःस्थलंवक्त्रं यः पश्यति परस्त्रियाः।
कामतोऽपि विमूढश्च सोऽन्धो भवति निश्चितम्॥

इसपर भृगुनन्दन परशुरामजी ने कहा हे गणेश निर्विकार बालक का अपने माता-पिता के पास जानेका कोई डर नहीं। ये पार्वती परमेश्वर केवल तुम्हारे ही नहीं सारे जगत् के माता-पिता हैं। अतः बालक से माता-पिता को क्या संकोच है? फिर हँसकर परशुरामजी ने अन्तःपुर में जाने की इच्छा प्रकट की। अब गणेशजी भी कुछ शान्त हो गये। उन्हों ने कहा कि अज्ञानी मनुष्य ज्ञानवान् से ही ज्ञान पाता है और पिता, भाई के मुख से भाग्यशाली ही ज्ञान सुनता है परन्तु मुझ मन्दबुद्धि का भी हे भ्रातः निवेदन सुनो जो निर्गुण है, वह निर्लिप्त हैं। शक्तियों से वह संयुत नहीं है, परन्तु परमशक्तिस्वरूप आनन्दकन्द सच्चिदानन्द जब अपनी ज्योति से प्रकृति में अपना वीर्य छोड़ते हैं तो डिम्ब होता है, वह दिव्य लाख वर्ष तक रहकर परब्रह्म के निःश्वास से वायु फिर मुख, विन्दु और उससे सहसा जल होजाता है और उसमें डिम्ब एक लाख वर्ष तक डिम्ब रहकर फिर सारे विश्वों का आधार महा विराट् उत्पन्न होता है। उस कृष्ण के गात्रलोम के समान संख्यावाले ब्रह्माण्ड हैं उन सब में प्रत्येक ब्रह्मा, विष्णु, शिव और देवगण हैं। अपने स्वांशकला से भगवान् हरि नानारूपधारी होते हैं। उन्ही की पञ्चप्रकृतियां स्त्रीमात्र में सर्वत्रव्याप्त हैं। राधा, पद्मा, सावित्री, दुर्गादेवी तथा सरस्वतीरूप में विराजमान हैं, क्या उनकी लज्जा कहीं चली जाती है? इस प्रकार परमप्रभु श्रीकृष्ण के गुणानुवाद को कहकर श्री परशुराम से कुछ ठहरने को कहा।

इसी बीच में परशुराम ने जाने की शीघ्रता की, परन्तु श्रीगणेश ने उन्हें रोका और दोनों का वाग्युद्ध हुआ। इसपर गणेश पर अपने फरशे से आक्रमण करने की पूरी तैयारी की परन्तु कार्तिकेय के बीच में पड़ने से कुछ सुलह हो गई

और गणेशजी ने योगप्रभाव से सारे ब्रह्माण्डों का परशुराम को दर्शन करा दिया। स्तम्भित परशुराम को वैकुण्ठ, गोलोक सब की लीलायें दिखाईं पड़ीं। वहां पर परशुराम का क्षत्रियनाश के समय किये गये भ्रूणहत्यादि पापों से छुटकारा किया गया और फिर उन्हें चेतना दिलाकर उनका स्तम्भन दूर किया। अब परशुपाम ने गुरुदत्त कवच और स्तोत्रों का पारायण अभीष्टदेव श्रीकृष्ण, जगद्गुरु शम्भु का स्मरण करते हुए किया। गणेश ने इस प्रकार वार करते हुए फरशेको अपने बायें दांत में लगाया वह अव्यर्थ अस्त्र उनके दांत को समूल उखाड़ लाया। वह दांत लहू समेत शब्द के साथ गिरा और सभी लोग त्राहि-त्राहि करने लगे। इस कोलाहल से भगवती पार्वती और शंकरजी बाहर आगये। और गणेश के दांत को देखकर पार्वती जी ने स्कन्द से इसका कारण पूछा।

४४ गणेशदन्तभङ्गं दृष्ट्वा रामम्प्रति गौर्याः उपालम्भः ५१०

पार्वतीजी ने गणेशजी के दांत को टूटा देखकर और परशुराम को इसके लिये उत्तरदायी जानकर उन्हें उलाहना दिया कि फरशे की परीक्षा क्षत्रियों पर कर क्या अब घरवालों पर इसे चलाने का दुःसाहस करते हो। शंकरजी से अमोघ अस्त्र पाकर क्या तुम्हें इतना अभिमान हो गया ? यह कहकर शोकाकुल पार्वती क्रोध से परशुराम को मारने को तैयार हो गईं। इसपर परशुराम ने गुरुदेव श्रीकृष्ण को मन से प्रणाम कर स्मरण किया और एक सुन्दर सुकुमार बालक कोटि सूर्य के प्रकाशवाला उन सब के सामने उपस्थित हुआ। शंकरजी एवं पार्वतीजी ने उन्हें प्रणाम किया। सबको ही बालक शुभाशीर्वाद दिया। शंकरजी ने काण्व शाखोक्त स्तोत्र से उनकी पूजा की और उन्हें अतिथिरूप में पाकर अपनेको धन्य समझा। तब भगवान् ने अपना परिचय दिया कि श्वेतद्वीप से आया हूं और श्रीकृष्णभक्ति विहीन की निन्दा कर कृष्णभक्तों का गणन किया तथा गुरुतत्त्व की प्रशंसा की। श्रीकृष्ण ने परशुराम और गणेश के विवाद को एक

दैवी घटना बताकर उन्हें शान्त किया। तदनन्तर गणेश महिमा और गणेश के आठ नामों का पूर्ण निर्वचन।

४५ गौरीम्बोधयित्वा रामम्प्रतिस्तवादिकरणे विष्णोरुपदेशः ५१५

दुर्गास्तोत्रम् ५१७

पार्वती को इस प्रकार समझाकर विष्णु ने परशुराम को समझया। हे राम! तुमने गणेशजी का फरशे से दाँत उखाड़कर अपराध किया है अतः काण्वशाखोक्त स्तोत्र से दुर्गाजी का और मेरे कहे हुए स्तोत्र से गणपतिजी का तुम पूजन करो। यही भगवती सब की आधार शक्ति हैं इनको प्रसन्न करना ही इष्ट है। यह कहकर विष्णु अपने लोक में चले गये और परशुराम ने गङ्गाजी में स्नान कर विष्णुदत्त स्तोत्र से गणेश और दुर्गाजी की पूजा की। दुर्गास्तोत्र का निरूपण उसके महत्त्व का वर्णन।

४६ गणेशाय तुलसीदाननिषेधकथनम् ४२०

तुलसी गणेशसम्वादः ५२१

दुर्गाजी, गणेश और शंकरजी की स्तुति कर परशुरामजी जाने को तैयार हुए इसपर नारदजी ने गणेश के तुलसी नैवेद्य का भोग क्यों नहीं लगता यह पूछा तब श्रीनारायण ने ब्रह्मकल्प का वृत्तान्त सुनाया। तीर्थों में एक वार यात्रा करती हुई तुलसी ने युवक गणेशजी को गङ्गातीर पर देखा। उसने सकाम होकर गणेश से गजानन, लम्बोदर और गजवक्त्र होने का कारण पूछा और गणेशजी की हँसी करने लगी और उनके तर्जनी के अग्रभाग को तोड़ने लगी। इसपर जब गणेश का ध्यान भङ्ग हुआ तो तुलसी से उन्होंने पूछा कि हे वत्से! तुम कौन हो तुमने तपस्वीगण का ध्यान भङ्ग करने में क्या पाप नहीं समझा? इसपर श्रीगणेश को तुलसी ने अपने स्वामी बनने की प्रार्थना की। इसपर श्रीगणेश ने विवाह कर

स्त्री के साथ जीवन बिताने में दुःख व क्लेश बतलाये और इसे संसार में बन्धन का कारण बतलाया। इसपर तुलसी ने उसे शाप दिया कि जाओ तुम्हारा दारग्रह (विवाह) होगा और गणेश ने तुलसी को शाप दिया कि हे देवि! तुम असुरग्रस्ता बनोगी। इसके बाद महान् लोगों के शाप से वृक्ष बनोगी। इसे सुनकर तुलसी रोने लगी। इसपर कृपा कर यह कहा कि पुष्पों की सारभूता भगवान् कृष्ण की परमप्रिया तुम बनोगी और श्रीकृष्णपूजा में तुम्हारा प्रमुख स्थान रहेगा। यह कहकर गणेश तपस्या के लिये बदरिकाश्रम चले गये। तुलसी ने दुःखी हृदय से एक लाख वर्ष तक तप किया फिर गणेश के शाप से शंखचूड़ की स्त्री बनी। फिर जब वह असुर शंकरजी के त्रिशूल से मर गया तब उनकी कला के अंश से यह नारायणप्रिया वृक्ष बन गई। इस प्रकार तुलसी गणेशजी के नहीं चढ़ती। यह संक्षेप से गणेशखण्ड का इतिहास है। इसको सुननेवाले को राजसूययज्ञ का फल मिलता है और सभी कामनायें पूरी होजाती हैं।

॥ इति तृतीयं श्रीगणेशखण्डम् ॥

शुभमभूयात्।

श्रीगणेशाय नमः ।

श्रीमन्महर्षि वेदव्यास प्रणीतम् ।

ब्रह्मवैवर्त्त पुराणम् ।

तत्रादौ प्रथमं ब्रह्मखण्डं प्रारभ्यते ।

प्रथमोऽध्यायः ।

श्रीपुराणावयवाय नमः ।

तत्रादौ मङ्गलाचरणम् ।

गणेशब्रह्मेशसुरेशशेषाः सुराश्च सर्वे मनवो मुनीन्द्राः ॥
सरस्वतीश्रीगिरिजादिकाश्च नमन्ति देवाः प्रणमामि तं विभुम् ॥
स्थूलात् स्थूलतमां तनुं दधतं विराजं विश्वानि लोमविवरेषु महान्तमाद्यम् ॥
सृष्ट्योन्मुखः स्वकलयापि ससर्ज सूक्ष्मां नित्यां समेत्य हृदि यस्तमजं भजामि ॥
ध्यायन्ते ध्याननिष्ठाः सुरनरमनवो योगिनो योगरूढ़ाः,
सन्तः स्वप्नेऽपि सन्तं कतिकतिजनिभिर्यं न पश्यन्ति तप्त्वा ॥
ध्याये स्वेच्छामयं तं त्रिगुणपरमहो निर्विकारं निरीहं,
भक्तध्यानैकहेतोर्निरुपमरुचिरश्यामरूपं दधानम् ॥

वन्दे कृष्णं गुणातीतं परं ब्रह्माच्युतं यतः। आविर्बभूवुः प्रकृतिब्रह्मविष्णुशिवादयः॥
भक्तपरम्पूर्वं भारतीकामधेनुं श्रुतिगणकृतवत्सो व्यासदेवो दुदोह॥
प्रतिरुचिरपुराणं ब्रह्मवैवर्त्तमेतत् पिबत पिबत मुग्धा दुग्धमक्षय्यमिष्टम्॥

ओं नमो भगवते वासुदेवाय।

ओं नारायणं नमस्कृत्य नरञ्चैव नरोत्तमम्। देवीं सरस्वतीञ्चैव ततो जयमुदीरयेत्॥

ओं भारते नैमिषारण्ये ऋषयः शौनकादयः।
नित्यां नैमित्तिकीं कृत्वा क्रियामूषुः कुशासने॥ १॥

एतस्मिन्नन्तरे सौतिमागच्छन्तं यदृच्छया। प्रणतं सुविनीतं तं विलोक्य ददुरासनम्॥
तंसम्पूज्यातिथिंभक्त्याशौनकोमुनिपुङ्गवः। पप्रच्छकुशलं शान्तं शान्तःपौराणिकं मुदा
वर्त्मायासविनिर्मुक्तं वसन्तं सुस्थिरासने। सस्मितं सर्वतत्वज्ञं पुराणानां पुराणवित्॥
परं कृष्णकथोपेतं पुराणं श्रुतिसुन्दरम्। मङ्गलं मङ्गलार्हञ्च सर्वदा मङ्गलालयम्॥
सर्वमङ्गलबीजञ्च सर्वदा मङ्गलप्रदम्। सर्वामङ्गलविघ्नञ्च सर्वसम्पत्करं वरम्॥ ६॥
हरिभक्तिप्रदं शश्वत् सुखदं मोक्षदं भवेत्। तत्वज्ञानप्रदं दारपुत्रपौत्रविवर्द्धनम्॥ ७॥
पप्रच्छ सुविनीतञ्च विनीतो मुनिसंसदि। यथाकाशे तारकाणां द्विजराजो विराजते॥

शौनक उवाच।

प्रस्थानं भवतः कुत्र कुत आयासि ते शिवम्। किमस्माकंपुण्यदिनंवत्स! त्वद्दर्शनेन च
वयमेव कलौ भीता विशिष्टज्ञानवर्जिताः। मुमुक्षवो भवे मग्नास्तद्धेतुस्त्वमिहागतः॥
भवान् साधुर्महाभागः पुराणेषु पुराणवित्। सर्वेषु च पुराणेषु निष्णातोऽतिकृपानिधिः

श्रीकृष्णे निश्चला भक्तिर्यतो भवति शाश्वती।
तत् कथ्यतां महाभाग! पुराणं ज्ञानवर्द्धनम्॥ १२॥

गरीयसी या मोक्षाच्च कर्ममूलनिकृन्तनी। संसारसन्निबद्धानां निगड़च्छेदकृन्तनी॥
भवदावाग्निदग्धानांपीयूषवृष्टिवर्षिणी। सुखदानन्ददा सौते! शश्वच्चेतसिजीविनाम्॥
यत्रादौ सर्वबीजञ्चपरब्रह्मनिरूपणम्। तस्य सृष्ट्योन्मुखस्यापिसृष्टेस्तत्कीर्त्तनं परम्॥
साकारंवानिराकारंपरमात्मस्वरूपकम्। किमाकारञ्च तद्ब्रह्म तद्ध्यानं किञ्च भावनम्॥

ध्यायन्ते वैष्णवाः किम्वा किम्वा सन्तश्च योगिनः।
मतं प्रधानं केषां वा गूढं वेदे निरूपितम्॥ १७॥

प्रकृतेश्च य आकारो यत्र वत्स! निरूपितः। गुणानां लक्षणं यत्र महदादेश्च निर्णयः॥
गोलोकवर्णनं यत्र यत्र वैकुण्ठवर्णनम्। वर्णनं शिवलोकस्य यत्रान्यत् स्वर्गवर्णनम्॥
अंशानाञ्चकलानाञ्चयत्रसौते! निरूपणम्। के प्राकृताःकाप्रकृतिःकआत्मा प्रकृतेःपरः॥
निगूढं जन्मयेषांवादेवानांदेवयोषिताम्। समुत्पत्तिः समुद्राणां शैलानां सरितामपि॥

के वांशाः प्रकृतेश्चापि कलाः का वा कलाकलाः।
तासाञ्च चरितं ध्यानं पूजास्तोत्रादिकं शुभम्॥ २२॥

दुर्गासरस्वतीलक्ष्मीसावित्रीणाञ्च वर्णनम्। यत्रैव राधिकाख्यानमत्यपूर्वं सुधोपमम्॥
जीवकर्मविपाकश्च नरकाणाञ्च वर्णनम्। कर्मणां खण्डनं यत्र यत्र तेभ्यो विमोक्षणम्

येषाञ्च जीविनां यत् यत् स्थानं यत्र शुभाशुभम्।
जीविनां कर्मणो यस्मात् यासु यासु च योनिषु॥ २५॥
जीविनां कर्मणो यस्मात् यो यो रोगो भवेदिह।
मोक्षणं कर्मणो यस्मात्तेषाञ्च तन्निरूपय॥ २६॥

मनसातुलसीकालीगङ्गापृथ्वीवसुन्धरा। आसां यत्र शुभाख्यानमन्यासामपि यत्र वै॥
शालग्रामशिलानाञ्च दानानाञ्चनिरूपणम्। अपूर्वं यत्र वा सौते! धर्माधर्मनिरूपणम्॥
गणेश्वरस्य चरितं यत्र तज्जन्म कर्म च। कवचस्तोत्रमन्त्राणां गूढानां यत्र वर्णनम्॥
यदपूर्वमुपाख्यानमश्रुतं परमाद्भुतम्। कृत्वा मनसि तत् सर्वं साम्प्रतं वक्तुमर्हसि॥३०॥
यत्र जन्मभ्रमो विश्वे पुण्यक्षेत्रे च भारते। परिपूर्णतमस्यापि कृष्णस्य परमात्मनः॥
जन्म कस्यगृहेलब्धंपुण्येपुण्यवतो मुने। सुतं प्रसूता का धन्या मान्यापुण्यवतीसती॥
आविर्भूय च तद्गेहे क्व गतः केन हेतुना। गत्वा किं कृतवांस्तत्र कथं वा पुनरागतः॥

भारावतरणं केन प्रार्थितो गोश्चकार सः।
विधाय किं वा सेतुञ्च गोलोकं गतवान् पुनः॥ ३४॥

इतीदमन्यदाख्यानं पुराणं श्रुतिदुर्लभम्। दुर्विज्ञेयं मुनीनाञ्च मनोनिर्मलकारणम्॥३५॥

स्वज्ञानाद् यन्मया पृष्टमपृष्टं वा शुभाशुभम्। सद्यो वैराग्यजननं तन्मे व्याख्यातुमर्हसि

शिष्यपृष्टमपृष्टं वा व्याख्यानं कुरुते च यः।
स सद्गुरुः सतां श्रेष्ठो योग्यायोग्ये च यः समः ॥ ३७ ॥

सौतिरुवाच।

सर्वं कुशलमस्माकं त्वत्पादपद्मदर्शनात्। सिद्धक्षेत्रादागतोऽहं यामि नारायणाश्रमम्
दृष्ट्वा विप्रसमूहञ्च नमस्कर्त्तुमिहागतः। द्रष्टुञ्च नैमिषारण्यं पुण्यदञ्चापि भारते ॥३९

देवं विप्रं गुरुं दृष्ट्वा न नमेद् यस्तु संभ्रमात्।
स कालसूत्रं व्रजति यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥ ४० ॥

हरिर्ब्राह्मणरूपेण शश्वद् भ्रमति भारते। सुकृती प्रणमेत् पुण्यात् ब्राह्मणं हरिरूपिणम् ॥
भगवन्! यत्त्वया पृष्टं ज्ञातं सर्वमभीप्सितम्। सारभूतं पुराणेषु ब्रह्मवैवर्त्तमुत्तमम् ॥
पुराणोपपुराणानां वेदानां भ्रमभञ्जनम्। हरिभक्तिप्रदं सर्वतत्वज्ञानविवर्द्धनम् ॥ ४३ ॥
कामिनां कामदञ्चेदं मुमुक्षूणाञ्च मोक्षदम्। भक्तिप्रदं वैष्णवानां कल्पवृक्षस्वरूपकम्
ब्रह्मखण्डे सर्ववीजपरब्रह्मनिरूपणम्। ध्यायन्ते योगिनः सन्तो वैष्णवा यत् परात्परम्

वैष्णवा योगिनः सन्तो न च भिन्नाश्च शौनक।
स्वज्ञानपरिपाकेन भवन्ति जीविनः क्रमात् ॥ ४६ ॥
सन्तो भवन्ति सत्सङ्गाद् योगिसङ्गेन योगिनः।
वैष्णवा भक्तसङ्गेन क्रमात् सद्योगिनः पराः ॥ ४७ ॥

यत्रोद्भवश्च देवानां देवीनां सर्वजीविनाम्। ततः प्रकृतिखण्डे च देवीनां चरितं शुभम्
जीवकर्मविपाकश्च शालग्रामनिरूपणम्। तासाञ्च कवचस्तोत्रमन्त्रपूजानिरूपणम् ॥
प्रकृतेर्लक्षणं तत्र कलांशानां निरूपणम्। कीर्त्तेरुत्कीर्त्तनं तासां प्रभावश्च निरूपितः ॥

सुकृतीनां दुष्कृतीनां यद् यत् स्थानं शुभाशुभम्।
वर्णनं नरकाणाञ्च रोगाणां मोक्षणं ततः ॥ ५१ ॥

ततो गणेशखण्डे च तज्जन्म परिकीर्त्तितम्। अतीवापूर्वचरितं श्रुतिवेदसुदुर्लभम् ।५२।
गणेशभृगुसंवादसर्वतत्वनिरूपणम्। निगूढकवचस्तोत्रमन्त्रतन्त्रनिरूपणम् ॥ ५३ ॥

श्रीकृष्णजन्मखण्डश्च कीर्त्तितश्च ततः परम्। भारते पुण्यक्षेत्रे च श्रीकृष्णजन्म कर्म च
भुवो भारावतरणं क्रीड़ाकौतुकमङ्गलम्। सतां सेतुविधानश्च जन्मखण्डे निरूपितम्॥
इदं ते कथितं विप्र! पुराणप्रवरं वरम्। चतुःखण्डपरिमितं सर्वधर्मनिरूपितम्॥ ५६॥
सर्वेषामीप्सिततमं सर्वाशापूर्णकारणम्। ब्रह्मवैवर्त्तकं नाम सर्वाभीष्टफलप्रदम्॥ ५७॥
सारभूतं पुराणेषु केवलं वेदसम्मितम्। विवृतं ब्रह्मकात्स्न्र्यञ्च कृष्णेन यत्र शौनक!॥
ब्रह्मवैवर्त्तकं तेन प्रवदन्ति पुराविदः। इदं पुराणसूत्रञ्च पुरा दत्तञ्च ब्रह्मणे॥ ५९॥
निरामये च गोलोके कृष्णेन परमात्मना। महातीर्थे पुष्करे च दत्तं धर्माय ब्रह्मणा॥
धर्मेण दत्तं पुत्राय प्रीत्या नारायणाय च। नारायणर्षिर्भगवान् प्रददौ नारदाय च॥६१
नारदो व्यासदेवाय प्रददौ जाह्नवीतटे। व्यासः पुराणसूत्रं तत् संव्यस्य विपुलं महत्॥
मह्यं ददौ सिद्धक्षेत्रे पुण्यदे सुमनोहरम्। मयेदं कथितं ब्रह्मन्! तत् समग्रं निशामय॥
अष्टादशसहस्रन्तु व्यासेनेदं पुराणकम्। पुराणकात्स्न्र्य श्रवणे यत् फलं लभते नरः।
तत् फलं लभते नूनमध्यायश्रवणेन च॥ ६४॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे सौतिशौनकसंवादे ब्रह्मखण्डेऽनुक्रमणिका नाम प्रथमोऽध्यायः।

द्वितीयोऽध्यायः।

परब्रह्मनिरूपणम्

शौनकउवाच।

किमपूर्वं श्रुतं सौते! परमाद्भुतमीप्सितम्। सर्वं कथय संव्यस्य ब्रह्मखण्डमनुत्तमम्॥१

सौतिरुवाच।

वन्देगुरोःपादपद्मंव्यासस्यामिततेजसः। हरिंदेवान् द्विजान्नत्वाधर्मान् वक्ष्येसनातनान्
यत् श्रुतं व्यासवक्त्रेण ब्रह्मखण्डमनुत्तमम्। अज्ञानान्धतमोध्वंसि ज्ञानवर्त्मप्रदीपकम्॥

ज्योतिःसमूहं प्रलये पुरासीत् केवलं द्विज ! । सूर्य्यकोटिप्रभं नित्यमसंख्यविश्वकारणम

स्वेच्छामयस्य च विभोस्तज्ज्योतिरुज्ज्वलं महत् ।

ज्योतिरभ्यन्तरे लोकत्रयमेव मनोहरम् ॥ ५ ॥

तेषामुपरि गोलोकं नित्यमीश्वरवद् द्विज । त्रिकोटियोजनायामविस्तीर्णं मण्डलाकृति

तेजःस्वरूपं सुमहद्रत्नभूमिमयं परम् । अदृश्यं योगिभिः स्वप्ने दृश्यं गम्यञ्च वैष्णवैः॥

योगेन धृतमीशेन चान्तरीक्षस्थितं वरम् । आधिव्याधिजरामृत्युशोकभीतिविवर्जितम्॥

सद्रत्नरचितासंख्यमन्दिरैः परिशोभितम् । लये कृष्णयुतं सृष्टौ पापगोपीभिरावृतम्॥

तदधो दक्षिणे सव्ये पञ्चाशत्कोटियोजनात् ।

वैकुण्ठं शिवलोकञ्च तत्समं सुमनोहरम् ॥ १० ॥

कोटियोजनविस्तीर्णं वैकुण्ठं मण्डलाकृति ।

लये शून्यञ्च सृष्टौ च लक्ष्मीनारायणान्वितम् ॥ ११ ॥

चतुर्भुजैः पार्षदैश्च जरामृत्य्वादिवर्जितम् । सव्येचशिवलोकञ्च कोटियोजनविस्तृतम्

लये शून्यञ्च सृष्टौ च सपार्षदशिवान्वितम् । गोलोकाभ्यन्तरे ज्योतिरतीवसुमनोहरम्

परमाह्लादकं शश्वत् परमानन्दकारणम् । ध्यायन्ते योगिनः शाश्वद् योगेन ज्ञानचक्षुषा

तदेवानन्दजनकं निराकारं परात्परम् । तज्ज्योतिरन्तरे रूपमतीवसुमनोहरम् ॥ १५ ॥

नवीननीरदश्यामं रक्तपङ्कजलोचनम् । शारदीयपार्वणेन्दुशोभातिलोचनाननम् ॥ १६ ॥

कोटिकन्दर्पलावण्यं लीलाधाम मनोरमम् । द्विभुजं मुरलीहस्तं सस्मितं पीतवाससम् ॥

सद्रत्नभूषणौघेन भूषितं भक्तवत्सलम् । चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं कस्तूरीकुङ्कुमान्वितम् ॥१८॥

श्रीवत्सवक्षःसंभ्राजत्कौस्तुभेन विराजितम् । सद्रत्नसाररचितकिरीटमुकुटोज्ज्वलम् ॥

रत्नसिंहासनस्थञ्च वनमालाविभूषितम् । तमेव परमं ब्रह्म भगवन्तं सनातनम् ॥ २० ॥

स्वेच्छामयं सर्ववीजं सर्वाधारं परात्परम् । किशोरवयसं शश्वद्गोपवेशविधायकम् ॥

कोटिपूर्णेन्दुशोभाढ्यं भक्तानुग्रहकातरम् । निरीहं निर्विकारञ्च परिपूर्णतमं विभुम् ॥

रासमण्डलमध्यस्थं शान्तं रासेश्वरं वरम् । मङ्गल्यं मङ्गलार्हञ्च मङ्गलं मङ्गलप्रदम् ॥

परमानन्दवीजञ्च सत्यमक्षरमव्ययम् । सर्वसिद्धीश्वरं सर्वसिद्धिरूपञ्च सिद्धिदम् ॥२४

प्रकृतेः परमीशानं निर्गुणं नित्यविग्रहम् । आद्यं पुरुषमव्यक्तं पुरुहूतं पुरुष्टुतम् ॥ २५ ॥
सत्यं स्वतन्त्रमेकञ्च परमात्मस्वरूपकम् ।
ध्यायन्ते वैष्णवाः शान्ताः शान्तं तत् परमायणम् ॥ २६ ॥
एवं रूपं परं बिभ्रद्भगवानेक एव सः । दिग्भिश्च नभसा सार्द्धं शून्यं विश्वं ददर्श ह ॥
इतिश्री ब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे सौतिशौनकसंवादे ब्रह्मखण्डे परब्रह्मनिरूपणं नाम
द्वितीयोऽध्यायः ।

तृतीयोऽध्यायः ।

सृष्टिनिरूपणम्

सौतिरुवाच ।

दृष्ट्वा शून्यमयं विश्वं गोलोकञ्च भयङ्करम् । निर्जन्तु निर्जलं घोरं निर्वातं तमसावृतम्
वृक्षशैलसमुद्रादिविहीनं विकृताकृतम् । निर्मूर्त्तिकञ्च निर्धातु निःशस्यं निस्तृणं द्विज ॥
आलोच्य मनसा सर्वमेक एवासहायवान् । स्वेच्छया स्रष्टुमारेभे सृष्टिं स्वेच्छामयः प्रभुः
आविर्बभूवुः सर्वादौ पुंसो दक्षिणपार्श्वतः । भवकारणरूपाश्च मूर्त्तिमन्तस्त्रयो गुणाः
ततो महानहङ्कारः पञ्चतन्मात्र एव च । रूपरसगन्धस्पर्शशब्दाश्चैवेतिसञ्ज्ञकाः ॥ ५ ॥
आविर्बभूव तत्पश्चात् स्वयं नारायणः प्रभुः । श्यामो युवा पीतवासा वनमाली चतुर्भुजः
शङ्खचक्रगदापद्मधरः स्मेरमुखाम्बुजः । रत्नभूषणभूषाढ्यः शार्ङ्गी कौस्तुभभूषणः ॥ ७ ॥
श्रीवत्सवक्षाः श्रीवासः श्रीनिधिः श्रीविभावनः । शारदेन्दुप्रभाजुष्टमुखेन्दुसुमनोहरः ॥
कामदेवप्रभाजुष्टरूपलावण्यसुन्दरः । श्रीकृष्णपुरतः स्थित्वा तुष्टाव तं पुटाञ्जलिः ॥ ६ ॥

नारायण उवाच ।

वरं वरेण्यं वरदं वराहं वरकारणम् । कारणं कारणानाञ्च कर्म तत्कर्मकारणम् । १० ।
तपस्तत्फलदं शश्वत्तपस्विनाञ्च तापसम् । वन्दे नवघनश्यामं स्वात्मारामं मनोहरम् ।

निष्कामं कामरूपञ्च कामघ्नं कामकारणम्। सर्वं सर्वेश्वरं सर्ववीजरूपमनुत्तमम्॥
वेदरूपं वेदवीजं वेदोक्तफलदं फलम्। वेदज्ञं तद्विधानञ्च सर्ववेदविदां वरम्॥ १३॥
इत्युक्त्वा भक्तियुक्तश्च स उवास तदाज्ञया। रत्नसिंहासने रम्ये पुरतः परमात्मनः॥
नारायणकृतं स्तोत्रं यः शृणोति समाहितः। त्रिसन्ध्यञ्च पठेन्नित्यं पापं तस्य नविद्यते
पुत्रार्थी लभते पुत्रं भार्य्यार्थी लभते प्रियाम्। भ्रष्टराज्यो लभेद्राज्यं धनं भ्रष्टधनोलभेत्
कारागारेविपद्ग्रस्तःस्तोत्रेणमुच्यतेध्रुवम्। रोगात् प्रमुच्यतेरोगीवर्षं श्रुत्वातु संयतः॥

इति ब्रह्मवैवर्त्ते नारायणकृतं श्रीकृष्णस्तोत्रम्।

सौतिरुवाच।

आविर्बभूव तत्पश्चादात्मनो वामपार्श्वतः। शुद्धस्फटिकसङ्काशः पञ्चवक्त्रो दिगम्बरः
तप्तकाञ्चनवर्णाभजटाभारधरो वरः। ईषद्धास्यप्रसन्नास्यस्त्रिनेत्रश्चन्द्रशेखरः॥ १६॥
त्रिशूलपट्टिशधरो जपमालाकरः परः। सर्वसिद्धेश्वरः सिद्धो योगिनाञ्च गुरोर्गुरुः॥
मृत्योर्मृत्युरीश्वरश्च मृत्युर्मृत्युञ्जयः शिवः। ज्ञानानन्दो महाज्ञानी महाज्ञानप्रदः परः
पूर्णचन्द्रप्रभायुष्टसुखदृश्यो मनोहरः। वैष्णवानाञ्च प्रवरः प्रज्वलन् ब्रह्मतेजसा॥२२॥
श्रीकृष्णपुरतः स्थित्वा तुष्टाव तं पुटाञ्जलिः। पुलकाङ्कितसर्वाङ्गः साश्रुनेत्रोऽतिगद्गदः

महादेव उवाच।

जयस्वरूपं जयदं जयेशं जयकारणम्। प्रवरं जयदानाञ्च वन्दे तमपराजितम्॥ २४॥
विश्वं विश्वेश्वरेशञ्च विश्वेशं विश्वकारणम्।
विश्वाधारञ्च विश्वस्तं विश्वकारणकारणम्॥ २५॥
विश्वरक्षाकारणञ्च विश्वघ्नं विश्वजं परम्। फलवीजं फलाधारं फलञ्च तत्फलप्रदम्॥
तेजःस्वरूपं तेजोदं सर्वतेजस्विनां वरम्। इत्येवमुक्त्वा तं नत्वा रत्नसिंहासने वरे।
नारायणञ्च संभाष्य स उवास तदाज्ञया॥ २७॥
इति शम्भुकृतं स्तोत्रं यो जनः संयतः पठेत्। सर्वसिद्धिर्भवेत्तस्य विजयश्च पदे पदे॥
सन्ततं वर्द्धते मित्रं धनमैश्वर्य्यमेव च। शत्रुसैन्यं क्षयं याति दुःखानि दुरितानि च॥२६

इति ब्रह्मवैवर्त्ते शम्भुकृतं श्रीकृष्णस्तोत्रम्।

सौतिरुवाच ।

आविर्बभूव तत्पश्चात् कृष्णस्य नाभिपङ्कजात् । महातपस्वी वृद्धश्च कमण्डलुकरो वरः
शुक्लवासाः शुक्लदन्तः शुक्लकेशश्चतुर्मुखः । योगीशः शिल्पिनामीशः सर्वेषां जनको गुरुः
तपसां फलदाता च प्रदातासर्वसम्पदाम् । स्रष्टा विधाता कर्त्ताचहर्त्ताचसर्वकर्मणाम् ॥
धाता चतूर्णां वेदानां ज्ञाता वेदप्रसूःपतिः । शान्तः सरस्वतीकान्तः सुशीलश्चकृपानिधिः
श्रीकृष्णपुरतः स्थित्वा तुष्टाव तं पुटाञ्जलिः । पुलकाङ्कितसर्वाङ्गो भक्तिनम्रात्मकन्धरः

ब्रह्मोवाच ।

कृष्णं वन्दे गुणातीतं गोविन्दमेकमक्षरम् । अव्यक्तमव्ययंव्यक्तं गोपवेषविधायिनम् ।३८।
किशोरवयसंशान्तं गोपीकान्तं मनोहरम् । नवीननीरदश्यामं कोटिकन्दर्पसुन्दरम् ॥
वृन्दावनवनाभ्यर्णे रासमण्डलसंस्थितम् । रासेश्वरं रासवासं रासोल्लाससमुत्सुकम्
इत्येवमुक्त्वा तं नत्वा रत्नसिंहासने वरे । नारायणेशो संभाष्य स उवास तदाज्ञया ॥

इति ब्रह्मकृतं स्तोत्रं प्रातरुत्थाय यः पठेत् ।
पापानि तस्य नश्यन्ति दुःस्वप्नः सुस्वप्नो भवेत् ॥ ३९ ॥
भक्तिर्भवति गोविन्दे पुत्रपौत्रविवर्द्धनी ।
अकीर्त्तिः क्षयमाप्नोति सत्कीर्त्तिर्वर्द्धते चिरम् ॥ ४० ॥

इति ब्रह्मवैवर्त्ते ब्रह्मकृतं श्रीकृष्णस्तोत्रम् ।

सौतिरुवाच ।

आविर्बभूव तत्पश्चात् रक्षसः परमात्मानः । सस्मितः पुरुषः कश्चित् शुक्लवर्णोजटाधरः
सर्वसाक्षी च सर्वज्ञः सर्वेषां सर्वकारणम् । समः सर्वत्र सदयो हिंसाकोपविवर्जितः
धर्मज्ञानयुतो धर्मो धर्मिष्ठो धर्मदो भवेत् । स एव धर्मिणां धर्मः परमात्मकलोद्भवः ॥
श्रीकृष्णपुरतः स्थित्वा प्रणम्य दण्डवद् भुवि । तुष्टाव परमात्मानं सर्वेशं सर्वकामदम्
कृष्णं विष्णुं वासुदेवं परमात्मानमीश्वरम् । गोविन्दं परमानन्दमेकमक्षरमच्युतम् ॥
गोपेश्वरञ्च गोपीशं गोपं गोरक्षकं विभुम् । गवामीशञ्च गोष्ठस्थंगोवत्सपुच्छधारिणम्
गोगोपगोपीमध्यस्थं प्रधानं पुरुषोत्तमम् । वन्दे नवघनश्यामं रासवासं मनोहरम् ॥

इत्युक्त्वार्घ्यं समुत्तिष्ठन् रत्नसिंहासने वरे। ब्रह्मविष्णुमहेशांस्तान् सम्भाष्य स उवासह
चतुर्विंशति नामानि धर्मवक्त्रोद्गतानि च। यः पठेत् प्रातरुत्थाय स सुखी सर्वतो जयी
मृत्युकाले हरेर्नाम तस्य साध्यं भवेद् ध्रुवम् ।स यात्यन्ते हरेःस्थानंहरिदास्यंभवेद्ध्रुवम्
नित्यं धर्मस्तं घटते नाधर्मे तद्रतिर्भवेत्। चतुर्वर्गफलं तस्य शश्वत् करगतं भवेत्॥
तं दृष्ट्वा सर्वपापानि पलायन्ते भयेन च। भयानि चैव दुःखानि वैनतेयमिवोरगाः ॥५२

इति ब्रह्मवैवर्त्ते धर्मकृतं श्रीकृष्णस्तोत्रम्।

सौतिरुवाच।

आविर्बभूव कन्यैका धर्मस्य वामपार्श्वतः। मूर्त्तिर्मूर्त्तिमती साक्षात् द्वितीयकमलालया
आविर्बभूव तत्पश्चात् मुखतः परमात्मनः। एका देवी शुक्लवर्णा वीणापुस्तकधारिणी
कोटिपूर्णेन्दुशोभाढ्या शरत्पङ्कजलोचना। वह्निशुद्धांशुकाधाना रत्नभूषणभूषिता ॥५५।
सस्मिता सुदती श्यामा सुन्दरीणाञ्चसुन्दरी। श्रेष्ठाश्रुतीनां शास्त्राणांविदुषां जननीपरा
वागधिष्ठातृदेवी सा कवीनामिष्टदेवता। शुद्धसत्वस्वरूपा च शान्तरूपा सरस्वती ।५७
गोविन्दपुरतः स्थित्वा जगौ प्रथमतः शुभम्। तन्नामगुणकीर्त्तिञ्च वीणया सा ननर्त्त च
कृतानि यानि कर्माणि जन्मे जन्मे युगे युगे। तानिसर्वाणि हरिणा तुष्टाव संपुटाञ्जलिः

सरस्वत्युवाच।

रासमण्डलमध्यस्थं रासोल्लाससमुत्सुकम्। रत्नसिंहासनस्थञ्च रत्नभूषणभूषितम् ॥६०
रासेश्वरं रासकरं वरं रासेश्वरीश्वरम्। रासाधिष्ठातृदेवञ्च वन्दे रासविनोदिनम् ।६१
रासायासपरिश्रान्तं रासरासविहारिणम् ।रासोत्सुकानां गोपीनां कान्तं शान्तंमनोहरम्
प्रणम्य तं तानीत्युक्त्वा प्रहृष्टवदना सती। उवास सा सकामा च रत्नसिंहासने वरे॥

इति वाणीकृतं स्तोत्रं प्रातरुत्थाय यः पठेत्।
बुद्धिमान् धनवान् सोऽपि विद्यावान् पुत्रवान् सदा॥ ६४॥

इति ब्रह्मवैवर्त्ते सरस्वतीकृतं श्रीकृष्णस्तोत्रम्।

सौतिरुवाच।

आविर्बभूव मनसः कृष्णस्य परमात्मनः।

एका देवी गौरवर्णा रत्नालङ्कारभूषिता ॥ ६५ ॥
पीतवस्त्रपरीधाना सस्मिता नवयौवना । सर्वैश्वर्य्याधिदेवी सा सर्वसम्पत्फलप्रदा ॥
स्वर्गे च स्वर्गलक्ष्मीश्च राजलक्ष्मीश्च राजसु ॥ ६६ ॥
सा हरेःपुरतः स्थित्वा परमात्मानमीश्वरम् । तुष्टाव प्रणता साध्वी भक्तिनम्रात्मकन्धरा

महालक्ष्मीरुवाच ।

सत्यस्वरूपं सत्येशं सत्यबीजं सनातनम् । सत्याधारं च सत्यज्ञं सत्यमूलं नमाम्यहम् ॥
इत्युक्त्वा श्रीहरिं नत्वा सा चोवास सुखासने ।
तप्तकाञ्चनवर्णाभा भासयन्ती दिशो दश ॥ ६८ ॥
आविर्बभूव तत्पश्चात् बुद्धेश्च परमात्मनः । सर्वाधिष्ठातृदेवी सा मूलप्रकृतिरीश्वरी ॥
तप्तकाञ्चनवर्णाभा सूर्य्यकोटिसमप्रभा । ईषद्धास्यप्रसन्नास्या शरत्पङ्कजलोचना ॥७१
रक्तवस्त्रपरीधाना रत्नाभरणभूषिता । निद्रातृष्णा क्षुत्पिपासा दया श्रद्धाक्षमादिकाः ॥
तासाञ्च सर्वशक्तीनामीशाधिष्ठातृदेवता । भयङ्करी शतभुजा दुर्गा दुर्गतिनाशिनी ॥
आत्मनः शक्तिरूपा सा जगतां जननीपरा । त्रिशूलशक्तिशार्ङ्गञ्च धनुः खड्गशराणि च
शङ्खचक्रगदापद्ममक्षमालां कमण्डलुम् । वज्रमङ्कुशपाशञ्च भुशुण्डीदण्डतोमरम् ॥७५॥
नारायणास्त्रं ब्रह्मास्त्रं रौद्रं पाशुपतं तथा । पार्ज्जन्यं वारुणं वाह्नं गान्धर्वं बिभ्रती सती
कृष्णस्य पुरतः स्थित्वा तुष्टाव तं मुदान्विता ॥ ७६ ॥

प्रकृतिरुवाच ।

अहं प्रकृतिरीशानी सर्वेशा सर्वरूपिणी । सर्वशक्तिस्वरूपा च मया च शक्तिमज्जगत् ॥
त्वया सृष्टा न स्वतन्त्रा त्वमेवजगतांपतिः । गतिश्च पाता स्रष्टा च संहर्त्ता च पुनर्विधिः
परमानन्दरूपं त्वां वन्दे चानन्दपूर्वकम् । चक्षुर्निमेषकाले च ब्रह्मणः पतनं भवेत् ॥७६॥
तस्यप्रभावमतुलंवर्णितुं कः क्षमोविभो ! । भ्रूभङ्गलीलामात्रेण विष्णुकोटिं सृजेत्तु यः
चराचरांश्च विश्वेषु देवान् ब्रह्मपुरोगमान् । मद्विधाः कति वादेवीःस्रष्टुं शक्तश्चलीलया
परिपूर्णतमं स्वीड्यं वन्दे चानन्दपूर्वकम् ।
महान् विराट् यत्कलांशो विश्वासंख्याश्रयो विभो ! ॥
वन्दे चानन्दपूर्वं तं परमात्मानमीश्वरम् ॥ ८२ ॥

यञ्च स्तोतुमशक्ताश्च ब्रह्मविष्णुशिवादयः ।
वेदा अहञ्च वाणी च वन्दे तं प्रकृतेः परम् ॥ ८३ ॥
वेदाश्च विदुषां श्रेष्ठाः स्तोतुं शक्ता न लक्षतः ।
निर्लक्ष्यं कः क्षमः स्तोतुं तं निरीहं नमाम्यहम् ॥ ८४ ॥
इत्येवमुक्त्वा सा दुर्गा रत्नसिंहासने वरे । उवास नत्वा श्रीकृष्णं तुष्टुवुस्तांसुरेश्वराः ॥
इति दुर्गाकृतं स्तोत्रं कृष्णस्य परमात्मनः । यः पठेदर्चनाकाले स जयी सर्वतः सुखी ॥
दुर्गा तस्य गृहं त्यक्त्वा नैव याति कदाचन ।
भवाब्धौ यशसा भाति यात्यन्ते श्रीहरेः पुरम् ॥ ८७ ॥
इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे ब्रह्मखण्डे सौतिशौनक संवादे
सृष्टिनिरूपणे दुर्गास्तोत्रं नाम तृतीयोऽध्यायः ।

चतुर्थोऽध्यायः ।

सृष्टि निरूपणम्

सौतिरुवाच ।

आविर्बभूव तत्पश्चात् कृष्णस्य रसनाग्रतः । शुद्धस्फटिकसङ्काशा देवी चैका मनोहरा
शुक्लवस्त्रपरीधाना सर्वालङ्कारभूषिता । बिभ्रती जपमालाञ्च सा सावित्री प्रकीर्त्तिता ॥
सा तुष्टाव पुरः स्थित्वा परं ब्रह्म सनातनम् । पुटाञ्जलिपरा साध्वी भक्तिनम्रात्मकन्धरा

सावित्र्युवाच ।

नमामि सर्वबीजं त्वां ब्रह्मज्योतिः सनातनम् । परात्परतरं श्यामं निर्विकारं निरञ्जनम्
इत्युक्त्वा सस्मिता देवी रत्नसिंहासने वरे । उवास श्रीहरिं नत्वा पुनरेव श्रुतिप्रसूः ॥
आविर्बभूव तत्पश्चात् कृष्णस्य परमात्मनः । मानसाच्च पुमानेकस्तप्तकाञ्चनसन्निभः ॥
मनोमथ्नाति सर्वेषां पञ्चबाणेन कामिनाम् । तन्नाम मन्मथं तेन प्रवदन्ति मनीषिणः ॥

तस्य पुंसोवामपार्श्वात् कामस्य कामिनी वरा । वभूवातीवललिता सर्वेषां मोहकारिणी
रतिर्बभूव सर्वेषां तां दृष्ट्वा सस्मितां सतीम् । रतीति तेन तन्नाम प्रवदन्ति मनीषिणः
हरिं स्तुत्वा तया सार्द्धंसउवासहरेः पुरः । रत्नसिंहासने रम्ये पञ्चवाणो धनुर्द्धरः ॥१०
मारणं स्तम्भनञ्चैव जृम्भनं शोषणन्तथा । उन्मादनं पञ्चवाणान् पञ्चवाणो विभर्त्ति सः
वाणांश्चिक्षेप सर्वांश्च कामो वाणपरीक्षया । सद्यः सर्वे सकामाश्च वभूवुरीश्वरेच्छया
रतिंदृष्ट्वा ब्रह्मणश्च रेतःपातो वभूव ह । तत्र तस्थौ महायोगी वस्त्रेणाच्छाद्य लज्जया

वस्त्रं दग्ध्वा समुत्तस्थौ ज्वलदग्निः सुरेश्वरः ।
कोटितालप्रमाणश्च सशिखश्च समुज्ज्वलन् ॥ १४ ॥
कृष्णस्तद्वर्द्धनं दृष्ट्वा ससर्जापः स्वलीलया ।
निःश्वासवायुना सार्द्धं मुखविन्दुं समुद्गिरन् ॥ १५ ॥

विश्वौघं प्लावयामास मुखविन्दुजलं द्विज । तस्य किञ्चिज्जलकणं वह्निं शान्तंचकार ह ॥
ततः प्रभृति तेनाग्निस्तोयान्निर्वाणतां व्रजेत् । आविर्भूतः पुमानेकस्ततस्तदधिदेवता ॥
उत्तस्थौतज्जलादेकःपुमान्सवरुणःस्मृतः । जलाधिष्ठातृदेवोऽसौसर्वेषां यादसाम्पतिः ॥
आविर्वभूव कन्यैका तद्वह्नेर्वामपार्श्वतः । सा स्वाहा वह्निपत्नीं तां प्रवदन्ति मनीषिणः ॥

जलेशस्य वामपार्श्वात् कन्या चैका वभूव सा ।
वरुणानीति विख्याता वरुणस्य प्रिया सती ॥ २० ॥
वभूव पवनः श्रीमान् विभोर्निःश्वासवायुना ।
स प्रमाणश्च सर्वेषां निःश्वासस्तत्कलोद्भवः ॥ २१ ॥

तस्यवायोर्वामपार्श्वात् कन्याचैकावभूव ह । वायोःपत्नीसाचदेवीवायवीपरिकीर्त्तिता ॥
कृष्णस्य कामवाणेन रेतःपातो वभूव ह । जले तद्रेचनं चक्रे लज्जया सुरसंसदि ॥२३॥
सहस्रवत्सरान्ते तड्डिम्बरूपं वभूव ह । ततो महान् विराट् जज्ञे विश्वौघाधार एव सः ॥
यस्यैकलोमविवरेविश्वैकस्यव्यवस्थितिः । स्थूलात् स्थूलतमःसोऽपिमहान्नान्यस्ततःपरः
स एव षोडशांशोऽपिकृष्णस्यपरमात्मनः । महाविष्णुः स विज्ञेयःसर्वाधारःसनातनः ॥
महार्णवे शयानः स पद्मपत्रं यथा जले । वभूवतुस्तौ द्वौ दैत्यौ तस्य कर्णमलोद्भवौ ॥

तौ जलाच्चसमुत्थायब्रह्माणंहन्तुमुद्यतौ । नारायणश्च भगवान् जघने तौ जघान ह ॥
बभूव मेदिनी कृत्स्ना कार्त्स्न्येन मेदसा तयोः ।
तत्रैव सन्ति विश्वानि सा च देवी वसुन्धरा ॥ २६ ॥
इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे ब्रह्मखण्डे सौतिशौनकसंवादे सृष्टिनिरूपणे
चतुर्थोऽध्यायः ।

पञ्चमोऽध्यायः ।

सृष्टिप्रकारवर्णनम्

शौनक उवाच ।
गोगोपगोप्यो गोलोके किं नित्याः किं नु कल्पिताः ।
मम सन्देहभेदार्थं तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ १ ॥
सौतिरुवाच ।
सर्वादिसृष्टौ ताः क्लृप्ताःप्रलये प्रलये स्थिताः । सर्वादिसृष्टिकथनंयन्मयाकथितंद्विज ॥
सर्वादिसृष्टौक्लृप्तौच नारायणमहेश्वरौ । प्रलयेप्रलयेव्यक्तौ स्थितौ तौ प्रकृतिश्चसा ॥
सर्वादौब्रह्मकल्पस्यचरितंकथितं द्विज । वाराहपाद्मकल्पौ द्वौ कथयिष्यामिश्रोष्यसि ॥
ब्राह्मवाराहपाद्माश्चकल्पाश्चत्रिविधा मुने । यथायुगानिचत्वारिक्रमेण कथितानि च ॥
सत्यत्रेताद्वापरञ्च कलिश्चेति चतुर्युगम् । त्रिशतैश्च षष्ट्यधिकैर्युगैर्दिव्यं युगं स्मृतम् ॥
मन्वन्तरन्तु दिव्यानां युगानामेकसप्ततिः । चतुर्दशसु मनुषु गतेषु ब्रह्मणो दिनम् ॥७॥
त्रिशतैश्च षष्ट्यधिकैर्दिनैर्वर्षञ्च ब्रह्मणः । अष्टोत्तरं वर्षशतं विधेरायुर्निरूपितम् ॥ ८ ॥
एतन्निमेषकालस्तु कृष्णस्य परमात्मनः । ब्रह्मणश्चायुषा कल्पः कालविद्भिर्निरूपितः ॥
क्षुद्रकल्पा बहुतरास्ते संवर्त्तादयः स्मृताः । सप्तकल्पान्तजीवी च मार्कण्डेयश्च तन्मतः

ब्रह्मणश्च दिनेनैव स कल्पः परिकीर्त्तितः। विधेश्च सप्तदिवसे मुनेरायुर्निरूपितम् ॥११
ब्राह्मवाराहपाद्माश्च त्रयः कल्पा निरूपिताः। कल्पत्रये यथा सृष्टिः कथयामि निशामय

ब्राह्मे च मेदिनीं सृष्ट्वा स्रष्टा सृष्टिं चकार सः।
मधुकैटभयोश्चैव मेदसा चाज्ञया प्रभोः॥ १३ ॥

वाराहे तां समुद्धृत्य लुप्तां मग्नां रसातलात्। विष्णोर्वराहरूपस्य द्वारा चातिप्रयत्नतः
पाद्मेविष्णोर्नाभिपद्मेस्रष्टा सृष्टिंविनिर्ममे। त्रिलोकींब्रह्मलोकान्तांनित्यलोकत्रयं विना॥
एतत्तु कालसंख्यानमुक्तं सृष्टिनिरूपणे। किञ्चिन्निरूपणं सृष्टेः किं भूयः श्रोतुमिच्छसि

शौनक उवाच।

अतःपरन्तु गोलोके गोलोकेशो महान् विभुः।
एतान् सृष्ट्वा किञ्चकार तन्मे व्याख्यातुमर्हसि॥ १७ ॥

सौतिरुवाच।

एतान् सृष्ट्वा जगामासौ सुरम्यं रासमण्डलम्। एतैः समेतो भगवानतीवकमनीयकम्
रम्याणांकल्पवृक्षाणांमध्येऽतीवमनोहरम्। सुविस्तीर्णञ्च सुसमं सुस्निग्धंमण्डलाकृतम्॥
चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमैश्च सुसंस्कृतम्। दधिलाजाशुक्लधान्यदूर्वापर्णपरिप्लुतम्॥२०॥
पट्टसूत्रग्रन्थियुक्तनवचन्दनपल्लवैः। संयुक्तरम्भास्तम्भानां समूहैः परिवेष्टितम्॥ २१ ॥
सद्रत्नसारनिर्माणमण्डपानां त्रिकोटिभिः। रत्नप्रदीपज्वलितैः पुष्पधूपाधिवासितैः॥२२
शृङ्गारार्हभोगवस्तुसमूहपरिवेष्टितैः। अतीवललिताकल्पतल्पयुक्तैः सुशोभितम्॥ २३॥

तत्र गत्वा च तैः सार्द्धं समुवास जगत्पतिः।
दृष्ट्वा रासं विस्मितास्ते बभूवुर्मुनिसत्तम!॥ २४ ॥

आविर्बभूव कन्यैका कृष्णस्य वामपार्श्वतः। धावित्वा पुष्पमानीय ददावर्घ्यंप्रभोः पदे
रासे संभूय गोलोके सा दधाव हरेःपुरः। तेन राधासमाख्याता पुराविद्भिर्द्विजोत्तम॥

प्राणाधिष्ठात्री देवी सा कृष्णस्य परमात्मनः।
आविर्बभूव प्राणेभ्यः प्राणेभ्योऽपि गरीयसी॥ २७ ॥

देवी षोडशवर्षीया नवयौवनसंयुता। वह्निशुद्धांशुकाधाना सस्मिता सुमनोहरा॥२८॥

सुकोमलाङ्गी ललिता सुन्दरीषु च सुन्दरी। बृहन्नितम्बभारार्त्ता पीनश्रोणीपयोधरा॥
बन्धुजीवजितारक्तसुन्दरोष्ठाधरा वरा। मुक्तापंक्तिजिता चारुदन्तपंक्तिर्मनोहरा॥३०॥
शरत्पार्वणकोटीन्दुशोभामुष्टशुभानना। चारुसीमन्तिनी चारुशरत्पङ्कजलोचना॥३१॥
खगेन्द्रचञ्चुविजितचारुनासा मनोहरा। स्वर्णगेण्डूकविजिते गण्डयुग्मे च बिभ्रती॥
दधती चारुकर्णे च रत्नाभरणभूषिते। चन्दनागुरुकस्तूरीयुक्तकुङ्कुमबिन्दुभिः॥३३॥
सिन्दूरविन्दुसंयुक्तसुकपोला मनोहरा। सुसंस्कृतं केशपाशं मालतीमाल्यभूषितम्॥३४
सुगन्धकवरीभारं सुन्दरं दधती सती। स्थलपद्मप्रभामुष्टं पादयुग्मञ्च बिभ्रती॥३५॥
गमनं कुर्वती सा च हंसखञ्जनगञ्जनम्। सद्रत्नसारनिर्माणां वनमालां मनोहराम्॥३६॥
हारं हीरकनिर्माणं रत्नकेयूरकङ्कणम्। सद्रत्नसारनिर्माणं पाशकं सुमनोहरम्॥३७॥
अमूल्यरत्ननिर्माणं क्वणन्मञ्जीररञ्जितम्। नानाप्रकारचित्राढ्यं सुन्दरं परिबिभ्रती॥३८॥

सा च सम्भाष्य गोविन्दं रत्नसिंहासने वरे।
उवास सस्मिता भर्त्तुः पश्यन्ती मुखपङ्कजम्॥३९॥

तस्याश्च लोमकूपेभ्यः सद्यो गोपाङ्गनागणः। आविर्बभूव रूपेण वेशेनैव च तत्समः॥
लक्षकोटिपरिमितःशश्वत्सुस्थिरयौवनः। संख्याविद्भिश्चसंख्यातोगोलोकेगोपिकागणः
कृष्णस्य लोमकूपेभ्यः सद्यो गोपगणोमुने। आविर्बभूव रूपेण वेशेनैव च तत्समः॥
त्रिंशत्कोटिपरिमितःकमनीयोमनोहरः। संख्याविद्भिश्चसंख्यातोवल्लवानांगणःश्रुतौ॥
कृष्णस्य लोमकूपेभ्यः सद्यश्चाविर्बभूव ह। नानावर्णो गोगणश्च शश्वत्सुस्थिरयौवनः

बलीवर्दाः सुरभ्यश्च वत्सा नानाविधाःशुभाः।
अतीवललिताः श्यामा बह्व्यश्च कामधेनवः॥४५॥

तेषामेकं बलीवर्दं कोटिसिंहसमं बले। शिवाय प्रददौ कृष्णो वाहनाय मनोहरम्॥४६
कृष्णाङ्घ्रिनखरन्ध्रेभ्यो हंसपंक्तिर्मनोहरा। आविर्बभूव सहसा स्त्रीपुंवत्ससमन्विता॥
तेषामेकं राजहंसं महाबलपराक्रमम्। वाहनाय ददौ कृष्णो ब्रह्मणे च तपस्विने॥४८॥
वामकर्णस्य विवरात् कृष्णस्य परमात्मनः। गणः श्वेततुरङ्गानामाविर्भूतो मनोहरः॥
तेषामेकश्वेताश्वं धर्माय वाहनाय च। ददौ गोपाङ्गनेशश्च संप्रीत्या सुरसंसदि॥

दक्षकर्णस्य विवरात् पुंसश्च सुरसंसदि । आविर्भूता सिंहपंक्तिर्महाबलपराक्रमा ॥५१॥
तेषामेकं ददौ कृष्णः प्रकृत्यै परमादरम् । अमूल्यवरमाल्यञ्च वरं यदभिवाञ्छितम् ॥
कृष्णो योगेन योगीन्द्रश्चकार रथपञ्चकम् । शुद्धरत्नेन्द्रनिर्माणं मनोयायि मनोहरम् ॥
लक्षयोजनमूद्र्ध्वे च प्रस्थे च शतयोजनम् । लक्षचक्रं वायुरहं लक्षक्रीडागृहान्वितम् ॥
श्रृङ्गाराईभोगवस्तुतल्पासंख्यसमन्वितम् । रत्नप्रदीपलक्षाणां वाजिभिश्च विराजितम् ॥
नानाचित्रविचित्राढ्यं सद्रत्नकलसोज्ज्वलम् । रत्नदर्पणभूषाढ्यं शोभितं श्वेतचामरैः ॥
वह्निशुद्धांशुकैश्चत्रैर्मालाजालैर्विभूषितम् । मणीन्द्रमुक्तामाणिक्यहीराहारविराजितम् ॥
आरक्तवर्णरत्नेन्द्रसारनिर्माणकृत्रिमैः । पङ्कजानामसंख्यैश्च सुन्दरैश्चसुशोभितम् ॥५८॥
ददौ नारायणायैकं तेषां मध्ये द्विजोत्तम ! । एकं दत्त्वा राधिकायै ररक्ष शेषमात्मने ॥
आविर्बभूव कृष्णस्य गुह्यदेशात्ततः परम् । पिङ्गलश्च पुमानेकः पिङ्गलैश्च गणैः सह ॥६०

आविर्भूता यतो गुह्यात्तेन ते गुह्यकाः स्मृताः ।
यः पुमान् स कुवेरश्च धनेशो गुह्यकेश्वरः ॥ ६१ ॥

बभूव कन्यका चैका कुवेरवामपार्श्वतः । कुवेरपत्नी सा देवी सुन्दरीणां मनोरमा ॥६२
भूतप्रेतपिशाचाश्चकुष्माण्डब्रह्मराक्षसाः । वेताला विकृतास्तस्याविर्भूता गुह्यदेशतः ॥६३
शङ्खचक्रगदापद्मधारिणो वनमालिनः । पीतवस्त्रपरीधानाः सर्वे श्यामचतुर्भुजाः ॥ ६४ ।
किरीटिनः कुण्डलिनो रत्नभूषणभूषिताः । आविर्भूताःपार्श्वदाश्च कृष्णस्यमुखतो मुने ॥
चतुर्भुजान् पार्श्वदांश्च ददौ नारायणाय च । गुह्यकान्गुह्यकेशायभूतादीन्शङ्करायच ॥
द्विभुजाः श्यामवर्णाश्च जपमालाकरा वराः । ध्यायन्तश्चरणाम्भोजंकृष्णस्यसन्ततं मुदा

दास्ये नियुक्ता दासाश्चैवार्घ्यमादाय यत्नतः ।
आविर्भूता वैष्णवाश्च सर्वे कृष्णपरायणाः ॥ ६८ ॥

पुलकाङ्कितसर्वाङ्गाः साश्रुनेत्राः सगद्गदाः । आविर्भूताः पादपद्मात् पादपद्मैकमानसाः ॥
आविर्बभूवुः कृष्णस्य दक्षनेत्राद्भयङ्कराः । त्रिशूलपट्टिशधरास्त्रिनेत्राश्चन्द्रशेखराः ॥७०।
दिगम्बरामहाकायाज्वलदग्निशिखोपमाः । ते भैरवामहाभागाःशिवतुल्याश्च तेजसा ॥
रुरुसंहारकालाख्याअसितक्रोधभीषणाः । महाभैरवखट्वाङ्गावित्यष्टौ भैरवाः स्मृताः ।

आविर्बभूव कृष्णस्य वामनेत्राद्भयङ्करः। त्रिशूलपट्टिशव्याघ्रचर्माम्बरगदाधरः ॥ ७३ ॥
दिगम्बरो महाकायस्त्रिनेत्रश्चन्द्रशेखरः। स ईशानो महाभागो दिक्पालानामधीश्वरः

डाकिन्यश्चैव योगिन्यः क्षेत्रपालाः सहस्रशः।
आविर्बभूवुः कृष्णस्य नासिकाविवरोदरात् ॥ ७५ ॥

सुरास्त्रिकोटिसंख्याताः दिव्यमूर्त्तिधरा वराः। आविर्बभूवुः सहसा पुंसश्च पृष्ठदेशतः

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे सौति-शौनकसंवादे सृष्टिनिरूपणे ब्रह्मखण्डे पञ्चमोऽध्यायः।

षष्ठोऽध्यायः।

सृष्टि प्रकरणम्।

सौतिरुवाच।

अथ कृष्णो महालक्ष्मीं सादरञ्च सरस्वतीम्। नारायणाय प्रददौ रत्नेन्द्रमालया सह ॥१
सावित्रीं ब्रह्मणे प्रादान्मूर्त्तिं धर्माय सादरम्। रतिं कामायरूपाढ्यां कुवेराय मनोरमाम्

अन्याश्च या या अन्येभ्यो याश्च येभ्यः समुद्भवाः।
तस्मै तस्मै ददौ कृष्णस्तां तां रूपवतीं सतीम् ॥ ३ ॥

ततः शङ्करमाहूय सर्वेशो योगिनां गुरुम्। उवाच प्रियमित्येवं गृहाण सिंहवाहिनीम् ॥
श्रीकृष्णस्य वचः श्रुत्वा प्रहस्य नीललोहितः। उवाच भीतः प्रणतः प्राणेशं प्रभुमच्युतम्

श्रीमहेश्वर उवाच।

अधुनाहं न गृह्णामि प्रकृतिं प्राकृतो यथा।
त्वद्भक्त्यैकव्यवहितां दास्यमार्गविरोधिनीम् ॥ ६ ॥
तत्त्वज्ञानसमाच्छन्नां योगद्वारकपाटिकाम्।
मुक्तीच्छाध्वंसरूपाञ्च सकामां कामवर्द्धनीम् ॥ ७ ॥

तपस्याच्छलरूपाञ्च महामोहकरण्डिकाम् । भवकारागृहे घोरे दृढ़ां निगड़रूपिणीम् ॥
शश्वद्विबुद्धिजननींसद्बुद्धिच्छेदकारिणीम् । शश्वद्विभागसाराञ्च विषयेच्छाविवर्द्धिनीम्
नेच्छामि गृहिणींनाथ ! वरंदेहि मदीप्सितम् । यस्य यद्वाञ्छितंतस्मै तद्ददाति सदीश्वरः
त्वद्भक्तिविषये दास्ये लालसा वर्द्धतेऽनिशम् । तृप्तिर्न जायते नामजपने पादसेवने ॥११
त्वन्नाम पञ्चवक्त्रेण गुणञ्च मङ्गलालयम् । स्वप्ने जागरणे शश्वद्गायन् गायन् भ्रमाम्यहम्
आकल्पकोटिकोटिञ्च तद्रूपध्यानतत्परम् । भोगेच्छाविषये नैव योगेतपसि मन्मनः॥१३
त्वत्सेवने पूजने च वन्दने नामकीर्त्तने । सदोल्लसितमेषाञ्च विरतौ विरतिं लभेत् ॥१४
स्मरणं कीर्त्तनं नामगुणयोः श्रवणं जपः । त्वच्चारुरूपध्यानं त्वत्पादसेवाभिवन्दनम् ॥
समर्पणञ्चात्मनश्च नित्यं नैवेद्यभोजनम् । वरंवरेश ! देहीदं नवधा भक्तिलक्षणम् ॥१६
सार्ष्टिसालोक्यसारूप्यसामीप्यसाम्यलीनताम् ,वदन्तिषड्विधांमुक्तिमुकामुक्तिविदोविभो
अणिमा लघिमाप्राप्तिः प्राकाम्यंमहिमातथा । ईशित्वञ्च वशित्वञ्च सर्वकामावसायिता
सर्वज्ञदूरश्रवणं परकायप्रवेशनम् । वाक्सिद्धिः कल्पवृक्षत्वं स्रष्टुं संहर्त्तुमीशता ॥ १६॥
अमरत्वञ्च सर्वाग्र्यं सिद्धयोऽष्टादशस्मृताः । योगास्तपांसि सर्वाणिदानानि च व्रतानि च
यशः कीर्त्तिर्वचः सत्यं धर्माण्यनशनानि च । भ्रमणं सर्वतीर्थेषु स्नानमन्यसुरार्चनम् ॥
सुरार्चा दर्शनं सप्तद्वीपसप्तप्रदक्षिणम् । स्नानं सर्वसमुद्रेषु सर्वस्वर्गप्रदर्शनम् ॥ २२ ॥
ब्रह्मत्वञ्चैव रुद्रत्वं विष्णुत्वञ्च परंपदम् । अतोऽनिर्वचनीयानि वाञ्छनीयानि सन्तिवा
सर्वाण्येतानि सर्वेश ! कथितानिच यानिच । तवभक्तिकलांशस्य कलांनार्हन्ति षोड़शीम्
शर्वस्य वचनं श्रुत्वा कृष्णस्तं योगिनां गुरुम् । प्रहस्योवाच वचनं सत्यं सर्वं सुखप्रदम्

श्रीभगवानुवाच ।

मत्सेवां कुरु सर्वेश शर्व सर्वविदांवर । कल्पकोटिशतं यावत् पूर्णं शश्वदहर्निशम् ॥
वरस्तपस्विनां त्वञ्च सिद्धानां योगिनांतथा । ज्ञानिनां वैष्णवानाञ्च सुराणाञ्च सुरेश्वर
अमरत्वं लभ भव ! भव मृत्युञ्जयो महान् । सर्वसिद्धिञ्च वेदांश्च सर्वज्ञत्वञ्च मद्वरात् ॥
असंख्यब्रह्मणां पातं लीलया वत्स ! द्रक्ष्यसि । अद्य प्रभृति ज्ञानेन तेजसा वयसा शिव

पराक्रमेण यशसा महसा मत्समो भव । प्राणानामधिकस्त्वञ्च न भक्तस्त्वत्परो मम ॥ त्वत्परो नास्तिमे प्रेयांस्त्वं मदीयात्मनःपरः । येत्वांनिन्दन्ति पापिष्ठाज्ञानहीना विचेतनाः पच्यन्ते कालसूत्रेण यावच्चन्द्रदिवाकरौ । कल्पकोटिशतान्ते च ग्रहीष्यसि शिवां शिव ममाव्यर्थञ्च वचनं पालनं कर्त्तुमर्हसि । त्वन्मुखान्निर्गतं वाक्यं करोमि साधु नेति च ॥ मद्वाक्यञ्च स्ववाक्यञ्च पालनं तत् करिष्यसि । गृहीत्वाप्रकृतिं शम्भोदिव्यं वर्षसहस्रकम् सुखं सुमहत् शृङ्गारं करिष्यसि न संशयः । न केवलं तपस्वी त्वमीश्वरो मत्समोमहान् कालेगृही तपस्वी च योगीस्वेच्छामयो हि यः । दुःखञ्च दारसंयोगे यत्त्वया कथितंशिव कुस्त्री ददाति दुःखञ्च स्वामिने न पतिव्रता । कुलेमहति या जाता कुलजा कुलपालिका॥ करोति पालनं स्नेहात् सत्पुत्रस्य समं पतिम् । पतिर्बन्धुर्गतिर्भर्त्ता दैवतं कुलयोषितः॥ पतितोऽपतितो वापि कृपणश्चेश्वरोऽथवा । असत्कुलप्रसूतायाः पित्रोर्दुःशीलमिश्रिताः प्रवंताः परभोग्याश्च पतिं निन्दन्ति सन्ततम् । आवयोरतिरिक्तश्च या पश्यति पतिं सती गोलोके स्वामिनासार्द्धं कोटिकल्पं प्रमोदते । भविता साशिवाशैवा प्रकृतिर्वैष्णवीशिव मदाज्ञयाचतां साध्वीं ग्रहीष्यसि भवायच । प्रकृत्या योनिसंयुक्तं त्वल्लिङ्गं तीर्थमृत्कृतम् तीर्थे सहस्रं संपूज्य भक्त्या पञ्चोपचारतः । सदक्षिणं संयतो यः पवित्रश्च जितेन्द्रियः ॥ कोटिकल्पञ्च गोलोके मोदतेच मयासह । लक्षंतीर्थे पूजयेद्यो विधिवत् साधुदक्षिणम् नच्युतिस्तस्यगोलोकात्सभवेदावयोःसमः । मृद्भस्मगोशकृत्पिण्डेतीर्थेवालुकयाऽपिवा कृत्वालिङ्गंसकृत्पूज्यवसेत्कल्पायुतंदिवि । प्रजावान्भूमिमान्विद्वान्पुत्रवान्धनवांस्तथा ज्ञानवान् मुक्तिवान् साधुः शिवलिङ्गार्चनाद्भवेत् । शिवलिङ्गार्चनं स्थानमतीर्थं तीर्थमेवतत् भवेत्तत्र मृतः पापी शिवलोकं स गच्छति । महादेव महादेव महादेवेति वादिनः ॥ पश्चाद्यामि महात्रस्तो नामश्रवणलोभतः । शिवेति शब्दमुच्चार्य्य प्राणांस्त्यजति यो नरः कोटिजन्मार्जितात्पापात्मुक्तोमुक्तिंप्रयातिसः । शिवंकल्याणवचनंकल्याणंमुक्तिवाचकम् यतस्तत् प्रभवेत्तेन स शिवः परिकीर्त्तितः । विच्छेदे धनबन्धूनां निमग्नः शोकसागरे ॥ शिवेति शब्दमुच्चार्य्य लभेत् सर्वशिवं नरः । पापघ्ने वर्त्तते शिश्च वश्च मुक्तप्रदे तथा ॥ पापघ्नो मोक्षदो नृणां शिवस्तेन प्रकीर्त्तितः । शिवेति च शिवंनाम यस्य वाचि प्रवर्त्तते

कोटिजन्मार्जितं पापंतस्य नश्यति निश्चितम्। इत्युक्त्वाशूलिने कृष्णोदत्त्वा कल्पतरुंमनुम्
तत्त्वज्ञानं मृत्युंजयमुवाच सिंहवाहिनीम् ॥ ५४ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

अधुनातिष्ठवत्से ! त्वंगोलोकेमम सन्निधौ । कालेभजिष्यसि शिवंशिवदञ्च शिवायनम्
तेजःसु सर्वदेवानामाविर्भूय वरानने ! । संहृत्य दैत्यान् सर्वांश्च भविता सर्वपूजिता ॥
ततः कल्पविशेषे च सत्यं सत्ययुगे सति । भविता दक्षकन्या त्वं सुशीला शम्भुगेहिनी
ततः शरीरं संत्यज्य यज्ञे भर्त्तुश्च निन्दया । मेनायां शैलभार्य्यायां भवितापार्वतीति च ॥
दिव्यं वर्षसहस्रञ्च विहरिष्यसि शम्भुना । पूर्णं ततः सर्वकालमभेदत्वं लभिष्यसि ॥
काले सर्वेषु विश्वेषु महापूजा च पूजिते । भविता प्रतिवर्षे च शारदीया सुरेश्वरि ! ॥
ग्रामेषु नगरेष्वेव पूजिता ग्रामदेवता । भवती भवितेत्येवं नामभेदेन चारुणा ॥ ६१ ॥
मदाज्ञया शिवकृतैस्तन्त्रैर्नानाविधैरपि । पूजाविधिं विधास्यामि कवचं स्तोत्रसंयुतम् ॥
भविष्यन्ति महान्तश्च तवैव परिचारकाः । धर्मार्थकाममोक्षाणां सिद्धाश्च फलभागिनः ॥
येत्वां मातर्भजिष्यन्ति पुण्यक्षेत्रे च भारते । तेषां यशश्च कीर्त्तिश्च धर्मैश्वर्य्यञ्च वर्द्धते ॥
इत्युक्त्वा प्रकृतिं तस्यै मन्त्रमेकादशाक्षरम् । दत्त्वा सकामवीजञ्च मन्त्रराजमनुत्तमम् ॥
चकारविधिना ध्यानंभक्तं भक्तानुकम्पया । श्रीमाया कामवीजाढ्यं ददौमन्त्रं दशाक्षरम्
सृष्ट्यौपयोगिकींशक्तिंसर्वसिद्धिञ्चकामदाम्। तद्विशिष्टोत्कृष्टतत्त्वज्ञानंतस्यैददौविभुः
त्रयोदशाक्षरं मन्त्रं दत्त्वा तस्मै जगत्पतिः । कवचं स्तोत्रसहितं शङ्कराय तथा द्विज !
दत्त्वा धर्माय तं मन्त्रं सिद्धिज्ञानं तदेव च । कामाय वह्नये चैव कुवेराय च वायवे ॥
एवं कुवेरादिभ्यस्तु दत्त्वा मन्त्रादिकं परम् । विधिश्चोवाच सृष्ट्यर्थं विधातुर्विधिरेवसः

श्रीभगवानुवाच ।

मदीयञ्च तपः कृत्वा दिव्यं वर्षसहस्रकम् । सृष्टिं कुरु महाभाग विधे नानाविधां परम्
इत्युक्त्वा ब्रह्मणे कृष्णो ददौमालां मनोरमाम् ।जगाम सार्द्धं गोपीभिर्गोपैर्वृन्दावनंवनम्

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे सौति-शौनक-संवादे ब्रह्मखण्डे सृष्टिनिरूपणं
नाम षष्ठोऽध्यायः ।

सप्तमोऽध्यायः ।

सृष्टिप्रकरणम् ।

सौतिरुवाच ।

तदा ब्रह्मा तपः कृत्वा सिद्धिं प्राप्य यथेप्सिताम् । ससृजे पृथिवीमादौ मधुकैटभमेदसा
ससृजे पर्वतानष्टौ प्रधानान् सुमनोहरान् । क्षुद्रानसंख्यान् किंब्रूमः प्रधानाख्यां निशामय
सुमेरुञ्चैव कैलासं मलयञ्च हिमालयम् । उदयञ्च तथाऽस्तञ्च सुवेलं गन्धमादनम् ॥
समुद्रान् ससृजे सप्त नदान् कतिविधा नदीः । वृक्षांश्च ग्रामनगरं समुद्राख्यां निशामय
लवणेक्षुसुरासर्पिर्दधिदुग्धजलार्णवान् । लक्षयोजनमानेन द्विगुणांश्च परात्परान् ॥ ५ ॥
सप्तद्वीपांश्च तद्भूमिमण्डले कमलाकृते । उपद्वीपांस्तथा सप्त सीमशैलांश्च सप्त च ॥
निबोध विप्र द्वीपाख्यांपुरा या विधिना कृता । जम्बुशाककुशप्लक्षक्रौञ्चन्यग्रोधपौष्करान्
मेरोरष्टसु शृङ्गेषु ससृजेऽष्टौ पुरीः प्रभुः । अष्टानां लोकपालानां विहाराय मनोहराः ॥
मूलेऽनन्तस्य नगरीं निर्माय जगतां पतिः । ऊर्द्ध्वे स्वर्गांश्च सप्तैव तेषामाख्यां निशामय
भूर्लोकञ्च भुवर्लोकं स्वर्लोकं सुमनोहरम् । जनलोकं तपोलोकं सत्यलोकञ्च शौनक ॥
शृङ्गमूर्द्धि ब्रह्मलोकं जरादिपरिवर्जितम् । तदूर्द्ध्वे ध्रुवलोकञ्च सर्वतः सुमनोहरम् ॥
तदधः सप्तपातालान्निर्ममे जगदीश्वरः । स्वर्गातिरिक्तभोगाढ्यानधोऽधः क्रमतो मुने ॥
अतलं वितलञ्चैव सुतलञ्च तलातलम् । महातलञ्च पातालं रसातलमधस्ततः ॥ १३ ॥
सप्तद्वीपैः सप्तस्वर्गैः सप्तपातालसंज्ञकैः । एभिर्लोकैश्च ब्रह्माण्डं ब्रह्माधिकारमेव च ॥
एवञ्चासंख्यब्रह्माण्डं सर्वं कृत्रिममेव च । महाविष्णोश्च लोमाञ्चविवरेषु च शौनक ! ॥
प्रतिविश्वेषु दिक्पाला ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः । सुरा नरादयः सर्वे सन्ति कृष्णस्य मायया
ब्रह्माण्डगणनां कर्तुं न क्षमो जगतां पतिः । न शङ्करो न धर्मश्च न च विष्णुश्चके सुराः
संख्यातुमीश्वरः शक्तो न संख्यातुं तथापि सः । विश्वाकाशदिशाश्चैवसर्वेतायपिक्षमः

कृत्रिमाणि च विश्वानि विश्वस्थानि च यानि च।
अनित्यानि च विप्रेन्द्र स्वप्नवन्नश्वराणि च ॥ १६ ॥

वैकुण्ठः शिवलोकश्च गोलोकश्च तयोः परः। नित्यो विश्वबहिर्भूतश्चात्माकाशदिशोयथा

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे सौतिशौनक-संवादे ब्रह्मखण्डे सृष्टिनिरूपणं नाम सप्तमोऽध्यायः।

अष्टमोऽध्यायः।

सृष्टि प्रकरणम्।

सौतिरुवाच।

ब्रह्मा विश्वं विनिर्माय सावित्र्यां वरयोषिति।
चकार वीर्य्याधानश्च कामुक्यां कामुको यथा ॥ १ ॥

सा दिव्यं शतवर्षञ्च धृत्वा गर्भं सुदुःसहम्। सुप्रसूता च सुषुवे चतुर्वेदान् मनोहरान् ॥

विविधान् शास्त्रसङ्घांश्च तर्कव्याकरणादिकान्।
षट्त्रिंशत्संख्यका दिव्या रागिणीः सुमनोहराः ॥ २ ॥

षड्रागान् सुन्दरांश्चैव नानातालसमन्वितान्। सत्यत्रेताद्वापरांश्च कलिञ्च कलहप्रियम् वर्षं मासमृतुञ्चैव तिथिं दण्डक्षणादिकम्। दिनं रात्रिञ्च वारांश्च सन्ध्यामुषसमेव च पुष्टिञ्च देवसेनाञ्च मेधाञ्च विजयां जयाम्। षट्कृत्तिकाश्च योगांश्च करणांश्च तपोधन! देवसेनां महाषष्ठीं कार्त्तिकेयप्रियां सतीम्। मातृकासु प्रधाना सा बालानामिष्टदेवता ॥ ब्राह्मं पाद्मञ्च वाराहं कल्पत्रयमिदं स्मृतम्। नित्यं नैमित्तिकञ्चैव द्विपरार्द्धञ्च प्राकृतम् चतुर्विधञ्च प्रलयं कालञ्च मृत्युकन्यकाम्। सर्वान् व्याधिगणांश्चैवसा प्रसूय स्तनं ददौ अथ धातुः पृष्ठदेशादधर्मः समजायत। अलक्ष्मीस्तद्वामपार्श्वाद्बभूव तस्य कामिनी ॥ नाभिदेशाद्विश्वकर्मा बभूव शिल्पिनां गुरुः। महान्तो वसवोऽष्टौ च महाबलपराक्रमाः

अथ धातुश्च मनस आविर्भूताः कुमारकाः। चत्वारः पञ्चवर्षीया ज्वलन्तो ब्रह्मतेजसा
सनकश्च सनन्दश्च तृतीयश्च सनातनः। सनत्कुमारो भगवांश्चतुर्थो ज्ञानिनां वरः॥
आविर्बभूव मुखतः कुमारः कनकप्रभः। दिव्यरूपधरः श्रीमान् सस्त्रीकः सुन्दरो युवा

क्षत्रियाणां बीजरूपो नाम्ना स्वायम्भुवो मनुः।
या स्त्रीः सा शतरूपा च रूपाढ्या कमलाकला॥ १५॥

सस्त्रीकश्च मनुस्तस्थौ धात्राज्ञापरिपालकः। स्वयं विधाता पुत्रांश्च तानुवाच प्रहर्षितान्
सृष्टिं कर्तुं महाभागो महाभागवतान् द्विज!। जग्मुस्ते च नहीत्युक्त्वा तप्तुं कृष्णपरायणाः
चुकोप हेतुना तेन विधाता जगतां पतिः। कोपासक्तस्य च विधेर्ज्वलतो ब्रह्मतेजसा
आविर्भूता ललाटाच्च रुद्रा एकादश प्रभो। कालाग्निरुद्रः संहर्त्ता तेषामेकः प्रकीर्त्तितः
सर्वेषामेव विश्वानां स एव तामसः स्मृतः। राजसश्च स्वयं ब्रह्मा शिवो विष्णुश्च सात्त्विकौ
गोलोकनाथः कृष्णश्च निर्गुणः प्रकृतेः परः। परमाज्ञानिनो मूर्खा वदन्ति तामसं शिवम्
शुद्धसत्त्वस्वरूपश्च निर्मलं वैष्णवाग्रणीम्। शृणु नामानि रुद्राणां वेदोक्तानि च यानि च
महान् महात्मा मतिमान् भीषणश्च भयङ्करः। ऋतुध्वजश्चोर्ध्वकेशः पिङ्गलाक्षो रुचिः शुचिः
पुलस्त्यो दक्षकर्णाच्च पुलहो वामकर्णतः। दक्षनेत्रात्तथाऽत्रिश्च वामनेत्रात् क्रतुः स्वयम्
अरणिर्नासिकारन्ध्रादङ्गिराश्च मुखाद्रुचिः। भृगुश्च वामपार्श्वाच्च दक्षो दक्षिणपार्श्वतः
छायायाः कर्दमो जातो नाभेः पञ्चशिखस्तथा। वक्षसश्चैव वोढुश्च कण्ठदेशाच्च नारदः
मरीचिः स्कन्धदेशाच्चैवापान्तरतमा गलात्। वशिष्ठो रसनादेशात् प्रचेता अधरौष्ठतः
हंसश्च वामकुक्षेश्च दक्षकुक्षेर्यतिः स्वयम्। सृष्टिं विधातुं स विधिश्चकाराज्ञां सुतान्प्रति

पितुर्वाक्यं समाकर्ण्य तमुवाच स नारदः॥ २८॥

नारद उवाच।

पूर्वमानयमज्ज्येष्ठान् सनकादीन् पितामह। कारयित्वा दारयुक्तानस्मान् वद जगत्पते!
पित्रा ते तपसे युक्ताः संसाराय वयं कथम्। अहो हन्त! प्रभोर्बुद्धिर्विपरीताय कल्पते
कस्मै पुत्राय पीयूषात् परं दत्तं तपोऽधुना। कस्मै ददासि विषयं विषमञ्च विषाधिकम्

अतीव निम्ने घोरे च भवाब्धौ यः पतेत् पितः।
निष्कृतिस्तस्य नास्तीति कोटिकल्पे गतेऽपि च ॥ ३२ ॥

निस्तारबीजं सर्वेषां बीजञ्च पुरुषोत्तमम्। सर्वदं भक्तिदं दास्यप्रदं सत्यं कृपामयम् ॥
भक्तैकशरणं भक्तवत्सलं स्वच्छमेव च। भक्तप्रियं भक्तनाथं भक्तानुग्रहकारकम् ॥ ३४ ॥
भक्ताराध्यं भक्तसाध्यं विहाय परमेश्वरम्। मनो दधाति को मूढो विषये नाशकारणे
विहाय कृष्णसेवाञ्च पीयूषादधिकां प्रियाम्। कोमूढो विषमश्नाति विषमं विषयाभिधम्
स्वप्नवन्नश्वरं तुच्छमसत्यं नाशकारणम्। यथा दीपशिखाग्रञ्च कीटानां सुमनोहरम् ॥
यथा बड़िशमांसञ्च मत्स्यापातसुखप्रदम्। तथा विषयिणां तात विषयं मृत्युकारणम्
इत्युक्त्वा नारदस्तत्र विरराम विधेः पुरः। तस्थौ तातं नमस्कृत्य ज्वलदग्निशिखोपमः ॥
ब्रह्मा कोपपरीतश्च शशाप तनयं द्विज। उवाच कम्पिताङ्गश्च रक्तास्यः स्फुरिताधरः ॥

ब्रह्मोवाच।

भविता ज्ञानलोपस्ते मच्छापेन च नारद। क्रीड़ामृगस्त्वं साध्यश्च योषिल्लुब्धश्च लम्पटः
स्थिरयौवनयुक्तानां रूपाढ्यानां मनोहरः। पञ्चाशत्कामिनीनाञ्च भर्त्ता च प्राणवल्लभः
शृङ्गारशास्त्रवेत्ता च महाशृङ्गारलोलुपः। नानाप्रकारशृङ्गारनिपुणानां गुरोर्गुरुः ॥
गन्धर्वाणाञ्च प्रवरः सुस्वरश्च सुगायनः। वीणावादनसन्दर्भनिष्णातः स्थिरयौवनः ॥
प्राज्ञो मधुरवाक् शान्तः सुशीलः सुन्दरः सुधीः। भविष्यसि न सन्देहो नामतश्चोपवर्हणः
ताभिर्दिव्यं लक्षयुगं विहृत्य निर्जने वने। पुनर्मदीयशापेन दासीपुत्रश्च तत्परः ॥ ४६ ॥
वत्स वैष्णवसंसर्गात् वैष्णवोच्छिष्टभोजनात्। पुनःकृष्णप्रसादेन भविष्यसि ममात्मजः
ज्ञानं दास्यामि ते दिव्यं पुनरेव पुरातनम्। अधुना भव नष्टस्त्वं मत्सुतो निपत ध्रुवम्
ब्रह्मेत्युक्त्वा सुतं विप्र विरराम जगत्पतिः। रुरोद नारदस्तातमुवाच संपुटाञ्जलिः ॥

नारद उवाच।

क्रोधं संहर संहर्त्तस्तात तात जगद्गुरो। स्रष्टुस्तपस्वीशस्याहो क्रोधोऽयमप्यनाकरः ॥
शपेत् परित्यजेत् विद्वान् पुत्रमुत्पथगामिनम्। तपस्विनं सुतं शप्तुं कथमर्हसि पण्डित
जनिर्भवतु मे ब्रह्मन् यासु यासु च योनिषु। न जहातु हरेर्भक्तिर्मामेवं देहि मे वरम् ॥

पुत्रश्चेज्जगतां धातुर्नास्ति भक्तिर्हरेः पदे । शूकरादतिरिक्तश्च सोऽधमो भारते भुवि ॥
जातिस्मरो हरेर्भक्तियुक्तः शूकरयोनिषु । जनिर्लभेत् स प्रवरो गोलोकं याति कर्मणा
गोविन्दचरणाम्भोजभक्तिमाध्वीकमीप्सितम् । पिबतां वैष्णवादीनां स्पर्शपूतावसुन्धरा
तीर्थानिस्पर्शमिच्छन्ति वैष्णवानां पितामह । पापानां पापिदत्त्वानां क्षालनायात्मनामपि
मन्त्रोपदेशमात्रेण नरा मुक्ताश्च भारते । परैश्च कोटिपुरुषैः पूर्वैः सार्द्धं हरेर्गृहे ॥
कोटिजन्मार्जितात् पापान्मन्त्रग्रहणमात्रतः । मुक्ताः शुध्यन्ति यत्पूर्वं कर्म निर्मूलयन्ति च
पुत्रान् दारांश्च शिष्यांश्च सेवकान्बान्धवांस्तथा, यो दर्शयतिसन्मार्गं सद्गतिस्तंलभेत्ध्रुवम्
यो दर्शयत्यसन्मार्गं शिष्यैर्विश्वासितोगुरुः। कुम्भीपाकेस्थितिस्तस्ययावच्चन्द्रदिवाकरौ

स किं गुरुः स किं तातः स किं स्वामी स किं सुतः ।
यः श्रीकृष्णपदाम्भोजे भक्तिं दातुमनीश्वरः ॥ ६१ ॥

शप्तो निरपराधेन त्वयाऽहं चतुरानन । मया शप्तुं त्वमुचितो घ्नन्तं घ्नन्त्यपि पण्डिताः ॥
कवचस्तोत्रपूजाभिः सहितस्ते मनुर्मनोः। लुप्तो भवतु मच्छापात् प्रतिविश्वेषुनिश्चितम्
अपूज्यो भव विश्वेषु यावत् कल्पत्रयं पितः । गतेषु त्रिषु कल्पेषु पूज्यपूज्यो भविष्यसि
अधुना यज्ञभागस्ते व्रतादिष्वपि सुव्रत । पूजनं चास्तु मामैकं वन्द्यो भव सुरादिभिः ॥
इत्युक्त्वा नारदस्तत्र विरराम पितुः पुरः । तस्थौ सभायां स विधिर्हृदयेन विदूयता ॥
उपवर्हणगन्धर्वो नारदस्तेन हेतुना । दासीपुत्रश्च शापेन पितुरेव च शौनक ॥ ६७ ॥
ततः पुनर्नारदश्च स बभूव महानृषिः । ज्ञानं प्राप्य पितुः पश्चात् कथयिष्यामि चाधुना

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे सौति-शौनकसंवादे ब्रह्मखण्डे ब्रह्म-नारदशापोपलम्भनं नाम अष्टमोऽध्यायः ।

नवमोऽध्यायः ।

ब्रह्मपुत्रकृतसृष्टिप्रकरणम् ।

सौतिरुवाच ।

अथ ब्रह्मा स्वपुत्रांस्तानादिदेश च सृष्टये । सृष्टिं प्रचक्रुस्ते सर्वे विप्रेन्द्र नारदं विना ॥
मरीचेर्मनसो जातः कश्यपश्च प्रजापतिः । अत्रेर्नेत्रमलाच्चन्द्रः क्षीरोदे च बभूव ह ॥ २॥

प्रचेतसोऽपि मनसो गौतमश्च बभूव ह। पुलस्त्यमानसः पुत्रो मैत्रावरुण एव च ॥३॥
मनोश्च शतरूपायां तिस्रः कन्याः प्रजज्ञिरे। आकूतिर्देवहूतिश्च प्रसूतिस्ताः पतिव्रताः ॥
प्रियव्रतोत्तानपादौ द्वौ च पुत्रौ मनोहरौ। उत्तानपादतनयो ध्रुवः परमधार्मिकः ॥ ५ ॥
आकूतिं रुचये प्रादात् दक्षाय च प्रसूतिकाम्। देवहूतिं कर्दमाय यत्पुत्रः कपिलः स्वयम्
प्रसूत्यां दक्षवीजेन षष्टिकन्याः प्रजज्ञिरे। अष्टौ धर्माय प्रददौ रुद्रायैकादश स्मृताः ॥७॥
शिवायैकां सतीं प्रादात् कश्यपाय त्रयोदश। सप्तविंशतिकन्याश्च दक्षश्चन्द्राय दत्तवान्
नामानि धर्मपत्नीनां मत्तो विप्र निशामय। शान्तिःपुष्टिर्धृतिस्तुष्टिःक्षमाश्रद्धामतिःस्मृतिः
शान्तेः पुत्रश्च सन्तोषः पुष्टेः पुत्रो महानभूत्। धृतेर्धैर्य्यश्च तुष्टेश्च हर्षदर्पौ सुतौ स्मृतौ
क्षमापुत्रः सहिष्णुश्च श्रद्धापुत्रश्च धार्मिकः। मतेर्ज्ञानाभिधः पुत्रः स्मृतेर्जातिस्मरोमहान्
पूर्वपत्न्याश्च मूर्त्याश्च नरनारायणावृषी। बभूवुरेते धर्मिष्ठा धर्मपुत्राश्च शौनक ॥ १२ ॥
नामानि रुद्रपत्नीनां सावधानं निबोध मे। कला कलावती काष्ठा कालिका कलहप्रिया
कन्दली भीषणा रास्ना प्रमोचा भूषणा शुकी। एतासां बहवः पुत्रा बभूवुः शिवपार्श्वदाः
सा सती स्वामिनिन्दायां तनुं तत्याज यज्ञतः। पुनर्भूत्वा शैलपुत्री लेभे च शङ्करं पतिम्
कश्यपस्य प्रियाणाञ्च नामानिश्शृणु धार्मिक। अदितिर्देवमाता या दैत्यमातादितिस्तथा
सर्पमाता तथा कद्रुर्विनता पक्षिसूस्तथा। सुरभिश्च गवां माता महिषाणाञ्च निश्चितम्
सारमेयादिजन्तूनां सरमा सूश्चतुष्पदाम्। दनुः प्रसूर्दानवानामन्याश्चेत्येवमादिकाः ॥
इन्द्रश्च द्वादशादित्या उपेन्द्राद्याः सुरा मुने!। कथिताश्चादितेः पुत्रा महाबलपराक्रमाः
इन्द्रपुत्रो जयन्तश्च ब्रह्मन् शच्यामजायत। आदित्यस्य सवर्णायां कन्यायां विश्वकर्मणः
शनैश्चरयमौ पुत्रौ कालिन्दी कन्यका तथा। उपेन्द्रवीर्य्यात् पृथ्व्यान्तु मङ्गलःसमजायत

शौनक उवाच।

कथं सौते स चोपेन्द्रान्मङ्गलः समजायत। वसुन्धरायां बलवान् तन्मेव्याख्यातुमर्हसि

सौतिरुवाच।

उपेन्द्ररूपमालोक्य कामार्त्ता च वसुन्धरा। विधाय सुन्दरीवेशमक्षता प्रौढ़यौवना २३॥
मलये निर्जने रम्ये चारुचन्दनपल्लवे। चन्दनोक्षितसर्वाङ्गी रत्नभूषणभूषिता ॥ २४ ॥

तं सुशीलं शयानञ्च शान्तं सस्मितमीप्सितम् । सस्मिता तस्य तल्पे च सहसा समुपस्थिता ॥
सुरम्यां मालतीमालां ददौ तस्मै वरानना । सुगन्धि चन्दनं चारु कस्तूरीकुङ्कुमान्वितम् ॥
उपेन्द्रस्तन्मनो ज्ञात्वा कामि मन्मथपीड़ितम् । नानाप्रकारश्रृङ्गारं चकार च तया सह ॥
तदङ्गसङ्गसंसक्ता मूर्च्छां प्राप सती तदा । मृतेव निद्रितेवासौ वीजाधानं कृते हरौ ॥
तां विलग्नाञ्च सुश्रोणीं सुखसम्भोगमूर्च्छिताम् । वृहन्मुक्तनितम्बाञ्च सस्मितां विपुलस्तनीम् ॥
क्षणं वक्षसि कृत्वा तां तदोष्ठञ्च चुचुम्ब ह । विहाय तत्र रहसि जगाम पुरुषोत्तमः ॥३०॥
उर्वशी पथि गच्छन्ती बोधयामास तां मुने ! । सा च पप्रच्छ वृत्तान्तं कथयामास भूश्च ताम् ॥
वीर्य्यं संवरणं कर्त्तुं सा चाशक्ता च दुर्बला । प्रवालस्याकरे त्रस्ता वीर्य्यं न्यासं चकार सा ॥
तेन प्रबालवर्णश्च कुमारः समपद्यत । तेजसा सूर्य्यसदृशो नारायणसुतो महान् ॥३३॥
मङ्गलस्य प्रिया मेधा तस्य घण्टेश्वरो महान् । व्रणदातेति तेजस्वी विष्णुतुल्यो बभूव ह ॥
दितेर्हिरण्यकशिपुहिरण्याक्षौ महाबलौ । कन्या च सिंहिका विप्र सैंहिकेयश्च तत्सुतः ॥
निर्ऋतिः सिंहिका सा च तेन राहुश्च नैर्ऋतः । शूकरेण हिरण्याक्षोऽप्यनपत्यो मृतो युवा ॥
हिरण्यकशिपोः पुत्रः प्रह्लादो वैष्णवाग्रणीः । विरोचनश्च तत्पुत्रस्तत्पुत्रश्च बलिः स्वयम् ॥
बलेः पुत्रो महायोगी ज्ञानी शङ्करकिङ्करः । दितेर्वंशश्च कथितः कद्रुवंशं निबोध मे ॥
अनन्तं वासुकिञ्चैव कालीयञ्च धनञ्जयम् । कर्कोटकं तक्षकञ्च पद्ममैरावतं तथा ॥३९॥
महापद्मञ्च शङ्कुञ्च शङ्खं संवरणन्तथा । धृतराष्ट्रञ्च दुर्द्धर्षं दुर्जयं दुर्मुखं बलम् ॥ ४० ॥
गोक्षं गोकामुखञ्चैव विरूपादींश्च शौनक । एतेषां प्रवराश्चैव यावत्यः सर्पजातयः ॥
कन्यका मनसा देवी कमलांशसमुद्भवा । तपस्विनीनां प्रवरा महातेजस्विनी शुभा ॥
यत्पतिश्च जरत्कारुर्नारायणकलोद्भवः । आस्तीकस्तनयो यस्या विष्णुतुल्यश्च तेजसा ॥
एतेषां नाममात्रेण नास्ति नागभयं नृणाम् । कद्रुवंशो निगदितो विनतायाश्च श्रूयताम् ॥
वैनतेयारुणौ पुत्रौ विष्णुतुल्यपराक्रमौ । तद्बभूवुः क्रमेणैव यावत्यः पक्षिजातयः ॥४५
गावश्च महिषाश्चैव सुरभिप्रवरा इमे । सर्वे वै सारमेयाश्च बभूवुः सरमासुताः ॥ ४६ ॥
दानवाश्च दनोर्वंशा अन्यासामन्यजातयः । उक्तः कश्यपवंशश्च चन्द्राख्यानं निबोध मे ॥
नामानि चन्द्रपत्नीनां सावधानं निशामय । अत्यपूर्वञ्च चरितं पुराणेषु पुरातनम् ॥४८॥

अश्विनी भरणी चैव कृत्तिका रोहिणीतथा। मृगशीर्षा तथार्द्राच पुष्यासाध्वीपुनर्वसुः
पुष्याश्लेषा मघा पूर्वफल्गुन्युत्तरफल्गुनी। हस्ताचित्रातथास्वाती विशाखाचानुराधिका
ज्येष्ठा मूला तथा पूर्वाषाढ़ा चैवोत्तरा स्मृता। श्रवणाच धनिष्ठाच तथारशतभिषा शुभा
पूर्वोत्तरभाद्रपदी रेवत्यन्ता विधुप्रियाः। तासां मध्ये च शुभगा रोहिणी रसिका वरा
सन्ततं रसभावेन चकार शशिनं वशम्। रोहिण्युपगतश्चन्द्रो न यात्यन्याश्च कामिनीम्
सर्वा भगिन्यः पितरं कथयामासुराहृताः। सपत्नीकृतसन्तापं प्राणनाशकरं परम् ॥५४॥
दक्षः प्रकुपितश्चन्द्रं शशाप मन्त्रपूर्वकम्। द्रुतं श्वशुरशापेन यक्ष्मग्रस्तो बभूव सः ॥५५
दिने दिने यक्ष्मणा स क्षीयमाणश्च दुःखितः। वपुष्यर्द्धं क्षीयमाणे शङ्करं शरणं ययौ
दृष्ट्वा चन्द्रं शङ्करश्च क्लेशितं शरणागतम्। करुणासागरस्तस्मै कृपया चाभयं ददौ ॥५७॥
निर्मुक्तं यक्ष्मणा कृत्वा स्वकपोले स्थलंददौ। अमरोनिर्भयोभूत्वा सतस्थौशिवशेखरे
तंशिवः शेखरे कृत्वा बभूव चन्द्रशेखरः। नास्ति देवेषु लोकेषु शिवात् शरणपञ्जरः॥
दक्षकन्याः पतिं मुक्तं दृष्ट्वा च रुरुदुः पुनः। आजग्मुः शरणं तातं दक्षं तेजस्विनां वरम्॥
उच्चैश्च रुरुदुर्गत्वा निहत्याङ्गं पुनः पुनः। तमूचुः कातरं दीना दीननाथं विधेः सुतम्॥

दक्षकन्या ऊचुः।

स्वामिसौभाग्यलाभाय त्वमुक्तोऽस्माभिरेवच।
सौभाग्यमस्तु नस्तात! गतः स्वामी गुणान्वितः॥ ६२॥

स्थिते चक्षुषि हे तात! दृष्टंध्वान्तमयं जगत्। विज्ञातमधुना स्त्रीणां पतिरेव हि लोचनम्
पतिरेव गतिः स्त्रीणां पतिः प्राणाश्च सम्पदः। धर्मार्थकाममोक्षाणां हेतुः सेतुर्भवार्णवे
पतिर्नारायणः स्त्रीणां व्रतंधर्मः सनातनः। सर्वंकर्म वृथातासां स्वामिनां विमुखाश्चयाः
स्नानञ्च सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दक्षिणा। सर्वदानानि पुण्यानि व्रतानि नियमानि च॥
देवार्चनं चानशनं सर्वाणिच तपांसिच। स्वामिनः पादसेवायां कलांनार्हन्ति षोड़शीम्
सर्वेषां बान्धवानाञ्च प्रियःपुत्रश्च योषिताम्। सएव स्वामिनोंऽशश्च शतपुत्रात् परःपतिः
असद्वंशप्रसूता या सा द्वेष्टि स्वामिनं सदा। यस्या मनश्चलं दुष्टं सततं परपूरुषे॥
पतितं रोगिणं दुष्टं निर्धनं गुणहीनकम्। युवानंचैव वृद्धं वा भजेच्च न त्यजेत् सती॥

सगुणं निर्गुणं वापि या द्वेष्टि संत्यजेत् पतिम् । पच्यते कालसूत्रेसा यावच्चन्द्रदिवाकरौ
कीटैःशकुनतुरयैश्च भक्षिता सा दिवानिशम् । भुङ्क्ते मृतनरसामांसं पिबेन्मूत्रञ्च तृष्णया
गृध्रः कोटिसहस्राणि शतजन्मानि शूकरः । श्वापदः शतजन्मानिसा भवेद्बन्धुहा ततः॥
ततो मानवजन्मानिलभेच्चेत् पूर्वकर्मणः । विधवा धनहीना च रोगयुक्ता भवेत् ध्रुवम्॥
देहि नः कान्तदानाश्च कामपूरं विधेः सुत । विधात्रा सदृशस्त्वञ्च पुनःस्रष्टुं क्षमो जगत्
कन्यानां वचनं श्रुत्वा दक्षः शङ्करसन्निधिम् । जगाम शम्भुस्तं दृष्ट्वा समुत्थाय ननाम च
दक्षस्तस्याशिषं कृत्वा समुवाच कृपानिधिम् । तत्याज कोपं दुर्द्धर्षं दृष्ट्वाच प्रणतं शिवम्

दक्ष उवाच ।

देहि जामातरं शम्भो मदीयं प्रणवल्लभम् । मत्सुतानाञ्च प्राणानां परमेव प्रियं पतिम्॥
न चेद्ददासि जामातर्मम जामातरं विधुम् । दास्यामि दारुणं शापं तुभ्यं त्वं केनमुच्यसे
दक्षस्य वचनं श्रुत्वा तमुवाच कृपानिधिः । सुधाधिकञ्च वचनं ब्रह्मन्शरणपञ्जरः ।८०।

शिव उवाच ।

करोषि भस्मसाच्चेन्मां ददासि शापमेव च । नाहं दातुं समर्थश्च चन्द्रञ्च शरणागतम् ॥
शिवस्य वचनं श्रुत्वा दक्षस्तं शप्तुमुद्यतः । शिवःसस्मार गोविन्दं विपन्मोक्षणकारकम्
एतस्मिन्नन्तरे कृष्णो वृद्धब्राह्मणरूपधृक् । समाययौ तयोर्मूलं तौ तञ्च नमतुः क्रमात्॥
दत्त्वा शुभाशिषं तौ स ब्रह्मज्योतिः सनातनः । उवाच शङ्करं पूर्वं परिपूर्णतमो द्विज॥

श्रीभगवानुवाच ।

न चात्मनःप्रियःकश्चित् शर्व ! सर्वेषु बन्धुषु । आत्मानं रक्ष दक्षायदेहि चन्द्रंसुरेश्वर!
तपस्विनां वरः शान्तस्त्वमेव वैष्णवाग्रणीः । समः सर्वेषु जीवेषु हिंसाक्रोधविवर्जितः॥
दक्षः क्रोधी च दुर्द्धर्षस्तेजस्वी ब्रह्मणः सुतः । इष्टो बिभेति दुर्द्धर्षं न दुर्द्धर्षञ्च कश्चन॥
नारायणवचः श्रुत्वा प्रहस्य शङ्करः स्वयम् । उवाच नीतिसारञ्च नीतिबीजं परात्परम्॥

शङ्कर उवाच ।

तपो दास्यामि तेजश्च सर्वसिद्धिञ्च सम्पदम् ।प्राणांश्च न समर्थोऽहं प्रदातुं शरणागतम्
यो ददाति भयेनैव प्रपन्नं शरणागतम् । तञ्च धर्मः परित्यज्य याति मत्त्वा सुदारुणम्

सर्वं त्यक्तुं समर्थोऽहं न स्वधर्मं जगत्प्रभो ! । यःस्वधर्मविहीनश्च सच सर्ववहिष्कृतः ॥
यश्च धर्मं सदा रक्षेत् धर्मस्तं परिरक्षति । धर्मं वेदेश्वर त्वञ्च किं मां ब्रूहि स्वमायया ॥
त्वं सर्वपाता स्रष्टाच हन्ताच परिणामतः । त्वयि भक्तिर्दृढ़ा यस्यतस्य कस्माद्भयंभवेत्
शङ्करस्यवचः श्रुत्वा भगवान् सर्वभाववित् । चन्द्रं चन्द्राद्विनिष्कृष्य दक्षायप्रददौहरिः
प्रतस्थावर्द्धचन्द्रश्च निर्व्याधिः शिवशेखरे । निर्जग्राह परं चन्द्रं विष्णुदत्तं प्रजापतिः ॥
यक्ष्मग्रस्तश्च तं दृष्ट्वा दक्षस्तुष्टाव माधवम् । पक्षे पूर्णं क्षतं पक्षे तं चकार हरिःस्वयम् ॥
कृष्णस्तेभ्योवरं दत्त्वा जगाम स्वालयंद्विज । दक्षश्चन्द्रं गृहीत्वाच कन्याभ्यः प्रददौपुनः
चन्द्रस्ताःप्रपरिप्राप्य विजहार दिवानिशम् । समं ददर्शताः सर्वास्तत्प्रभृत्येव कम्पितः
इत्येवं कथितं सर्वं किञ्चित् सृष्टिक्रमं मुने ! । श्रुतञ्च गुरुवक्त्रेण पुष्करे मुनिसंसदि ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे सौतिशौनकसंवादे ब्रह्मखण्डे नवमोऽध्यायः ।

दशमोऽध्यायः ।

धनेशजन्मकथनम् ।

सौतिरुवाच ।

भृगोः पुत्रश्च च्यवनः शुक्रश्च ज्ञानिनांवर । क्रतोरपिक्रियाभार्य्या वालखिल्यानसूयत ॥
त्रयः पुत्राश्चाङ्गिरसो बभूवुर्मुनेसत्तमाः । वृहस्पतिरुतथ्यश्च सम्वरश्चापि शौनक ॥ २ ॥
वशिष्ठस्यसुतः शक्त्रिः(क्तिः)शक्त्रेःपुत्रःपराशरः । पराशरसुतःश्रीमान् कृष्णद्वैपायनोहरिः
व्यासपुत्रः शिवांशश्च शुकश्च ज्ञानिनांवरः । विश्रवाः पुलस्त्यस्य यस्यपुत्रोधनेश्वरः

शौनक उवाच ।

अहो ! पुराणविदुषामतीवदुर्गमं वचः । न बुद्धं वचनं किञ्चिद्धनेशजन्मपूर्वकम् ॥ ५ ॥
अधुना कथितं जन्म धनेशस्येश्वरादिदम् । पुनर्भिन्नक्रमं जन्म प्रदीपि कथमेव माम् ॥

सौतिरुवाच ।

बभूवुरेते दिक्पालाः पुरा च परमेश्वरात् । पुनश्च ब्रह्मशापेन स च विश्वश्रवःसुतः ॥
गुरवे दक्षिणां दातुमुतथ्यश्च धनेश्वरम् । ययाचे कोटिस्वर्णञ्च यत्नतश्च प्रचेतसे ॥ ८ ॥
धनेशो विरसो भूत्वा तस्मै तद्दातुमुद्यतः । चकार भस्मसात् विप्र पुनर्जन्म ललाभ सः
तेन विश्वश्रवःपुत्रः कुबेरश्च धनाधिपः । रावणः कुम्भकर्णश्च धार्मिकश्च विभीषणः ॥
पुलहस्य सुतो वात्स्यः शाण्डिल्यश्च रुचेः सुतः । सावर्णिगौतमाज्जज्ञे मुनिप्रवर एवसः
काश्यपः कश्यपाज्जातो भरद्वाजो वृहस्पतेः । स्वयं वात्स्यश्चपुलहात्सावर्णिर्गौतमात्तथा
शाण्डिल्यश्च रुचेःपुत्रो मुनिस्तेजस्विनां वरः । बभूवुः पञ्चगोत्राश्च एतेषां प्रवरा भवे ॥
बभूवुर्ब्रह्मणो वक्त्रादन्या ब्राह्मणजातयः । ताः स्थिता देशभेदेषु गोत्रशून्याश्च शौनक ॥
चन्द्रादित्यमनूनाञ्च प्रवराः क्षत्रियाः स्मृताः । ब्रह्मणोबाहुदेशाच्चैवान्याः क्षत्रियजातयः
उरुदेशाच्च वैश्याश्च पादतः शूद्रजातयः । तासां सङ्करजातेन बभूवुर्वर्णसङ्कराः ॥ १६ ॥
गोपनापितभिल्लाश्च तथा मोदककूबरौ । ताम्बूलिस्वर्णकारौ च तथा वणिकजातयः ॥

इत्येवमाद्या विप्रेन्द्र सत्शूद्राः परिकीर्त्तिताः ।
शूद्राविशोस्तु करणोऽम्बष्ठो वैश्याद्विजन्मनोः ॥ १८ ॥

विश्वकर्मा च शूद्रायां वीर्य्याधानं चकारसः । ततो बभूवुः पुत्राश्चनवैते शिल्पकारिणः
मालाकारकर्मकारशङ्खकारकुविन्दकाः । कुम्भकारः कंसकारः षड़ेते शिल्पिनां वराः ॥
सूत्रधारश्चित्रकारः स्वर्णकारस्तथैव च । पतितास्ते ब्रह्मशापादयाज्या वर्णसङ्कराः ॥

शौनक उवाच ।

कथं देवो विश्वकर्मा वीर्य्याधानञ्चकार सः । शूद्रायामधमायाञ्च कथं तेपतितास्त्रयः ॥
कथं तेषु ब्रह्मशापो बभूव केन हेतुना । हे पुराणविदां श्रेष्ठ तन्नः संशितुमर्हसि ॥ २३ ॥

सौतिरुवाच ।

घृताची कामतः कामं वेशञ्चक्रे मनोहरम् । तां ददर्श विश्वकर्मा गच्छन्तीं पुष्करे पथि
आगच्छन्नविलोकाच्च प्रसादोत्फुल्लमानसः । तां ययाचे स शृङ्गारं कामेन हृतचेतनः ॥
रत्नालङ्कारभूषाढ्यां सर्वावयवकोमलाम् । यथाषोड़शवर्षीयां शश्वत्सुस्थिरयौवनाम्

बृहन्नितम्बभारार्त्तां मुनिमानसमोहिनीम् । अतिवेगकटाक्षेणलोलांकामातिपीड़िताम् ॥
तत्श्रोणीं कठिनां दृष्ट्वा वायूनां शुकसंहृताम् । अतीवच्चैस्तनयुगं कठिनंवर्त्तुलाकृतम् ।
सस्मितंचारुवक्त्रञ्च शरच्चन्द्रविनिन्दकम् । पक्वबिम्बफलारक्तमोष्ठाधरं मनोहरम् ।२६।

सिन्दूरबिन्दुसंयुक्तं कस्तूरीबिन्दुभिः सह ।
कपालमुज्ज्वलं शश्वत् कपोलं मणिकुण्डलम् ॥ ३० ॥

तमुवाचप्रियां शान्तां कामशास्त्रविशारदः । कामाग्निवर्द्धनोद्योगिवचनंश्रुतिसुन्दरम् ॥

विश्वकर्मोवाच ।

अयि क्व यासि ललिते ममप्राणाधिके प्रिये । मम प्राणांश्चापहृत्य स्थिताभव क्षणंशुभे ॥
तवैवान्वेषणंकृत्वाभ्रमामि जगतीतलम् । स्वप्राणांस्त्यक्तुमिष्टोऽहंतां न दृष्ट्वाहुताशने ॥
त्वंयासीतिकामलाकंश्रुत्वारम्भामुखेऽधुना । आगच्छन्नहमेवाद्यचास्मिन्वर्त्मन्यवस्थितः
अहो सरस्वतीतीरे पुष्पोद्याने मनोहरे । सुगन्धिमन्दशीतेन वायुना सुरभीकृते ॥३५ ॥
रमकान्तेमयासार्द्धंयूलाकान्तेन शोभने । विदग्धाया विदग्धेन सङ्गमोगुणवान् भवेत् ॥
स्थिरयौवनसंयुक्ता त्वमेव चिरजीविनी । कामुकी कोमलाङ्गी च सुन्दरीषु च सुन्दरी
मृत्युञ्जयवरेणैव मृत्युकन्या जितयामया । कुवेरभवनं हृत्वा धनंलब्धं कुवेरतः ॥३८॥
रत्नमाला च वरुणाद्वायोः स्त्रीरत्नभूषम् । वह्निशुद्धं वस्त्रयुगंवह्नेः प्रातश्चवेतनात् ॥३६॥
कामशास्त्रं कामदेवाद्योषिद्रञ्जनकारणम् । श्रृङ्गारशिल्पं यत्किञ्चित् लब्धंचन्द्राच्चदुर्लभम्
रत्नमालां वस्त्रयुग्मं सर्वाणिभूषणानि च । तुभ्यं दातुं हृदि कृतं प्राप्तन्तत्क्षण एव च ॥
गृहेतान्येवसंस्थाप्यचागतोऽन्वेषणे भवे । विरामे सुखसम्भोगेतुभ्यंदास्यामिसाम्प्रतम
कामुकस्यवचःश्रुत्वा घृताची सस्मितामुने ! । ददौ प्रत्युत्तरंशीघ्रं नीतियुक्तं मनोहरम् ॥

घृताच्युवाच ।

त्वया यदुक्तं भद्रन्तत् स्वीकारोऽप्यधुनाऽपिच ।
किन्तुसामयिकं वाक्यं ब्रविष्यामि स्मरातुर ॥ ४४ ॥

कामदेवालयं यामि कृतं वेशञ्च तत्कृते । यद्दिने यत्कृते यामो वयंतेषाञ्च योषितः ॥
अद्याहं कामपत्नी च गुरुपत्नी तवाधुना । त्वयोक्तमधुनैदश्च पठितं कामदेवतः ॥ ४६ ॥

विद्यादाता मन्त्रदाता गुर्ल्लक्षगुणैः पितुः । मातुः सहस्रगुणतो नास्त्यन्यस्तत्समोगुरुः
गुरोः शतगुणैः पूज्या गुरुपत्नी श्रुतौ श्रुता । पितुः शतगुणे पूज्या यथामाताविचक्षण
मात्रा सहितश्रृङ्गारैयावान्दोषः श्रुतौ श्रुतः । ततो लक्षगुणोदोषो गुरुपत्नीसमागमे॥
मातरित्येवशब्देन याश्चसम्भाषते नरः । सा मातृतुल्या सत्येन धर्मःसाक्षी सतामपि॥
त्वयासहितश्रृङ्गारे कालसूत्रं प्रयाति सः । तत्र घोरे वसत्येव यावच्चन्द्रदिवाकरौ॥
मातासहितश्रृङ्गारे ततो दोषश्चतुर्गुणः । सार्द्धञ्च गुरुपत्न्या च तल्लक्षगुण एव च॥
कुम्भीपाके पतत्येव यावद् वै ब्रह्मणो वयः । प्रायश्चित्तं पापिनश्चतस्यनैव श्रुतौ श्रुतम्

चक्राकारं कुलालस्य तीक्ष्णधारञ्च खड्गवत् ।
वसामूत्रपुरीषञ्च परिपूर्णं सुदुस्तरम् ॥ ५४ ॥

शूलवत्क्रमिसंयुक्तं तप्तमग्निसमद्रवम् । पापिनां तद्विहारञ्च कुम्भीपाकं प्रकीर्त्तितम्॥
यावान्दोषो हि पुंसाञ्च गुरुपत्नीसमागमे । तावांश्च गुरुपत्न्याश्च तत्रैव कामुकी यदि॥
अद्ययास्यामि कामस्य मन्दिरं तस्यकामिनी । वेशंकृत्वागमिष्यामितत्कृतेऽहं दिनान्तरे
घृताचीवचनंश्रुत्वा विश्वकर्मारुरोषताम् । शशापशूद्रयोनिञ्च व्रजेतिजगतीतले ॥ ५८॥
घृताची तद्वचः श्रुत्वा तं शशाप सुदारुणम् । लभ जन्म भवे त्वञ्च स्वर्गभ्रष्टोभवेति च
घृताचीत्येवमुक्त्वा च जगाम काममन्दिरम् । कामेनसुरतंकृत्वा कथयामास तांकथाम्
सा भारते च कामोक्त्या गोपस्यमदनस्य च । पत्नीप्रयागे नगरे ललाभ जन्मशौनक!
जातिस्मरा तत्प्रसूता बभूव च तपस्विनी । वरं न वव्रे धर्मिष्ठा तपस्यायांमनो दधौ॥
तपश्चकार तपसा तप्तकाञ्चनसन्निभा । दिव्यञ्च शतवर्षं सा गंगातीरे मनोरमे ॥६३॥

वीर्येण सुरकारोश्च नव पुत्रान् प्रसूय सा ।
पुनः स्वर्लोकं गत्वा च सा घृताची बभूव ह ॥ ६४ ॥

शौनक उवाच ।

कथंवीर्य्यंसादधारसुरकारोस्तपस्विनी । पुत्रान्नवप्रसूता च कुत्र वा कतिवा दिनात्॥

सौतिरुवाच ।

विश्वकर्मा तु तच्छापं समाकर्ण्य रुषान्वितः । जगाम ब्रह्मणः स्थानं शोकेन हतचेतनः

नत्वा स्तुत्वा च ब्रह्माणं कथयामास तां कथाम् ।
ललाभ जन्म ब्राह्मण्यां पृथिव्यामाज्ञया विधेः ॥ ६७ ॥

स एव ब्राह्मणो भूत्वा भुवि कारुर्बभूव ह । नृपाणाञ्च गृहस्थानां नानाशिल्पं चकार ह
शिल्पञ्च कारयामास सर्वांश्च सर्वतः सदा । विचित्रं विविधं शिल्पमाश्चर्यं सुमनोहरम्
एकदा तु प्रयागे च शिल्पं कृत्वा नृपस्य च । स्नातुं जगाम गङ्गाञ्च ददर्श तत्र कामिनीम्
घृताचीं नवरूपाञ्च युवतिं तां तपस्विनीम् । जातिस्मरां तां बुबुधे स च जातिस्मरो द्विज
दृष्ट्वा सकामः सहसा बभूव हृतचेतनः । उवाच मधुरं शान्तः शान्तां ताञ्च तपस्विनीम्

ब्राह्मण उवाच ।

अहोऽधुना त्वमत्रैव घृताचि सुमनोहरे । मा मां स्मरसि रम्भोरु विश्वकर्माऽहमेव च
शापमोक्षं करिष्यामि भज मां तव सुन्दरि । त्वत्कृतेऽतिदहत्येव मनो मे स च मन्मथः
द्विजस्य वचनं श्रुत्वा घृताची नवरूपिणी । उवाच मधुरं शान्ता नीतियुक्तं परं वचः ॥

गोपिकोवाच ।

तद्दिने कामकान्ताहमधुना च तपस्विनी । कथं दास्यामि शृङ्गारं गङ्गातीरे च भारते ॥
विश्वकर्मन्निदं पुण्यं कर्मक्षेत्रञ्च भारतम् । अत्र यत् क्रियते कर्म भोगोऽन्यत्र शुभाशुभम्
धर्मी मोक्षकृते जन्म संलभ्य तपसः फलात् । निबद्धः कुरुते कर्म मोहितो विष्णुमायया

माया नारायणीशाना परितुष्टा च यं भवेत् ।
तस्मै ददाति श्रीकृष्णो भक्तिं तन्मन्त्रमीप्सितम् ॥ ७६ ॥

यो मूढो विषयासक्तोलब्धजन्मा च भारते । विहाय कृष्णं सर्वेशं समुग्धो विष्णुमायया
सर्वं स्मरामि देवाहमहो जातिस्मरा पुरा । घृताची सुरवेश्याहमधुना गोपकन्यका ॥
तपः करोमि मोक्षार्थं गङ्गातीरे सुपुण्यदे । नात्रस्थलञ्च क्रीड़ायाः स्थिरस्त्वं भव कामुक
अन्यत्र कृतपापञ्च गङ्गायाञ्च विनश्यति । गङ्गातीरे कृतं पापं सद्यो लक्षगुणं भवेत् ॥
तत्तु नारायणक्षेत्रे तपसा च विनश्यति । यद्येव कामतः कृत्वा निवृत्तश्च भवेत् पुनः ॥
घृताचीवचनं श्रुत्वा विश्वकर्मा निराकृतिः । जगाम तां गृहीत्वा च मलयं चन्दनालयम्
रम्यायां मलयद्रोण्यां पुष्पतल्पे मनोरमे । पुष्पचन्दनवातेन सन्ततं सुरभीकृते ॥ ८६ ॥

चकार सुखसम्भोगं तया सह सुनिर्जने। पूर्णं द्वादशवर्षञ्च बुबुधे न दिवानिशम्॥
बभूव गर्भः कामिन्या परिपूर्णः सुदुर्वहः। सा सुषाव च तत्रैव पुत्रान्नव मनोहरान्॥
कृतशिक्षितशिल्पांश्च ज्ञानयुक्तांश्च शौनक। पूर्वप्राक्तनतोयुग्यान् बलयुक्तान् विचक्षणान्
मालाकारकर्मकंसशङ्खकारकुविन्दकान्। कुम्भकारसूत्रधारस्वर्णचित्रकरांस्तथा॥ ९०

तौ च तेभ्यो वरं दत्त्वा तान् संस्थाप्य महीतले।
मानवीं तनुमुत्सृज्य जग्मतुर्निजमन्दिरम्॥ ९१॥

स्वर्णकारः स्वर्णचौर्य्यात् ब्राह्मणानां द्विजोत्तम। बभूव पतितःसद्यो ब्रह्मशापेन कर्मणा
सूत्रधारो द्विजानान्तु शापेन पतितो भुवि। शीघ्रञ्च यज्ञकाष्ठानि न ददौ तेन हेतुना॥
व्यतिक्रमेण चित्राणां सद्यश्चित्रकरस्तथा। पतितो ब्रह्मशापेन ब्राह्मणानाञ्च कोपतः॥
कश्चिद्वणिग्विशेषश्च संसर्गात्स्वर्णकारिणः। स्वर्णचौर्य्यादिदोषेण पतितोब्रह्मशापतः
कुलटायाञ्च शूद्रायां चित्रकारस्य वीर्य्यतः। बभूवाट्टालिकाकारः पतितो जारदोषतः॥
अट्टालिकाकारवीजात् कुम्भकारस्य योषिति। बभूव कोटकः सद्यः पतितो गृहकारकः
कुम्भकारस्य वीजेन सद्यः कोटकयोषिति। बभूव तैलकारश्च कुटिलः पतितो भुवि॥
सद्यः क्षत्रियवीजेन राजपुत्रस्य योषिति। बभूव तीवरश्चैव पतितो जारदोषतः॥ ९९
तीवरस्य तु वीजेन तैलकारस्य योषिति। बभूव पतितो दस्युर्लेटश्च परिकीर्त्तितः॥
लेटस्तीवरकन्यायां जनयामास यन्नरान्। मल्लमन्त्रंःमातारञ्चभड़ं कोलं कलन्दरम्॥
ब्राह्मण्यां शूद्रवीर्य्येण पतितोजारदोषतः। सद्यो बभूव चण्डालः सर्वस्मादधमोऽशुचिः
तीवरेण च चाण्डाल्यां चर्मकारो बभूव ह। चर्मकार्य्याञ्च चण्डालान्मांसच्छेदो बभूव ह

मांसच्छेद्यां तीवरेण कोँचश्च परिकीर्त्तितः।
कोँचस्त्रियान्तु कैवर्त्तात् कर्त्तारः परिकीर्त्तितः॥ १०४॥

सद्यश्चण्डालकन्यायां लेटवीर्य्येण शौनक। बभूवतुस्तौ द्वौ पुत्रौ दुष्टौ हड्डिडमौ तथा
क्रमेण हड्डिकन्यायां सद्यश्चण्डालवीर्य्यतः। बभूवुः पञ्चपुत्राश्च दुष्टा वनचराश्च ते॥
लेटात्तीवरकन्यायां गङ्गातीरे च शौनक। बभूव सद्यो यो बालो गङ्गापुत्रः प्रकीर्त्तितः
गङ्गापुत्रस्य कन्यायां वीर्य्येण वेशधारिणः। बभूव वेशधारी च पुत्रो युङ्गी प्रकीर्त्तितः

वैश्यात्तीवरकन्यायां सद्यः शुण्डी बभूव ह। शुण्डीयोषितिवैश्यात्तु पौण्ड्रकश्च बभूव ह
क्षत्रात् करणकन्यायायां राजपुत्रो बभूव ह। राजपुत्र्यान्तु करणादागरीति प्रकीर्त्तितः
क्षत्रवीर्य्येण वैश्यायां कैवर्त्तः परिकीर्त्तितः। कलौ तीवरसंसर्गात् धीवरः पतितोभुवि
तीवर्य्यां धीवरात् पुत्रो बभूव रजकः स्मृतः। रजक्यां तीवराच्चैव कोयालीति बभूव ह
नापितात् गोपकन्यायां सर्वस्वीतस्ययोषिति। क्षत्राद्बभूवव्याधश्च बलवान्मृगहिंसकः
तीवरात् शुण्डिकन्यायां बभूवःसप्तपुत्रकाः। तेकलौ हड्डिसंसर्गात् बभूवुर्दस्यवःसदा
ब्राह्मण्यामृषिवीर्य्येण ऋतोः प्रथमवासरे। कुत्सितश्चोदरे जातः कूदरस्तेन कीर्त्तितः॥
तदशौचं विप्रतुल्यं पतितो ऋतुदोषतः। सद्यः कोटकसंसर्गादधमो जगतीतले॥११६॥
क्षत्रवीर्य्येण वैश्यायामृतोः प्रथमवासरे। जातः पुत्रो महादस्युर्बलवांश्च धनुर्द्धरः॥
चकार वागतीतञ्च क्षत्रियेणापि वारितः। तेन जात्याः सपुत्रश्च वागतीतः प्रकीर्त्तितः
क्षत्रवीर्य्येण शूद्रायामृतुदोषेण पापतः। बलवन्तो दुरन्ताश्च बभूवुर्म्लेच्छजातयः॥११६
अविद्धकर्णाः क्रूराश्च निर्भया रणदुर्जयाः। शौचाचारविहीनाश्च दुर्द्धर्षा धर्मवर्जिताः

म्लेच्छात् कुविन्दकन्यायां जोलाजातिर्बभूव ह।
जोलात् कुविन्दकन्यायां शराकः परिकीर्त्तितः॥ १२१॥

वर्णसङ्करदोषेण बह्वश्च श्रुतजातयः। तासां नामानि संख्याश्च को वा वक्तुंक्षमो द्विज
वैद्योऽश्विनीकुमारेण जातश्च विप्रयोषिति। वैद्यवीर्य्येण शूद्रायां बभूवुर्बहवो जनाः॥
तेच ग्रामम्यगुणज्ञाश्च मन्त्रौषधिपरायणाः। तेभ्यश्चजाताःशूद्रायांये व्यालग्राहिणोभुवि

शौनक उवाच।

कथं ब्राह्मणपत्न्यान्तु सूर्य्यपुत्रोऽश्विनीसुतः। अहो केन विपाकेन वीर्य्याधानञ्चकार ह

सौतिरुवाच।

गच्छन्तीं तीर्थयात्रायां ब्राह्मणीं रविनन्दनः। ददर्श कामुकः शान्तः पुष्पोद्यानेच निर्जने
तया निवारितो यत्नात् बलेन बलवान् सुरः। अतीवसुन्दरीं दृष्ट्वा वीर्य्याधानञ्चकार स
द्रुतं तत्याज गर्भं सा पुष्पोद्याने मनोहरे। सद्यो बभूव पुत्रश्च तप्तकाञ्चनसन्निभः॥१२८
सपुत्रा स्वामिनोगेहं जगाम व्रीडितासदा। स्वामिनं कथयामास यन्मार्गे दैवसङ्कटम्

विप्रो रोषेण तत्याज तश्चपुत्रं स्वकामिनीम् । सरिद्बभूव योगेनसाच गोदावरी स्मृता
पुत्रं चिकित्साशास्त्रञ्च पाठयामास यत्नतः । नानाशिल्पञ्च मन्त्रञ्च स्वयं स रविनन्दनः
विप्रश्च ज्योतिर्गणनाद्वेतनाच्च निरन्तरम् । वेदधर्मपरित्यक्तो बभूव गणको भुवि ॥१३२
लोभी विप्रश्च शूद्राणामग्रे दानं गृहीतवान् । ग्रहणे मृतदानानामग्रदानी बभूव सः ॥
कश्चित् पुमान् ब्रह्मयज्ञेयज्ञकुण्डात् समुत्थितः । ससूतोधर्मवक्ता च मत्पूर्वपुरुषःस्मृतः
पुराणं पाठयामास तञ्चब्रह्मा कृपानिधिः । पुराणवक्ता सूतश्च यज्ञकुण्डसमुद्भवः ॥१३५
वैश्यायां सूतवीर्य्येण पुमानेको बभूव ह । स भट्टो वावदूकश्च सर्वेषां स्तुतिपाठकः ॥
एतत्तेकथितं किंचित् पृथिव्यांजातिनिर्णयम् । वर्णसङ्करदोषेण बह्वोऽन्याःसन्तिजातयः
सम्बन्धो येषु येषां यः सर्वजातिषु सर्वतः । तत्त्वं ब्रवीमि वेदोक्तं ब्रह्मणा कथितं पुरा॥
पिता तातस्तु जनको जन्मदातरि वर्त्तते । अम्बा माता च जननी गर्भस्थल्यां प्रसूरिति॥
पितामहः पितृपिता तत्पिता प्रपितामहः । अत ऊर्द्ध्वं ज्ञातयश्च सगोत्राः परिकीर्त्तिताः
मातामहः पिता मातुः प्रमातामह एव च । मातामहस्य जनकस्तत्पिता वृद्धपूर्वकः ॥१४१
पितामही पितुर्माता तत्श्वश्रूः प्रपितामही । तत्श्वश्रूश्च परिज्ञेया सा वृद्धप्रपितामही॥
मातामही मातृमाता मातुल्या च पूजिता । प्रमातामहीति ज्ञेया प्रमातामहकामिनी ॥
वृद्धमातामही ज्ञेया तत्पितुः कामिनी तथा । पितृभ्राता पितृव्यश्च मातृभ्राता च मातुलः
पितृस्वसा पितृभग्नी मातृभग्नी च मासुरी । सूनुश्च तनयः पुत्रो दायादश्चात्मजस्तथा॥
धनभाग्वीर्य्यजश्चैव पुंसिजन्ये च वर्त्तते । जन्यायांदुहिताकन्या चात्मजा परिकीर्त्तिता
पुत्रपत्नी वधूर्ज्ञेया जामाता दुहितुःपतिः । पतिः प्रियश्च भर्त्ताच स्वामी कान्तेच वर्त्तते
देवरःस्वामिनोभ्रातानन्दास्वामिनःस्वसा । श्वशुरःस्वामिनस्तातःश्वश्रूश्चस्वामिनःप्रसूः

भार्य्या जाया प्रिया कान्ता स्त्रीश्च पत्न्याञ्च वर्त्तते ।
पत्नीभ्राता श्यालकश्चपत्नीभग्नी च श्यालिका ॥ १४६ ॥

पत्नीमातातथा श्वश्रूस्तत्पिता श्वशुरःस्मृतः । सगर्भः सोदरोभ्रातासगर्भाभगिनीस्मृता
भगिनीपुत्रो भागिनेयो भ्रातृपुत्रश्चभ्रातृजः । श्यालन्तुभगिनीकान्तो भगिनीपतिरेवच
श्यालीपतिस्तु भ्राता च श्वशुरैकश्च हेतुना । श्वशुरस्तु पिताज्ञेयो जन्मदातुः समोमुने

अन्नदाता भयत्राता पत्नीतातस्तथैव च । विद्यादाता जन्मदाता पञ्चैते पितरो नृणाम् ॥
अन्नदातुश्चया पत्नी भगिनी गुरुकामिनी । माता च तत्सपत्नी च कन्या पुत्रप्रियातथा
मातुर्माता पितुर्माता श्वश्रूःपित्रोः स्वसा तथा । पितृव्यानी मातुलानी मातरश्चचतुर्दश
पौत्रस्तुपुत्रपुत्रेच प्रपौत्रस्तत्सुतेऽपि च । तत्पुत्राद्याश्च ये वंशाःकुलजाश्चप्रकीर्त्तिताः
कन्यापुत्रश्चदौहित्रस्तत् पुत्राद्याश्चवान्धवाः । भागिनेयसुताद्याश्चपुरुषावान्धवाःस्मृताः
भ्रातृपुत्रस्य पुत्राद्यास्ते पुनर्ज्ञातयः स्मृताः । गुरुपुत्रस्तथा भ्राता पोष्यःपरमवान्धवः ॥
गुरुकन्या च भगिनीपोष्या मातृसमासुने । पुत्रस्यच गुरुर्भ्रातापोष्यः सुस्निग्धवान्धवः
पुत्रस्यश्वशुरोभ्राताबन्धुर्वैवाहिकः स्मृतः । कन्यायाःश्वशुरेचैव तत्सम्बन्धःप्रकीर्त्तितः
गुरुश्च कन्यकायाश्च भ्राता सुसिग्धबान्धवः । गुरुश्वशुरभ्रातृणां गुरुतुल्यः प्रकीर्त्तितः
बन्धुता येन सार्द्धञ्च तन्मित्रं परिकीर्त्तितम् । मित्रं सुखप्रदं ज्ञेयं दुःखदो रिपुरुच्यते ॥
बान्धवोदुःखदोदैवात् निःसम्बन्धोसुखप्रदः । सम्बन्धास्त्रिविधाःपुंसांविप्रेन्द्रजगतीतले
विद्याजो योनिजश्चैवप्रीतिजश्च प्रकीर्त्तितः । मित्रन्तु प्रीतिजं ज्ञेयं स सम्बन्धःसुदुर्लभः
मित्रमाता मित्रभार्य्यामातृतुल्या न संशयः । मित्रभ्रातामित्रपिता पितृभ्रातृसमोनृणाम्
चतुर्थं नाम सम्बन्धमित्याह कमलोद्भवः । जारश्चोपपतिर्बन्धुर्दुष्टासससम्भोगकर्त्तरि ॥
उपपत्न्यां नवज्ञा च प्रेयसी चित्रहारिणी । स्वामितुल्यश्च जारश्च नवज्ञा गृहिणीसमा॥
सम्बन्धो देशभेदे च सर्वदेशे विगर्हितः । अवैदिको निन्दितस्तु विश्वामित्रेण निर्मितः
दुस्त्यजस्तु महद्भिस्तु देशभेदे च सञ्चरेत् । अकीर्त्तितजनकःपुंसां योषिताञ्च विशेषतः
तेजीयसां न दोषाय विद्यमाने युगे युगे ॥ १७० ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे सौति-शौनकसंवादे ब्रह्मखण्डे जातिसम्बन्धनिर्णयो नाम दशमोऽध्यायः ।

एकादशोऽध्यायः ।

विष्णुवैष्णवब्राह्मणप्रशंसा ।

शौनक उवाच ।

द्विजः सभार्य्यांसंत्यज्य किञ्चकारावशेषतः । अश्विनोर्वामहाभाग किंनामकस्यवंशजौ

सौतिरुवाच ।

द्विजश्च सुतपा नाम भारद्वाजो महामुनिः । तपश्चकार कृष्णस्य लक्षवर्षं हिमालये ॥२॥
महातपस्वी तेजस्वी प्रज्वलन् ब्रह्मतेजसा । ज्योतिर्दर्शनं कृष्णस्य गगने सहसा क्षणम्
वरंसवव्रे निर्लिप्तमात्मानं प्रकृतेः परम् । माच मोक्षं ययाचे तं दास्यं भक्तिञ्च निश्चलाम्
बभूवाकाशवाणीति कुरु दारपरिग्रहम् । पश्चाद्दास्यं प्रदास्यामि भक्तिं भोगक्षये द्विज ॥
पितॄणांमानसीं कन्यां ददौतस्मैविधिःस्वयम् । तस्यां कल्याणमित्रञ्च बभूव मुनिपुङ्गव
यस्य स्मरणमात्रेण न भवेत् कुलिशाद्भयम् । न द्रष्टव्यं बन्धुमात्रं नूनं तत्स्मरणाल्लभेत्
कल्याणमित्रजननीं परित्यज्य महामुनिः । शशाप सूर्य्यपुत्रञ्च यज्ञभागवर्ज्जितो भव ॥
ससोदरश्चैवापूज्यो भवेति च सुराधम । व्याधिग्रस्तोजड़ाङ्गश्च भवतेऽकीर्तिमानिति ॥
इत्युक्त्वा सुतपागेहे प्रतस्थौ सूनुनासह । अश्विभ्यांसहितःसूर्य्यः प्रयतौ च तदन्तिकम्
पुत्राभ्यां व्याधियुक्ताभ्यां सूर्य्यस्त्रिजगताम्पतिः ।
मुनीन्द्रं च सुतपसं प्रतुष्टाव च शौनक ॥ ११ ॥

सूर्य उवाच ।

क्षमस्व भगवन् विप्र विष्णुरूप युगे युगे । ममपुत्रापराधञ्च भारद्वाजमुनीश्वर ॥१२॥
ब्रह्मविष्णुमहेशाद्याः सुराः सर्वे च सन्ततम् । भुञ्जतेविप्रदत्तन्तु फलपुष्पजलादिकम् ॥
ब्राह्मणाचाहिता देवाः शश्वद्विश्वेषु पूजिताः । न च विप्रात् परोदेवो विप्ररूपीस्वयंहरिः
ब्राह्मणे परितुष्टे च तुष्टो नारायणः स्वयम् । नारायणे च सन्तुष्टेसन्तुष्टाः सर्वदेवताः

नास्ति गंगासमंतीर्थं न च कृष्णात् परःसुरः। न शङ्कराद्वैष्णवश्चनसहिष्णुर्धरापरा॥
न च सत्यात् परोधर्मो न साध्वी पार्वती परा।
न दैवात् बलवान् कश्चित् न च पुत्रात् परः प्रियः॥ १७॥
न च व्याधिसमःशत्रुर्न च पूज्यो:गुरोःपरः। नास्तिमातृसमोवन्धुर्न च मित्रंपितुःपरम्
एकादशीव्रतपरा तपो नानशनात्परम्। परं सर्वधनं रत्नं विद्यारत्नात्परा यथा॥१६॥
सर्वाश्रमपरो विप्रो नास्ति विप्रसमोगुरुः। वेदवेदाङ्गसर्वार्थमित्याह कमलोद्भवः॥
सूर्य्यस्य वचनंश्रुत्वा भारद्वाजो ननाम तम्। निरजौचापितत्पुत्रौ चकार तपसःफलात्॥
पश्चाचतव पुत्रौ च यज्ञभाजौ भविष्यतः। इत्युक्त्वातश्चसुतपा प्रणम्यभास्करंमुनिः॥
जगाम गङ्गां स त्रस्तोहरिसेवनतत्परः। पुत्राभ्यांसहितः सूर्य्यो जगामनिजमन्दिरम्॥
बभूवस्तुस्तौ पूज्यौ च यज्ञभाजौ द्विजाज्ञया। एतत्सूर्य्यकृतंविप्रस्तोत्रं योमानवः पठेत्
विप्रपादप्रसादेन सर्वत्र विजयी भवेत्॥ २४॥
ब्राह्मणेभ्यो नम इति प्रातरुत्थाय यः पठेत्। स स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः॥
पृथिव्यां यानितीर्थानि तानितीर्थानिसागरे। सागरे यानितीर्थानि विप्रपादेषुतानि च॥
विप्रपादोदकंपीत्वा यावत्तिष्ठति मेदिनी। तावत् पुष्करपात्रेषु पिवन्ति पितरोजलम्॥
विप्रपादोदकं पुण्यं भक्तियुक्तश्च यः पिवेत्। स स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः॥
महारोगी यदि पिबेत् विप्रपादोदकं द्विज। मुच्यते सर्वरोगाच्च मासमेकन्तु भक्तितः॥
अविद्यो वा सविद्यो वा सन्ध्यापूतो हि यो द्विजः।
स एव विष्णुसदृशो न हरौ विमुखो यदि॥ ३०॥
घ्नन्तं विप्रं शपन्तं वा न हन्यान्न च तं शपेत्। गोभ्यः शतगुणं पूज्यो हरिभक्तश्चब्राह्मणः
पादोदकञ्च नैवेद्यं भुङ्क्ते विप्रस्य यो द्विज। नित्यं नैवेद्यभोजी यो राजसूयफलं लभेत
एकादश्यां न भुङ्क्ते यो नित्यं कृष्णं समर्चयेत्।
तस्य पादोदकं प्राप्य स्थलं तीर्थं भवेत् ध्रुवम्॥ ३३॥
यो भुङ्क्ते भोजनोच्छिष्टं नित्यं नैवेद्यभोजनम्।
कृष्णदेवस्य पूतोऽसौ जीवन्मुक्तो महीतले॥ ३४॥

अन्नं विष्ठा पयो मूत्रं यद्विष्णोरनिवेदितम् । द्विजानां कुलजातानामित्याह कमलोद्भवः ॥
ब्रह्मा च ब्रह्मपुत्राश्च सर्वे विष्णुपरायणाः । ब्राह्मणस्तत्कुले जातो विमुखश्च हरौ कथम् ॥
पित्रोर्मातामहादीनां संसर्गस्य गुरोश्चवा । दोषेण विमुखाः कृष्णे विप्राजीवन्मृताश्चते ॥

स किं गुरुः स किं तातः स किं पुत्रः स किं सखा ।
स किं राजा स किं बन्धुर्न दद्याद् यो हरौ मतिम् ॥ ३८ ॥
स वैष्णवाद्द्विजाद्विप्र चण्डालो वैष्णवो वरः ।
सगणः श्वपचो मुक्तो ब्राह्मणो नरकं व्रजेत् ॥ ३९ ॥
सन्ध्याहीनोऽशुचिर्नित्यं कृष्णे वा विमुखो द्विज ।
स एव ब्राह्मणाभाषो विषहीनो यथोरगः ॥ ४० ॥

गुरुवक्त्राद्विष्णुमन्त्रो यस्य कर्णे प्रविश्यति । तं वैष्णवं महापूतं जीवन्मुक्तं वदेद्विधिः ॥
पुंसां मातामहादीनां शतैः सार्द्धं हरेः पदम् । प्रयाति वैष्णवः पुंसामात्मनःकुलकोटिभिः ॥
ब्रह्मक्षत्रियविट्शूद्राश्चतस्रो जातयो यथा । स्वतन्त्राजातिरेका च विश्वेषु वैष्णवाभिधा ॥

ध्यायन्ते वैष्णवाः शश्वद्गोविन्दपादपङ्कजम् ।
ध्यायते तांश्च गोविन्दः शश्वत्तेषाञ्च सन्निधौ ॥ ४४ ॥

सुदर्शनं संनियोज्य भक्तानां रक्षणाय च । तथापि नहि निश्चिन्तोऽवतिष्ठेद्भक्तसन्निधौ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे सौतिशौनक-संवादे ब्रह्मखण्डे विष्णुवैष्णवब्राह्मण-प्रशंसा नामैकादशोऽध्यायः ।

द्वादशोऽध्यायः ।

गन्धर्वराजस्यप्रशंसा ।

शौनक उवाच ।

ऋषिवंशप्रसङ्गेन बभूवुर्विविधाः कथाः । उपालम्भेन प्रस्तावात् कौतुकेन श्रुता मया ॥
प्रजा वा ससृजुः केवा ऊर्द्ध्वरेताश्च कश्चन । पित्रा सह विरोधेन नारदः किञ्चकार सः ॥

पितुः शापेन पुत्रस्य किं बभूव विरोधतः । पितुर्वा पुत्रशापेन सौते तत् कथ्यतां शुभम्

सौतिरुवाच ।

हंसीयतिश्चारणिश्च वोढुः पञ्चशिखस्तथा । अपान्तरतमाश्चैव सनकाद्याश्च शौनक ।४।
एतैर्विना च बहवो ब्रह्मपुत्राश्च सन्ततम् । सांसारिकाः प्रजावन्तो गुर्वाज्ञापरिपालकाः
अपूज्यः पुत्रशापेन स्वयं ब्रह्माप्रजापतिः । तेनैव ब्रह्मणो मन्त्रं नोपासन्ते विपश्चितः ॥
नारदो गुरुशापेन गन्धर्वश्च बभूव सः । कथयामि सुविस्तीर्णं तद्वृत्तान्तं निशामय ॥
गन्धर्वराजः सर्वेषां गन्धर्वाणां वरोमहान् । परमैश्वर्य्यसंयुक्तः पुत्रहीनो हि कर्मणा ॥
गुर्वाज्ञया पुष्करे स परमेण समाधिना । तपश्चकार शम्भोश्च कृपणो दीनमानसः ।६।
शिवस्य कवचं स्तोत्रं मन्त्रञ्च द्वादशाक्षरम् । ददौ गन्धर्वराजाय वशिष्ठश्च कृपानिधिः ॥
जजाप परमं मन्त्रं दिव्यं वर्षशतं मुने ! । पुष्करे स निराहारः पुत्रदुःखेन तापितः ॥११
विरामे शतवर्षस्य ददर्श पुरतः शिवम् । भासयन्तं दशदिशो ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा ।१२।
शश्वत्तेजः स्वरूपञ्च भगवन्तं सनातनम् । ईषद्धास्यं प्रसन्नास्यं भक्तानुग्रहकारकम् ॥
तपोरूपं तपोवीजं तपस्या फलदं फलम् । शरणागतभक्ताय दातारं सर्वसम्पदाम् ॥
त्रिशूलपट्टिशधरं वृषभस्थं दिगम्बरम् । शुद्धस्फटिकसङ्काशं त्रिनेत्रं चन्द्रशेखरम् ॥१५॥
तप्तस्वर्णप्रभामुष्टजटाजालधरं वरम् । नीलकण्ठञ्च सर्वज्ञं नागयज्ञोपवीतकम् ॥१६॥
संहर्त्तारञ्च सर्वेषां कालं मृत्युञ्जयं परम् । ग्रीष्ममध्याह्नमार्त्तण्डकोटिसङ्काशमीश्वरम् ॥
तत्त्वज्ञानप्रदं शान्तं मुक्तिदं हरिभक्तिदम् । दृष्ट्वा ननाम सहसा गन्धर्वोदण्डवद् भुवि ॥
वशिष्ठदत्तस्तोत्रेण तुष्टाव परमेश्वरम् । वरं वृणुष्वेति शिवस्तमुवाच कृपानिधिः ॥

स ययाचे हरेर्भक्तिं पुत्रं परमवैष्णवम् ॥ १६ ॥

गन्धर्वस्य वचः श्रुत्वा जहास चन्द्रशेखरः । उवाच दीनं दीनेशो दीनबन्धुः सनातनम् ॥

श्रीमहादेव उवाच ।

कृतार्थस्त्वं वरादेकादन्यश्चर्वितचर्वणम् । गन्धर्वराज वृणुषे को वा तृप्तोऽतिमङ्गले ॥
यस्य भक्तिर्हरौ वत्स सुदृढ़ा सर्वमंगला । स समर्थः सर्वविश्वं कर्त्तुञ्च लीलया ॥२२॥
आत्मनःकुलकोटिञ्चशतं मातामहस्य च । पुरुषाणां समुद्धृत्यगोलोकंयातिनिश्चितम् ॥

त्रिविधानि च पापानि कोटिजन्मार्जितानि च ।
निहत्य पुण्यभोगञ्च हरिदास्यं लभेद् ध्रुवम् ॥ २४ ॥
तावत्पत्नी सुतस्तावत् तावदैश्वर्य्यमीप्सितम् ।
सुखं दुःखं नृणां तावत् यावत् कृष्णेन मानसम् ॥ २५ ॥

कृष्णेमनसिसञ्जाते भक्तिखड्गोदुरत्ययः । नराणांकर्मवृक्षाणां मूलच्छेदं करोत्यहो ॥
भवद्येषां सुकृतिनां पुत्राः परमवैष्णवाः । कुलकोटिञ्च तेषां ते उद्धरन्त्यवलीलया ॥
चरितार्थः पुमानेकाद्धरमिच्छुर्वंवरादहो । किं वरेण द्वितीयेन पुंसां तृप्तिर्न मङ्गले ॥
धनं सञ्चितमस्माकंवैष्णवानांसुदुर्लभम् । श्रीकृष्णे भक्तिदास्यञ्चनवयं दातुमुत्सुकाः
वरयान्यं वरं वत्स यत्तेमनसिवाञ्छितम् । इन्द्रत्वममरत्वं वा ब्रह्मत्वं लभदुर्लभम् ॥
सर्वसिद्धिं महायोगं ज्ञानं मृत्युञ्जयादिकम् । सुखेन सर्वं दास्यामिहरिदास्यंत्यजक्षम ॥
शङ्करस्य वचःश्रुत्वा शुष्ककण्ठोष्ठतालुकः । उवाच दीनोदीनेशं दातव्यं सर्वसम्पदाम्

गन्धर्व उवाच ।

यच्चक्षुः पतनेनैव ब्रह्मणः पतनं भवेत् । तद्ब्रह्मत्वं स्वप्नतुल्यं कृष्णभक्तो न चेच्छति ॥
इन्द्रत्वममरत्वं वा सिद्धियोगादिकं शिव । ज्ञानंमृत्युञ्जयाद्यंवानहि भक्तस्य वाञ्छितम्
सालोक्यसार्ष्टिसामीप्यसायुज्यंश्रीहरेरपि । तत्रनिर्वाणमोक्षञ्च न हि वाञ्छन्ति वैष्णवाः
शश्वत्तत्सुदृढ़ाभक्तिर्हरिदास्यं सुदुर्लभम् । स्वप्ने जागरणे भक्ता वाञ्छन्त्येवं वरं वरम्
तद्दास्यं वैष्णवसुतं देहिकल्पतरोवरम् । त्वां प्राप्य लभतेतुष्टं वरमन्यं स वर्वरः ॥

न दास्यसीदं चेच्छम्भो वरं दुष्कृतिनञ्च माम् ।
कृत्वा हि स्वशिरच्छेदं प्रदास्यामि हुताशने ॥ ३८ ॥

गन्धर्ववचनंश्रुत्वा तमुवाच कृपानिधिः । भक्तं दीनञ्च भक्तेशो भक्तानुग्रहकारकः ॥

श्रीशङ्कर उवाच ।

हरिभक्तिं हरेर्दास्यं पुत्रं परमवैष्णवम् । शिरायुषञ्चगुणिनं शश्वत्सुस्थिरयौवनम् ॥
ज्ञानिनं सुन्दरवरं गुरुभक्तं जितेन्द्रियम् । गन्धर्वराजप्रवरं वरेमं लभ मा खिद ॥४१॥
इत्युक्त्वा शङ्करस्तस्माज्जगाम स्वालयं मुने । गन्धर्वराजः सन्तुष्ट आजगामस्वमन्दिरम्

प्रफुल्लमानसाः सर्वे मानवाः सिद्धकर्मणः । नारदस्तस्य भार्यायांलेभे जन्म च भारते ॥
सुषाव पुत्रं सा वृद्धा पर्वते गन्धमादने । गुरुर्वशिष्ठो भगवान् नाम चक्रे यथोचितम् ॥
बालकस्य च तस्यैव मङ्गलं मंगले दिने । उपशब्दोऽधिकार्थश्च पूज्ये च वर्हणः पुमान् ॥
पूज्यनामाधिको बालस्तेनोपवर्हणाभिधः ॥ ४५ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे सौति-शौनकसंवादे ब्रह्मखण्डे नारदजन्मकथनं नाम द्वादशोऽध्यायः ।

त्रयोदशोऽध्यायः ।

उपवर्हणभार्याया मालावत्या विलापकथनम् ।

सौतिरुवाच ।

पुत्रोत्सवे च रत्नानि धनानि विविधानि च । गन्धर्वराजः प्रददौ ब्राह्मणेभ्यो मुदान्वितः
उपवर्हणस्तु कालेन हरेर्मन्त्रं सुदुर्लभम् । वशिष्ठद्वारा सम्प्राप्य चकार दुष्करं तपः ।२।
एकदा गण्डकीतीरे तञ्च सम्प्राप्तयौवनम् । गन्धर्वपत्न्यो ददृशुर्मूर्च्छामापुश्च तत्क्षणम् ॥
ततस्तीव्रं तपः कृत्वा प्राणान् संत्यज्य योगतः । पञ्चाशत्ता बभूवुश्च कन्याश्चित्ररथस्य च
उपवर्हणगन्धर्वं ताश्च तं वव्रिरे पतिम् । मुदा माला ददुस्तस्मै कामुक्यः पितुराज्ञया ॥
गृहीत्वा ताश्च गन्धर्वो युवा सुस्थिरयौवनः । दिव्यं त्रिलक्षवर्षञ्च रेमे रहसि कामुकः
ततोऽपि सुचिरंराज्यंकृत्वा ताभिः सहानिशम् । जगाम ब्रह्मणः स्थानं हरिगाथां जगौ मुने
दृष्ट्वा स रम्भारम्भोरुनर्त्तने कठिनं स्तनम् । बभूव स्खलनं तस्य गन्धर्वस्य महात्मनः ॥
द्रुतं तत्याज सङ्गीतं मूर्च्छां प्राप सभातले । उच्चैः प्रजहसुर्देवा ब्रह्माकोपात् शशापतम्
व्रज त्वं शूद्रयोनिञ्च गान्धर्वीं तनुमुत्सृज । काले वैष्णवसंसर्गात् मत्पुत्रस्त्वं भविष्यसि
विना विपत्तेर्महिमा पुंसां नैव भवेत् सुत । सुखं दुःखञ्च सर्वेषां क्रमेण प्रभवेदिति ।११।

इत्येवमुक्त्वा स विधिर्जगाम पुष्करात् गृहम्। उपबर्हणगन्धर्वस्तत्याज तां तनुं तदा ॥
मूलाधारं स्वाधिष्ठानं मणिपूरमनाहतम्। विशुद्धमाज्ञाख्यञ्चेति भित्त्वा षट्चक्रमेव च ॥
इड़ां सुषुम्नां मेधाञ्च पिङ्गलां प्राणहारिणीम्। सर्वज्ञानप्रदाञ्चैव मनःसंयमनीं तथा ॥
विशुद्धाञ्च निरुद्धाञ्च वायुसञ्चारिणीन्तथा। तेजःशुष्ककरीञ्चैव बलपुष्टिकरीन्तथा ।१५।
बुद्धिसञ्चारिणीञ्चैव ज्ञानजृम्भनकारिणीम्। सर्वप्राणहराञ्चैव पुनर्जीवनकारिणीम् ॥
एताः षोड़शधा नाड़ीर्भित्त्वा च हंसमेव च। मनसा सहितं ब्रह्मरन्ध्रमानीय योगतः ॥
स्थित्वा मुहूर्त्तमात्मानमात्मन्येव युयोज ह। जातिस्मरञ्च योगीन्द्रः संप्राप ब्रह्म शौनक
वीणां त्रितन्त्रींदुष्प्राप्यांवामस्कन्धे निधाय च। शुद्धस्फटिकमालाञ्च विधृत्यदक्षिणेकरे
संजल्पन् परमं ब्रह्म वेदसारं परात्परम्। परं निस्तारबीजञ्च कृष्ण इत्यक्षरद्वयम् ॥२०॥
प्राच्यां कृत्वा शिरःस्थानं पश्चिमे चरणद्वयम्। निधाय दर्भशयने शयानः पुरुषो यथा ॥
गन्धर्वराजस्तं दृष्ट्वा भार्य्ययासह तत्क्षणम्। योगेन ब्रह्म सम्प्राप श्रीकृष्णंमनसास्मरन्
पत्न्यश्च बान्धवाः सर्वे विलप्य रुरुदुर्भृशम्। जग्मुःक्रमेणशोकार्त्तामोहिताविष्णुमायया
पञ्चाशद्योषितां मध्ये प्रधाना महिषी च या। साध्वी मालावती नाम्ना परमा प्रेयसीवरा
उच्चैरुरोद सा तीव्रंकान्तंकृत्वा च वक्षसि। इत्युवाच च शोकार्त्ता कान्तंसंबोध्यएव च

मालावत्युवाच।

हे नाथ रमणश्रेष्ठ विदग्धरसिकेश्वर। दर्शनं देहि मां बन्धो! निमग्नां शोकसागरे ॥२६॥
विश्रम्भके सुवसने रम्ये चन्दनकानने। पुष्पभद्रानदीतीरे पुष्पोद्याने मनोहरे ॥ २७ ॥
चन्दनाचलसान्निध्ये चारुचन्दनकानने। पुष्पचन्दनतल्पे च चन्दनानिलवासिते ॥ २८॥
गन्धमादनशैलैकदेशे रम्ये नदीतटे। पुंस्कोकिलनिनादे च मालतीजलशालिनि ॥ २९ ॥
श्रीशैले श्रीवने दिव्ये श्रीनिवासनिषेविते। श्रीयुक्ते श्रीपदाम्भोजे पूतेऽच्युतकृते शुभे ॥
पुरा या या कृता क्रीडा वसन्ते रहसि त्वया। मया च दुर्हृदासार्द्धं तया च दूयतेमनः
सुधातुल्येन वचसा सिक्ताहञ्च पुरा त्वया। दूयते सततं तेन परमात्मातिदारुणम् ।३२।
साधुना सह संसर्गो वैकुण्ठादपि दुर्लभः। अहो ततोऽतिविच्छेदो मरणादपि दुष्करः
तस्मात्तेषाञ्च विच्छेदः साधुशोककरः परः। ततोऽपि बन्धुविच्छेदः शोकःपरमदारुणः

ततोऽपत्यवियोगो हि मरणादतिरिच्यते । सर्वस्मात् पतिभेदो हि तत्परंनास्तिसङ्कटम्
शयने भोजने स्नाने स्वप्ने जागरणेऽपि च । स्वामिविच्छेददुःखञ्च नूतनं च दिने दिने
सर्वशोकंविस्मरेत् स्त्रीस्वामिसंयोगमात्रतः । बन्धुमन्यं न पश्यामितंदृष्ट्वाविस्मरेत्पतिम्

नातो विशिष्टं पश्यामि बान्धवं स्वामिना विना ।
साध्वीनां कुलजातानामित्याह कमलोद्भवः ॥ ३८ ॥

हे दिगीशाश्च दिक्पाला हे धर्म हे प्रजापते । गिरीश कमलाकान्त पतिदानञ्च देहि मे
इत्युक्त्वा विरहार्त्ता सा कन्या चित्ररथस्य च । मूर्च्छां संप्राप तत्रैव दुर्गमे गहने घने
विचेतना तत्र तस्थौ कान्तं कृत्वा स्ववक्षसि । परिपूर्णं दिवानक्तं सर्वैर्दैवैश्च रक्षिता ॥
प्रभाते चेतनां प्राप्य विललाप भृशं मुहुः । इत्युवाच पुनस्तत्र हरिं संबोध्य सा सती

मालावत्युवाच ।

हे कृष्ण जगतां नाथ नाथ नाहं जगद्बहिः । त्वमेव जगतां पाता मां न पाहि कथं प्रभो
अयं भर्त्तास्य भार्य्याहं ममेति तव मायया । त्वमेव सम्भवो भर्त्ता सर्वेषां सर्वकारणः

गन्धर्वः कर्मणा कान्तः कान्ताहमस्य कर्मणा ।
क्व गतः कर्म भोगान्ते कुत्र संस्थाप्य मां प्रियाम् ॥ ४५ ॥
को वा कस्याः पतिः पुत्रः का वा कस्य प्रिया प्रभो ।
संयुनक्ति विधाता च वियुनक्ति च कर्मणा ॥ ४६ ॥

संयोगे परमानन्दो वियोगे प्राणसङ्कटम् । शश्वज्जगति मूर्खस्य नात्मारामस्य निश्चिमम्

नश्वरो विषयः सत्यं भोगश्च बान्धवो भुवि ।
स्वयं त्यक्तः सुखायैव दुःखाय त्याजितः परैः ॥ ४८ ॥
तस्मात् सन्तः स्वयं त्यक्त्वा परमैश्वर्य्यमीप्सितम् ।
ध्यायन्ते सन्ततं कृष्णपादपद्मं निरापदम् ॥ ४९ ॥
सर्वत्र ज्ञानिनः सन्तः का स्त्री ज्ञानवती भुवि ।
ततो मह्यं विमूढायै दातुमर्हति वाञ्छितम् ॥ ५० ॥

न मे वाञ्छामरत्वे च शत्रुत्वे मोक्षवर्त्मनि । इमं कान्त वरं देहि चतुर्वर्गकरं परम् ॥

यावती कामिनी जातिर्जगत्यां जगदीश्वर । कस्यैचिन्नहि दत्तश्च तेन धात्रेदृशः पतिः ॥
तस्मै दत्तागुणाःसर्वेरूपाणिविविधानि च । सुशीलानिच सर्वाणि चामरत्वं विनाहरे ॥
रूपेण च गुणेनैव तेजसा विक्रमेण च । ज्ञानेन शान्त्या सन्तुष्ट्या हरितुल्यः प्रभुर्मम ॥
हरिभक्तो हरिसमो गाम्भीर्य्ये सागरो यथा । दीप्तिमान् सूर्य्यतुल्यश्चशुद्धोवह्निसमस्तथा
चन्द्रतुल्यः सुदृश्यश्च कन्दर्पसमसुन्दरः । बुद्ध्या वृहस्पतिसमः काव्ये कविसमस्तथा
वाणी च सर्वशास्त्रज्ञः प्रतिभायां भृगोरिव । कुवेरतुल्यो धनवान् महान् दाता मनोरिव
धर्मे धर्मसमो धर्मी सत्ये सत्यव्रताधिकः । कुमारतुल्यस्तपसा स्वाचारो ब्रह्मणा समः
ऐश्वर्य्ये शक्रतुल्यश्चसहिष्णुःपृथिवीसमः । एवम्भूतो मृतः कान्तः प्राणायान्तिनमेकथम्
अरे सुरा यज्ञभाजो घृतं भोक्तुं क्षमा भुवि । क्षणेनायज्ञभाजश्च करिष्यामि च लीलया
नारायण जगत्कान्त नाहमेव जगद्बहिः । शीघ्रं जीवय मत्कान्तमन्यथा त्वां शपाम्यहम्
प्रजापते पुत्रशापात्त्वमपूज्यो महीतले । तवैवानधिकारित्वं करिष्याम्यधुना भवे ॥६२॥
हे शम्भो ज्ञानलोपं ते करिष्यामि शपे न च । धर्मलोपञ्च धर्मस्य करिष्याम्यवलीलया ।
यमाधिकारंदूरञ्चकरिष्यामि न संशयः । सत्यं कालं शपिष्यामि मृत्युकन्यांसुनिष्ठुराम्
शपामि सर्वानत्रैव जरां व्याधिं विनाऽधुना । व्याधिना जरया मृत्युर्नह्यभूच्च पतेर्मम ॥
इत्युक्त्वा कौशिकीतीरं जगाम शप्तुमेव तान् । मालावतीमहासाध्वी शवंकृत्वास्ववक्षसि
तां शप्तुमुद्यतां दृष्ट्वा ब्रह्मा देवपुरोगमः । जगाम शरणं विष्णुं तीरं क्षीरपयोनिधेः ॥६७॥
तत्रस्नात्वा च तुष्टावपरमात्मानमीश्वरम् । विष्णुं ब्रह्माजगत्कान्तमित्युवाच ह भीतवत्

ब्रह्मोवाच ।

उपवर्हणपत्नी सा कन्या चित्ररथस्य च । कान्तहेतोश्च मां देवान् शपेत्त्वं रक्ष माधव ॥
स्मरन्ति साधवः सन्तो जपन्तियोगिनो मुदा । स्वप्नेजागरणे चैव सर्वकार्य्येषुमाधवम्
शरणागतदीनार्त्तपरित्राणपरायण । रक्ष रक्ष हृषीकेश व्रजामः शरणं वयम् ॥ ७१ ॥
पूजा मे पुत्रशापेन विहता साम्प्रतं प्रभो । अधिकारहतं माञ्च करोति मालती सती ॥
सर्वाधिकारो ब्रह्माण्डे त्वया दत्तः पुरा प्रभो । तपसेश्वरी माथ्य यास्यत्येवाधुना मम

महादेव उवाच ।

त्वया दत्तं महाज्ञानं गुप्तं सर्वेषु दुर्लभम् । शतमन्वन्तरतपःफलेन पुष्करे पुरा ॥ ७४ ॥
ऐश्वर्य्यं वा धनं वापि विद्या वा विक्रमोऽथवा ।
ज्ञानस्य परमार्थस्य कलां नार्हति षोड़शीम् ॥ ७५ ॥
सर्वाज्ञातं सर्वगुप्तमतीवदुर्लभं परम् । मम तत्त्वज्ञानरत्नं शापेन याति योषितः ॥ ७६ ॥
अहो पतिव्रतातेजः सर्वेषां तेजसां परम् । तेजोऽनलेन दग्धं मां रक्ष रक्ष हरे हरे ॥७७॥

धर्म उवाच ।

सर्वरत्नात् परं रत्नं धर्म एव सनातनः । यास्यत्येवंविधो धर्मस्त्वया दत्तः पुरा प्रभो ॥
सप्तमन्वन्तरतपःफलेन परमेश्वर । प्राप्तो धर्मोऽधुना याति शापेन योषितः प्रभो ॥७९॥

देवा ऊचुः ।

यज्ञभाजो घृतभुजो वयमेव त्वया कृताः । योषित्शापेन तत् सर्वमधुना याति माधव
इत्युक्त्वा संयताःसर्वेतस्थुस्तत्रभयार्दिताः । एतस्मिन्नन्तरेऽकस्माद्वाग्बभूवाशरीरिणी
यूयं गच्छत तन्मूलं विप्ररूपी जनार्दनः । पश्चाद्यास्यति शान्त्यर्थमिति वो रक्षणाय च
श्रुत्वा तद्वचनं देवाः प्रहृष्टमानसोन्मुखाः । जग्मुर्मालावतीस्थानं कौशिकीतीरमीश्वराः
तामेव ददृशुर्देवा देवीं मालावतीं सतीम् । रत्नसारेन्द्रभूषाभिरुज्ज्वलां कमलाकलाम् ॥
वह्निशुद्धांशुकाधानां सिन्दूरविन्दुभूषिताम् । शरच्चन्द्रप्रभां शान्तां द्योतयन्तींदिशस्त्विषा
पतिसेवामहद्धर्मचिरसञ्चिततेजसा । प्रज्वलन्तीं सुप्रदीप्तशिखां वह्नेरिवोत्तमाम् ॥ ८६ ॥
योगासनं कुर्वतीञ्च शववक्षःस्थलस्थिताम् । सुरम्यां स्वामिनो वीणांविभ्रतींदक्षिणेकरे
तर्जन्यङ्गुष्ठकोटिभ्यां शुद्धस्फटिकमालिकाम् । भक्त्या स्नेहेनकान्तस्य बिभ्रतींयोगमुद्रया
चारुचम्पकवर्णाभां विम्बोष्ठींरत्नमालिनीम् । यथाषोडशवर्षीयांशश्वत्सुस्थिरयौवनाम्
बृहन्नितम्बभारार्त्तां पीनश्रोणिपयोधराम् । पश्यन्तीं शवमीशस्य शुभदृष्ट्या पुनः पुनः ॥
एवम्भूताञ्च तां दृष्ट्वा देवास्ते विस्मयं ययुः । स्थगिताश्च क्षणं तत्र धार्मिका धर्मभीरवः

इति श्री ब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे सौतिशौनकसंवादे ब्रह्मखण्डे मालावतीविलापो नाम त्रयोदशोऽध्यायः ।

चतुर्दशोऽध्यायः ।

विष्णुमालावतीसंवादवर्णनम् ।

सौतिरुवाच ।

तत्र स्थित्वा क्षणं देवा ब्रह्मेशानपुरोगमाः । ययुर्मालावतीमूलं परं मंगलदायकाः ॥ १॥
मालावती सुरान् दृष्ट्वा प्रणनाम पतिव्रता । रुरोदकान्तं संस्थाप्यदेवानां सन्निधौमुने॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र कश्चिद्‌ब्राह्मणबालकः । आजगाम सुराणाञ्च सभामतिमनोहरः ॥३
दण्डी छत्री शुक्लवासा विभ्रत्तिलकमुज्ज्वलम् । दीर्घपुस्तकहस्तश्च सुप्रशान्तश्चसस्मितः
चन्दनोक्षितसर्वाङ्गःप्रज्वलन्ब्रह्मतेजसा । सुरान्संभाष्यतत्रैव विस्मितान्विष्णुमायया
तत्रोवास सभामध्ये तारामध्येयथा शशी । उवाच देवान् सर्वांश्च मालतीञ्च विचक्षणः

ब्राह्मण उवाच ।

कथमत्र सुराः सर्वे ब्रह्मेशानपुरोगमाः । स्वयं विधाता जगतां स्रष्टाऽत्र केन कर्मणा॥
सर्वब्रह्माण्डसंहर्त्ता शम्भुरत्र स्वयं विभुः । अहो त्रिजगतां साक्षी धर्मश्च सर्वकर्मणाम्
कथं रविः कथं चन्द्रः कथमत्र हुताशनः । कथं कालो मृत्युकन्या कथंवाऽत्र यमादयः
हे मालावति त्वत्क्रोडे शवः कस्तेऽतिशुष्कितः ।
जीवितायाः कथं मूले योषितश्च पुमान् शवः ॥ १० ॥
इत्युक्त्वा तांश्च तां विप्रोविररामसभातले । । मालावती तं प्रणम्य समुवाचविचक्षणम्

मालावत्युवाच ।

आनन्दपूर्वकं वन्दे विप्ररूपं जनार्दनम् । तुष्टा देवा हरिस्तुष्टो यस्य पुष्पजलेन च ॥१२॥
अवधानंकुरुविभो ! शोकार्त्तायानिवेदने । समा कृपासतांशश्वत्योग्यायोग्येकृपावताम्
उपबर्हणभार्य्याऽहं कन्या चित्ररथस्य च । सर्वे मालावतीं कृत्वा वदन्ति विप्रपुङ्गव ॥
दिव्यं लक्षयुगं रम्ये स्थाने स्थाने मनोहरे । कृता क्रीडा च स्वच्छन्दमनेन स्वामिना सह

प्रिये स्नेहो हि साध्वीनां यावान् विप्रेन्द्र योषिताम् ।
सर्वं शास्त्रानुसारेण जानासि त्वं विचक्षण ॥ १६ ॥

अकस्मात् ब्राह्मणःशापात् प्राणांस्तत्याजमत्पतिः । देवानुद्दिश्य विलपे यथाजीवतिमत्पतिः स्वकार्य्यसाधने सर्वे व्यग्राश्च जगतीतले । भावाभावं न जानन्ति केवलंस्वार्थतत्पराः ॥

सुखं दुःखं भयं शोकः सन्तापः कर्मणां नृणाम् ।
ऐश्वर्य्यं परमानन्दो जन्म मृत्युश्च मोक्षणम् ॥ १९ ॥

देवाश्च सर्वजनका दातारः कर्मणां फलम् । कर्त्तारः कर्मवृक्षाणां मूलच्छेदश्चलीलया ॥ न हि देवात्परोवन्धुर्न हि देवात्परो वली । दयावान्न हि देवाच्च न च दाता ततः परः सर्वान् देवानहं याचे पतिदानं ममेप्सितम् । धर्मार्थकाममोक्षाणां फलदांश्चसुरद्रुमान् ॥

यदि दास्यन्ति देवा मे कान्तदानं यथेप्सितम् ।
भद्रं तदान्यथा तेभ्यो दास्यामि स्त्रीवधं ध्रुवम् ।
शपिष्यामि च सर्वांश्च दारुणं दुर्निवारकम् ।
दुर्निवार्य्यः सतीशापस्तपसा केन वार्य्यते ॥ २४ ॥

इत्युक्त्वा मालतीसाध्वी शोकार्त्तासुरसंसदि । विरराम द्विजश्रेष्ठस्तामुवाच च शौनक ॥

ब्राह्मण उवाच ।

कर्मणां फलदातारो देवाः सत्यश्च मालति । न सद्यः सुचिरेणैव धान्यं कृषकवन्नृणाम् गृही च कृषकद्वारा क्षेत्रेधान्यं वपेत् सति ! । तदङ्कुरो भवेत्कालेकालेवृक्षः फलत्यपि ॥ काले सुपकं भवति काले प्राप्नोति तद्गृही । एवं सर्वं समुन्नेयं चिरेण कर्मणः फलम्॥ अष्ठीं वपति संसारे गृहस्थो विष्णुमायया । काले तदङ्कुरोवृक्षः कालेप्राप्नोति तत्फलम् पुण्यवान् पुण्यभूमौ च करोति सुचिरन्तपः । तेषाञ्च फलदातारो देवाः सत्यं न संशयः ब्राह्मणानांमुखे क्षेत्रे श्रेष्ठेऽनूषरएव च । यो यज्जुहोतिभक्त्या च स तत् प्राप्नोतिनिश्चितम् न वलं न च सौन्दर्य्यंनैश्वर्य्यं न धनंसुतः । नैवस्त्री नच सत्कान्तःकिम्भवेत्तपसा विना सेवतेप्रकृतिंयोहि भक्त्यांजन्मनिजन्मनि । सलभेत् सुन्दरींकान्तांविनीताश्चगुणान्विताम् श्रियश्च निश्चलां पुत्रं पौत्रं भूमिं धनं प्रजाम् । प्रकृतेश्च वरेणैव लभेद्भक्तोऽवलीलया ॥

शिवं शिवस्वरूपञ्च शिवदं शिवकारणम् । ज्ञानानन्दं महात्मानं परं मृत्युञ्जयं परम् ॥३५
तमीशंसेवतेयोहिभक्त्याजन्मनिजन्मनि । पुमान्प्राप्नोतिसत्कान्तांकामिनीचापिसत्पतिम्
विद्यां ज्ञानं सुकवितां पुत्रं पौत्रं परां श्रियम् । बलं धनं विक्रमञ्च लभेद्वरवरेण सः ३७
ब्रह्माणं भजतेयो हि लभेत् सोऽपिप्रजां श्रियम् । विद्यामैश्वर्य्यमानन्दं वरेणब्रह्मणोनरः
यो नरो भजते भक्त्या दीननाथं दिनेश्वरम् । विद्यामारोग्यमानन्दं धनं पुत्रं लभेद् ध्रुवम्
गणेश्वरं यो भजते देवदेवं सनातनम् । सर्वाग्रपूज्यं सर्वेशं भक्त्या जन्मनिजन्मनि ॥४०
विघ्ननाशो भवेत्तस्य स्वप्ने जागरणेऽनिशम् । परमानन्दमैश्वर्यं पुत्रं पौत्रं धनं प्रजाः ॥
ज्ञानं विद्यां सुकवितां लभते तद्वरेण च । भजते योहि विष्णुञ्च लक्ष्मीकान्तं सुरेश्वरम्
वरार्थी चेल्लभेत् सर्वंनिर्वाणमन्यथा ध्रुवम् । शान्तंनिषेव्य पातारं सत्यंसत्यं लभेन्नरः
सर्वं तपः सर्वधर्मं यशः कीर्त्तिमनुत्तमाम् । विष्णुं निषेव्य सर्वेशं यो मूढो लभतेवरम्॥
विडम्बितोविधात्राऽसौ मोहितोविष्णुमायया । मायानारायणीशाना सर्वप्रकृतिरीश्वरी
सा कृपां कुरुते यश्च विष्णुमन्त्रं ददाति तम् । धर्मंयो भजते धर्मी सर्वधर्मं लभेद् ध्रुवम्
इहलोके सुखंभुक्त्वा यातिविष्णोःपरंपदम् । योयं देवं भजेद्भक्त्या स चादौ लभते च तम्
काले पश्चात्तेनसार्द्धं परं विष्णोःपदं लभेत् । श्रीकृष्णं भजते योहि निर्गुणं प्रकृतेःपरम्
ब्रह्माविष्णुशिवादीनां सेव्यं वीजं परात्परम् । अक्षरं परमं ब्रह्म भगवन्तं सनातनम् ४६
साकारञ्च निराकारं ज्योतिः स्वेच्छामयं विभुम् । सर्वाधारञ्च सर्वेशं परमानन्दमीश्वरम्
निर्लिप्तं साक्षिरूपञ्च भक्तानुग्रहविग्रहम् । जीवन्मुक्तः स सत्यं हि न वरं लभते सुधीः ॥
स सर्वं मन्यते तुच्छं सालोक्यादि चतुष्टयम् । ब्रह्मत्वममरत्वं वा मोक्षं यत्तुच्छवत्सति!
ऐश्वर्यं लोष्ट्रतुल्यञ्च नश्वरं चैव मन्यते । इन्द्रत्वञ्च मनुत्वञ्चचिरजीवित्वमेव वा ॥५३॥
जलबुद्बुदवद्बुद्धया चातितुच्छं न गण्यते । स्वप्नेजागरणेवापि शश्वत् सेवाञ्चवाञ्छति
दास्यंविना न याचेत श्रीकृष्णस्य पदंपरम् । तत्पादाब्जे दृढ़ां भक्तिलब्ध्वापूर्णो निरन्तरम्
परिपूर्णतमं ब्रह्म निषेव्य सुस्थिरः सदा । आत्मनः कुलकोटिञ्च शतं मातामहस्य च ॥
श्वशुरस्य शतं पूर्वमुद्धृत्य चावलीलया । दासं दासीं प्रसूंभार्य्यां पुत्रादपि परं शतम् ५७
उद्धरेत् कृष्णभक्तश्च गोलोकं याति निश्चितम् । तावद्गर्भवसेत् कामी तावद्यमयातना

तावद् गृही च भोगार्थी यावत्कृष्णं न सेवते । गुरुवक्त्राद्विष्णुमन्त्रो यस्यकर्णे प्रविश्यति
यमस्तल्लिखनं दूरं करोति तत्क्षणं भिया । मधुपर्कादिकं ब्रह्मा पुरैव तन्नियोजयेत् ६०
अहो विलङ्घ्य मल्लोकं मार्गेणानेन यास्यति । तस्य वै निष्कृतिर्नास्ति कल्पकोटिशतैरपि
दुरितानि च भीतानि कोटिजन्मकृतानि च । तं विहाय पलायन्ते वैनतेयं यथोरगाः ॥
पुरातनं कृतं कर्म यद् यत्तस्य शुभाशुभम् । छिनत्ति कृष्णचक्रेण तीक्ष्णधारेण सन्ततम्
तं विहाय जरा मृत्युर्याति चक्रभिया सति । अन्यथा शतखण्डं तां कुरुते च सुदर्शनः ॥
निःशङ्को यातिगोलोकं विहाय मानवींतनुम् । गत्वादिव्यां तनुंधृत्वा श्रीकृष्णंसेवतेसदा
यावत् कृष्णोहिगोलोके तावद्भक्तो वसेत् सदा । निमेषंमन्यते दासोनश्वरं ब्रह्मणोवयः
इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे ब्रह्मखण्डे सौतिशौनकसंवादे विष्णुमालतीसंवादो नाम
चतुर्दशोऽध्यायः ।

पञ्चदशोऽध्यायः ।

मालावतीकालपुरुषसंवादवर्णनम् ।

ब्राह्मण उवाच ।

केन रोगेण हि मृतोऽधुना साध्वि! तव प्रियः ।
सर्वरोगचिकित्साञ्च जानामि च चिकित्सकः ॥ १ ॥

मृततुल्यं मृतं रोगात् सप्ताहाभ्यन्तरे सति! । महाज्ञानेन तं जीवं जीवयाम्यवलीलया ॥
जरामृत्युं यमं कालं व्याधिमानीय त्वत्पुरः । निबध्यदातुंशक्तोऽहं व्याधो वद्ध्वापशुंयथा
यतो न सञ्चरेद् व्याधिर्देहेषु देहधारिणाम् । व्याधीनां कारणं यद्यत् सर्वं जानामिसुन्दरि
यतो न सञ्चरेद् व्याधिवीजं दुष्टममङ्गलम् । तदुपायं विजानामि शास्त्रतत्त्वानुसारतः ॥
यो वा योगेन खेदेन देहत्यागं करोति च । तस्य तं जीवनोपायं जानामि योगधर्मतः ॥
ब्राह्मणस्य वचः श्रुत्वा स्फीतामालावतीसती । सस्मिता [illegible] सा तमुवाचप्रहर्षिता

मालावत्युवाच ।

अहो श्रुतं किमाश्चर्य्यं वचनंबालवक्त्रतः । वयसाऽतिशिशुर्द्दृष्टो ज्ञानं योगविदां परम् ॥
त्वयाकृताप्रतिज्ञाच कान्तं जीवयितुं मम । विपरीतं न सद्वाक्यं तत्क्षणंजीवितःपतिः
जीवयिष्यति मत्कान्तं पश्चाद्वेदविदां वरः । यद्यत् पृच्छामि संदेहात्त्वद्भवान्वक्तुमर्हति
सभायां जीविते कान्तेतस्य तीव्रस्य सन्निधौ । त्वांहि प्रष्टुं न शक्ताहं विद्यमाने मदीश्वरे
एते ब्रह्मादयो देवा विद्यमानाश्च संसदि । त्वञ्च वेदविदां श्रेष्ठो न च कश्चिन्मदीश्वरः ॥
नारींरक्षतिभर्त्ताचेत् न कोऽपिखण्डितुंक्षमः।शास्तिंकरोतियदि स न कोऽपिरक्षिताभुवि
एवंदेवेषुनो शक्तिःशक्रेवा ब्रह्मरुद्रयोः । स्त्रीपुम्भावश्च बोद्धव्यः स्वामीकर्त्ताचयोषिताम्
स्वामीकर्त्ता च हर्त्ता च शास्ता पोष्टाच रक्षिता । अभीष्टदेवः पूज्यश्चन गुरुःस्वामिनःपरः

कन्या सत्कुलजाता या सा कान्तवशवर्तिनी ।
या स्वतन्त्रा च सा दुष्टा स्वभावात् कुलटा ध्रुवम् ॥ १६ ॥

दुष्टा परपुमांसञ्च सेवते या नराधमा । सा निन्दति पतिं शश्वदसद्वंशप्रसूतिका ॥१७॥
उपवर्हणभार्य्याहं कन्या चित्ररथस्य च । बधूर्गन्धर्वराजस्य कान्तभक्ता सदा द्विज १८
सर्वंकालयितुंशक्तस्त्वञ्च वेदविदां वर । कालंयमं मृत्युकन्यामदस्यासं समानय ॥ १६
मालावतीवचः श्रुत्वा विप्रो वेदविदां वरः । सभामध्ये समाहूय तान् प्रत्यक्षं चकार ह
ददर्श मृत्युकन्याञ्च प्रथमं मालती सती । कृष्णववर्णां घोररूपां रक्ताम्बरधरां वराम् ॥

सस्मितां षड्भुजां शान्तां दयायुक्तां महासतीम् ।
कालस्य स्वामिनो वामे चतुःषष्टिसुतान्विताम् ॥ २२ ॥

कालं नारायणांशञ्च ददर्श सुरता सती । महोग्ररूपं विकटं ग्रीष्मसूर्य्यसमप्रभम् ॥ २३॥
षड्वक्त्रं षोड़शभुजं चतुर्विंशतिलोचनम् । षट्पादं कृष्णवर्णञ्च रक्ताम्बधरं परम् ॥२५॥
देवस्य देवं विकृतं सर्वसंहाररूपिणम् । कालाधिदेवं सर्वेशं भगवन्तं सनातनम् ॥२५॥
ईषद्धास्यप्रसन्नास्यमक्षमालाकरं वरम् । जपन्तं परमं ब्रह्म कृष्णमात्मानमीश्वरम् ॥२७॥

सती ददर्श पुरतो व्याधिसंघान् सुदुर्जयान् ।
वयसाऽतिमहावृद्धान् स्वतन्त्रान् मातृसन्निधौ ॥ २७ ॥

स्थूलपादं कृष्णवर्णं धर्मिष्ठं रविनन्दनम् । जपन्तं परमं ब्रह्म भगवन्तं सनातनम् ॥ २८ ॥
धर्माधर्मविचारज्ञं परं धर्मस्वरूपिणम् । पापिनामपि शास्तारं ददर्श पुरतो यमम् ॥२९॥
तांश्च दृष्ट्वा च निःशङ्का पप्रच्छ प्रथमं यमम् । मालावती महासाध्वी प्रहृष्टवदनेक्षणा ॥

मालावत्युवाच ।

हे धर्मराज धर्मिष्ठ धर्मशास्त्रविशारद । कालव्यतिक्रमे कान्तं कथं हरसि मे विभो ३१

यम उवाच ।

अप्राप्तकालो म्रियते न कश्चिज्जगतीतले । ईश्वराज्ञां विना साध्वि नामृतं चालयाम्यहम्
अहं कालो मृत्युकन्या व्याधयश्च सुदुर्जयाः । निषेकेण प्राप्तकालं कालयन्तीश्वराज्ञया
मृत्युकन्या विचारज्ञा यं प्राप्नोति निषेकतः । तमहं कालयाम्येव पृच्छ तां केन हेतुना ।

मालावत्युवाच ।

त्वमपि स्त्री मृत्युकन्या जानासि स्वामिवेदनम् ।
कथं हरसि मत्कान्तं जीवितायां मयि प्रिये ॥ ३५ ॥

मृत्युकन्योवाच ।

पुरा विश्वसृजा सृष्टाऽप्यहमेवात्र कर्मणि । न च क्षमा परित्यक्तुं बहुना तपसा सति ॥
सती सतीनां मध्ये च काचित्तेजस्विनी वरा । मामेव भस्मसात् कर्तुं क्षमा यदि भवेद्ध्रुवे
सर्वापच्छन्तिरेवेह तदा भवति सुन्दरि । पुत्राणां स्वामिनः पश्चात् भविता यद्भविष्यति
कालेन प्रेरिताऽहञ्च मत्पुत्रा व्याधयश्चवै । न मत्सुतानां दोषश्च न च मे शृणु निश्चितम्
पृच्छ कालं महात्मानं धर्मज्ञं धर्मसंसदि । तदा यदुचितं भद्रे तत्करिष्यसि निश्चितम्

मालावत्युवाच ।

हे काल कर्मणां साक्षिन् कर्मरूप सनातन । नारायणांशो भगवन् नमस्तुभ्यं पराय च
कथं हरसि मत्कान्तं जीवितायां मयि प्रभो । जानासि सर्वदुःखञ्च सर्वज्ञस्त्वं कृपानिधे

कालपुरुष उवाच ।

को वाऽहंकोयमःका च मृत्युकन्या च व्याधयः । वयंभ्रमामःसततमीशाज्ञापरिपालकाः
यस्य सृष्टा च प्रकृतिर्ब्रह्मविष्णुशिवादयः । सुरा मुनीन्द्रा मनवो मानवाः सर्वजन्तवः ॥

ध्यायन्ते तत्पदाम्भोजं योगिनश्च विचक्षणाः । जपन्तिशश्वन्नामानिपुण्यानि परमात्मनः
यद्भयाद् वाति वातोऽयं सूर्य्यस्तपति यद्भयात् । स्रष्टाब्रह्माज्ञयायस्यपाताविष्णुर्यदाज्ञया
संहर्त्ता शङ्करः सर्वजगतां यस्य शासनात् । धर्मश्च कर्मणां साक्षी यस्याज्ञापरिपालकः
राशिचक्रं ग्रहाः सर्वेभ्रमन्तियस्यशासनात् । दिगीशाश्चैव दिक्पालायस्याज्ञापरिपालकाः
यस्याज्ञया च तरवः पुष्पाणि च फलानि च । बिभ्रत्येव ददत्येव कालेमालावतीसति॥
यस्याज्ञया जलाधारा सर्वाधारा वसुन्धरा । क्षमावती च पृथिवी कम्पिता च भयेन च
सहसा मोहिता माया माययायस्य सन्ततम् । सर्वप्रसूर्या प्रकृतिः सा भीता यद्भयादहो
यस्यान्तं न विदुर्वेदा वस्तूनांभावगा अपि । पुराणानिच सर्वाणि यस्यैव स्तुतिपाठकाः
यस्य नाम विधिर्विष्णुः सेवते सुमहान् विराट् । षोडशांशोभगवतःसएवतेजसो विभोः
सर्वेश्वरः कालकालो मृत्योर्मृत्युः परात्परः । सर्वविघ्नविनाशाय तं कृष्णं परिचिन्तय
सर्वाभीष्टञ्च भर्त्तारं प्रदास्यति कृपानिधिः । इमे यत्प्रेरिताः सर्वे स दाता सर्वसम्पदाम्
इत्युक्त्वा कालपुरुषो विरराम च शौनक । कथां कथितुमारेभे पुनरेव तु ब्राह्मणः ॥५७
इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे ब्रह्मखण्डे मालावतीकालपुरुषसंवादे पञ्चदशोऽध्यायः ।

षोड़शोऽध्यायः ।

विष्णुमालावतीसंवादेव्याधिप्रणयनम् ।

ब्राह्मण उवाच ।

दृष्टःकालोयंमोमृत्युकन्याव्याधिगणाअहो । कस्तेऽधुनाचसन्देहस्तंपृच्छकन्यके शुभे ॥
ब्राह्मणस्य वचः श्रुत्वा हृष्टा मालावती सती । यन्मनोनिहितं प्रश्नं चकार जगदीश्वरम्॥

मालावत्युवाच ।

त्वया यत् कथितो व्याधिः प्राणिनांप्राणहारकः । तत्कारणञ्चविविधंसर्ववेदेनिरूपितम्
यतो न सञ्चरेद् व्याधिर्दुर्निवारोऽशुभावहः । तदुपायञ्च साकल्यं भवान् वक्तुमिहार्हति

यद् तत् पृष्टमपृष्टं वा ज्ञातमज्ञातमेव वा । सर्वं कथय तद्भद्रं त्वं गुरुर्दीनवत्सलः ॥ ५ ॥
मालावतीवचः श्रुत्वा विप्ररूपी जनार्दनः । संहितां वक्तुमारेभे संहितार्थञ्च वैद्यकीम् ॥

ब्राह्मण उवाच ।

वन्दे तं सर्वतत्त्वज्ञं सर्वकारणकारणम् । वेदवेदाङ्गवीजस्य वीजं श्रीकृष्णमीश्वरम् ॥
स ईशश्चतुरो वेदान् ससृजे मङ्गलालयान् । सर्वमङ्गलमङ्गल्यवीजरूपः सनातनः ॥ ८ ॥
ऋग्‌जयुःसामाथर्वाख्यान् दृष्ट्वा वेदान् प्रजापतिः । विचिन्त्यतेषामर्थञ्चैवायुर्वेदंचकारसः
कृत्वा तु पञ्चमं वेदं भास्कराय ददौ विभुः । स्वतन्त्रसंहितां तस्माद्भास्करश्चचकार सः
भास्करश्च स्वशिष्येभ्य आयुर्वेदंस्वसंहिताम् । प्रददौ पाठयामास ते चक्रुःसंहितास्ततः
तेषांनामानि विदुषां तन्त्राणिततकृतानि च । व्याधिप्रणाशवीजानिसाध्विमत्तोनिशामय
धन्वन्तरिर्दिवोदासःकाशीराजोऽश्विनीसुतौ । नकुलःसहदेवोऽर्किश्च्यवनोजनकोवुधः
जावालो जाजलिः पैलः करथोऽगस्त्य एव च । एतेवेदाङ्गवेदज्ञाःषोड़शव्याधिनाशकाः
चिकित्सातत्त्वविज्ञानं नाम तन्त्रं मनोहरम् । धन्वन्तरिश्च भगवान् चकार प्रथमे सति
चिकित्सादर्पणं नामदिवोदासश्चकारसः । चिकित्साकौमुदींदिव्यांकाशीराजश्चकारसः
चिकित्सासारतन्त्रञ्च भ्रमघ्नं चाश्विनीसुतौ । तन्त्रं वैद्यकसर्वस्वं नकुलश्च चकार सः
चकार सहदेवश्च व्याधिसिन्धुविमर्दनम् । ज्ञानार्णवं महातन्त्रं यमराजश्चकार ह ॥ १८
च्यवनो जीवदानञ्च चकार भगवानृषिः । चकार जनको योगी वैद्यसन्देहभञ्जनम् ॥१६
सर्वसारं चन्द्रसुतो जावालस्तन्त्रसारकम् । वेदाङ्गसारं तन्त्रञ्च चकार जाजलिर्मुनिः ॥
पैलो निदानं करथस्तन्त्रं सर्वधरं परम् । द्वैधनिर्णयतन्त्रञ्च चकार कुम्भसम्भवः ॥ २१
चिकित्साशास्त्रवीजानितन्त्राण्येतानिषोडश ।व्याधिप्रणाशवीजानिबलाधानकराणिच
मथित्वा ज्ञानमन्त्रेणैवायुर्वेदपयोनिधिम् । ततस्तस्मादुदाजह्रुर्नवनीतानि कोविदाः ॥
एतानि क्रमशो दृष्ट्वा दिव्यां भास्करसंहिताम् । आयुर्वेदं सर्ववीजं सर्वंजानासि सुन्दरि
व्याधेस्तत्र परिज्ञानं वेदनायाश्च निग्रहः । एतद्वैद्यस्य वैद्यत्वं न वैद्यः प्रभुरायुषः ॥ २५
आयुर्वेदस्य विज्ञाताचिकित्सासु यथार्थवित् । धर्मिष्ठश्च दयालुश्च तेन वैद्यःप्रकीर्त्तितः
ज्वरः सर्वरोगाणां दुर्वारो दारुणो ज्वरः । शिवभक्तश्च योगी च निष्ठुरो विकृताकृतिः

भीमस्त्रिपादस्त्रिशिराः षड्भुजो नवलोचनः । भस्मप्रहरणो रौद्रः कालान्तकयमोपमः ॥
मन्दाग्निस्तस्य जनकोमन्दाग्नेर्जनकास्त्रयः । पित्तश्लेष्मसमीराश्च प्राणिनांदुःखदायकाः
वायुजः पित्तजश्चैव श्लेष्मजश्च तथैव च । ज्वरभेदाश्च त्रिविधाश्चतुर्थश्च त्रिदोषजः ॥
पाण्डुश्च कामलः कुष्ठः शोथः प्लीहा च शूलकः ।'ज्वरातिसारग्रहणीकासव्रणहलीमकाः
मूत्रकृच्छ्रश्च गुल्मश्च रक्तदोषविकारजः । विषमेहश्च कुब्जश्च गोदश्च गलगण्डकः ॥३२॥
भ्रमरी सन्निपातश्च विसूची दारुणी सति । एषां भेदप्रभेदेन चतुःषष्टी रुजः स्मृताः ॥
मृत्युकन्यासुताश्चैतेजरातस्याश्चकन्यका । जराचभ्रातृभिःसार्द्धंशाश्वद् भ्रमति भूतलम्
एते चोपायवेत्तारं न गच्छन्ति च संयतम् । पलायन्ते च तं दृष्ट्वा वैनतेयमिवोरगाः ॥
चक्षुर्जलञ्च व्यायामः पादाधस्तैलमर्दनम् । कर्णयोर्मूर्ध्नि तैलञ्च जराव्याधिविनाशनम्
वसन्ते भ्रमणं वह्निसेवां स्वप्नं करोति यः । बालाञ्च सेवते काले जरा तं नोपगच्छति
खातशीतोदकस्नायी सेवते चन्दनद्रवम् । नोपयाति जरा तञ्च निदाघेऽनिलसेवकम् ॥
प्राविष्युणोदकस्नायी घनतोयं च सेवते । समये च समाहारी जरा तं नोपगच्छति ॥
शरद्रौद्रं न गृह्णाति भ्रमणं तत्र वर्जयेत् । खातस्नायी समाहारी जरा तं नोपगच्छति ॥
खातस्नायी च हेमन्ते काले वह्निञ्च सेवते । भुङ्क्ते नवान्नमुष्णञ्च जरा तं नोपगच्छति
शिशिरेंऽशुकवह्निञ्च नवोष्णान्नञ्चसेवते । यत्र चोष्णोदकस्नायी जरा तं नोपच्छति ॥
सद्योमांसं नवान्नञ्च बालास्त्रीक्षीरभोजनम् । घृतञ्च सेवते यो हि जरा तं नोपगच्छति
भुङ्क्ते सदन्नं क्षुत्काले तृष्णायां पीयतेजलम् । नित्यंभुङ्क्तेचताम्बूलंजरातंनोपगच्छति
दधि हैयङ्गवीनञ्च नवनीतं तथागुड़म् । नित्यं भुङ्क्ते संयमी यो जरा तं नोपगच्छति॥
शुष्कमांसं स्त्रियं वृद्धां बालार्कं तरुणं दधि । संसेवन्तं जरा याति प्रहृष्टा भ्रातिभिःसह
रात्रौ ये दधि सेवन्ते पुंश्चलीश्च रजस्वलाः । तानुपैति जरा हृष्टा भ्रातृभिः सह सुन्दरि
रजस्वला च कुलटा चावीरा जारदूतिका । शूद्रयाजकपत्नी या ऋतुहीना च या सति ॥
यो हि तासामन्नभोजी ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः । तेन पापेन सार्द्धं सा जरा तमुपगच्छति
पापानां व्याधिभिःसार्द्धं मित्रता सन्ततं ध्रुवम् । पापंव्याधिजरावीजंविघ्नवीजंञ्चनिश्चितम्
पापेन जायते व्याधिः पापेन जायते जरा । पापेन जायते दैन्यं दुःखं शोको भयङ्करः ॥

तस्मात् पापं महाघोरं दोषबीजममङ्गलम् । भारते सन्ततं सन्तो नाचरन्ति भयातुराः ॥
स्वधर्माचारयुक्तञ्च दीक्षितं हरिसेवकम् । गुरुदेवातिथीनाञ्च भक्तं सक्तं तपःसु च ॥५३
व्रतोपवासयुक्तञ्च सदा तीर्थनिषेवकम् । रोगा द्रवन्ति तं दृष्ट्वा वैनतेयमिवोरगाः ॥ ५४
एतान् जरा न सेवेत् व्याधिसंघश्च दुर्जयः । सर्वं वोध्यमसमये काले सर्वं ग्रसिष्यति
ज्वरश्च सर्वरोगाणां जनकः कथितः सति । पित्तश्लेष्मसमीराश्च ज्वरस्य जनकास्त्रयः
एते यथा सञ्चरन्ति स्वयं यान्ति च देहिषु । तमेव विविधोपायं साध्वि मत्तो निशामय
क्षुधि जाज्वल्यमानायामाहाराभाव एव च । प्राणिनां जायते पित्तं चक्रे च मणिपूरके
तालविल्वफलं भुक्त्वा जलपानञ्च तत्क्षणम् । तदेव तु भवेत् पित्तं सद्यःप्राणहरं परम्
तप्तोदकञ्च शरदि भाद्रे तिक्तं विशेषतः । दैवग्रस्तश्च यो भुङ्क्ते पित्तं तस्य प्रजायते ॥
सशर्करञ्च धन्याकं पिष्टं शीतोदकान्वितम् । चनकं सर्वगव्यञ्च दधि तक्रविवर्जितम्
विल्वतालफलं पक्कं सर्वमैक्षवमेव च । आर्द्रकं मुद्गयूषञ्च तिलपिष्टं सशर्करम् ॥ ६२ ॥
पित्तक्षयकरं सद्योबलपुष्टिप्रदं परम् । पित्तनाशञ्च तद्बीजमुक्तमन्यं निबोध मे ॥ ६३ ॥
भोजनानन्तरं स्नानं जलपानं विना तृषा । तिलतैलं स्निग्धतैलं स्निग्धमःमलकीद्रवम् ॥
पर्य्युषितान्नं तक्रञ्च पक्कं रम्भाफलं दधि । मेघाम्बु शर्करातोयं सुस्निग्धजलसेवनम् ॥
नारिकेलोदकं रुक्षस्नानं पर्य्युषिते जले । तरमुञ्जापक्वफलं सुपक्कं कर्क्कटीफलम् ॥ ६६
खातस्नानञ्च वर्षासु मूलकं श्लेष्मकारकम् । ब्रह्मरन्ध्रे च तज्जन्म महद्वीर्य्यविनाशनम् ॥
वह्निस्वेदं भ्रष्टभङ्गं पक्वतैलविशेषकम् । भ्रमणं शुष्कभक्षञ्च शुष्कपक्वहरीतकी ॥ ६८ ॥
पिण्डारकमपक्वञ्च रम्भाफलमपक्वकम् । वेसवारः सिन्धुवार अनाहारमपानकम् ॥६९॥
सघृतं रोचनाचूर्णं सघृतं शुष्कशर्करम् । मरीचं पिप्पलं शुष्कमार्द्रकं जीवकं मधु ।७०।
द्रव्याण्येतानि गान्धर्वि ! सद्यःश्लेष्महराणि च । बलपुष्टिकराण्येव वायुबीजं निशामय
भोजनानन्तरं सद्योगमनं धावनं तथा । छेदनं वह्नितापश्च शश्वद्भ्रमणमैथुनम् ॥७२॥
वृद्धास्त्रीगमनञ्चैव मनःसन्ताप एव च । अतिरुक्षमनाहारं युद्धं कलहमेव च ॥ ७३ ॥
कटुवाक्यं भयं शोकः केवलं वायुकारणम् । आज्ञाख्यचक्रे तज्जन्म निशामय तदौषधम्
पक्वं रम्भाफलञ्चैव सबीजं शर्करोदकम् । नारिकेलोदकञ्चैव सद्यस्तक्रं सुपिष्टकम् ॥

माहिषं दधि मिष्टञ्च केवलं वा सशर्करम् । सद्यःपर्य्युषितान्नञ्च सौवीरं शीतलोदकम् ॥
पक्वतैलविशेषञ्च तिलतैलञ्च केवलम् । लाङ्गलीतालखर्जूरसुष्णमामलकीद्रवम् ॥ ७७ ॥
शीतलोष्णोदकस्नानं सुस्निग्धचन्दनद्रवम् । स्निग्धपद्मपत्रतल्पं सुस्निग्धव्यजनानि च
एतत्ते कथितं वत्से ! सद्योवायुप्रणाशनम् । वायवस्त्रिविधाः पुंसां क्लेशसन्तापकामजाः
व्याधिसंघश्च कथितस्तन्त्राणि विविधानि च । तानि व्याधिप्रणाशाय कृतानिसद्भिरेव च
तन्त्राण्येतानि सर्वाणि व्याधिक्षयकराणि च । रसायनादयो येषु चोपायाश्चसुदुर्लभाः
न शक्तः कथितुं साध्वि ! याथार्थ्यं वत्सरैण च । तेषाञ्चसर्वतन्त्राणांकृतानाञ्चविचक्षणैः
केन रोगेण त्वत्कान्तो मृतः कथय शोभने !। तदुपायं करिष्यामि येन जीवेदयं सति।

सौतिरुवाच ।

ब्राह्मणस्य वचः श्रुत्वा कन्या चित्ररथस्य च । कथां कथितुमारेभे सा गान्धर्वीप्रहर्षिता

मालावत्युवाच ।

योगेन प्राणांस्तत्याज ब्रह्मणः शापहेतुना । सभायां लज्जितः कान्तो मम विप्रनिशामय
सर्वं श्रुतमपूर्वञ्च शुभाख्यानं मनोहरम् । भवेद्भवे कुतः केषां महल्लभ्यं विपद्विना ॥८६।
अधुना मत्प्राणकान्तं देहि देहि विचक्षण । नत्वा वःस्वामिनासार्द्धंयास्यामिस्वगृहंप्रति
मालावतीवचः श्रुत्वा विप्ररूपी जनार्दनः । सभां जगामदेवानां शीघ्रं विप्रस्तदन्तिकात्

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे ब्रह्मखण्डे सौतिशौनकसंवादे मालावतीविष्णुसंवादे चिकित्साप्रणयने षोड़शोऽध्यायः ।

सप्तदशोऽध्यायः ।

देवानांसमीपेविष्णोर्गमनम् ।

सौतिरुवाच ।

दृष्ट्वा द्विजं देवसंघः प्रत्युत्थानं चकार च । परस्परञ्च सम्भाषा बभूव तत्र संसदि ॥
सा तं बुबुधिरे देवाः श्रीहरिं विप्ररूपिणम् । पौर्वापर्यं विस्मृताश्चमोहिताविष्णुमायया

सुरान् सम्बोध्य विप्रश्च वाचा मधुरया द्विज । उवाचसत्यं परमं प्राणिनांयतशुभावहम्

ब्राह्मण उवाच ।

उपबर्हणभार्य्येयं कन्या चित्ररथस्य च । ययाचे जीवदानञ्च स्वामिनः शोककर्षिता ॥
अधुना किमनुष्ठानमस्यकार्य्यस्य निश्चितम् । तन्मांब्रूहिसुराःसर्वेनित्यंयतसमयोचितम्
शप्तुकामा सुरान् सर्वान्साध्वीतेजस्विनीवरा । अहं क्षेमाययुष्माकमागतोबोधितासती
स्तुतिः कृता च युष्माभिः श्वेतद्वीपेहरेरपि । युष्माकमीशो विष्णुश्च कथमेवात्र नागतः
बभूवाकाशवाणीति पश्चाद्‌ यास्यति केशवः । विपरीतं कथम्भूतं वाणीवाक्यमचञ्चलम्
ब्राह्मणस्य वचः श्रुत्वा स्वयं ब्रह्मा जगद्गुरुः । उवाच वचनं सत्यं हितं परममङ्गलम् ॥

ब्रह्मोवाच ।

मत्पुत्रो नारदः शप्तो गन्धर्वश्चोपबर्हणः । योगेन प्राणांस्तत्याज पुनः शापान्ममैव हि
कालं लक्षयुगं व्याप्य स्थितिरस्य महीतले । शूद्रयोनिं ततः प्राप्य भवितामत्सुतः पुनः
अस्य कालावशेषस्य कश्चिदस्ति द्विजोत्तम ! तत्तु वर्षसहस्रञ्चैवायुरस्यास्ति साम्प्रतम्

दास्यामि जीवदानञ्च स्वयं विष्णोःप्रसादतः ।
यथैनं न स्पृशेत् शापस्तत् करिष्यामि निश्चितम् ॥ १३ ॥

नागतो हरिरत्रेति त्वया यत् कथितं द्विज ! हरिः सर्वत्र सर्वात्मा विग्रहःकुत आत्मनः
स्वेच्छामयः परं ब्रह्म भक्तानुग्रहविग्रहः । सर्वं पश्यति सर्वज्ञः सर्वत्रास्ति सनातनः ॥
विः षष्ठ्या प्तिवचनोणुश्चसर्वत्रवाचकः । सर्वव्यापी च सर्वात्मा तेनविष्णुःप्रकीर्त्तितः

अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतः पुमान् ।
भक्त्या च यःस्मरेद्विष्णुं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः ॥ १७ ॥

कर्मारम्भे च मध्ये वा शेषे विष्णुञ्च यः स्मरेत् । परिपूर्णंतस्य कर्म वैदिकञ्चभवेद्द्विज
अहं स्रष्टा च जगतां विधाता संहरो हरः । धर्मश्च कर्मणां साक्षी यस्याज्ञापरिपालकः

कालः संहरते लोकान् यमः शास्ता च पापिनाम् ।
उपैति मृत्युः सर्वांश्च भिया यस्याज्ञया सदा ॥ २० ॥

सर्वेशा या च सर्वाद्याप्रकृतिःसर्वसूःपुरा । सा भीता यस्यपुरतो यस्याज्ञापरिपालिका

महेश्वर उवाच ।

पुत्राणां ब्रह्मणस्तेषां कस्य वंशोद्भवो भवान् । वेदानधीत्य भवता ज्ञातः कःसारएव च

शिष्यः कस्य मुनीन्द्रस्य कस्त्वं नाम्ना च भो द्विज !

बिभर्त्यर्कातिरिक्तश्च शिशुरूपोऽसि साम्प्रतम् ॥ २३ ॥

विडम्बयसि देवांश्च विष्णुमस्माकमीश्वरम् । हृदिस्थञ्च न जानासिपरमात्मानमीश्वरम्

यस्मिन् गते पतेद्देहो देहिनां परमात्मनि । प्रयान्ति सर्वे तत्पश्चात् नरदेवानुगा इव ॥

जीवस्तत्प्रतिविम्वश्च मनो ज्ञानञ्च चेतना । प्राणाश्चेन्द्रियवर्गाश्च बुद्धिर्मेधाधृतिः स्मृतिः

निद्रादया च तन्द्रा च क्षुत्तृष्णापुष्टिःरेव च । श्रद्धासंतुष्टिरिच्छाचक्षमालज्जादिकाःस्मृताः

प्रयाति यत्पुरः शक्तिरीश्वरे गमनोन्मुखे । एते सर्वे च शक्तिश्च यस्याज्ञापरिपालकाः

ईश्वरे च स्थिते देही क्षमश्च सर्वकर्मसु । गतेऽस्पृश्यः शवस्त्याज्यः कस्तं देहीन मन्यते

स्वयं ब्रह्मा च जगतां विधाता सर्वकारकः । पदारविन्दमनिशं ध्यायते द्रष्टुमक्षमः ॥३०॥

युगलक्षं तपस्तप्तं श्रीकृष्णस्य च वेधसा । तदा बभूव ज्ञानी च जगत् स्रष्टुं क्षमस्तदा ॥

असंख्यकालं सुचिरं तपस्तप्तं हरेर्मया । तृप्तिं जगाम न मनस्तृप्यते केन मङ्गले ॥३२॥

अधुना पञ्चवक्त्रेण यन्नामगुणकीर्त्तनम् । गायन् भ्रमामि सर्वत्र निःस्पृहः सर्वकर्मसु ॥

मत्तो याति च मृत्युश्च यन्नामगुणकीर्त्तनात् । शश्वज्जपन्तं तन्नाम दृष्ट्वा मृत्युः पलायते

सर्वब्रह्माण्डसंहर्त्ताऽप्यहं मृत्युञ्जयाभिधः । सुचिरं तपसा यस्य गुणनामानुकीर्त्तनम्

काले तत्र विलीनोऽहमाविर्भूतस्ततः पुनः । न कालो मम संहर्त्ता न मृत्युर्यत्प्रसादतः

गोलोके यः स वैकुण्ठे श्वेतद्वीपे स एव च । अंशांशिनोर्न भेदश्च ब्रह्मन्वह्निस्फुलिङ्गवत्

मन्वन्तरन्तु दिव्यानां युगानामेकसप्ततिः । अष्टाविंशतिमे शक्रे गते च ब्रह्मणो दिनम् ॥

एतत्संख्याविशिष्टस्य शतवर्षायुषो विधेः । पाते लोचनपातश्च यद्विष्णोः परमात्मनः

अहं कलानामृषयः कृष्णस्य परमात्मनः । परं महिम्नः को गच्छेन्न जानामि च किञ्चन

इत्युक्त्वा शङ्करस्तत्र विरराम च शौनक । धर्मश्च वक्तुमारेभे यः साक्षी सर्वकर्मणाम् ॥

धर्म उवाच ।

यत्पाणिपादौ सर्वत्र चक्षुश्च सर्वदर्शनम् । सर्वान्तरात्मा प्रत्यक्षोऽप्रत्यक्षश्च दुरात्मनः

अधुनाऽपिसभायांविष्णुर्नायातीतिति यद्वचः । त्वयोक्तं तत्कया बुद्ध्या मुनीनाञ्चमतिभ्रमः
महन्निन्दाभवेद्यस्मान्नैवसाधुःशृणोतिताम् । निन्दकःश्रोत्रेभिःसार्द्धंकुम्भीपाकंव्रजेद्युगम्
श्रुत्वादैवान्महन्निन्दांश्रीविष्णोःस्मरणाद्बुधः । मुच्यतेसर्वपापेभ्यःपुण्यंप्राप्नोतिदुर्लभम्
कामतोऽकामतोवापि विष्णुनिन्दांकरोतियः । यःशृणोति हसति वा सभामध्येनराधमः
कुम्भीपाके पचति स यावद्धि ब्रह्मणो वयः । स्थलंभवेदपूतञ्च सुरापात्रं यथा द्विज ॥
प्राणीचनरकंयाति श्रुतन्तत्रैवचेद्ध्रुवम् । विष्णुनिन्दाचत्रिविधा ब्रह्मणा कथितापुरा ॥
अप्रत्यक्षञ्च कुरुते किं वा तञ्च न मन्यते । देवान्यसाम्यं कुरुते ज्ञानहीनो नराधमः ॥
तस्यात्रनिष्कृतिर्नास्तियावद्वैब्रह्मणःशतम् । गुरोर्निन्दां यः करोतिपितुर्निन्दांनराधमः ॥
स याति कालसूत्रञ्च यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥ ५० ॥
विष्णुर्गुरुश्च सर्वेषां जनको ज्ञानदायकः । पोष्टा पाता भयत्राता वरदाता जगत्त्रये ॥
एषाञ्च वचनंश्रुत्वा त्रयाणां विप्रपुंगवः । प्रहस्योवाच तान् देवान् वाचामधुरयापुनः ॥

ब्राह्मण उवाच ।

का कृताविष्णुनिन्दाऽहो हे देवाधर्मशालिनः । नागतो हरिरत्रेति व्यर्थाकाशसरस्वती ॥
इति चोक्तंमया भद्रं ब्रूत धर्मार्थमीश्वराः । सभायांपाक्षिकाःसन्तोघ्नन्तिस्मशतपूरुषम् ॥
यूयंञ्च भावका ब्रूत विष्णुः सर्वत्र सन्ततम् । इति चेत् तत्कथंयाताःश्वेतद्वीपं वराय च
अंशांशिनोर्न भेदश्चेदात्मनश्चेति निश्चितम् । कलांहित्वानिषेवन्तेसन्तः पूर्णतमं कथम्
कोटिजन्मदुराराध्यमसाध्यमसतामपि । आशा वलवती पुंसां कृष्णं सेवितुमिच्छति ॥
किं क्षुद्राः किं महान्तश्च वाञ्छन्तिपरमंपदम् । लब्धुमिच्छतिचन्द्रञ्चवाहुभ्यांवामनोयथा
यो विष्णुर्विषयी विश्वे श्वेतद्वीपनिवासकृत् । यूयं ब्रह्मेशधर्माश्चदिक्पालाश्च महेश्वराः
ब्रह्मविष्णुशिवाद्याश्च सुरलोकाश्चराचराः । एवं कतिविधाः सन्ति प्रतिविश्वेषुसन्ततम्
विश्वानाञ्च सुराणाञ्च कः संख्यां कर्त्तुमीश्वरः । सर्वेषामीश्वरःकृष्णो भक्तानुग्रहविग्रहः
ऊर्द्ध्वञ्च सर्वब्रह्माण्डात् वैकुण्ठं सत्यमीप्सितम् ।
तस्मादूर्द्ध्वञ्च गोलोकः पञ्चाशत् कोटियोजनम् ॥ ६२ ॥
चतुर्भुजश्च वैकुण्ठे लक्ष्मीकान्तः सनातनः । सुनन्दनन्दकुमुदपार्षदादिभिरावृतः ॥ ६३ ॥

गोलोके द्विभुजः कृष्णो राधाकान्तः सनातनः । गोपाङ्गनादिभिर्युक्तोद्विभुजैर्गोपपार्षदैः
परिपूर्णतमं ब्रह्म स चात्मा सर्वदेहिनाम् । स्वेच्छामयश्च विहरेद्रासे वृन्दावने सदा ॥
तज्ज्योतिर्मण्डलाकारंसूर्य्यकोटिसमप्रभम् । ध्यायन्तेयोगिनःसन्तःसन्ततञ्च निरामयम्
नवीननीरदश्यामं द्विभुजं पीतवाससम् । कोटिकन्दर्पलावण्यलीलाधाम मनोहरम् ॥ ६७
किशोरवयसं शश्वत्शान्तंसस्मितमीश्वरम् । ध्यायन्तेवैष्णवाःसन्तःसेवन्तेसत्यविग्रहम्
यूयञ्च वैष्णवा ब्रूहि कस्य वंशोद्भवो भवान् । शिष्यः कस्य मुनीन्द्रस्येत्येवंमाञ्च पुनःपुनः
यस्य वंशोद्भवोऽहञ्च यस्य शिष्यश्च बालकः । तस्येदं वचनं ज्ञानं देवसंघा निबोधत ॥
शीघ्रं जीवय गन्धर्वं देवेश्वर सुरेश्वर । व्यक्तोविचारे मूर्खः को वाग्युद्धे किंप्रयोजनम्
इत्युक्त्वा बालकस्तत्र विप्ररूपी जनार्दनः । विरराम सभामध्ये प्रजहास च शौनक ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे ब्रह्मखण्डे विष्णु-सुरसंघसंवादे विष्णुप्रशंसाप्रणयने सप्तदशोऽध्यायः ।

अष्टादशोऽध्यायः ।

गन्धर्वाय जीवदानम् ।

सौतिरुवाच ।

देवाः सार्द्धं ब्राह्मणेन मोहिता विष्णुमायया । प्रययुर्मालतीमूलं ब्रह्मेशानपुरोगमाः ॥१॥
ब्रह्मा कमण्डलुजलं ददौ गात्रे शवस्य च । सञ्चारं मनसस्तस्य चकार सुन्दरं वपुः ॥
ज्ञानदानं ददौ तस्मै ज्ञानानन्दः शिवः स्वयम् । धर्मज्ञानं स्वयं धर्मो जीवदानञ्च ब्राह्मणः
वह्निदर्शनमात्रेण बभूव जठरानलः । कामदर्शनमात्रेण सर्वकामः सुनिश्चितम् ॥ ४ ॥
तस्य वायोरधिष्ठानाज्जगत्प्राणस्वरूपिणः । निःश्वासस्य च सञ्चारः प्राणानाञ्च बभूव ह
सूर्य्याधिष्ठानमात्रेण दृष्टिशक्तिर्बभूव ह । वाक्यं वाणीदर्शनेन शोभा श्रीदर्शनेन च ॥ ६

शवस्तथापि नोसख्यौ यथा शेते जडस्तथा । विशिष्टबोधं न प्राप चाधिष्ठानं विनात्मनः ।
ब्रह्मणो वचनात् साध्वीतुष्टावपरमेश्वरम् । स्नात्वाशीघ्रंसरित्तोयेधृत्वाधौते च वाससी ।

मालावत्युवाच ।

वन्दे तं परमात्मानं सर्वकारणकारणम् । विना येन शवाः सर्वे प्राणिनो जगतीतले ॥
निर्लिप्तं साक्षिरूपञ्च सर्वेषां सर्वकर्मसु । विद्यमानं न दृष्टञ्च सर्वैः सर्वत्र सर्वदा ॥१०॥
येन सृष्टा च प्रकृतिः सर्वाधारा परात्परा । ब्रह्मविष्णुशिवादीनां प्रसूर्या त्रिगुणात्मिका ।
जगत्स्रष्टा स्वयंब्रह्मा नियतोयस्य सेवया । पाता विष्णुश्चजगतां संहर्त्ताशङ्करःस्वयम् ।
ध्यायन्ते यं सुराःसर्वे मुनयोमनवस्तथा । सिद्धाश्च योगिनः सन्तः सन्ततं प्रकृतेःपरम् ।
साकारञ्च निराकारं परं स्वेच्छामयं विभुम् । वरं वरेण्यं वरदं वरार्हं वरकारणम् ।१४।
तपःफलं तपोवीजं तपसाञ्च फलप्रदम् । स्वयं तपःस्वरूपञ्चसर्वरूपञ्च सर्वतः ॥ १५ ॥
सर्वाधारं सर्ववीजं कर्म तत्कर्मणां फलम् । तेषाञ्च फलदातारं तद्बीजं क्षयकारणम् ॥
स्वयं तेजःस्वरूपञ्च भक्तानुग्रहविग्रहम् । सेवाध्यानं न घटते भक्तानां विग्रहं विना १७
तत्तेजो मण्डलाकारं सूर्य्यकोटिसमप्रभम् । अतीवकमनीयञ्च रूपं तत्र मनोहरम् ॥१८॥
नवीननीरदश्यामं शरत्पङ्कजलोचनम् । शरत्पार्वणचन्द्रास्यमीषद्धास्यसमन्वितम् ।१९
कोटिकन्दर्पलावण्यं लीलाधाम मनोहरम् । चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं रत्नभूषणभूषितम् ॥२०।
द्विभुजं मुरलीहस्तं पीतकौशेयवाससम् । किशोरवयसं शान्तं राधाकान्तमनन्तकम् ।२१।
गोपाङ्गनापरिवृतं कुत्रचिन्निर्जने वने । कुत्रचिद्रासमध्यस्थं राधया परिषेवितम् ॥ २२॥
कुत्रचिद् गोपवेशञ्च वेष्टितं गोपबालकैः । शतशृङ्गाचलोत्कृष्टे रम्ये वृन्दावने वने ॥२३
निकरं कामधेनूनां रक्षन्तं शिशुरूपिणम् । गोलोके विरजातीरे पारिजातवने वने ॥२४॥
वेणुं क्वणन्तं मधुरं गोपीसम्मोहकारणम् । निरामये च वैकुण्ठे कुत्रचिच्च चतुर्भुजम् ॥
लक्ष्मीकान्तं पार्षदैश्च सेवितञ्च चतुर्भुजैः । कुत्रचित् स्वांशरूपेण जगतां पालनाय च ॥
श्वेतद्वीपे विष्णुरूपं पद्मया परिषेवितम् । कुत्रचित् स्वांशकलया ब्रह्माण्डे ब्रह्मरूपिणम् ।
शिवस्वरूपं शिवदं स्वांशेन शिवरूपिणम् । स्वात्मनःषोड़शांशेन सर्वाधारं परात्परम् ॥
स्वयं महद्विराट्रूपं विश्वौघं यस्य लोमसु । लीलया स्वांशकलया जगतां पालनाय च

नानावतारंबिभ्रन्तं वीजं तेषां सनातनम् । वसन्तं कुत्रचित् सन्तं योगिनां हृदये सताम्।
प्राणरूपं प्राणिनाञ्च परमात्मानमीश्वरम् । तञ्च स्तोतुमसक्ताहमबला निर्गुणं विभुम् ।३१
निर्लक्ष्यञ्च निरीहञ्च सारं वाङ्मनसोः परम् । यं स्तोतुमक्षमोऽनन्तः सहस्रवदनेन च ॥
पञ्चवक्त्रश्चतुर्वक्त्रो गजवक्त्रःषड़ाननः । यं स्तोतुं न क्षमामाया मोहितायस्य मायया।
यंस्तोतुं न क्षमाश्रीश्च जड़ीभूता सरस्वती । वेदा न शक्तायं स्तोतुंके वा विद्वांश्चवेदवित्।

किं स्तौमि तमनीहञ्च शोकार्त्ता स्त्री परात्परम् ।
इत्युक्त्वा सा च गान्धर्वी विरराम रुरोद च ॥ ३५ ॥

कृपानिधिं प्रणनाम भयार्त्ता च पुनः पुनः । कृष्णश्च शक्तिभिः सार्द्धमधिष्ठानं चकारह॥

भर्त्तुरभ्यन्तरे तस्याः परमात्मा निराकृतिः ।
उत्थाय शीघ्रं वीणाञ्च धृत्वा स्नात्वा च वाससी ॥ ३७ ॥

प्रणनाम देवसङ्घं ब्राह्मणं पुरतः स्थितम् । नेदुर्दुन्दुभयो देवाःपुष्पवृष्टिञ्च चक्रिरे॥३८॥
दृष्ट्वा चोपरि दम्पत्योः प्रददुः परमाशिषम् । गन्धर्वो देवपुरतो ननर्त्त च जगौ क्षणम्॥
जीवितंपुरतःप्राप देवानाञ्च वरेण च ! जगाम पत्न्या सार्द्धञ्च पिता माता च हर्षितः।
उपवर्हणगन्धर्वो गन्धर्वनगरं पुनः । मालावतीं रत्नकोटिं धनानि विविधानि च ॥४१॥
प्रददौ ब्राह्मणेभ्यश्च भोजयामास तान् सती । वेदांश्च पाठयामास कारयामास मङ्गलम्॥
महोत्सवञ्च विविधं हरेर्नामैकमङ्गलम् । जग्मुर्देवाश्च स्वस्थानं विप्ररूपी हरिःस्वयम्॥
एतत्ते कथितं सर्वं स्तवराजञ्च शौनक । इदं स्तोत्रं पुण्यरूपं पूजाकाले तु यः पठेत्॥
हरिभक्तिं हरेर्दास्यं लभतेवैष्णवो जनः । वरार्थी यः पठेद्भक्त्या चास्तिकः परमास्थया।

धर्मार्थकाममोक्षाणां निश्चितं लभते फलम् ।
विद्यार्थी लभते विद्यां धनार्थी लभते धनम् ॥ ४६ ॥

भार्य्यार्थी लभतेभार्य्यां पुत्रार्थी लभतेसुतम् । धर्मार्थी लभतेधर्मं यशोऽर्थी लभतेयशः॥

भ्रष्टराज्यो लभेद्राज्यं प्रजाभ्रष्टः प्रजां लभेत् ।
रोगार्त्तो मुच्यते रोगात् बद्धो मुच्येत बन्धनात् ॥ ४८ ॥

भयान्मुच्येत भीतस्तु धनं नष्टधनो लभेत् । दस्युग्रस्तो महारण्ये हिंस्रजन्तुसमन्वितः ॥
दावाग्निदग्धो मुच्येत निमग्नश्च जलार्णवे ॥ ४६ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे ब्रह्मखण्डे गन्धर्वजीवदाने महापुरुषस्तोत्रप्रणयनं नाम अष्टादशोऽध्यायः ।

ऊनविंशोऽध्यायः ।

ब्रह्माण्डपावनं श्रीकृष्णकवचम् ।

सौतिरुवाच ।

मालावती धनं दत्त्वा ब्राह्मणेभ्यः प्रहर्षिता । चकारविविधंवेशंस्वात्मनःस्वामिनः कृते ॥
भर्त्तुश्चकार शुश्रूषां पूजाञ्च समयोचिताम् । तेन सार्द्धं सुरसिका रेमे सा सुचिरं मुदा॥
महापुरुषस्तोत्रञ्च पूजाञ्च कवचं मनुम् । विस्मृतं बोधयामास स्वयं रहसि सुव्रता ॥
पुरा दत्तं वशिष्ठेन स्तोत्रपूजादिकं हरेः । गन्धर्वाय च मालत्यै मन्त्रमेकञ्च पुष्करे ॥ ४॥
विस्मृतं स्तोत्रकवचं वशिष्ठश्च कृपानिधिः । गन्धर्वराजं रहसि बोधयामास शूलिनः ॥
एवञ्चकार राज्यञ्च कुवेरभवनोपमे । आश्रमे परमानन्दो गन्धर्वो बान्धवैः सह ॥ ६ ॥
यथातथागताभिश्च स्त्रीभिरन्याभिरेवच । आगत्य ताभिः स्वस्वामी संप्राप्तःपरया मुदा॥

शौनक उवाच ।

किं स्तोत्रं कवचं विष्णोर्मन्त्रपूजाविधिः पुरा ।
दत्तो वशिष्ठैस्ताभ्याञ्चतं भवान् वक्तुमर्हति ॥ ८ ॥

द्वादशाक्षरमन्त्रञ्च शूलिनः कवचादिकम् । दत्तं गन्धर्वराजाय वशिष्ठेनचकिंपुरा ॥ ९॥
तदपि ब्रूहि हे सौते श्रोतुं कौतूहलं मम । शङ्करस्तोत्रकवचं मन्त्रं दुर्गतिनाशनम् ॥१०॥

सौतिरुवाच ।

तुष्टाव येन स्तोत्रेण मालती परमेश्वरम् । तदेव स्तोत्रं दत्तञ्च मन्त्रञ्च कवचं शृणु॥११
ओं नमो भगवते रासमण्डलेशाय स्वाहा । इदं मन्त्रं कल्पतरुं प्रददौ षोड़शाक्षरम्॥
पुरा दत्तं कुमाराय ब्रह्मणा पुष्करे हरेः । पुरा दत्तञ्च कृष्णेन गोलोके शङ्कराय च ॥१३
ध्यानञ्च विष्णोर्वेदोक्तं शाश्वतं सर्वदुर्लभम् । मूलेन सर्वं देवञ्च नैवेद्यादिकमुत्तमम् ॥
अतीवगुप्तकवचं पितुर्वक्त्रान्मया श्रुतम् । पित्रे दत्तं पुरा विप्र गङ्गायां शूलिना ध्रुवम्॥
शूलिने ब्रह्मणे दत्तं गोलोके रासमण्डले । धर्माय गोपीकान्तेन कृपया परमाद्भुतम् ।१६।

ब्रह्मोवाच ।

राधाकान्त महाभाग कवचं यत् प्रकाशितम् । ब्रह्माण्डपावनं नाम कृपया कथय प्रभो॥
मां महेशञ्च धर्मञ्च भक्तञ्च भक्तवत्सल । त्वत्प्रसादेनपुत्रेभ्यो दास्यामि भक्तिसंयुतः॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

शृणु वक्ष्यामि ब्रह्मेश धर्मेदं कवचं परम् । अहं दास्यामि युष्मभ्यं गोपनीयं सुदुर्लभम्॥
यस्मै कस्मै न दातव्यं प्राणतुल्यं ममैव हि । यत्तेजो मम देहेऽस्ति तत्तेजः कवचेऽपिच ॥
कुरु सृष्टिमिमंधृत्वा धाता त्रिजगतां भव ।संहर्त्ता भव हे शम्भो मम तुल्योभवेभव॥
हे धर्म! त्वमिमंधृत्वा भव साक्षी च कर्मणाम् । तपसां फलदाताच यूयं भवतमद्वरात् ॥
ब्रह्माण्डपावनस्यास्य कवचस्यहरिःस्वयम् । ऋषिश्छन्दश्चगायत्री देवोऽहंजगदीश्वरः॥
धर्मार्थकाममोक्षेषु विनियोगः प्रकीर्त्तितः । त्रिलक्षवारपठनात् सिद्धिदं कवचं विधे ॥
योभवेत् सिद्धकवचो मम तुल्यो भवेत्तु सः । तेजसा सिद्धियोगेन ज्ञानेन विक्रमेणच॥
प्रणवो मे शिरः पातु नमो रासेश्वराय च । भालं पायान्नेत्रयुग्मं नमो राधेश्वराय च ॥
कृष्णं पायात् श्रोत्रयुग्मं हे हरे घ्राणमेव च । जिह्विकां वह्निजायातु कृष्णायेतिचसर्वतः
श्रीकृष्णायस्वाहेतिच कण्ठंपातुषड़क्षरः । ह्रीं कृष्णायनमो वक्त्रंक्लीं पूर्वश्चभुजद्वयम्॥
नमो गोपाङ्गनेशाय स्कन्धावष्टाक्षरोऽवतु । दन्तपंक्तिमोष्ठयुग्मं नमो गोपीश्वराय च ॥
ओं नमो भगवते रासमण्डलेशाय स्वाहा। स्वयं वक्षःस्थलं पातु मन्त्रोऽयं षोड़शाक्षरः ॥
ऐं कृष्णायस्वाहेति च कर्णयुग्मंसदाऽवतु । ओं विष्णवेस्वाहेतिच कङ्कालंसर्वतोऽवतु॥

ओं हरये नम इति पृष्ठं पादं सदाऽवतु । ओं गोवर्द्धनधारिणे स्वाहा सर्वशरीरकम् ॥

प्राच्यां मां पातु श्रीकृष्ण आग्नेय्यां पातु माधवः ।

दक्षिणे पातु गोपीशो नैर्ऋत्यां नन्दनन्दनः ॥ ३३ ॥

वारुण्यांपातुगोविन्दो वायव्यांराधिकेश्वरः । उत्तरेपातुरासेश ऐशान्यामच्युतःस्वयम् ॥

सन्ततं सर्वतः पातु परो नारायणः स्वयम् । इति ते कथितं ब्रह्मन् कवचं परमाद्भुतम् ॥

मम जीवनतुल्यञ्च युष्मभ्यं दत्तमेव च । अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च ॥

कलां नार्हन्ति तान्येव कवचस्यैव धारणात् ॥ ३६ ॥

गुरुमभ्यर्च्य विधिवद्वस्त्रालङ्कारचन्दनैः । स्नात्वातञ्च नमस्कृत्यकवचं धारयेत् सुधीः ॥

कवचस्य प्रसादेन जीवन्मुक्तो भवेन्नरः । यदि स्यात् सिद्धकवचो विष्णुरेव भवेद्द्विज ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे ब्रह्मखण्डे महापुरुष-ब्रह्माण्डपावनं नाम श्रीकृष्णकवचं समाप्तम् ।

सौतिरुवाच ।

शिवस्य कवचं स्तोत्रं श्रूयतामिति शौनक । वशिष्ठेन च यद्दत्तं गन्धर्वाय च यो मनुः ।

ओं नमो भगवते शिवाय स्वाहेति च मनुः । दत्तो वशिष्ठेन पुरा पुष्करे कृपया विभो ॥

अयं मन्त्रो रावणाय प्रदत्तो ब्रह्मणा पुरा । स्वयं शम्भुश्च बाणाय तथा दुर्वाससेपुरा ॥

मूलेन सर्वं देयञ्च नैवेद्यादिकमुत्तमम् । ध्यायेन्नित्यादिकं ध्यानं वेदोक्तं सर्वसम्मतम् ॥

ओं नमो महादेवाय ।

बाणेश्वर उवाच ।

महेश्वर महाभाग कवचं यत् प्रकाशितम् । संसारपावनं नाम कृपया कथय प्रभो ॥४३॥

महेश्वर उवाच ।

शृणु वक्ष्यामि हे वत्स ! कवचं परमाद्भुतम् । अहंतुभ्यं प्रदास्यामि गोपनीयं सुदुर्लभम् ॥

पुरा दुर्वाससे दत्तं त्रैलोक्यविजयाय च । ममैवेदञ्च कवचं भक्त्या यो धारयेत् सुधीः ॥

जेतुं शक्नोति त्रैलोक्यं भगवन्नवलीलया ॥ ४६ ॥

संसारपावनस्यास्य कवचस्य प्रजापतिः । ऋषिश्छन्दश्च गायत्री देवोऽहञ्च महेश्वरः ॥
धर्मार्थकाममोक्षेषु विनियोगः प्रकीर्त्तितः ॥ ४७ ॥
पञ्चलक्षजपेनैव सिद्धिदं कवचं भवेत् ।
यो भवेत् सिद्धिकवचो मम तुल्यो भवेद्भुवि । तेजसा सिद्धियोगेनतपसाविक्रमेणच ।
शम्भुर्मे मस्तकं पातु मुखं पातु महेश्वरः । दन्तपंक्तिं नीलकण्ठोऽप्यधरोष्ठं हरः स्वयम् ।
कण्ठं पातु चन्द्रचूड़ः स्कन्धौ वृषभवाहनः । वक्षःस्थलं नीलकण्ठः पातु पृष्ठं दिगम्बरः ।
सर्वाङ्गं पातु विश्वेशः सर्वदिक्षु च सर्वदा । स्वप्ने जागरणे चैव स्थाणुर्मे पातु सन्ततम् ।
इति ते कथितं वाण कवचं परमाद्भुतम् । यस्मै कस्मै न दातव्यं गोपनीयं प्रयत्नतः ॥
यत् फलं सर्वतीर्थानां स्नानेन लभते नरः । तत् फलं लभते नूनं कवचस्यैवधारणात् ॥
इदं कवचमज्ञात्वा भजेन्मां यः सुमन्दधीः । शतलक्षप्रजप्तोऽपि न मन्त्रः सिद्धिदायकः ।

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते शङ्करकवचं समाप्तम् ।

सौतिरुवाच ।

इदञ्च कवचं प्रोक्तं स्तोत्रञ्च शृणु शौनक । मन्त्रराजः कल्पतरुर्वशिष्ठो दत्तवान् पुरा ॥

ओं नमः शिवाय ।

वाणेश्वर उवाच ।

वन्दे सुराणां सारञ्च सुरेशं नीललोहितम् । योगीश्वरं योगवीजं योगिनाञ्च गुरोर्गुरुम् ।
ज्ञानानन्दं ज्ञानरूपं ज्ञानवीजं सनातनम् । तपसां फलदातारं दातारं सर्वसम्पदाम् ॥५७॥
तपोरूपं तपोवीजं तपोधनधनं वरम् । वरं वरेण्यं वरदमीड्यं सिद्धगणैर्वरैः ॥ ५८ ॥
कारणं भक्तिमुक्तीनां नरकार्णवतारणम् । आशुतोषं प्रसन्नास्यं करुणामयसागरम् ॥५९॥
हिमचन्दनकुन्देन्दुकुमुदाम्भोजसन्निभम् । ब्रह्मज्योतिःस्वरूपञ्च भक्तानुग्रहविग्रहम् ॥६०॥
विषयाणां विभेदेन विभ्रन्तं बहुरूपकम् । जलरूपमग्निरूपमाकाशरूपमीश्वरम् ॥ ६१ ॥
वायुरूपं चन्द्ररूपं सूर्य्यरूपं महत्प्रभुम् । आत्मनः स्वपदं दातुं समर्थमवलीलया ॥ ६२ ॥
भक्तजीवनमीशञ्च भक्तानुग्रहकातरम् । वेदा न शक्ता यं स्तोतुं किमहं स्तौमितं प्रभुम् ॥

अपरिच्छिन्नमीशानमहो वाङ्मनसोः परम् ।
व्याघ्रचर्माम्बरधरं वृषभस्थं दिगम्बरम् । त्रिशूलपट्टिशधरं सस्मितं चन्द्रशेखरम् ॥ ६४
इत्युक्त्वा स्तवराजेन नित्यं वाणः सुसंयतः । प्रणमेत्शङ्करंभक्त्यादुर्वासाश्चमुनीश्वरः ॥
इदं दत्तं वशिष्ठेन गन्धर्वाय पुरा मुने । कथितञ्च महास्तोत्रं शूलिनः परमाद्भुतम् ॥
इदं स्तोत्रं महापुण्यं पठेद्भक्त्या च यो नरः । स्नानस्यसर्वतीर्थानां फलमाप्नोतिनिश्चितम् ।
अपुत्रो लभते पुत्रं वर्षमेकं शृणोति यः ॥ ६६ ॥
संयतश्च हविष्याशी प्रणम्य शङ्करं गुरुम् ।
गलत्कुष्ठी महाशूली वर्षमेकं शृणोति यः । अवश्यंमुच्यतेरोगात्व्यासवाक्यमितिश्रुतम् ।
कारागारेऽपिबद्धोयोनैवप्राप्नोतिनिर्वृतिम् । स्तोत्रंश्रुत्वामासमेकंमुच्यतेवन्धनाद्ध्रुवम् ।
भ्रष्टराज्यो लभेद्राज्यं भक्त्या मासं शृणोतियः । मासंश्रुत्वासंयतश्चलभेद्भ्रष्टधनोधनम् ।
यक्ष्मग्रस्तो वर्षमेकमास्तिको यः शृणोतिचेत् । निश्चितंमुच्यतेरोगात्शङ्करस्यप्रसादतः ।
यःशृणोति सदाभक्त्यास्तवराजमिमं द्विज । तस्यासाध्यंत्रिभुवनेनास्तिकिञ्चिचशौनक ।
कदाचिद्वन्धुविच्छेदो न भवेत्तस्य भारते । अचलं परमैश्वर्य्यं लभते नात्र संशयः ॥
सुसंयतोऽतिभक्त्या च मासमेकंशृणोतियः । अभार्य्योलभतेभार्य्यां सुविनीतांसतींवराम् ।
महामूर्खश्च दुर्मेधो मासमेकं शृणोति यः । बुद्धिं विद्याञ्च लभते गुरूपदेशमात्रतः ।७७।
कर्मदुःखी दरिद्रश्च मासं भक्त्या शृणोति यः । ध्रुवं वित्तं भवेत्तस्य शङ्करस्य प्रसादतः ।
इह लोके सुखं भुङ्क्त्वा कृत्वा कीर्त्तिंसुदुर्लभाम् । नानाप्रकारधर्मंश्चयात्यन्तेशङ्करालयम् ।
पार्षदप्रवरो भूत्वा सेवते तत्र शङ्करम् । यः शृणोति त्रिसन्ध्यञ्चनित्यंस्तोत्रमनुत्तमम् ।

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे ब्रह्मखण्डे सौति-शौनक-संवादे स्तवराजोऽय-
मूनविंशोऽध्यायः ।

विंशोऽध्यायः ।

उपवर्हणजन्मकथनम् ।

सौतिरुवाच ।

मुदा मालावतीसार्द्धं गन्धर्वश्चोपवर्हणः । रैमेकालावशेषञ्च ताभिश्च निर्जने वने ॥ १ ॥
गन्धर्वराजो मुमुदे पुत्रदारादिभिः सह । नानाविधं कृत्यवरं महत् पुण्यं चकार ह । २ ।
राजत्वं वुभुजे राजा कुवेरभवनोपमे । रैमे सुशीलया सार्द्धं स्थिरयौवनयुक्तया ॥ ३ ॥
गन्धर्वराजः काले च गङ्गातीरे मनोहरे । पत्न्या सार्द्धमसूंस्त्यक्त्वा वैकुण्ठञ्च ययौमुदा ।
शैवः शिवप्रसादेन पुत्रस्य विष्णुसेवया । वभूव दासो वैकुण्ठे विष्णोःश्यामचतुर्भुजः ॥
कृत्वा पित्रोश्च सत्कारं गन्धर्वश्चोपवर्हणः । ब्राह्मणेभ्यो ददौ विप्रधनानिविविधानि च ।
काले स्वयं ब्रह्मशापात् प्राणांस्त्यक्त्वा विचक्षणः । स यज्ञे वृषलीगर्भेब्रह्मवीजेन शौनक ।
मालावती वह्निकुण्डे पुष्करे भारते भुवि । कृत्वातुवाञ्छितंकामंप्राणांस्तत्याजसा सती।
सृञ्जयस्य तु पत्न्याश्च मनुवंशोद्भवस्य च । जज्ञे नृपस्य साध्वीसापुण्याज्जातिस्मरावरा।
उपवर्हणगन्धर्वः पतिर्मे भवितेति च । इतिकामा कामुकी सा सुन्दरी सुन्दरीवरा ॥

शौनक उवाच ।

ब्रह्मवीर्य्यात् शूद्रपत्न्यां गन्धर्वश्चोपवर्हणः ।जातः केन प्रकाण तद्भवान् वक्तुमर्हति ।११।

सौतिरुवाच ।

कान्यकुब्जे च देशे च द्रुमिलो नाम राजकः । कलावती तस्यपत्नी बन्ध्याचापिपतिव्रता ।
स्वामिदोषेण सा वन्ध्या काले च भर्त्तुराज्ञया । उपतस्थेवनेघोरे नारदं काश्यपं मुनिम् ।
ध्यायमानञ्च श्रीकृष्णं ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा । तस्थौ सुवेशं कृत्वासाध्यानान्तञ्च मुनेःपुरः ।
ग्रीष्मप्रध्याह्नमार्त्तण्डप्रभातुल्येन तेजसा । तपन्तं दूरतोऽप्येवं समीपं गन्तुमक्षमा ॥
ध्यानान्ते च मुनिश्रेष्ठः परः कृष्णपरायणः । ददर्श पुरतो दूरे सुन्दरीं स्थिरयौवनाम् ॥
चारुचम्पकवर्णाभां शरत्पङ्कजलोचनाम् । सारत्पार्वणचन्द्रास्यां रत्नभूषणभूषिताम् ॥

बृहन्नितम्बभारार्त्तां पीनश्रोणिपयोधराम् । शोभितांपीतवस्त्रेणसस्मितां रक्तलोचनाम् ।
मोहितां मुनिरूपेण कामबाणप्रपीड़िताम् । दर्शयन्तीं स्तनश्रोणीं मैथुनासक्तचेतसा ॥
सिन्दूरबिन्दुभूषाढ्यांसुचारुकज्वलोज्ज्वलाम् । पदालक्तकशोभाढ्यांरूपेणैवयथोर्वशीम् ।
मुनिः पप्रच्छ दृष्ट्वा तां का त्वं कामिनि निर्जने । कस्य पत्नी कथंवात्रसत्यंब्रूहिचपुंश्चलि ।
मुनेश्च वचनं श्रुत्वा कम्पिता च कलावती । उवाच विनयेनैव कृत्वा च श्रीहरिं हृदि ॥

कलावत्युवाच ।

गोपिकाहं द्विजश्रेष्ठ द्रुमिलस्य च कामिनी । पुत्रार्थिनी चागताहं त्वन्मूलं भर्त्तुराज्ञया ।
वीर्य्याधानं कुरु मयि स्त्री नोपेक्ष्या ह्युपस्थिता । तेजीयसां न दोषाय वह्नेःसर्वभुजोयथा ।
वृषलीवचनं श्रुत्वा चुकोप मुनिसत्तमः । उवाच नीतं सत्यञ्च कोपप्रस्फुरिताधरः ॥

काश्यप उवाच ।

यः स्वलक्ष्मीञ्च भोगार्हां पराय दातुमिच्छति । तं सा त्यजति मूढञ्चवेदवादइतिध्रुवम् ।
न त्वं द्रुमिलभोगार्हा पुनरेव भविष्यसि । विरक्तेन स्वयं त्यक्ता न गृह्णाति च त्वां पुनः ।
यः शूद्रपत्नीं गृह्णाति ब्राह्मणो ज्ञानदुर्बलः । स चण्डालो भवेत् सत्यंनकर्मार्हो द्विजातिषु ।
पितृश्राद्धे च यज्ञे च शिलास्पर्शे सुरार्चने । नाधिकारश्च तस्यैवमित्याह कमलोद्भवः ॥२६॥

कुम्भीपाकं स्वयं याति पातयित्वा च पूरुषान् ।
मातामहान् स्वात्मनश्च दश पूर्वान् दशापरान् ॥ ३० ॥

तत्तर्पणं मूत्रमेव पिण्डं सद्यः पुरीषकम् । शालग्रामस्य तत्स्पर्शे चोपवासः त्रिरात्रकम् ॥
तदिष्टदेवो गृह्णाति न नैवेद्यं न तज्जलम् । सन्न्यासिनां ब्राह्मणानां तदन्नञ्च पुरीषवत् ॥
कुम्भीपाके पच्यते स शक्रान्तं यावदेव हि । एकविंशतिपुरुषैः सार्द्धं सत्यञ्च पुंश्चलि ॥

पत्रोच्छिष्टञ्च यो भुङ्क्ते शूद्राणां ब्राह्मणाधमः ।
तत्तुल्योऽधरभोजी चैवेत्याङ्गिरसभाषितम् ॥ ३४ ॥

शूद्रो वा यदि गृह्णाति ब्राह्मणींज्ञानदुर्बलः । स पच्यते कालसूत्रे यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥
अष्टादशेन्द्रावच्छिन्नं कालञ्च कालसूत्रके । ब्राह्मणी पच्यते तत्र भक्षिता क्रिमिभिः ध्रुवम् ॥
ततश्चण्डालयोनौ च लब्ध्वा जन्म च ब्राह्मणी । शूद्रश्च कुष्ठी भवति ज्ञातिभिः परिवर्जितः ॥

इत्युक्त्वा च मुनिश्रेष्ठो विरराम च शौनक। वृषली तत् पुरस्तस्थौ शुष्ककण्ठोष्ठतालुका॥
एतस्मिन्नन्तरे तेन पथा याति च मेनका। तस्या उरुं स्तनं दृष्ट्वा मुनेर्वीर्य्यं पपात ह॥
ऋतुस्नाता च वृषली पीत्वा तत्र क्षणं मुदा। मुनिं प्रणम्य प्रहृष्टा प्रययौ भर्त्तुरन्तिकम्॥
गत्वा प्रणम्य द्रुमिलं कान्ता कान्तं मनोहरम्। सर्वं निवेदयामास वृत्तान्तं गर्भहेतुकम्।
कलावतीवचः श्रुत्वा प्रहृष्टवदनेक्षणः। उवाच कान्तां मधुरं परिणामसुखावहम् ॥४२॥

द्रुमिल उवाच।

विप्रस्य वीर्य्यं तद्गर्भे वैष्णवस्य महात्मनः। वैष्णवो भविता बालः त्वञ्च भाग्यवती सती॥

यद्गर्भे वैष्णवो जातो यस्य वीर्य्येण वा सति!।
तयोर्याति च वैकुण्ठं पुरुषाणां शतं शतम्॥

तौ च विष्णुविमानेन सद्रत्ननिर्मितेन च। यातौ वैकुण्ठनगरं जन्ममृत्युजराहरम् ॥४५॥
कस्यचित् ब्राह्मणस्यैव गेहं गच्छ शुभानने। पश्चान्ममान्तिकं भद्रे यास्यसीति हरेः पुरम्॥

इत्युक्त्वा गोपराजश्च स्नात्वा कृत्वा तु तर्पणम्।
संपूज्याभीष्टदेवञ्च ब्राह्मणेभ्यो धनं ददौ ॥ ४७ ॥

अश्वानाञ्च चतुर्लक्षं गजानां लक्षमेव च। शतं मत्तगजेन्द्राणां ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा ॥४८॥
उच्चैःश्रवःपञ्चलक्षं रथानाञ्च सहस्रकम्। शकटानां त्रिलक्षञ्च ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा॥
गवां द्वादशलक्षञ्च महिषाणां त्रिलक्षकम्। त्रिलक्षं राजहंसानां ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा॥
पारावतानां लक्षञ्च शुकानाञ्च शतं मुने। लक्षञ्च दासदासीनां ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा।
ग्रामाणाञ्च सहस्रञ्च नगराणां शतं शतम्। धान्यतण्डुलशैलञ्च ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा॥
शतकोटिं सुवर्णानां रत्नानाञ्च सहस्रकम्। मुद्राणां कोटिकलसं ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा॥
ददौ तैजसपत्राणां भूषणानामसंख्यकम्। तां स्त्रियं रत्नभूषाढ्यां ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा॥

राज्यं दत्त्वा महाराजोऽप्यन्तर्वाह्ये हरिं स्मरन्।
जगाम बदरीं गोपो मनोगामी मुदान्वितः ॥ ५५ ॥

तत्र मासं तपः कृत्वा गङ्गातीरे मनोहरे। प्राणांस्तत्याज योगेन सद्यो दृष्टो महर्षिभिः॥
स च विष्णुविमानेन रत्नेन्द्रनिर्मितेन च। संयुक्तो विष्णुदूतैश्च वैकुण्ठञ्च जगाम ह ॥५७॥

तत्र प्राय हरेर्दास्यं हरिदासो बभूव सः । वृत्तान्तञ्च कलावत्याः श्रूयतामिति शौनक ॥
गते कलावती नाथे उच्चैश्च प्ररुरोद ह । वह्नौ प्राणांस्त्यक्तुकामा ब्राह्मणेनैव रक्षिता ॥
ब्राह्मणोमातरित्युक्त्वा तां गृहीत्वा मुदान्वितः । जगाम रत्नपूर्णञ्च स्वगेहञ्च क्षणेन च ॥
सा विप्रगेहे साध्वी च सुषाव तनयं वरम् । तप्तकाञ्चनवर्णाभं ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा ॥६१॥
तत्रस्था योषितः सर्वा ददृशुर्बालकं शुभम् । ग्रीष्ममध्याह्नमार्त्तण्डजितं तं ब्रह्मतेजसा ॥
कामदेवाधिकं रूपे चन्द्राधिकशुभाननम् । शरत्पार्वणचन्द्रास्यं शरत्पङ्कजलोचनम् ॥६३
हस्तापादादिललितं सुकपोलं मनोहरम् । पद्मचक्राङ्कितं पादपद्मं वाऽतुलमुज्ज्वलम् ॥
करयुग्मं वाऽतुलञ्च रुदन्तञ्च स्तनार्थिनम् । योषितो बालकं दृष्ट्वा प्रययुः स्वाश्रमं मुदा ।
पुत्रदारयुतो विप्रः प्रहृष्टश्च ननर्त्त ह । स वालो ववृधे तत्र शुक्लपक्षे यथा शशी ॥६६॥
पुपोष ब्राह्मणन्ताञ्च सपुत्राञ्च यथा सुताम् ॥ ६७ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे ब्रह्मखण्डे सौतिशौनकसंवादे उपवर्हणजन्मकथनं नाम विंशोऽध्यायः ।

एकविंशोऽध्यायः

उपवर्हणजन्मान्तरकथनम् ।

सौतिरुवाच ।

बभूव काले बालश्च क्रमेण पञ्चहायनः । जातिस्मरो ज्ञानयुक्तः पूर्वमन्त्रः स्मृतः सदा ॥१
गीयते सततं कृष्णयशोनामगुणादिकम् । क्षणं रोदिति नृत्येन पुलकाञ्चितविग्रहः ॥२॥
कृष्णसम्बन्धिनीं गाथां शृणोति यत्र तत्र वै ।
तत्सम्बन्धि पुराणञ्च तत्र तिष्ठति बालकः ॥ ३ ॥
धूलिधूसरसर्वाङ्गो धूलिनैवेद्यमीप्सितम् । धूलिषु प्रतिमां कृत्वा धूलिना पूजयेद्धरिम् ॥४॥

पुत्रमाह्वयते माता प्रातराशाय चेन्मुने । हरिं संपूजयामीति मातरं संवदेत् पुनः ॥ ५ ॥

शौनक उवाच ।

किन्नाम बालकस्यास्य जन्मन्यत्र बभूव ह ।
व्युत्पत्त्या संज्ञया वापि तद्भवान् वक्तुमर्हति ॥ ६ ॥

सौतिरुवाच ।

अनावृष्ट्यवशेषे च काले बालो बभूव ह । नारं ददौ जन्मकाले तेनायं नारदाभिधः ॥७॥
ददाति नारं ज्ञानञ्च बालकेभ्यश्च बालकः । जातिस्मरो महाज्ञानी तेनायं नारदाभिधः ॥
वीर्येण नारदस्यैव बभूव बालको मुने । मुनीन्द्रस्यवरेणैव तेनायं नारदाभिधः ॥९॥

शौनक उवाच ।

शिशुनाम च विज्ञातं व्युत्पत्त्या च यथोचितम् ।
मुनीन्द्रस्य कथं नाम नारदश्चेति मङ्गलम् ॥ १० ॥

सौतिरुवाच ।

अपुत्रकाय विप्राय धर्मपुत्रो नरो मुनिः । ददौ पुत्रं कश्यपाय तेनायं नारदाभिधः ॥११॥

शौनक उवाच ।

अधुना नामव्युत्पत्तिः श्रुता सौते शिशोरपि । शूद्रयोनौ ब्रह्मपुत्रे कथं स नारदाभिधः ॥

सौतिरुवाच ।

कल्पान्तरे ब्रह्मकण्ठात् बभूवुर्बहवो नराः । नरान् ददौ तत्कण्ठश्च तेन तन्नरदं स्मृतम् ॥
ततो बभूव बालश्च नरदात् कण्ठदेशतः । अतो ब्रह्मा नाम चक्रे नारदश्चेति मङ्गलम् ॥
साम्प्रतं शिशुवृत्तान्तं सावधानं निशामय । उपालम्भरहस्येन विशिष्टं किं प्रयोजनम् ।
ववृधे गोपिकाबालो विप्रगेहे दिने दिने । सपुत्रां पालितां चक्रे ब्राह्मणः स्वसुतां यथा ।
एतस्मिन्नन्तरे विप्रा आययुर्विप्रमन्दिरम् । शिशवः पञ्चवर्षीया महातेजस्विनो यथा ॥
प्रच्छन्नं हृतवन्तश्च ग्रीष्ममध्याह्नभास्करम् । मधुपर्कादिकं दत्त्वा तान्ननाम गृही द्विज ॥
फलमूलादिकं काले चत्वारो मुनिपुङ्गवाः । विप्रदत्तं बुभुजिरे तच्छेषं बुभुजे शिशुः ॥
चतुर्थको मुनिस्तस्मै कृष्णमन्त्रं ददौ मुदा । तेषां दासः स बभूव द्विजस्य मातुराज्ञया ॥

एकदाशिशुमाता च गच्छन्तीनिशि वर्त्मनि । ममार सर्पदष्टा च तत्क्षणं स्मरतीहरिम् ॥
सद्यो जगाम वैकुण्ठं विष्णुयानेन सा सती । विष्णुपार्षदसंयुक्ता सद्रत्ननिर्मितेन च ॥
प्रातर्बालो द्विजैःसार्द्धं प्रययौ विप्रमन्दिरात् । तत्त्वज्ञानं ददुस्तस्मैब्राह्मणाश्च कृपालवः ॥
ब्रह्मपुत्राःशिशुंत्यक्त्वा स्वस्थानं प्रययुः किल । महाज्ञानी शिशुस्तस्थौगङ्गातीरे मनोहरे ॥
तत्र स्नात्वा विप्रदत्तं विष्णुमन्त्रं जजाप सः । क्षुत्पिपासारोगशोकहरं वेदेषुदुर्लभम् ॥
महारण्ये च घोरे च अश्वत्थमूलसन्निधौ । कृत्वायोगासनं तस्थौ सुचिरं तत्रबालकः ॥

शौनक उवाच ।

कं मन्त्रं बालकः प्राप कुमारेण च धीमता । दत्तं परं श्रीहरेश्च तद्भवान् वक्तुमर्हति ॥

सौति उवाच ।

कृष्णेन दत्तो गोलोके कृपया ब्रह्मणे पुरा । द्वाविंशत्यक्षरो मन्त्रो वेदेषु च सुदुर्लभः ॥
तश्चब्रह्मा ददौभक्त्या कुमाराय च धीमते । कुमारेण स दत्तश्च मन्त्रश्च शिशवे द्विज ॥
ओं श्री नमोभगवतेरासमण्डलेश्वराय । श्रीकृष्णाय स्वाहेति च मन्त्रोऽयंकल्पपादपः ॥
महापुरुषस्तोत्रञ्च पूर्वोक्तं कवचञ्चयत् । अस्यौपयोगिकं ध्यानं सामवेदोक्तमेव च ।३१।
तेजोमण्डलरूपे च सूर्य्यकोटिसमप्रभे । योगिभिर्वाञ्छितं ध्यानेयोगैःसिद्धगणैःसुरैः ॥
ध्यायन्ते वैष्णवारूपं तदभ्यन्तरसन्निधौ । अतीवकमनीया निर्वचनीयं मनोहरम् ॥
नवीनजलदश्यामं शरत्पङ्कजलोचनम् । शरत्-पार्वणचन्द्रास्यं पक्वबिम्बाधिकाधरम् ॥

मुक्तापङ्क्तिविनिन्दैकदन्तपङ्क्तिमनोहरम् ।
सस्मितं मुरलीन्यस्तहस्तावलम्बनेन च ॥ ३५ ॥

कोटि-कन्दर्पलावण्यं लीलाधाम मनोहरम् । चन्द्रलक्षप्रभाजुष्टं पुष्टश्रीयुक्तविग्रहम् ॥
त्रिभङ्गभङ्गिमायुक्तं द्विभुजं पीतवाससम् । रत्नकेयूरवलयरत्ननूपुरभूषितम् ॥ ३७ ॥
रत्नकुण्डलयुग्मेन गण्डस्थलविराजितम् । मयूरपुच्छचूडञ्च रत्नमालाविभूषितम् ॥३८॥
शोभितं जानुपर्य्यन्तं मालतीवनमालया । चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं भक्तानुग्रहकारकम् ॥ ३९॥
मणिनाकौस्तुभेन्द्रेणवक्षस्थलसमुज्ज्वलम् । वीक्षितं गोपिकाभिश्चशश्वद्बङ्किमलोचनैः ॥
स्थिरयौवनयुक्ताभिर्वेष्टिताभिश्च सन्ततम् । भूषणैर्भूषिताभिश्च राधावक्षःस्थलस्थितम् ॥

ब्रह्मविष्णुशिवाद्यैश्च पूजितं वन्दितं स्तुतम् ।
किशोरं राधिकाकान्तं शान्तरूपं परात्परम् ॥ ४२ ॥
निर्लिप्तं साक्षिरूपञ्च निर्गुणं प्रकृतेः परम् ।
ध्यायेत्सर्वेश्वरं तञ्च परमात्मानमीश्वरम् ॥ ४३ ॥

इदं ते कथितं ध्यानं स्तोत्रञ्च कवचं मुने । मन्त्रौपयोगिकं सत्यं मन्त्रञ्च कल्पपादपः ॥
साम्प्रतंबालकस्तत्थौध्यानस्थस्तत्रशौनक ! । दिव्यं वर्षसहस्रञ्च निराहारः कृशोदरः ॥
शक्तिमान् परिपुष्टश्च सिद्धमन्त्रप्रभावतः । ददर्शबालको ध्याने दिव्यंलोकञ्च बालकम् ॥
रत्नसिंहासनस्थञ्च रत्नभूषणभूषितम् । किशोरवयसं श्यामं गोपवेशञ्च सस्मितम् ॥
गोपैर्गोपाङ्गनाभिश्च वेष्टितं पीतवाससम् । द्विभुजं मुरलीहस्तं चन्दनेन विचर्चितम् ॥
ब्रह्मविष्णुशिवाद्यैश्च स्तूयमानं परात्परम् । दृष्ट्वा च सुचिरंशान्तंशान्तश्चगोपिकासुतः ॥
विरराम च शोकार्त्तो यदातद्द्रष्टुमक्षमः । रुरोदाश्वत्थमूले च न दृष्ट्वा बालकं शिशुः ॥
बभूवाकाशवाणीति रुदन्तं बालकं प्रति । सत्यं प्रबोधयुक्तञ्च हितमेव मिताक्षरम् ॥
सकृद् यद् दर्शितंरूपं तदेव नाधुना पुनः । अविपक्वकषायाणां दुर्दर्शञ्च कुयोगिनाम् ॥
एतस्मिन् विग्रहेऽतीते संप्राप्ते दिव्यविग्रहे । पुनर्द्रक्ष्यसिगोविन्दं जन्ममृत्युजराहरम् ॥
इतिश्रुत्वा बालकश्च विरराम मुदान्वितः । कालेतत्याज तीर्थेच तनुंकृष्णंहृदिस्मरन् ॥
नेदुर्दुन्दुभयः स्वर्गे पुष्पवृष्टिर्बभूवह । बभूव शापमुक्तश्च नारदश्च महामुनिः ॥ ५५ ॥
तनुंत्यक्त्वा स जीवश्च विलीनोब्रह्मविग्रहे । बभूव प्राक्तनान्नित्यः कालभेदे तिरोहितः ॥

आविर्भावस्तिरोभावः स्वेच्छया नित्यदेहिनाम् ।
जन्ममृत्युजराव्याधिर्भक्तानां नास्ति शौनक ! ॥ ५७ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे ब्रह्मखण्डे सौति-शौनक-संवादे नारदशापविमोचनं नाम एकविंशोऽध्यायः ।

द्वाविंशतितमोऽध्यायः ।

ब्रह्मपुत्रव्युत्पत्तिकथनम् ।

सौति उवाच ।

कतिकल्पान्तरेऽतीतेस्रष्टुःसृष्टिविधौपुनः । मरीचिमिश्रैर्मुनिभिःसार्द्धं कण्ठात् बभूवसः ॥
विधेर्नरदनाम्नश्च कण्ठदेशात् बभूव सः । नारदश्चेति विख्यातो मुनीन्द्रस्तेन हेतुना ॥
यः. पुत्रश्चेतसोधातुर्बभूव मुनिपुङ्गवः । तेन प्रचेता इति च नामचक्रे पितामहः ॥ ३ ॥
बभूव धातुर्यः पुत्रः सहसा दक्षपार्श्वतः । सर्वकर्मणि दक्षश्च तेनदक्षः प्रकीर्त्तितः ॥
वेदेषु कर्दमः शब्दश्छायायां वर्त्तते स्फुटः । बभूव कर्दमात् बालःकर्दमस्तेनकीर्त्तितः ॥
तेजोभेदे मरीचिश्चवेदेषु वर्त्ततेस्फुटम् । जातः सद्योऽतितेजस्वीमरीचिस्तेनकीर्त्तितः ॥
क्रतुसंघश्च बालेन कृतो जन्मान्तरेऽधुना । ब्रह्मपुत्रेऽपि तन्नाम क्रतुरित्यभिधीयते ॥
प्रधानाङ्गं मुखं धातुस्ततो जातश्चबालकः । इरस्तेजस्विवचनोऽप्यङ्गिरास्तेनकीर्त्तितः ॥

अतितेजस्विनि भृगुर्वर्त्तते नाम्नि शौनक ! ।
जातः सद्योऽतितेजस्वी भृगुस्तेन प्रकीर्त्तितः ॥ ६ ॥

बालोऽप्यरुणवर्णश्चजातःसद्योऽतितेजसा । प्रज्वलन्नूर्द्ध्वतपसाचारुणिस्तेनकीर्त्तितः ॥
हंसा आत्मवशायस्य योगेन योगिनीध्रुवम् । बालःपरमयोगीन्द्रस्तेनहंसी प्रकीर्त्तितः ॥
वशीभूतश्चशिष्यश्च जातःसद्यो हि बालकः । अतिप्रियश्चधातुश्च वशिष्ठस्तेन कीर्त्तितः ॥
सन्ततं यस्य यत्नश्च तपःसु बालकस्य च । प्रकीर्त्तितो यतिस्तेन संयतः सर्वकर्मसु ॥
पुलस्तपःसु वेदेषु वर्त्तते हः स्फुटेऽपि च । स्फुटस्तपः समूहश्च पुलहस्तेन बालकः ॥
पुलस्तपः समूहश्च यस्यास्ति पूर्वजन्मनाम् । तपःसंघस्वरूपश्च पुलस्त्यस्तेन बालकः ॥
त्रिगुणायांप्रकृत्यां त्रिर्विष्णावश्चप्रवर्तते । तयोर्भक्तिःसमायस्यतेनबालोऽत्रिरुच्यते ॥
जटावह्निशिखारूपाः पञ्चसन्ति च मस्तके । तपस्तेजोभवायस्य सच पञ्चशिखःस्मृतः ॥
अपान्तरतमे देशे तपस्तेपेऽन्यजन्मनि । अपान्तरतमा नाम शिशोस्तेन प्रकीर्त्तितम् ॥

स्वयं तपः समाप्नोति वाहयेत् प्रापयेत्परान् ।
ऊर्द्धुं समर्थस्तपसि वोढुस्तेन प्रकीर्त्तितः ॥ १८ ॥

तपसस्तेजसा बालो दीप्तिमान् सततं मुने । तपःसु रोचते चित्तं रुचिस्तेन प्रकीर्त्तितः ॥
कोपकाले बभूवुर्ये स्रष्टुरेकादश स्मृताः । रोदनादेव रुद्राश्च कोपितास्तेन हेतुना ॥

शौनक उवाच ।

रुद्रेष्वेकतमो बालो महेशइति मे भ्रमः । भवान् पुराणतत्त्वज्ञः सन्देहंछेत्तुमर्हति ॥२१॥

सौतिरुवाच ।

विष्णुः सत्वगुणः पाता ब्रह्मास्रष्टारजोगुणः । तमोगुणास्ते रुद्राश्च दुर्निवाराःभयङ्कराः ॥
कालाग्निरुद्रः संहर्त्ता तेष्वेकः शङ्करांशकः । शुद्धसत्वस्वरूपश्च शिवश्च शिवदः सताम् ॥
अन्ये कृष्णस्य च कलास्तावंशौ विष्णुशङ्करौ । समौसत्वस्वरूपौद्वौपरिपूर्णतमस्य च ॥
उक्तंरुद्रोद्भवेकाले कथं विस्मरसि द्विज । मायया मोहिता सर्वे मुनीनाञ्च मतिभ्रमः ॥
सनकश्च सनन्दश्च तृतीयश्च सनातनः । सनत्कुमारो भगवांश्चतुर्थो ब्रह्मणः सुतः ॥२६॥
ब्रह्मास्रष्टुं पूर्वपुत्रानुवाच ते न सेहिरे । तेनप्रकोपितोधाता रुद्राः कोपोद्भवा मुने ॥
सनकश्चसनन्दश्च तौ द्वावानन्दवाचकौ । आनन्दितौचवालौ द्वौ भक्तिपूर्णतमौसदा ॥
सनातनश्चश्रीकृष्णो नित्यः पूर्णतमःस्वयम् । तद्भक्तस्तत्समःसत्यंतेन वालःसनातनः ॥
सनत्तु नित्यवचनः कुमारः शिशुवाचकः । सनत्कुमारं तेनेममुवाच कमलोद्भवः ॥ ३० ॥

ब्रह्मणो वालकानाञ्च व्युत्पत्तिः कथिता मुने ।
साम्प्रतं नारदाख्यानं श्रूयताञ्च यथाक्रमम् ॥ ३१ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे ब्रह्मखण्डे सौतिशौनकसंवादे ब्रह्मपुत्रव्युत्पत्तिकथनं नाम द्वाविंशतितमोऽध्यायः ।

अथोविंशतितमोऽध्यायः ।

ब्रह्मनारदसंवादवर्णनम् ।

सौतिरुवाच ।

स्रष्टा सृष्टिविधानेन नियोज्य सर्वबालकान् । नारदं प्रेरयामास सृष्टिं कर्त्तुञ्च शौनक ॥
हितं सत्यं वेदसारं परिणामसुखावहम् । उवाच नारदं ब्रह्मा वेदवेदाङ्गपारगम् ॥ २ ॥

ब्रह्मोवाच ।

एहि वत्स कुलश्रेष्ठ नारद प्राणवल्लभ । ज्ञानदीपशिखाज्ञानतिमिरक्षयकारक ॥ ३ ॥
सर्वेषामपि वन्द्यानां जनकः परमो गुरुः । विद्यादाता मन्त्रदाता द्वौ समौ च पितुःपरौ
तवाहं जनकः पुत्रः विद्यादाता च पालकः । ममाज्ञया च मत्प्रीत्या कुरु दारपरिग्रहम् ॥

स च शिष्यः सोऽपि पुत्रो यश्चाज्ञां पालयेद्गुरोः ।
न क्षेमं तस्य मूढ़स्य यो गुरोरवचस्करः ॥ ६ ॥
स पण्डितः स च ज्ञानी स क्षेमी स च पुण्यवान् ।
गुरोर्वचस्करो यो हि क्षेमं तस्य पदे पदे ॥ ७ ॥

सर्वेषामाश्रमाणाञ्च प्रधानः पुण्यवान् गृही । स्त्रीपुत्रपौत्रयुक्तश्च मन्दिरं तपसः फलम्
पितरः पूर्वकाले च तिथिकाले च देवताः । सर्वे गृहस्थमायान्ति निपानमिव धेनवः ॥
नित्यं नैमित्तिकं काम्यं कुर्वन्ति गृहिणः सदा । इह एतत् सुखं पुण्यं स्वर्गभोगःपरत्रच
जीवन्मुक्तो गृहस्थश्च स्वधर्मपरिपालकः । यशस्वी पुण्यवांश्चैवकीर्त्तिमान्धनवान्सुखी

यशस्वी कीर्त्तिमान् यो हि मृतो जीवति सन्ततम् ।
यशः कीर्त्तिविहीनो हि जीवन्नपि मृतो हि सः ॥ १२ ॥

ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा नारदो मुनिसत्तमः । उवाच विनयं भीतः शुष्ककण्ठौष्ठतालुकः ॥

नारद उवाच ।

एकदा वाग्विरोधेन चोभयोस्तातपुत्रयोः । हानिर्बभूव दैवेन महती वायशस्करी ॥१४॥
मया प्राप्तश्च त्वत्शापात्गन्धर्वांशौद्भमेव च । जन्मकर्म च मत्शापात्त्वमपूज्योभवेभव

बभूव शापो मुक्तो मे काले ते भविता विधे। दोषाय कल्पते शश्वद्विरोधो न गुणाय च
स पिता स गुरोर्बन्धुः स पुत्रः स मदीश्वरः। यः श्रीकृष्णपादपद्मे दृढां भक्तिञ्च कारयेत्
असद्वर्त्मनि चाज्ञानाद् गच्छन्ति यदि बालकाः। निवर्त्तयति तानेव स पिता करुणानिधिः

कारयित्वा कृष्णपादे भक्तित्यागञ्च यः पिता।
अन्यस्मिन् विषये पुत्रं स किं हन्त प्रवर्त्तयेत्॥ १६॥

दारग्रहो हि दुःखाय केवलं न सुखाय च। तपःस्वर्गभक्तिमुक्तिकर्मणां व्यवधायकः॥

योषितस्त्रिविधा ब्रह्मन् गृहिणां मूढचेतसाम्।
साध्वी भोग्या च कुलटास्ताः सर्वाः स्वार्थतत्पराः॥ २१॥

परलोकभिया साध्वी तथेहयशसात्मनः। कामस्नेहाच्च कुरुते भर्त्तुः सेवाञ्च सन्ततम्॥
भोग्याभोगार्थिनीशश्वत् कामस्नेहेनकेवलम्। कुरुते कान्तसेवाञ्च नच भोगाद्धृतेक्षणम्
वस्त्रालङ्कारसम्भोगं सुस्निग्धाहारमुत्तमम्। यावत्प्राप्नोति सा भोग्या तावच्चवशगाप्रिया
कुलाङ्गारसमानारी कुलटा कुलनाशिनी। कपटात् कुरुते सेवां स्वामिनो न च भक्तितः
सदा पुंयोगमाशंसुर्मनसा मदनातुरा। आहारादधिकं जारं प्रार्थयन्ती नवं नवम्॥२६॥
जारार्थे स्वपतिं तातहन्तुमिच्छति पुंश्चली। तस्यां यो विश्वसेन्मूढो जीवनं तस्य निष्फलम्
कथितायोषितःसर्वाःउत्तमाधममध्यमाः। स्वात्मारामा विजानन्ति मनस्तासां न पण्डिताः
हृदयं क्षुरधाराभं शरत्पद्मोत्सवं मुखम्। सुधासमं सुमधुरं वचनं स्वार्थसिद्धये॥२६॥
प्रकोपे विषतुल्यञ्च विश्वासे सर्वनाशनम्। दुर्ज्ञेयं तदभिप्रायं निगूढं कर्म केवलम्॥
सदा तासामविनयः प्रबलं साहसं परम्। दोषोत्कर्षो छलोत्कर्षः शश्वन्मायादुरत्यया
पुंसश्चाष्टगुणः कामःशश्वत्कामोजगद्गुरो। आहारो द्विगुणो नित्यं नैष्ठुर्य्यञ्चचतुर्गुणम्
कोपः पुंसः षड्गुणश्च व्यवसायश्च निश्चितम्। यत्रेमे दोषनिवहाः कास्था तत्र पितामह
का क्रीड़ा किं सुखं पुंसो विण्मूत्रपूयवेश्मनि। तेजः प्रणष्टं सम्भोगे दिवालापे यशःक्षयः
धनक्षयोऽतिसंप्रीतौ चात्यासक्तौ वपुःक्षयः। साहित्ये पौरुषं नष्टं कलहे मान्यनाशनम्
सर्वनाशश्च विश्वासे ब्रह्मन्नारीषु किंसुखम्। यावद्धनी चतेजस्वीसश्रीकोयोग्यतापरः

पुमानन्तावन्ताम् वशीकर्त्तुं समर्थस्तावदेव हि॥ ३६॥

योगिणं तिर्द्धनं वृद्धं योषिद्वा प्रेक्षतेप्रियम् । लोकाचारभयात्तस्मैददात्याहारमल्पकम्
इत्येवं कथितं सर्वं ब्रह्मन्नात्मागमो यथा ॥ ३८ ॥
सर्वं जानासि सर्वज्ञ स्वात्मारामेश्वरो भवान् ।
अनुग्रहं कुरु विभो ! विदायं देहि साम्प्रतम् ।
कृष्णभक्तिं प्रार्थयामि त्वयि कल्पतरोः परे ॥ ३९ ॥
इत्युक्त्वा नारदस्तत्र धृत्वा तातपदाम्बुजम् । आज्ञां ययाचे पितरं गन्तुं तपसि मङ्गले ॥
पुटाञ्जलियुतो भूत्वा भक्तिनम्रात्मकन्धरः । कृत्वा प्रदक्षिणं नत्वा ब्रह्माणं गन्तुमुद्यतः
गच्छन्तं तनयं दृष्ट्वा विधाता जगतां मुने । रुरोदोच्चैर्मुक्तकण्ठं महासांसारिको यथा ॥
करे धृत्वा समालिङ्ग्य चुचुम्ब च पुनःपुनः । चिरंवक्षसि कृत्वा च वासयामासजानुनि
स्वात्मारामेश्वरो ब्रह्मा योगिन्द्राणां गुरोर्गुरुः ।
भेदं सोढुं न शशाक विच्छेदो दुःसहो नृणाम् ॥ ४४ ॥
कातरः पुत्रभेदेन मोहितो विष्णुमायया । शोकार्त्तो वक्तुमारेभे सुतं सम्बोध्य शौनक
इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे ब्रह्मखण्डे ब्रह्मनारदसंवादे त्रयोविंशतितमोऽध्यायः ।

चतुर्विंशतितमोऽध्यायः ।

नारदं प्रति दारपरिग्रहार्थं ब्राह्मण उपदेशः ।

श्रीब्रह्मोवाच ।

त्वं गच्छ तपसेवत्सकिंमेसंसारकर्मणि । अहं यास्यामि गोलोकं विज्ञातुंकृष्णमीश्वरम्
सनकश्च सनन्दश्च तृतीयश्च सनातनः । सनत्कुमारो वैरागी चतुर्थपुत्र एव च ॥ २ ॥
यती हंसी चारुणिश्च वोढुः पञ्चशिखस्तथा । पुत्रास्तपस्विनःसर्वे किं मे संसारकर्मणि
वचस्करो मरीचिर्मे अङ्गिराश्च भृगुस्तथा । रुचिरत्रिः कर्दमश्च प्रचेताश्च क्रतुर्मनुः ॥

वशिष्ठो वशगः शश्वत् सर्वेषु च सुतेषु च । अन्येविवेकिनोऽसाध्याकिंमेसंसारकर्मणि
निबोध वत्स वक्ष्यामि वेदोक्तं वचनं शुभम् । पारम्पर्य्यक्रमपरं चतुर्वर्गफलप्रदम् ॥६॥
धर्मार्थकाममोक्षांश्च सर्वे वाञ्छन्तिपण्डिताः । वेदप्रणिहितान्नेतान्सभासुचप्रशंसितान्
वेदप्रणिहितो धर्मो ह्यधर्मस्तद्विपर्य्ययः ॥ ७ ॥
आदौ विप्रो यज्ञसूत्रं परिधाय सुखं सुखे । समधीत्य ततो वेदान् ददाति गुरुदक्षिणाम्
ततः प्रहृष्टकुलजां सुविनीतां समुद्वहेत् ॥ ६ ॥
सा साध्वी कुलजाया च पतिसेवासु तत्परा ।
सद्वंशे दुर्विनीता च प्रभवेन्न कदाचन । आकरे पद्मरागाणां जन्म काचमणेः कुतः ॥
असद्वंशप्रसूता या पित्रोर्दोषेण नारद । दुर्विनीता च सा दुष्टा स्वतन्त्रा सर्वकर्मसु ॥
न वत्स दुष्टाः सर्वाश्च योषितः कमलाकलाः । स(स्व)वेश्यांशाश्च कुलटा असद्वंशसमुद्भवाः
निर्गुणं स्वामिनं साध्वी सेवते च प्रशंसति । न सेवते च कुलटा प्रियंनिन्दतिसद्गुणम्
साधुः सद्वंशजां कन्यां प्रयत्नेन परिग्रहेत् । तस्यां पुत्रान् समुत्पाद्य वृद्धस्तुतपसे व्रजेत्
वरं हुतवहे वासः सर्ववक्त्रे च कण्टके । एतेभ्यो दुःखदो वासःस्त्रिया दुर्मुखया सह
त्वमधीतो मयावेदो मह्यञ्च गुरुदक्षिणाम् । पुत्र देहीदमेवेह कुरु दारपरिग्रहम् ॥ १६ ॥
वत्स ! त्वं कुलजाताञ्च पूर्वपत्नीञ्च मालतीम् । विवाहं कुरु कल्याण कल्याणेचदिनक्षणे
मनुवंशोद्भवस्येह सञ्जयस्य गृहे सती । त्वत्कृते जन्म लब्ध्वा च कुरुते भारते तपः ॥
ग्रहणं कुरुतां रत्नमालाञ्च कमलाकलाम् । भारते न भवेद् व्यर्थं जनानां तपसः फलम् ॥
आदौभवेद् गृहीलोको वानप्रस्थस्ततःपरम् । ततस्तपस्वीमोक्षाय क्रमएषः श्रुतौश्रुतः ॥
वैष्णवानां हरेरर्चा तपस्या च श्रुतौ श्रुता ॥ २१ ॥
वैष्णव त्वं गृहे तिष्ठ कुरु कृष्णपदार्चनम् । अन्तर्वाह्ये हरिर्यस्य तस्य किं तपसा सुत॥
नान्तर्वाह्येहरिर्यस्य तस्य किं तपसा वृथा । तपसा हरिराराध्यो नान्यः कश्चन विद्यते॥
यत्र तत्र कृतं कृष्णसेवनं परमं तपः । वत्स ! मद्वचनेनैव गृहे स्थित्वा हरिं भज ॥ २४
गृहीभव मुनिश्रेष्ठगृहीणां सर्वदासुखम् । कामिन्यांसुखसम्भोगःस्वर्गभोगात् सुदुर्लभः
तद्दर्शनमुपस्पर्शं वाञ्छन्त्येव मुमुक्षवः । सर्वस्पर्शसुखात् स्त्रीणां उपस्पर्शसुखं परम् ॥

ततः सुखतमंपुत्र दर्शनं स्पर्शनं मुने । सर्वेभ्यः प्रेयसी कान्ता प्रिया तेन प्रकीर्त्तिता ॥
पुत्रप्रयोजनाकान्ता शतकान्ताप्रियःसुतः । नास्तिपुत्रात्परो वन्धुर्नास्तिपुत्रात्परःप्रियः
सर्वेभ्यो जयमन्विच्छेत् पुत्रादेकात् पराजयम् ।
न चात्मनि प्रियोऽर्थश्च तस्मादपि प्रियः सुतः ॥ २९ ॥
अतः प्रियतमे पुत्रे न्यसेदात्मपरं धनम् । इत्येवमुक्त्वा स ब्रह्मा विरराम च शौनक ॥३०

नारद उवाच

उवाच वचनं तातं नारदो ज्ञानिनां वरः । स्वयं विज्ञाय सर्वार्थं स्वपुत्रं वेददर्शने ॥
प्रवर्त्तयत्यसन्मार्गे स दयालुः कथं पिता ॥ ३१ ॥
जलबुद्बुदवत् सर्वं संसारमिति नश्वरम् । जलरेखायथा मिथ्या तथा ब्रह्मन्जगत्त्रयम् ॥
विहाय हरिदास्यञ्च विषये यन्मनश्चलन् । दुर्लभं मानवं जन्म बभूव तस्य निष्फलम् ॥
का वा कस्य प्रिया पुत्रो वन्धुः को वा भवार्णवे ।
कर्मोर्मिभिर्योजना च तदपायो वियोजना ॥ ३४ ॥
सुकर्मकारयेद् योहितन्मित्रं स पिता गुरुः । विबुद्धिंकारयेद् योहिसरिपुश्च कथंपिता ।
इत्येवं कथितं तात ! वेदवीजं यथागमम् । ध्रुवं तथापि कर्त्तव्यं तवाज्ञापरिपालनम् ॥
आदौ यास्यामि भगवन्नरनारायणाश्रमम् । नारायणकथां श्रुत्वा करिष्ये दारसंग्रहम ॥
इत्येवमुक्त्वा स मुनिर्विरराम पितुः पुरः । पुष्पवृष्टिस्तदुपरि तत्क्षणेन बभूव ह ॥ ३८॥
क्षणं पितुः पुरः स्थित्वा नारदो मुनिसत्तमः । उवाच च पुनर्वेदं वचनं मङ्गलप्रदम् ॥३९

श्रीनारद उवाच ।

देहिमे कृष्णमन्त्रञ्च यन्मनोवाञ्छितं मम । तत्सम्बन्धिच यज्ज्ञानं यत्र तद्गुणवर्णनम्
ततः पश्चात् करिष्यामि त्वत्प्रीत्या दारसंग्रहम् ।
मानसे परिपूर्णे च कार्य्यं कर्त्तुं पुमान् सुखी ॥ ४१ ॥
नारदस्य वचः श्रुत्वा प्रहृष्टः कमलोद्भवः । उवाच पुनरेवेदं पुत्रं ज्ञानविदां वरः ॥ ४२॥

ब्रह्मोवाच ।

पत्युर्मन्त्रं पितुर्मन्त्रं न गृह्णीयाद् विचक्षणः । विविक्ताश्रमिणाश्चैव न पुत्र सुखदायकः ॥

निषेकाल्लभ्यतेमन्त्रो गुरुर्भर्त्ता च कामिनी । विद्या सुखंभयं दुःखं पुरुषैः स्वेच्छयानच।
महेश्वरस्तव गुरुः प्राक्तनो नः पुरातनः । गच्छ वत्सशिवं शान्त शिवदं ज्ञानिनांगुरुम्।
तत्रैव भगवन्मन्त्रं ज्ञानं लब्ध्वा पुरातनात् । नारायणकथां श्रुत्वा शीघ्रमागच्छ मद्गृहम्
इत्युक्त्वा जगतांधाता विरराम च शौनक । प्रणम्यपितरं भक्त्या शिवलोकं ययौमुनिः॥
इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे ब्रह्मखण्डे सौति-शौनकसंवादे चतुर्विंशतितमोऽध्यायः ।

पञ्चविंशतितमोऽध्यायः ।

नारदकृतशिवस्तुतिः शिवनारदसम्मिलनञ्च ।

सौतिरुवाच ।

क्षणेन विप्रवरो मुदान्वितो जगाम शम्भोः सदनं मनोहरम् ।
ऊर्द्ध्वं ध्रुवाद् योजनलक्षमीप्सितं रत्नेन निर्माणकृतञ्च शूलिना ॥ १ ॥
निराश्रये योगबलेन शम्भुना धृतं विचित्रं विविधालयान्वितम् ।
दृष्टं स्वपुण्याशयसाधकैर्वरै-र्मुनीन्द्रसारैर्ज्वलितं दिवानिशम् ॥ २ ॥
मयूखशून्यं रविचन्द्रयोर्मुने हुताशनैर्वेष्टितमेव केवलम् ।
प्राकाररूपैरतिरिक्तवर्द्धितै-रुच्चैरसंख्यप्रमितैः शिखोज्ज्वलैः ॥ ३ ॥
पुरं वरं योजनलक्षविस्तृतं त्रिकोटिरत्नेन्द्रगृहान्वितं सदा ।
विराजितं हीरकसारनिर्मितै-श्चित्रैर्विचित्रैर्विविधैर्मनोहरैः ॥ ४ ॥
माणिक्यमुक्तामणिदर्पणैर्युतं न स्वप्नदृष्टं द्विज विश्वकर्मणः ।
आकल्पमेकैः शिवसेवितैर्जनै-र्निषेवितं सन्ततमेव शौनक ॥ ५ ॥
सिद्धैर्नियुक्तं शतकोटिलक्षकैस्त्रिकोटिलक्षैश्च युतं स्वपार्षदैः ।
युक्तं त्रिलक्षैर्विकटैश्च भैरवैः क्षेत्रैश्चतुर्लक्षशतैश्च वेष्टितम् ॥ ६ ॥
सुरद्रुमैर्वेष्टितमेव सन्ततं मन्दारवृक्षप्रवरैः सुपुष्पितैः ।
विराजितं सुन्दरकामधेनुभिर्यथा बलाकाशतकैर्नभस्तलम् ॥ ७ ॥

दृष्ट्वा मुनिर्विस्मयमाप मानसे किमत्र चित्रं बुधियोगिनां गुरौ ।
लोकं त्रिलोकाच्च विलक्षणं परं भीमृत्युरोगार्त्तिजराहरं वरम् ॥ ८ ॥
दूरे सभामण्डलमध्यगं शिवं ददर्श शान्तं शिवदं मनोहरम् ।
पद्मत्रिनेत्रं विधुपञ्चवक्त्रकं गङ्गाधरं निर्मलचन्द्रशेखरम् ॥ ९ ॥
प्रतप्तहेमाभजटाधरं विभुं दिगम्बरं शुभ्रमनन्तमक्षरम् ।
मन्दाकिनीपुष्करबीजमालया कृष्णेति नामैव मुदा जपन्तम् ॥ १० ॥
सुनीलकण्ठं भुजगेन्द्रमण्डितं योगीन्द्रसिद्धेन्द्रमुनीन्द्रवन्दितम् ।
सिद्धेश्वरं सिद्धिविधानकारणं मृत्युञ्जयं कालयमान्तकारकम् ॥ ११ ॥
प्रसन्नहास्यास्यमनोहरं परं विश्वोद्गतीनां शिवदं वरप्रदम् ।
सदाशुतोषं भवरोषवर्जितं भक्तप्रियं भक्तजनैकबन्धुम् ॥ १२ ॥
गत्वा समीपं मुनिरेव शूलिनं ननाम मूर्द्धा पुलकाङ्कविग्रहम् ।
वीणां त्रितन्त्रीं क्वणयन् पुनर्जगौ कृष्णं प्रतुष्टाव कलहंसकण्ठः ॥ १३ ॥
दृष्ट्वा मुनीन्द्रप्रवरञ्च सस्मितं विधेः सुतं वेदविदां वरिष्ठम् ।
योगीन्द्रसिद्धेन्द्रमहर्षिभिः सह जवेन पीठादुदतिष्ठदीश्वरः ॥ १४ ॥
ददौ च तस्मै मुनये ससम्भ्रममालिङ्गनञ्चाशिषमासनादिकम् ।
पप्रच्छ भद्रं गमनप्रयोजनं तपोधनं तं तपसाञ्च शौनक ॥ १५ ॥
सद्रत्नसिंहासनसुन्दरेव रे चोवास शम्भुर्वरपार्षदैः सह ।
नोवास स्त्रष्टुस्तनयः पुटाञ्जलिस्तुष्टाव भक्त्या प्रणतः प्रभुं द्विज ॥ १६ ॥
गन्धर्वराजेन कृतेन नारदो वेदोक्तस्तोत्रेण शुभप्रदेन च ।
स्तुत्वा प्रणामं पुनरेव कृत्वा भवाज्ञयोवास भवस्य वामतः ॥ १७ ॥
चकार तत्रैव निवेदनं शिवे मनोऽभिलाषं भवकामपूरके ।
श्रुत्वा मुनेस्तद्वचनं कृपानिधिर्द्रुतं प्रतिज्ञां प्रचकार चोमिति ॥ १८ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे ब्रह्मखण्डे सौतिशौनकसंवादे शिवनारदसम्मिलनं नाम

पञ्चविंशतितमोऽध्यायः समाप्तः ।

षड्विंशतितमोऽध्यायः ।

शिवोक्ताह्निकाचारवर्णनम् ।

सौतिरुवाच ।

हरेस्तोत्रञ्च कवचं मन्त्रं पूजाविधिं परम् । हरं ययाचे देवर्षिर्ध्यानञ्च ज्ञानमेव च ॥
स्तोत्रञ्च कचचं मन्त्रं ध्यानंपूजाविधानकम् । तत्प्राक्तनीयंज्ञानञ्चददौतस्मै महेश्वरः ॥
सर्वं प्राप्य मुनिश्रेष्ठः परिपूर्णमनोरथः । उवाच प्रणतो भक्त्या गुरुं प्रणतवत्सलम् ॥

नारद उवाच ।

आह्निकं ब्राह्मणानाञ्च वद वेदविदां वर । स्वधर्मपालनं नित्यं यतो भवति नित्यशः ॥४॥

श्रीमहेश्वर उवाच ।

उत्थाप्य ब्राह्मये मुहूर्त्ते ब्रह्मरन्ध्रस्थपङ्कजे । सूक्ष्मे सहस्रपद्मे च निर्मले ग्लानिवर्जिते ॥५
रात्रिवासं परित्यज्यगुरुंतत्रैवचिन्तयेत् । व्याख्यामुद्राकरंप्रीतंसस्मितंशिष्यवत्सलम् ॥
प्रसन्नवदनं शान्तं परितुष्टं निरन्तरम् । साक्षाद्ब्रह्मस्वरूपञ्च शिष्याणांचिन्तयेत्सदा ॥
ध्यात्वा त्वद्गुरुमादाय हृद्पद्मे निर्मले सिते । सहस्रपत्रेविस्तीर्णेदेवमिष्टं विचिन्तयेत् ॥
यस्य देवस्य यद्ध्यानं यद्रूपं तद्विचिन्तयेत् । गृहीत्वातदनुज्ञाञ्चकर्त्तव्यं समयोचितम् ॥
आदौध्यात्वागुरुंनत्वासंपूज्य विधिपूर्वकम् । पश्चात्तदाज्ञामादाय ध्यायेद्दिष्टंप्रपूजयेत् ॥१०
गुरुप्रदर्शितो देवो मन्त्रपूजाविधिर्जपः । न देवेन गुरुर्दृष्टस्तस्मात् देवात् गुरुः परः ॥
गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः । गुरुः प्रकृतिरीशाद्या गुरुश्चन्द्रोऽनलो रविः ॥१२॥
गुरुर्वायुश्च वरुणो गुरुर्माता पिता सुहृत् । गुरुरेव परं ब्रह्मन्नास्ति पूज्यो गुरोः परः ॥
अभीष्टदेवरुष्टे च समर्थो रक्षणे गुरुः । न समर्था गुरौ रुष्टे रक्षणे सर्वदेवताः ॥१४॥
यस्य तुष्टो गुरुः शश्वज्जयस्तस्य पदे पदे । यस्य रुष्टो गुरुस्तस्यसर्वनाशश्च सर्वदा
न संपूज्य गुरुं देवं यो मूढः पूजयेद् भ्रमात् । ब्रह्महत्याशतंपापंलभतेनात्र संशयः ॥१६
सामवेदे च भगवानित्युवाच हरिः स्वयम् । तस्मात्सोऽपि देवाच्च गुरुः पूज्यतमः परः ॥

गुरुमिष्टंस्वयंध्यात्वास्तुत्वाचसाधकोमुने। वेदोक्तस्थलमासाद्यविण्मूत्रमुत्सृजेन्मुदा॥
जलं जलसमीपञ्च सरन्ध्रं प्राणिसन्निधिम्। देवालयसमीपञ्च वृक्षमूलञ्च वर्त्म च ॥१९
हलोत्कर्षस्थलञ्चैव शस्यक्षेत्रञ्च गोष्ठकम्। नदीकन्दरगर्भञ्च पुष्पोद्यानञ्चपङ्किलम् ॥२०
ग्रामाद्यभ्यन्तरञ्चैव नृणां गृहसमीपकम्। शङ्कुं सेतुं शरवनं श्मशानंवह्निसन्निधिम् ॥२१
क्रीड़ास्थलं महारण्यं मञ्चकाधःस्थलंतथा। वृक्षच्छायानुतंस्थानमन्तःप्राण्यवपर्णकम्॥
दूर्वास्थानं कुशस्थानं वल्मीकस्थानमेव च। वृक्षारोपणभूमिञ्चकार्य्यार्थञ्चपरिष्कृतम्॥
एतत् सर्वं परित्यज्य सूर्य्यतापविवर्जितम्। कृत्वा गर्त्तं पुरीषञ्च मूत्रञ्च परिवर्जयेत्॥
पुरीषमूत्रोत्सर्गञ्चदिवाकुर्य्यादुदङ्मुखः। पश्चिमाभिमुखोरात्रौसन्ध्यायांदक्षिणामुखः॥

मौनी भूत्वा च निःश्वासं यथा गन्धो न सञ्चरेत्।
त्यक्त्वा मृदा समाच्छाद्य शौचं कुर्य्याद्विचक्षणः॥ २६ ॥

कृत्वा तु लोष्ट्रशौचञ्च जलशौचं ततः परम्। मृद्युक्तं तज्जलञ्चैव तत्प्रमाणंनिशामय॥
एकां लिङ्गे मृदं दद्याद् वामहस्ते चतुष्टयम्। उभयोर्हस्तयोर्द्वेतुमूत्रशौचंप्रकीर्त्तितम्॥२८
मूत्रशौचञ्च द्विगुणं मैथुनानन्तरं यदि। मैथुनानन्तरे शौचं मूत्रशौचं चतुर्गुणम्॥ २९ ॥
एका लिङ्गे गुदे तिस्रस्तथा वामकरे दश। उभयोः सप्त दातव्याः पादः षष्ठेन शुध्यति॥
पुरीषशौचंविप्राणांगृहिणामिदमेवच। विधवानाञ्च द्विगुणं शौचमेवं प्रकीर्त्तितम् ॥३१॥
यतीनां वैष्णवानाञ्च ब्रह्मर्षेर्ब्रह्मचारिणाम्। चतुर्गुणञ्च गृहिणां तेषां शौचंप्रकीर्त्तितम्॥
नो यावदुपनीयेत द्विजः शूद्रस्तथाङ्गना। गन्धलेपक्षयकरं तेषां शौचं प्रकीर्त्तितम् ॥३३
शौचं क्षत्रविशोश्चैव द्विजानांगृहिणांसमम्। द्विगुणंवैष्णवादीनांमुनीनांपरिकीर्त्तितम्
न्यूनाधिकं न कर्त्तव्यं शौचं शुद्धिमभीप्सता। प्रायश्चित्तं प्रयुज्येत विहितातिक्रमेकृते॥
शौचं तन्नियमं मत्तः सावधानं निशामय। मृत्शौचेचशुचिर्विप्रोऽप्यशुचिश्चव्यतिक्रमे॥
वल्मीकमूषिकोत्खातां मृदमन्तर्जलां तथा। शौचावशिष्टांगेहाच्चनदद्याल्लेपसम्भवाम्॥
अन्तःप्राण्यवपर्णाञ्चहलोत्खातांविशेषतः। कुशमूलोत्थिताञ्चैवदूर्वामूलोत्थितान्तथा॥

अश्वत्थमूलानीताञ्च तथैवशयनोत्थिताम्।

चतुष्पथाच्च गोष्ठानां गोष्पदानांतथैव च। शस्यस्थलानां क्षेत्राच्च [illegible] मृदंत्यजेत्

स्नातो वाप्यथवास्नातोविप्रः शौचेनशुध्यति । शौचहीनोऽशुचिर्नित्यमनर्हः सर्वकर्मसु।

कृत्वाशौचमिदं विप्रो मुखं प्रक्षालयेत् सुधीः ॥४१॥

आदौ षोड़शगण्डूषैर्मुखशुद्धिं विधाय च । दन्तकाष्ठेन दन्तञ्च तत्पश्चात् परिमार्जयेत्॥

पुनः षोडशगण्डूषैर्मुखशुद्धिसमाचरेत् । दन्तमार्जनकाष्ठानां नियमं शृणु नारद ! ॥४३॥

निरूपितं सामवेदे हरिणा चाह्निकक्रमे । अपामार्गं सिन्धुवारमाम्रञ्च करवीरकम् ॥ ४४

खदिरञ्च शिरीषञ्च जातिपुन्नागशालकम् । अशोकमर्जुनञ्चैव क्षीरीवृक्षं कदम्बकम् ॥४५

जम्बूकं वकुलं चोड्रं पलाशञ्च प्रशस्तकम् । वदरीं पारिभद्रञ्चमन्दारं शाल्मलितथा ॥४६॥

वृक्षं कण्टकयुक्तञ्च लतादिपरिवर्जितम् ॥ ४७ ॥

पिप्पलञ्च पियालञ्च तिन्तिड़ीकञ्च ताड़कम् । खर्जूरं नारिकेलञ्च तालञ्च परिवर्जितम्॥

दन्तशौचविहीनश्च सर्वशौचविहीनकः । शौचहीनोऽशुचिर्नित्यमनर्हः सर्वकर्मसु ॥ ४६

कृत्वा शौचं शुचिर्विप्रो धृत्वा धौते च वाससी ।

प्रक्षाल्य पादमाचम्य प्रातः सन्ध्यां समाचरेत् ॥ ५० ॥

एवंत्रिसन्ध्यं सन्ध्याञ्चकुरुतेकुलजो द्विजः । सस्नातःसर्वतीर्थेषु त्रिसन्ध्यंयः समाचरेत्।

त्रिसन्ध्यहीनोऽप्यशुचिरनर्हः सर्वकर्मसु । यदह्ना कुरुते कर्म न तस्य फलभाग् भवेत्॥

नोपतिष्ठतियः पूर्वांनोपास्ते यस्तुपश्चिमाम् । स शूद्रवद्बहिःकार्य्यः सर्वस्माद्द्विजकर्मणः

पूर्वांसन्ध्यां परित्यज्य मध्यमां पश्चिमांतथा । ब्रह्महत्यामात्महत्यांप्रत्यहं लभते द्विजः

एकादशीविहीनोयः सन्ध्याहीनश्चयो द्विजः । कल्पंव्रजेत् कालसूत्रंयथाहिवृषलीपतिः॥

विधायप्रातः सन्ध्याञ्चगुरुमिष्टंसुरं रविम् । ब्रह्माणमीशंविष्णुञ्चमायांपद्मांसरस्वतीम्।

प्रणम्य गुरुमाज्यञ्च दर्पणं मधुकाञ्चनम्। स्पृष्ट्वा स्नानादिकं काले कुर्य्यात्साधकसत्तमः।

पुष्करिण्यान्तुवाप्यान्तु यदास्नानंसमाचरेत् । समुद्धृत्य पञ्चपिण्डानादौधर्मी विचक्षणः

नद्यांनदे कन्दरेवा तीर्थेवा स्नानमाचरेत् । कुर्य्यात् स्नात्वा तु सङ्कल्पं ततः स्नानंपुनर्मुने।

श्रीकृष्णप्रीतिकामश्च वैष्णवानां महात्मनाम् । सङ्कल्पो गृहीणाञ्चैवकृतपातकनाशनम्॥

विप्रः कृत्वा तु सङ्कल्पं मृदं गात्रे प्रलेपयेत् । वेदोक्तमन्त्रेणानेन देहशुद्धिं कृतेन च ॥६१

अश्वक्रान्ते रथक्रान्ते विष्णुक्रान्ते वसुन्धरे । मृत्तिके हर मे पापं यन्मया दुष्कृतं कृतम् ।

उद्धृतासि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना। आरुह्य मम गात्राणि सर्वं पापं प्रमोचय ॥६३
पुण्यंदेहिमहाभागे स्नानानुज्ञां कुरुष्व माम्। इत्युक्त्वाच जले नाभिप्रमाणे मन्त्रपूर्वकम्।
चतुर्हस्तप्रमाणाञ्च कृत्वा मण्डलिकां शुभाम्। तीर्थान्यावाहयेत्तत्र हस्तंदत्वा तपोधन
यानि यानि च तीर्थानि सर्वाणि कथयामि ते ॥ ६६ ॥
गङ्गेच यमुने चैव गोदावरि सरस्वति। नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिंकुरु ॥
नलिनीनन्दिनी सीतामालिनी च महापथा। विष्णुपादार्घ्यसम्भूता गङ्गा त्रिपथगामिनी ॥
पद्मावतीभोगवती स्वर्णरेखाच कौशिकी। दक्षापृथ्वीचसुभगा विश्वकाया शिवामृता॥
विद्याधरी सुप्रसन्ना तथा लोकप्रसाधिनी।
क्षेमा च वैष्णवी शान्ता शान्तिदा गोमती सती ॥ ७० ॥
सावित्रीतुलसीदुर्गा महालक्ष्मीःसरस्वती। कृष्णप्राणाधिकाराधा लोपामुद्रादितीरतिः।
अहल्या चादितीः संज्ञास्वधा स्वाहाप्यरुन्धती। शतरूपा देवहूतीत्येवमाद्याःस्मरेत्सुधीः
स्नात्वास्नात्वा महापूतः कुर्य्यात्तु तिलकं बुधः। बाहोर्मूले ललाटे च कण्ठदेशेच वक्षसि
स्नानंदानं तपो होमं दैवञ्च पितृकर्मसु। तत् सर्वं निष्फलं याति ललाटे तिलकं विना॥
ब्राह्मणस्तिलकं कृत्वा कुर्य्यात् सन्ध्याञ्च तर्पणम्।
नमस्कृत्य सुरान् भक्त्या गृहं गच्छेन्मुदान्वितः ॥ ७५ ॥
प्रक्षाल्य पादं यत्नेन धृत्वा धौतेच वाससी। मन्दिरं प्रविशेत् प्राज्ञ इत्याहहरिरेव च ॥
विनापादौचप्रक्षाल्य स्नात्वा विशतिमन्दिरम्। तस्य स्नानादिकं नष्टं जपहोमञ्चपञ्चमम्।
परिधायस्निग्धवस्त्रं गृहञ्चप्रविशेद् गृही। रुष्टालक्ष्मीर्गृहाद्याति शापंदत्त्वासुदारुणम्।
ऊर्द्ध्वजङ्घेचयो विप्रः पादौ प्रक्षालयेत् यदि। तावद्भवतिचाण्डलो यावद् गङ्गान पश्यति
उपविश्यासनेब्रह्मन्नाचम्य साधकःशुचि। पूजांकुर्य्यात्तु वेदोक्तं भक्तियुक्तोहि संयतः॥
शालग्रामे मणौ मन्त्रे प्रतिमायां:जले स्थले। गोपृष्ठेवा गुरौ विप्रे प्रशस्तमर्चनं हरेः॥
सर्वप्रशस्ता पूजा च शालग्रामे च नारद। सुराणामेव सर्वेषां यत्राधिष्ठानमेव च। ८२।
स स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः। शालग्रामोदकेनैव योऽभिषेकं समाचरेत् ॥८३
शालग्रामेजलं भक्त्या नित्यमश्नातियो नरः। जीवन्मुक्तःसच भवेद् यात्यन्ते कृष्णमन्दिरम्

शालग्रामशिलाचक्रं यत्र तिष्ठति नारद। सचक्रो भगवांस्तत्र सर्वतीर्थानि निश्चितम्॥
तत्र यो हि मृतो देही ज्ञानाज्ञानेन दैवतः। रत्ननिर्माणयानेन स याति श्रीहरेः पदम्॥८६
शालग्रामं विनान्यत्रकः साधुः पूजयेद्धरिम्। कृत्वा तत्र हरेः पूजां परिपूर्णं फलंलभेत्।
पूजाधारश्च कथितः श्रूयतां पूजनक्रमः। हरेः पूजां वहुमतां कथयामि यथागमम्॥८८

कश्चिद् ददाति हरये चोपचारांश्च षोड़श।
सुन्दराणि पवित्राणि नित्यं भक्त्या च वैष्णवः॥ ८९॥

कश्चिद् द्वादश द्रव्याणि पञ्चवस्तूनि कश्चन। येषामेव यथाशक्तिर्भक्तिमूलश्च पूजने।९०
आसनं वसनं पाद्यमर्घ्यमाचमनीयकम्। पुष्पं चन्दनधूपश्च दीपनैवेद्यमुत्तमम्॥ ९१॥

गन्धं माल्यश्च शय्याश्च ललितां सुविलक्षणाम्।
जलमन्नश्च ताम्बूलं साधारं देयमेव च॥ ९२॥

गन्धान्नतल्पताम्बूलं विनाद्रव्याणि द्वादश। पाद्यार्घ्यजल नैवेद्य पुष्पाण्येतानि पञ्च च
सर्वाण्येतानि मूलेन दद्यात् साधकसत्तमः। गुरुपदिष्टं मूलञ्च प्रशस्तं सर्वकर्मसु।९४
आदौ कृत्वा भूतशुद्धिं प्राणयामं ततः परम्। अङ्गप्रत्यङ्गन्यासञ्च मन्त्रन्यासंततःपरम्॥
वर्णन्यासं विनिर्वर्त्य चार्घ्यपात्रं विनिर्दिशेत्। त्रिकोणमण्डलंकृत्वा तत्रकूर्मंप्रपूजयेत्।
जलेनापूर्य्य शङ्खञ्च तत्र संस्थापयेद् द्विजः। जलं संपूज्य विधिवत्तीर्थान्यावाहयेत्ततः॥
पूजोपकरणं तेन जलेन क्षालयेत् पुनः। ततोगृहीत्वा पुष्पञ्च कृत्वायोगासनं शुचिः॥

ध्यानेन गुरुदत्तेन ध्यायेत् कृष्णमनन्यधीः।
ध्यात्वा पाद्यादिकं सर्वं दद्यान्मूलेन साधकः॥ ९९॥

अङ्गप्रत्यङ्गदेवञ्च तन्त्रोक्तं पूजयेद्धरिम्। मूलं जप्त्वा यथाशक्ति देवमन्त्रं विसर्जयेत्॥
दत्त्वोपहारं विविधं स्तुत्वा च कवचंपठेत्। ततःकृत्वापरीहारंमूर्द्धर्ना च प्रणमेद्भुवि॥
कृत्वा च देवपूजाञ्चयज्ञंकुर्य्याद्विचक्षणः। श्रौतस्मार्त्ताग्नियुक्तश्च वलिंदद्यात्ततो मुने॥
नित्यश्राद्धं यथाशक्तिदानंवित्तानुरूपकम्। कृत्वा कृती च विहरेत् क्रमएषश्रुतौश्रुतः॥

इति ते कथितं सर्वं वेदोक्तं सूत्रमुत्तमम्।
आह्निकस्य च विप्राणां किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥ १०४॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे ब्रह्मखण्डे शिवनारदसंवादे आह्निकप्रकरण कथनं नाम षड्विंशतितमोऽध्यायः॥ २६॥

सप्तविंशतितमोऽध्यायः ।

नराणां भक्ष्याभक्ष्य-कर्तव्याकर्तव्यकथनम् ।

नारद उवाच ।

भक्ष्यं किं वाप्यभक्ष्यञ्च द्विजानां गृहिणां प्रभो ।
यतीनां वैष्णवानाञ्च विधवाब्रह्मचारिणाम् ॥ १ ॥
किं कर्त्तव्यमकर्त्तव्यमभोग्यं भोग्यमेव वा । सर्वं कथय सर्वज्ञ सर्वेश सर्वकारणम् ॥

महादेव उवाच ।

कश्चित्तपस्वी विप्रश्च निराहारी चिरंमुनिः । कश्चित् समीरणाहारीफलाहारी च कश्चन ॥
अन्नाहारी यथाकाले गृही च गृहिणीयुतः ।
येषामिच्छा च या ब्रह्मन् रुचीनां विविधा गतिः ॥ ४ ॥
हविष्यान्नं ब्राह्मणानां प्रशस्तं गृहिणां सदा । नारायणोच्छिष्टमिष्टमनिवेद्यमभक्षकम् ॥
अन्नं विष्ठा जलं मूत्रं यद्‌विष्णोरनिवेदितम् । विण्मूत्रं सर्वपापोक्तमन्नञ्च हरिवासरे ॥
ब्राह्मणः कामतोऽन्नञ्च यो भुङ्क्ते हरिवासरे ।
त्रैलोक्यजनितं पापं सोऽपि भुङ्क्ते न संशयः ॥ ७ ॥
न भोक्तव्यं न भोक्तव्यं न भोक्तव्यञ्च नारद । गृहिभिर्ब्राह्मणैरन्नं संप्राप्ते हरिवासरे ।८।
गृही शैवश्च शाक्तश्च ब्राह्मणो ज्ञानदुर्वलः । प्रयातिकालसूत्रञ्च भुक्त्वा च हरिवासरे ॥
कृमिभिः शालमानैश्च भक्षितस्तत्र तिष्ठति । विण्मूत्रभोजनं कृत्वा यावदिन्द्राश्चतुर्दश
जन्माष्टमी दिने रामनवमी दिवसेहरेः । शिवरात्रौ च योभुङ्क्तेसोऽपिद्विगुणपातकी ॥
उपवासासमर्थश्च फलमूलजलं पिवेत् । नष्टे शरीरे स भवेदन्यथा चात्मघातकः ॥१२॥
सकृद्भुङ्क्तेहविष्यान्नंविष्णोर्नैवेद्यमेवच । न भवेत्प्रत्यवायी स चोपवासफलंलभेत् ॥
एकादश्यामनाहारं गृही विप्रश्च भारते । स च तिष्ठति वैकुण्ठे यावद्वै ब्रह्मणो वयः ॥
गृहिणां शैवशाक्तानामिमुक्तञ्च नारद । विशेषतो वैष्णवानां यतीनां ब्रह्मचारिणाम् ॥

नित्यं नैवेद्यभोजी यः श्रीकृष्णस्य च वैष्णवः ।
नित्यं शतोपवासानां जीवन्मुक्तः फलं लभेत् ॥ १६ ॥

वाञ्छन्ति तस्य संस्पर्शं तीर्थानि सर्वदेवता । आलापं दर्शनञ्चैव सर्वपापप्रणाशनम् ॥
द्विस्विन्नमन्नं पृथुकं शुद्धं देशविशेषके । नात्यन्तशस्तं विप्राणां भक्षणे च निवेदने ॥

अभक्ष्यञ्च यतीनाञ्च विधवा ब्रह्मचारिणाम् ।
ताम्बूलञ्च यथा ब्रह्मन् तथैते वस्तुनी ध्रुवम् ॥ १९ ॥

ताम्बूलं विधवास्त्रीणां यतीनां ब्रह्मचारिणाम् । तपस्विनाञ्च विप्रेन्द्र गोमांससदृशं ध्रुवम् ॥
सर्वेषां ब्राह्मणानाञ्च चाभक्ष्यं शृणु नारद । यदुक्तं सामवेदे च हरिणाचाह्निकक्रमे ।२१॥
ताम्रपात्रे पयःपानमुच्छिष्टे घृतभोजनम् । दुग्धं लवणसार्द्धञ्च सद्योगोमांसभक्षणम् ॥
नारिकेलोदकं कांश्ये ताम्रपात्रे स्थितं मधु । ऐक्षवं ताम्रपात्रस्थं सुरातुल्यं न संशयः ॥
उत्थाय वामहस्तेन यत्तोयं पिबति द्विजः । सुरापी च स विज्ञेयः सर्वधर्मबहिष्कृतः ॥
अनिवेद्यं हरेरन्नं भुक्तशेषञ्च नित्यशः । पीतशेषजलञ्चैव गोमांससदृशं मुने ॥ २५ ॥
वातिङ्गणफलश्चैव गोमांसं कार्त्तिके स्मृतम् । माघे च मूलकञ्चैव कलम्बी शयने तथा ॥
श्वेतवर्णञ्च तालञ्च मसूरं मत्स्यमेव च । सर्वेषां ब्राह्मणानाञ्च त्याज्यञ्च सर्वदेशतः ।२७।
मत्स्यांश्चकामतोभुक्त्वासोपवासस्त्र्यहंवशेत् । प्रायश्चित्तंततःकृत्वाशुद्धिमाप्नोतिब्राह्मणः
प्रतिपत्सु च कुष्माण्डमभक्ष्यमर्थनाशनम् । द्वितीयायाञ्च वृहतीभोजने न स्मरेद्धरिम् ॥
अभक्ष्यञ्च पटोलञ्च शत्रुवृद्धिकरं परम् । तृतीयायां चतुर्थ्याञ्च मूलकं धननाशनम् ॥
कलङ्ककारणञ्चैव पञ्चम्यां विल्वभक्षणम् । तिर्य्यग्योनिं प्रापयेत्तु षष्ठ्याञ्च निम्बभक्षणम् ॥
रोगवृद्धिकरञ्चैव नराणां तालभक्षणम् । सप्तम्याञ्च तथा तालं शरीरस्य च नाशकम् ॥
नारिकेलफलं भक्ष्यमष्टम्यां बुद्धिनाशनम् । तुम्बीनवम्यांगोमांसंदशम्याञ्चकलम्बिका ॥
एकादश्यांतथाशिम्बी द्वादश्यां पूतिकातथा । त्रयोदश्यां (च) वार्त्ताकीभक्षणंपुत्रनाशनम् ।
चतुर्दश्यां मांसभक्ष्यं महापापकरं परम् । पञ्चदश्यां तथा मांसमभक्ष्यं गृहिणां मुने ॥
गृहिणां प्रोक्षितं मांसं भक्ष्यमन्यदिनेषु च । प्रातःस्नाने तथा श्राद्धे पार्वणे व्रतवासरे ॥
प्रशस्तं सार्षपं तैलं पक्वतैलञ्च नारद । कुहूपूर्णेन्दुसंक्रान्तिचतुर्दश्यष्टमीषु च ॥ ३७ ॥

रवौ श्राद्धे व्रताहे च दुष्टं स्त्री तिलतैलकम्।
मांसञ्च रक्तशाकञ्च कांश्यपात्रे च भोजनम्॥ ३८॥
निषिद्धं शयने चैव कूर्ममांसञ्च प्रोक्षितम्। निषिद्धं सर्ववर्णानां दिवा स्वस्त्रीनिषेवनम्।
रात्रौ च दधिभक्ष्यञ्च शयनं सन्ध्ययोर्दिने। रजःस्वलास्त्रीगमनमेतन्नरककारणम्॥४०॥
रजःस्वलावीरान्नञ्च पुंश्चल्यन्नमभक्ष्यकम्। शूद्राणां याजकान्नञ्च शूद्रश्राद्धान्नमेव च॥
अभक्ष्यान्नञ्च विप्रर्षे! यदन्नं वृषलीपतेः। ब्रह्मन् वार्द्धुषिकान्नञ्च गणकान्नमभक्ष्यकम्।
अग्रदानिद्विजान्नञ्च चिकित्साकारकस्य च। हस्ताचित्राहरौ तैलमग्राह्यञ्चाप्यभक्षणम्।
मूले मृगे भाद्रपदे मांसं गोमांसतुल्यकम्। अमायां कृत्तिकायाञ्च द्विजैः क्षौरं विवर्जितम्।
कृत्वा तु मैथुनं क्षौरं यो देवांस्तर्पयेत् पितॄन्। रुधिरं तद्भवेत्तोयं दाता च नरकं व्रजेत्।
यत् कर्त्तव्यमकर्त्तव्यं यद्भोज्यं यदभोज्यकम्।
सर्वं तुभ्यं निगदितं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥ ४६॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे ब्रह्मखण्डे सौतिशौनकसंवादे शिवनारदसंवादे कर्त्तव्याकर्त्तव्यकथनं नाम सप्तविंशतितमोऽध्यायः समाप्तः।

अष्टाविंशतितमोऽध्यायः।

ब्रह्मनिरूपणम्।

नारद उवाच।

श्रुतं सर्वं जगन्नाथ त्वत्प्रसादज्जगद्गुरो। भवान् ब्रह्मस्वरूपञ्च वद ब्रह्मनिरूपणम्॥१॥
प्रभो किं ब्रह्म साकारं किं निराकारमीश्वरम्। किं तद्विशेषणं किं वाप्यविशेषणमेव च।
किं वा दृश्यमदृश्यं वा लिप्तं देहिषु किं न वा। किं वा तल्लक्षणं शस्तं वेदे वा किं निरूपणम्।
ब्रह्मातिरिक्ता प्रकृतिः किं वा ब्रह्मस्वरूपिणी। प्रकृतिर्लक्षणं किं वा सारभूतं श्रुतौ श्रुतम्।
कस्य सृष्टौ च प्राधान्यं द्वयोर्मध्ये वरं परम्। विचार्य मनसा सर्वं सर्वज्ञ वद मां शुचम्॥

नारदस्य वचः श्रुत्वा पञ्चवक्त्रः प्रहस्य च । भगवान् वक्तुमारेभे परं ब्रह्मनिरूपणम् ॥

महादेव उवाच ।

यद् यत् पृष्टं त्वया वत्स निगूढं ज्ञानमुत्तमम् । सुदुर्लभञ्च वेदेषु पुराणेषु च नारद ॥
अहं ब्रह्मा च विष्णुश्च शेषो धर्मो महान् विराट् ।
सर्वं निरूपितं ब्रह्मन्नस्माभिः श्रुतिभिर्न वा ॥ ८ ॥
यद्विशेषणयुक्तञ्च दृश्यं प्रत्यक्षमेव च । तन्निरूपितमस्माभिर्वेदे वेदविदां वर ॥ ९ ॥
वैकुण्ठे च पुरा पृष्टे धर्मेण ब्रह्मणा मया । यदुवाच हरिः किञ्चिन्निबोध कथयामिते
सारभूतञ्च तत्त्वानामज्ञानान्धकलोचनम् । द्वैधभ्रमतमोध्वंससुप्रकृष्टप्रदीपकम् ॥ ११ ॥
परमात्मस्वरूपञ्च परं ब्रह्म सनातनम् । सर्वदेहस्थितं साक्षिस्वरूपं देहिकर्मणाम् ॥१२॥
प्राणाः पञ्च स्वयं विष्णुर्मनो ब्रह्माप्रजापतिः । सर्वज्ञानस्वरूपोऽहंशक्तिःप्रकृतिरीश्वरी ॥
आत्माधीना वयं सर्वे स्थिते तस्मिंश्च संस्थिताः । गते गताश्च परमे नारदैवमिवानुगाः
जीवस्तत्प्रतिविम्बश्च स च भोगी च कर्मणाम् । यथार्कचन्द्रयोर्विम्बो जलपूर्णघटेषु च
विम्बो घटेषु भग्नेषु प्रलीनश्चन्द्रसूर्य्ययोः । तथा सृष्टौ च भग्नायांजीवो ब्रह्मणि लीयते
एकमेव परं ब्रह्म शेषे वत्स भवक्षये । वयं प्रलीनास्तत्रैव जगदेतच्चराचरम् ॥ १७ ॥
तच्च ज्योतिःस्वरूपञ्च मण्डलाकारमेव च । ग्रीष्ममध्याह्नमार्त्तण्डकोटिकोटिसमप्रभम् ॥
आकाशमिव विस्तीर्णं सर्वव्यापकमव्ययम् । सुखदृश्यं यथा चन्द्रविम्बं योगिभिरेव च
वदन्ति योगिनस्तत्तु परं ब्रह्म सनातनम् । दिवानिशञ्च ध्यायन्ते सत्यं तत् सर्वमङ्गलम्
निरीहञ्च निराकारं परमात्मनमीश्वरम् । स्वेच्छामयं स्वतन्त्रञ्च सर्वकारणकारणम् ॥
परमानन्दरूपञ्च परमानन्दकारणम् । परं प्रधानं पुरुषं निर्गुणं प्रकृतेः परम् ।
तत्रैव लीना प्रकृतिः सर्ववीजस्वरूपिणी ॥ २२ ॥
यथाग्नौ दाहिका शक्तिः प्रभा सूर्य्ये यथा मुने । यथा दुग्धे च धावल्यंजलेशैत्यंयथैवच
यथा शब्दश्च गगने यथा गन्धः क्षितौ सदा । तथाहि निर्गुणं ब्रह्म निर्गुणा प्रकृतिस्तथा
सृष्ट्युन्मुखे न तद्ब्रह्मचांशेन पुरुषः स्मृतः । स एवसगुणोवत्स! प्राकृतोविषयीस्मृतः ।
सा च तत्रैव त्रिगुणा परा छायामयी स्मृता ॥ २६ ॥

यथा मृदा कुलालश्च घटं कर्त्तुं क्षमः सदा । तथाप्रकृत्या तद्ब्रह्म सृष्टिं स्रष्टुं क्षमो मुने ।
स्वर्णेन कुण्डलं कर्त्तुं स्वर्णकारः क्षमो यथा । तथा ब्रह्म तयासार्द्धं सृष्टिं कर्त्तुमिहेश्वरः ।
कुलालसृष्टा न च मृन्नित्या एव सनातनी । न स्वर्णकारसृष्टं तत्स्वर्णञ्च नित्यमेव च ।
नित्यं तत् परमं ब्रह्म नित्या च प्रकृतिः स्मृता ।
द्वयोः समञ्च प्राधान्यमिति केचिद्वदन्ति हि ॥ ३० ॥
मृदं स्वर्णं समाहर्त्तुं कुलालस्वर्णकारकौ । न समर्थौ च मृत्स्वर्णं तयोराहरणे क्षमम् ॥
तस्मात्तद्ब्रह्म प्रकृतेः परमेव च नारद ! । इति केचिद्वदन्त्येव द्वयोश्च नित्यता ध्रुवम् ॥
केचिद्वदन्ति तद्ब्रह्म स्वयञ्च प्रकृतिः पुमान् । ब्रह्मातिरिक्ता प्रकृतिर्वदन्तीति च केचन ।
तद्ब्रह्म परमं धाम सर्वकारणकारणम् । तद्ब्रह्मलक्षणं ब्रह्मन्निदं किञ्चित् श्रुतौश्रुतम् ॥
ब्रह्मचात्मा च सर्वेषां निर्लिप्तं साक्षिरूपिणम् । सर्वव्यापी च सर्वादिलक्षणञ्चश्रुतौश्रुतम् ।
तद्ब्रह्मशक्तिः प्रकृतिः सर्ववीजस्वरूपिणी । यतस्तच्छक्तिमद्ब्रह्म चेदं प्रकृतिलक्षणम् ॥
तेजोरूपञ्च तद्ब्रह्म ध्यायन्ते योगिनः सदा ।
वैष्णवास्तन्न मन्यन्ते मद्भक्ताः सूक्ष्मवुद्धयः । तत्तेजः कस्य वाश्चर्य्यंध्यायन्तेपुरुषंविना ॥
कारणेन विना कार्यं कुतो वा प्रभवेद्भवे । ध्यायन्ते वैष्णवास्तस्मात्तत्र रूपं मनोहरम् ॥
स्वेच्छामयस्य पुंसश्च साकारस्यात्मनः सदा । तत्तेजो मण्डलाकारेसूर्य्यकोटिसमप्रभे ॥
नित्यं स्थूलञ्च प्रच्छन्नंगोलोकाभिधमेव च । लक्षकोटियोजनञ्च चतुरस्रं मनोहरम् ॥
रत्नेन्द्रसारनिर्माणैर्गोपीनामावृतं सदा ।
सुदृश्यं वर्त्तुलाकारं यथैव चन्द्रमण्डलम् । रत्नेन्द्रसारनिर्माणं निराधारञ्च स्वेच्छया ॥
ऊर्द्ध्वञ्च नित्यंवैकुण्ठात्पञ्चाशत्कोटियोजनम् । गोगोपगोपीसंयुक्तंकल्पवृक्षसमन्वितम्
कामधेनुभिराकीर्णं रासमण्डलमण्डितम् । वृन्दावनवनाच्छन्नं विरजावेष्टितं मुने ॥४३॥
शतशृङ्गं शतशृङ्गैः सुदीप्तं दीप्तमीप्सितम् । लक्षकोटिपरिमितैराश्रमैः सुमनोहरैः ॥४४॥
शतमन्दिरसंयुक्तमाश्रमं सुमनोहरम् ॥ ४५ ॥
प्राकारपरिखायुक्तंपारिजातवनान्वितम् । कौस्तुभेन्द्रेण मणिना निर्माणकलसोज्ज्वलैः
हीरासारविनिर्माणसोपानलंघसुन्दरैः । मणीन्द्रसारनिर्माणैः कपाटदर्पणान्वितैः ॥४७॥

नानाचित्रविचित्राढ्यै राश्रमश्च सुसंस्कृतम् । षोड़शद्वारसंयुक्तं सुदीप्तं रत्नदीपकैः ॥४८॥
रत्नसिंहासने रम्ये चामूल्यरत्ननिर्मिते । नानाचित्रविचित्राढ्ये वसन्तमीश्वरंवरम् ॥४६
नवीननीरदश्यामं किशोरवयसं शिशुम् । शरन्मध्याह्नमार्त्तण्डप्रभामोचनलोचनम् ॥५०॥
शरत्पार्वणपूर्णेन्दुशोभाच्छादनमाननम् । कोटिकन्दर्पलावण्यलीलानिन्दितसुन्दरम् ॥
कोटिचन्द्रप्रभायुष्टपुष्टश्रीयुक्तविग्रहम् । सस्मितं मुरलीहस्तं सुप्रशस्तं सुमङ्गलम् ॥५२॥
वह्निसंस्कारपीतांशुयुगलेन समुज्ज्वलम् । चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं कौस्तुभेन विराजितम् ॥
आजानुमालतीमालावनमालाविभूषितम् । त्रिभङ्गभङ्गिमायुक्तं मणिमाणिक्यभूषितम् ॥
मयूरपुच्छचूड़श्च सद्रत्नमुकुटोज्ज्वलम् । रत्नकेयूरवलयरत्नमञ्जीररञ्जितम् ॥ ५५ ॥
रत्नकुण्डलयुग्मेन गण्डस्थलसुशोभितम् । मुक्तापङ्क्तिविनिन्दैकदशनंसुमनोहरम् ॥५६॥
पक्वविम्वाधरौष्ठञ्च नासिकोन्नतशोभनम् । वीक्षितंगोपिकाभिश्चवेष्टिताभिश्चसन्ततम् ॥
स्थिरयौवनयुक्ताभिः सस्मिताभिश्च सादरम् । भूषिताभिश्च सद्रत्ननिर्माणभूषणेन च ॥
सुरेन्द्रैश्च मुनीन्द्रैश्च मुनिभिर्मानवेन्द्रकैः । ब्रह्माविष्णुशिवानन्तधर्माद्यैर्वन्दितं मुदा ॥५६
भक्तप्रियं भक्तनाथं भक्तानुग्रहकातरम् । रासेश्वरंसुरसिकं राधावक्षःस्थलस्थितम् ॥६०
एवंरूपमरूपं तं ध्यायन्ते वैष्णवा मुने । सततं ध्येयमस्माकं परमात्मानमीश्वरम् ॥६१॥
अक्षरं परमं ब्रह्म भगवन्तं सनातनम् । स्वेच्छामयं निगुणञ्च निरीहं प्रकृतेः परम् ॥६२॥
सर्वाधारं सर्ववीजं सर्वज्ञं सर्वमेव च । सर्वेश्वरं सर्वपूज्यं सर्वसिद्धिकरप्रदम् ॥ ६३ ॥
स एव भगवानादिर्गोलोकेद्विभुजः स्वयम् । गोपवेशश्च गोपालैः पार्षदैः परिवेष्टितः ॥
परिपूर्णतमः श्रीमान् श्रीकृष्णोराधिकेश्वरः । सर्वान्तरात्मासर्वत्रप्रत्यक्षःसर्वगःस्मृतः ॥
कृषिश्च सर्ववचनोनकारश्चात्मवाचकः । सर्वात्मा च परं ब्रह्म तेनकृष्णः प्रकीर्त्तितः ॥६६
कृषिश्च सर्ववचनो नकारश्चादिवाचकः । सर्वादिपुरुषो व्यापी तेन कृष्णः प्रकीर्त्तितः॥
स एवांशेन भगवान् वैकुण्ठे च चतुर्भुजः । चतुर्भुजैः पार्षदैस्तैरावृतः कमलापतिः ॥६८
स एव कलया विष्णुः पाता च जगतां प्रभुः । श्वेतद्वीपेसिन्धुकन्यापतिरेव चतुर्भुजः ॥
एतत्ते कथितं सर्वं परं ब्रह्मनिरूपणम् । अस्माकं चिन्तनीयञ्च सेव्यंवन्दितमीप्सितम् ॥
इत्युक्त्वा शङ्करस्तत्र विरराम च शौनक । गन्धर्वराजस्तोत्रेण तुष्टाव तत्र नारदः ॥७१

मुनिस्तोत्रेण सन्तुष्टो भगवानादिरच्युतः । ज्ञानं मृत्युञ्जयस्तस्मै प्रददौवरमीप्सितम् ॥
तं प्रणम्य मुनीन्द्रश्च प्रहृष्टवदनेक्षणः । तदाज्ञया पुण्यरूपं ययौ नारायणाश्रमम् ॥ ७२ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे ब्रह्मखण्डे सौतिशौनकसंवादे नारदप्रस्थानं नामाष्टा-
विंशतितमोऽध्यायः ।

ऊनत्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

नारायणं प्रति नारदप्रश्नः ।

सौतिरुवाच ।

ददर्शाश्रममाश्चर्य्यं देवर्षिर्नारदस्तथा । ऋषिर्नारायणस्यैव बदरीवनसंयुतम् ॥ १ ॥
नानावृक्षफलाकीर्णं पुंस्कोकिलरुतश्रुतम् । शरभेन्द्रैःकेशरीन्द्रैर्व्याघ्रौघैः परिवेष्टितम् ॥
ऋषीन्द्रस्य प्रभावेण हिंसाभयविवर्जितम् । महारण्यमगम्यञ्च स्वर्गाधिकमनोहरम् ॥३॥
सिद्धेन्द्राणांमुनीन्द्राणामाश्रमाणांत्रिकोटिभिः । आवृतंचन्दनारण्यपारिजातवनान्वितम् ॥
ददर्श तमृषीन्द्रञ्च सभामध्ये मनोहरम् । रत्नसिंहासनस्थञ्च वसन्तं योगिनां गुरुम् ॥
जपन्तं परमं ब्रह्म कृष्णात्मानमीश्वरम् । प्रणनाम च तं दृष्ट्वा ब्रह्मपुत्रश्च शौनक ॥ ६ ॥
उत्थाय सहसालिङ्ग्य युयुजे परमाशिषम् । पप्रच्छ कुशलं स्नेहाच्चकारातिथिपूजनम् ॥
रत्नसिंहासने रम्ये वासयामास नारदम् । निवसन्नासने रम्ये वर्त्मश्रमविवर्जितः ॥ ८॥
उवाच तमृषिश्रेष्ठं भगवन्तं सनातनम् । अधीतवेदान् सर्वांश्च पितुःस्थाने सुदुर्गमान् ॥
ज्ञानं सम्प्राप्य योगीन्द्रान्मन्त्रञ्च शङ्कराद्विभो । मनो मेनहितृप्तोतिदुर्निवारञ्चचञ्चलम् ॥
दृष्टं मयातत्पदाब्जंमनसाप्रेरितेनच । किञ्चिज्ज्ञानविशेषञ्च लब्धुमिच्छामिसाम्प्रतम् ॥
यत्र कृष्णगुणाख्यानं जन्ममृत्युजराहरम् ॥ १२ ॥
ब्रह्मविष्णुशिवाद्याश्च सुरेन्द्रश्च सुरा विभो । कं चिन्तयन्ति मुनयोमनवश्चविचक्षणाः ॥
कस्मात् सृष्टिश्च प्रभवेत् कुत्रवाविप्रलीयते । कोवासर्वेश्वरोविष्णुःसर्वकारणकारकः ॥

तस्येश्वरस्य किं रूपं कर्म वा किं जगत्पते। विचार्य्य मनसा सर्वं तद्भवान् वक्तुमर्हति॥
नारदस्य वचः श्रुत्वा प्रहस्य भगवानृषिः।
कथां कथितुमारेभे पुण्यां भुवनपावनीम्॥ १६॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे ब्रह्मखण्डे सौतिशौनकसंवादे नारायणं प्रति नारदप्रश्नो नाम ऊनत्रिंशत्तमोऽध्यायः।

त्रिंशत्तमोऽध्यायः

श्रीनारायणकृतः स्तवः।

श्रीनारायण उवाच।

लम्बोदरो हरिरुमापतिरीशशेषा ब्रह्मादयः सुरगणा मनवो मुनीन्द्राः।
वाणी शिवा त्रिपथगा कमलादिका या सञ्चिन्तयेद्भगवतश्चरणारविन्दम्॥ १॥
संसारसागरमतीवगभीरघोरं दावाग्निसर्पपरिवेष्टितचेष्टिताङ्गम्।
संलङ्घ्य गन्तुमभिवाञ्छति यो हि दास्यं सञ्चिन्तयेद्भगवतश्चरणारविन्दम्॥ २॥
गोवर्द्धनोद्धरणकीर्त्तिरतीवखिन्ना भूर्धारिता च दशनाग्रकरेण क्लिन्ना।
विश्वानि लोमविवरेषु विभर्त्तुरादेः सञ्चिन्तयेद्भगवतश्चरणारविन्दम्॥ ३॥
गोपाङ्गनावदनपङ्कजषट्पदस्य रासेश्वरस्य रसिकारमणस्य पुंसः।
वृन्दावने विहरतो व्रजवेशविष्णोः सञ्चिन्तयेद्भगवतश्चरणारविन्दम्॥ ४॥
चक्षुर्निमेषपतितो जगतां विधाता तत्कर्म वत्स कथितं भुवि कः समर्थः।
त्वञ्चापि नारदमुने परमादरेण सञ्चिन्तनं कुरु हरेश्चरणारविन्दम्॥ ५॥
यूयं वयं तस्य कलाकलांशाः कलाकलांशा मनवो मुनीन्द्राः।
कलाविशेषा भवपारमुख्या महान् विराड्यस्य कलाविशेषः॥ ६॥

सहस्रशीर्षाः शिरसः प्रदेशे बिभर्ति सिद्धार्थसमञ्च विश्वम्।

कूर्मे च शेषो मशको गजे यथा कूर्मश्च कृष्णस्य कलाकलांशः ॥ ७ ॥
गोलोकनाथस्य विभोर्यशोऽमलं श्रुतौ पुराणे न हि किञ्चन स्फुटम् ।
न पाद्ममुख्याः कथितुं समर्थाः सर्वेश्वरं तं भज पाद्ममुख्यम् ॥ ८ ॥
विश्वेषु सर्वेषु च विश्वधाम्नः सन्त्येव शश्वद्विधिविष्णुरुद्राः ।
तेषाञ्च संख्याः श्रुतयश्च देवाः परं न जानन्ति तमीश्वरं भज ॥ ६ ॥
करोति सृष्टिं स विधेर्विधाता विधाय नित्यां प्रकृतिं जगत्प्रसूम् ।
ब्रह्मादयः प्राकृतिकाश्च सर्वे भक्तिप्रदां श्रीं प्रकृतिं भजन्ति ॥ १० ॥
ब्रह्मस्वरूपा प्रकृतिर्न भिन्ना यथा च सृष्टिं कुरुते सनातनः ।
श्रियश्च सर्वाः कलया जगत्सु माया च सर्वे च तया विमोहिताः ॥ ११ ॥
नारायणी सा परमा सनातनी शक्तिश्च पुंसः परमात्मनश्च ।
आत्मेश्वरश्चापि यथा च शक्तिमांस्तया विना स्रष्टुमशक्त एव ॥ १२ ॥
गत्वा विवाहं कुरु वत्स साम्प्रतं कर्त्तुं प्रयुक्तश्च पितुर्निदेशम् ।
गुरोर्निदेशं प्रतिपालकोभवेत् सर्वत्रपूज्यो विजयी च सन्ततम् ॥ १३ ॥
स्वपत्नीं पूजयेद्दु योहि वस्त्रालङ्कारचन्दनैः । प्रकृतिस्तस्यसन्तुष्टा यथाकृष्णो द्विजार्च्चने ॥
सा च योषित्स्वरूपा च प्रतिविश्वेषु मायया । योषितामपमानेन पराभूता च सा भवेत् ।
दिव्या स्त्री पूजिता येन पतिपुत्रवती सती । प्रकृतिः पूजिता तेन सर्वमंगलदायिनी ॥
मूलप्रकृतिरेका सा पूर्णब्रह्मस्वरूपिणी । सृष्टौ पञ्चविधा सा च विष्णुमाया सनातनी ॥
प्राणाधिष्ठातृदेवी या कृष्णस्य परमात्मनः ।
सर्वासां प्रेयसी कान्ता सा राधा परिकीर्त्तिता ॥ १८ ॥
नारायणप्रियालक्ष्मीः सर्वसम्पत्स्वरूपिणी । रागाधिष्ठातृदेवी या साचपूज्या सरस्वती ॥
सावित्री वेदमाता च पूज्यरूपा विधेः प्रिया । शङ्करस्यप्रियादुर्गा यस्याः पुत्रोगणेश्वर ॥
इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे ब्रह्मखण्डे सौतिशौनकसंवादे त्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

ब्रह्मखण्डं समाप्तम् ।

अथ द्वितीयं प्रकृतिखण्डम्

प्रथमोऽध्यायः ।

प्रकृतिचरितसूत्रम् ।

नारायण उवाच ।

गणेशजननीदुर्गा राधा लक्ष्मीः सरस्वती । सावित्रीच सृष्टिविधौप्रकृतिः पञ्चधास्मृताः।
आविर्बभूव साकेन कावासा ज्ञानिनां वरा । किंवा तल्लक्षणं वत्स! को वा वक्तुं क्षमो भवेत्
किञ्चित्तथापि वक्ष्यामि यत् श्रुतं रुद्रवक्त्रतः ॥ ३ ॥
प्रकृष्टवाचकः प्रश्च कृतिश्च सृष्टिवाचकः । सृष्टौ प्रकृष्टा या देवी प्रकृतिः सा प्रकीर्त्तिता॥
गुणे प्रकृष्टसत्वे च प्रशब्दो वर्त्तते श्रुतौ । मध्यमे रजसि कृश्च तिशब्दस्तमसि स्मृतः ॥
त्रिगुणात्मस्वरूपा या सर्वशक्तिसमन्विता । प्रधानसृष्टिकरणे प्रकृतिस्तेन कथ्यते ॥
प्रथमे वर्त्तते प्रश्च कृतिश्च सृष्टिवाचकः । सृष्टेराद्या च या देवी प्रकृतिः सा प्रकीर्त्तिता॥
योगेनात्मासृष्टिविधौ द्विधारूपो बभूव सः । पुमांश्च दक्षिणार्द्धाङ्गो वामाङ्गःप्रकृतिःस्मृतः।
साचब्रह्मस्वरूपाच माया नित्यसनातनी । यथात्माच यथा शक्तिर्यथाग्नौ दाहिकास्मृता।
अतएव हि योगीन्द्रः स्त्रीपुंभेदं न मन्यते । सर्वं ब्रह्ममयं ब्रह्मन् शश्वत् पश्यति नारद ॥
स्वेच्छामयस्येच्छया च श्रीकृष्णस्य सिसृक्षया । साविर्बभूव सहसा मूलप्रकृतिरीश्वरी।
तदाज्ञया पञ्चविधा सृष्टिकर्मणि भेदतः । अथ भक्तानुरोधाद् वा भक्तानुग्रहविग्रहा ॥
गणेशमाता दुर्गा या शिवरूपा शिवप्रिया । नारायणी विष्णुमाया पूर्णब्रह्मस्वरूपिणी ॥
ब्रह्मादिदेवैर्मुनिभिर्मनुभिः पूजिता सदा । सर्वाधिष्ठातृदेवी सा ब्रह्मरूपसनातनी ॥१४॥
धर्मसत्यपुण्यकीर्त्तियशोमङ्गलदायिनी । सुखमोक्षहर्षदात्री शोकार्त्तिदुःखनाशिनी ।१५।
शरणागतदीनार्त्तपरित्राणपरायणा । तेजःस्वरूपा परमा तदधिष्ठातृदेवता ॥ १६ ॥
सर्वशक्तिस्वरूपा च शक्तिरीशस्य सन्ततम् । सिद्धेश्वरी सिद्धरूपा सिद्धिदा सिद्धिदेश्वरी॥

बुद्धिर्निद्रा क्षुत् पिपासा छाया तन्द्रा दया स्मृतिः ।
जातिः क्षान्तिश्च शान्तिश्च कान्तिर्भ्रान्तिश्च चेतना ॥ १८ ॥

तुष्टिः पुष्टिस्तथा लक्ष्मीर्धृतिर्माता तथैव च । सर्वशक्तिस्वरूपा सा कृष्णस्य परमात्मनः॥
उक्तःश्रुतौश्रुतगुणश्चातिस्वल्पो यथागमम् । गुणोऽस्त्यनन्तोऽनन्तायाअपराञ्चनिशामय।
शुद्धसत्त्वस्वरूपा या पद्मा च परमात्मनः । सर्वसम्पत्स्वरूपा या सा तदधिष्ठातृदेवता ॥
कान्ता दान्तातिशान्ता च सुशीला सर्वमङ्गला । लोभमोहकामरोषाहङ्कारपरिवर्जिता ॥
भक्तानुरक्तपायूश्च सर्वाद्या च पतिव्रता । प्राणतुल्या भगवतः प्रेमपात्री प्रियंवदा ॥२३॥
सर्वशस्यात्मिका सर्वजीवनोपायरूपिणी । महालक्ष्मीश्च वैकुण्ठे पतिसेवावती सदा ॥
स्वर्गे च स्वर्गलक्ष्मीश्चराजलक्ष्मीश्च राजसु । गृहे च गृहलक्ष्मीश्च मर्त्यानां गृहिणांतथा ॥
सर्वप्राणिषु द्रव्येषु शोभारूपा मनोहरा । प्रीतिरूपा पुण्यवतां प्रभारूपा नृपेषु च ॥२६॥
वाणिज्यरूपा बणिजां पापिनां कलहङ्करा । दयामयी भक्तमाता भक्तानुग्रहकातरा २७॥
चपले चपला भक्तसम्पदो रक्षणाय च । जगज्जीवन्मृतं सर्वं यया देव्या विना मुने ॥
शक्तिर्द्वितीया कथिता वेदोक्ता सर्वसम्मता ।सर्वपूज्या सर्ववन्द्या चान्यां मत्तोनिशामय॥
वाग्बुद्धिविद्याज्ञानाधिदेवता परमात्मनः । सर्वविद्यास्वरूपा या सा च देवी सरस्वती ॥
सुबुद्धिकवितामेधाप्रतिभास्मृतिदा सताम् । नानाप्रकारसिद्धान्तभेदार्थकल्पनाप्रदा ॥
व्याख्यावोधस्वरूपाच सर्वसन्देहभञ्जिनी । विचारकारिणी ग्रन्थकारिणी शक्तिरूपिणी ॥
सर्वसङ्गीतसन्धानतालकारणरूपिणी । विषयज्ञानवाग्रूपा प्रतिविश्वेषु जीविनाम् ॥३३

व्याख्यामुद्राकरा शान्ता वीणापुस्तकधारिणी ।
शुद्धसत्त्वस्वरूपा या सुशीला श्रीहरिप्रिया ॥ ३४ ॥

हिमचन्दनकुन्देन्दुकुमुदाम्भोजसन्निभा । जपन्ती परमात्मानं श्रीकृष्णं रत्नमालया ॥३५
तपःस्वरूपा तपसां फलदात्री तपस्विनी । सिद्धिविद्यास्वरूपा च सर्वसिद्धिप्रदा सदा ॥
देवीतृतीया गदिता श्रीयुक्ता जगदम्बिका । यथागमं यथा किञ्चिदपरां संनिबोधमे ॥३७॥

माता चतुर्णां वेदानां वेदाङ्गानाञ्च छन्दसाम् ।

सन्ध्यावन्दनमन्त्राणां तन्त्राणाञ्च विचक्षणा ॥ ३८ ॥

द्विजातिजातिरूपा च जपरूपा तपस्विनी । ब्राह्मतेजोमयी शक्तिस्तदधिष्ठातृदेवता ॥ ३९
यत्पादरजसा पूतं जगत् सर्वञ्च नारद । देवी चतुर्थी कथिता पञ्चमीं वर्णयामि ते ॥
प्रेमप्राणाधिदेवी या पञ्चप्राणस्वरूपिणी । प्राणाधिकप्रियतमा सर्वाद्यासुन्दरी वरा ॥४१
सर्वसौभाग्ययुक्ता च मानिनी गौरवान्विता । वामार्द्धाङ्गस्वरूपा च गुणेन तेजसा मया ॥
परावरा सर्वव्रता परमाद्या सनातनी । परमानन्दरूपा च धन्या मान्या च पूजिता ॥४३॥
रासक्रीड़ाधिदेवी च कृष्णस्य परमात्मनः । रासमण्डलसंभूता रासमण्डलमण्डिता ॥
रासेश्वरीसुरसिका रासवासनिवासिनी । गोलोकवासिनी देवी गोपीवेशविधायिका
परमाह्लादरूपा च सन्तोषहर्षरूपिणी । निर्गुणा च निराकारा निर्लिप्तात्मस्वरूपिणी ॥४६
निरीहा निरहङ्कारा भक्तानुग्रहविग्रहा । वेदानुसारध्यानेन विज्ञाता सा विचक्षणैः ॥ ४७॥
दृष्टिदृष्टा सहस्रेषु सुरेन्द्रैर्मुनिपुङ्गवैः । वह्निशुद्धांशुकाधाना रत्नालङ्कारभूषिता ॥ ४८ ॥
कोटिचन्द्रप्रभामुष्टश्रीयुक्तभक्तविग्रहा । श्रीकृष्णभक्तदास्यैकदात्रिका सर्वसम्पदाम् ॥४९
अवतारे च वाराहे वृकभानुसुता च या । यत्पादपद्मसंस्पर्शपवित्रा च वसुन्धरा ॥ ५० ॥
ब्रह्मादिभिरदृष्टा या सर्वदृष्टा च भारते । स्त्रीरत्नसारसंभूता कृष्णवक्षःस्थलस्थिता ॥
तथा घने नवघने लोला सौदामिनी मुने ॥ ५१ ॥
षष्टिं वर्षसहस्राणि प्रतप्तं ब्रह्मणा पुरा । यत्पादपद्मनखरदृष्टये चात्मशुद्धये ॥
नच दृष्टश्च स्वप्नेऽपि प्रत्यक्षस्यापि का कथा ॥ ५२ ॥
तेनैव तपसा दृष्टा भूरि वृन्दावने वने । कथिता पञ्चमी देवी सा राधा परिकीर्त्तिता ॥
अंशरूपा कलारूपा कलांशांशसमुद्भवा । प्रकृतेः प्रतिविश्वेषु देवी च सर्वयोषितः ॥५४॥
परिपूर्णतमाः पञ्चविधा देव्यश्च कीर्त्तिताः । या या प्रधानांशरूपा वर्णयामि निशामय ॥
प्रधानांशस्वरूपा च गङ्गा भुवनपावनी । विष्णुविग्रहसंभूता द्रवरूपा सनातनी ॥५६॥
पापिपापेन्धदाहाय ज्वलदिन्धनरूपिणी । दर्शस्पर्शस्नानपानै र्निर्वाणपददायिनी ॥ ५७ ॥
गोलोकस्थानप्रस्थानसुसोपानस्वरूपिणी । पवित्ररूपा तीर्थानां सरिताञ्च परावरा ॥
शम्भुमौलिजटामेरुमुक्तापंक्तिस्वरूपिणी ॥ ५८ ॥
तपः सम्पादनी सद्यो भारते च तपस्विनाम् । शङ्खपद्मक्षीरनिभा शुद्धसत्त्वस्वरूपिणी ॥

निर्मला निरहङ्कारा साध्वी नारायणप्रिया ॥ ६१ ॥

प्रधानांशस्वरूपा च तुलसी विष्णुकामिनी । विष्णुभूषणरूपा च विष्णुपादस्थिता सती ॥

तपः सङ्कल्पपूजादिसद्यः सम्पादनी मुने । सारभूता च पुष्पाणां पवित्रा पुण्यदा सदा ॥

दर्शनस्पर्शनाभ्याञ्च सद्यो निर्वाणदायिनी । कलौ कलुषशुष्केध्मादाहनायाग्निरूपिणी ।६२

यत्पादपद्मसंस्पर्शात् सद्यःपूतावसुन्धरा । यत्स्पर्शदर्शंवाञ्छन्तितीर्थानि चात्मशुद्धये ॥

यया विना च विश्वेषु सर्वं कर्मातिनिष्फलम् ।

मोक्षदा य मुमुक्षूणां कामिनां सर्वकामदा ॥ ६४ ॥

कल्पवृक्षस्वरूपा च भारते विश्वरूपिणी । त्राणाय भारतानाञ्च पूजानां परदेवता ॥

प्रधानांशस्वरूपा च मनसा कश्यपात्मजा । शङ्करप्रियशिष्या च महाज्ञानविशारदा ॥

नागेश्वरस्यानन्तस्य भगिनी नागपूजिता । नागेश्वरी नागमाता सुन्दरी नागवाहिनी ॥

नागेन्द्रगणयुक्ता सा नागभूषणभूषिता । नागेन्द्रवन्दिता सिद्धयोगिनी नागवासिनी ॥

विष्णुभक्ता विष्णुरूपा विष्णुपूजापरायणा । तपः स्वरूपा तपसां फलदात्री तपस्विनी ।

दिव्यं त्रिलक्षवर्षञ्च तपस्ततं यया हरेः । तपस्विनीषु पूज्या च तपस्विषु च भारते ॥

सर्वमन्त्राधिदेवी च ज्वलन्ती ब्रह्मतेजसा । ब्रह्मस्वरूपा परमा ब्रह्मभावनतत्परा ॥ ७१॥

जरत्कारुमुनेः पत्नी कृष्णशम्भुपतिव्रता । आस्तीकस्य मुनेर्माता प्रवरस्य तपस्विनाम् ।

प्रधानांशस्वरूपा या देवसेना च नारद । मातृकासु पूज्यतमा साच षष्ठी प्रकीर्त्तिता । ७३

शिशूनांप्रतिविश्वेषु प्रतिपालनकारिणी । तपस्विनी विष्णुभक्ता कार्त्तिकेयस्यकामिनी ।

षष्ठांशरूपा प्रकृतेस्तेन षष्ठी प्रकीर्त्तिता । पुत्रपौत्राप्रदात्री च धात्री च जगतां सदा ।७५।

सुन्दरी युवती रम्या सततं भर्त्तुरन्तिके । स्थाने शिशूनां परमा वृद्धरूपा च योगिनी ॥

पूजा द्वादशमासेषु यस्याः षष्ठ्यास्तुसन्ततम् । पूजाच सूतिकागारे परषष्ठदिने शिशोः ॥

एकविंशतिमे चैव पूजा कल्याणहेतुकी । शश्वन्नियमिता चैषा नित्या काम्याप्यतःपरा ।

मातृरूपा दयारूपा शश्वद्रक्षणकारिणी । जले स्थले चान्तरीक्षे शिशूनां स्वप्नगोचरा ॥

प्रधानांशस्वरूपा या देवी मङ्गलचण्डिका । प्रकृतेर्मुखसंभूता सर्वमङ्गलदा सदा ॥८० ॥

सृष्टौ मङ्गलरूपा च संहारे कोपरूपिणी । तेन मङ्गलचण्डी सा पण्डितैःपरिकीर्त्तिता ॥

प्रतिमङ्गलवारेषु प्रतिविश्वेषु पूजिता । पञ्चोपचारैर्भक्त्याच योषिद्भिः परिपूजिता ॥८२
पुत्रपौत्रधनैश्वर्य्ययशोमंगलदायिनी । शोकसन्तापपापार्त्तिदुःखदारिद्र्यनाशिनी ॥८३॥
परितुष्टा सर्ववाञ्छाप्रदात्री सर्वयोषिताम् । रुष्टाक्षणेन संहर्त्तुं शक्ता विश्वं महेश्वरी ॥
प्रधानांशस्वरूपाच कालीकमललोचना । दुर्गाललाटसंभूता रणे शुम्भनिशुम्भयोः ॥८५॥
दुर्गार्द्धांशस्वरूपाच गुणेन तेजसा समा । कोटिसूर्य्यप्रभामुष्टपुष्टजाज्वल्यविग्रहा ॥८६॥
प्रधाना सर्वशक्तीनां वरा वलवती परा । सर्वसिद्धिप्रदा देवी परमा सिद्धियोगिनी ॥
कृष्णभक्ताकृष्णतुल्या तेजसा विक्रमैर्गुणैः । कृष्णभावनयाशश्वत् कृष्णवर्णासनातनी ॥
संहर्त्तुं सर्वब्रह्माण्डं शक्ता निःश्वासमात्रतः । रणंदैत्यैः समंतस्याःक्रीड़यालोकरक्षया ॥
धर्मार्थकाममोक्षांश्चदातुंशक्ता च पूजिता । ब्रह्मादिभिः स्तूयमाना मुनिभिर्मनुभिर्नरैः ।
प्रधानांशस्वरूपा च प्रकृतेश्च वसुन्धरा । आधारभूता सर्वेषां सर्वशस्यप्रसूतिका ॥९१॥
रत्नाकारा रत्नगर्भा सर्वरत्नाकराश्रया । प्रजादिभिः प्रजेशैश्च पूजिता वन्दिता सदा ॥
सर्वोपजीव्यरूपा च सर्वसम्पद्विधायिनी । यया विना जगत् सर्वं निराधारं चराचरम् ॥

प्रकृतेश्च कला या यास्ता निबोध मुनीश्वर ।
यस्य यस्य च या पत्न्यस्ता सर्वा वर्णयामि ते ॥ ९४ ॥

स्वाहादेवी वह्निपत्नी त्रिषु लोकेषु पूजिता । यया विना हविर्दत्तं न ग्रहीतुं सुराःक्षमाः ।
दक्षिणा यज्ञपत्नी च दीक्षा सर्वत्र पूजिता । यया विना विश्वेषु सर्वं कर्मच निष्फलम् ॥
स्वधा पितॄणां पत्नी च मुनिभिर्मनुभिर्नरैः । पूजिता पितृदानञ्च निष्फलञ्च ययाविना ।
स्वस्तिदेवी वायुपत्नी प्रतिविश्वेषु पूजिता । आदानञ्च प्रदानञ्च निष्फलञ्च यया विना ।
पुष्टिर्गणपतेः पत्नी पूजिता जगतीतले । यया विना परिक्षीणाः पुमांसो योषितोपि च ।
अनन्तपत्नी तुष्टिश्च पूजितावन्दितासदा । यया विना न सन्तुष्टा सर्वलोकाश्च सर्वतः ।
ईशानपत्नी सम्पत्तिः पूजिता च सुरैर्नरैः । सर्वे लोकादरिद्राश्च विश्वेषु च यया विना ।
धृतिः कपिलपत्नी च सर्वैः सर्वत्रपूजिता । सर्वेलोका अधैर्य्याश्च जगत्सु च यया विना ।
यमपत्नीक्षमा साध्वी सुशीला सर्वपूजिता । समुन्मत्ताश्चरुष्टाश्च सर्वेलोका यया विना ।
क्रीड़ाधिष्ठातृदेवी सा कामपत्नीरतिःसती । केलिकौतुकहीनाश्च सर्वेलोका यया विना ।

सत्यपत्नी सती मुक्तिःपूजिता जगतांप्रिया । ययाविना भवेल्लोको बन्धुता रहितःसदा ।
मोहपत्नीदयासाध्वीपूजिता च जगत्प्रिया । सर्वलोकाश्च सर्वत्र निष्ठुराश्च ययाविना ।
पुण्यपत्नी प्रतिष्ठा सा पुण्यरूपा च पूजिता । यया विना जगत् सर्वं जीवन्मृतसमं मुने ।
सुकर्मपत्नी कीर्त्तिश्चधन्यामान्या च पूजिता । ययाविना जगत् सर्वं यशोहीनंमृतंयथा ।
क्रिया उद्योगपत्नी च पूजिता सर्वसङ्गता । ययाविना जगत् सर्वमुच्छन्नमिव नारद ।
अधर्मपत्नी मिथ्यासा सर्वधूर्त्तैश्च पूजिता । ययाविनाजगत् सर्वमुच्छन्नंविधिनिर्मितम् ।
सत्ये अदर्शनाया च त्रेतायां सूक्ष्मरूपिणी । अर्द्धावयवरूपा च द्वापरे संवृता हि या ।
कलौमहाप्रगल्भा च सर्वत्र व्यापिकारणात् । कपटेन समं भ्राता भ्रमत्येव गृहे गृहे ।

शान्तिर्लज्जा च भार्य्ये द्वे सुशीलस्य च पूजिते ।
याभ्यां विना जगत् सर्वमुन्मत्तमिव नारद ॥ ११३ ॥
ज्ञानस्य तिस्रो भार्य्याश्च बुद्धिर्मेधा स्मृतिस्तथा ।
याभिर्विना जगत् सर्वं मूढ़ं मृतसमं सदा ॥ ११४ ॥

मूर्त्तिश्चधर्मपत्नी सा कान्तिरूपा मनोहरा । परमात्मा च विश्वौघानिराधारायया विना ।
सर्वत्रशोभारूपा च लक्ष्मीर्मूर्त्तिमतीसती । श्रीरूपामूर्त्तिरूपा च मान्या धन्या च पूजिता ।
कालाग्निरुद्रपत्नीचनिद्रासासिद्धयोगिनाम् । सर्वलोकाःसमाच्छन्ना मायायोगेनरात्रिषु ।

कालस्य तिस्रो भार्य्याश्च सन्ध्या रात्रिर्दिनानि च ।
याभिर्विना विधात्रा च संख्यां कर्त्तुं न शक्यते ॥ ११८ ॥

क्षुत्पिपासेलोभभार्य्येधन्येमान्येचपूजिते । याभ्यांव्याप्तंजगत्क्षोभयुक्तंचिन्तितमेवच ।
प्रभाचदाहिकाचैव द्वे भार्य्येतेजसस्तथा । याभ्यांविनाजगत्स्रष्टुंविधाता च न हीश्वरः ।
कालकन्येमृत्युजरेप्रज्वरस्य प्रिये प्रिये । याभ्यांजगत् समुच्छन्नं विधात्रानिर्मितेविधौ ।

निद्रा कन्या च तन्द्रा सा प्रीतिरन्या सुखप्रिये ।
याभ्यां व्याप्तं जगत् सर्वं विधिपुत्रविधेर्विधौ ॥ १२२ ॥
वैराग्यस्य च द्वे भार्य्ये श्रद्धा भक्तिश्च पूजिते ।

याभ्यां शश्वत् जगत् सर्वं जीवन्मुक्तिमिदं मुने ॥ १२३ ॥

अदितिर्देवमाता च सुरभिश्च गवां प्रसूः । दितिश्च दैत्यजननी कद्रूश्च विनता दनुः ॥
उपयुक्ताःसृष्टिविधौएताश्चप्रकृतेःकलाः । कलाश्चान्याःसन्तिवह्व्यस्तासुकाश्चिन्निबोधमे ।
रोहिणीचन्द्रपत्नीच संज्ञा सूर्य्यस्यकामिनी । शतरूपा मनोर्भार्य्या शचीन्द्रस्यच गेहिनी ॥
तारावृहस्पतेर्भार्य्या वशिष्ठस्याप्यरुन्धती । अहल्या गौतमस्त्री साप्यनसूयात्रिकामिनी ॥
देवहूती कर्दमस्य प्रसूतिर्दक्षकामिनी । पितॄणां मानसी कन्या मेनका साम्बिकाप्रसूः ॥
लोपामुद्रा तथाहूती कुवेरकामिनी तथा । वरुणानी यमस्त्री चवलेर्विन्ध्यावलीति च ॥
कुन्तीचदमयन्तीच यशोदादेवकीसती । गान्धारीद्रौपदीशैव्या सावित्रीसत्यवत्प्रिया ॥
वृषभानुप्रियासाध्वी राधामाता कलावती । मन्दोदरीच कौशल्या सुभद्राकैटभीतथा ॥
रेवती सत्यभामाच कालिन्दी लक्ष्मणातथा । जाम्बवती नाग्नजिती मित्रविन्दातथापरा ॥
लक्ष्मणारुक्मिणीसीतास्वयंलक्ष्मीःप्रकीर्त्तिता । कलायोजनगन्धाचव्यासमातामहासती
बाणपुत्री तथोषाच चित्ररेखाच तत्सखी । प्रभावती भानुमती तथा मायावती सती ॥
रेणुकाच भृगोर्माता हलिमाताच रोहिणी । एकानंशाचदुर्गासा श्रीकृष्णभगिनी सती ॥
वह्व्यः सन्ति कलाश्चैवं प्रकृतेरेव भारते । यायाश्च ग्रावदेव्यस्ताः सर्वाश्च प्रकृतेःकला ॥
कलांशांशसमुद्भूताः प्रतिविश्वेषु योषितः । योषितामपमानेन प्रकृतेश्चपराभवः ॥१३७
ब्राह्मणी पूजिता येन पतिपुत्रवती सती । प्रकृतिः पूजिता तेन वस्त्रालङ्कारचन्दनैः ॥
कुमारी चाष्टवर्षीया वस्त्रालङ्कारचन्दनैः । पूजितायेन विप्रस्य प्रकृतिस्तेन पूजिता ॥
सर्वाः प्रकृतिसम्भूता उत्तमाधममध्यमाः । सत्वांशाश्चोत्तमाः ज्ञेयाःसुशीलाश्च पतिव्रताः
मध्यमा रजसश्चांशास्ताश्च भोग्याः प्रकीर्त्तिताः ।
सुखसम्भोगवत्यश्च स्वकार्य्यतत्पराः सदा ॥ १४१ ॥
अधमास्तमसश्चांशा अज्ञातकुलसम्भवाः । दुर्मुखाः कुलटा धूर्त्ताः स्वतन्त्राः कलहप्रियाः
पृथिव्यां कुलटायाश्च स्वर्गे चाप्सरसांगणाः । प्रकृतेस्तमसश्चांशाःपुंश्चल्यःपरिकीर्त्तिताः
एवं निगदितं सर्वं प्रकृतेः परिकीर्त्तनम् । ताः सर्वाः पूजिताः पृथ्व्यां पुण्यक्षेत्रेचभारते
पूजिता सुरथेनादौ दुर्गा दुर्गतिनाशिनी । द्वितीये रामचन्द्रेण रावणस्य वधार्थिना ॥
तत्पश्चात् जगतां माता त्रिषु लोकेषु पूजिता ।

जातादौ दक्षपत्न्याश्च निहन्तु दैत्यदानवान् ॥ १४६ ॥

ततो देहं परित्यज्य यज्ञे भर्त्तुश्च निन्दया । जज्ञे हिमवतः पत्न्यां लेभे पशुपतिं पतिम् ॥
गणेशश्च स्वयं कृष्णः स्कन्दो विष्णुकलोद्भवः । बभूवतुस्तौ तनयौ पश्चात्तस्याश्चनारद ।
लक्ष्मीर्मङ्गलभूपेन प्रथमे परिपूजिता । त्रिषु लोकेषु तत्पश्चात् देवतामुनिमानवैः ।१४६।
सावित्री चापि प्रथमे भक्त्या च परिपूजिता । तत्पश्चात् त्रिषुलोकेषु देवतामुनिमानवैः
आदौ सरस्वती देवी ब्रह्मणा परिपूजिता । तत्पश्चात् त्रिषु लोकेषु देवतामुनिमानवैः ॥
प्रथमे पूजिता राधा गोलोके रासमण्डले । पौर्णमास्यां कार्त्तिकस्य कृष्णेनपरमात्मना
गोपिकाभिश्च गोपैश्च बालिकाभिश्च बालकैः । गवां गणैःसुरगणैस्तत्पश्चात्मायायाहरेः
तदा ब्रह्मादिभिर्देवैर्मुनिभिर्मनुभिस्तथा । पुष्पधूपादिभिर्भक्त्या पूजिता वन्दिता सदा ॥
पृथिव्यां प्रथमे देवी सयज्ञेन च पूजिता । शङ्करेणोपदिष्टेन पुण्यक्षेत्रे च भारते ।१५५॥
त्रिषु लोकेषु तत्पश्चादाज्ञया परमात्मनः । पुष्पधूपादिभिर्भक्त्या पूजिता मुनिभिः सुरैः
कला या याः सुसंभूता पूजितास्ताश्च भारते । पूजिता ग्रामदेव्यश्च ग्रामे च नगरे मुने ॥
एवं ते कथितं सर्वं प्रकृतेश्चरितं शुभम् । यथागमं लक्षणञ्च किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥
इति श्री ब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायण-नारदसंवादे प्रकृतिचरितसूत्रं नाम

प्रथमोऽध्यायः ।

—०—

द्वितीयोऽध्यायः ।

देवदेव्युत्पत्तिः ।

नारद उवाच ।

समासेन श्रुतं सर्वं देवीनां चरितं विभो ! । विबोधनाय बोधस्य व्यासेन वक्तुमर्हसि
सृष्टिराद्या सृष्टिविधौ कथमाविर्बभूव ह । कथं वा पञ्चधा भूता वद वेदविदांवर ॥२॥

भूता या याश्च कलया तया त्रिगुणया भवे ।
व्यासेन तासां चरितं श्रोतुमिच्छामि साम्प्रतम् ॥ ३ ॥

तासां जन्मानुकथनं ध्यानं पूजाविधिं परम् । स्तोत्रं कवचमैश्वर्यं शौर्यं वर्णय मङ्गलम्

श्रीनारायण उवाच ।

नित्यात्मा च नभो नित्यं कालो नित्यो दिशो यथा ।
विश्वेषां गोकुलं नित्यं नित्यो गोलोक एव च ॥ ५ ॥

तदेकदेशो वैकुण्ठो लम्बभागः स नित्यकः । तथैव प्रकृतिर्नित्या ब्रह्मलीना सनातनी ॥
यथाग्नौ दाहिका चन्द्रे पद्मे शोभाप्रभारवौ । शश्वद्युक्ता नभिन्नासातथाप्रकृतिरात्मनि
विना स्वर्णं स्वर्णकारः कुण्डलं कर्त्तुमक्षमः । विनामृदा कुलालोहि घटंकर्त्तुं न हीश्वरः
न हि क्षमस्तथा ब्रह्म सृष्टिं स्रष्टुं तया विना । सर्वशक्तिस्वरूपासातयाचशक्तिमान्सदा
ऐश्वर्य्यवचनःशक् च तिः पराक्रमवाचकः । तत्स्वरूपा तयोर्दात्रीयासाशक्तिःप्रकीर्तिता
समृद्धिबुद्धिसम्पत्तियशसां वचनो भगः । तेन शक्तिर्भगवती भगरूपा च सा सदा ११।

तया युक्तः सदात्मा च भगवांस्तेन कथ्यते ।
स च स्वेच्छामयः कृष्णः साकारश्च निराकृतिः ॥ १२ ॥

तेजोरूपं निराकारं ध्यायन्ते योगिनः सदा । वदन्ति ते परं ब्रह्म परमात्मानमीश्वरम् ॥
अदृष्टं सर्वद्रष्टारं सर्वज्ञं सर्वकारणम् । सर्वदं सर्वरूपान्तमरूपं सर्वपोषकम् ॥ १४ ॥
वैष्णवास्तं न मन्यन्ते तद्भक्ताः सूक्ष्मदर्शिनः । वदन्तीति कस्य तेजस्तेचतेजस्विनंविना
तेजोमण्डलमध्यस्थं ब्रह्मतेजस्विनं परम् । स्वेच्छामयं सर्वरूपं सर्वकारणकारणम् ॥
अतीवसुन्दरं रम्यं बिभ्रतं सुमनोहरम् । किशोरवयसं शान्तं सर्वकान्तं परात्परम् ॥१७
नवीननीरदाभासं रासैकश्यामसुन्दरम् । शरन्मध्याह्नपद्मौघशोभामोचनलोचनम् ॥१८॥
मुक्तासारविनिन्दैकदन्तपङ्क्तिमनोहरम् । मयूरपुच्छचूडश्च मालतीमाल्यमण्डितम् ॥
सुनसं सस्मितं शश्वद्भक्तानुग्रहकातरम् । ज्वलदग्निविशुद्धैकपीतांशुकसुशोभितम् २०॥
द्विभुजं मुरलीहस्तं रत्नभूषणभूषितम् । सर्वाधारश्च सर्वेशं सर्वशक्तियुतं विभुम् ॥२१॥
सर्वैश्वर्य्यप्रदं सर्वं स्वतन्त्रं सर्वमङ्गलम् । परिपूर्णतमं सिद्धं सिद्धिदं सिद्धिकारणम् ॥
ध्यायन्ते वैष्णवाः शश्वद्देवंरूपं सनातनम् । जन्ममृत्युजराव्याधिशोकभीतिहरं परम् ॥
ब्रह्मणो वयसा यस्य निमेष उपचर्य्यते । स चात्मा परमं ब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते ॥
कृषिस्तद्भक्तिवचनो नश्च तद्दास्यवाचकः । भक्तिदास्यप्रदाता यः स कृष्णः परिकीर्त्तितः ॥

कृषिश्च सर्ववचनो नकारो वीजवाचकः । सर्वं वीजं परं ब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते ॥२६
असंख्यब्रह्मणां पातेकालेऽतीतेऽपिनारद । यद्गुणानांनास्तिनाशस्ततसमानोगुणेनच ॥
स कृष्णः सर्वसृष्ट्यादौ सिसृक्षुरेक एव च । सृष्ट्योन्मुखस्तदंशेन कालेनप्रेरितः प्रभुः ॥
स्वेच्छामयःस्वेच्छयाचद्विधारूपोवभूवह । स्त्रीरूपावामभागांशादक्षिणांशःपुमान्स्मृतः॥
तां ददर्श महाकामी कामाधारः सनातनः । अतीवकमनीयाञ्च चारुचम्पकसन्निभाम् ॥
चन्द्रविम्वविनिन्दैकनितम्वयुगलां पराम् । सुचारुकदलीस्तम्भनिन्दितश्रोणिसुन्दरीम् ॥
श्रीयुक्श्रीफलाकारस्तनयुग्ममनोरमाम् । पुष्ट्या युक्तांसुललितांमध्यक्षीणांमनोहराम् ॥
अतीवसुन्दरींशान्तांसस्मितांवक्रलोचनाम् । वह्निशुद्धांशुकाधानां रत्नभूषणभूषिताम् ॥
शश्वचक्षुश्चकोराभ्यांपिवन्तींसन्ततंमुदा । कृष्णस्यमुखचन्द्रश्चचन्द्रकोटिविनिन्दितम् ॥
कस्तूरीविन्दुभिः सार्द्धमधश्चन्दनविन्दुना । समं सिन्दूरविन्दुञ्च भालमध्येचविभ्रतीम्॥
वङ्किमं कवरीभारं मालतीमाल्यभूषितम् । रत्नेन्द्रसारहारञ्च दधतीं कान्तकामुकीम् ॥
कोटिचन्द्रप्रभामुष्टपुष्टशोभासमन्विताम् । गमने च राजहंसगजखञ्जनगञ्जनीम् ॥ ३७ ॥
दृष्टिमात्रं तया सार्द्धं रासेशो रासमण्डले । रासोल्लासेषु रहसि रासक्रीड़ां चकार ह ॥
नानाप्रकारश्रृङ्गारं श्रृङ्गारो मूर्त्तिमानिव । चकार सुखसम्भोगं यावद्वै ब्रह्मणो वयः ॥
ततः सचपरिश्रान्तस्तस्यायोनौजगत्पिता । चकारवीर्य्याधानञ्चनित्यानन्दःशुभक्षणे ॥
गात्रतो योषितस्तस्याः सुरतान्ते च सुव्रत । निःससारश्रमजलंश्रान्तायास्तेजसाहरेः ॥
महारमणक्लिष्टाया निःश्वासश्च वभूव ह । तदाधारश्रमजलं तत् सर्वं विश्वगोलकम् ॥
स च निःश्वासवायुश्च सर्वाधारो वभूव ह । निःश्वासवायुःसर्वेषांजीविनाञ्चभवेषुच॥
वभूवमूर्त्तिमद्वायोर्वामाङ्गात्प्राणवल्लभा । तत्पत्नीसाचतत्पुत्राः प्राणाःपञ्चचजीविनाम् ॥
प्राणोऽपानः समानश्चैवोदानो व्यान एव च । वभूवुरेवतत्पुत्राअधःप्राणाश्च पञ्च च ॥
धर्मतोयाधिदेवश्च वभूव वरुणो महान् । तद्वामाङ्गाच्च तत्पत्नी वरुणानी वभूव सा ॥
अथ सा कृष्णशक्तिश्च कृष्णाद्गर्भं दधार ह । शतमन्वन्तरं यावज्ज्वलन्ती ब्रह्मतेजसा ॥

कृष्णप्राणाधिदेवी सा कृष्णप्राणाधिकप्रिया ।
कृष्णस्य सङ्गिनी शश्वत् कृष्णवक्षःस्थलस्थिता ॥४८॥

शतमन्वन्तरातीतकालेऽतीतेऽपि सुन्दरी । सुषाव डिम्बंस्वर्णाभंविश्वाधारालयंपरम् ॥
दृष्ट्वा डिम्बञ्च सा देवी हृदयेन विभूषिता । उत्ससर्ज च कोपेन ब्रह्माण्डं गोलके जले ॥
दृष्ट्वा कृष्णश्च तत्त्यागं हाहाकारं चकार ह । शशाप देवीं देवेशस्तत्क्षणञ्चयथोचितम् ॥
यतोऽपत्यं त्वया त्यक्तंकोपशीले सुनिष्ठुरे । भवत्वमनपत्यापिचाद्यप्रभृतिनिश्चितम् ॥
या यास्तदंशरूपा चभविष्यन्तिसुरस्त्रियः । अनपत्याश्चताःसर्वास्तत्समानित्ययौवनाः ॥
एतस्मिन्नन्तरे देवी जिह्वाग्रात् सहसा ततः । आविर्बभूव कन्यैका शुक्लवर्णा मनोहरा ॥
पीतवस्त्रपरीधाना वीणापुस्तकधारिणी । रत्नभूषणभूषाढ्या सर्वशास्त्राधिदेवता ॥५५॥
अथ कालान्तरे सा च द्विधारूपावभूव ह । वामार्द्धाङ्गाचकमलादक्षिणार्द्धाचराधिका ॥
एतस्मिन्नन्तरे कृष्णो द्विधारूपो बभूव ह । दक्षिणार्द्धश्च द्विभुजो वामार्द्धश्च चतुर्भुजः ॥
उवाच वाणीं श्रीकृष्णस्त्वमस्य कामिनी भव । अत्रैवमानिनीराधानैवभद्रं भविष्यति ॥
एवं लक्ष्मीञ्च प्रददौ तुष्टो नारायणाय च । स जगामचवैकुण्ठंताभ्यांसार्द्धंजगत्पतिः ॥
अनपत्ये च ते द्वे च यतो राधांशसम्भवा । भूता नारायणाङ्गाच्च पार्षदाश्च चतुर्भुजाः ॥
तेजसा वयसा रूपगुणाभ्याञ्च समा हरेः । बभूवुःकमलाङ्गाचदासीकोट्यश्च तत्समाः ॥
अथ गोलोकनाथस्य लोम्नां विवरतोमुने । भूताश्चासंख्यगोपाश्चवयसातेजसा समाः ॥
रूपेण च गुणेनैव वेशेन विक्रमेण च । प्राणतुल्यप्रियाः सर्वे बभूवुः पार्षदा विभोः ॥
राधाङ्गलोमकूपेभ्यो बभूवुर्गोपकन्यकाः । राधातुल्याश्च सर्वास्ताःराधातुल्याःप्रियंवदाः
रत्नभूषणभूषाढ्याः शश्वत्सुस्थिरयौवनाः । अनपत्याश्चताः सर्वाः पुंसःशापेन सन्ततम्
एतस्मिन्नन्तरे विप्र सहसा कृष्णदेहतः । आविर्बभूव सा दुर्गा विष्णुमाया सनातनी ॥
देवी नारायणीशानी सर्वशक्तिस्वरूपिणी । बुद्ध्यधिष्ठातृदेवी सा कृष्णस्य परमात्मनः
देवीनां वीजरूपा च मूलप्रकृतिरीश्वरी । परिपूर्णतमा तेजःस्वरूपा त्रिगुणात्मिका ॥
तप्तकाञ्चनवर्णाभा सूर्य्यकोटिसमप्रभा । ईषद्धास्यप्रसन्नास्या सहस्रभुजसंयुता ॥ ६६॥
नानाशास्त्रास्त्रनिकरं बिभ्रती सा त्रिलोचना । वह्निशुद्धांशुकाधाना रत्नभूषणभूषिता ॥
यस्याश्चांशांशकलया बभूवुः सर्वयोषितः । सर्वविश्वस्थिता लोका मोहितामाययायया
सर्वैश्वर्य्यप्रदात्री च कामिनां गृहवासिनाम् । कृष्णभक्तिप्रदात्रीचवैष्णवानाञ्च वैष्णवी

मुमुक्षूणां मोक्षदात्रीसुखिनांसुखदायिनी। स्वर्गेषु स्वर्गलक्ष्मीःसागृहलक्ष्मीर्गृहेष्वसौ
तपस्विषु तपस्या च श्रीरूपासा नृपेषु च। या चाग्नौदाहिकारूपा प्रभारूपा च भास्करे
शोभास्वरूपा चन्द्रे च पद्मेषु च सुशोभना। सर्वशक्तिस्वरूपा या कृष्णे परमात्मनि॥

यया च शक्तिमानात्मा यया च शक्तिमज्जगत्।
यया विना जगत् सर्वं जीवन्मृतमिव स्थितम्॥ ७६॥

या च संसारवृक्षस्य वीजरूपासनातनी। स्थितिरूपा वुद्धिरूपा फलरूपा च नारद॥

क्षुत्पिपासा दया श्रद्धा निद्रा तन्द्रा क्षमा धृतिः।
शान्तिर्लज्जा तुष्टिपुष्टिभ्रान्तिकान्त्यादिरूपिणी॥ ७८॥

सा च संस्तूय सर्वेशं तत्पुरः समुवास ह। रत्नसिंहासनं तस्यै प्रददौ राधिकेश्वरः॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र सस्त्रीकश्च चतुर्मुखः। पद्मनाभो नाभिपद्मान्निःससार पुमान् मुने॥
कमण्डलुधरः श्रीमांस्तपस्वी ज्ञानिनां वरः। चतुर्मुखस्तं तुष्टाव प्रज्वलन् ब्रह्मतेजसा॥
सुन्दरी सुन्दरीश्रेष्ठा शतचन्द्रसमप्रभा। वह्निशुद्धांशुकाधाना रत्नभूषणभूषिता ॥ ८२॥
रत्नसिंहासने रम्ये संस्तूय सर्वकारणम्। उवास स्वामिना सार्द्धं कृष्णस्य पुरतोमुदा
एतस्मिन्नन्तरे कृष्णो द्विधारूपो वभूव सः। वामार्द्धाङ्गीमहादेवोदक्षिणोगोपिकापतिः
शुद्धस्फटिकसङ्काशः शतकोटिरविप्रभः। त्रिशूलपट्टिशधरो व्याघ्रचर्मधरो हरः ॥८५॥
तप्तकाञ्चनवर्णाभजटाभारधरः परः। भस्मभूषणगात्रश्च सस्मितश्चन्द्रशेखरः॥ ८६॥
दिगम्बरो नीलकण्ठः सर्पभूषणभूषितः। विभ्रद्दक्षिणहस्तेन रत्नमालां सुसंस्कृताम्॥
प्रजपन् पञ्चवक्त्रेण ब्रह्मज्योतिः सनातनम्। सत्यस्वरूपं श्रीकृष्णं परमात्मानमीश्वरम्
कारणं कारणानाञ्च सर्वमङ्गलमङ्गलम्। जन्ममृत्युजराव्याधिशोकभीतिहरंपरम् ॥८९॥
संस्तूय मृत्योर्मृत्युं तं जातोमृत्युञ्जयाभिधः। रत्नसिंहासने रम्ये समुवास हरेःपुरः॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे देवदेव्युत्पत्तिर्नाम
द्वितीयोऽध्यायः।

तृतीयोऽध्यायः

विश्वनिर्णयवर्णनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

अथ डिम्बोजले तिष्ठन् यावद्वै ब्रह्मणो वयः । ततःस्वकालेसहसाद्विधारूपो बभूव सः॥
तन्मध्ये शिशुरेकश्च शतकोटिरविप्रभः । क्षणं रोरूयमाणश्च स्तनान्धः पीड़ितः क्षुधा॥२॥
पितृमातृपरित्यक्तो जलमध्ये निराश्रयः । ब्रह्माण्डासंख्यनाथो यो ददर्शोद्र्ध्वमनाथवत्
स्थूलात्स्थूलतमःसोऽपिनाम्नादेवोमहाविराट् । परमाणुर्यथासूक्ष्मात्परःस्थूलात्तथाप्यसौ
तेजसांषोड़शांशोऽयंकृष्णस्यपरमात्मनः। आधारोऽसंख्यविश्वानांमहाविष्णुश्चप्राकृतः॥
प्रत्येकं रोमकूपेषु विश्वानि निखिलानिच । अद्यापितेषांसंख्याञ्चकृष्णोवक्तुंनहिक्षमः॥
संख्या चेद्रजसामस्ति विश्वानां नकदाचन । ब्रह्मविष्णुशिवादीनांतथासंख्यानविद्यते ॥
प्रतिविश्वेषुसन्त्येवंब्रह्मविष्णुशिवादयः । पातालाद्ब्रह्मलोकान्तंब्रह्माण्डंपरिकीर्त्तितम् ॥
तत ऊद्र्ध्वे च वैकुण्ठो ब्रह्माण्डाद् वहिरेव सः । सचसत्यस्वरूपश्चशश्वन्नारायणोयथा
तदूद्र्ध्वे चैव गोलोकः पञ्चाशत् कोटियोजनात् ।
नित्यः सत्यस्वरूपश्च यथा कृष्णस्तथाप्ययम् ॥१०॥
सप्तद्वीपमिता पृथ्वी सप्तसागरसंयुता । ऊनपञ्चाशदुपद्वीपासंख्यशैलवनान्विता ॥ ११॥
ऊद्र्ध्वं सप्त चस्वर्लोकाब्रह्मलोकसमन्विताः । पातालानिचसप्ताधश्चैवंब्रम्हाण्डमेवच ॥
ऊद्र्ध्वं धरायाभूर्लोकोभुवर्लोकस्ततःपरः । स्वर्लोकस्तुततःपश्चान्महर्लोकस्ततोजनः ॥
ततःपरस्तपोलोकःसत्यलोकस्ततःपरः । ततःपरोब्रह्मलोकस्तप्तकाञ्चननिर्मितः ॥ १४ ॥
एवं सर्वं कृत्रिमञ्च धराभ्यन्तर एव च । तद्विनाशे विनाशश्च सर्वेषामेव नारद ॥ १५ ॥
जलबुद्बुदवत्सर्वंविश्वसंघमनित्यकम् । नित्यौगोलोकवैकुण्ठौसत्यौशश्वदकृत्रिमौ ॥
लोमकूपेचब्रह्माण्डंप्रत्येकमस्यनिश्चितम् । एषांसंख्यानजानातिकृष्णोऽन्यस्यापिकाकथा।
प्रत्येकं प्रतिब्रह्माण्डे ब्रह्मविष्णुशिवादयः । तिस्रः कोट्यःसुराणाञ्चसंख्यासर्वत्रपुत्रक ॥
दिगीशाश्चैव दिक्पाला नक्षत्राणि ग्रहादयः । भुविवर्णाश्चचत्वारोऽधोनागाश्चराचराः ॥

अथ कालेन स विराडूद्र्ध्वं दृष्ट्वा पुनः पुनः। डिम्बान्तरञ्च शून्यञ्च न द्वितीयं कथञ्चन ॥

चिन्तामवाप क्षुद्युक्तो रुरोद च पुनः पुनः । ज्ञानं प्राप्य तदाद्ध्यौकृष्णःपरमपूरुषम् ॥
ततो ददर्श तत्रैव ब्रह्मज्योतिः सनातनम् । नवीननीरदश्यामं द्विभुजं पीतवाससम् ॥२२
सस्मितं मुरलीहस्तं भक्तानुग्रहकारकम् । जहास बालकस्तुष्टो दृष्ट्वा जनकमीश्वरम् ॥
वरं तस्मै ददौ तुष्टो वरेशः समयोचितम् । मत्समो ज्ञानयुक्तश्चक्षुत्पिपासाविवर्जितः ॥
ब्रह्माण्डासंख्यनिलयो भव वत्स लयावधि ।
निष्कामो निर्भयश्चैव सर्वेषां वरदोवरः । जरामृत्युरोगशोकपीड़ादिपरिवर्जितः ॥२५
इत्युक्त्वा तद्दक्षकर्णे महामन्त्रं षड़क्षरम् । त्रिः कृत्वा प्रजजापादौवेदागमवरं परम् ॥२६
प्रणवादिचतुर्थ्यन्तं कृष्ण इत्यक्षरद्वयम् । वह्निज्वालान्तमिष्टश्च सर्वविघ्नहरं परम् ॥२७।
मन्त्रं दत्त्वा तदाहारं कल्पयामास वै प्रभुः । श्रूयतां तद्ब्रह्मपुत्र निबोधकथयामि ते ॥
प्रतिविश्वे यन्नैवेद्यं ददाति वैष्णवो जनः । षोड़शांशंविषयिणोविष्णोःपञ्चदशास्यवै ॥
निर्गुणस्यात्मनश्चैव परिपूर्णतमस्य च । नैवेद्येन च कृष्णस्य नहिकिञ्चित्प्रयोजनम् ॥
यद् ददाति च नैवेद्यं यस्मै देवाय यो जनः । सचखादतितत्सर्वंलक्ष्मीदृष्ट्या·पुनर्भवेत् ॥
तञ्च मन्त्रं वरं दत्त्वा तमुवाच पुनर्विभुः । वरमन्यं किमिष्टन्ते तन्मे ब्रूहि ददामिते ॥३२
कृष्णस्य वचनं श्रुत्वा तमुवाच महाविराट् । अदन्तो बालकस्तत्र वचनंसमयोचितम् ॥

महाविराट् उवाच ।

वरं मे त्वत्पदाम्भोजे भक्तिर्भवतु निश्चला । सन्ततं यावदायुर्मे क्षणं वा सुचिरञ्चवा ॥
त्वद्भक्तियुक्तोयोलोकेजीवन्मुक्तःससन्ततम् । त्वद्भक्तिहीनोमूर्खश्चजीवन्नपिमृतोहि सः ॥
किं तज्जपेन तपसा यज्ञेन पूजनेन च । व्रतेनैवोपवासेन पुण्येन तीर्थसेवया ॥ ३६ ॥
कृष्णभक्तिविहीनस्य मूर्खस्य जीवनं वृथा । येनात्मना जीवितश्च तमेवनहि मन्यते ॥३७
यावदात्माशरीरेऽस्तितावत्सशक्तिसंयतः । पश्चाद्यान्तिगतेतस्मिन्नस्वतन्त्राश्चशक्तयः॥
स च त्वञ्चमहाभागसर्वात्माप्रकृतेःपरः । स्वेच्छामयश्चसर्वाद्योब्रह्मज्योतिः सनातनः ॥
इत्युक्त्वा बालकस्तत्र विरराम च नारद । उवाच कृष्णःप्रत्युक्तिमधुरां श्रुतिसुन्दरीम् ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

सुचिरं सुस्थिरं तिष्ठ यथाहं त्वं तथा भव । ब्रह्मणोऽसंख्यपाते च पातस्तेनभविष्यति ॥

अंशेन प्रतिब्रह्माण्डे त्वञ्च पुत्र विराट् भव । त्वन्नाभिपद्मेब्रह्माचविश्वस्त्रष्टाभविष्यति॥
ललाटे ब्रह्मणश्चैव रुद्रश्चैकादशैव तु । शिवांशेन भविष्यन्ति सृष्टिसञ्चरणाय वै ॥४३
कालाग्निरुद्रस्तेष्वेको विश्वसंहारकारकः । पाताविष्णुश्च विषयीक्षुद्रांशेनभविष्यति॥
मद्भक्तियुक्तः सततं भविष्यसि वरेण मे । ध्यानेन कमनीयं मांनित्यंद्रक्ष्यसिनिश्चितम्॥
मातरं कमनीयाञ्चममवक्षःस्थलस्थिताम् । यामिलोकंतिष्ठवत्सेत्युक्त्वासोऽन्तरधीयत॥
गत्वा स्वर्लोकं ब्रह्माणं शङ्करं स उवाच ह । स्त्रष्टारं स्त्रष्टुमीशञ्च संहर्त्तारञ्चतत्क्षणम्॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

सृष्टिं स्त्रष्टुं गच्छ वत्स नाभिपद्मोद्भवोभव । महाविराट्लोमकूपे क्षुद्रस्यचविधेःशृणु॥
गच्छ वत्स महादेवं ब्रह्मभालोद्भवो भव । अंशेन च महाभाग स्वयञ्च सुचिरं तपः॥
इत्युक्त्वा जगतां नाथो विरराम विधेः सुतः । जगामनत्वातंब्रह्माशिवश्चशिवदायकः॥
महाविराट्लोमकूपे ब्रह्माण्डगोलके जले । स बभूव विराट् क्षुद्रोविराड़ंशेनसाम्प्रतम्॥
श्यामो युवा पीतवासाःशयानोजलतल्पके । ईषद्धास्यःप्रसन्नास्योविश्वरूपीजनार्दनः॥
तन्नाभिकमले ब्रह्मा बभूव कमलोद्भवः । संभूय पद्मदण्डञ्च बभ्राम युगलक्षकः ॥ ५२॥
नान्तं जगाम दण्डस्य पद्मनाभस्य पद्मजः । नाभिजस्य च पद्मस्यचिन्तामापपितामहः॥
स्वस्थानं पुनरागत्य दध्यौ कृष्णपदाम्बुजम् । ततो ददर्श क्षुद्रं तं ध्यानेन दिव्यचक्षुषा॥
शयानं जलतल्पे च ब्रह्माण्डगोलकावृते । यल्लोमकूपे ब्रह्माण्डं तञ्च तत् परमीश्वरम्॥५६
श्रीकृष्णञ्चापि गोलोकं गोपगोपीसमन्वितम् । तं संस्तूय वरंप्रापततःसृष्टिंचकारसः॥
बभूवुर्ब्रह्मणः पुत्रा मानसाः सनकादयः । ततो रुद्राः कपालाच्च शिवांशैकादशस्मृताः॥
बभूव पाता विष्णुश्च क्षुद्रस्य वामपार्श्वतः । चतुर्भुजश्च भगवान्श्वेतद्वीपनिवासकृत्॥
क्षुद्रस्य नाभिपद्मे च ब्रह्म विश्वं ससर्ज सः । स्वर्गंमर्त्यञ्चपातालंत्रिलोकंसचराचरम्॥
एवंसर्वंलोमकूपे विश्वं प्रत्येकमेव च । प्रतिविश्वे क्षुद्रविराट् ब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥६१
इत्येवं कथितं वत्स कृष्णसङ्कीर्त्तनं शुभम् । सुखदंमोक्षदंसारंकिंभूयःश्रोतुमिच्छसि॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डेनारायणनारदसंवादेविश्वनिर्णयवर्णनंनाम तृतीयोऽध्यायः ।

चतुर्थोऽध्यायः

सरस्वतीपूजाविधानं मन्त्रश्च ।

नारद उवाच ।

श्रुतं सर्वमपूर्वञ्च त्वत्प्रसादात् सुधोपमम् । अधुना प्रकृतीनाञ्च व्यासं वर्णय पूजनम् ॥

कस्याः पूजा कृता केन कथं मर्त्ये प्रकाशिता ।

केन वा पूजिता कावा केन का वा स्तुता मुने ॥ २ ॥

कवचंस्तोत्रमन्त्रञ्च प्रभावंचरितंशुभम् । काभिःकाभ्योवरो दत्तस्तन्मेव्याख्यातुमर्हसि॥

नारायण उवाच ।

गणेशजननीदुर्गाराधा लक्ष्मीःसरस्वती । सावित्रीचसृष्टिविधौ प्रकृतिःपञ्चधास्मृता ॥

आसीत् पूजा प्रसिद्धाच प्रभावः परमाद्भुतः । सुधोपमञ्च चरितं सर्वमङ्गलकारणम् ॥

प्रकृत्यंशाःकलायाश्च तासाञ्च चरितंशुभम् । सर्वंवक्ष्यामिते ब्रह्मन् सावधानं निशामय॥

वाणी वसुन्धरागङ्गा षष्ठी मङ्गलचण्डिका । तुलसीमनसा निद्रास्वाहास्वधाच दक्षिणा ॥

तेजसा मत्समास्ताश्च रूपेण च गुणेन च ॥ ८ ॥

संक्षेपमासाञ्चरितं पुण्यदं श्रुतिसुन्दरम् । जीवकर्मविपाकञ्च तच्च वक्ष्यामि सुन्दरम् ॥

दुर्गायाश्चैव राधाया विस्तीर्णं चरितंमहत् । तच्च पश्चात् प्रवक्ष्यामि संक्षेपंक्रमतःश्रृणु॥

आदौ सरस्वतीपूजा श्रीकृष्णेन विनिर्मिता । यत्प्रसादान्मुनिश्रेष्ठ मूर्खो भवति पण्डितः॥

आविर्भूतायदा देवी वक्त्रतः कृष्णयोषितः । इयेष कृष्णं कामेन कामुकी कामरूपिणी ॥

स च विज्ञाय तद्भावंसर्वज्ञः सर्वमातरम् । तामुवाच हितंसत्यं परिणामसुखावहम् ॥१३

श्रीकृष्ण उवाच ।

भज नारायणं साध्वि ! मदंशञ्च चतुर्भुजम् । युवानं सुन्दरं सर्वगुणयुक्तञ्च मत्समम् ॥

कामदंकामिनीनाञ्च तासाञ्च कामपूरकम् । कोटिकन्दर्पलावण्यं लीलान्यकृतमीश्वरम् ॥

कान्तेकान्तञ्चमांकृत्वा यदि स्थातुमिहेच्छसि । त्वत्तोबलवतीराधा नतेभद्रंभविष्यति ।

योयस्माद्बलवान्वाणि! ततोऽन्यंरक्षितुंक्षमः । कथंपरान्साधयतियदिस्वयमनीश्वरः ॥
सर्वेशः सर्वशास्ताहं राधां राधितुमक्षमः । तेजसा मत्समा साच रूपेण च गुणेन च ॥
प्राणाधिष्ठातृदेवीसाप्राणांस्त्यक्तुञ्चकःक्षमः । प्राणतोऽपिप्रियःकुत्रकेषांवास्तिचकश्चन ॥
त्वंभद्रेगच्छ वैकुण्ठं तवभद्रं भविष्यति । पतिन्तमीश्वरं कृत्वा मोदस्वसुचिरं सुखम् ॥
लोभमोहकामकोपमानहिंसाविवर्जिता । तेजसा त्वत्समा लक्ष्मी रूपेण च गुणेण च ।
तयासार्द्धंभव प्रीत्याशश्वत् कालंप्रयास्यति । गौरवंमद्वरात् तुल्यं करिष्यतिपतिर्द्वयोः ॥
प्रतिविश्वेषु ते पूजा महतींते मुदान्विताः । माघस्य शुक्लपञ्चम्यां विद्यारम्भेषु सुन्दरि ॥
मानवामनवोदेवा मुनीन्द्राश्च मुमुक्षवः । सन्तश्चयोगिनः सिद्धानागगन्धर्वकिन्नराः ॥
मद्वरेण करिष्यन्तिकल्पे कल्पेयथाविधि । भक्तियुक्ताश्च दत्त्वावै चोपचारांश्चषोड़श ॥
काण्वशाखोक्तविधिना ध्यानेनस्तवनेनच । जितेन्द्रियाःसंयताश्च घटेचपुस्तकेऽपिच ॥
कृत्वासुवर्णगुटिकां गन्धचन्दनचर्च्चिताम् । कवचन्ते ग्रहीष्यन्तिकण्ठे वा दक्षिणे भुजे ॥
पठिष्यन्तिच विद्वांसः पूजाकालेच पूजिते । इत्युक्त्वा पूजयामास तां देवीं सर्वपूजितः ।
ततस्तत्पूजनंचक्रुर्ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः । अनन्तश्चापि धर्मश्च मुनीन्द्राः सनकादयः ।२६।
सर्वे देवाश्च मनवो नृपाश्च मानवादयः । बभूव पूजिता नित्या सर्वलोकैः सरस्वती ॥

नारद उवाच ।

पूजाविधानं स्तवनं ध्यानं कवचमीप्सितम् । पूजोपयुक्तं नैवेद्यं पुष्पञ्च चन्दनादिकम् ॥
वद वेदविदां श्रेष्ठ श्रोतुं कौतूहलं मम । वर्द्धते साम्प्रतं शश्वत् किमिदं श्रुतिसुन्दरम् ॥

नारायण उवाच ।

शृणु नारद वक्ष्यामि काण्वशाखोक्तपद्धतिम् ।
जगन्मातुः सरस्वत्याः पूजाविधिसमन्विताम् ॥ ३३ ॥

माघस्यशुक्लपञ्चम्यां विद्यारम्भदिनेऽपि च । पूर्वेऽह्नि संयमंकृत्वातत्राह्नि संयतःशुचिः ॥
स्नात्वा नित्यक्रियां कृत्व घटं संस्थाप्य भक्तितः । संपूज्य देवषट्कञ्च नैवेद्यादिभिरेवच ॥
गणेशञ्चदिनेशञ्चवह्निं विष्णुंशिवंशिवाम् । संपूज्य संयतोऽग्रेच ततोऽभीष्टं प्रपूजयेत् ॥
ध्यानेनवक्ष्यमाणेन ध्यात्वाबाह्यघटेबुधः । ध्यात्वा पुनः षोड़शोपचारेण पूजयेद्व्रती ॥

पूजोपयुक्तंनैवेद्यं यद्यद्वेदे निरूपितम् । वक्ष्यामिसाम्प्रतं किञ्चिद्यथाधीतंयथागमम् ॥
नवनीतं दधिक्षीरं लाजाश्च तिललड्डुकम् । इक्षुमिक्षुरसं शुक्लवर्णं पक्वगुड़ं मधु ॥३६॥
स्वस्तिकंशर्करां शुक्लधान्यस्याक्षतमक्षतम् । अस्विन्नशुक्लधान्यस्य पृथुकं शुक्लमोदकम् ॥
घृतसैन्धवसंस्कारैर्हविष्यान्नञ्च व्यञ्जनैः । यवगोधूमचूर्णानां पिष्टकं घृतसंस्कृतम् ॥४१॥
पिष्टकं स्वस्तिकस्यापि पक्वरम्भाफलस्यच । परमान्नञ्च सघृतंमिष्टान्नञ्च सुधोपमम् ॥
नारिकेलं तदुदकं केशरं मूलमार्द्रकम् । पक्वरम्भाफलं चारु श्रीफलं वदरीफलम् ॥
कालदेशोद्भवं पक्वफलं शुक्लं सुसंस्कृतम् ॥ ४३ ॥
सुगन्धि शुक्लपुष्पञ्च सुगन्धि शुक्लचन्दनम् । नवीनशुक्लवस्त्रञ्च शङ्खञ्च सुमनोहरम् ॥
माल्यञ्च शुक्लपुष्पाणां शुक्लहारञ्च भूषणम् ॥ ४४ ॥
यद् दृष्टञ्च श्रुतौ ध्यानं प्रशस्यं श्रुतिसुन्दरम् । तन्निवोध महाभाग भ्रमभञ्जनकारणम् ॥
सरस्वतीं शुक्लवर्णां सस्मितां सुमनोहरम् । कोटिचन्द्रप्रभामुष्टपुष्टश्रीयुक्तविग्रहाम् ।४६।
वह्निशुद्धांशुकाधानां सस्मितां सुमनोहराम् । रत्नसारेन्द्रनिर्माणवरभूषणभूषिताम् ॥४७॥
सुपूजितां सुरगणैर्ब्रह्मविष्णुशिवादिभिः । वन्दे भक्त्या वन्दितां तां मुनीन्द्रमनुमानवैः ॥
एवं ध्यात्वाचमूलेन सर्वं दत्त्वा विचक्षणः । संस्तूय कवचं धृत्वा प्रणमेद्दण्डवद्भुवि ॥
येषाञ्चेयमिष्टदेवी तेषां नित्यक्रिया मुने । विद्यारम्भेच सर्वेषां वर्षान्ते पञ्चमीदिने ॥५०
सर्वोपयुक्तो मूलञ्च वैदिकाष्टाक्षरःपरः । येषां येनोपदेशो वा तेषां स मूल एव च ॥
सरस्वतीचतुर्थ्यन्तो वह्निजायान्त एव च ॥ ५१ ॥
श्रीं ह्रीं स्वरस्वत्यै स्वाहा । लक्ष्मीमायादिकश्चैव मन्त्रोऽयं कल्पपादपः ॥ ५२ ॥
पुरा नारायणश्चेमं वाल्मीकाय कृपानिधिः । प्रददौ जाह्नवीतीरे पुण्यक्षेत्रे च भारते ॥
भृगुर्ददौ च शुक्राय पुष्करे सूर्य्यपर्वणि । चन्द्रपर्वणि मारीचो ददौ वाक्पतये मुदा ॥
भृगवेच ददौ तुष्टो ब्रह्मा वदरिकाश्रमे । आस्तिकाय जरत्कारुर्ददौ क्षीरोदसन्निधौ ॥
विभाण्डको ददौ मेरौ ऋष्यश्रृङ्गाय धीमते ॥ ५५ ॥
शिवः कणादमुनये गौतमाय ददौ मुने । सूर्य्यञ्च याज्ञवल्क्याय तथा कात्यायनायच ॥
शेषः पाणिनयेचैव भरद्वाजाय धीमते । ददौ शाकटायनाय सुतले बलिसंसदि ॥ ५७॥

चतुर्लक्षजपेनैव मन्त्रसिद्धिर्भवेन्नृणाम् । यदिस्यात् सिद्धमन्त्रोहि वृहस्पतिसमोभवेत्॥
कवचंश्रृणु विप्रेन्द्र यद् दत्तं विधिना पुरा । विश्वश्रेष्ठं विश्वजयं भृगवे गन्धमादने ॥

भृगुरुवाच ।

ब्रह्मन् ब्रह्मविदां श्रेष्ठ ब्रह्मज्ञानविशारद । सर्वज्ञ सर्वजनक सर्वेश सर्वपूजित ॥ ६० ॥
सरस्वत्याश्च कवचं ब्रूहि विश्वजयं प्रभो । अजातमायमन्त्राणां समूहसंयुतं परम् ॥

ब्रह्मोवाच ।

श्रृणु वत्स प्रवक्ष्यामिकवचं सर्वकामदम् । श्रुतिसारं श्रुतिसुखं श्रुत्युक्तं श्रुतिपूजितम् ॥
उक्तं कृष्णेन गोलोके मह्यं वृन्दावने वने । रासेश्वरेण विभुना रासेन रासमण्डले ।६३।
अतीवगोपनीयञ्च कल्पवृक्षसमं परम् । अश्रुताद्भुतमन्त्राणां समूहैश्च समन्वितम् ॥६४
यद्धृत्वापठनाद् ब्रह्मन् बुद्धिमांश्च वृहस्पतिः । यद्धृत्वा भगवान् शुक्रःसर्वदैत्येषु पूजितः।

पठनाद्धारणाद् वाग्मी कवीन्द्रो वाल्मिको मुनिः ।
स्वायम्भुवो मनुश्चैव यद् धृत्वा सर्वपूजितः ॥ ६६ ॥
कणादो गौतमः कण्वः पाणिनिः शाकटायनः ।
ग्रन्थञ्चकार यद् धृत्वा दक्षः कात्यायनः स्वयम् ॥ ६७ ॥

धृत्वा वेदविभागञ्च पुराणान्यखिलानि च । चकार लीलामात्रेण कृष्णद्वैपायनःस्वयम्।
शातातपश्च संवर्त्तो वशिष्ठश्च पराशरः। यद् धृत्वा पठनाद् ग्रन्थं याज्ञवल्क्यश्चकार सः॥
ऋष्यश्रृङ्गो भरद्वाजश्चास्तीको देवलस्तथा । जैगीषव्योऽथजावालिर्यद्धृत्वासर्वपूजितः
कवचस्यास्य विप्रेन्द्र ऋषिरेषः प्रजापतिः । स्वयं वृहस्पतिश्च्छन्दो देवो रासेश्वरः प्रभुः
सर्वतत्त्वपरिज्ञानसर्वार्थसाधनेषु च । कवितासु च सर्वासु विनियोगः प्रकीर्तितः ॥
ओं ह्रीं सरस्वत्यै स्वाहा शिरोमे पातुसर्वतः । श्रीं वाग्देवतायैस्वाहा भालं मे सर्वदावतु

ओं सरस्वत्यै स्वाहेति श्रोत्रं पातु निरन्तरम् ।
ओं श्रीं ह्रीं भारत्यै स्वाहा नेत्रयुग्मं सदावतु ॥ ७४ ॥
ऐं ह्रीं वाग्वादिन्यै स्वाहा नासां मे सर्वतोऽवतु ।
ह्रीं विद्याधिष्ठातृदेव्यै स्वाहा ओष्ठं सदावतु ॥ ७५ ॥

ओं श्रीं ह्रीं ब्राह्म्यै स्वाहेति दन्तपंक्तीःसदावतु । ऐमित्येकाक्षरो मन्त्रो ममकण्ठंसदावतु
ओं ह्रीं ह्रीं पातुमे ग्रीवांस्कन्धं मे श्रींसदावतु । श्रीं विद्याधिष्ठातृदेव्यै स्वाहावक्षःसदावतु
ओं ह्रीं विद्यास्वरूपायै स्वाहा मे पातु नाभिकाम् ।
ओं ह्रीं ह्रीं वाण्यै स्वाहेति मम पृष्ठं सदावतु ॥ ७८ ॥
ओं सर्ववर्णात्मिकायै पादयुग्मं सदावतु । ओं रागाधिष्ठातृदेव्यै सर्वाङ्गं मे सदावतु ॥
ओं सर्वकण्ठवासिन्यै स्वाहा प्राच्यां सदावतु ।
ओं ह्रीं जिह्वाग्रवासिन्यै स्वाहाग्निदिशि रक्षतु ॥ ८० ॥
ओं ऐं ह्रीं श्रीं सरस्वत्यै बुधजनन्यै स्वाहा । सततं मन्त्रराजोऽयं दक्षिणे मां सदावतु ॥
ओं ह्रीं श्रीं त्र्यक्षरो मन्त्रो नैर्ऋत्यां मे सदावतु ।
कविजिह्वाग्रवासिन्यै स्वाहा मां वारुणेऽवतु ॥ ८२ ॥
ओं सदाम्बिकायै स्वाहावायव्ये मां सदावतु । ओं गद्यपद्यवासिन्यैस्वाहामामुत्तरेऽवतु
ओं सर्वशास्त्रवासिन्यैस्वाहैशान्यां सदावतु । ओंह्रींसर्वपूजितायैस्वाहाचोर्ध्वंसदावतु
ऐं ह्रीं पुस्तकवासिन्यै स्वाहाऽधो मां सदावतु ।
ओं ग्रन्थबीजरूपायै स्वाहा मां सर्वतोऽवतु ॥ ८५ ॥
इति ते कथितं विप्र सर्वमन्त्रौघविग्रहम् । इदं विश्वजयं नाम कवचं ब्रह्मरूपिणम् ॥
पुरा श्रुतं धर्मवक्त्रात् पर्वते गन्धमादने । तव स्नेहान्मयाख्यातं प्रवक्तव्यं न कस्यचित्
गुरुमभ्यर्च्य विधिवद् वस्त्रालङ्कारचन्दनैः । प्रणम्य दण्डवद्भूमौ कवचं धारयेत्सुधीः
पञ्चलक्षजपेनैव सिद्धन्तु कवचं भवेत् । यदि स्यात्सिद्धकवचो बृहस्पतिसमो भवेत्
महावाग्मी कवीन्द्रश्च त्रैलोक्यविजयी भवेत् । शक्नोति सर्वं जेतुं स कवचस्य प्रसादतः
इदं ते काण्वशाखोक्तं कथितं कवचं मुने । स्तोत्रं पूजाविधानञ्च ध्यानञ्च वन्दनं तथा
इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायण-नारदसंवादे सरस्वतीकवचं नाम
चतुर्थोऽध्यायः ।

———

पञ्चमोऽध्यायः

याज्ञवल्क्योक्तवाणीस्तवः ।

नारायण उवाच ।

वाग्देवतायाः स्तवनं श्रूयतां सर्वकामदम् । महामुनिर्याज्ञवल्क्यो येन तुष्टाव तां पुरा ॥
गुरुशापाच्च स मुनिर्हतविद्यो बभूव ह । तदा जगाम दुःखार्त्तो रविस्थानञ्च पुण्यदम् ॥
संप्राप्य तपसा सूर्य्यं कोणार्के दृष्टिगोचरे । तुष्टाव सूर्य्यं शोकेन रुरोद च पुनः पुनः ॥
सूर्य्यस्तं पाठयामास वेदवेदाङ्गमीश्वरः । उवाच स्तुहि वाग्देवीं भक्त्या च स्मृतिहेतवे
तमित्युक्त्वा दीननाथोअन्तर्द्धानंचकार सः । मुनिः स्नात्वा चतुष्टावभक्तिनम्रात्मकन्धरः

याज्ञवल्क्य उवाच ।

कृपां कुरु जगन्मातर्मामेव हतचेतसम् । गुरुशापात् स्मृतिभ्रष्टं विद्याहीनञ्च दुःखितम् ॥
ज्ञानं देहि स्मृतिंदेहि विद्यां विद्याधिदेवते । प्रतिष्ठांकवितांदेहि शक्तिशिष्यप्रवोधिकाम्
ग्रन्थकर्तृकशक्तिञ्च सत्शिष्यं सुप्रतिष्ठितम् । प्रतिभांसत्सभायाञ्चविचारक्षमतां शुभाम्
लप्तं सर्वं दैववशान्नवीभूतं पुनः कुरु । यथाङ्कुरं भस्मनि च करोति देवता पुनः ॥ ६ ॥
ब्रह्मस्वरूपा परमा ज्योतीरूपा सनातनी । सर्वविद्याधिदेवी या तस्यै वाण्यै नमो नमः
यया विना जगत् सर्वं शश्वद्जीवन्मृतं सदा । ज्ञानाधिदेवीयातस्यैसरस्वत्यै नमोनमः
यया विना जगत्सर्वं मूकमुन्मत्तवत् सदा । वागधिष्ठातृदेवी या तस्यै वाण्यै नमोनमः
हिमचन्दनकुन्देन्दुकुमुदाम्भोजसन्निभा । वर्णाधिदेवी या तस्यै चाक्षरायै नमो नमः ॥
विसर्गविन्दुमात्रासु यदधिष्ठानमेव च । तदधिष्ठात्री या देवी भारत्यै ते नमो नमः ॥

यया विनात्र संख्याकृत् संख्यां कर्त्तुं न शक्यते ।
कालसंख्यास्वरूपा या तस्यै देव्यै नमो नमः ॥ १५ ॥

व्याख्यास्वरूपा यादेवीव्याख्याधिष्ठातृदेवता । भ्रमसिद्धान्तरूपा या तस्यैदेव्यैनमोनमः
स्मृतिशक्तिर्ज्ञानशक्तिर्बुद्धिशक्तिस्वरूपिणी । प्रतिभा कल्पनाशक्तिर्या च तस्यै नमो नमः
सनत्कुमारो ब्रह्माणं ज्ञानं पप्रच्छ यत्र वै । बभूव जड़वत् सोऽपि सिद्धान्तंकर्त्तुमक्षमः

तदा जगाम भगवानात्मा श्रीकृष्ण ईश्वरः । उवाच सततं स्तोत्रं वाणीमितिप्रजापतिम्
स च तुष्टाव त्वां ब्रह्मा चाज्ञया परमात्मनः । चकारत्वत्प्रसादेन तदा सिद्धान्तमुत्तमम्
यदाप्यनन्तं पप्रच्छ ज्ञानमेकं वसुन्धरा । वभूव मूकवत् सोऽपि सिद्धान्तं कर्त्तुमक्षमः
तदा त्वाञ्च स तुष्टाव संत्रस्तः कश्यपाज्ञया । ततश्चकार सिद्धान्तं निर्मलं भ्रमभञ्जनम्
व्यासः पुराणसूत्रञ्च पप्रच्छ वाल्मिकं यदा । मौनीभूतः स सस्मारत्वामेवंजगदम्बिकाम्
तदा चकार सिद्धान्तं मद्वरेण मुनीश्वरः । संप्राप निर्मलं ज्ञानं प्रमादध्वंसकारणम् ॥
पुराणसूत्रं श्रुत्वा स व्यासः कृष्णकुलोद्भवः । त्वां सिषेव दध्यौ च शतवर्षञ्च पुष्करे ॥
तदा त्वत्तो वरं प्राप्य स कवीन्द्रो वभूव ह ॥ २५ ॥
तदा वेदविभागञ्च पुराणानि चकार ह । यदा महेन्द्रे पप्रच्छ तत्त्वज्ञानं शिवाशिवम् ॥
क्षणं त्वामेव संचिन्त्य तस्यैज्ञानं ददौ विभुः । पप्रच्छशब्दशास्त्रञ्च महेन्द्रश्चवृहस्पतिम्
दिव्यं वर्षसहस्रञ्च स त्वां दध्यौ च पुष्करे । तदा त्वत्तो वरं प्राप्य दिव्यंवर्षसहस्रकम्
उवाच शब्दशास्त्रञ्च तदर्थञ्च सुरेश्वरम् ॥ २८ ॥
अध्यापिताश्च यैः शिष्या यैरधीतं मुनीश्वरैः ॥ २६ ॥
ते च त्वां परिसंचिन्त्य प्रवर्त्तन्ते सुरेश्वरि ।
त्वं संस्तुता पूजिता च मुनीन्द्रमनुमानवैः । दैत्येन्द्रैश्च सुरैश्चापि ब्रह्मविष्णुशिवादिभिः
जड़ीभूतः सहस्रास्यः पञ्चवक्त्रश्चतुर्मुखः । यां स्तोतुं किमहं स्तौमितामेकास्येनमानवः
इत्युक्त्वा याज्ञवल्क्यश्च भक्तिनम्रात्मकन्धरः । प्रणनाम निराहारो रुरोद च मुहुर्मुहुः ॥
तदा ज्योतिःस्वरूपासातेनादृष्टाप्युवाच तम् । सुकवीन्द्रो भवेत्युक्त्वावैकुण्ठञ्चजगामह
याज्ञवल्क्यकृतं वाणीस्तोत्रं यः संयतः पठेत् । सुकवीन्द्रोमहावाग्मी वृहस्पतिसमो भवेत्
महामूर्खश्च दुर्मेधो वर्षमेकञ्च यः पठेत् । स पण्डितश्च मेधावी सुकविश्च भवेद्ध्रुवम्
इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे याज्ञवल्क्योक्तवाणी-
स्तवो नाम पञ्चमोऽध्यायः ।

षष्ठोऽध्यायः

सरस्वत्युपाख्यानम् सर्वासां कलहश्च ।

नारद उवाच ।

सरस्वती सा वैकुण्ठे स्वयं नारायणान्तिके । गङ्गाशापेन कलया कलहाद्भारतेसरित् ॥
पुण्यदा पुण्यजननी पुण्यतीर्थस्वरूपिणी । पुण्यवद्भिर्निषेव्या च स्थितिः पुण्यवतां मुने ॥
तपस्विनां तपोरूपा तपस्याकाररूपिणी । कृतपापेध्मदाहाय ज्वलदग्निस्वरूपिणी ॥३॥
ज्ञाने सरस्वतीतोये मृतं यैर्मानवैर्भुवि । तेषां स्थितिश्च वैकुण्ठे सुचिरं हरिसंसदि ॥४॥
भारतेकृतपापी च स्नात्वा तत्रावलीलया । मुच्यतेसर्वपापेभ्यो विष्णुलोकेवसेच्चिरम् ।
चतुर्दश्यां पौर्णमास्यामक्षयायां दिनक्षये । व्यतीपातेचग्रहणेऽन्यस्मिन् पुण्यदिनेऽपिच ।
आनुषङ्गेन यः स्नाति हेलयाश्रद्धयापिवा । सारूप्यं लभते नूनं वैकुण्ठे स हरेरपि ॥७॥
सरस्वतीमन्त्रकञ्च मासमेकन्तु यो जपेत् । महामूर्खः कवीन्द्रश्च सभवेन्नात्र संशयः ।
नित्यं सरस्वतीतोये यः स्नाति मुण्डयेन्नरः । न गर्भवासं कुरुते पुनरेव स मानवः ॥
इत्येवं कथितं किञ्चिद्भारतीगुणकीर्त्तनम् । सुखदं मोक्षदं सारं किं भूयःश्रोतुमिच्छसि ।
नारायणवचः श्रुत्वा नारदो मुनिसत्तमः । पुनः पप्रच्छ सन्देहच्छेदं शौनक सत्वरम् ।

नारद उवाच ।

कथं सरस्वती देवी गंगाशापेन भारते । कलया कलहेनैव बभूव पुण्यदा सरित् ।१२।
श्रवणे श्रुतिसाराणां वर्द्धते कौतुकं मम । कथामृतानां नो तृप्तिः केन श्रेयसि तृप्यते ॥
कथं शशाप सा गङ्गा पूजितां तां सरस्वतीम् ।
शान्तसत्वस्वरूपा च पुण्यदा सर्वदा नृणाम् ॥ १४ ॥
तेजस्विन्योर्द्वयोर्वादकारणं श्रुतिसुन्दरम् । सुदुर्लभं पुराणेषु तन्मेव्याख्यातुमर्हसि ॥

नारायण उवाच ।

शृणुनारद वक्ष्यामि कथामेतांपुरातनीम् । यस्याः स्मरणमात्रेण सर्वपापात्प्रमुच्यते ।
लक्ष्मीःसरस्वतीगङ्गातिस्रोभार्य्याहरेरपि । प्रेम्णासमास्तास्तिष्ठन्तिसततंहरिसन्निधौ ।

चकारसैकदागङ्गाविष्णोर्मुखनिरीक्षणम् । सस्मितातिसकामा च सकटाक्षं पुनःपुनः ॥
विभुर्जहास तद्वक्त्रं निरीक्ष्य च क्षणं मुदा । क्षमाञ्चकार तद्दृष्ट्वा लक्ष्मीर्नैव सरस्वती ।
बोधयामास तां पद्मा सत्वरूपा च सस्मिता ।
क्रोधाविष्टा च सा वाणी न च शान्ता बभूव ह ॥ २० ॥
उवाच गङ्गां भर्त्तारं रक्तास्या रक्तलोचना । कम्पिता कोपवेगेनशश्वत्प्रस्फुरिताधरा ॥

सरस्वत्युवाच ।

सर्वत्र समताबुद्धिः सद्भर्त्तुः कामिनीः प्रति । धर्मिष्ठस्य वरिष्ठस्य विपरीता खलस्यच ।
ज्ञातं सौभाग्यमधिकं गङ्गायान्ते गदाधर । कमलायाञ्च तत्तुल्यं न च किञ्चिन्मयिप्रभो ।
गङ्गायाः पद्मया सार्द्धं प्रीतिश्चापि सुसम्मता । क्षमाञ्चकार तेनेदं विपरीतं हरिप्रिया ॥
किं जीवनेन मेऽत्रैवदुर्भगायाश्चसाम्प्रतम् । निष्फलंजीवनंतस्या या पत्युः प्रेमवञ्चिता ।
त्वां सर्वेशं सत्वरूपं ये वदन्ति मनीषिणः । ते च मूर्खा न वेदज्ञा न जानन्तिमर्तितव ।
सरस्वतीवचः श्रुत्वा दृष्ट्वा तां कोपसंयुताम् ।
मनसा स समालोच्य प्रजगाम वहिः समाम् ॥ २७ ॥
गते नारायणे गंगामुवाच निर्भयं रुषा । रागाधिष्ठातृदेवी सा वाक्यं श्रवणदुःसहम् ॥
हे निर्लज्जे सकामे त्वं स्वामिगर्वं करोषि किम् ।
अधिकं स्वामिसौभाग्यं विज्ञापयितुमिच्छसि ॥ २६ ॥
मानचूर्णं करिष्यामि तवाद्यहरिसन्निधौ । किं करिष्यति ते कान्तो ममैवकान्तवल्लभे ।
इत्येवमुक्त्वा गंगायाः केशं ग्रहीतुमुद्यता । वारयामास तां पद्मा मध्यदेशस्थिता सती ॥
शशाप वाणी तां पद्मां महाकोपवती सती । वृक्षरूपा सरिद्रूपा भविष्यसि न संशयः ॥
विपरीतं यतो दृष्ट्वा किञ्चिन्न वक्तुमर्हसि । सन्तिष्ठसि सभामध्येयथावृक्षोयथासरित् ॥
शापं श्रुत्वा च सा देवी न शशापचुकोपन । तत्रैवदुःखितातस्थौवाणींधृत्वाकरेणच ॥
अत्युद्धताञ्च तां दृष्ट्वा कोपप्रस्फुरितानना । उवाच गङ्गा तां देवीं पद्माञ्चपद्मलोचना ॥

गङ्गोवाच ।

त्वमुत्सृज महोग्राञ्च पद्मे किं मे करिष्यति । वाग्दुष्टावागधिष्ठात्रिदेवीयंकलहप्रिया ॥

यावती योग्यतास्याश्च यावती शक्तिरेव वा। तया करोतु वादञ्चमयासार्द्धंसुदुर्मुखा॥
स्वबलं यन्मम बलं विज्ञापयितुमर्हतु। जानन्तु सर्वेह्युभयोः प्रभावं विक्रमं सति ॥३८
इत्येवमुक्त्वा सा देवी वाण्यै शापंददाविति। सरित्स्वरूपाभवतुसायात्वाञ्चशशापह॥
अधोमर्त्त्यं सा प्रयातु सन्ति यत्रैव पापिनः। कलौ तेषां च पापांशंलभिष्यतिन संशयः
इत्येवं वचनं श्रुत्वा तां शशाप सरस्वती। त्वमेव यास्यसिमहींपापिपापं लभिष्यसि॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र भगवानाजगाम ह। चतुर्भुजश्चतुर्भिश्च पार्षदैश्च चतुर्भुजैः ॥ ४२॥
सरस्वतीं करे धृत्वा वासयामास वक्षसि। बोधयामास सर्वज्ञः सर्वज्ञानं पुरातनम्॥
श्रुत्वा रहस्यंतासाञ्चशापस्यकलहस्यच। उवाचदुःखितास्ताश्चवाक्यंसामयिकंविभुः॥

श्रीभगवानुवाच।

लक्ष्मि त्वं कलयागच्छधर्मध्वजगृहंशुभे। अयोनिसम्भवाभूमौतस्यकन्याभविष्यसि॥
तत्रैव दैवदोषेण वृक्षत्वञ्च लभिष्यसि। मदंशस्यासुरस्यैव शङ्खचूडस्य कामिनी ॥४६॥
भूत्वा पश्चाच्च मत्पत्नी भविष्यसिनसंशयः। त्रैलोक्यपावनीनाम्नातुलसीतिच भारते॥
कलया च सरिद्‌ भूत्वा शीघ्रं गच्छ वरानने। भारतं भारतीशापान्नाम्नापद्मावतीभव॥
गङ्गे यास्यसि पश्चात् त्वमंशेनविश्वपावनी। भारतंभारतीशापात्पापदाहायदेहिनाम्॥
भगीरथस्य तपसा तेन नीता सुदुष्करात्। नाम्ना भागीरथी पूताभविष्यसिमहीतले॥
मदंशस्य समुद्रस्य जायाजाये ममाज्ञया। मत्कलांशस्य भूपस्य शान्तनोश्च सुरेश्वरि॥
गङ्गाशापेन कलया भारतं गच्छ भारति। कलहस्य फलंभुङ्क्ष्वसपत्नीभ्यांसहाच्युते॥
स्वयञ्च ब्रह्मसदनं ब्रह्मणः कामिनी भव। गङ्गा यातु शिवस्थानमत्र पद्मैवतिष्ठतु ।५३।
शान्ता च क्रोधरहितामद्भक्तासत्वरूपिणी। महासाध्वीमहाभागासुशीलाधर्मचारिणी॥
यदंशकलया सर्वा धर्मिष्ठाश्च पतिव्रताः। शान्तरूपाः सुशीलाश्च प्रतिविश्वेषुयोषितः॥
तिस्रोभार्य्यास्त्रयः शालास्त्रयो भृत्याश्चबान्धवाः। ध्रुवंवेदविरुद्धाश्चनह्येतेमङ्गलप्रदाः॥
स्त्रीपुंवच्च गृहे येषां गृहिणां स्त्रीवशः पुमान्। निष्फलञ्च जन्म तेषामशुभञ्च पदेपदे॥
मुखदुष्टा योनिदुष्टा यस्य स्त्री कलहप्रिया। अरण्यं तेन गन्तव्यं महारण्यं गृहाद्वरम्॥
जलानाञ्च स्थलानाञ्च फलानां प्राप्तिरेव च। सततं सुलभा तत्र न तेषांतद्गृहेऽपिच॥

वरमग्नौस्थितिर्हिंस्रजन्तूनांसन्निधौसुखम् । ततोऽपिदुःखंपुंसाञ्चदुष्टास्त्रीसन्निधौध्रुवम्॥
व्याधिज्वाला विषज्वाला वरंपुंसांवरानने । दुष्टास्त्रीणांमुखज्वालामरणादतिरिच्यते ॥
पुंसश्च स्त्रीजितस्यैव जीवनं निष्फलं ध्रुवम् । यदह्ना कुरुते कर्मनतस्यफलभाग्भवेत् ॥
स निन्दितोऽत्र सर्वत्र परत्र नरकं व्रजेत् । यशःकीर्त्तिविहीनोयोजीवन्नपिमृतोहिसः॥
बह्वीनाञ्च सपत्नीनां नैकत्र श्रेयसि स्थितिः । एकभार्य्यः सुखीनैवबहुभार्य्यःकदाचन ॥
गच्छ गङ्गे शिवस्थानं ब्रह्मस्थानं सरस्वती । अत्र तिष्ठतु मद्देहे सुशीला कमलालया ॥
सुसाध्वी यस्य पत्नी च सुशीला च पतिव्रता । इह स्वर्गसुखंतस्य धर्ममोक्षे परत्रच ॥
पतिव्रता यस्य पत्नी सचमुक्तःशुचिःसुखी । जीवन्मृतोऽशुचिर्दुःखीदुःशीलापतिरेवयः ॥
इत्युक्त्वा जगतांनाथो विरराम च नारद । अत्युच्चैरुरुदुर्देव्यः समालिङ्ग्य परस्परम्॥
ताश्चसर्वाः समालोच्य क्रमेणोचुःसदीश्वरम् । कम्पिताःसाश्रुनेत्राश्चशोकेनचभयेनच ॥

सरस्वत्युवाच ।

विदायं देहि भो नाथ! दुष्टां मां जन्मशोधनम् ।
सत्स्वामिना परित्यक्ताः कुत्र जीवन्ति काः स्त्रियः ॥ ७० ॥

देहत्यागं करिष्यामि योगेन भारते ध्रुवम् । अत्युच्चतो निपतनं प्राप्तुमर्हति निश्चितम्॥

गङ्गोवाच ।

अहं केनापराधेन त्वया त्यक्ता जगत्पते । देहत्यागं करिष्यामि निर्दोषाया वधं लभ ॥
निर्दोषकामिनीत्यागं करोति यो जनो भवे । स याति नरकं कल्पं किं तेसर्वेश्वरस्यवा

लक्ष्मीरुवाच ।

नाथ सत्त्वस्वरूपस्त्वं कोपः कथमहो तव । प्रसादं कुरु भार्य्याभ्योमदीशस्य क्षमावरा
भारतं भारतीशापात् यास्यामिकलयायदि । कतिकालंस्थितिस्तत्रकदाद्रक्ष्यामितेपदम्
दास्यन्ति पापिनः पापं मह्यं स्नानावगाहनात् । केन तेन विमुक्ताहमागमिष्यामि तेपदम्
कलया तुलसीरूपा धर्मध्वजसुता सती । भूत्वा कदा लभिष्यामि त्वत्पादाम्बुजमच्युत
वृक्षरूपा भविष्यामि तदधिष्ठातृदेवता । मामुद्धरिष्यसि कदा तन्मे ब्रूहि कृपानिधे ॥७८

गङ्गा सरस्वतीशापाद् यदि यास्यतिभारतम् । शापेनमुक्तापापाच्चकदात्वांवालभिष्यति

गङ्गाशापेन सा वाणी यदि यास्यति भारतम् ।
कदा शापाद्विनिर्मुच्य लभिष्यसि पदं तव ॥ ८० ॥

तां वाणीं ब्रह्मसदनं गङ्गां वा शिवमन्दिरम् । गन्तुंवदसि हे नाथ ! तत्क्षमस्वचते वचः
इत्युक्त्वा कमलाकान्तपदं धृत्वा ननाम च । स्वकेशैर्वेष्टयित्वा च रुरोद च पुनः पुनः॥
उवाच पद्मनाभस्तां पद्मां कृत्वा स्ववक्षसि । ईषद्धास्यः प्रसन्नास्यो भक्तानुग्रहकारकः॥

नारायण उवाच ।

त्वद्वाक्यमाचरिष्यमि स्ववाक्यञ्च सुरेश्वरि । समताञ्च करिष्यामि शृणु तत्क्रममेवच॥
भारती यातु कलया सरिद्रूपा च भारतम् । अर्द्धांशा ब्रह्मसदनं स्वयं तिष्ठतु मद्गृहे॥
भगीरथेन नीता सा गङ्गा यास्यति भारतम् । पूतं कर्त्तुं त्रिभुवनं स्वयं तिष्ठतुमद्गृहे॥
तत्रैव चन्द्रमौलेश्च·मौलिंप्राप्स्यतिदुर्लभम् । ततःस्वभावतः पूताप्यतिपूता भविष्यति॥
कलांशांशेन त्वं गच्छ भारते कमलोद्भवे । पद्मावती सरिद्रूपा तुलसीवृक्षरूपिणी ।८८।
कलेः पञ्चसहस्रे च गतेवर्षेचमोक्षणम् । युष्माकंसरितांभूयोमद्गृहेचागमिष्यथ ॥८९॥
सम्पदां हेतुभूता च विपत्तिः सर्वदेहिनाम् । विना विपत्तेर्महिमा केषां पद्मे भवेद्भवे॥
मन्मन्त्रोपासकानाञ्चसतांस्नानावगाहनात् । युष्माकंमोक्षणंपापात्पापिदत्ताच्चस्पर्शनात्
पृथिव्यांयानितीर्थानिसन्त्यसंख्यानि सुन्दरि । भविष्यन्तिचपूतानिमद्भक्तस्पर्शदर्शनात्॥
मन्मन्त्रोपासका भक्ता भ्रमन्ति भारतेसति । पूतं कर्त्तुंभारतञ्चसुपवित्रां वसुन्धराम्॥
मद्भक्ता यत्र तिष्ठन्ति पादं प्रक्षालयन्ति च । तत्स्थानञ्चमहातीर्थंसुपवित्रंभवेद्ध्रुवम्॥
स्त्रीघ्नो गोघ्नः कृतघ्नश्च ब्रह्मघ्नोगुरुतल्पगः । जीवन्मुक्तोभवेत् पूतो मद्भक्तस्पर्शदर्शनात्॥
एकादशीविहीनश्च सन्ध्याहीनोऽप्यनास्तिकः । नरघातीभवेत्पूतोमद्भक्तस्पर्शदर्शनात्॥
असिजीवी मसिजीवी धावकः शूद्रयाजकः । वृषवाहोभवेत्पूतो मद्भक्तस्पर्शदर्शनात्॥
विश्वासघाती मित्रघ्नो मिथ्यासाक्ष्यप्रदायकः । स्थाप्यहारीभवेत्पूतोमद्भक्तस्पर्शनात्॥
ऋणग्रस्तो वार्द्धुषिको जारजः पुंश्चलीपतिः । पूतश्च पुंश्चलीपुत्रो मद्भक्तस्पर्शदर्शनात्॥
शूद्राणां सूपकारश्च देवलो ग्रामयाजकः । अदीक्षितो भवेत् पूतो मद्भक्तस्पर्शदर्शनात्॥
अश्वत्थघातकश्चैव मद्भक्तनिन्दकस्तथा । अनिवेद्यभोजी विप्रश्च पूतो मद्भक्तदर्शनात्॥

मातरं पितरं भार्य्यां भ्रातरं तनयं सुताम् । गुरोः कुलञ्चभगिनींवंशहीनञ्चबान्धवम् ॥
श्वश्रूञ्च श्वशुरञ्चैव यो न पुष्णाति नारद । स महापातकी पूतो मद्भक्तस्पर्शदर्शनात् ॥
देवद्रव्यापहारीचविप्रद्रव्यापहारकः । लाक्षालौहरसानाञ्च विक्रेता दुहितुस्तथा ॥१०४॥
महापातकिनश्चैते शूद्राणां शवदाहकः । भवेयुरेते पूताश्च मद्भक्तस्पर्शदर्शनात् ॥१०५॥

लक्ष्मीरुवाच ।

भक्तानां लक्षणं ब्रूहि भक्तानुग्रहकारक । येषां सन्दर्शनस्पर्शात् सद्यःपूता नराधमाः ॥
हरिभक्तिविहीनाश्च महाहङ्कारसंयुताः । स्वप्रशंसारता धूर्त्ताः शठाश्चसाधुनिन्दकाः ॥
पुनन्ति सर्वतीर्थानि येषां स्नानावगाहनात् । येषाञ्च पादरजसा पूता पादोदकान्मही ॥
येषां सन्दर्शनं स्पर्शं देवा वाञ्छन्ति भारते । सर्वेषां परमोलाभोवैष्णवानांसमागमः ॥
न ह्यम्मयानि तीर्थानि नदेवामृच्छिलामयाः । तेपुनन्त्युरुकालेनविष्णुभक्ताःक्षणादहो ॥

सौतिरुवाच ।

महालक्ष्मीवचः श्रुत्वा लक्ष्मीकान्तश्च सस्मितः । निगूढतत्त्वंकथितुमृषिश्रेष्ठोपचक्रमे ॥

श्रीनारायण उवाच ।

भक्तानां लक्षणं लक्ष्मि गूढं श्रुतिपुराणयोः । पुण्यस्वरूपंपापघ्नंसुखदं भक्तिमुक्तिदम् ॥
सारभूतं गोपनीयं न वक्तव्यं खलेषु च । त्वां पवित्रां प्राणतुल्यां कथयामि निशामय ॥
गुरुवक्त्राद्विष्णुमन्त्रो यस्य कर्णे प्रविशयति । वदन्ति वेदवेदाङ्गास्तं पवित्रंनरोत्तमम् ।
पुरुषाणां शतं पूर्वं पूतं तज्जन्ममात्रतः । स्वर्गस्थं नरकस्थं वा मुक्तिप्राप्नोतितत्क्षणम् ॥
यैः कश्चिद् यत्र वाजन्मलब्धंयेषुचजन्मसु । जीवन्मुक्तास्तेचपूतायान्तिकालेहरेःपदम् ॥
मद्भक्तियुक्तो मत्पूजानियुक्तो मद्गुणान्वितः । मद्गुणश्लाघनीयश्चमन्निविष्टश्चसन्ततम्
मद्गुणश्रुतिमात्रेण सानन्दः पुलकान्वितः । सगद्गदः साश्रुनेत्रः स्वात्मविस्मृत एव च ॥
न वाञ्छन्ति सुखं मुक्तिसालोक्यादिचतुष्टयम् । ब्रह्मत्वममरत्वं वा तद्वाञ्छाममसेवने ॥
इन्द्रत्वञ्च मनुत्वञ्च देवत्वञ्च सुदुर्लभम् । स्वर्गराज्यादिभोगञ्च स्वप्नेचनहिवाञ्छति ॥
ब्रह्माण्डानि विनश्यन्ति देवा ब्रह्मादयस्तथा । कल्याणभक्तियुक्तश्च मद्भक्तोनप्रणश्यति ॥

भ्रमन्ति भारते भक्ता लब्ध्वा जन्म सुदुर्लभम् । तेऽपि यान्ति महीं पूत्वा नरास्तीर्थं ममालयम् ॥
इत्येतत् कथितं सर्वं कुरु पद्मे यथोचितम् । तदाज्ञातांश्च तांश्चक्रुर्हरिस्तस्थौ सुखासने ॥
इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायण-नारदसंवादे सरस्वत्युपाख्यानं नाम षष्ठोऽध्यायः ।

सप्तमोऽध्यायः ।

कालकालेश्वरगुणनिरूपणम् ।

नारायण उवाच ।

सरस्वती पुण्यक्षेत्रे आजगाम च भारतम् । गङ्गाशापेन कलया स्वयं तस्थौ हरेः पदम् ॥
भारती भारतं गत्वा ब्राह्मी च ब्रह्मणः प्रिया । वागधिष्ठातृदेवी सा तेन वाणी च कीर्त्तिता ॥
सर्वविश्वं परिव्याप्य स्रोतस्येव हि दृश्यते । हरिः सरःसु तस्येयं तेन नाम्ना सरस्वती ॥
सरस्वती नदी सा च तीर्थरूपातिपावनी । पापिपापेध्मदाहाय जलदग्निस्वरूपिणी ॥ ४॥
पश्चाद्भगीरथानीता महीं भागीरथी शुभा । समाजगाम कलया वाणीशापेन नारद ॥५॥
तत्रैव समये तांश्च दधार शिरसा शिवः । वेगं सोढुमशक्ताया भुवः प्रार्थनया विभुः ॥६
पद्मा जगाम कलया सा च पद्मावती नदी । भारतं भारतीशापात् स्वयं तस्थौ हरेः पदम् ॥
ततोऽन्ययासा कलया ललाभ जन्म भारते । धर्मध्वजसुता लक्ष्मीर्विख्याता तुलसीति च ॥
पुरा सरस्वतीशापात्तत्पश्चाद्धरिशापतः । बभूव वृक्षरूपा सा कलया विश्वपावनी ॥९॥
कलेः पञ्चसहस्रञ्च वर्षं स्थित्वा च भारते । जग्मुस्तत्र सरिद्रूपं विहाय श्रीहरेः पदम् ॥
यानि सर्वाणि तीर्थानि काशीवृन्दावनं विना । यास्यन्ति सार्द्धं ताभिश्च वैकुण्ठमाज्ञया हरेः ।
शालग्रामो हरेर्मूर्त्तिर्जगन्नाथश्च भारतम् । कलेर्दशसहस्रान्ते ययौ त्यक्त्वा हरेः पदम् ॥
वैष्णवाश्च पुराणानि शङ्खाश्च श्राद्धतर्पणम् । वेदोक्तानि च कर्माणि ययुस्तैः सार्द्धमेव ।
हरिपूजा हरेर्नाम तत्कीर्त्तिगुणकीर्त्तनम् । वेदाङ्गानि च शास्त्राणि ययुस्तैः सार्द्धमेव च ॥

सत्वश्च सत्यं धर्मश्च वेदाश्च ग्राम्यदेवताः । व्रतं तपस्यानशनं ययुस्तैः सार्द्धमेव च ॥
वामाचाररताः सर्वे मिथ्याकापट्यसंयुताः । तुलसीवर्जिता पूजा भविष्यति ततःपरम् ।
एकादशीविहीनाश्च सर्वे धर्मविवर्जिताः । हरिप्रसङ्गविमुखाः भविष्यन्ति ततः परम् ॥
शठाः क्रूरा दाम्भिकाश्च महाहङ्कारसंयुताः । चौराश्च हिंसकाःसर्वे भविष्यन्तिततःपरम्

पुंसां भेदश्च स्त्रीभेदो विवाहो वापि निर्णयः ।
स्वस्वामिभेदो वस्तूनां न भविष्यति तत्परम् ॥ १६ ॥

सर्वेजनाः स्त्रीवशाश्च पुंश्चल्यश्चगृहेगृहे । तर्जनैर्भर्त्सनैःशश्वत् स्वामिनं ताडयन्तिच ॥
गृहेश्वरीचगृहिणी गृही भृत्याधिकोऽधमः । चेटीभृत्यसमौ वध्वाः श्वश्रूश्चश्वशुरस्तथा॥

कर्त्तारो वलिनो गेहे योनिसम्बन्धिबान्धवाः ।
विद्यासम्बन्धिभिः सार्द्धं सम्भासोऽपि न विद्यते ॥ २२ ॥

यथापरिचितालोकास्तथा पुंसश्चवान्धवाः । सर्वकर्माक्षमाःपुंसो योषितामाज्ञयाविना।
म्लेच्छाशास्त्रंपठिष्यन्तिस्वशास्त्राणिविहायच । ब्रह्मक्षत्रविशांवंशाःशूद्राणांसेवकाःकलौ
सूपकारा भवष्यन्ति धावका वृषवाहकाः । सत्यहीना जनाः सर्वे शस्यहीनाच्च मेदिनी॥
फलहीनाश्चतरवोऽपत्यहीनाश्च योषितः । क्षीरहीनास्तथागावः क्षीरं सर्पिर्विवर्जितम् ॥
दम्पतीप्रीतिहीनौ च गृहिणः सुखवर्जिताः । प्रतापहीना भूताश्च प्रजाश्च करपीड़िताः ॥
जलहीना नदाः नद्यो दीर्घिकाः कन्दराद्यः । धर्महीनाः पुण्यहीना वर्णाश्चत्वार एवच।
लक्षेषुपुण्यवान् कोऽपिनतिष्ठतिततःपरम् । कुत्सिताविकृताकारानरा नार्य्यश्चवालकाः॥
कुवार्त्ताःकुत्सितशब्दा भविष्यन्ति ततःपरम् । केचिद्ग्रामाश्च नगरा नरशून्याभयानकाः।
केचित् स्वल्पकुटीरेण नरेणच समन्विताः । अरण्यानि भविष्यन्ति ग्रामेषु नगरेषुच ॥
अरण्यवासिनः सर्वे जनाश्च करपीड़िताः । शस्यानिच भविष्यन्ति तड़ागेषु नदीषुच ॥
प्रकृष्टानिच क्षेत्राणि शस्यहीनान्यतः परम् । हीनाः प्रकृष्टा धनिनो वलदर्पसमन्विताः ॥
प्रकृष्टवंशजाहीना भविष्यन्ति कलौयुगे । अलीकवादिनो धूर्त्ताः शठाश्चसत्यवादिनः॥
पापिनः पुण्यवन्तश्चाप्यशिष्टाः शिष्टा एवच। जितेन्द्रिया लम्पटाश्च पुंश्चल्यश्च पतिव्रताः
तपस्विनः पातकिनो विष्णुभक्ता अवैष्णवाः । अहिंसका दयायुक्ताश्चौराश्च नरघातिनः

भिक्षुवेशधरा धूर्त्ता निन्दन्त्युपहसन्ति च । भूतादिसेवानिपुणा जनानां मन्दकारिणः॥
पूजितास्तेभविष्यन्ति वञ्चकाज्ञानदुर्बलाः । वामना व्याधियुक्ताश्चनरानार्य्यश्चसर्वतः ॥
अल्पायुषो जरायुक्ता यौवनेषु कलौ युगे । पलिताः षोड़शे वर्षे महावृद्धास्तुविंशतौ।
अष्टवर्षाच युवती रजोयुक्ताच गर्भिणी । वत्सरान्ते प्रसूता स्त्री षोड़शेन जरान्विता॥
एताःकाश्चित् सहस्रेषुवन्ध्याश्चापिकलौयुगे । कन्याविक्रयिणः सर्वेवर्णाश्चत्वारएवच॥
मातृजायावधूनाञ्च जारोपार्जनभक्षकाः । कन्यानां भगिनीनाञ्च जारोपार्जनजीविनः ॥
हरेर्नामविक्रयिणो भविष्यन्ति कलौयुगे । स्वयमुत्सृज्य दानञ्च कीर्त्तिवर्द्धनहेतवे ॥
तत्पश्चान्मनसालोच्य स्वयमुल्लङ्घयिष्यति । देववृत्तिं ब्रह्मवृत्तिं वृत्तिं गुरुकुलस्य च ॥
स्वदत्तांपरदत्तां वा सर्वमुल्लङ्घयिष्यति। कन्याकागामिनःकेचित् केचिच्च श्वश्रूगामिनः॥
केचिद् वधूगामिनश्च केचिच्च सर्वगामिनः । भगिनीगामिनःकेचित् सपत्नीमातृगामिनः।
भ्रातृजायागामिनश्च भविष्यन्ति कलौयुगे । अगम्यागमनञ्चैव करिष्यन्ति गृहे गृहे ।४७।
आत्मयोनिंपरित्यज्य विहरिष्यन्तिसर्वतः । पत्नीनांनिर्णयोनास्ति भर्तॄणाञ्चकलौयुगे॥
प्रजानाञ्चैव ग्रामाणां वस्तूनाञ्च विशेषतः । अलीकवादिनः सर्वेसर्वे चौराश्च लम्पटाः॥
परस्परं हिंसकाश्च सर्वेच नरघातिनः । ब्रह्मक्षत्रविशां वंशा भविष्यन्तिच पापिनः॥५०
लाक्षालौहरसानाञ्च व्यापारं लवणस्यच । वृषवाहा विप्रवंशाः शूद्राणां शवदाहिनः ॥
शूद्रान्नभोजिनः सर्वे सर्वेच वृषलीरताः । पञ्चपर्वपरित्यक्ताः कुहूरात्रौच भोजिनः ।५२॥

यज्ञसूत्रविहीनाश्च सन्ध्याशौचविहीनकाः ॥ ५३ ॥

पुंश्चलीचावीरा वृद्धा कुट्टनीचरजस्वला । विप्राणां रन्धनागारे भविष्यन्तिचपाचिका।
अन्नानांनिर्णयो नास्ति योनीनाञ्चविशेषतः । आश्रमाणांजनानाञ्चसर्वे म्लेच्छाकलौयुगे
एवं कलौसंप्रवृत्ते सर्वे म्लेच्छमया भवे । हस्तप्रमाणे वृक्षे चाङ्गुष्ठमाने च मानवे ॥५६॥
विप्रस्यविष्णुयशसः पुत्रः कल्कीभविष्यति । नारायणकलांशश्च भगवान् बलिनांबली॥
दीर्घेण करवालेन दीर्घघोटकवाहनः । म्लेच्छशून्याश्च पृथिवीं त्रिरात्रेण करिष्यति ॥
निर्म्लेच्छांवसुधां कृत्वाअन्तर्द्धानंकरिष्यति । अराजकाचवसुधा दस्युग्रस्ताभविष्यति ।
स्थूलप्रमाणं षड्रात्रं वर्षाधारात्प्लुता मही । लोकशून्या वृक्षशून्या गृहशून्याभविष्यति॥

ततश्चद्वादशादित्याः करिष्यन्त्युदयंमुने । प्राप्नोतिशुष्कतां पृथ्वी समातेषाञ्च तेजसा ॥

कलौ गते च दुर्द्धर्षे संप्रवृत्ते कृते युगे ।
तपःसत्यसमायुक्तो धर्मपूर्णो भविष्यति ॥ ६२ ॥

तपस्विनश्च धर्मिष्ठा वेदाज्ञा ब्राह्मणा भुवि । पतिव्रताश्च धर्मिष्ठा योषितश्च गृहे गृहे ॥
राजानः क्षत्रियाः सर्वे विप्रभक्ताःस्वधर्मिणः । प्रतापवन्तोधर्मिष्ठाःपुण्यकर्मरताःसदा ॥
वैश्या वाणिज्यनिरता विप्रभक्ताश्च धार्मिकाः ।शूद्राश्चपुण्यशीलाश्चधर्मिष्ठाविप्रसेविनः ॥
विप्रक्षत्रविशां वंशा विष्णुयज्ञपरायणाः । विष्णुमन्त्ररताःसर्वे विष्णुभक्ताश्चवैष्णवाः ॥
श्रुतिस्मृतिपुराणज्ञा धर्मज्ञा ऋतुगामिनः । लेशो नास्ति ह्यधर्माणां धर्मपूर्णे कृते युगे ॥
धर्मस्त्रिपाच्च त्रेतायां द्विपाच्च द्वापरे स्मृतः । कलौ प्रवृत्ते चैकपात्सर्वलुप्तस्ततः परम् ॥
वाराः सप्त तथा विप्र तिथयः षोड़श स्मृताः । यथा द्वादशमासाश्चऋतवश्चषड़ेवच ॥
द्वौ पक्षौ चायने द्वे च चतुर्भिः प्रहरैर्दिनम् । चतुर्भिः प्रहरैरात्रिर्मासस्त्रिंशद्दिनैस्तथा ॥
शतत्रये षष्ट्यधिके नराणाञ्च युगे गते । देवानाञ्च युगो ज्ञेयः कालसंख्याविदां मतः ॥
मन्वन्तरन्तु दिव्यानां युगानामेकसप्ततिः । मन्वन्तरसमं ज्ञेयश्चेन्द्रायुः परिकीर्त्तितम् ॥
अष्टाविंशतिमे चन्द्रे गते ब्रह्मदिवानिशम् । अष्टोत्तरे वर्षशते गते पातश्च ब्रह्मणः ॥७३॥
प्रलयः प्राकृतो ज्ञेयस्तत्रादृष्टाःवसुन्धरा । जलप्लुतानि विश्वानि ब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥
ऋषयो जीविनः सर्वे लीनाः कृष्णे परात्परे । तत्रैव प्रकृतिर्लीनो तेन प्राकृतिको लयः॥
लये प्राकृतिकेऽतीते पाते च ब्रह्मणो मुने । निमेषमात्रः कालश्च कृष्णस्य परमात्मनः ॥
एवंनश्यन्तिसर्वाणिब्रह्माण्डान्यखिलानि च । स्थितौगोलोकवैकुण्ठौश्रीकृष्णश्चसपार्षदः
निमेषमात्रः प्रलयो यत्र विश्वं जलप्लुतम् । निमेषानन्तरे काले पुनः सृष्टिः क्रमेणच ॥
एवंकतिविधासृष्टिर्लयःकतिविधोऽपिवा । कतिकृत्वोगतायातःसंख्यांजानातिकःपुमान् ।
सृष्टीनाञ्चकलानाञ्चब्रह्माण्डानाञ्चनारद । ब्रह्मादीनाञ्चब्रह्माण्डेसंख्यांजानातिकःपुमान् ॥
ब्रह्माण्डानाञ्च सर्वेषामीश्वरश्चैक एव सः । सर्वेषां परमात्मा च श्रीकृष्णःप्रकृतेः परः ॥

ब्रह्मादयश्च तस्यांशास्तस्यांशश्च महाविराट् ।
तस्यांशश्च विराट् क्षुद्रस्तस्यांशा प्रकृतिःस्मृता ॥८२॥

स च कृष्णो द्विधाभूतो द्विभुजश्चचतुर्भुजः । चतुर्भुजश्चवैकुण्ठेगोलोकेद्विभुजःस्वयम् ॥
ब्रह्मादितृणपर्य्यन्तं सर्वं प्राकृतिकं भवेत् । यद् यत् प्राकृतिकं सृष्टं सर्वं नश्वरमेवच ॥
एवं विद्धि सृष्टिहेतुं सत्यं नित्यं सनातनम् । स्वेच्छामयं परं ब्रह्म निर्लिप्तं निर्गुणंपरम् ॥
निरुपाधिं निराकारं भक्तानुग्रहविग्रहम् । अतीवकमनीयञ्च नवीननीरदप्रभम् ॥८६॥
द्विभुजं मुरलीहस्तं गोपवेशं किशोरकम् । सर्वज्ञं सर्वसेव्यञ्चपरमात्मनमीश्वरम् ॥८७॥
करोति ब्रह्मा ब्रह्माण्डंज्ञानात्माकमलोद्भवः । शिवोमृत्युञ्जयश्चैवसंहर्त्तासर्वतत्त्ववित् ॥
यस्य ज्ञानाद् यत्तपसासर्वेशस्तत्समोमहान् । महाविभूतियुक्तश्चसर्वज्ञःसर्वदा स्वयम् ॥
सर्वव्यापीसर्वपाताप्रदातासर्वसम्पदाम् । विष्णुःसर्वेश्वरःश्रीमान्यस्यज्ञानाज्जगत्पतिः ॥
महामाया च प्रकृतिः सर्वशक्तिमतीश्वरी । यज्ज्ञानाद् यस्यतपसायद्भक्त्यायस्यसेवया ॥
सावित्री वेदमाता च वेदाधिष्ठातृदेवता । सर्वग्रामाधिदेवी सा सर्वसम्पत्प्रदायिनी ॥
सर्वेश्वरी सर्ववन्द्या सर्वेशं प्राप या पतिम् । सर्वस्तुता च सर्वज्ञादुर्गादुर्गतिनाशिनी ॥
कृष्णवामांशसम्भूताकृष्णप्रेमाधिदेवता । कृष्णप्राणाधिकाप्रेम्णाराधिकाकृष्णसेवया ॥
सर्वाधिकञ्च रूपञ्च सौभाग्यमानगौरवम् । कृष्णवक्षःस्थलस्थानं पत्नीत्वंपापसेवया ॥
तपश्चकार सा पूर्वं शतशृङ्गे च पर्वते । दिव्यं युगसहस्रञ्च निराहारा च क्लिश्यति ॥६६
कृशां निःश्वासरहितां दृष्ट्वा चन्द्रकलोपमाम् । कृष्णोवक्षःस्थलेकृत्वारुरोदकृपयाविभुः ॥
वरं तस्यैददौ सारं सर्वेषामपि दुर्लभम् । मम वक्षःस्थले तिष्ठ मयितेभक्तिरस्त्विति ॥
सौभाग्येन च मानेन प्रेम्णा च गौरवेण च । त्वं मेश्रेष्ठाचप्रेज्येष्ठाचसर्वश्रेष्ठायोषिताम् ॥
वरिष्ठा च गरिष्ठा च संस्तुता पूजिता मया । सन्ततं तवसाध्योऽहंवाध्यश्चप्राणवल्लभे ॥
इत्युक्त्वा जगतां नाथश्चकार चेतनां ततः । सपत्नीरहितां ताञ्च चकार प्राणवल्लभाम् ॥
येषां या याश्च देव्यश्च पूजितास्तस्यसेवया । तपस्यायादृशीयासांतासांतादृक्फलंमुने ॥
दिव्यं वर्षसहस्रञ्च तपस्तप्त्वा हिमालये । दुर्गा च तत्पदं ध्यात्वा सर्वपूज्याबभूव ह ॥
सरस्वती तपस्तप्त्वा पर्वते गन्धमादने । लक्षवर्षञ्च दिव्यञ्च सर्ववन्द्या बभूव सा ॥१०४
लक्ष्मीर्युगशतं दिव्यं तपस्तप्त्वा च पुष्करे । सर्वसम्पत्प्रदात्री च बभूव तस्य सेवया ॥
सावित्री मलये तप्त्वा द्विजपूज्या बभूवसा । षष्टिवर्षसहस्रञ्चदिव्यंध्यात्वाचतत्पदम् ॥

शतमन्वन्तरं तप्तं शङ्करेण पुरा विभो ।
शतमन्वन्तरञ्चैव ब्रह्मणा तस्य भक्तितः । शतमन्वन्तरं विष्णुस्तप्त्वा पाता बभूव ह ॥
शतमन्वन्तरं धर्मस्तप्त्वा पूज्यो बभूव ह । मन्वन्तरन्तपस्तेपे शेषो भक्त्या च नारद ॥
मन्वन्तरञ्च सूर्य्यश्च शक्रश्चन्द्रस्तथैव च ॥ १०६ ॥
दिव्यं सतयुगञ्चैव वायुस्तप्त्वा च भक्तितः । सर्वप्राणःसर्वपूज्यःसर्वाधारोबभूवसः ॥
एवं कृष्णस्य तपसा सर्वे देवाश्च पूजिताः । मुनयो मानवा भूपा ब्राह्मणाश्चैव पूजिताः
एवं ते कथितं सर्वं पुराणञ्चतथागमम् । गुरुवक्त्राद्यथाज्ञातंकिंभूयःश्रोतुमिच्छसि ॥
इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायण-नारद-संवादे कालकालेश्वरगुण-
निरूपणं नाम सप्तमोऽध्यायः ।

अष्टमोऽध्यायः

पृथिव्युपाख्यानम् ।

नारद उवाच ।

हरेर्निमेषमात्रेण ब्रह्मणः पात एव च । तस्य पाते प्राकृतिकः प्रलयः परिकीर्त्तितः ॥१॥
प्रलये प्राकृते चोक्तं तत्रादृष्टा वसुन्धरा । जलप्लुतानि विश्वानि सर्वे लीनाहराविति ॥
वसुन्धरा तिरोभूता कुत्र वा तत्र तिष्ठति । सृष्टेर्विधानसमये साविर्भूता कथं पुनः ॥३॥
कथं बभूव सा धन्या मान्या सर्वाश्रयाजया । तस्याश्च जन्मकथनंवदमङ्गलकारणम् ॥

श्रीनारायण उवाच ।

सर्वादिसृष्टौ सर्वेषां जन्म कृष्णादिति श्रुतिः ।
आविर्भावस्तिरोभावः सर्वेषु प्रलयेषु च ॥५॥
श्रूयतां वसुधाजन्म सर्वमङ्गलमङ्गलम् । विघ्ननिघ्नकरं पापनाशनं पुण्यवर्द्धनम् ॥ ६ ॥
अहो केचिद्वदन्तीति मधुकैटभमेदसा । बभूव वसुधा धन्या तद्विरुद्धमतं शृणु ॥७॥

ऊचतुस्तौ पुरा विष्णुं तुष्टौ युद्धेन तेजसा । आवां जहि न यत्रोर्वीपयसासंवृतेतिच ॥
तयोर्जीवनकालेन प्रत्यक्षा च भवेत् स्फुटम् । ततो बभूव मेदश्च मरणानन्तरंतयोः ॥६॥
मेदिनीति च विख्यातेत्युक्त्वा यैस्तन्मतं शृणु । जलधौता कृशा पूर्वंवर्द्धितामेदसायतः
कथयामि च तज्जन्म सार्थकं सर्वसम्मतम् । पुराश्रुतश्च श्रुत्युक्तं धर्मवक्त्राच्च पुष्करे ॥
महाविराट्शरीरस्य जलस्थस्य चिरं स्फुटम् । मलोबभूवकालेनसर्वाङ्गव्यापकोध्रुवम्॥
स च प्रविष्टः सर्वेषां तल्लोम्नां विवरेषु च । कालेन महता तस्माद् बभूव वसुधा मुने ॥
प्रत्येकं प्रतिलोम्नाश्च रूपेषु सा स्थितास्थिरा । आविर्भूता तिरोभूता सचलाचपुनःपुनः
आविर्भूता सृष्टिकाले तज्जलात् पर्य्यपस्थिता । प्रलयेचतिरोभूताजलाभ्यन्तरवस्थिता ॥

प्रतिविश्वेषु वसुधा शैलकाननसंयुता ।
सप्तसागरसंयुक्ता सप्तद्वीपमिता सती ॥ १६ ॥

हिमाद्रिमेरुसंयुक्ता ग्रहचन्द्रार्कसंयुता । ब्रह्मविष्णुशिवाद्यैश्च सुरैर्लोकैस्तथानया ॥१७॥
पुण्यतीर्थसमायुक्ता पुण्यभारतसंयुता । काञ्चनीभूमिसंयुक्ता सर्वदुर्गसमन्विता ॥१८॥
पातालाः सप्त तदधस्तदूर्ध्वे ब्रह्मलोककः । ध्रुवलोकश्च तत्रैव सर्वविश्वश्च तत्र वै ॥१६

एवं सर्वाणि विश्वानि पृथिव्यां निर्मितानि वै ।
ऊर्ध्वे गोलोकवैकुण्ठौ नित्यौ विश्वपरौ च तौ ॥ २० ॥
नश्वराणि च विश्वानि सर्वाणि कृत्रिमाणि च ।
प्रलये प्राकृते ब्रह्मन् ब्रह्मणश्च निपातने ॥ २१ ॥

महाविराडादिसृष्टौ सृष्टः कृष्णेन चात्मना । नित्ये स्थितःस प्रलये काष्ठाकाशेश्वरैःसह
क्षित्यधिष्ठातृदेवी सा वाराहे पूजितासुरैः । मनुभिर्मुनिभिर्विप्रैर्गन्धर्वादिभिरेव च ॥२३॥
विष्णोर्वराहरूपस्य पत्नी सा श्रुतिसम्मता । तत्पुत्रो मङ्गलो ज्ञेयः सुयशा मङ्गलात्मजः

नारद उवाच ।

पूजिता केन रूपेण वाराहे च सुरैर्मही । वाराहेण च वाराही सर्वैः सर्वाश्रया सती ॥
तस्याः पूजाविधानञ्चाप्यधश्चोद्धरणक्रमम् । मङ्गले मङ्गलस्यापि जन्म व्यासं वद प्रभो

नारायण उवाच ।

वाराहे च वराहश्च ब्रह्मणा संस्तुतः पुरा । उद्दधार महीं हत्वा हिरण्याक्षं रसातलात् ॥
जले तां स्थापयामास पद्मपत्रं यथार्णवे । तत्रैव निर्ममे ब्रह्मा सर्वविश्वं मनोहरम् ॥२८
दृष्ट्वा तदधिदेवीञ्च सकामां कामुको हरिः । वराहरूपी भगवान् कोटिसूर्य्यसमप्रभः ॥
कृत्वा रतिकरीं शय्यां मूर्त्तिञ्च सुमनोहराम् । क्रीड़ाञ्चकार रहसि दिव्यवर्षमहर्निशम् ।
सुखसम्भोगसंस्पर्शात् मूर्च्छां सम्प्राप सुन्दरी । विदग्धयाविदग्धेनसङ्गमोऽपिसुखप्रदः
विष्णुस्तदङ्गसंश्लेषाद् बुबुधे न दिवानिशम् । वर्षान्तेचेतनांप्राप्यकामीतत्याजकामुकीम्
पूर्वरूपञ्च वाराहं दधार चावलीलया । पूजाञ्चकार भक्त्या च ध्यात्वाच धरणीं सतीम्
धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यैः सिन्दूरैरनुलेपनैः । वस्त्रैः पुष्पैश्च बलिभिः संपूज्योवाच तां हरिः ॥

महावराह उवाच ।

सर्वाधारा भव शुभे सर्वैः संपूजिता शुभम् । मुनिभिर्मनुभिर्देवैः सिद्धैश्च मानवादिभिः
अम्बुवाचित्यागदिने गृहारम्भप्रवेशने । वापीतड़ागारम्भे च गृहे च कृषिकर्मणि ॥३६॥
तव पूजां करिष्यन्ति मद्वरेण सुरादयः । मूढ़ा ये न करिष्यन्ति यास्यन्ति नरकञ्च ते ॥

वसुधोवाच ।

वहामि सर्वं वाराहरूपेणाहं तवाज्ञया । लीलामात्रेण भगवन् विश्वञ्च सचराचरम् ॥
मुक्तां शुक्तिं हरेरर्च्यां शिवलिङ्गं शिलान्तथा । शङ्खं प्रदीपं रत्नञ्च माणिक्यंहीरकंमणिम्
यज्ञसूत्रञ्च पुष्पञ्च पुस्तकं तुलसीदलम् । जपमालां पुष्पमालां कर्पूरञ्च सुवर्णकम् ॥४०॥
गोरोचनां चन्दनञ्च शालग्रामजलन्तथा । एतान् वोढुमशक्ताहं क्लिष्टा च भगवन् शृणु

श्रीभगवानुवाच ।

द्रव्याण्येतानि ये मूढ़ा अर्पयिष्यन्ति सुन्दरि । ते यास्यन्तिकालसूत्रंदिव्यंवर्षशतं त्वयि
इत्येवमुक्त्वा भगवान् विरराम च नारद । बभूव तेन गर्भेण तेजस्वी मङ्गलग्रहः ॥४३ ॥
पूजाञ्चक्रुः पृथिव्याश्च ते सर्वे चाज्ञया हरेः । काण्वशाखोक्तध्यानेन तुष्टुवुः स्तवनेन च
दधुर्मूलेन मन्त्रेण नैवेद्यादिकमेव च । संस्तुता त्रिषु लोकेषु पूजिता सा बभूव ह ॥४५।

नारद उवाच ।

किं ध्यानं स्तवनं किं वा तस्य मूलञ्च किं वद । गूढं सर्वपुराणेषु श्रोतुं कौतूहलं मम

नारायण उवाच ।

आदौ च पृथिवी देवी वराहेण च पूजिता । ततो हि ब्रह्मणा पश्चात् ततश्च पृथुना पुरा
ततः सर्वैर्मुनीन्द्रैश्च मनुभिर्नारदादिभिः । ध्यानञ्च स्तवनं मन्त्रं शृणु वक्ष्यामि नारद ॥
ओं ह्रीं श्रीं वां वसुधायै स्वाहा । इत्यनेन मन्त्रेण पूजिता विष्णुना पुरा ॥ ४९ ॥
श्वेतचम्पकवर्णाभां शतचन्द्रसमप्रभाम् । चन्दनोक्षिप्तसर्वाङ्गीं सर्वभूषणभूषिताम् ॥
रत्नाधारां रत्नगर्भां रत्नाकरसमन्विताम् । वह्निशुद्धांशुकाधानां सस्मितां वन्दितां भजे
ध्यानेनानेन सा देवी सर्वैश्च पूजिता भवेत् । स्तवनं शृणु विप्रेन्द्र काण्वशाखोक्तमेवच

विष्णुरुवाच ।

यज्ञशूकरजाया च जयं देहि जयावहे । जये जये जयाधारे जयशीले जयप्रदे ॥ ५३ ॥
सर्वाधारे सर्ववीजे सर्वशक्तिसमन्विते । सर्वकामप्रदे देवि सर्वेष्टं देहि मे भवे ॥ ५४ ॥
सर्वशस्यालये सर्वशस्याढ्ये सर्वशस्यदे । सर्वशस्यहरे काले सर्वशस्यात्मिके भवे ॥
मङ्गले मङ्गलाधारे मङ्गल्यमङ्गलप्रदे । मङ्गलार्थे मङ्गलांशे मङ्गलं देहि मे भवे ॥ ५६ ॥
भूमे भूमिपसर्वस्वे भूमिपालपरायणे । भूमिपाहङ्काररूपे भूमिं देहि च भूमिदे ॥ ५७ ॥
इदं स्तोत्रंमहापुण्यं तां संपूज्यच यः पठेत् । कोटि कोटि जन्मजन्मसभवेद्भूमिपेश्वरः
भूमिदानकृतं पुण्यं लभते पठनाज्जनः । भूमिदानहरात् पापात् मुच्यते नात्र संशयः ॥
भूमौ वीर्य्यत्यागपापाद् भूमौ दीपादिस्थापनात् । पापेनमुच्यते प्राज्ञःस्तोत्रस्य पठनान्मुने
अश्वमेधशतं पुण्यं लभते नात्र संशयः ॥ ६१ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे पृथिव्युपाख्याने पृथिवीस्तोत्रं नाम अष्टमोऽध्यायः ।

———

नवमोऽध्यायः

भूमिदानफलंतद्धरणेपापञ्च ।

नारद उवाच ।

भूमिदानकृतं पुण्यं पापं तद्धरणेन यत् । परभूमौ श्राद्धरूपं कूपे कूपदजं तथा ॥ १ ॥
अम्बुवाचीभूखननवीजत्यागजमेव च । दीपादिस्थापनात् पापं श्रोतुमिच्छामि यत्नतः ॥
अन्यद्वा पृथिवीजन्यं पापं यत् प्रश्नतः परम् । यदस्ति तत्प्रतीकारं वद वेदविदांवर ॥३॥

नारायण उवाच ।

वितस्तिमात्रं भूमिञ्च योददाति च भारते । सन्ध्यापूतायविप्राय सयातिविष्णुमन्दिरम्
भूमिञ्च सर्वशस्याढ्यां ब्राह्मणाय ददाति यः । भूमिरेणुप्रमाणञ्च वर्षं विष्णुपदे स्थितिः
ग्रामं भूमिञ्च धान्यञ्च यो ददात्याददाति यः । सर्वपापाद्विनिर्मुक्तौचोभौवैकुण्ठवासिनौ
भूमिं दातुञ्च यत्काले यः साधुश्चानुमोदते । स प्रयातिचवैकुण्ठं मित्रगोत्रसमन्वितः ॥
स्वदत्तां परदत्तां वा ब्रह्मवृत्तिं हरेत्तु यः । स तिष्ठति कालसूत्रं यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥८॥
तत्पुत्रपौत्रप्रभृतिर्भूमिहीनः श्रिया हतः । पुत्रहीनो दरिद्रश्च अन्ते याति च रौरवम् ॥९॥
गवीमार्गं विनिष्कृष्य यश्च शस्यं ददाति सः । दिव्यं वर्षशतंचैवकुम्भीपाकेच तिष्ठति ॥
गोष्ठं तड़ागं निष्कृष्य मार्गं शस्यं ददाति यः । सचतिष्ठत्यसीपत्रे यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥
परकीयतड़ागे च पङ्कमुद्धृत्य चोत्सृजेत् । रेणुप्रमाणवर्षञ्च ब्रह्मलोके वसेन्नरः ॥१२॥
पिण्डं पित्रे भूमिभर्त्तुर्न प्रदाय च मानवः । श्राद्धं करोतियोमूढ़ोनरकंयातिनिश्चितम् ॥
भूमौ प्रदीपं योऽर्पयतिसोऽन्धःसप्तजन्मसु । भूमौशङ्खञ्चसंस्थाप्यकुष्ठंजन्मान्तरेलभेत् ॥
मुक्तामाणिक्यहीरञ्च सुवर्णञ्च मणिन्तथा । यश्च संस्थापयेद् भूमौ दरिद्रःसप्तजन्मसु ॥
शिवलिङ्गं शिलामर्च्यां यश्चार्पयति भूतले । शतमन्वन्तरं यावत् कृमिभक्ष्ये स तिष्ठति ॥
सूक्तं मन्त्रं शिलातोयं पुष्पञ्च तुलसीदलम् । यश्चार्पयति भूमौ च स तिष्ठेन्नरकं युगम् ॥
जपमालां पुष्पमालां कर्पूरं रोचनान्तथा । योमूढ़श्चार्पयेद् भूमौ स याति नरकं ध्रुवम् ॥

मुने चन्दनकाष्ठञ्च रुद्राक्षं कुशमूलकम् । संस्थाप्य भूमौ नरके वसेन्मन्वन्तरावधि ॥
पुस्तकं यज्ञसूत्रञ्च भूमौ संस्थापयेत्तु यः । न भवेद्विप्रयोनौ च तस्य जन्मान्तरे जनिः ॥
ब्रह्महत्यासमं पापमिह वै लभते ध्रुवम् । ग्रन्थियुक्तं यज्ञसूत्रं पूज्यञ्च सर्ववर्णकैः ॥२१॥
यज्ञंकृत्वातुयोभूमिंक्षीरेणनहि सिञ्चति । स याति तप्तसूर्मिञ्च संततः सर्वजन्मसु ॥२२॥
भूकम्पे ग्रहणे यो हि करोति खननंभुवः । जन्मान्तरेमहापापीसोऽङ्गहीनोभवेद् ध्रुवम् ॥
भवनं यत्र सर्वेषां भूमिस्तेन प्रकीर्त्तिता । वसुरत्नं यो ददाति वसुधा च वसुन्धरा ॥
हरेरूरौ च या ज्ञाता सा चोर्वी परिकीर्त्तिता । धरा धरित्रीधरणीसर्वेषांधरणात्तुया ॥
इज्या चयागधरणात्क्षौणीक्षीणालयेचया । महालयेक्षयंयातिक्षितिस्तेनप्रकीर्त्तिता ॥
काश्यपी कश्यपस्येयमचला स्थितिरूपतः । विश्वम्भरा तद्धरणाच्चानन्तानन्तरूपतः ॥
पृथ्वी पृथुककन्यात्वाद् विस्तृतत्वान्महामुने ॥ २८ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायण-नारद-संवादे पृथिव्युपाख्यानं नाम नवमोऽध्यायः ।

दशमोऽध्यायः ।

गङ्गोपाख्यानम् ।

नारद उवाच ।

श्रुतं पृथिव्युपाख्यानं अतीवसुमनोहरम् । गङ्गोपाख्यानमधुना वद वेदविदां वर ॥१॥
भारतं भारतीशापादाजगाम सुरेश्वरी । विष्णुस्वरूपा परमा स्वयं विष्णुपदीसती ॥२॥
कथं कुत्र युगे केन प्रार्थिता प्रेरिता पुरा । तत्क्रमंश्रोतुमिच्छामिपापघ्नंपुण्यदंशुभम् ॥

नारायण उवाच ।

राजराजेश्वरः श्रीमान् सगरः सूर्य्यवंशजः । तस्य भार्य्या च वैदर्भीसैव्याचद्वेमनोहरे ॥
सत्यस्वरूपः सत्येष्टः सत्यवाक् सत्यभावनः । सत्यधर्मविचारज्ञः परं सत्ययुगोद्भव ॥

एककन्या चैकपुत्रो बभूव सुमनोहरः । असमञ्जा इति ख्यातः शैब्यायां कुलवर्द्धनः ॥६
अन्या चाराधयामास शङ्करं पुत्रकामुकी । बभूव गर्भस्तस्याश्च शिवस्य च वरेण च ॥
गते शताब्दे पूर्णे च मांसपिण्डं सुषावसा । तद्दृष्ट्वाचशिवंध्यात्वारुरोदोच्चैःपुनःपुनः ॥
शम्भुर्ब्राह्मणरूपेण तत्समीपं जगाम ह । चकार संविभज्यैतत् पिण्डं षष्टिसहस्रधा ॥९
सर्वे बभूवुः पुत्राश्च महाबलपराक्रमाः । ग्रीष्ममध्याह्नमार्त्तण्डप्रभायुष्टकलेवराः ॥ १० ॥
कपिलस्य कोपदृष्ट्या बभूवुर्भस्मसाच्च ते । राजा रुरोद तच्छ्रुत्वा जगाम मरणं शुचा ॥
तपश्चकारासमञ्जा गङ्गानयनकारणम् । तपः कृत्वा लक्षवर्षं ममार कालयोगतः ॥१२॥
दिलीपस्तस्य तनयो गङ्गानयनकारणम् । तपः कृत्वा लक्षवर्षं ययौ लोकान्तरं नृपः ॥
अंशुमांस्तस्य पुत्रश्च गङ्गानयनकारणम् । तपः कृत्वा लक्षवर्षं ममार कालयोगतः ॥१४
भगीरथस्तस्य पुत्रो महाभागवतः सुधीः । वैष्णवो विष्णुभक्तश्च गुणवानजरामरः ॥
तपः कृत्वा लक्षवर्षं गङ्गानयनकारणम् । ददर्श कृष्णं हृष्टास्यं सूर्य्यकोटिसमप्रभम् ॥१६
द्विभुजं मुरलीहस्तं किशोरंगोपवेशकम् । परमात्मानमीशञ्च भक्तानुग्रहविग्रहम् ॥१७॥
स्वेच्छामयं परं ब्रह्म परिपूर्णतमं विभुम् । ब्रह्मविष्णुशिवाद्यैश्च स्तुतं मुनिगणैर्युतम् ॥
निर्लिप्तं साक्षिरूपञ्च निर्गुणं प्रकृतेः परम् । ईषद्धास्यं प्रसन्नास्यं भक्तानुग्रहकारकम् ॥१९
वह्निशुद्धांशुकाधानं रत्नभूषणभूषितम् ॥ २० ॥
तुष्टाव दृष्ट्वा नृपतिः प्रणम्य च पुनः पुनः । लीलया च वरं प्राप्यवाञ्छितंवंशतारणम् ॥
तत्राजगाम गङ्गा सा स्मरणात् परमात्मनः । तं प्रणम्यप्रतस्थौचतत् पुरःसंपुटाञ्जलिः ॥
उवाच भगवांस्तत्र तां दृष्ट्वा सुमनोहराम् । कुर्वतीं स्तवनं दिव्यं पुलकाञ्चितविग्रहाम् ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

भारतं भारतीशापात् गच्छ शीघ्रं सुरेश्वरि । सगरस्यसुतान्सर्वान्पूतान्कुरुममाज्ञया ॥
तत्स्पर्शवायुना पूता यास्यन्तिममम‌न्दिरम् । बिभ्रतो दिव्यमूर्त्तिन्ते दिव्यस्यन्दनगामिनः
मत्पार्षदा भविष्यन्ति सर्वकालं निरामयाः । समुच्छिद्यकर्मभोगंकृतंजन्मनि जन्मनि ॥
कोटिजन्मार्जितं पापं भारते यत् कृतं नृणाम् । गङ्गायाःस्पर्शवातेनतन्नश्यतिश्रुतौश्रुतम् ॥
स्पर्शनाद्दर्शनाद्देव्याः पुण्यं दशगुणं ततः ।

मौषलस्नानमात्रेण सामान्यदिवसे नृणाम् । शतकोटिजन्मपापं नश्यतीति श्रुतौ श्रुतम्॥
यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च ।
जन्मासंख्यार्जितान्येवकामतोऽपिकृतानिच । तानिसर्वाणिनश्यन्तिमौषलस्नानतोनृणाम्
पुण्याहस्नानजं पुण्यं वेदा नैव वदन्ति च । केचिद्वदन्ति ते देवि ! फलमेव यथागमम्॥
ब्रह्मविष्णुशिवाद्याश्च सर्वं नैव वदन्ति च । सामान्यदिवसस्नानंसङ्कल्पं श्रुणु सुन्दरि॥
पुण्यं दशगुणश्चैव मौषलस्नानतः परम् । ततस्त्रिंशत्गुणं पुण्यं रविसंक्रमणे दिने ॥३३॥
अमायाश्चापि तत्तुल्यं द्विगुणं दक्षिणायने । ततो दशगुणं पुण्यं नराणामुत्तरायणे।
चातुर्मास्यां पौर्णमास्यामनन्तं पुण्यमेव च । अक्षयायाञ्च तत्तुल्यं नैतद्वेदे निरूपितम्॥
असंख्यपुण्यफलदमेतेषु स्नानदानकम् । सामान्यदिवसस्नानात् ज्ञानाच्छतगुणंफलम्॥
मन्वन्तराद्यां देवेशि युगाद्यायां तथैव च । तथाप्यशोकाष्टम्याञ्च नवम्याञ्च तथा हरेः॥
ततोऽपि द्विगुणं पुण्यं नन्दायां तव दुर्लभे । दशहरादशम्याञ्च युगद्यादिसमं फलम्॥
नन्दासमञ्च वारुण्यां महत्पूर्वं चतुर्गुणम् । ततश्चतुर्गुणं पुण्यं द्विमहत्पूर्वके सति ॥३८
पुण्यंकोटिगुणं चैवसामान्यस्नानतो हि यत् । चन्द्रोपरागसमये सूर्य्ये दशगुणं ततः॥
पुण्योऽप्यर्द्धोदये काले ततः शतगुणं फलम् । सर्वेषामेवसङ्कल्पोवैष्णवानां विपर्य्ययः॥
फलसन्धानरहिता जीवन्मुक्ताश्च वैष्णवाः । मत्प्रीतिभक्तिकामास्तेसर्वदासर्वकर्मसु॥
गुरुवक्त्राद्विष्णुमन्त्रो यस्य कर्णे प्रविश्यति । जीवन्मुक्तं वैष्णवन्तं वेदाःसर्वेवदन्तिच
पुरुषाणां शतं पूर्वं पैतृकञ्च परं शतम् । मातामहस्य च शतं मातरं मातृमातरम् ॥४३॥
भगिनीं भ्रातरञ्चैव भागिनेयञ्च मातुलम् । श्वश्रूञ्च श्वशुरञ्चैव गुरुपत्नीं गुरोः सुतम्॥
गुरुञ्च ज्ञानदातारं मित्रञ्च सहचारिणम् । भृत्यं शिष्यंतथाचेटींप्रजाः स्वाश्रमसन्निधौ॥
उद्धरेदात्मना सार्द्धं मन्त्रग्रहणमात्रतः । मन्त्रग्रहणमात्रेण जीवन्मुक्तो भवेन्नरः ॥४६॥
तस्य संस्पर्शनात् पूतं तीर्थञ्च भुवि भारतम् । तस्यैव पादरजसा सद्यःपूतावसुन्धरा॥
पादोदकपतत्स्थानं तीर्थमेव भवेद् ध्रुवम्॥ ४७॥
अन्नं विष्ठा जलं मूत्रं यद्विष्णोरनिवेदितम् । वैष्णवाश्च न खादन्तिनैवेद्यभोजिनःसदा॥
विष्णोर्निवेदितान्नञ्च नित्यं ये भुञ्जते नराः । पूतानि सर्वतीर्थानि तेषाञ्च स्पर्शनाद्दहो॥

विष्णोः पादोदकं पुण्यं नित्यं ये भुञ्जते नराः। तेषां सन्दर्शनमात्रेण पूतञ्च भुवनत्रयम्
विष्णोः सुदर्शनं चक्रं शततं तांश्च रक्षति ॥ ५१ ॥
मद्गुणश्रवणाद् ये च पुलकाङ्कितविग्रहाः। गद्गदाः साश्रुनेत्रास्तेनराश्चवैष्णवोत्तमाः ॥
पुत्रादपि परः स्नेहो मयि येषां निरन्तरम्। गृहाद्याश्रमयिन्यस्तास्तेनरावैष्णवोत्तमाः ॥
आब्रह्मस्तम्भपर्य्यन्तं भक्तः सर्वं चराचरम्। सर्वेषामहमात्मेश इतिज्ञा वैष्णवोत्तमाः ॥
असंख्यकोटिब्रह्माण्डं ब्रह्मविष्णुशिवादयः। प्रलये मयिलीयन्तेचेतिज्ञा वैष्णवोत्तमाः ॥
तेजःस्वरूपं परमं भक्तानुग्रहविग्रहम्। स्वेच्छामयं निर्गुणञ्च निरीहं प्रकृतेः परम् ॥५६॥
सर्वे प्राकृतिकामत्तःआविर्भूतास्तिरोहिताः। इतिजानन्तियेदेवि ! तेनरावैष्णवोत्तमाः ॥
इत्येवमुक्त्वा देवेशो विरराम तयोः पुरः। उवाच तं त्रिपथगा भक्तिनम्रात्मकन्धरा ॥

गङ्गोवाच।

यामि चेद्भारतं नाथ भारतीशापतः पुरा। तवाज्ञया च राजेन्द्र तपसा चैव साम्प्रतम् ॥
दास्यन्ति पापिनो मह्यं पापानि यानि कानि च। तानिमेकेननश्यन्तितदुपायंवदप्रभो ॥
कतिकालं परिमितं स्थितिर्मे तत्र भारते। कदा यास्यामि सर्वेश तद्विष्णोः परमंपदम् ॥
ममान्यद्वाञ्छितं यद्यत् सर्वंजानासिसर्ववित्। सर्वान्तरात्मन्सर्वज्ञतदुपायंवदप्रभो ॥

श्रीकृष्ण उवाच।

जानामि वाञ्छितं गङ्गे तव सर्वं सुरेश्वरि। पतिस्ते रुद्ररूपोऽयं लवणोदोभविष्यति ॥
ममैवांशसमुद्रश्च त्वञ्च लक्ष्मीस्वरूपिणी। विदग्धायाविदग्धेनसङ्गमो गुणवान् भुवि ॥
यावत्यः सन्ति नद्यश्च भारत्याद्याश्च भारते। सौभाग्यं तव तास्वेव लवणोदस्य सौरते
अद्यप्रभृति देवेशि कलेः पञ्चसहस्रकम्। वर्षं स्थितिस्ते भारत्याः शापेन भारते भुवि ॥
नित्यं वारिधिना सार्द्धं करिष्यसिरहोरतिम्। त्वमेवरसिकादेवीरसिकेन्द्रेणसंयुता ॥
त्वां स्तोष्यन्ति च स्तोत्रेणभगीरथकृतेनच। भारतस्थाजनाःसर्वेपूजयिष्यन्तिभक्तितः ॥
कौथुमोक्तेनध्यानेनध्यात्वात्वांपूजयिष्यति। यःस्तौतिप्रणमेन्नित्यंसोऽश्वमेधफलंलभेत्
गंगागंगेति यो ब्रूयात् योजनानांशतैरपि। मुच्यतेसर्वपापेभ्योविष्णुलोकंसगच्छति ॥
सहस्रपापिनां स्नानाद् यत्पापं ते भविष्यति। मद्भक्तदर्शनेन तदेव हि विनश्यति ॥७१

पापिनान्तु सहस्राणां शवस्पर्शेन यत्तव । मन्मन्त्रोपासकस्नानात्सद्यश्च विलङ्घति ॥७२
यत्र यत्र भवेद् गंगे मन्नामगुणकीर्त्तनम् । तत्रैव त्वमधिष्ठानं करिष्यस्यघमोचनात् ॥
सार्द्धं सरिद्भिःश्रेष्ठाभिःसरस्वत्यादिभिःशुभे । तत्तुतीर्थंभवेत्सद्योयत्रमद्गुणकीर्त्तनम् ॥
तद्रेणुस्पर्शमात्रेण पूतो भवति पातकी । रेणुप्रमाणंवर्षञ्च स वैकुण्ठे वसेद् ध्रुवम् ॥७५
ज्ञानेन त्वयियेभक्त्यामन्नामस्मृतिपूर्वकम् । समुत्सृजन्तिप्राणांश्चतेगच्छन्तिहरेःपदम् ॥
पार्षदप्रवरास्ते च भविष्यन्ति हरेश्चिरम् । लयं प्राकृतिकंतेचद्रक्ष्यन्तिचाप्यसंख्यकम् ॥
मृतस्य बहुपुण्येन तत्शवंत्वयिविन्यसेत् । प्रयातिसचवैकुण्ठंयावदस्थ्नांस्थितिस्त्वयि ।
कायव्यूहं ततः कृत्वाभोजयित्वास्वकर्मकम् । तस्मैददामिसारूप्यंकरोमितञ्चपार्षदम् ॥

अज्ञानत्वाज्जलस्पर्शाद् यदि प्राणान् समुत्सृजेत् ।
तस्मै ददामि सारूप्यं करोमि तञ्च पार्षदम् ॥ ८० ॥

अन्यत्रवासृजेत् प्राणांस्त्वन्नामस्मृतिपूर्वकम् । तस्मैददामि सारूप्यमसंख्यप्रलयंलयम् ।
अन्यत्रवात्यजेत्प्राणान्मन्नामस्मृतिपूर्वकम् । तस्मैददामिसालोक्यंयावद्वैब्रह्मणो वयः ।
तीर्थेऽप्यतीर्थेमरणेविशेषो नास्तिकश्चन । मन्मन्त्रोपासकानाञ्च नित्यंनैवेद्यभोजिनाम् ।
पूतं कर्त्तुं स शक्तो हि लीलया भुवनत्रयम् । रत्नेन्द्रसारयानेन गोलोकं स प्रयाति च ॥
मद्भक्तवान्धवा ये ये ते ते·पुण्यधियः शुभे । ते यान्ति रत्नयानेन गोलोकञ्च सुदुर्लभम् ॥
यत्र तत्र मृता ये च ज्ञानाज्ञानेन वा सति !। जीवन्मुक्ताश्च ते पूता मद्भक्तसन्निधानतः ।
इत्युक्त्वाश्रीहरिस्ताञ्चतमुवाचभगीरथम् । स्तौहिगङ्गामिमांभक्त्यापूजांकुर्विति साम्प्रतम्
भगीरथस्तां तुष्टाव पूजयामास भक्तितः । कौथुमोक्तेन ध्यानेन स्तोत्रेण च पुनःपुनः ॥
प्रणनाम च श्रीकृष्णं परमात्मानमीश्वरम् । भगीरथश्च गङ्गा च सोऽन्तर्द्धानं चकार ह

नारद उवाच ।

केन ध्यानेन स्तोत्रेण केन पूजाक्रमेण च । पूजाञ्चकार नृपतिर्वद वेदविदां वर ॥ ६० ॥

श्रीनारायण उवाच ।

स्नात्वानित्यक्रियांकृत्वाधृत्वाधौतेचवाससी । सम्पूज्यदेवषट्कञ्चसंयतोभक्तिपूर्वकम् ।
गणेशञ्चदिनेशञ्च वह्निंविष्णुं शिवंशिवाम् । सम्पूज्य देवषट्कञ्च सोऽधिकारीचपूजने ।

गणेशं विघ्ननाशाय निष्पापाय दिवाकरम्। वह्निं स्वशुद्धये विष्णुं मुक्तये पूजयेन्नरः ॥
शिवंज्ञानायज्ञानेशं शिवाञ्च बुद्धिवृद्धये। सम्पूज्यैतल्लभेत् प्राज्ञो विपरीतमतोऽन्यथा ॥
दध्यावनेन तद्ध्यानं शृणु नारद तत्त्वतः। ध्यानञ्च कौथुमोक्तञ्च सर्वपापप्रणाशनम् ॥
श्वेतचम्पकवर्णाभां गङ्गां पापप्रणाशिनीम्। कृष्णविग्रहसम्भूतां कृष्णतुल्यांपरांसतीम्।
वह्निशुद्धांशुकाधानां रत्नभूषणभूषिताम्। शरत्पूर्णेन्दुशतकप्रभायुष्टकलेवराम् ॥ ९७ ॥

ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां शश्वत्सुस्थिरयौवनाम्।
नारायणप्रियां शान्तां सत्सौभाग्यसमन्विताम् ॥ ९८ ॥

बिभ्रतीं कवरीभारं मालतीमाल्यसंयुताम्। सिन्दूरविन्दुललितां सार्द्धं चन्दनविन्दुभिः।
कस्तूरीपत्रकं गण्डे नानाचित्रसमन्वितम्। पक्वविम्बविनिन्दैकचार्वोष्ठपुटमुत्तमम् ॥
मुक्तापंक्तिप्रभायुष्टदन्तपंक्तिमनोहराम्। सुचारुवक्रनयनां सकटाक्षमनोरमाम् ॥ १०१ ॥
कठिनंश्रीफलाकारंस्तनयुग्मंसपत्रकम्। वृहच्छ्रोणींसुकठिनांरम्भास्तम्भविनिन्दिताम्।
स्थलपद्मप्रभायुष्टपादपद्मयुगं वरम्। रत्नपाशकसंयुक्तं कुङ्कुमाक्तं सयावकम् ॥ १०३ ॥
देवेन्द्रमौलिमन्दारमकरन्दकणारुणम्। सुरसिद्धमुनीन्द्रैश्च दत्तार्घ्यसंयुतं सदा ॥१०४॥
तपस्विमौलिनिकरभ्रमरश्रेणीसंयुतम्। मुक्तिप्रदं मुमुक्षूणां कामिनां स्वर्गभोगदम्।१०५
वरां वरेण्यां वरदां भक्तानुग्रहकातराम्। श्रीविष्णोःपददात्रीञ्च भजे विष्णुपदींसतीम्।
इत्यनेनच ध्यानेन ध्यात्वा त्रिपथगां शुभाम्। दत्त्वा संपूजयेद् ब्रह्मन्नुपहारांश्चषोड़श
आसनंपाद्यमर्घ्यञ्च स्नानीयञ्चानुलेपनम्। धूपं दीपञ्च नैवेद्यं ताम्बूलं शीतलं जलम् ॥
वसनं भूषणं माल्यं गन्धमाचमनीयकम्। मनोहरं सुतल्पञ्च देयान्येतानिषोड़श ॥१०६
दत्वाभक्त्याच प्रणमेत् संस्तूयसंपुटाञ्जलिः। संपूज्यैवं प्रकारेण सोऽश्वमेधफलंलभेत्।
स्तोत्रञ्चकौथुमोक्तञ्च संवादंविष्णुब्रह्मणोः। शृणुनारद वक्ष्यामि पापघ्नञ्चसुपुण्यदम् ॥

श्रीब्रह्मोवाच।

श्रोतुमिच्छामि देवेश लक्ष्मीकान्त जगत्प्रभो।
विष्णोः विष्णुपदीस्तोत्रं पापघ्नं पुण्यकारणम् ॥११२॥

श्रीनारायण उवाच ।

शिवसंगीतसंमुग्धश्रीकृष्णाङ्गद्रवोद्भवाम् । राधाङ्गद्रवसम्भूतां तां गङ्गां प्रणमाम्यहम्॥
यज्जन्मसृष्टेरादौच गोलोके रासमण्डले । सन्निधाने शङ्करस्य तां गङ्गां प्रणमाम्यहम्॥
गोपैर्गोपीभिराकीर्णेशुभे राधामहोत्सवे । कार्त्तिकीपूर्णिमाजातां तांगङ्गांप्रणमाम्यहम्।
कोटियोजनविस्तीर्णा दैर्घ्ये लक्षगुणा ततः । समावृता या गोलोकं तां गङ्गां प्रणमाम्यहम्।
षष्टिलक्षयोजना या ततो दैर्घ्ये चतुर्गुणा । समावृता या वैकुण्ठं तां गङ्गां प्रणमाम्यहम्॥
त्रिंशलक्षयोजना या ततो दैर्घ्ये चतुर्गुणा । आवृता ब्रह्मलोकं या तां गङ्गां प्रणमाम्यहम्॥
त्रिंशल्लक्षयोजना या दैर्घ्ये पञ्चगुणा ततः । आवृता शिवलोकं या तां गङ्गां प्रणमाम्यहम्।
षड्योजनविस्तीर्णा या दैर्घ्ये दशगुणा ततः। मन्दकिनी येन्द्रलोकंतां गङ्गां प्रणमाम्यहम्।
लक्षयोजनविस्तीर्णा दैर्घ्ये सप्तगुणा ततः । आवृता ध्रुवलोकं या तां गङ्गां प्रणमाम्यहम्।
लक्षयोजनविस्तीर्णा दैर्घ्ये चषड्गुणा ततः। आवृता चन्द्रलोकं या तां गङ्गां प्रणमाम्यहम्
षष्टिसहस्रयोजना या दैर्घ्ये दशगुणा ततः।आवृता सूर्य्यलोकं या तां गङ्गां प्रणमाम्यहम्।
लक्षयोजनविस्तीर्णा दैर्घ्येंचषड्गुणा ततः। आवृता सत्यलोकं या तां गङ्गां प्रणमाम्यहम्।

दशलक्षयोजना या दैर्घ्ये पञ्चगुणा ततः ।
आवृता या तपोलोकं तां गङ्गां प्रणमाम्यहम् ॥ १२५ ॥

सहस्रयोजना या च दैर्घ्ये सप्तगुणा ततः । आवृता जनलोकं या तां गङ्गां प्रणमाम्यहम्।
सहस्रयोजना यासा दैर्घ्ये सप्तगुणाततः । आवृतायाच कैलासं तां गङ्गांप्रणमाम्यहम्।
पाताले याभोगवतीविस्तीर्णादशयोजना। ततो दशगुणा दैर्घ्ये तां गङ्गां प्रणमाम्यहम्।
क्रोशैकमात्रविस्तीर्णा ततःक्षीणानकुत्रचित् । क्षितौचालकनन्दायातांगंगांप्रणमाम्यहम्।
सत्ये या क्षीरवर्णाच त्रेतायामिन्दुसन्निभा । द्वापरे चन्दनाभाच तांगंगांप्रणमाम्यहम्।
जलप्रभा कलौ या च नान्यत्रपृथिवीतले । स्वर्गेच नित्यंक्षीराभा तां गंगांप्रणमाम्यहम्।
यस्याः प्रभावश्चातुलः पुराणे च श्रुतौ श्रुतः । या पुण्यदापापहर्त्रीतांगङ्गां प्रणमाम्यहम्
यत्तोयकणिकास्पर्शः पापिनाञ्च पितामह । ब्रह्महत्यादिकं पापं कोटिजन्मार्जितं दहेत्
इत्येवं कथितं ब्रह्मन् गङ्गापद्यैकविंशतिम् । स्तोत्ररूपञ्च परमं पापघ्नं पुण्यबीजकम्॥

नित्यं यो हि पठेद्द भक्त्या संपूज्य च सुरेश्वरीम् ।
अश्वमेधफलं नित्यं लभते नात्र संशयः ॥ १३५ ॥
अपुत्रो लभते पुत्रं भार्य्याहीनोलभेत्प्रियाम् । रोगान्मुच्येतरोगीचवद्धोमुच्येतवन्धनात्
अस्पष्टकीर्त्तिः सुयशामूर्खोभवतिपण्डितः । यः पठेत् प्रातरुत्थाय गङ्गास्तोत्रमिदंशुभम्
शुभं भवेत्तु दुःस्वप्नं गङ्गास्नानफलं लभेत् ॥ १३८ ॥
इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे गङ्गास्तोत्रं सम्पूर्णम् ।
नारायण उवाच ।
भगीरथोऽनयास्तुत्या स्तुत्वा गङ्गाञ्चनारद । जगामतां गृहीत्वाच यत्र नष्टाश्चसागराः ॥
वैकुण्ठंते ययुस्स्तूर्णं गङ्गायाःस्पर्शवायुना । भगीरथेनसा नीता तेन भगीरथी स्मृता ॥
इत्येवंकथितं सर्वं गङ्गोपाख्याननमुत्तमम् । पुण्यदंमोक्षदं सारं किंभूयःश्रोतुमिच्छसि ।
नारद उवाच ।
शिवसङ्गीतसंमुग्धे श्रीकृष्णे द्रवतां गते । द्रवताञ्च गतायाञ्च राधायां किं वभूव ह ॥
तत्रस्थाश्चजना ये ये ते च किं चक्रुरुत्तमम् । एतत् सर्वं सुविस्तीर्णं कृत्वावक्तुमिहार्हसि ।
नारायण उवाच ।
कार्त्तिकीपूर्णिमायाञ्च राधायाःसुमहोत्सवे । कृष्णःसंपूज्यतां राधामुवासरासमण्डले ।
कृष्णेन पूजितां तान्तु संपूज्य हृष्टमानसाः । ऊचुर्ब्रह्मादयः सर्वे ऋषयः सनकादयः ॥
एतस्मिन्नन्तरे कृष्णसंगीतञ्च सरस्वती । जगौसुन्दरतानेन वीणयाच मनोहरम् ॥१४६
तुष्टो ब्रह्मा ददौ तस्यै रत्नेन्द्रसारहारकम् । शिरोमणीन्द्रसारञ्च सर्वब्रह्माण्डदुर्लभम् ॥
कृष्णः कौस्तुभरत्नञ्च सर्वरत्नात् परं वरम् । अमूल्यरत्नानिर्माणहारसारञ्च राधिका ॥
नारायणश्च भगवान् वनमालां मनोहरम् । अमूल्यरत्नानिर्माणं लक्ष्मीर्मकरकुण्डलम् ॥
विष्णुमाया भगवती मूलप्रकृतिरीश्वरी । दुर्गा नारायणीशानी विष्णुभक्तिं सुदुर्लभाम् ।
धर्मवृद्धिञ्च धर्मश्च यशश्च विपुलं भवे । वह्निशुद्धांशुकं वह्निर्वायुश्च मणिनूपुरम् ॥१५१
एतस्मिन्नन्तरे शम्भुर्ब्रह्मणा प्रेरितो मुहुः । जगौ श्रीकृष्णसंगीतं रासोल्लाससमन्वितम् ॥
मूर्च्छां प्रापुः सुराः सर्वे चित्रपुत्तलिका यथा । क्षणेन चेतनां प्राप्य ददृशू रासमण्डलम्
स्थलंसर्वं जलाकीर्णं राधाकृष्णविहीनकम् । अत्युच्चैरुरुदुः सर्वे गोपगोप्यःसुराद्विजाः॥

ध्यानेन ब्रह्मा बुबुधे सर्वमेवमभीप्सितम् । गतश्च राधया सार्द्धं श्रीकृष्णोद्रवतामिति ॥
ततो ब्रह्मादयः सर्वे तुष्टुवुः परमेश्वरम् । स्वमूर्त्तिदर्शय विभो वाञ्छितं वरमेव नः १५६
एतस्मिन्नन्तरेतत्र वाग् बभूवाशरीरिणी । तामेव शुश्रुवुः सर्वे सुव्यक्तां मधुरान्विताम् ॥
सर्वात्माहमियं शक्तिर्भक्तानुग्रहविग्रहा । ममाप्यस्याश्च ते देवा देहेन च किमावयोः ॥
मनवो मानवाः सर्वे मुनयश्चैव वैष्णवाः । मन्मन्त्रपूता मां द्रष्टुमागमिष्यन्ति मत्पदम् ॥
मूर्त्तिं द्रष्टुञ्च सुव्यग्रा यूयं यदि सुरेश्वराः । करोति शम्भुस्तत्रैव मदीयं वाक्यपालनम् ।
स्वयं विधाता त्वं ब्रह्मन्नाज्ञां कुरु जगद्गुरो । कर्त्तुं शास्त्रविशेषञ्च वेदाङ्गं सुमनोहरम् ।
अपूर्वमन्त्रनिकरैः सर्वाभीष्टफलप्रदैः । स्तोत्रैश्च कवचैर्ध्यानैर्युतं पूजाविधिक्रमैः ।१६२
मन्मन्त्रकवचस्तोत्रं कृत्वा यत्नेन गोपय । भवन्तिविमुखा येन जनानां तत् करिष्यति।
सहस्रेषुशतेष्वेकोमन्मन्त्रोपासको भवेत् । ते ते जना मन्त्रपूताश्चागमिष्यन्ति मत्पदम् ॥
अन्यथाचभविष्यन्ति सर्वे गोलोकवासिनः। निष्फलंभविता सर्वं ब्रह्माण्डञ्चैवब्रह्मणः॥
जनाःपञ्चप्रकाराश्चयुक्ताः स्रष्टुर्भवेभवे । पृथिवीवासिनःकेचित् केचित्स्वर्गनिवासिनः॥
अधोनिवासिनःकेचित्ब्रह्मलोकनिवासिनः। केचिद्वावैष्णवाःकेचिन्ममलोकनिवासिनः।
इदं कर्त्तुं महादेवः करोतु देवसंसदि । प्रतिज्ञां सुदृढ़ां सद्यस्ततो मूर्त्तिञ्च द्रक्ष्यसि ॥
इत्येवमुक्त्वा गगने विरराम सनातनः । तद् दृष्ट्वा च जगन्नाथस्तमुवाच शिवं मुदा १६६
ब्रह्मणोवचनंश्रुत्वा ज्ञानेशो ज्ञानिनां वरः । गङ्गातोयं करे धृत्वा स्वीकारञ्च चकारसः॥
संयुक्तंविष्णुमायाद्यैर्मन्त्राद्यैः शास्त्रमुत्तमम् । वेदसारंकरिष्यामि कृष्णाज्ञापालनायच॥
गङ्गातोयमुपस्पृश्य मिथ्या यदि वदेज्जनः । सयाति कालसूत्रञ्च यावद्वै ब्रह्मणो वयः ॥
इत्युक्ते शङ्करे ब्रह्मन् गोलोकेश्वरसंसदि । आविर्बभूव श्रीकृष्णो राधया सह तत्परः॥
ते तं दृष्ट्वा च संहृष्टाःसंस्तूय पुरुषोत्तमम् । परमानन्दपूर्णाश्च चक्रुश्च पुनरुत्सवम् ॥
कालेन शम्भुर्भगवान् शास्त्रदीपं चकारसः । इत्येवं कथितं सर्वं सुगोप्यञ्च सुदुर्लभम्।
सा एवं द्रवरूपा या गङ्गा गोलोकसम्भवा। राधाकृष्णाङ्गसम्भूता भक्तिमुक्तिफलप्रदा॥
स्थानेस्थानेस्थापितासा कृष्णेन परमात्मना । कृष्णस्वरूपा परमा सर्वब्रह्माण्डपूजिता।

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे गङ्गोपाख्यानं नाम दशमोऽध्यायः ।

एकादशोऽध्यायः

गङ्गारूपमोहितं कृष्णं प्रति राधाया उपालम्भः ।

नारद उवाच ।

कलेः पञ्चसहस्रे सा समतीते सुरेश्वरी । क्व गता सा महाभागा तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ।

नारायण उवाच ।

भारतं भारतीशापात् समागत्येश्वरेच्छया । जगाम तत्र वैकुण्ठं शापान्ते पुनरेव सा ॥

भारतं भारती त्यक्त्वा जगाम तं हरेः पदम् । पद्मावती च शापान्ते गंगायाश्चैव नारद ॥

गंगा सरस्वती लक्ष्मीश्चैतास्तिस्रः प्रिया हरेः ।

तुलसीसहिता ब्रह्मंश्चतस्रः कीर्त्तिताः श्रुतौ ॥ ४ ॥

नारद उवाच ।

बभूव सा मुनिश्रेष्ठ गंगा नारायणप्रिया । अहो केन प्रकारेण तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥

श्रीनारायण उवाच ।

पुराबभूव गोलोके सा गंगा द्रवरूपिणी । राधाकृष्णाङ्गसम्भूता तदंशा तत्स्वरूपिणी ।

द्रवाधिष्ठातृरूपा या रूपेणाप्रतिमा भुवि । नवयौवनसम्पन्ना रत्नाभरणभूषिता ॥ ७ ॥

शरन्मध्याह्नपद्मास्यासस्मिता सुमनोहरा । तप्तकाञ्चनवर्णाभा शतचन्द्रसमप्रभा ॥ ८ ॥

स्निग्धप्रभातिसुस्निग्धा शुद्धसत्वस्वरूपिणी । सुपीनकठिनश्रोणी सुनितम्बयुगं वरम् ॥

पीनोन्नतं सुकठिनं स्तनयुग्मं सुवर्तुलम् । सुचारुनेत्रयुगलं सकटाक्षं सुवङ्किमम् ॥१०॥

वङ्किमं कवरीभारं मालतीमाल्यसंयुतम् । सिन्दूरविन्दुललितं सार्द्धं चन्दनविन्दुभिः ॥

कस्तूरीपत्रिकायुक्तं गण्डयुग्मं मनोहरम् । वन्धूककुसुमाकारमधरौष्ठञ्च सुन्दरम् ॥१२॥

पक्वदाड़िम्बवीजाभदन्तपंक्तिसमुज्ज्वलाम् । वाससी वह्निशुद्धे च नीवीयुक्तेचविभ्रती ॥

सा सकामा कृष्णपार्श्वे समुवास सलज्जिता ।

वाससा मुखमाच्छाद्य लोचनाभ्यां विभोर्मुखम् ।

निमेषरहिताभ्याञ्च पिबन्ती सततं मुदा ॥ १४ ॥

प्रफुल्लवदना हर्षान्नवसङ्गमलालसा । मूर्च्छिता प्रभुरूपेण पुलकाङ्कितविग्रहा ॥ १५ ॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र विद्यमाना च राधिका । गोपीत्रिंशत्कोटियुक्ता कोटिचन्द्रसमप्रभा
कोपेन रक्तपद्मास्या रक्तपङ्कजलोचना । श्वेतचम्पकवर्णाभा गजेन्द्रमन्दगामिनी ॥१७॥
अमूल्यरत्ननिर्माणनानाभरणभूषिता ॥ १८ ॥
अमूल्यखचितं हारममूल्यं वह्निशौचकम् । पीताभवस्त्रयुगलं नीवीयुक्तञ्च बिभ्रती ॥१६
स्थलपद्मप्रभायुष्टकोमलञ्च सुरञ्जितम् । कृष्णदत्तार्घ्यसंयुक्तं विन्यस्यन्ती पदाम्बुजम् ॥
रत्नेन्द्रसारनिर्माणविमानादवरुह्य च । सेव्यमाना च सखीभिः श्वेतचामरवायुना ॥२१॥
कस्तूरीविन्दुभिर्युक्तं चन्दनेन्दुसमन्वितम् । दीप्तदीपप्रभाकारं सिन्दूरविन्दुसुन्दरम् ॥
दधती भालमध्ये च सीमन्ताधस्तथोज्ज्वले । पारिजातप्रसूनानां मणियुक्तं सुवङ्किमम्
सुचारुकवरीभारं कम्पयन्ती च कम्पिता । सुचारुनासासंयुक्तमोष्ठं कम्पयती रुषा ॥
गत्वोवास कृष्णपार्श्वे रत्नसिंहासने वरे । सखीनाञ्च समूहैश्च परिपूर्णा विभोः सभा
ताञ्च दृष्ट्वा समुत्तस्थौ कृष्णः सादरपूर्वकम् । संभाष्य मधुराभावैः सस्मितश्चससंभ्रमः
प्रणेमुरभिसंत्रस्ता गोपा नम्रात्मकन्धरा । तुष्टुवुस्ते च भक्त्या च तुष्टाव परमेश्वरः ॥
उत्थाय गङ्गा सहसा सम्भाषाञ्च चकार सा । कुशलं परिप्रच्छ भीतातिविनयेन च ॥
नम्रभावस्थिता त्रस्ता शुष्ककण्ठौष्ठतालुका । ध्यानेन शरणापन्नाश्रीकृष्णचरणाम्बुजे
तद्धृद्पद्मेस्थितः कृष्णो भीतायै चाभयंददौ । बभूवस्थिरचित्ता सा सर्वेश्वरवरेण च
ऊर्द्ध्वेसिंहासनस्थाञ्चराधां गङ्गाददर्श सा । सुस्निग्धांसुखदृश्याञ्चज्वलन्तीं ब्रह्मतेजसा
असंख्यब्रह्मणामाद्यां चादिसृष्टिं सनातनीम् । यथा द्वादशवर्षीयां कन्याञ्च नवयौवनाम्
विश्ववृन्दे निरुपमां रूपेण च गुणेन च । शान्ताकान्तामनन्तान्तामाद्यन्तरहितां सतीम्
शुभां शुभद्रां सुभगां स्वामिसौभाग्यसंयुताम् ।
सौन्दर्य्ये सुन्दरीश्रेष्ठां सर्वासु सुन्दरीषु च ॥ ३४ ॥
कृष्णार्द्धाङ्गां कृष्णसमांतेजसावयसात्विषा । पूजिताञ्चमहालक्ष्मीं महालक्ष्मीश्वरेण च
प्रच्छाद्यमानां प्रभया सभामीशस्य सुप्रभाम् । सखीदत्तं भुक्तवतीं ताम्बूलमन्यदुर्लभम्
अजन्यां सर्वजननींधन्यांमान्याञ्च मानिनीम् । कृष्णप्राणाधिदेवीञ्च प्राणप्रियतमांरमाम्

दृष्ट्वा रासेश्वरीं तृप्तिं न जगाम सुरेश्वरी । निमेषरहिताभ्याञ्च लोचनाभ्यां पपौच ताम्
एतस्मिन्नन्तरे राधा जगदीशमुवाच सा । वाचा मधुरयाशान्ता विनीता सस्मिता मुने

राधिकोवाच ।

केयं प्राणेशकल्याणीसस्मितात्वन्मुखाम्बुजम् । पश्यन्ती सततंपार्श्वे सकामारक्तलोचना
मूर्च्छां प्राप्नोतिरूपेण पुलकाङ्कितविग्रहा । वस्त्रेण मुखमाच्छाद्य निरीक्षन्ती पुनः पुनः

त्वञ्चापि मां सन्निरीक्ष्य सकामः सस्मितः सदा ।
मयि जीवति गोलोके भूता दुर्वृत्तिरीदृशी ॥ ४२ ॥

त्वमेव चैवं दुर्वृत्तंवारंवारंकरोषि च । क्षमां करोमिप्रेम्णा च स्त्रीजातिःस्निग्धमानसा
संगृह्येमां प्रियामिष्टां गोलोकाद्गच्छ लम्पट । अन्यथा नहि ते भद्रं भविष्यतिव्रजेश्वर
दृष्टस्त्वं विरजायुक्तो मया चन्दनकानने । क्षमा कृता मया पूर्वं सखीनां वचनादहो ॥
त्वया मच्छब्दमात्रेण तिरोधानं कृतं पुरा । देहं सन्त्यज्य विरजा नदीरूपा बभूव सा
कोटियोजनविस्तीर्णा ततो दैर्घ्येचतुर्गुणा । अद्यापि विद्यमानासातव सत्कीर्तिरूपिणी
गृहं मयि गतायाञ्च पुनर्गत्वा तदन्तिकम् । उच्चैररोसीविरजे विरजेति च संस्मरन् ॥

तदा तोयात् समुत्थाय सा योगात् सिद्धयोगिनी ।
सालङ्कारा मूर्त्तिमती ददौ तुभ्यञ्च दर्शनम् ॥ ४६ ॥

ततस्ताञ्च समाश्लिष्य वीर्य्याधानं कृतं त्वया । ततो बभूवुस्तस्याञ्च समुद्राः सप्तएव च
दृष्टस्त्वं शोभया गोप्या युक्तश्चम्पककानने । सद्यो मच्छब्दमात्रेण तिरोधानंकृतंत्वया
शोभादेहं परित्यज्य जगाम चन्द्रमण्डलम् । ततस्तस्याः शरीरञ्च स्निग्धं तेजो बभूव ह
संविभज्य त्वया दत्तं हृदयेन विदूयता । रत्नाय किञ्चित् स्वर्णाय किञ्चिन्मणिवराय च

किञ्चित् स्त्रीणां मुखाब्जेभ्यः किञ्चिद्राज्ञे च किञ्चन ।
किञ्चित् प्रकृष्टवस्त्रेभ्यो रौप्येभ्यश्चापि किञ्चन ॥ ५४ ॥

किञ्चिच्चन्दनपङ्केभ्यस्तोयेभ्यश्चापि किञ्चन । किञ्चित्किशलयेभ्यश्चपुष्पेभ्यश्चापिकिञ्चन
किञ्चित् फलेभ्यः शस्येभ्यः सुपक्वेभ्यश्चकिञ्चन । नृपदेवगृहेभ्यश्चसंस्कृतेभ्यश्च किञ्चन
दृष्टस्त्वं प्रभया गोप्या युक्तो वृन्दावने वने । सद्यो मच्छब्दमात्रेण तिरोधानंकृतं त्वया

प्रभादेहं परित्यज्य जगाम सूर्य्यमण्डलम् । ततस्तस्याः शरीरञ्च तीक्ष्णं तेजो बभूव ह॥
संविभज्य त्वया दत्तं प्रेमूणा च रुदता पुरा ।'विसृज्य चक्षुषोर्दत्तं लज्जया तद्भयेन च
हुताशनाय किञ्चिच्च नृपेभ्यश्चापि किञ्चन। किञ्चित् पुरुषसंघेभ्यो देवेभ्यश्चापि किञ्चन
किञ्चिद्दस्युगणेभ्यश्च नागेभ्यश्चापि किञ्चन । ब्राह्मणेभ्यो मुनिभ्यश्चतपस्विभ्यश्चकिञ्चन
स्त्रीभ्यः सौभाग्ययुक्तेभ्योयशस्विभ्यश्चकिञ्चन । तच्चदत्त्वाचसर्वेभ्यः पूर्वं रोदितुमुद्यतः

शान्त्या गोप्या युतस्त्वञ्च दृष्टोऽत्र रासमण्डले ।
वसन्ते पुष्पशय्यायां माल्यवांश्चन्दनोक्षितः ॥ ६३ ॥

रत्नप्रदीपैर्युक्तश्च रत्ननिर्माणमन्दिरे । रत्नभूषणभूषाढ्यो रत्नभूषितया सह ॥ ६४ ॥
त्वया दत्तञ्च ताम्बूलं भुक्तवत्यासुरस्य च । तया दत्तञ्चताम्बूलंभुक्तवान्त्वंपुरा विभो॥
सद्यो मच्छब्दमात्रेण तिरोधानंकृतंत्वया । शान्तिर्देहंपरित्यज्यभियालीनात्वयिप्रभो ॥
ततस्तस्याः शरीरञ्च गुणश्रेष्ठं बभूव ह । संविभज्य त्वया दत्तं प्रेम्णा च रुदता पुरा ॥
विश्वेविषयिणेकिञ्चित्सत्त्वरूपायविष्णवे।शुद्धसत्त्वस्वरूपायैकिञ्चिल्लक्ष्म्यैपुराविभो ॥
त्वन्मन्त्रोपासकेभ्यश्च वैष्णवेभ्यश्च किञ्चन। तपस्विभ्यश्चधर्मायधर्मिष्ठेभ्यश्चकिञ्चन ॥
मया पूर्वञ्च त्वं दृष्टो गोप्या च क्षमयासह । सुवेशयुक्तोमाल्यवान्गन्धचन्दनसंयुतः ॥
रत्नभूषितया गन्धचन्दनोक्षितया तया । सुखेन मूर्च्छितस्तल्पे पुष्पचन्दनसंयुते ॥७१॥
श्लिष्टोऽभून्निद्रया सद्यः सुखेन नवसंगमात् । मया प्रबोधितासाचभवांश्चस्मरणंकुरु॥
गृहीतं पीतवस्त्रं ते मुरली च मनोहरा । वनमाला कौस्तुभश्चाप्यमूल्यं रत्नकुण्डलम् ॥
पश्चात् प्रदत्तंप्रेम्णाचसखीनांवचनादहो । लज्जयाकृष्णवर्णोऽभूदद्यापिचभवान् प्रभो ॥
क्षमा देहं परित्यज्य लज्जया पृथिवीं गता । ततस्तस्याः शरीरञ्च गुणश्रेष्ठं बभूव ह॥७५॥
संविभज्य त्वया दत्तं प्रेमूणा चरुदतापुरा । किञ्चिद्दत्तंविष्णवेचवैष्णवेभ्यश्च किञ्चन ॥
धर्मिष्ठेभ्यश्च धर्माय दुर्वलेभ्यश्चकिञ्चन । तपस्विभ्योऽपिदेवेभ्यःपण्डितेभ्यश्चकिञ्चन ॥
एतत्ते कथितं सर्वं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि । त्वद्गुणञ्च बहुतरं जानामिचापरंप्रभो ॥
इत्येवमुक्त्वा सा राधा रक्तपङ्कजलोचना । गंगां वक्तुंसमारैभेनम्रास्यांलज्जितांसतीम् ॥

गंगा रहस्यं विज्ञाय योगेन सिद्धयोगिनी ।

तिरोभूय सभामध्यात् स्वजलंप्रविवेश सा ॥ ८० ॥

राधायोगेनविज्ञायसर्वत्रावस्थिताञ्चताम् । पानं कर्त्तुं समारेभेगण्डूषात्सिद्धयोगिनी ॥

गङ्गा रहस्यं विज्ञाय योगेन सिद्धयोगिनी । श्रीकृष्णचरणाम्भोजे विवेश शरणं ययौ ॥

गोलोकञ्चैव वैकुण्ठं ब्रह्मलोकादिकं तथा । ददर्श राधासर्वत्रनैवगङ्गां ददर्श सा ॥८३॥

सर्वतो जलशून्यञ्च शुष्कपङ्कजगोलकम् । जलजन्तुसमूहैश्चैवमृतदेहैः समन्वितम् ॥८४

ब्रह्मविष्णुशिवानन्तधर्मेन्द्रेन्दुदिवाकराः । मनवो मानवाः सर्वे देवाःसिद्धास्तपस्विनः ॥

गोलोकञ्चसमाजग्मुः शुष्ककण्ठौष्ठतालुकाः । सर्वे प्रणेमुर्गोविन्दं सर्वेशं प्रकृतेःपरम् ॥

वरं वरेण्यं वरदं वरिष्ठं वरकारणम् । वरेशञ्च वरार्हञ्च सर्वेषां प्रवरं प्रभुम् ॥ ८७ ॥

निरीहञ्च निराकारं निर्लिप्तञ्च निराश्रयम् । निर्गुणञ्च निरुत्साहं निर्व्यूहञ्च निरञ्जनम् ॥

स्वेच्छामयञ्च साकारं भक्तानुग्रहविग्रहम् । सत्यस्वरूपं सत्येशं साक्षिरूपं सनातनम् ॥

परं परेशं परमं परमात्मनमीश्वरम् । प्रणम्य तुष्टुवुः सर्वे भक्तिनम्रात्मकन्धराः ॥९०॥

सगद्गदाः साश्रुनेत्राः पुलकाञ्चितविग्रहाः । सर्वे संस्तूय सर्वेशं भगवन्तं परं हरिम् ॥

ज्योतिर्मयं परं ब्रह्म सर्वकारणकारणम् । अमूल्यरत्ननिर्माणचित्रसिंहासनस्थितम् ॥९२॥

सेव्यमानञ्च गोपालैः श्वेतचामरवायुना । गोपालिकानृत्यगीतं पश्यन्तं सस्मितंमुदा ॥

परितो व्यावृतं शश्वद्गोपैश्च शतकोटिभिः । चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं रत्नभूषणभूषितम् ॥९४

नवीननीरदश्यामं किशोरं पीतवाससम् । यथाद्वादशवर्षीयवालं गोपालरूपिणम् ॥९५॥

कोटिचन्द्रप्रभायुष्टपुष्टश्रीयुक्तविग्रहम् । स्वतेजसा परिवृतं सुसाद्दृश्यं मनोहरम् ॥९६॥

कोटिकन्दर्पसौन्दर्य्यलीलालावण्यधामकम् । दृश्यमानञ्चगोपीभिःसस्मिताभिश्चसन्ततम्

भूषणैर्भूषिताभिश्च रत्नेन्द्रसारनिर्मितैः । पिवन्तीभिर्लोचनाभ्यां मुखचन्द्रं प्रभोर्मुदा ॥

प्राणाधिकप्रियतमाराधावक्षःस्थलस्थितम् । तया प्रदत्तं ताम्बूलंभुक्तवन्तंसुवासितम् ॥

परिपूर्णतमं रासे ददृशुः सर्वतः सुराः ॥९९॥

मुनयो मानवाः सिद्धास्तपसा च तपस्विनः । प्रहृष्टमानसाः सर्वे जग्मुः परमविस्मयम्

परस्परं समालोच्य ते समूचुश्चतुर्मुखम् । निवेदितुं जगन्नाथं स्वाभिप्रायमभीप्सितम् ॥

ब्रह्मा तद्वचनं श्रुत्वा विष्णुं कृष्णस्यदक्षिणे । वामतो वामदेवश्च जगामकृष्णसन्निधिम्

परमानन्दयुक्तश्च परमानन्दरूपकम् । सर्वं कृष्णमयं धाता ददर्श रासमण्डले ॥१०३॥
सर्वं समानवेशश्च समानासनसंस्थितम् ॥१०४॥
द्विभुजं मुरलीहस्तं वनमालाविभूषितम् । मयूरपुच्छचूडञ्च कौस्तुभेन विराजितम् ॥१०५
अतीवकमनीयञ्च सुन्दरं शान्तविग्रहम् । गुणभूषणरूपेण तेजसा वयसा त्विषा ॥१०६
वाससा यशसाकृत्या मूर्त्या भङ्गिमया समम् । परिपूर्णतमं सर्वं सर्वैश्वर्य्यसमन्वितम्
कं सेव्यं सेवकं कं वा दृष्ट्वा निर्वक्तुमक्षमः । क्षणंतेजःस्वरूपञ्च रूपराशियुतं क्षणम् ॥
एकमेव क्षणं कृष्णं राधया सहितं परम् । प्रत्येकासनसंस्थश्च तया च सहितंक्षणम् ॥
राधारूपधरं कृष्णं कृष्णरूपकलत्रकम् । किं स्त्रीरूपञ्च पुंरूपं विधाता ध्यातुमक्षमः ॥
हृतपद्मस्थञ्च श्रीकृष्णं धाता ध्यानेन चेतसा । चकार स्तवनं भक्त्या परिहारमनेकधा ॥
ततः स चक्षुरुन्मील्य पुनश्च तदनुज्ञया । ददर्श कृष्णमेकञ्च राधावक्षःस्थलस्थितम् ॥
स्वपार्षदैः परिवृतं गोपीमण्डलमण्डितम् । पुनः प्रणेमुस्तं दृष्ट्वा तुष्टुवुश्च पुनश्च ते ॥
विज्ञाय तदभिप्रायं तानुवाच सुरेश्वरः । सर्वात्मा सर्वयज्ञेशः सर्वेशः सर्वभावनः ॥११४

श्रीभगवानुवाच ।

आगच्छ कुशलं ब्रह्मन्नागच्छ कमलापते । इहागच्छ महादेव शश्वत् कुशलमस्तुवः ॥
आगताःस्थमहाभागागङ्गानयनकारणात् । गङ्गामच्चरणाम्भोजे भयेन शरणंगता ॥११६
राधेमां पातुमिच्छन्ती दृष्ट्वा मत्सन्निधानतः । दास्यमीमांवहिष्कृत्वायूयंकुरुतनिर्भयाम्
श्रीकृष्णस्यवचःश्रुत्वासस्मितःकमलोद्भवः । तुष्टावसर्वाराध्यान्तांराधांश्रीकृष्णपूजिताम्
वक्त्रैश्चतुर्भिः संस्तूय भक्तिनम्रात्मकन्धरः । धाता चतूर्णां वेदानामुवाचचतुराननः ॥

ब्रह्मोवाच ।

गंगा त्वदङ्गसम्भूता प्रभोश्च रासमण्डले । द्रवरूपा च साजातामुग्धयाशङ्करस्वरात् ॥
कृष्णांशा च त्वदंशा च त्वत्कन्यासदृशीप्रिया । तन्मन्त्रग्रहणंकृत्वाकरोतुतवपूजनम् ॥
भविष्यति पतिस्तस्यवैकुण्ठेच चतुर्भुजः । भूगतायाः कलायाश्च लवणोदश्चवार्णिधिः ॥
गोलोकस्थाचयाराधासर्वत्रस्थातथात्मिके । तदात्मिकात्वंदेवेशिसर्वदाचतवात्मजा ॥
ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा स्वीचकार च सस्मिता । वहिर्बभूव सा कृष्णपादाङ्गुष्ठनखाग्रतः ॥

तत्रैव संवृता शान्ता तस्थौ तेषाञ्च मध्यतः । उवास तोयादुत्थाय तदधिष्ठातृदेवता ॥
तत्तोयं ब्रह्मणाकिञ्चित्स्थापितञ्चकमण्डलौ । किञ्चिद्दधारशिरसिचन्द्रार्द्धचन्द्रशेखरः ॥
गङ्गायै राधिकामन्त्रं प्रददौ कमलोद्भवः । तत्स्तोत्रं कवचंपूजाविधानं ध्यानमेव च ॥
सर्वं तत् सामवेदोक्तं पुरश्चर्य्याक्रमं तथा । गङ्गा तामेव संपूज्य वैकुण्ठं प्रययौ सती ॥
लक्ष्मीः सरस्वती गंगा तुलसी विश्वपावनी । एता नारायणस्यैव चतस्रोयोषितोमुने ॥
अथ तं सस्मितः कृष्णो ब्रह्माणंसमुवाचह । सर्वंकालस्यवृत्तान्तं दुर्बोध्यमविपश्चिताम् ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

गृहाण गङ्गां हे ब्रह्मन् हे विष्णो हे महेश्वर । श्रृणुकालस्यवृत्तान्तं यदतीतं निशामय ॥
यूयञ्च येऽन्यदेवाश्च मुनयो मनवस्तथा । सिद्धास्तपस्विनश्चैव ये येऽत्रैव समागताः ॥
ते ते जीवन्ति गोलोके कालचक्रविवर्जिते । जलप्लुतं सर्वविश्वमागतं प्राकृते लये ॥
ब्रह्माद्या येऽन्यविश्वस्थास्ते लीना अधुना मयि । वैकुण्ठञ्चविनासर्वंसजलंपश्यपद्मज ॥
गत्वा सृष्टिं कुरु पुनर्ब्रह्मलोकादिकं भवम् । सब्रह्माण्डं विरचय पश्चाद्गङ्गाच यास्यति ॥
एवमन्येषु विश्वेषु सृष्ट्वा ब्रह्मादिकं पुनः । करोम्यहं पुनः सृष्टिं गच्छ शीघ्रंसुरैःसह ॥
मच्चक्षुषोर्निमेषेण ब्रह्मणः पतनं भवेत् । गताः कतिविधास्ते च भविष्यन्तिचवेधसः ॥
इत्युक्त्वा राधिकानाथो जगामान्तःपुरं मुने । देवा गत्वा पुनः सृष्टिं चक्रुरेव प्रयत्नतः ॥
गोलोके च स्थिता गङ्गा वैकुण्ठे शिवलोकके । ब्रह्मलोकेतथान्यत्रयत्रतत्रपुरा स्थिता ॥
तत्रैव सा गता गङ्गा चाज्ञयापरमात्मनः । निर्गताविष्णुपादाब्जात्तेनविष्णुपदीस्मृता ॥

इत्येवं कथितं सर्वं गंगोपाख्यानमुत्तमम् ।
सुखदं मोक्षदं सारं किंभूयःश्रोतुमिच्छसि ॥ १४१ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारद संवादे गंगोपाख्याने एकादशोऽध्यायः ।

द्वादशोऽध्यायः

गङ्गाया विवाहः ।

नारद उवाच ।

लक्ष्मीः सरस्वती गंगा तुलसी लोकपावनी । एता नारायणस्यैव चतस्रश्चप्रियाइति ॥
गंगा जगाम वैकुण्ठमिदमेव श्रुतं मया । कथं सा तस्य पत्नी च बभूवेति न च श्रुतम् ॥

नारायण उवाच ।

गंगा जगाम वैकुण्ठं तत्पश्चाज्जगतांविधिः । गत्वोवाचतयासार्द्धंप्रणम्यजगदीश्वरम् ॥

ब्रह्मोवाच ।

राधाकृष्णांगसम्भूता या देवी द्रवरूपिणी । तदधिष्ठातृदेवीयं रूपेणा प्रतिमा भुवि ॥४॥
नवयौवनसम्पन्ना सुशीला सुन्दरी वरा । शुद्धसत्त्वस्वरूपा च क्रोधाहङ्कारवर्जिता ॥५॥
यदंगसम्भवा नान्यं वृणोतीयञ्च तं विना । तत्रापि मानिनी राधा महातेजस्विनी वरा ।
समुद्यता पातुमिमां भीतेयं बुद्धिपूर्वकम् । विवेश चरणाम्भोजे कृष्णस्य परमात्मनः ॥
सर्वं विशुष्कं गोलोकं दृष्ट्वाहमगमन्तदा । गोलोकं यत्र कृष्णश्च सर्ववृत्तान्तप्राप्तये ॥

सर्वान्तरात्मा सर्वं नो ज्ञात्वाभिप्रायमेव च ।
वहिश्चकार गङ्गाञ्च पादांगुष्ठनखाग्रतः ॥ ६ ॥

दत्त्वास्यै राधिकामन्त्रं पूरयित्वा च गोलकम् । संप्रणम्य च राधेशंगृहीत्वात्रागमंविभो
गान्धर्वेण विवाहेन गृहाणेमांसुरेश्वरीम् । सुरेश्वरस्त्वं रसिक रसिकां रसभावनः ॥

पुं रत्नं पुंसु देवेषु स्त्रीरत्नं स्त्रीष्वियंसती ।
विदग्धाया विदग्धेन सङ्गमो गुणवान् भवेत् ॥ १२ ॥

उपस्थिताञ्च यः कन्यां न गृह्णातिमदेन च । तं विहायमहालक्ष्मीरुष्टायाति न संशयः ।

यो भवेत् पण्डितः सोऽपि प्रकृतिं नावमन्यते ।
सर्वे प्राकृतिकाः पुंसः कामिन्यः प्रकृतेः कलाः ॥ १४ ॥

त्वमेव भगवानाद्यो निर्गुणः प्रकृतेः परः । अर्द्धाङ्गो द्विभुजः कृष्णोऽप्यर्द्धांशेन चतुर्भुजः

कृष्णवामांशसम्भूता बभूव राधिका पुरा। दक्षिणांशास्वयंसाच वामांशा कमला यथा
तेन त्वां सा वृणोत्येव यतस्त्वद्देहसम्भवा। एकांगश्चैव स्त्रीपुंसोर्यथा प्रकृतिपूरुषः।

इत्येवमुक्त्वा धाता च तां समर्प्य जगाम सः।
गान्धर्वेण विवाहेन तां जग्राह हरिः स्वयम्॥ १८॥

शय्यां रतिकरीं कृत्वा पुष्पचन्दनचर्चिताम्। रेमे रमापतिस्तत्र गंगया सहितोमुदा।

गां पृथ्वीञ्च गता यस्मात् स्वस्थानं पुनरागता।
निर्गता विष्णुपादाच्च गङ्गा विष्णुपदी स्मृता॥ २०॥

मूर्च्छां सम्प्राप सा देवी नवसंगममात्रतः। रसिका सुखसम्भोगाद्रसिकेश्वरसंयुता
तद्दृष्ट्वा दुःखिता वाणी सा पद्मेर्षाविवर्जिता। नित्यमीर्ष्यतितांवाणीनचगङ्गासरस्वती
गङ्गया सहितस्यैव तिस्रो भार्य्या रमापतेः। सार्द्धं तुलस्या पश्चाच्च चतस्रस्तां बभूविरे

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे गङ्गोपाख्यानं नाम द्वादशोऽध्यायः।

त्रयोदशोऽध्यायः

तुलस्युपाख्यानम्।

नारद उवाच।

नारायणप्रिया साध्वी कथं सा च बभूव ह। तुलसी कुत्रसम्भूताकावासापूर्वजन्मनि॥
कस्य वा सा कुले जाता कस्य कन्यातपस्विनी। केनवातपसासाचसंप्रापप्रकृतेः परम्।
निर्विकल्पं निरीहञ्च सर्वसाक्षिस्वरूपकम्। नारायणं परं ब्रह्म परमात्मनमीश्वरम्॥३॥
सर्वाराध्यञ्च सर्वेशं सर्वज्ञं सर्वकारणम्। सर्वाधारं सर्वरूपं सर्वेषां परिपालकम्॥४॥
कथमेतादृशी देवी वृक्षत्वं समवाप ह। कथं साप्यसुरग्रस्ता संबभूव तपस्विनी॥ ५॥
सन्दिग्धं मे मनो लोल प्रेरयन्मां मुहुर्मुहुः। छेत्तुमर्हसि सन्देहं सर्वसन्देहभञ्जन॥ ६॥

नारायण उवाच ।

मनुश्चदक्षसावर्णिःपुण्यवान्वैष्णवःशुचिः । यशस्वी कीर्त्तिमांश्चैव विष्णोरंशसमुद्भवः ॥
तत्पुत्रोधर्मसावर्णिर्धर्मिष्ठोवैष्णवःशुचिः । तत् पुत्रो विष्णुसावर्णिर्वैष्णवश्चजितेन्द्रियः ।
तत् पुत्रो देवसावर्णिः विष्णुव्रतपरायणः । तत् पुत्रोराजसावर्णिः महाविष्णुपरायणः ॥
वृषध्वजश्च तत् पुत्रो वृषध्वजपरायणः । यस्याश्रमे स्वयं शम्भुरासीद्दैवयुगत्रयम् ॥१०॥
पुत्रादपि परस्नेहो नृपे तस्मिन् शिवस्य च । न च नारायणंमेनेनचलक्ष्मींसरस्वतीम् ॥
पूजाञ्च सर्वदेवानां दूरीभूतां चकार सः । भाद्रे मासि महालक्ष्मीपूजां मत्तोवभञ्ज ह ॥
माघे सरस्वतीपूजां दूरीभूतां चकार सः । यज्ञञ्च विष्णुपूजाञ्चनिनिन्द न चकार सः ॥
न कोऽपि देवो भूपेन्द्रं शशाप शिवकारणात् । भ्रष्टश्रीर्भव भूपेति शशाप तं दिवाकरः ॥
शूलं गृहीत्वा तं सूर्य्यं दधार शङ्करः स्वयम् । पित्रा सार्द्धं दिनेशश्चब्रह्माणंशरणंययौ ॥
शिवस्त्रिशूलहस्तश्च ब्रह्मलोकं ययौ क्रुधा । ब्रह्मा सूर्य्यं पुरस्कृत्य वैकुण्ठञ्चययौभिया ॥
शूलं गृहीत्वा तंसूर्य्यंदधारशङ्करःस्वयम् । ब्रह्मकश्यपमार्त्तण्डाःसंत्रस्ताःशुष्कतालुकाः ।
नारायणञ्च सर्वेशं ते ययुः शरणं भिया । मूर्ध्ना प्रणेमुस्ते गत्वा तुष्टुवश्च पुनः पुनः ॥
सर्वे निवेदनञ्चक्रुर्भयस्य कारणं हरेः ॥१६॥
नारायणश्च कृपया तेभ्यो हि अभयं ददौ । स्थिरा भवतहेभीताभयंकिंवोमयि स्थिते ॥
स्मरन्ति येयत्रतत्रमांविपत्तौ भयान्विताः । तांस्तत्रगत्वारक्षामिचक्रहस्तस्त्वरान्वितः ॥
पाताहं जगतां देवाः कर्त्ताहं सततं सदा । स्रष्टाच ब्रह्मरूपेण संहर्त्ता शिवरूपतः ॥२२॥
शिवोऽहं त्वमहञ्चापि सूर्य्योऽहं त्रिगुणात्मकः । विधायनानारूपञ्च करोमि सृष्टिपालनम् ॥
यूयं गच्छत भद्रं वो भविष्यति भयं कुतः ।
अद्यप्रभृति वो नास्ति मद्वरात् शङ्कराद्भयम् ॥ २४ ॥
आशुतोषः स भगवान् शङ्करश्च सतां गतिः । भक्ताधीनश्चभक्तेशोभक्तात्माभक्तवत्सलः ।
सुदर्शनं शिवश्चैव मम प्राणाधिकप्रियौ । ब्रह्माण्डेषु न तेजस्वी हे ब्रह्मन्ननयोः परः ।
शक्तः स्रष्टुं महादेवः सूर्य्यकोटिञ्च लीलया । कोटिञ्च ब्रह्मणामेवं किमसाध्यंच शूलिनः ।
वाह्यज्ञानंतन्नकिञ्चिद्ध्यायतोमांदिवानिशम् । मन्मन्त्रममगुणंभक्त्यापञ्चवक्त्रेणगीयते ।

अहमेवं चिन्तयामि तत्कल्याणं दिवानिशम् । ये यथामां प्रपद्यन्ते तांस्तथैवभजाम्यहम्
शिवस्वरूपो भगवान् शिवाधिष्ठातृदेवकः । शिवी भवतितस्माच्चशिवंतेन विदुर्बुधाः ।
एतस्मिन्नन्तरे तत्राजगाम शङ्करः स्वयम् । शूलहस्तो वृषारूढ़ो रक्तपंकजलोचनः ।३१।
अवरुह्य वृषात्तूर्णं भक्तिनम्रात्मकन्धरः । ननामभक्त्या तं शान्तं लक्ष्मीकान्तं परात्परम् ।
रत्नसिंहासनस्थञ्च रत्नालङ्कारभूषितम् । किरीटिनं कुण्डलिनं चक्रिणं वनमालिनम् ॥

नवीननीरदश्यामं सुन्दरञ्च चतुर्भुजम् ।
चतुर्भुजैः सेवितञ्च श्वेतचामरवायुना ॥ ३४ ॥

चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं भूषितं पीतवाससा । लक्ष्मीप्रदत्तताम्बूलं भुक्तवन्तञ्च नारद ॥ ३५॥
विद्याधरीनृत्यगीतं पश्यन्तं सस्मितं मुदा । ईश्वरं परमात्मानं भक्तानुग्रहविग्रहम् ॥३६
तं ननाम महादेवो ब्रह्माणञ्च ननाम सः । ननाम सूर्य्यो भक्त्याच संत्रस्तश्चन्द्रशेखरम् ॥
कश्यपश्च महाभक्त्या तुष्टाव च ननाम च । शिवः संस्तूय सर्वेशं समुवास सुखासने ॥
सुखासने सुखासीनं विश्रान्तं चन्द्रशेखरम् । श्वेतचामरवातेन सेवितं विष्णुपार्षदैः ॥
अक्रोधंसत्त्वसंसर्गात् प्रसन्नं सस्मितंमुदा । स्तूयमानं पञ्चवक्त्रैः परं नारायणं विभुम्
तमुवाच प्रसन्नात्मा प्रसन्नं सुरसंसदि । पीयूषतुल्यं मधुरं वचनं सुमनोहरम् ॥ ४१ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

अत्यन्तमुपहास्यञ्चशिवप्रश्नं शिवेशिवम् । लौकिकंवैदिकंप्रश्नं त्वांपृच्छामितथापिशम् ॥
तपसां फलदातारं दातारं सर्वसम्पदाम् । सम्पत्प्रश्नं तपःप्रश्नमयोग्यं त्वाञ्च साम्प्रतम् ।
ज्ञानाधिदेवे सर्वज्ञे ज्ञानं पृच्छामि किं वृथा । निरापदि विपत्प्रश्नमलं मृत्युञ्जये हरे ॥
त्वामेव वाग्धनं प्रश्नमलं स्वाश्रयमागमे । आगतोऽसिकथं त्रस्त इत्येवं वद कारणम् ॥

श्रीमहादेव उवाच ।

वृषध्वजञ्च मद्भक्तं मम प्राणाधिकप्रियम् । सूर्य्यः शशाप इतिमे कारणं त्रासकोपयोः ॥
पुत्रवात्सल्यशोकेन सूर्य्यं हन्तुं समुद्यतः । स ब्रह्माणं प्रपन्नश्च ससूर्य्यश्च विधिस्त्वयि ।
त्वयि ये शरणापन्ना ध्यानेन वचसापि वा । निरापदस्ते निःशङ्काजरामृत्युश्च तैर्जितः ।
साक्षाद् ये शरणापन्नास्तत्फलं किं वदामि भोः । हरिस्मृतिश्चाभयदा सर्वमङ्गलदासदा ॥

किं मे भक्तस्य भविता तन्मे ब्रूहि जगत्प्रभो । श्रीहतस्यास्य मूढ़स्य सूर्य्यशापेनहेतुना॥

श्रीभगवानुवाच ।

कालोऽतियातो दैवेन युगानामेकविंशतिः । वैकुण्ठे घटिकार्द्धेन शीघ्रं ययौ नृपालयम्॥

वृषध्वजो मृतः कालाद् दुर्निवार्य्यात् सुदारुणात् ।

हंसध्वजश्च तत्पुत्रो मृतःसोऽपि श्रिया हतः ॥ ५२ ॥

तत्पुत्रौ च महाभागौ धर्मध्वजकुशध्वजौ । हतश्रियौ सूर्य्यशापात्तौ च परमवैष्णवौ।

राज्यभ्रष्टौश्रियाभ्रष्टौ कमलातापसावुभौ । तयोश्चभार्य्ययोर्लक्ष्मीः कलयाचजनिष्यति।

सम्पद्युक्तौ तदा तौ च नृपश्रेष्ठौ भविष्यतः । मृतस्ते सेवकःशम्भो गच्छयूयञ्च गच्छत।

इत्युक्त्वाच सलक्ष्मीकः सभातोऽत्यन्तरं गतः । देवाजग्मुश्च संहृष्टाः स्वाश्रमं परमंमुदा

शिवश्च तपसे शीघ्रं परिपूर्णतमं ययौ ॥ ५७ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे तुलस्युपाख्याने त्रयोदशोऽध्यायः ।

चतुर्दशोऽध्यायः

वेदवत्याश्चरित्रम् ।

नारायण उवाच ।

लक्ष्मीं तौ च समाराध्य चोग्रेण तपसा मुने । वरमिष्टञ्च प्रत्येकं संप्रापतुरभीप्सितम् ॥

महालक्ष्म्या वरेणैव तौ पृथ्वीशौ बभूवतुः । धनवन्तौ पुत्रवन्तौ धर्मध्वजकुशध्वजौ २।

कुशध्वजस्यपत्नी च देवी मालावतीसती । सासुषावच कालेन कमलांशांसुतांसतीम् ॥

साच भूमिष्ठमात्रेण ज्ञानयुक्ता बभूव ह । कृत्वा वेदध्वनिं स्पष्टमुत्तस्थौ सूतिकागृहे ॥

वेदध्वनिं सा चकार जातमात्रेण कन्यका । तस्मात्ताञ्च वेदवतीं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥

जातमात्रेण सुज्ञाता जगाम तपसे वनम् । सर्वैर्निषिद्धा यत्नेन नारायणपरायणा ॥ ६ ॥
एकमन्वन्तरञ्चैव पुष्करेच तपस्विनी । अत्युग्राञ्च तपस्याञ्च लीलया च चकार सा॥७॥
तथापि पुष्टा न क्लिष्टा नवयौवनसंयुता । शुश्राव खे च सहसा सा वाचमशरीरिणीम् ॥
जन्मान्तरेतेभर्त्ता च भविष्यतिहरिःस्वयम् । ब्रह्मादिभिर्दुराराध्यं पतिं लप्स्यसिसुन्दरि
इति श्रुत्वा तु सा रुष्टा चकार च पुनस्तपः । अतीवनिर्जनस्थाने पर्वते गन्धमादने ॥१०
तत्रैव सुचिरं तप्त्वा विश्वास्य समुवास सा । ददर्श पुरतस्तत्र रावणं दुर्निवारणम् ॥
दृष्ट्वा सातिथिभक्त्या च पाद्यं तस्मै ददौकिल । सुस्वादुफलमूलञ्च जलञ्चापि सुशीतलम्
तच्च भुक्त्वासपापिष्ठश्चोवास तत्समीपतः । चकारप्रश्नमितितांकात्वं कल्याणि चेति च
ताञ्चदृष्ट्वा वरारोहा पीनोन्नतपयोधराम् । शरत्पद्मोत्सवास्याञ्च सस्मितांसुदतींसतीम्॥
मूर्च्छामवाप कृपणः कामबाणप्रपीड़ितः । तां करेण समाकृष्य शृङ्गारं कर्त्तुमुद्यतः ॥
सा सती कोपदृष्ट्याच स्तम्भितं तञ्चकार ह । शशाप च मदर्थे त्वं विलङ्क्षसि सबान्धवः
स्पृष्टाहञ्च त्वया कामाद्विसृजाम्यवलोकय । स जड़ो हस्तपादैश्च किञ्चद्वक्तुं न च क्षमः॥
तुष्टाव मनसा देवीं पद्माशां पद्मलोचनाम् । सा ततस्तवेन सन्तुष्टा प्रकृतं तञ्चकार ह ॥
इत्युक्त्वा साच योगेन देहत्यागं चकार ह । गङ्गायां तां च संन्यस्य स्वगृहं रावणोययौ
अहो किमद्भुतं दृष्टं किं कृतं वा मयाधुना । इति संचिन्त्य संस्मृत्य विललाप पुनः पुनः
सा च कालान्तरे साध्वी बभूवजनकात्मजा । सीतादेवीति विख्याता यदर्थे रावणोहतः
महातपस्विनी साच तपसा पूर्वजन्मनः । लेभे रामञ्च भर्त्तारं परिपूर्णतमं हरिम् ॥ २४॥
संप्राप्य तपसाराध्य स्वामिनञ्च जगत्पतिम् । सा रमा सुचिरं रेमे रामेण सह सुन्दरी।
जातिस्मरा च स्मरति तपसश्च क्रमं पुरा । सुखेन तज्जहौ सर्वं दुःखञ्चापि सुखं लभेत्
नानाप्रकारविभवञ्चकार सुचिरं सती । सम्प्राप्य सुकुमारन्तमतीवनयौवनम् ॥ २५ ॥
गुणिनं रसिकं शान्तं कान्तवेशमनुत्तमम् । स्त्रीणां मनोज्ञं सुचिरं तथा लेभेयथेप्सितम्
पितृसत्यपालनार्थं सत्यसन्धो रघूत्तमः । जगाम काननं पश्चात् कालेन च बलीयसा॥
तस्थौ समुद्रनिकटे सीतया लक्ष्मणेन च । ददर्श तत्र वह्निञ्च विप्ररूपधरं हरिः ॥ २८॥
तं रामं दुःखितं दृष्ट्वा स च दुःखी बभूव ह । उवाच किञ्चित् सत्येष्ट सत्य सत्यपरायणः

वह्निरुवाच ।

भगवन् श्रूयतां वाक्यं कालेन यदुपस्थितम् । सीताहरणकालोऽयंतवैव समुपस्थितः ॥
दैवञ्च दुर्निवार्य्यञ्च न च दैवात्परं वलम् । मत्प्रसूं मयि संन्यस्य छायांरक्षान्तिकेऽधुना
दास्यामि सीतां तुभ्यञ्च परीक्षासमये पुनः । देवैःप्रस्थापितोऽहञ्च नच विप्रो हुताशनः
रामस्तद्वचनं श्रुत्वा न प्रकाश्य च लक्ष्मणम् । स्वीचकार च स्वच्छन्दं हृदयेन विदूयता
वह्नियोंगेन सीताया मायासीताञ्चकार ह । तत्तुल्यगुणरूपां तां ददौ रामाय नारद ॥

सीतां गृहीत्वा स ययौ गोप्यं वक्तुं निषेध्य च ।
लक्ष्मणो नैव वुवुधे गोप्यमन्यस्य का कथा ॥ ३५ ॥

एतस्मिन्नन्तरे रामो ददर्श कनकं मृगम् । सीता तं प्रेरयामास तदर्थे यत्नपूर्वकम् ॥३६॥
संन्यस्य लक्ष्मणं रामो जानक्या रक्षणे वने । स्वयं जगामहन्तुं तं विव्याधसायकेन च
लक्ष्मणेति च शब्दञ्च कृत्वा च माययामृगः । प्राणांस्तत्याज सहसापुरोदृष्ट्वाहरिंस्मरन्
मृगरूपं परित्यज्य दिव्यरूपं विधाय च । रत्ननिर्माणयानेन वैकुण्ठं स जगाम ह ॥३९॥
वैकुण्ठद्वारे द्वार्य्यासीत् किङ्करो द्वारपालयोः । जयाविजययोश्चैव वलवांश्चजिताभिधः
शापेन सनकादीनां सम्प्राप्य राक्षसीं तनुम् । पुनर्जगाम तद्द्वारमादौ स द्वारपालयोः
अथ शब्दञ्चसा श्रुत्वालक्ष्मणेति च विक्लवम् । सीता तं प्रेरयामास लक्ष्मणंरामसन्निधौ
गते च लक्ष्मणे रामं रावणो दुर्निवारणः । सीतां गृहीत्वा प्रययौ लङ्कामेव स्वलीलया
विषसाद च रामश्च वने दृष्ट्वा च लक्ष्मणम् । तूर्णञ्च स्वाश्रमं गत्वा सीतां नैव ददर्शसः
मूर्च्छां सम्प्राप्य सुचिरं विललाप भृशं पुनः । पुनर्वभ्राम गहने तदन्वेषणपूर्वकम् ॥४५
काले संप्राप्य तद्वार्त्तां पक्षिद्वारा नदीतटे । सहायं वानरं कृत्वा ववन्ध सागरं हरिः ॥
लङ्कां गत्वा रघुश्रेष्ठो जघान सायकेन च । सबान्धवं रावणञ्च सीतां सम्प्रापदुःखिताम्
ताञ्च वह्निपरीक्षाञ्च कारयामास सत्वरम् । हुताशनस्तत्रकाले वास्तवीं जानकीं ददौ॥
उवाच छाया वह्निञ्च रामञ्च विनयान्विता । करिष्यामीति किमहं तदुपायं वदस्व मे॥

वह्निरुवाच ।

त्वं गच्छ तपसे देवि ! पुष्करञ्च सुपुण्यदम् । कृत्वातपस्यातत्रैव स्वर्गलक्ष्मीर्भविष्यति

सा च तद्वचनं श्रुत्वा प्रतप्य पुष्करे तपः । दिव्यं त्रिलक्षवर्षञ्च स्वर्गे लक्ष्मीर्बभूव ह ॥
सा च कालेन तपसा यज्ञकुण्डसमुद्भवा । कामिनी पाण्डवानाञ्च द्रौपदी द्रुपदात्मजा ॥
कृते युगे वेदवती कुशध्वजसुता शुभा । त्रेतायां रामपत्नी च सीतेति जनकात्मजा ॥
तच्छाया द्रौपदी देवी द्वापरे द्रुपदात्मजा । त्रिहायणीति सा प्रोक्ता विद्यमाना युगत्रये

नारद उवाच ।

प्रियाः पञ्च कथं तस्या बभूवुर्मुनिपुङ्गव । इति मे चित्तसन्देहं भञ्ज सन्देहभञ्जन ॥ ५५॥

नारायण उवाच ।

लङ्कायां वास्तवी सीता रामं संप्राप नारद । रूपयौवनसम्पन्ना छाया च बहुचिन्तिता ॥
रामाग्न्योराज्ञया तप्त्वा ययाचे शङ्करं वरम् । कामातुरा पतिव्यग्रा प्रार्थयन्ती पुनःपुनः
पतिं देहि पतिं देहि पतिं देहि त्रिलोचन । पतिं देहि पतिं देहि पञ्चवारञ्चकार सा ॥
शिवस्तत्प्रार्थनं श्रुत्वा सस्मितो रसिकेश्वरः । प्रिये तव प्रियाः पञ्च भवन्तीति वरंददौ
तेन सा पाण्डवानाञ्च बभूव कामिनी प्रिया । इत्येवं कथितं सर्वं प्रस्तावं वास्तवंश्रृणु

अथ संप्राप्य लङ्कायां सीतां रामो मनोहराम् ।
विभीषणाय तां लङ्कां दत्त्वाऽयोध्यां ययौ पुनः ॥ ६१ ॥

एकादशसहस्राब्दं कृत्वा राज्यञ्च भारते । जगाम सर्वैर्लोकैश्च सार्द्धं वैकुण्ठमेव च ॥
कमलांशा वेदवती कमलायां विवेश सा । कथितं पुण्यमाख्यानं पुण्यदं पापनाशनम् ॥
सततं मूर्त्तिमन्तश्च वेदाश्चत्वार एव च । सन्ति यस्याश्च जिह्वाग्रे सा च वेदवती स्मृता
कुशध्वजसुताख्यानमुक्तं संक्षेपतस्तव । धर्मध्वजसुताख्यानं निबोध कथयामि ते ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे तुलस्युपाख्याने
वेदवतीप्रस्तावे चतुर्दशोऽध्यायः ।

पञ्चदशोऽध्यायः

धर्मध्वजपत्न्यां माधव्यां तुलस्या जन्म ।

नारायण उवाच ।

धर्मध्वजस्य पत्नी च माधवीति च विश्रुता । नृपेण सार्द्धं सा रामा रेमे च गन्धमादने
शय्यां रतिकरीं कृत्वा पुष्पचन्दनचर्चिताम् । चन्दनोक्षितसर्वाङ्गी पुष्पचन्दनवायुना ॥
स्त्रीरत्नमतिचार्वङ्गी रत्नभूषणभूषिता । कामुकी रसिकश्रेष्ठा रसिकेशेन संयुता ॥ ३ ॥
सुरतिर्विरतिर्नास्ति तयोः सुरतविज्ञयोः । गतं वर्षशतं दैवं तौ न ज्ञातौ दिवानिशम् ।

ततो रजोमतिं प्राप्य सुरताद्विरराम सः ।
कामुकी सुन्दरी किञ्चित् न च तृप्तिं जगाम सा ॥ ५ ॥

दधार गर्भं सा सद्यो दैवाब्दशतकं सती । श्रीगर्भा श्रीयुता सा च संबभूव दिने दिने ।
शुभक्षणे शुभदिने शुभयोगेन संयुते । शुभलग्ने शुभांशे च शुभस्वामिगृहान्विते ॥ ७ ॥
कार्त्तिकीपूर्णिमायाञ्च सितवारेच पद्मजे । सुषाव सा च पद्मांशां पद्मिनीं सुमनोहराम् ॥
पादपद्मयुगे चैव पद्मरागविराजिताम् । राजराजेश्वरीलक्ष्मीं सर्वाङ्गभंगिमायुताम् ॥
राजलक्ष्मीलक्ष्मयुक्तांराजलक्ष्म्यधिदेवताम् । शरत्पार्वणचन्द्रास्यां शरत्पङ्कजलोचनाम्
पक्वबिम्बाधरोष्ठीञ्च पश्यन्तीं सस्मितां गृहम् । हस्तपादतलारक्तां निम्ननाभिमनोरमाम्
तदधस्त्रिवलीयुक्तांनितम्बयुग्मवर्त्तुलाम् । शीतेसुखोष्णसर्वाङ्गीं ग्रीष्मे च सुखशीतलाम्
श्यामां सुकेशीं रुचिरांन्यग्रोधपरिमण्डलाम् । श्वेतचम्पकवर्णाभांसुन्दरीष्वेकसुन्दरीम्
नरानार्य्यश्च तां दृष्ट्वा तुलनांदातुमक्षमाः । तेन नाम्ना च तुलसीं तां वदन्तिपुराविदः ।
सा च भूमिष्ठमात्रेण योग्यास्त्रीप्रकृतिर्यथा । सर्वैर्निषिद्धा तपसे जगाम बदरीवनम् ।१५।
तत्र दैवाब्दलक्षञ्च चकार परमन्तपः । मम नारायणस्वामी भवितेति च निश्चिता ।१६।

ग्रीष्मे पञ्चतपाः शीते तोयावस्था च प्रावृषि ।
श्मशानस्था वृष्टिधारां सहन्तीति दिवानिशम् ॥ १७ ॥

विंशत्सहस्रवर्षं च फलतोयाशना च सा । त्रिंशत्शतसहस्राब्दं पत्राहारा तपस्विनी ॥
चत्वारिंशत्सहस्राब्दं वायुहारा कृशोदरी । ततो दशसहस्राब्दं निराहारा बभूव सा ॥
निर्लक्ष्यां चैकपादस्थां दृष्ट्वा तां कमलोद्भवः । समाययौ वरं दातुं परं बदरिकाश्रमम् ॥
चतुर्मुखञ्च सा दृष्ट्वा ननाम हंसवाहनम् । तामुवाच जगत्कर्त्ता विधाता जगतामपि ॥

ब्रह्मोवाच ।

वरं वृणुष्व तुलसि यत्ते मनसि वाञ्छितम् । हरिभक्तिञ्च मुक्तिं वाप्यजरामरतामपि ॥

तुलस्युवाच ।

शृणु तात प्रवक्ष्यामि यन्मे मनसि वाञ्छितम् ।
सर्वज्ञस्यापि पुरतः का लज्जा मम साम्प्रतम् ॥ २३ ॥
अहं च तुलसी गोपी गोलोकेऽहं स्थिता पुरा ।
कृष्णप्रिया किङ्करी च तदंशा तत्सखी प्रिया ॥ २४ ॥

गोविन्देन सहासक्तामतृप्तां माञ्च मूर्च्छिताम् । रासेश्वरीसमागत्य ददर्श रासमण्डले ।
गोविन्दं भर्त्सयामास मां शशाप रुषान्विता । याहित्वं मानवींयोनिमित्येवञ्चपितामह
मामुवाच स गोविन्दो मदंशं त्वं चतुर्भुजम् । लभिष्यसितपस्तप्त्वाभारतेब्रह्मणोवरात्
इत्येवमुक्त्वादेवेशोऽप्यन्तर्धानंचकारसः । देव्या भियातनुंत्यक्त्वालब्धंजन्ममयाभुवि ॥
अहं नारायणं कान्तं शान्तं सुन्दरविग्रहम् । साम्प्रतं लब्धुमिच्छामि वरमेवञ्च देहि मे ॥

ब्रह्मोवाच ।

सुदामा नाम गोपश्च श्रीकृष्णाङ्गसमुद्भवः । तदंशश्चातितेजस्वी ललाभ जन्म भारते ॥
साम्प्रतं राधिकाशापद्दनुवंशसमुद्भवः । शङ्खचूड इति ख्यातस्त्रैलोक्ये न च तत्परः ॥
गोलोकेत्वां पुरादृष्ट्वा कामोन्मथितमानसः । विलङ्घितुं न शशाकराधिकायाः प्रभावतः ।
सचजातिस्मरस्तप्त्वा त्वांललाभवरेणच । जातिस्मरापित्वमपिसर्वं जानासिसुन्दरी ॥
अधुनातस्यपत्नी च भव भाविनिशोभने । पश्चान्नारायणं कान्तं शान्तमेव लभिष्यसि ।
शापान्नारायणस्यैव कलया दैवयोगतः । भविष्यसि वृक्षरूपा त्वं पूता विश्वपावनी ॥
प्रधानासर्वपुष्पाणांविष्णुप्राणाधिकाभवेत् । त्वयाविनाचसर्वेषांपूजाचविफलाभवेत् ॥

वृन्दावनेवृक्षरूपा नाम्ना वृन्दावनीतिच । तत्पत्रैर्गोपिकागोपाः पूजयिष्यन्तिमाधवम् ॥
वृक्षाधिदेवीरूपेण सार्द्धं कृष्णेन सन्ततम् । विहरिष्यसि गोपेन स्वच्छन्दं मद्वरेण च ॥
इत्येवं वचनं श्रुत्वा सस्मिता हृष्टमानसा । प्रणनाम च ब्रह्माणं तञ्च किञ्चिदुवाच ह ॥

तुलस्युवाच ।

यथा मे द्विभुजे कृष्णे वाञ्छा च श्यामसुन्दरे । सत्यंब्रवीमि हे तात न तथा च चतुर्भुजे
अतृप्ताहञ्च गोविन्दे दैवात् श्रृङ्गारभङ्गतः । गोविन्दस्यैव वचनात् प्रार्थयामिचतुर्भुजम्।
तत्प्रसादेन गोविन्दं पुनरेव सुदुर्लभम् । ध्रुवमेवं लभिष्यामि राधाभीतिं प्रमोचय ॥

ब्रह्मोवाच ।

गृहाण राधिकामन्त्रं ददामि षोड़शाक्षरम् । तस्याश्च प्राणतुल्यात्वं मद्वरेणभविष्यसि।
श्रृङ्गारंयुवयोर्गोप्यमाज्ञास्यतिचराधिका । राधासमात्वं शुभगागोविन्दस्यभविष्यसि।
इत्येवमुक्त्वादत्त्वाच देव्याश्च षोड़शाक्षरम् । मन्त्रंतस्यै जगद्धाता स्तोत्रञ्चकवचंपरम्॥
सर्वं पूजाविधानञ्च पुरश्चर्य्याविधिक्रमम् । परं शुभाशिषं कृत्वा सोऽन्तर्द्धानञ्चकारह॥
साच ब्रह्मोपदेशेन पुण्ये वदरिकाश्रमे । जजाप परमं मन्त्रं यदिष्टं पूर्वजन्मनः ॥ ४७ ॥
दिव्यं द्वादशवर्षञ्च पूजाञ्चैव चकार सा । वभूव सिद्धा सा देवी तत्प्रत्यादेशमाप च॥
सिद्धे तपसि मन्त्रेच वरं प्राप्य यथेप्सितम् । बुभुजे च महाभागं यद्विश्वेषु सुदुर्लभम्।
प्रसन्नमानसादेवी तत्याज तपसः क्लमम् । सिद्धे फले नराणाञ्च दुःखञ्च सुखमुत्तमम्॥
भुक्त्वा पीत्वा च सन्तुष्टा शयनञ्च चकार सा । तल्पे मनोरमे तत्र पुष्पचन्दनचर्चिते॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायण-नारदसंवादे तुलस्युपाख्याने तुलसीवरप्रदानं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ।

———

षोड़शोऽध्यायः

तुलस्या सह शङ्खचूड़स्य मेलनं कथोपकथनञ्च ।

नारायण उवाच ।

तुलसी परितुष्टा च सुखापहृष्टमानसा । नवयौवनसम्पन्ना प्रशंसन्ती वराङ्गना ॥ १ ॥
चिक्षेप पञ्चबाणञ्च पञ्चबाणश्च तां प्रति । पुष्पायुधेन सा दग्धा पुष्पचन्दनचर्चिता ॥
पुलकाञ्चितसर्वाङ्गी कम्पितारक्तलोचना । क्षणं सा शुष्कतां प्राप क्षणं मूर्च्छामवाप ह ।
क्षणमुद्विग्नतां प्राप क्षणं तन्त्रां सुखावहाम् । क्षणं सा दाहनं प्राप क्षणं प्राप प्रमत्तताम्
क्षणंसाचेतनांप्रापक्षणं प्रापविषण्णताम् । उत्तिष्ठन्तीक्षणंतल्पाद् गच्छन्तीनिकटंक्षणम्
भ्रमन्ती क्षणमुद्वेगाद्विवसन्ती क्षणं पुनः । क्षणमेव समुद्वेगात् सुष्वाप पुनरेव सा ॥
पुष्पचन्दनतल्पञ्च तद् बभूवातिकण्टकम् । विषमाहारसुस्वादु दिव्यरूपं फलंजलम् ॥
निलयञ्च निराकारः सूक्ष्मवस्त्रं हुताशनः । सिन्दूरपत्रकञ्चैव व्रणतुल्यञ्च दुःखदम् ८॥
क्षणं ददर्श तन्त्रायां सुवेशं पुरुषं सती । सुन्दरञ्च युवानञ्च सस्मितं रसिकेश्वरम् ॥ ९॥
चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं रत्नभूषणभूषितम् । आगच्छन्तं माल्यवन्तं पश्यन्तं तन्मुखाम्बुजम्॥
कथयन्तं रतिकथां चुम्बन्तमधरं मुहुः । शयानवन्तं तल्पे च समाश्लिष्यन्तमीलितम् ॥
पुनरेव तु गच्छन्तमागच्छन्तं वसन्तकम् । कान्त क यासि प्राणेश तिष्ठेत्येवमुवाचसा॥
पुनः स्वचेतनां प्राप्य विललाप पुनः पुनः । एवं तपोवने सा च तस्थौ तत्रैव नारद ॥

शङ्खचूड़ो महायोगी जैगीषव्यान्मनोरमम् ।
कृष्णस्य मन्त्रं सम्प्राप्य कृत्वा सिद्धिन्तु पुष्करे ॥ १४ ॥

कवचञ्च गले बद्ध्वा सर्वमङ्गलमङ्गलम् । ब्रह्मेशाच्च वरं प्राप्य यत्तन्मनसि वाञ्छितम् ॥
आज्ञया ब्रह्मणः सोऽपि बदरीञ्च समाययौ ॥ १६ ॥

आगच्छन्तं शङ्खचूड़ं ददर्श तुलसी मुने । नवयौवनसम्पन्नं कामदेवसमप्रभम् ॥ १७ ॥
श्वेतचम्पकवर्णाभं रत्नभूषणभूषितम् । शारत्पार्वणचन्द्रास्यं शरत्पङ्कजलोचनम् ॥१८॥

रत्नसारविनिर्माणविमानस्थं मनोहरम् । रत्नकुण्डलयुग्मेन गण्डस्थलविराजितम् ॥२१॥
पारिजातकुसुमानां माल्यवन्तञ्च सस्मितम् । कस्तूरीकुङ्कुमयुतं सुगन्धिचन्दनान्वितम्।
सा दृष्ट्वासन्निधाने तं मुखमाच्छाद्य वाससा । सस्मितातं निरीक्षन्ती सकटाक्षं पुनःपुनः
बभूवातिनम्रमुखी नवसङ्गमलज्जिता । कामुकी कामबाणेन पीड़िता पुलकान्विता ॥२२
पिबन्ती तन्मुखाम्भोजं लोचनाभ्याञ्च सन्ततम् । ददर्श शङ्खचूड़श्च कन्यामेकांतपोवने॥

पुष्पचन्दनतल्पस्थां वसन्तीं वाससावृताम् ।
पश्यन्तीं तन्मुखं शश्वत् सस्मितां सुमनोहराम् ॥ २४ ॥

सुपीनकठिनश्रोणीं पीनोन्नतपयोधराम् । मुक्तापङ्क्तिप्रभायुष्टदन्तपङ्क्तिसुबिभ्रतीम् ॥
पक्वबिम्बाधरोष्ठीञ्च सुनासां सुन्दरीं वराम् । तप्तकाञ्चनवर्णाभां शरच्चन्द्रसमप्रभाम् ॥
स्वतेजसा परिवृतां सुखदृश्यां मनोरमाम् । कस्तूरीबिन्दुभिः सार्द्धमधश्चन्दनबिन्दुना

सिन्दूरबिन्दुना शश्वत् सीमन्ताधःस्थलोज्ज्वलाम् ।
निम्ननाभिगभीराञ्च तदधस्त्रिवलीयुताम् ॥ २८ ॥

करपद्मतलारक्तां नखचन्द्रैर्विभूषिताम् । स्थलपद्मप्रभायुक्तं पादपद्मञ्च बिभ्रतीम् ॥ २९॥
आरक्तवर्ण ललितमलक्तकसमप्रभम् । ऊर्द्ध्वपद्मस्थलपद्मपद्मराजविराजिताम् ॥ ३० ॥
शरदिन्दुविनिन्दैकनखेन्दुराजिराजिताम् । अमूल्यरत्ननिर्माणपावकावलिसंयुताम् ॥३१

मणीन्द्रसारनिर्माणक्वणन्मञ्जीररञ्जिताम् ॥ ३२ ॥

दधतीं कवरीभारं मालतीमाल्यसंयुतम् । अमूल्यरत्ननिर्माणमकराकृतिरूपिणा ॥३३॥
चित्रकुण्डलयुग्मेन गण्डस्थलविराजिताम् । रत्नेन्द्रसारहारेण स्तनमध्यस्थलोज्ज्वलाम्
रत्नकङ्कणकेयूरशङ्खभूषणभूषिताम् । रत्नाङ्गुरीयकैर्दिव्यैरङ्गुल्यावलिराजिताम् ॥ ३५ ॥
दृष्ट्वा तां ललितां रम्यां सुशीलां सुदतींसतीम् । उवास तत्समीपे च मधुरंतामुवाचसः

शङ्खचूड़ उवाच ।

का त्वमत्र कस्य कन्या धन्ये मान्ये सुयोषिताम् ।
का त्वं मानिनि कल्याणि सर्वकल्याणदायिनि ॥ ३७ ॥

स्वर्गभोगादिसारेति विहारे हाररूपिणि । संसारदारसारे च मायाधारे मनोहरे ॥३८॥

जगद्विलक्षणे क्षामे मुनीन्द्रमोहकारिणि । मौनीभूते किङ्करं मां सम्भाषां कुरु सुन्दरि॥
इत्येवं वचनं श्रुत्वा सकामा वामलोचना । सस्मिता नम्रवदना सकामं तमुवाच सा॥

तुलस्युवाच ।

धर्मध्वजसुताऽहञ्च तपस्यायां तपोवने । तपस्विनीह तिष्ठामि कस्त्वं गच्छ यथासुखम्
कामिनीकुलजाताञ्च रहस्ये कामिनीं सतीम् । न पृच्छतिकुले जात एवमेव श्रुतौ श्रुतम्
लम्पटोऽसत्कुले जातो धर्मशास्त्रार्थविवर्जितः। येनाश्रुतःश्रुतेरर्थःसकामीच्छतिकामिनीम्
आपातमधुरामन्ते अन्तकां पुरुषस्य ताम् । विषकुम्भाकाररूपाममृतास्याञ्च सन्ततम् ॥
हृदये क्षुरधाराभां शश्वन्मधुरभाषिणीम् । स्वकार्य्यपरिनिष्पन्नतत्परां सततं सदा ॥
कार्य्यार्थे स्वामिवशगामन्यथैवावशां सदा । स्वान्तर्मलिनरूपाञ्च प्रसन्नवदनेक्षणाम् ॥
श्रुतौ पुराणे यासाञ्च चरित्रमनिरूपितम् । तासु को विश्वसेत् प्राज्ञो ह्यप्राज्ञ इवसर्वदा
तासां को वा रिपुर्मित्रं प्रार्थयन्तीं नवं नवम् । दृष्ट्वा सुवेशं पुरुषमिच्छन्तीं हृदये सदा॥
बाह्ये स्वात्मसतीत्वञ्च ज्ञापयन्तीं प्रयत्नतः । शश्वत्कामाञ्चरामाञ्चकामाधारांमनोहराम्
बाह्ये छलाच्छादयन्तीं स्वान्तर्मैथुनलालसाम् ।
कान्तं ग्रसन्तीं रहसि बाह्येऽतीवसुलज्जिताम् ॥ ५० ॥
मानिनींमैथुनाभावेकोपिनींकलहाङ्कुराम् । संभीतांभूरिसम्भोगात् स्वल्पमैथुनदुःखिताम्
सुमिष्टान्नात् शीततोयादाकांक्षन्तीचमानसे । सुन्दरं रसिकं कान्तं युवानं गुणिनं सदा
सुतात् परमतिस्नेहं कुर्वन्ती रतिकर्त्तरि । प्राणाधिकप्रियतमं सम्भोगकुशलं प्रियम् ॥
पश्यन्तीं रिपुतुल्यञ्च वृद्धं वा मैथुनाक्षमम् । कलहं कुर्वती शश्वत् येन सार्द्धंसुकोपनाम्
चर्चया भक्षयन्तीं तं कीलाश इव गोरजः । दुःसाहसस्वरूपाञ्च सर्वदोषाश्रयां सदा ॥
शश्वत्कपटरूपाञ्चसर्वदोषाश्रयांसदा । ब्रह्मविष्णुशिवादीनांदुस्त्याज्यांमोहरूपिणीम् ।
तपोमार्गार्गलां शश्वन्मुक्तिद्वारकवाटिकाम् ॥ ५७ ॥
हरेर्भक्तिव्यवहितां सर्वमायाकरण्डिकाम् । संसारकारागारे च शश्वन्निगड़रूपिणीम् ॥
इन्द्रजालस्वरूपाञ्चमिथ्यावादिस्वरूपिणीम् । बिभ्रतींबाह्यसौन्दर्य्यंमध्याङ्गमतिकुत्सितम्
नानाविण्मूत्रपूयानामाधारं मलसंयुतम् । दुर्गन्धिदोषसंयुक्तं रक्ताक्तमसंस्कृतम् ॥६०॥

मायारूपं मायिनाञ्च विधिना निर्मितं पुरा। विषरूपां मुमुक्षूणामदृश्याञ्चैव सर्वदा॥
इत्युक्त्वा तुलसी तञ्च विरराम च नारद। सस्मितः शङ्खचूडश्च प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥६२॥

शङ्खचूड़ उवाच।

त्वयायत्कथितं देविनच सर्वमलीककम्। किञ्चित्सत्यमलीकञ्चकिञ्चिन्मत्तोनिशामय
निर्मितं द्विविधं धात्रा स्त्रीरूपंसर्वमोहनम्। कृत्यारूपं वास्तवञ्च प्रशंस्यञ्चाप्रशंसितम्

लक्ष्मी सरस्वती दुर्गा सावित्री राधिकादिकम्।
सृष्टिसूत्रस्वरूपञ्चाप्याद्यं स्रष्ट्रा तत् तु विनिर्मितम् ॥ ६५॥

एतासामंशरूपं यत् स्त्रीरूपं वास्तवं स्मृतम्। तत् प्रशंस्यं यशोरूपं सर्वमङ्गलकारणम्
शतरूपा देवहूती स्वधा स्वाहा च दक्षिणा। छायावती रोहिणी च वरुणानी शची तथा
कुवेरवायुपत्नी साप्यदितिश्च दितिस्तथा। लोपामुद्रानसूया च कैटभी तुलसी तथा॥
अहल्यारुन्धती मेना तारा मन्दोदरी परा। दमयन्ती वेदवती गङ्गा च मनसा तथा॥
पुष्टिस्तुष्टिः स्मृतिर्मेधा कालिका च वसुन्धरा। षष्ठीमङ्गलचण्डीचमूर्त्तिश्चधर्मकामिनी

स्वस्तिः श्रद्धा च कान्तिश्च तुष्टिः कान्तिस्तथापरा।
निद्रा तन्द्रा क्षुत् पिपासा सन्ध्या रात्रिर्दिनानि च ॥ ७१ ॥

सम्पत्तिवृत्तिकीर्त्त्यश्च क्रियाशोभाप्रभांशिकम्। यत् स्त्रीरूपञ्च सम्भूतमुत्तमं तद्युगेयुगे
कृत्यास्वरूपं तद् यत्तु स्ववेंश्यादिकमेव च। तदप्रशंस्यं विश्वेषु पुंश्चलीरूपमेव च ७३
सत्त्वप्रधानं यद्रूपं तच्च शुद्धं स्वभावतः। तदुत्तमञ्च विश्वेषु साध्वीरूपं प्रशंसितम् ७४
तद् वास्तुवञ्च विज्ञेयं प्रवदन्ति मनीषिणः। रजोरूपं तमोरूपं कृत्यासु द्विविधं स्मृतम्
स्थानाभावात् क्षणाभावान्मध्यवृत्तेरभावतः। देहक्लेशेन रोगेण सत्संसर्गेण सुन्दरि॥
वहुगोष्ठावृतेनैव रिपुराजभयेन च। रजोरूपस्य साध्वीत्वमेतेनैवोपजायते ॥ ७७ ॥
इदं मध्यमरूपञ्च प्रवदन्ति मनीषिणः। तमोरूपं दुर्निवार्य्यमधमं तद् विदुर्बुधाः ॥७८॥

न पृच्छति कुले जातः पण्डितश्च परस्त्रियम् ॥ ७९ ॥

आगच्छामि त्वत्समीपमाज्ञया ब्रह्मणोऽधुना। गान्धर्वेणविवाहेनत्वांग्रहीष्यामिशोभने
अहमेव शङ्खचूडो देवविद्रावकारकः। दनुवंशोद्भवो विश्वे सुदामाहं हरेः पुरे ॥ ८१ ॥

अहमष्टसु गोपेषु गोगोपीपार्षदेषु च । अधुना दानवेन्द्रोऽहंराधिकायाश्चशापतः ॥८२॥
जातिस्मरोऽहं जानामिकृष्णमन्त्रप्रभावतः । जातिस्मरात्वं तुलसी संसक्ता हरिणापुरा॥

त्वमेव राधिकाकोपात् जातासि भारते भुवि ।
त्वां सम्भोक्तुमिच्छुकोऽहं नालं राधाभयात्ततः ॥ ८४ ॥

इत्येवमुक्त्वा स पुमान् विरराम महामुने । सस्मिता तुलसी हृष्टा प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥८५.

तुलस्युवाच ।

एवंविधो वुधो विश्वे वुधेषु च प्रशंसितः । कान्तमेवंविधंकान्ताशश्वदिच्छति कामतः ।
त्वयाहमधुना सत्यं विचारेण पराजिता । स निन्दितश्चाप्यशुचिर्यःपुमांश्च स्त्रिया जितः
निन्दन्ति पितरोदेवावान्धवास्त्रीजितंजनम् । स्त्रीजितंमनसावाचापिताभ्राताच निन्दति
शुद्धेद् विप्रो दशाहेन जातके मृतके तथा । भूमिपो द्वादशाहेन वैश्यः पञ्चदशाहतः ८६॥
शूद्रो मासेन वेदेषु मातृवद्वर्णशङ्करः । अशुचिः स्त्रीजितः शुद्धेच्चितादाहनकालतः ६०॥
न गृह्णन्तीच्छयातस्य पितरःपिण्डतर्पणम् । न गृह्णन्तीच्छया देवास्तस्य पुष्पजलादिकम्
किं तस्य ज्ञानतपसा जपहोमप्रपूजनैः । किं विद्यया वा यशसा स्त्रीभिर्यस्य मनोहृतम्।
विद्याप्रभावज्ञानार्थं मया त्वञ्चपरीक्षितः । कृत्वा परीक्षां कान्तस्य वृणोति कामिनीवरम्।
वराय गुणहीनाय वृद्धायाज्ञानिने तथा । दरिद्राय च मूर्खाय रोगिणे कुत्सिताय च ॥
अत्यन्तकोपयुक्ताय चात्यन्तदुर्मुखाय च । पङ्गुलायाङ्गहीनाय चान्धाय वधिराय च ॥
जड़ायचैव मूकाय क्लीवतुल्याय पापिने । ब्रह्महत्यांलभेत् सोऽपियः स्वकन्यांददातिच ॥
शान्ताय गुणिने चैव यूने च विदुषेऽपिच । वैष्णवायसुतां दत्त्वा दशवाजिफलंलभेत्।
यः कन्यापालनं कृत्वा करोति विक्रयंयदि । विपदा धनलोभेन कुम्भीपाकं स गच्छति।
कन्यामूत्रपुरीषञ्च तत्र भक्षति पातकी । कृमिभिर्दंशितः काकैर्यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥६६॥
तदन्ते व्याधयोनौच लभते जन्मनिश्चितम् । विक्रीणाति मांसभारं वहत्येवदिवानिशम्।
इत्येवमुक्त्वा तुलसी विरराम तपोवने । एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा तयोरन्तिकमाययौ ॥१०१
मूर्ध्ना ननाम तुलसी शङ्खचूड़श्च नारद । उवास तत्र देवेशश्चोवाच च तयोर्हितम् ॥

ब्रह्मोवाच ।

किं करोषि शङ्खचूड़ संवादमनया सह । गान्धर्वेण विवाहेन त्वमिमां ग्रहणं कुरु ।१०३।
त्वञ्च पुरुषरत्नञ्च स्त्रीरत्नं स्त्रीष्वियंसती । विदग्धायाविदग्धेन सङ्गमो गुणवान् भवेत् ॥
निर्विरोधसुखंराजन् को वात्यजतिदुर्लभम् । योऽविरोधसुखत्यागी स पशुर्नात्र संशयः ॥
किमुपेक्षसि त्वं कान्तमीदृशं गुणिनं सती । देवानामसुराणाञ्च दानवानां विमर्दकम् ॥
यथालक्ष्मीश्च लक्ष्मीशे यथाकृष्णेच राधिका । यथामयिचसावित्री भवानीच भवेयथा।
यथा धरा वराहे च यथा मेना हिमालये । यथात्रावनसूया च दमयन्ती नले यथा ॥
रोहिणीच यथा चन्द्रे यथा कामेरतिःसती । यथादितिः कश्यपेच वशिष्ठेऽरुन्धतीयथा।
यथाहल्या गौतमे च देवहूती च कर्दमे । यथाबृहस्पतौ तारा शतरूपा मनौ यथा ।११०
यथा च दक्षिणा यज्ञे यथा स्वाहा हुताशने । यथा शची महेन्द्रे च यथा पुष्टिर्गणेश्वरे ॥
देवसेना यथा स्कन्दे धर्मे मूर्त्तिर्यथा सती । सौभाग्या सुप्रिया त्वञ्च शङ्खचूड़ेतथाभव।
अनेन सार्द्धं सुचिरं सुन्दरेण च सुन्दरि । स्थाने स्थाने विहारञ्च यथेच्छं कुरुसन्ततम्।
पश्चात् प्राप्स्यसि गोविन्दं गोलोके पुनरेवच । चतुर्भुजञ्च वैकुण्ठे शङ्खचूड़े मृते सति ॥
इत्येवमाशिषं कृत्वा स्वालयं प्रययौ विधिः । गान्धर्वेण विवाहेन जगृहे ताञ्च दानवः॥
स्वर्गे दुन्दुभिवाद्यञ्च पुष्पवृष्टिर्बभूव ह । स रेमे रमया सार्द्धं वासगेहे मनोहरे ॥११६॥
मूर्च्छां सम्प्राप तुलसी नवसङ्गमसंगता । निमग्ना निर्जने साध्वी सम्भोगसुखसागरे ॥
चतुःषष्टिकलामानं चतुःषष्टिविधं सुखम् । कामशास्त्रे यन्निरुक्तं रसिकानां यथेप्सितम्।
अंगप्रत्यंगसंश्लेषपूर्वकं स्त्रीमनोहरम् । तत्सर्वं सुखशृंगारं चकार रसिकेश्वरः ॥ ११९॥
अतीवरम्ये देशेच सर्वजन्तुविवर्जिते । पुष्पचन्दनतल्पे च पुष्पचन्दनवायुना ॥ १२० ॥
पुष्पोद्याने नदीतीरे पुष्पन्दनचर्चिते । गृहीत्वा रसिकां रामां पुष्पचन्दनचर्चिताम् ॥
भूषितां भूषणैः सर्वैरतीवसुमनोहरम् । सुरतेर्विरतिर्नास्ति तयोः सुरतविज्ञयोः ॥१२२॥
जहार मानसं भर्त्तुर्लीलया तुलसी सती । चेतनां रसिकायाश्च जहार रसभाववित् ॥
वक्षसश्चन्दनं बाह्वोस्तिलकं विजहार सा । स च जग्राह तस्याश्च सिन्दूरबिन्दुपत्रकम् ॥
स तद्वक्षसि तस्याश्च नखरेखां ददौ मुदा । सा ददौ तद्वामपार्श्वे करभूषणलक्षणम् ॥

राजा दन्तौष्ठपुटके ददौ दशनदंशनम् । तद्गण्डयुगले सा च प्रददौ तच्चतुर्गुणम् ॥ १२६॥
सुरतेर्विरतौ तौ च समुत्थाय परस्परम् । सुवेशञ्चक्रतुस्तत्र यत्तन्मनसि वाञ्छितम् ॥
कुङ्कुमाक्तचन्दनेन सा तस्मै तिलकं ददौ । सर्वाङ्गे सुन्दरे रम्ये चकार चानुलेपनम् १२८
सुवासितञ्च ताम्बूलं वह्निशुद्धे च वाससी । पारिजातस्य कुसुमं माल्यञ्चैव सुशोभनम् ।
अमूल्यरत्ननिर्माणमङ्गुरीयकमुत्तमम् । सुन्दरञ्च मणिवरं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् ॥१३०॥
दासी तवाहमित्येवं समुच्चार्य्य पुनःपुनः । ननाम परया भक्त्या स्वामिनं गुणशालिनम्
सस्मितातन्मुखाम्भोजं लोचनाभ्यांपपौपुनः । निमेषरहिताभ्याञ्च सकटाक्षञ्चसुन्दरम् ॥
स च ताञ्च समाकृष्य चकार वक्षसि प्रियाम् । सस्मितं वाससाच्छन्नं ददर्श मुखपङ्कजम् ।
चुचुम्ब कठिने गण्डे विम्बोष्ठे पुनरेव च । ददौ तस्यै वस्त्रयुग्मं वरुणादाहृतञ्च यत् ॥
तदाहृतां रत्नमालां त्रिषु लोकेषु विश्रुताम् ॥ १३४॥
ददौ मञ्जीरयुग्मञ्च स्वाहायाश्च हृतञ्च यत् । केयूरयुग्मं छायाया रोहिण्याश्चैवकुडलम् ।
अङ्गुरीयकरत्नानि रत्याश्च वरभूषणम् । शङ्खं सुरुचिरं चित्रं यद्दत्तं विश्वकर्मणा ॥१३६॥
विचित्रपीठकश्रेणीं शय्याञ्चापि सुदुर्लभाम् । भूषणानि च दत्वा च परीहारञ्चकार ह ॥
निर्माय कवरीभारं तस्याश्च माल्यसंयुतम् । सुचित्रं पत्रकं गण्डे जयलेखसमं तथा ॥
चन्द्रलेखात्रिभिर्युक्तं चन्दनेन सुगन्धिना । परितः परितश्चित्रैः सार्द्धं कुङ्कुमविन्दुभिः ॥
ज्वलत्प्रदीपाकारञ्च सिन्दूरतिलकं ददौ । तत्पादपद्मयुगले स्थलपद्मविनिन्दिते ॥१४०॥
चित्रालक्तकरागञ्च नखरेषु ददौ मुदा । स्ववक्षसि मुहुर्न्यस्तं सरागञ्चरणाम्बुजम् ॥
हे देवि ! तव दासोऽहमित्युच्चार्य्य पुनःपुनः । रत्ननिर्माणयानेन ताञ्च कृत्वा स्ववक्षसि॥
तपोवनं परित्यज्य राजा स्थानान्तरं ययौ ॥१४२॥
मलये देवनिलये शैले शैले वने वने । स्थाने स्थानेऽतिरम्ये च पुष्पोद्यानेऽतिनिर्जने ॥
कन्दरे कन्दरे सिन्धुतीरे च सुन्दरे वने । पुष्पभद्रानदीतीरे नीरवातमनोहरे ॥ १४४ ॥
पुलिने पुलिने दिव्ये नद्यां नद्यां नदे नदे । मधौ मधुकराणाञ्च मधुरध्वनिनादिते ॥१४५
विनिस्यन्दे सुपवने नन्दने गन्धमादने । देवोद्याने देववने चित्रे चन्दनकानने ॥१४६॥
चम्पकानां केतकीनां माधवीनाञ्च माधवे । कुन्दानां मालतीनाञ्च कुमुदाम्भोजकानने ।

कल्पवृक्षे कल्पवृक्षे पारिजातवने वने। निर्जने काञ्चनीस्थाने धन्ये काञ्चनपर्वते ॥१४८
काञ्चीवने किञ्चनके कञ्चके काञ्चनाकरे। पुष्पचन्दनतल्पेच पुंस्कोकिलरुतेश्रुते ॥१४९॥
पुष्पचन्दनसंयुक्तः पुष्पचन्दनवायुना। कामुक्या कामुकः कामात् स रेमे रामया सह।
न तृप्तो दानवेन्द्रश्च तृप्तिर्नैव जगाम सा। हविषा कृष्णवर्त्मेव ववृधे मदनस्तयोः॥
तया सह समागत्य स्वाश्रमं दानवस्ततः। रम्यक्रीड़ालयं कृत्वा विजहार पुनस्ततः॥
एवं संबुभुजे राज्यं शङ्खचूड़ः प्रतापवान्। एकमन्वन्तरं पूर्णं राजराजेश्वरो बली ॥१५३
देवानामसुराणाञ्च दानवानाञ्चसन्ततम्। गन्धर्वाणां किन्नराणांराक्षसानाञ्चशास्तिदः।
हृताधिकारा देवाश्च चरन्ति भिक्षुका यथा ॥ १५५ ॥
पूजाहोमादिकंतेषां जहार विषयंबलात्। आश्रयंचाधिकारञ्च शस्त्रास्त्रभूषणादिकम्॥
निरुद्यमाः सुराः सर्वेचित्रपुत्तलिका यथा। तेच सर्वे विषण्णाश्च प्रजग्मुर्ब्रह्मणः सभाम्
वृत्तान्तं कथयामासू रुरुदुश्च भृशं मुहुः। तदा ब्रह्मा सुरैः सार्द्धं जगाम शङ्करालयम्॥
सर्वं संकथयामास विधाता चन्द्रशेखरम्। ब्रह्मा शिवश्च तैः सार्द्धं वैकुण्ठञ्चजगाम ह
सुदुर्लभं परं धाम जरामृत्युहरं परम्। सम्प्रापच वरं द्वारमाश्रमाणां हरेरहो ॥ १६०॥
ददर्श द्वारपालांश्च रत्नसिंहासनस्थितान्। शोभितान् पीतवस्त्रैश्च रत्नभूषणभूषितान्॥
वनमालान्वितान् सर्वान् श्यामसुन्दरविग्रहान्। शङ्खचक्रगदापद्मधरांश्चैव चतुर्भुजान्॥
सस्मितान्प्रपद्मवक्त्रांश्चपद्मनेत्रान्मनोहरान्। ब्रह्मातान्कथयामासवृत्तान्तं गमनार्थकम्॥
तेऽनुज्ञाञ्च ददुस्तस्मै प्रविवेश तदाज्ञया॥ १६४॥
एवञ्च षोड़शद्वारान्निरीक्ष्य कमलोद्भवः। देवैः सार्द्धं तानतीत्य प्रविवेश हरेः सभाम्॥
देवर्षिभिः परिवृतां पार्षदैश्च चतुर्भुजैः। नारायणस्वरूपैश्च सर्वैः कौस्तुभभूषितैः॥१६६
पूर्णेन्दुमण्डलाकारं चतुरस्रां मनोहराम्। मणीन्द्रसारनिर्माणांहीरासारसुशोभिताम्॥
अमूल्यरत्नखचितांरचितांस्वेच्छयाहरेः। माणिक्यमालाजालाढ्यांमुक्तापंक्तिविभूषिताम्॥
मण्डितां मण्डलाकारै रत्नदर्पणकोटिभिः।
विचित्रैश्चित्ररेखाभिर्नानाचित्रविचित्रिताम्। पद्मरागेन्द्ररचितैरचितांपद्मकृत्रिमैः ॥१६९
सोपानशतकैर्युक्तां स्यमन्तकविनिर्मितैः। पट्टसूत्रग्रन्थियुतैश्चारुचन्दनपल्लवैः ॥१७०॥

इन्द्रनीलमणिस्तम्भैर्वेष्टितां सुमनोरमाम् । सद्रत्नपूर्णकुम्भानां समूहैश्च समन्विताम् ॥
पारिजातप्रसूनानां मालाजालैर्विराजिताम् । कस्तूरीकुङ्कुमाक्तैश्च सुगन्धिचन्दनद्रवैः ॥
सुसंस्कृतान्तु सर्वत्र वासितां गन्धवायुना । विद्याधरीसमूहानां सङ्गीतैश्च मनोहराम् ॥
सहस्रयोजनायामां परिपूर्णाञ्च किङ्करैः । ददर्श श्रीहरिं ब्रह्मा शङ्करैश्च सुरैः सह ॥१७४
वसन्तं तन्मध्यदेशे यथेन्दुंतारकावृतम् । अमूल्यरत्ननिर्माणचित्रसिंहासनस्थितम् ॥१७५
किरीटिनं कुण्डलिनं वनमालाविभूषितम् । शङ्खचक्रगदापद्मधारिणंच चतुर्भुजम् ॥१७६
नवीननीरदश्यामं सुन्दरं सुमनोहरम् । अमूल्यरत्ननिर्माणसर्वभूषणभूषितम् ॥१७७॥
चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं बिभ्रन्तं केलिपङ्कजम् । पुरतो नृत्यगीतञ्च पश्यन्तं सस्मितं मुदा ॥
शान्तं सरस्वतीकान्तं लक्ष्मीधृतपदाम्बुजम् । भक्तप्रदत्तताम्बूलं भुक्तवन्तं सुवासितम् ॥
गङ्गया परया भक्त्या सेवितं श्वेतचामरैः । सर्वैश्च स्तूयमानञ्च भक्तिनम्रात्मकन्धरैः ॥
एवं विशिष्टं तं दृष्ट्वा परिपूर्णतमं विभुम् । ब्रह्मादयः सुराः सर्वे प्रणम्य तुष्टुवुस्तदा ॥
पुलकाङ्कितसर्वाङ्गाः साश्रुनेत्राः सगद्गदाः । भक्त्यापरमयाभक्ताभीतानम्रात्मकन्धराः ॥
पुटाञ्जलियुतो भूत्वा विधाता जगतामपि । वृत्तान्तं कथयामास विनयेन हरेः पुरः ॥
हरिस्तद्वचनं श्रुत्वा सर्वज्ञः सर्वभाववित् । प्रहस्योवाच ब्रह्माणं रहस्यञ्च मनोहरम् ॥

श्रीभगवानुवाच ।

शङ्खचूड़स्य वृत्तान्तं सर्वं जानामि पद्मज । मद्भक्तस्य च गोपस्य महातेजस्विनः पुरा ॥
सुराः शृणुत तत्सर्वमितिहासं पुरातनम् । गोलोकस्यैवचरितं पापघ्नं पुण्यकारणम् ॥
सुदामा नाम गोपश्च पार्षदप्रवरो मम । स प्राप दानवींयोनिंराधाशापात् सुदारुणात् ॥
तत्रैकदाहमगमं स्वालयाद्रासमण्डलम् । विहाय मानिनीं राधांममप्राणाधिकांपराम् ॥
सा मां विरजया सार्द्धं विज्ञाय किङ्करीमुखात् । पश्चात्क्रुधासाजगाममांददर्शचतत्रच ॥
विरजाञ्च नदीरूपां मां ज्ञात्वा च तिरोहितम् । पुनर्जगामसारुष्टास्वालयंसखीभिः सह ।
मां दृष्ट्वा मन्दिरे देवी सुदामसहितं पुरा । भृशं मां भर्त्सयामाससमौनीभूतश्च सुस्थिरम् ॥
तच्छ्रुत्वा च सुमहांश्च सुदामातां चुकोप ह । सचतांभर्त्सयामासकोपेनममसन्निधौ ॥
तच्छ्रुत्वा सा कोपयुक्ता रक्तपङ्कजलोचना । बहिष्कर्तुञ्चकाराज्ञां संत्रस्ताममसंसदि ॥

सखीलक्षं समुत्तस्थौ दुर्वारं तेजसोज्ज्वलम् । बहिश्चकार तं तूर्णं जल्पन्तश्च पुनःपुनः ॥
सा च तद्वचनं श्रुत्वा समारुष्टा शशापतम् । याहि रे दानवीं योनिमित्येवंदारुणं वचः ॥
तं गच्छन्तं शपन्तश्च रुदन्तं मां प्रणम्य च । वारयामास सा तुष्टा रुदन्ती कृपया पुनः ॥
हेवत्स ! तिष्ठमागच्छक्वयासीतिपुनःपुनः । समुच्चार्य्यचततपश्चात्जगामसाचविस्मिता ॥
गोप्यश्चरुरुदुःसर्वागोपाश्चेतिसुदुःखिताः । तेसर्वेराधिकाचापितत्पश्चाद्बोधितामया ॥
आयास्यतिक्षणार्द्धेनकृत्वाशापस्यपालनम् । सुदामनत्वमिहागच्छेत्युवाचसा निवारिता
गोलोकस्य क्षणार्द्धेन चैकमन्वन्तरं भवेत् । पृथिव्यां जगतां धातरित्येवं वचनंध्रुवम् ॥
स एव शङ्खचूड़श्च पुनस्तत्रैव यास्यति । महाबलिष्ठो योगीशः सर्वमायाविशारदः ॥
मम शूलं गृहीत्वा च शीघ्रं गच्छथ भारतम् । शिवः करोतु संहारं मम शूलेनदानवम् ॥
ममैव कवचं कण्ठे सर्वमङ्गलमङ्गलम् । बिभर्त्तिदानवः शश्वत्संसारविजयीततः ॥२०२
तत्र ब्रह्मन् स्थिते कण्ठे न कोऽपिहिंसितुंक्षमः । तद्याञ्चांहिकरिष्यामिविप्ररूपोऽहमेवच
सतीत्वभङ्गस्तत्पत्न्या यत्र काले भविष्यति । तत्रैवकालेतन्मृत्युरितिदत्तोवरस्त्वया ॥
तत्पत्न्याश्चोदरे वीर्य्यमर्पयिष्यामि निश्चितम् । तत्क्षणेनैवतन्मृत्युर्भविष्यतिनसंशयः ॥
पश्चात् सा देहमुत्सृज्य भविष्यतिप्रियामम । इत्युक्त्वाजगतांनाथोददौशूलंहरायच ॥
शूलं दत्त्वा ययौ शीघ्रं हरिरभ्यन्तरं मुदा । भारतञ्च ययुर्वेदा ब्रह्मरुद्रपुरोगमाः ॥२०८

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे षोड़शोऽध्यायः ।

सप्तदशोऽध्यायः ।

शिवेन सह शङ्खचूड़स्य युद्धार्थं पुष्पदन्तप्रेरणम् ।

नारायण उवाच ।

ब्रह्मा शिवं संनियोज्य संहारे दानवस्य च । जगाम स्वालयं तूर्णं यथास्थानंमहामुने ॥
चन्द्रभागानदीतीरे वटमूले मनोहरे । तत्र तस्थौ महादेवो देवनिस्तारहेतवे ॥१॥

दूतं कृत्वा पुष्पदन्तं गन्धर्वेश्वरमीप्सितम् । शीघ्रं प्रस्थापयामास शङ्खचूडान्तिकं मुदा ॥
स चेश्वराज्ञया शीघ्रं ययौ तन्नगरं वरम् । महेन्द्रनगरोत्कृष्टं कुवेरभवनाधिकम् ॥४॥
पञ्चयोजनविस्तीर्णं दैर्घ्ये तद्‌द्विगुणंमुने । स्फाटिकाकारमणिभिर्निर्माणमणिवेष्टितम् ।
सप्तभिः परिखाभिश्च दुर्गमाभिः समन्वितम् ॥५॥
ज्वलदग्निनिभैः शश्वज्ज्वलितं रत्नकोटिभिः । युक्तश्च वीथिशतकैर्मणिवेदिसमन्वितैः ॥
परितो वणिजां संघैर्नानावस्तुविराजितैः । सिन्दूराकारमणिभिर्निर्मितैश्चविचित्रितैः ॥
भूषितं भूषितैर्दिव्यैराश्रमैः शतकोटिभिः । गत्वा ददर्श तन्मध्ये शङ्खचूडालयं वरम् ॥८॥
अतीववलयाकारं यथा पूर्णेन्दुमण्डलम् । ज्वलदग्निशिखाभिश्च परिखाभिश्चतसृभिः ॥
सुदुर्गमश्च शत्रूणामन्येषां सुगमं सुखम् । अत्युच्चैर्गगनस्पर्श्यमणिप्राचीरवेष्टितम् ॥१०॥
राजितं द्वादशद्वारैर्द्वारपालसमन्वितैः । रत्नकृत्रिमपद्माढ्यै रत्नदर्पणभूषितैः ।
मणीन्द्रसारनिर्माणैः शोभितं लक्षमन्दिरैः ॥११॥
शोभितं रत्नसोपानैः रत्नस्तम्भविराजितैः ।
रत्नचित्रकवाटाद्यैः सद्रत्नकलसान्वितैः । रत्नेन्द्रचित्रराजिभिः सुदीप्ताभिर्विराजितैः ॥
परितो रक्षितं शश्वद्दानवैः शतकोटिभिः ।
दिव्यास्त्रधारिभिः शूरैर्महाबलपराक्रमैः । सुन्दरैश्च सुवेशैश्च नानालङ्कारभूषितैः ॥१३॥
तान् दृष्ट्वा पुष्पदन्तोऽपि वरद्वारं ददर्श सः । द्वारे नियुक्तं पुरुषं शूलहस्तञ्च सस्मितम् ॥
तिष्ठन्तं पिङ्गलाक्षञ्च ताम्रवर्णं भयङ्करम् । कथयामास वृत्तान्तं जगाम तदनुज्ञया ॥१५॥
अतिक्रम्य नवद्वारं जगामाभ्यन्तरं पुरम् । न कैश्च रक्षितं श्रुत्वा दूतरूपं रणस्य च ॥१६
गत्वा सोऽभ्यन्तरं द्वारं द्वारपालमुवाच ह । रणस्य सर्ववृत्तान्तं विज्ञापयितुमीश्वरम् ॥
स च तं कथयित्वा च दूतं गन्तुमुवाच ह । स गत्वा शङ्खचूडन्तं ददर्श सुमनोहरम् ॥
सभामण्डलमध्यस्थं स्वर्णसिंहासनस्थितम् । मणीन्द्रखचितं चित्रंरत्नदण्डसमन्वितम् ॥
रत्नकृत्रिमपुष्पैश्च प्रशस्तं शोभितं सदा ।
भृत्येन मस्तकन्यस्तं स्वर्णच्छत्रं मनोहरम् ॥ २० ॥
सेवितं पार्षदश्रेष्ठैः श्वेतचामरैः । सुवेशं सुन्दरं रम्यं रत्नभूषणभूषितम् ॥२१ ॥

माल्यानुलेपनं सूक्ष्मवस्त्रञ्च दधतं मुने । दानवेन्द्रैः परिवृतं सुवेशैश्च त्रिकोटिभिः ॥
शतकोटिभिरन्यैश्च भ्रमद्भिरस्त्रधारिभिः । एवंभूतञ्च तं दृष्ट्वा पुष्पदन्तः सविस्मयः ॥२३
उवाच रणवृत्तान्तं यदुक्तं शङ्करेण च ॥ २४ ॥

पुष्पदन्त उवाच ।

राजेन्द्र शिवदूतोऽहं पुष्पदन्ताभिधः प्रभो । यदुक्तं शङ्करेणैव तद् ब्रवीमि निशामय ॥
राज्यंदेहि च देवानामधिकारञ्च साम्प्रतम् । देवाश्च शरणापन्ना देवेशे श्रीहरौ परे ।२६।
दत्त्वा त्रिशूलं हरिणा तव प्रस्थापितः शिवः । चन्द्रभागानदीतीरे वटमूले त्रिलोचनः ॥
विषयं देहि तेषाञ्च युद्धंवाकुरुनिश्चितम् । गत्वावक्ष्यामिकिंशम्भुंतद्भवान् वक्तुमर्हति॥
दूतस्य वचनं श्रुत्वा शङ्खचूडः प्रहस्य च । प्रभातेऽहं गमिष्यामि त्वञ्च गच्छेत्युवाच ह
स गत्वोवाच तूर्णं तं वटमूलस्थमीश्वरम् । शङ्खचूडस्य वचनं तदीयं यत् परिच्छदम् ॥
एतस्मिन्नन्तरे स्कन्द आजगाम शिवान्तिकम् । वीरभद्रश्च नन्दी च महाकालःसुभद्रकः
विशालाक्षश्च बाणश्च पिङ्गलाक्षो विकम्पनः ।
विरूपो विकृतिश्चैव मणिभद्रश्च वास्कलः ॥ ३२ ॥
कपिलाक्षो दीर्घदंष्ट्रो विकटस्ताम्रलोचनः ॥ ३३ ॥
कालङ्कटो वलीभद्रः कालजिह्वः कुटीचरः । बलोन्मत्तो रणश्लाघी दुर्जयो दुर्गमस्तथा
अष्टौ च भैरवा रौद्रारुद्राश्चैकादशःस्मृताः । वसवोवासवाद्याश्चआदित्याद्वादशस्मृताः
हुताशनश्च चन्द्रश्च विश्वकर्माश्विनौ च तौ । कुवेरश्च यमश्चैव जयन्तो नलकूवरः ।३६।
वायुश्च वरुणश्चैव बुधश्च मङ्गलस्तथा । धर्मश्च शनिरीशानः कामदेवश्च वीर्य्यवान् ॥
उग्रदंष्ट्रा चोग्रचण्डा कोट्टरी कैटभी तथा । स्वयं शतभुजा देवी भद्रकाली भयङ्करी ॥
रत्नेन्द्रसारनिर्माणविमानोपरि संस्थिता । रक्तवस्त्रपरीधाना रक्तमाल्यानुलेपना ॥३६॥
नृत्यन्ती च हसन्ती च गायन्ती सुस्वरं मुदा । अभयं ददती भक्तमभया सा भयं रिपुम्
बिभ्रती विकटां जिह्वां सुलोलां योजनायताम् । खर्परं वर्त्तुलाकारं गभीरं योजनायतम्
त्रिशूलं गगनस्पर्शि शक्तिञ्च योजनायताम् । शङ्खं चक्रं गदां पद्मं शरांश्चापं भयङ्करम् ॥
मुद्गरं मुषलं वज्रं खड्गं फलकमुज्ज्वलम् । वैष्णवास्त्रं वारुणास्त्रं वह्निञ्च नागपाशकम् ॥

नारायणास्त्रं ब्रह्मास्त्रं गान्धर्वं गारुड़ं तथा । पार्जन्यञ्च पाशुपतं जृम्भणास्त्रञ्च पार्वतम्
माहेश्वरास्त्रं वायव्यं दण्डं सम्मोहनन्तथा । अव्यर्थमस्त्रशतकं दिव्यास्त्रशतकं परम् ॥

आगत्य तत्र तस्थौ सा योगिनीनां त्रिकोटिभिः ।
सार्द्धं वै डाकिनीनाञ्च विकटानां त्रिकोटिभिः ॥ ४६ ॥

भूताःप्रेताः पिशाचाश्च कुष्माण्डाब्रह्मराक्षसाः । वेतालाश्चैव यक्षाश्चराक्षसाश्चैवकिन्नराः
ताभिश्चैव सह स्कन्दः प्रणम्य चन्द्रशेखरम् । पितुः पार्श्वे सभायाञ्चसमुवासभवाज्ञया
अथ दूते गते तत्र शङ्खचूडः प्रतापवान् । उवाच तुलसीं वार्त्तां गत्वाभ्यन्तरमेव च ॥
रणवार्त्ताञ्च सा श्रुत्वा शुष्ककण्ठौष्ठतालुका । उवाच मधुरं साध्वी हृदयेन विदूयता

तुलस्युवाच ।

हे प्राणनाथ हे बन्धो तिष्ठ मे वक्षसि क्षणम् । हे प्राणाधिष्ठातृदेव रक्ष मे जीवनंक्षणम्

भुङ्क्ष्व जन्मसमाधानं यद्वै मनसि वाञ्छितम् ।
पश्यामि त्वां क्षणं किञ्चिल्लोचनाभ्यां पिपासिता ॥ ५२ ॥

आन्दोलयन्ति प्राणा मे मनोदग्धश्च सन्ततम् । दुःस्वप्नश्च मया दृष्टश्चाद्यैव चरमे निशि
तुलसीवचनं श्रुत्वा भुक्त्वा पीत्वा नृपेश्वरः । उवाच वचनं प्राज्ञोहितं सत्यंयथोचितम्

शङ्खचूड़ उवाच ।

कालेन योजितं सर्वं कर्मभोगनिबन्धने । शुभं हर्षं सुखं दुःखं भयं शोकममङ्गलम् ॥५५
काले भवन्ति वृक्षाश्च स्कन्धवन्तश्च कालतः । क्रमेण पुष्पवन्तश्च फलवन्तश्च कालतः

ते सर्वे फलिनः काले काले कालं प्रयान्ति च ।
भवन्ति काले भूतानि काले कालं प्रयान्ति च ॥ ५७ ॥
काले भवन्ति विश्वानि काले नश्यन्ति सुन्दरि ॥ ५८ ॥

काले सृजति स्रष्टा च पाता पाति च कालतः । संहर्त्ता संहरेत् कालेसञ्चरन्तिक्रमेणते
ब्रह्मविष्णुशिवादीनामीश्वरः प्रकृतेः परः । स्रष्टा पाता च संहर्त्ता स कृत्स्नांशेन सर्वदा
काले स एव प्रकृतिंनिर्मायस्वेच्छया प्रभुः । निर्मायप्राकृतान्सर्वान्विश्वस्थांश्चचराचरान्

आब्रह्मस्तम्भपर्यन्तं सर्वं कृत्रिममेव च । प्रवदन्ति च कालेन नश्यत्यपि हि नश्वरम् ॥

भज सत्यं परं ब्रह्म राधेशं त्रिगुणात्परम्। सर्वेशं सर्वरूपञ्च सर्वात्मानन्तमीश्वरम्॥
जलं जलेन सृजति जलं पाति जलेन यः। हरेज्जलं जलेनैव तं कृष्णं भज सन्ततम्॥
यस्याज्ञया वाति वातः शीघ्रगामीचसन्ततम्। यस्याज्ञया च तपनस्तपत्येव यथाक्षणम्
यथाक्षणं वर्षतीन्द्रो मृत्युश्चरति जन्तुषु। यथाक्षणं दहत्यग्निश्चन्द्रो भ्रमति भीतवत्॥
मृत्योर्मूलं कालमूलं यमस्य च यमं परम्। विभुं स्रष्टुश्च स्रष्टारं पातुश्च पालकं भवे॥
संहर्त्तारश्च संहर्त्तुस्तं कृष्णं शरणं व्रज। को वन्धुश्चैव केषां वा सर्ववन्धुं भज प्रिये॥
अहं को वा च त्वं कावा विधिनायोजितःपुरा। त्वयासार्द्धंकर्मणाचपुनस्तेन नियोजितः
अज्ञानी कातरः शोके विपत्तौ च न पण्डितः। सुखं दुःखं भ्रमत्येव चक्रनेमिक्रमेण च
नारायणं तं सर्वेशं कान्तं प्राप्स्यसि निश्चितम्। तपः कृतं यदर्थे च पुरा वदरिकाश्रमे
मया त्वं तपसा लब्धा ब्रह्मणश्च वरेण हि। हरेरर्थे तव तपो हरिं प्राप्स्यसि कामिनि
वृन्दावने च गोविन्दंगोलकेत्वंलभिष्यसि। अहं यास्यामितल्लोकंतनुं त्यक्त्वाचदानवीम्
तत्र द्रक्ष्यसि मां त्वञ्च त्वां च द्रक्ष्यामिसन्ततम्।
आगमं राधिकाशापात् भारतञ्च सुदुर्लभम्॥ ७४॥
पुनर्यास्यामि तत्रैव कः शोको मे श्रृणु प्रिये। त्वं हि देहं परित्यज्य दिव्यरूपंविधायच
तत्कालं प्राप्स्यसि हरिं मा कान्ते कातराभव। इत्युक्त्वाचदिनान्तेचतयासार्द्धं मनोहरे
सुष्वाप शोभने तल्पे पुष्पचन्दनचर्चिते। नानाप्रकारविभवे चचार रत्नमन्दिरे॥ ७७॥
रत्नप्रदीपसंयुक्ते स्त्रीरत्नं प्राप्य सुन्दरीम्। निनाय रजनीं राजा क्रीड़ाकौतुकमङ्गलैः॥
कृत्वा वक्षसि कान्तां तां रुदन्तीमतिदुःखिताम्।
कृशोदरीं निराहारां निमग्नां शोकसागरे॥ ७६॥
पुनस्तां वोधयामास दिव्यज्ञानेन ज्ञानवित्। पुरा कृष्णेन यद्दत्तं भाण्डीरे तत्त्वमुत्तमम्
स च तस्यै ददौ तच्च सर्वशोकहरं परम्। ज्ञानं संप्राप्य सा देवी प्रसन्नवदनेक्षणा॥
क्रीड़ाञ्चकार हर्षेण सर्वं मत्वातिनश्वरम्। तौ दम्पती च क्रीड़ार्त्तौ निमग्नौ सुखसागरे
पुलकाङ्कितसर्वाङ्गौ मूर्च्छितौ निर्जने मुने। अङ्गप्रत्यङ्गसंयुक्तौ सुप्रीतौ सुरतोत्सुकौ॥
एकाङ्गौ च तथा तौ द्वौ चार्द्धनारीश्वरौ यथा। प्राणेश्वरश्च तुलसीमेनेप्राणाधिकंपरम्

प्राणाधिकाञ्च तां मेने राजा प्राणाधिकेश्वरीम् ।
तौ स्थितौ सुखसुप्तौ च तन्त्रितौ सुन्दरौ समौ ॥ ८५ ॥
सुवेशौ सुखसम्भोगादचेष्टौ सुमनोहरौ । क्षणं सचेतनौ तौ च कथयन्तौ रसाश्रयाम्
कथां मनोहरां दिव्यां हसन्तौ च क्षणं पुनः ॥ ८६ ॥
उक्तवन्तौ च ताम्बूलं प्रदत्तं च परस्परम् ॥ ८७ ॥
परस्परं सेवितौ च सुप्रीत्या श्वेतचामरैः । क्षणं शयानौ सानन्दौ वसन्तौ च क्षणंपुनः
क्षणं केलिनियुक्तौ च रसभावसमन्वितौ । सुरतेर्विरतिर्नास्ति तौ तद्विषयपण्डितौ ॥
सततं जययुक्तौ द्वौ क्षणं नैव पराजितौ ॥ ९० ॥
इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे तुलस्युपाख्याने
तुलसीशङ्खचूड़सम्भोगो नाम सप्तदशोऽध्यायः ।

अष्टादशोऽध्यायः

शिवेन सह युद्धार्थं शङ्खचूड़स्य कथोपकथनम् ।

नारायण उवाच ।

श्रीकृष्णंमनसाध्यात्वा राजा कृष्णपरायणः । ब्राह्मेमुहूर्त्तेउत्थाय पुष्पतल्पान्मनोहरात्
रात्रिवासःपरित्यज्यस्नात्वामङ्गलवारिणा । धौतेचवाससीधृत्वाकृत्वातिलकमुज्ज्वलम् ।
चकाराह्निकमावश्यमभीष्टदेववन्दनम् । दध्याज्यं मधु लाजञ्च ददर्श वस्तु मङ्गलम् ॥३॥
रत्नश्रेष्ठं मणिश्रेष्ठं वस्त्रश्रेष्ठञ्च काञ्चनम् । ब्राह्मणेभ्यो ददौ भक्त्या यथा नित्यञ्च नारद ॥
अमूल्यरत्नं यत्किञ्चित् मुक्तामाणिक्यहीरकम् । ददौ विप्राय गुरवे यात्रामङ्गलहेतवे ।५।
गजरत्नमश्वरत्नं धेनुरत्नं मनोहरम् । ददौ सर्वं दरिद्राय विप्राय मङ्गलाय च ॥ ६ ॥
भाण्डाराणां सहस्रञ्च नगराणां त्रिलक्षकम् । ग्रामाणां शतकोटिञ्च ब्राह्मणेभ्यो ददौमुदा
पुत्रं कृत्वाच राजेन्द्रं सुचन्द्रं दानवेषुच । पुत्रे समर्प्य भार्य्याञ्च राज्यञ्च सर्वसम्पदम् ॥

प्रजानुचरसंघञ्च भाण्डारवाहनादिकम् । स्वयं सन्नाहयुक्तश्च धनुष्पाणिर्बभूव ह ॥ ९॥
भृत्यद्वारा क्रमेणैव चकार सैन्यसञ्चयम् । अश्वानाञ्च त्रिलक्षेण पञ्चलक्षेण हस्तिनाम् ॥
रथानामयुतेनैवधानुष्काणांत्रिकोटिभिः । त्रिकोटिभिश्चर्मिणाञ्चशूलिनाञ्चत्रिकोटिभिः ॥
कृता सेनापरिमिता दानवेन्द्रेण नारद । तस्यां सेनापतिश्चैव युद्धशास्त्रविशारदः ॥११॥
महारथः सविज्ञेयो रथिनां प्रवरो रणे । त्रिलक्षाक्षौहिणीसेनापतिं कृत्वा नराधिपः ॥
त्रिंशदक्षौहिणी वाद्यभाण्डौघञ्च चकार ह । वहिर्बभूव शिविरान्मनसा श्रीहरिं स्मरन् ॥
रत्नेन्द्रसारनिर्माणविमानमारुरोह सः । गुरुवर्गान् पुरस्कृत्य प्रययौ शङ्करान्तिकम् ॥
पुष्पभद्रानदीतीरे यत्राक्षयवटः शुभः । सिद्धाश्रमञ्च सिद्धानां सिद्धिक्षेत्रञ्च नामतः ॥
कपिलस्य तपःस्थानं पुण्यक्षेत्रञ्च भारते । पश्चिमोदधि पूर्वे च मलयस्य च पश्चिमे ॥
श्रीशैलोत्तरभागे च गन्धमादनदक्षिणे । पञ्चयोजनविस्तीर्णा दैर्घ्ये शतगुणा तथा ॥
शाश्वती जलपूर्णा च पुष्पभद्रा नदी शुभा ॥ १८ ॥

लवणोदप्रियाभार्य्या शश्वत्सौभाग्यसंयुता । शुद्धस्फटिकसङ्काशा भारतेच सुपुण्यदा ।
शरावतीमिश्रिताच निर्गतासा हिमालयात् । गोमन्तंवामतः कृत्वा प्रविष्टा पश्चिमोदधौ
तत्र गत्वा शङ्खचूड़ो ददर्श चन्द्रशेखरम् । वटमूले समासीनं सूर्यकोटिसमप्रभम् ॥२१॥
कृत्वा योगासनं स्थित्वा मुद्रायुक्तञ्च सस्मितम् । शुद्धस्फटिकसङ्काशं ज्वलन्तंब्रह्मतेजसा
त्रिशूलपट्टिशधरं व्याघ्रचर्माम्बरं वरम् । तप्तकाञ्चनवर्णाभं जटाजालञ्च बिभ्रतम् ॥२३॥
त्रिनेत्रं पञ्चवक्त्रञ्च नागयज्ञोपवीतिनम् । मृत्युञ्जयं मृत्युमृत्युं विश्वमृत्युकरं परम् ॥
भक्तमृत्युहरं शान्तं गौरीकान्तं मनोरमम् । तपसां फलदातारं दातारं सर्वसम्पदाम् ॥
आशुतोषं प्रसन्नास्यं भक्तनुग्रहकारणम् । विश्वनाथं विश्वरूपं विश्ववीजञ्च विश्वजम् ॥
विश्वम्भरं विश्ववरं विश्वसंहारकारणम् । कारणं कारणानाञ्चनरकार्णवतारणम् ॥२७
ज्ञानप्रदं ज्ञानवीजं ज्ञानानन्दं सनातनम् । अवरुह्य विमानाच्च तं दृष्ट्वा दानवेश्वरः ॥ २८॥
सर्वैःसार्द्धंभक्तियुक्तः शिरसाप्रणनामसः । वामतो भद्रकालीञ्चस्कन्दञ्चतत् पुरःस्थितम्
आशिषञ्च ददौ तस्मै काली स्कन्दश्च शङ्करः । उत्तस्थुर्दानवं दृष्ट्वा सर्वेनन्दीश्वरादयः ॥
परस्परञ्चसम्भाषितं चक्रुस्तत्रसाम्प्रतम् । राजाकृत्वाचसम्भाषामुवास शिवसन्निधौ ॥

प्रसन्नात्मा महादेवो भगवांस्तमुवाच ह ॥ ३२ ॥

श्रीमहादेव उवाच ।

विधाताजगतांब्रह्मा पिताधर्मस्यधर्मवित् । मरीचिस्तस्य पुत्रश्च वैष्णवश्चापिधार्मिकः ।
कश्यपश्चापितत्पुत्रो धर्मिष्ठश्चप्रजापतिः । दक्षप्रीत्याददौतस्मै भक्त्या कन्यास्त्रयोदश

तास्वेका च दनुः साध्वी तत् सौभाग्येन च वर्द्धिता ।
चत्वारिंशद्दनोः पुत्राः दानवास्तेजसोज्ज्वलाः ॥३५॥

तेष्वेकोविप्रचित्तिश्च महाबलपराक्रमः । तत्पुत्रोधार्मिकोदंभो विष्णुभक्तोजितेन्द्रियः।
जजाप परमं मन्त्रं पुष्करे लक्षवत्सरम् । शुक्राचार्य्यं गुरुं कृत्वा कृष्णस्य परमात्मनः ॥
तदात्वां तनयं प्राप परं कृष्णपरायणम् । पुरा त्वं पार्षदो गोपो गोपेष्वष्टसु धार्मिकः॥
अधुना राधिकाशापात् भारते दानवेश्वरः । आब्रह्मस्तम्भपर्य्यन्तं भ्रमं मेनेच वैष्णवः ॥
सालोक्यसार्ष्टिसारूप्यसामीप्यैक्यं हरेरपि । दीयमानं न गृह्णन्तिवैष्णवाः सेवनंविना ॥
ब्रह्मत्वममरत्वं वा तुच्छं मेने च वैष्णवः । इन्द्रत्वं वा कुवेरत्वं न मेने गणनासु च ॥
कृष्णभक्तस्य ते किं वा देवानां विषये भ्रमे । देहि राज्यश्च देवानां मत्प्रीतिं कुरु भूमिप।
सुखं स्वराज्ये त्वं तिष्ठ देवास्तिष्ठन्तु स्वेपदे । अलं भ्रातृविरोधेन सर्वे कश्यपवंशजा।
यानिकानिचपापानि ब्रह्महत्यादिकानि च । ज्ञातिद्रोहस्यपापस्यकलां नार्हन्तिषोड़शीम्

स्वसम्पदाञ्च हानिञ्च यदि राजेन्द्र मन्यसे ।
सर्वावस्थासु समता केषां याति च सर्वदा ॥ ४५ ॥

ब्रह्मणश्च तिरोभावो लये प्राकृतिके सति । आविर्भावः पुनस्तस्य प्रभवेदीश्वरेच्छया ॥
ज्ञानं बुद्धिश्च तपसा स्मृतिर्लोकस्य निश्चितम् । करोतिसृष्टिंज्ञानेनस्रष्टासोऽपिक्रमेणच
परिपूर्णतमो धर्मः सत्ये सत्याश्रयः सदा । त्रिभागःसोऽपित्रेतायांद्विभागोद्वापरेस्मृतः
एकभागः कलेः पूर्वे तद्ध्रासश्च क्रमेण च । कलामात्रं कलेः शेषे कुहांचन्द्रकला यथा
यादृक्तेजोरवेर्ग्रीष्मे न तादृक्शिशिरे पुनः । दिने च यादृङ्मध्याह्ने सायंप्रातर्न तत्समम्
उदयं यातिकालेन वाल्यताञ्च क्रमेण च । प्रकाण्डताञ्च तत्पश्चात् कालेऽस्तंपुनरेव सः
दिने प्रच्छन्नतां याति काले च दुर्दिने घने । राहुग्रस्ते कम्पितश्च पुनरेव प्रसन्नताम् ॥

परिपूर्णतमश्चन्द्रः पूर्णिमायाञ्च यादृशः । तादृशो न भवेन्नित्यं क्षयं याति दिने दिने ॥
पुनः स पुष्टितां याति परकुह्वा दिने दिने । सम्पद्युक्तः शुक्लपक्षे कृष्णे म्लानश्चयक्ष्मणा
राहुग्रस्ते दिने म्लानोदुर्दिने निविड़े घने । काले चन्द्रो भवेत् शुद्धोभ्रष्टश्रीः कालभेदके
भविष्यति वलिश्चेन्द्रो भ्रष्टश्रीःसुतलेऽधुना । कालेनपृथ्वीशस्याढ्यासर्वाधारावसुन्धरा
काले जले निमग्ना सा तिरोभूता विपद्गता । काले नश्यन्ति विश्वानिप्रभवत्येवकालतः
चराचराश्च कालेन नश्यन्ति प्रभवन्ति च । ईश्वरस्यैव समता कृष्णस्य परमात्मनः ॥
अहं मृत्युञ्जयो यस्मादसंख्यं प्राकृतं लयम् । अद्राक्षञ्चापि द्रक्ष्यामि वारं वारं पुनः पुनः
स च प्रकृतिरूपश्च स एव पुरुषःस्मृतः । स आत्मा सर्वजीवश्च नानारूपधरः परः ॥६०॥
करोति सततं योहि तन्नाम गुणकीर्त्तनम् । कालं मृत्युं स जयतिजन्मरोगं जराभयम्
स्रष्टा कृतो विधिस्तेन पाताविष्णुकृतोभवे । अहं कृतश्च संहर्त्ता वयं विषयिणः यतः ॥
कालाग्नि रुद्रं संहारे नियुज्य विषये नृप ॥ ६२ ॥
अहङ्करोमि सततं तन्नाम गुणकीर्त्तनम् । तेन मृत्युञ्जयोऽहञ्च ज्ञानेनानेन निर्भयः ॥६३
मृत्युर्मत्तो भयाद् याति वैनतेयादिवोरगः । इत्युक्त्वा स च सर्वेशः सर्वज्ञः सर्वभावनः
विरराम च शर्वश्च सभामध्ये च नारद । राजा तद्वचनं श्रुत्वा प्रशशंस पुनः पुनः ॥
उवाच मधुरं देवं परं विनयपूर्वकम् ॥ ६६ ॥

शङ्खचूड़ उवाच ।

त्वयायत्कथितं नाथ सर्वंसत्यं च नानृतम् । तथापिकिञ्चिद्याथार्थ्यं श्रूयतां मन्निवेदनम्
ज्ञातिद्रोहे महत्पापं त्वयोक्तमधुनात्र यत् । गृहीत्वा तस्यसर्वस्वंकुतःप्रस्थापितोवली
मया समुद्धृतं सर्वमैश्वर्यं विक्रमेण च । सुतलाच्च समुद्धर्त्तुं नालं सोऽपि गदाधरः
सभ्रातृको हिरण्याक्षः कथं देवैश्च हिंसितः । शुम्भादयश्चासुराश्च कथं देवैर्निपातिताः
पुरा समुद्रमथने पीयूषं भक्षितं सुरैः । क्लेशभाजो वयं तत्र तैः सर्वफलभाजनैः ॥ ७१ ॥
क्रीड़ाभाण्डमिदं विश्वं कृष्णस्यपरमात्मनः । यस्मै तत्र स ददातितस्यैश्वर्य्यंभवेत्तदा
देवदानवयोर्वादः शश्वन्नैमित्तिकः सदा । पराजयो जयस्तेषां कालेऽस्माकं क्रमेण च
तत्रावयोर्विरोधे च गमनं निष्फलं तव । समसम्बन्धिनोर्बन्धोरीश्वरस्य महात्मनः ॥

इयं ते महती लज्जा स्पर्द्धास्माभिः सहाधुना। ततोऽधिकाचसमरे कीर्त्तिहानिःपराजये
शङ्खचूड़वचः श्रुत्वा प्रहस्य च त्रिलोचनः। यथोचितं सुमधुरमुवाच दानवेश्वरम् ॥

श्री महादेव उवाच।

युष्माभिः सह युद्धं मे ब्रह्मवंशसमुद्भवैः। का लज्जा महती राजन्नकीर्त्तिर्वा पराजये
युद्धमादौ हरेरेव मधुना कैटभेन च। हिरण्यकशिपोश्चैव सह तेनात्मना नृप ॥७८॥
हिरण्याक्षस्य युद्धञ्च पुनस्तेन गदाभृता। त्रिपुरैः सह युद्धञ्च मया चापि पुराकृतम् ॥
सर्वेश्वर्य्याः सर्वमातुः प्रकृत्याश्च बभूव ह। सह शुम्भादिभिः पूर्वं समरं परमाद्भुतम्
पार्षदप्रवरस्त्वञ्च कृष्णस्य परमात्मनः। ये ये हताश्च ते दैत्या नहि केऽपित्वया समाः
का लज्जा महती राजन् मम युद्धे त्वयासह। सुराणां शरणस्यैव प्रेषितस्य हरेरहो ॥
देहि राज्यञ्च देवानां वाग्व्ययेकिंप्रयोजनम्। युद्धं त्वं कुरुमत्सार्द्धमितिमेनिश्चितंवचः
इत्युक्त्वा शङ्करस्तत्र विरराम च नारद। उत्तस्थौ शङ्खचूड़श्च स्वामात्यैः सह सत्वरः ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे तुलस्युपाख्याने
शिवशङ्खचूड़संवादेऽष्टादशोऽध्यायः।

ऊनविंशोऽध्यायः

देवानां सह शङ्खचूड़स्य युद्धम्।

नारायण उवाच।

शिवं प्रणम्य शिरसा दानवेन्द्रः प्रतापवान्। समारुरोह यानञ्च स्वामात्यैः सह सत्वरः
बभूवुस्ते च संक्षुब्धाः स्कन्दस्य शक्तिपीड़या। नेदुर्दुन्दुभयः स्वर्गे पुष्पवृष्टिर्बभूव ह ॥
स्कन्दस्योपरि तत्रैव समरे च भयङ्करे। स्कन्दस्य समरं दृष्ट्वा महदद्भुतमुल्वणम् ॥ ३ ॥
दानवानां क्षयकरं यथा प्राकृतिकंलयम्। राजा विमानमारुह्य शरवर्षञ्चकारह ॥ ४ ॥

नृपस्य शरवृष्टिश्च घनस्य वर्षणं यथा। महान् घोरान्धकारश्च वह्न्युत्थानं बभूव ह ॥

देवाः प्रदुद्रुवुश्चान्ये सर्वे नन्दीश्वरादयः । एक एव कार्त्तिकेयस्तस्थौ समरमूर्द्धनि ॥
पर्वतानाञ्च सर्पाणां शिलानां शाखिनान्तथा । शश्वच्चकार वृष्टिञ्च दुर्वार्य्याञ्च भयङ्करीम् ॥
नृपस्य शरवृष्ट्या च प्रच्छन्नः शिवनन्दनः । नीरदेन च सान्द्रेण संछन्नोभास्करोयथा ॥
धनुश्चिच्छेद स्कन्दस्य दुर्वहञ्च भयङ्करम् । वभञ्ज च रथं दिव्यं चिच्छेद रथघोटकान् ॥
मयूरं जर्ज्जरीभूतं दिव्यास्त्रेण चकारसः । शक्तिं चिक्षेप सूर्य्याभांतस्यवक्षसि घातिनीम् ॥
क्षणं मूर्च्छां च संप्राप्य संलभ्य चेतनांपुनः । गृहीत्वान्यद्धनुर्दिव्यं यद्दत्तं विष्णुना पुरा ॥
रत्नेन्द्रसारनिर्माणं यानमारुह्य कार्त्तिकः । शस्त्रमस्त्रं गृहीत्वा च चकार रणमुल्वणम् ॥
सर्पांश्च पर्वतांश्चैव वृक्षांश्च प्रस्तरांस्तथा । सर्वांश्चिच्छेदकोपेनदिव्यास्त्रेणशिवात्मजः ॥
वह्निं निर्वापयामास पार्जन्येन प्रतापवान् । रथं धनुश्च चिच्छेद शङ्खचूड़स्य लीलया ॥
सन्नाहं सारथिञ्चैव किरीटं मुकुटोज्ज्वलम् । चिक्षेप शक्तिमुल्काभांदानवेन्द्रस्यवक्षसि ॥
मूर्च्छां संप्राप्य राजा च संलभ्य चेतनां पुनः । आरुह्य वै यानमन्यं धनुर्जग्राह सत्वरः ॥
चकार शरजालञ्च मायया मायिनाम्वरः । गुहञ्चाच्छाद्य समरे शरजालेन नारद ॥१७॥
जग्राह शक्तिमव्यार्थां शतसूर्य्यसमप्रभाम् । प्रलयाग्निशिखारूपां विष्णोश्च तेजसावृताम् ॥
चिक्षेप ताञ्च कोपेन महावेगेन कार्त्तिके । पपात शक्तिस्तद्गात्रे वह्निराशिरिवोज्ज्वला ॥

मूर्च्छां संप्राप शक्त्या च कार्त्तिकेयो महावलः ।
काली गृहीत्वा तं क्रोड़े निनाय शिवसन्निधौ ॥ २० ॥

शिवस्तञ्चापि ज्ञानेन जीवयामास लीलया । ददौ वलमनन्तञ्च सचोत्तस्थौ प्रतापवान् ॥
शिवः स्वसैन्यं देवांश्च प्रेरयामास सत्वरः । दानवेन्द्रैः ससैन्यैश्च युद्धारम्भो वभूव ह ॥
स्वयं महेन्द्रो युयुधे सार्द्धञ्च वृषपर्वणा । भास्करो युयुधे विप्रचित्तिना सह सत्वरः ॥
दम्भेन सह चन्द्रश्च चकार समरं परम् । कालेश्वरेण कालश्च गोकर्णेन हुताशनः ॥
कुवेरः कालकेयेन विश्वकर्मा मयेन च । भयङ्करेण मृत्युश्च संहारेण यमस्तथा ॥२५॥
कलविङ्केन वरुणश्चञ्चलेन समीरणः । वुधश्च घृतपृष्ठेन रक्ताक्षेण शनैश्चरः ॥ २६ ॥
जयन्तो रत्नसारेण वसवोवर्चसांगणैः । अश्विनौ च दीप्तिमता धूम्रेण नलकूवरः ॥
धनुर्द्धरेण धर्मश्च मण्डूकाक्षेण मंगलः । शोभाकरेणचेशानः पीठरेण च मन्मथः ॥२८॥

उल्कामुखेन धूम्रेण खड्गेनापि ध्वजेन च । काञ्चीमुखेन पिण्डेन धूम्रेण सह नन्दिना ॥
विश्वेन च पलाशेन चादित्या युयुधुः परम् । एकादश महारुद्राश्चैकादशभयङ्करैः ॥
महामारी च युयुधे चोग्रदण्डादिभिः सह । नन्दीश्वरादयः सर्वे दानवानां गणैः सह ॥
युयुधुश्च महद् युद्धे प्रलये च भयङ्करे । वटमूले च शम्भुश्च तस्थौ काल्या सुतेन च ॥
सर्वे च युयुधुः सैन्यासमूहाः सततं मुने । रत्नसिंहासने रम्ये कोटिभिर्दानवैः सह ॥
उवास शङ्खचूड़श्च रत्नभूषणभूषितः । शङ्करस्य च योधाश्च युद्धे सर्वे पराजिताः ॥
देवाश्च दुद्रुवुः सर्वे भीताश्च क्षतविक्षताः । चकार कोपं स्कन्दश्च देवेभ्यश्चाभयं ददौ ॥
वलञ्च स्वगणानांवै वर्द्धयामास तेजसा । स्वयमेवन्तु युयुधे दानवानां गणै सहः ।
अक्षौहिणीनां शतकं समरेस जघान ह । खर्परं पातयामास काली कमललोचना ॥३७॥
पपौ रक्तं दानवानां क्रुद्धा सा शतखर्परम् । दशलक्षं गजेन्द्राणां शतलक्षंच घोटकम् ॥
समादायैकहस्तेन मुखे चिक्षेप लीलया । कवन्धानां सहस्रञ्च ननर्त्त समरे मुने ॥ ३८ ॥
स्कन्दस्य शरजालेन दानवाः क्षतविक्षताः । भीताश्च दुद्रुवुः सर्वे महावलपराक्रमाः ॥
वृषपर्वा विप्रचित्तिर्दम्भश्चापि विकङ्कनः । स्कन्दे न सार्द्धं युयुधुस्ते च सर्वे क्रमेण च
काली जगाह समरं ररक्ष कार्त्तिकंशिवः । वीरास्तामनुजग्मुश्च ते च नन्दीश्वरादयः ॥
सर्वे देवाश्च गन्धर्वा यक्षराक्षसकिन्नराः । राज्यभाण्डाश्च वहुशः शतकोटिर्वलाहकाः ॥
सा च गत्वा च संग्रामं सिंहनादंचकारह । देव्याश्च सिंहनादेन प्राप्तमूर्च्छाश्चदानवाः ॥
अट्टाट्टहासमशिवं चकार च पुनः पुनः । हृष्टा पपौ च माध्वीकं ननर्त्त रणमूर्द्धनि ॥
उग्रदंष्ट्रा चोग्रचण्डा कोट्टरी च पपौमधु । योगिनीनां डाकिनीनां गणाःसुरगणादयः ।
दृष्ट्वा कालीं शङ्खचूड़ः शीघ्रमाजिं समाययौ । दानवाश्च भयंप्रापू राजातेभ्योऽभयंददौ ।

काली चिक्षेप वह्निश्च प्रलयाग्निशिखोपमम् ।
राजा निर्वापयामास पार्जन्येनावलीलया ॥ ४८ ॥

चिक्षेप वारुणं सा च तत्तीव्रं महदद्भुतम् । गान्धर्वेण च चिच्छेद दानवेन्द्रश्च लीलया ।
माहेश्वरं प्रचिक्षेप कालीवह्निशिखोपमम् । राजा जघानतच्छीघ्रं वैष्णवेनावलीलया ॥

नारायणास्त्रं सा देवी चिक्षेप मन्त्रपूर्वकम् । राजा ननाम तं दृष्ट्वा चावरुह्य रथादहो ॥

ऊर्द्ध्वं जगाम तच्छास्त्रं प्रलयाग्निशिखोपमम् । पपात शङ्खचूडश्च भक्त्या च दण्डवद्भुवि
ब्रह्मास्त्रं सा च चिक्षेप यत्नतो मन्त्रपूर्वकम् ॥ ५२ ॥
ब्रह्मास्त्रेणमहाराजा निर्वाणञ्च चकार ह । चिक्षेपातीव दिव्यास्त्रं सा देवी मन्त्रपूर्वकम्
राजा दिव्यास्त्रजालेन निर्वाणञ्च चकारह । देवीचिक्षेपशक्तिञ्च यत्नतोयोजनायताम् ॥
राजा तीक्ष्णास्त्रजालेन शतखण्डं चकार ह । जग्राह मन्त्रपूर्वञ्च देवी पाशुपतं रुषा ॥
निक्षेतुंसा निषिद्धाच वाग्बभूवाशरीरिणी । मृत्युःपाशुपतेनास्ति नृपस्यच महात्मनः ॥
यावदस्त्येव कण्ठेऽस्य कवचञ्च हरेरिति । यावत् सतीत्वमस्तीति सत्याञ्च नृपयोषितः
तावदस्यजरामृत्यु र्नास्तीतिब्रह्मणो वरः । इत्याकर्ण्यभद्रकाली न तच्चिक्षेप सा सती ।
शतलक्षं दानवानां जग्राहलीलया क्षुधा । ग्रस्तुं जगाम वेगेन शङ्खचूडं भयङ्करी ॥ ५६ ॥
दिव्यास्त्रेणसुतीक्ष्णेन वारयामास दानवः । खड्गं चिक्षेपसा देवी ग्रीष्मसूर्य्योपमंपरम् ॥
दिव्यास्त्रेण दानवेन्द्रः शतखण्डं चकार सः । पुनर्ग्रस्तुं महादेवी वेगेनच जगाम तम् ॥
निवारयामासच तां सर्वसिद्धेश्वरो वरः । वेगेन मुष्टिना काली कोपयुक्ताभयङ्करी ॥६२
बभञ्जाथ रथं तस्य जघान सारथिं सती । सा च शूलञ्च चिक्षेप प्रलयाग्निशिखोपमम् ॥
वामहस्तेन जग्राह शङ्खचूडश्च लीलया । मुष्ट्या जघान तं देवी महाकोपेन वेगतः ॥६४
बभ्रामव्यथया दैत्यः क्षणं मूर्च्छामवाप ह । क्षणेनचेतनां प्राप्य समुत्तस्थौ प्रतापवान् ।
न चकार बाहुयुद्धं देव्या सह ननाम ताम् । देव्याश्चास्त्रञ्च चिच्छेद जग्राहच स्वतेजसा
नास्त्रं चिक्षेप तां भक्त्या मातृबुद्ध्याच वैष्णवः ॥ ६७ ॥
गृहीत्वा दानवं देवी भ्रामयित्वा पुनः पुनः । ऊर्द्ध्वंच प्रेरयामास महावेगेन कोपतः ॥
ऊर्द्ध्वात् पपात वेगेन शङ्खचूडः प्रतापवान् ॥ ६८ ॥
निपत्यचसमुत्तस्थौ प्रणम्य भद्रकालिकाम् । रत्नेन्द्रसारनिर्माणं विमानान्यं मनोहरम् ।
आरुरोह हर्षयुक्तो न विश्रान्तो महारणे ॥ ६९ ॥
दानवानाञ्च क्षतजं मांसञ्च विपुलं क्षुधा ॥ ७० ॥
पीत्वाभुक्त्वाभद्रकाली जगामशङ्करान्तिकम् । उवाचरणवृत्तान्तं पौर्वापर्य्यं यथाक्रमम् ।

श्रुत्वा जहास शम्भुश्च दानवानां विनाशनम् । लक्षञ्च दानवेन्द्राणामवशिष्टं रणेऽधुना ॥

उद्वृत्तं भूभृता सार्द्धं तदन्यं भुक्तमीश्वर । संग्रामे दानवेन्द्रश्च हन्तुं पाशुपतेन वै ॥७३॥
अवध्यस्तव राजेति वाग् वभूवाशरीरिणी ।
राजेन्द्रश्च महाज्ञानी महावलपराक्रमः ॥७४॥
न च चिक्षेप मय्यस्त्रं चिच्छेद मम सायकम् ॥७५॥
इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे तुलस्युपाख्याने
कालीशङ्खचूड़युद्धे ऊनविंशोऽध्यायः ।

विंशतितमोऽध्यायः

शिवशङ्खचूड़युद्धम् ।

नारायण उवाच ।

शिवस्तत्वं समाकर्ण्य तत्त्वज्ञानविशारदः । ययौ स्वयञ्च समरं सगणैः सहनारद ॥१॥
शङ्खचूड़ः शिवं दृष्ट्वा विमानादवरुह्य च । ननाम परया भक्त्या दण्डवत् पतितो भुवि ॥
तं प्रणम्य च वेगेन विमानमारुरोह सः । तूर्णं चकार सन्नाहं धनुर्जग्राह दुर्वहम् ॥३॥
शिवद्दानवयोर्युद्धं पूर्णमव्दं वभूव ह । न वभूवतुर्ब्रह्मन्ननयोर्जयपराजयौ ॥४॥
न्यस्तशस्त्रश्च भगवान् न्यस्तशस्त्रश्च दानवः । रथस्थः शंखचूड़श्चवृषस्थोवृषभध्वजः ॥
दानवानाञ्च शतकमुद्वृत्तश्च वभूव ह । रणे ये ये मृताः शम्भुर्जीवयामास तान्विभुः ॥
ततो विष्णुर्महामायावृद्धब्राह्मणरूपधृक् । आगत्य च रणस्थानमुवाच दानवेश्वरम् ॥७॥

वृद्धब्राह्मण उवाच ।

देहि भिक्षाञ्च राजेन्द्रमह्यंविप्रायसाम्प्रतम् । त्वंसर्वसम्पदांदातायन्मेमनसिवाञ्छितम् ॥
निराहाराय वृद्धाय तृषितायातुराय च । पश्चात् त्वांकथयिष्यामिपुरःसत्यञ्चकुर्विति ॥
ओमित्युवाच राजेन्द्रः प्रसन्नवदनेक्षणः । कवचार्थी जनश्चाहमित्युवाचेति मायया ॥
तत् श्रुत्वा दानवश्रेष्ठो ददौ कवचमुत्तमम् । गृहीत्वा कवचं दिव्यं जगाम हरिरेव च ॥

शङ्खचूड़स्य रूपेण जगाम तुलसीं प्रति। गत्वा तस्यां माययाच वीर्य्याधानञ्चकार ह॥
अथ शम्भुर्हरेः शूलं जग्राह दानवं प्रति। ग्रीष्ममध्याह्नमार्त्तण्डशतकप्रभमुज्ज्वलम् ॥१३
नारायणाधिष्ठिताग्रंब्रह्माधिष्ठितमध्यगम्। शिवाधिष्ठितमूलञ्चकालाधिष्ठितधारकम्॥
किरणावलिसंयुक्तं प्रलयाग्निशिखोपमम्। दुर्निवार्य्यञ्च दुर्द्धर्षमव्यर्थं वैरिघातकम्॥
तेजसा चक्रतुल्यञ्च सर्वशस्त्रविघातकम्। शिवकेशवयोरन्यं दुर्वहञ्च भयङ्करम् ॥१६॥
धनुः सहस्रं दीर्घेण प्रस्थेन शतहस्तकम्। सजीवं ब्रह्मरूपञ्च नित्यरूपमनिर्मितम् ॥१७॥
संहर्त्तुं सर्वब्रह्माण्डमलञ्च ह्यवलीलया। चिक्षेप घूर्णनं कृत्वा शङ्खचूड़े च नारद ॥१८॥
राजा चापं परित्यज्यश्रीकृष्णचरणाम्बुजम्। ध्यानञ्चकारभक्त्याचकृत्वायोगासनंधिया
शूलञ्च भ्रमणं कृत्वा पपातदानवोपरि। चकार भस्मसात्तञ्च सरथञ्चावलीलया ॥२०॥
राजा धृत्वा दिव्यरूपं किशोरगोपवेशकम्। द्विभुजं मुरलीहस्तंरत्नभूषणभूषितम् ॥२१
रत्नेन्द्रसारनिर्माणं वेष्टितं गोपकोटिभिः। गोलोकादागतं यानमारुह्य तत् पुरं ययौ॥
गत्वा ननाम शिरसा राधामाधवयोर्मुने। भक्त्या तच्चरणाम्भोजं रासे वृन्दावने वने॥
सुदामानं तौ च दृष्ट्वा प्रसन्नवदनेक्षणौ ॥२३॥
तदा च चक्रतुः क्रोड़े स्नेहेन परिसंप्लुतौ। अथ शूलञ्च वेगेन प्रययौ शूलिनः करम्॥
शङ्करस्तेन शूलेन शूलपाणिर्बभूव सः। स शिवस्तेन शूलेन दानवस्यास्थिजालकम्॥
प्रेम्णा च प्रेरयामास लवणोदे च सागरे। अस्थिभिः शङ्खचूड़स्य शङ्खजातिर्बभूव ह॥
नानाप्रकाररूपा च शश्वत् पूता सुरार्चने। प्रशस्तंशङ्खतोयञ्चदेवानां प्रीतिदं परम् ॥२७
तीर्थतोयस्वरूपञ्च पवित्रं शम्भुना विना। शङ्खशब्दो भवेद् यत्रतत्रलक्ष्मीश्च सुस्थिरा॥
सुस्नातः सर्वतीर्थेषु यः स्नातः शङ्खवारिणा। शङ्खे हरेरधिष्ठानं यत्र शङ्खस्ततो हरिः॥
तत्रैव सततं लक्ष्मीर्दूरीभूतममङ्गलम्।
स्त्रीणाञ्चशङ्खध्वनिभिःशूद्राणाञ्चविशेषतः। भीतारुष्टायातिलक्ष्मीःस्थलमन्यंस्थलात्ततः
शिवश्च दानवं हत्वा शिवलोकं जगाम सः ॥३१॥
प्रहृष्टो वृषमारुह्य सगणैश्च समावृतः। सुराः स्वविषयं प्रापुः परमानन्दसंयुताः ॥३२॥
नेदुर्दुन्दुभयः स्वर्गे जगुर्गन्धर्वकिन्नराः। बभूव पुष्पवृष्टिश्च शिवस्योपरि सन्ततम् ॥३३

प्रशशंसुः सुरास्तञ्च मुनीन्द्रप्रवरादयः ॥३४॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे तुलस्युपाख्याने शङ्खचूड़वधप्रस्तावो नाम विंशतितमोऽध्यायः ।

एकविंशतितमोऽध्यायः

तुलसीवृक्षस्य तत्पत्राणाञ्च माहात्म्यम् ।

नारद उवाच ।

नारायणश्च भगवन् वीर्य्याधानञ्चकार ह । तुलस्यां केन रूपेण तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥
नारायणश्च भगवान् देवानां साधनेन च । शङ्खचड़स्य रूपेण रेमे तद्रमया सह ॥२॥
शङ्खचूडस्य कवचं गृहीत्वा विष्णुमायया । पुनर्विधाय तद्रूपं जगाम तुलसीगृहम् ॥३॥
दुन्दुभिं वादयामास तुलसीद्वारसन्निधौ । जयशब्दरवद्वारावोधयामास सुन्दरीम् ॥४
तत्श्रुत्वा सा च साध्वी च परमानन्दसंयुता । राजमार्गं गवाक्षेण ददर्श परमादरात् ॥
ब्राह्मणेभ्योधनंदत्त्वाकारयामासमङ्गलम् । वन्दिभ्योभिक्षुकेभ्यश्चवाचिकेभ्योधनंददौ ॥
अवरुह्य रथाद्देवो देव्याश्च भवनं ययौ । अमूल्यरत्ननिर्माणं सुन्दरं सुमनोहरम् ॥७॥
दृष्ट्वा च पुरतः कान्तं शान्तं कान्ता मुदान्विता । तत्पादं क्षालयामाससनामचरुरोदच ॥
रत्नसिंहासने रम्ये वासयामासकामुकी । ताम्बूलञ्च ददौ तस्मै कर्पूरादि सुवासितम् ॥
अद्य मे सफलं जन्म अद्य मे सफला क्रिया । शरणागतश्चप्राणेशंपश्यन्त्याश्च पुनर्गृहे ॥
सस्मिता सकटाक्षश्च सकामा पुलकाञ्चिता । पप्रच्छ रणवृत्तान्तंकान्तंमधुरया गिरा ॥

तुलस्युवाच ।

असंख्यविश्वसंहर्त्रा सार्द्धमाजौ तत्र प्रभो । कथं बभूव विजयस्तन्मे ब्रूहि कृपानिधे ॥
तुलसीवचनं श्रुत्वा प्रहस्य कमलापतिः । शङ्खचूडस्य रूपेण तामुवाच नतां वचः ॥१३॥

श्रीहरिरुवाच ।

आवयोः समरं कान्ते पूर्णमब्दं बभूव ह । नाशो बभूव सर्वेषां दानवानाञ्च कामिनी ॥
प्रीतिश्च कारयामास ब्रह्मा च स्वयमावयोः । देवानामधिकारश्च प्रदत्तो ब्रह्मणा पुरा ॥
मया गतं स्वभवनं शिवलोकं शिवो गतः । इत्युक्त्वा जगतां नाथ शयनञ्च चकारह ॥
रेमे रमापतिस्तत्र रामया सह नारद । सा साध्वी सुखसम्भोगादाकर्षणव्यतिक्रमात् ॥
सर्वं वितर्कयामास कस्त्वमेवेत्युवाच ह ॥१८॥
ददर्श पुरतो देवी देवदेवं सनातनम् । नवीननीरदश्यामं शरत्पङ्कजलोचनम् ॥१६॥
कोटिकन्दर्पलीलाभं रत्नभूषणभूषितम् । ईषद्धास्यं प्रसन्नास्यं शोभितंपीतवाससा ॥२०
तं दृष्ट्वा कामिनी कामान्मूर्च्छां संप्रापलीलया । पुनश्च चेतनां प्राप्यपुनःसातमुवाचह ॥

तुलस्युवाच ।

हे नाथ ! ते दया नास्ति पाषाणसदृशस्य च । छलेन धर्मभङ्गेन ममस्वामीत्वयाहतः ॥
पाषाणसदृशस्त्वञ्च दयाहीनो यतः प्रभो । तस्मात्पाषाणरूपस्त्वंभुविदेवभवाधुना ॥
ये वदन्ति दयासिन्धुं त्वान्ते भ्रान्ता न संशयः । भक्तो विनापराधेनपरार्थेच कथंहतः॥
दुर्वृत्त त्वञ्च सर्वज्ञो न जानासि परव्यथाम् ।
अतस्त्वमेकजनुषि स्वमेव विस्मरिष्यति ॥ २५ ॥
इत्युक्त्वा च महासाध्वी निपत्य चरणे हरेः । भृशंरुरोद शोकार्त्ता विललापमुहुर्मुहुः ॥
तस्याश्च करुणां दृष्ट्वा करुणामयसागरः । नारायणस्तां बोधयितुमुवाचकमलापतिः ।

श्रीभगवानुवाच ।

तपस्त्वया कृतं साध्वि मदर्थे भारते चिरम् । त्वदर्थे शङ्खचूड़श्च चकार सुचिरं तपः ॥
कृत्वा त्वां कामिनीं कामी विजहार च तत् फलात् ।
अधुना दातुमुचिदं तवैव तपसः फलम् ॥ २६ ॥
इदं शरीरंत्यक्त्वा च दिव्यं देहं विधाय च । रासे मे रमया सार्द्धं त्वं रमा सदृशीभव ।
इयं तनुर्नदीरूपा गण्डकीति च विश्रुता । पूता सुपुण्यदा नृणां पुण्या भवतु भारते ॥
तव केशसमूहाश्च पुण्यवृक्षा भवन्त्विति । तुलसीकेशसम्भूता तुलसीतिच विश्रुता ॥

त्रिलोकेषु च पुष्पाणां पत्राणां देवपूजने। प्रधानरूपा तुलसी भविष्यति वरानने॥
स्वर्गे मर्त्ये च पाताले वैकुण्ठे मम सन्निधौ। भवन्तु तुलसीवृक्षा वराःपुष्पेषुसुन्दरि।
गोलोके विरजा तीरे रासे वृन्दावने भुवि। भाण्डीरे चम्पकवने रम्ये चन्दनकानने॥
माधवी केतकी कुन्दमल्लिका मालतीवने। भवन्तु तरवस्तत्र पुण्यस्थानेषु पुण्यदाः॥
तुलसीतरुमूले च पुण्यदेशे सुपुण्यदे। अधिष्ठानन्तु तीर्थानां सर्वेषाञ्च भविष्यति॥
तत्रैव सर्वदेवानां समधिष्ठानमेव च। तुलसीपत्रपतनप्राप्तो यश्च वरानने॥ ३८॥
स स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः। तुलसीपत्रतोयेन योऽभिषेकं समाचरेत्॥
सुधाघटसहस्रेण सा तुष्टिर्नभवेद्धरेः। या च तुष्टिर्भवेन्नृणां तुलसीपत्रदानतः॥४०॥
गवामयुतदानेन यत्फलं लभते नरः। तुलसीपत्रदानेन तत्फलं लभते सति॥ ४१॥

तुलसीपत्रतोयञ्च मृत्युकाले च यो लभेत्।
स मुच्यतेसर्वपापात् विष्णुलोकं स गच्छति॥ ४२॥

नित्यंयस्तुलसीतोयंभुङ्क्तेभक्त्या च यो नरः। स एव जीवन्मुक्तश्चगङ्गास्नानफलंलभेत्
नित्यं यस्तुलसीं दत्वा पूजयेन्माञ्चमानवः। लक्षाश्वमेधजं पुण्यं लभतेनात्र संशयः॥

तुलसीं स्वकरे धृत्वा देहे धृत्वा च मानवः।
प्राणांस्त्यजति तीर्थेषु विष्णुलोकं स गच्छति॥ ४५॥

तुलसीकाष्ठनिर्माणमालां गृह्णाति यो नरः। पदे पदेऽश्वमेधस्य लभतेनिश्चितंफलम्॥
तुलसीं स्वकरे धृत्वा स्वीकारं यो न रक्षति। स याति कालसूत्रञ्च यावच्चन्द्रदिवाकरौ।
करोतिमिथ्याशपथंतुलस्यायो हि मानवः। स यातिकुम्भीपाकञ्चयावदिन्द्राश्चतुर्दश।
तुलसीतोयकणिकां मृत्युकालेच यो लभेत्। रत्नयानं समारुह्य वैकुण्ठं स प्रयाति च
पूर्णिमायाममायाञ्चद्वादश्यांरविसंक्रमे। तैलाभ्यङ्गेचास्नातेचमध्याह्ने निशिसन्ध्ययोः॥
अशौचेऽशुचिकाले वा रात्रिवासान्वितेनराः। तुलसींयेचछिन्नन्तितेछिन्नन्तिहरेःशिरः।
त्रिरात्रं तुलसीपत्रं शुद्धं पर्य्युषितं सति। श्राद्धे व्रते वा दाने वा प्रतिष्ठायां सुरार्चने॥
भूगतं तोयपतितं यद्दत्तं विष्णवे सति। शुद्धन्तु तुलसीपत्रं क्षालनादन्यकर्मणि॥ ५३॥
वृक्षाधिष्ठात्रीदेवी या गोलोकेच निरामये। कृष्णेनसार्द्धंरहसि नित्यक्रीडां करिष्यति।

नद्यधिष्ठातृदेवी या भारतेच सुपुण्यदा । लवणोदस्य पत्नीच अदंशस्य भविष्यति ॥५५
त्वञ्चस्त्रयं महासाध्वी वैकुण्ठे मम सन्निधौ । रमासमाच रासेचभविष्यसि न संशयः।
अहञ्च शैलरूपीच गण्डकी तीरसन्निधौ । अधिष्ठानं करिष्यामि भारते तव शापतः ॥
वज्रकीटाश्चक्रमया वज्रदंष्ट्राश्च तत्र वै । तच्छिलाकुहरे चक्रं करिष्यन्ति मदीयकम् ॥
एकद्वारे चतुश्चक्रं वनमालाविभूषितम् । नवीननीरदश्यामं लक्ष्मीनारायणाभिधम् ॥५६
एकद्वारे चतुश्चक्रं नवीननीरदोपमम् । लक्ष्मीजनार्दनं ज्ञेयं रहितं वनमालया ॥ ६० ॥
द्वारद्वये चतुश्चक्रं गोष्पदेन समन्वितम् । रघुनाथाभिधं ज्ञेयं रहितं वनमालया ॥ ६१ ॥
अतिक्षुद्रं द्विचक्रञ्च नवीनजलदप्रभम् । दधिवामनाभिधं ज्ञेयं गृहीणाञ्च सुखप्रदम् ॥
अतिक्षुद्रं द्विचक्रञ्च वनमालाविभूषितम् । विज्ञेयं श्रीधरं देवं श्रीप्रदं गृहिणां सदा ।६३॥
स्थूलञ्च वर्त्तलाकारं रहितं वनमालया । द्विचक्रं स्फुटमत्यन्तं ज्ञेयं दामोदराभिधम् ॥६४
मध्यमं वर्त्तुलाकारं द्विचक्रं बाणविक्षतम् । रणरामाभिधं ज्ञेयं शरतूणसमन्वितम् ॥६५॥
मध्यमं सप्तचक्रञ्च छत्रतूणसमन्वितम् । राजराजेश्वरं ज्ञेयं राजसम्पत्प्रदं नृणाम् ॥६६
द्विसप्तचक्रं स्थूलञ्च नवीनजलदप्रभम् । अनन्ताख्यञ्च विज्ञेयं चतुर्वर्गफलप्रदम् ॥ ६७॥
चक्राकारं द्विचक्रञ्च सश्रीकं जलदप्रभम् । सगोष्पदं मध्यमञ्च विज्ञेयं मधुसूदनम् ॥
सुदर्शनञ्चैकचक्रं गुप्तचक्रं गदाधरम् । द्विचक्रं हयवक्त्राभं हयग्रीवं प्रकीर्तितम् ॥ ६६॥
अतीवविस्तृतास्यञ्च द्विचक्रं विकटं सति । नरसिंहाभिधं ज्ञेयं सद्यो वैराग्यदं नृणाम्
द्विचक्रं विस्तृतास्यञ्च वनमालासमन्वितम् । लक्ष्मीनृसिंहं विज्ञेयं गृहिणां सुखदं सदा
द्वारदेशे द्विचक्रञ्च सश्रीकञ्च समं स्फुटम् । वासुदेवञ्च विज्ञेयं सर्वकामफलप्रदम् ॥
प्रद्युम्नं सूक्ष्मचक्रञ्च नवीननीरदप्रभम् । शुषिरच्छिद्रबहुलं गृहिणाञ्च सुखप्रदम् ॥७३॥
द्वे चक्रे चैकलग्ने च पृष्ठे यत्र तु पुष्कलम् । सङ्कर्षणन्तु विज्ञेयं सुखदं गृहिणां सदा ।
अनिरुद्धन्तु पीताभं वर्त्तुलश्चातिशोभनम् । सुखप्रदं गृहस्थानां प्रवदन्ति मनीषिणः ।७५।
शालग्रामशिला यत्र तत्र सन्निहितो हरिः । तत्रैव लक्ष्मीर्वसति सर्वतीर्थसमन्विता ।

यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च ।
तानि सर्वाणि नश्यन्ति शालग्रामशिलार्चनात् ॥ ७७ ॥

छत्राकारे भवेद्राज्यं वर्त्तुले च महाश्रियः। दुःखञ्च शकटाकारे शूलाग्रे मरणं ध्रुवम् ॥
विकृतास्ये च दारिद्र्यं पिङ्गले हानिरेव च। लग्नचक्रे भवेद्व्याधिर्विदीर्णे मरणंध्रुवम् ॥
व्रतं दानंप्रतिष्ठा च श्राद्धञ्चदेवपूजनम्। शालग्रामशिलायाश्चैवाधिष्ठानात् प्रशस्तकम्।
सः स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः। शालग्रामशिलातोयैर्योऽभिषेकं समाचरेत्।
सर्वदानेषु यत्पुण्यं प्रादक्षिण्ये भुवो यथा। सर्वयज्ञेषु तीर्थेषु व्रतेष्वनशनेषु च ॥८२॥

तस्य स्पर्शञ्च वाञ्छन्ति तीर्थानि निखिलानि च।
जीवन्मुक्तो महापूतो भवेदेव न संशयः ॥ ८३ ॥

पाठे चतुर्णां वेदानां तपसां करणे सति। तत्पुण्यं लभते नूनं शालग्रामशिलार्चनात्।
शालग्रामशिलातोयं नित्यं भुङ्क्ते च यो नरः। सुरैप्सितंप्रसादञ्चजन्ममृत्युजराहरम्।

तस्य स्पर्शञ्च वाञ्छन्ति तिर्थानि निखिलानि च।
जीवन्मुक्तो महापूतोऽत्यन्ते याति हरेः पदम् ॥ ८६ ॥

तत्रैव हरिणासार्द्धमसंख्यंप्राकृतं लयम्। पश्यत्येव हि दास्ये च निर्मुक्तोदास्यकर्मणि।
यानिकानि च पापानिब्रह्महत्यादिकानि च। तंञ्च दृष्ट्वा भियायान्तिवैनतेयमिवोरगाः।
तत्पादपद्मरजसा सद्यः पूता वसुन्धरा। पुंसां लक्षं तत्पितॄणां निस्तारतस्य जन्मनः।
शालग्रामशिलातोयंमृत्युकाले च योलभेत्। सर्वपापाद्विनिर्मुक्तो विष्णुलोकंसगच्छति
निर्वाणमुक्तिं लभते कर्मभोगाद्विमुच्यते। विष्णुपादे प्रलीनश्च भविष्यति न संशयः ॥
शालग्रामशिलांधृत्वांमिथ्यावादंवदेत्तु यः। स याति कूर्मदंष्ट्रञ्च यावद्वै ब्रह्मणोवयः।
शालग्रामशिलांस्पृष्ट्वास्वीकारंयो न पालयेत्। स प्रयात्यसिपत्रञ्चलक्षमन्वन्तराधिकम्
तुलसीपत्रविच्छेदं शालग्रामेकरोति यः। तस्यजन्मान्तरेकालेस्त्रीविच्छेदोभविष्यति ॥
तुलसीपत्रविच्छेदंशङ्खे योहिकरोति च। भार्य्याहीनोभवेत्सोऽपि रोगीचसप्तजन्मसु।
शालग्रामञ्च तुलसीं शङ्खमेकत्र एव च। यो रक्षतिमहाज्ञानी स भवेत् श्रीहरिप्रियः ॥

सकृदेव हि यो यस्यां वीर्य्याधानं करोति च।
तद्विच्छेदे तस्य दुःखं भवेदेव परस्परम् ॥ ६७ ॥

त्वं प्रिया शङ्खचूडस्य चैकमन्वन्तराविधि। शङ्खेन सार्द्धं त्वद्भेदः केवलं दुःखदस्तव ॥

इत्युक्त्वाश्रीहरिस्ताञ्चविरराम स सादरम् । सा च देहं परित्यज्य दिव्यरूपं दधारह।
यथाश्रीश्च तथा सा चाप्युवासहरिवक्षसि । प्रजगाम तया सार्द्धंवैकुण्ठं कमलापतिः।
लक्ष्मी सरस्वती गङ्गा तुलसी चापि नारद । हरेः प्रियाश्चतस्रश्च बभूवुरीस्वरस्य च॥
सद्यःस्तद्देहजाता च बभूव गण्डकी नदी । हरेरंशेन शैलश्च तत्तीरे पुण्यदो नृणाम्॥
कुर्वन्तितत्रकीटाश्च शिलां बहुविधां मुने । जले पतन्ति यायाश्चजलदाभाश्चनिश्चितम्।
स्थलस्थाः पिंगला ज्ञेयाश्चोपतात्पाद्धरैरिति । इत्येवंकथितंसर्वं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे तुलस्युपाख्याने एकविंशतितमोऽध्यायः ।

द्वाविंशतितमोऽध्यायः

तुलसी पूजा विधानम् ।

नारद उवाच ।

तुलसी च जगत्पूज्या पूता नारायणप्रिया । तस्याः पूजाविधानञ्चस्तोत्रंकिंनश्रुतं मया
केन पूज्या स्तुता केन पुरा प्रथमतो मुने । तव पूज्या सा बभूव केन वा वद मामहो॥

सूत उवाच ।

नारदस्य वचः श्रुत्वा प्रहस्य गरुड़ध्वजः । कथां कथितुमारेभे पुण्यरूपां पुरातनीम्॥

नारायण उवाच ।

हरिः संप्राप्य तुलसीं रेमे च रमया सह । रमासमान्तां सौभाग्यां चकार गौरवेण च
सेहे लक्ष्मीश्च गङ्गा च तस्याश्च नवसङ्गमम् । सौभाग्यं गौरवं कोपान्नसेहेच सरस्वती
सा तां जघान कलहे मानिनी हरिसन्निधौ । व्रीड़या स्वापमानाच्च सान्तर्द्धानंचकारह
सर्वसिद्धेश्वरी देवी ज्ञानिनी सिद्धयोगिनी । बभूवादर्शनं कोपात् सर्वत्र च हरेरहो ।७॥
हरिर्न दृष्ट्वा तुलसीं बोधयित्वा सरस्वतीम् । तदनुज्ञां गृहीत्वा च जगाम तुलसीवनम्

तत्र गत्वा च स्नात्वा च तुलस्या तुलसीं सतीम् ॥ ६ ॥

पूजयामास यात्वातांस्तोत्रंभक्त्याचकारह । लक्ष्मीर्मायाकामवाणीवीजपूर्वं दशाक्षरम् ॥

श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं वृन्दावन्यै स्वाहा ।

वृन्दावनीति ङेन्तञ्च वह्निजायान्तमेव च । अनेन कल्पतरुणा मन्त्रराजेन नारद ॥११॥

पूजयेच्च विधानेन सर्वसिद्धिं लभेन्नरः । घृतदीपेन धूपेन सिन्दूरचन्दनेन च ॥१२॥

नैवेद्येन च पुष्पेण चोपहारेण नारद । हरिस्तोत्रेण तुष्टा सा चाविर्भूय महीरुहात् ॥१३

प्रपन्ना चरणाम्भोजे जगाम शरणं शुभम् । वरं तस्यै ददौ विष्णुर्जगत्पूज्याभवेति च ॥

अहं त्वाञ्चधरिष्यामिस्वमूर्ध्निवक्षसीतिच । सर्वेत्वांधारयिष्यन्तिस्वमूर्ध्नि सुरादयः ॥

इत्युक्त्वा तां गृहीत्वा च प्रययौ स्वालयं विभुः ॥१६॥

नारद उवाच ।

किं ध्यानं स्तवनं किं वा किं वा पूजाविधिक्रमम् ।

तुलस्याश्च महाभाग तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ १७ ॥

नारायण उवाच ।

अन्तर्हितायां तस्याञ्च गत्वा च तुलसीवनम् । हरिःसंपूज्यतुष्टावतुलसींविरहातुरः ॥१८

श्रीभगवानुवाच ।

वृन्दारूपाश्च वृक्षाश्च यदैकत्र भवन्तिच । विदुर्बुधास्तेनवृन्दामत्प्रियांतांभजाम्यहम् ॥

पुरा बभूव या देवी ह्यादौ वृन्दावने वने । तेनवृन्दावनीख्यातातांसौभाग्यांभजाम्यहम् ॥

असंख्येषु चविश्वेषुपूजितायानिरन्तरम् । तेनविश्वपूजिताख्यांजगत्पूज्यांभजाम्यहम् ॥

असंख्यानि च विश्वानि पवित्राणिययासदा । तांविश्वपावनींदेवींविरहेणस्मराम्यहम् ॥

देवा न तुष्टाः पुष्पाणां समूहेनययाविना । तांपुष्पसारांशुद्धाञ्चद्रष्टुमिच्छामिशोकतः ॥

विश्वेयत्प्राप्तिमात्रेणभक्त्यानन्दोभवेद्ध्रुवम् । नन्दिनीतेनविख्यातासाप्रीताभविताहिमे ॥

यस्या देव्यास्तुला नास्ति विश्वेषु निखिलेषु च ।

तुलसी तेन विख्याता तां यामि शरणं प्रिये ॥ २५ ॥

कृष्णजीवनरूपा या शश्वत्प्रियतमा सती । तेन कृष्णजीवनीति मम रक्षतु जीवनम् ॥

इत्येवं स्तवनं कृत्वा तत्र तस्थौ रमापतिः । ददर्श तुलसीं साक्षात्पादपद्मे नतांसतीम् ॥
रुदन्तिमभिमानेन मानिनीं मानपूजिताम् । प्रियां दृष्ट्वा प्रियः शीघ्रंवासयामास वक्षसि ॥
भारत्याज्ञां गृहीत्वा च स्वालयञ्चययौहरिः । भारत्यासहतत्प्रीतिंकारयामाससत्वरम् ॥
वरं विष्णुर्ददौ तस्यै विश्वपूज्याभवेतिच । शिरोधार्य्याचसर्वेषांवन्द्यामान्याममेतिच ॥
विष्णोर्वरेण सा देवी परितुष्टा बभूवह । सरस्वतीतामाश्लिष्यवासयामाससन्निधौ ॥
लक्ष्मीर्गङ्गा सस्मिता तां समाश्लिष्य च नारद । गृहं प्रवेशयामास विनयेनसतीं तदा ॥
वृन्दांवृन्दावनींविश्वपावनींविश्वपूजिताम् । पुष्पसारांनन्दिनींचतुलसींकृष्णजीवनीम् ॥
एतान्नामाष्टकञ्चैतत् स्तोत्रं नामार्थसंयुतम् । यःपठेताञ्चसंपूज्यसोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥
कार्त्तिकीपूर्णिमायाञ्चतुलस्याजन्ममङ्गलम् । तत्र तस्याश्च पूजा च विहिताहरिणा पुरा ॥
तस्यांयःपूजयेत्ताञ्चभक्त्याचविश्वपावनीम् । सर्वपापाद्विनिर्मुक्तोविष्णुलोकंसगच्छति ॥
कार्त्तिके तुलसीपत्रं विष्णवेयोददातिच । गवामयुतदानस्य फलमाप्नोति निश्चितम् ॥

अपुत्रो लभते पुत्रं प्रियाहीनो लभेत् प्रियाम् ।
बन्धुहीनो लभेत् बन्धुं स्तोत्रस्मरणमात्रतः ॥ ३८ ॥

रोगीप्रमुच्यतेरोगात्बद्धोमुच्येतबन्धनात् । भयान्मुच्येतभीतस्तुपापान्मुच्येतपातकी ॥
इत्येवं कथितं स्तोत्रं ध्यानं पूजाविधिंश्रृणु । त्वमेववेदजानासिकाण्वशाखोक्तमेवच ॥
यद्वक्ष्ये पूजयेत्ताञ्चभक्त्याचावाहनंविना । ध्यात्वाषोड़शोपचारैःध्यानंपातकनाशनम् ॥
तुलसींपुष्पसाराञ्चसतींपूज्यांमनोहराम् । कृत्स्नपापेन्धदाहाय ज्वलदग्निशिखोपमाम् ॥
पुष्पेषु तुलनाप्यस्या नासीद्देवीसु वा मुने । पवित्ररूपा सर्वासु तुलसीसाचकीर्त्तिता ॥

शिरोधार्य्यांश्च सर्वेषामीप्सितां विश्वपावनीम् ।
जीवन्मुक्तां मुक्तिदाञ्च भजे तां हरिभक्तिदाम् ॥ ४४ ॥

इति ध्यात्वाचसंपूज्यस्तुत्वाचप्रणमेद्बुधः । उक्तंतुलस्युपाख्यानंकिंभूयःश्रोतुमिच्छसि

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादेतुलस्युपाख्यानं नाम द्वाविंशतितमोऽध्यायः ।

त्रयोविंशतितमोऽध्यायः

सावित्र्युपाख्यानम् ।

नारद उवाच ।

तुलस्युपाख्यानमिदं श्रुतमीश सुधोपमम् । यत्तुसावित्र्युपाख्यानंतन्मेव्याख्यातुमर्हसि ॥
पुरा येन समुद्भूता सा श्रुता च श्रुतिप्रसूः । केन वा पूजिता देवी प्रथमे कैश्च वा परे ।

नारायण उवाच ।

ब्रह्मणा वेदजननी पूजिता प्रथमे मुने । द्वितीये च देवगणैस्तत्पश्चाद्विदुषां गणैः ॥३॥
तथा चाश्वपतिः पूर्वं पूजयामास भारते । तत्पश्चात् पूजयामासुर्वर्णाश्चत्वारएव च ॥

नारद उवाच ।

कोवासोऽश्वपतिर्ब्रह्मन्केनवातेनपूजिता । सर्वपूज्याचसावित्रीतन्मेव्याख्यातुमर्हसि ॥

नारायण उवाच ।

मद्रदेशे महाराजा बभूवाश्वपतिर्मुने । वैरिणां बलहर्त्ता च मित्राणां दुःखनाशनः ॥६॥
आसीत्तस्य महाराज्ञी महिषीधर्मचारिणी । मालतीतिचसाख्यातायथालक्ष्मीर्गदाभृतः ॥
सा च राज्ञीमहासाध्वीवशिष्ठस्योपदेशतः । चकाराराधनंभक्त्यासावित्र्याश्चैव नारद ॥
प्रत्यादेशं न सा प्राप महिषी न ददर्श ताम् । गृहं जगाम सा दुःखाद्धृदयेनविदूयता ॥
राजा तां दुःखितां दृष्ट्वाबोधयित्वानयेनवै । सावित्र्यास्तपसेभक्त्याजगामपुष्करंतदा ॥
तपश्चचार तत्रैव संयतः शतवत्सरम् । न ददर्श च सावित्रीं प्रत्यादेशो बभूव ह ॥११॥
शुश्रावाकाशवाणीञ्च नृपेन्द्रश्चाशरीरिणीम् । गायत्री दशलक्षञ्च जपं कुर्विति नारद ॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र प्रजगाम पराशरः । प्रणनाम नृपस्तञ्च मुनिर्नृपमुवाच ह ॥ १३ ॥

पराशर उवाच ।

सकृज्जपश्च गायत्र्याः पापं दिनकृतं हरेत् । दशधा प्रजपान्नृणां दिवारात्र्यघमेव च ॥
शतधा च जपाच्चैवं पापं मासार्जितं परम् । सहस्रधा जपाच्चैवं कल्मषंवत्सरार्जितम् ॥
लक्षजन्मकृतं पापं दशलक्षं त्रिजन्मनः । सर्वजन्मकृतं पापं शतलक्षो विनश्यति ॥१६ ॥

करोति मुक्तिं विप्राणां जपोदशगुणस्ततः। करंसर्पफणाकारंकृत्वातुऊद्ध्वंमुद्रितम्॥
आनम्रमूद्ध्र्वमचलं प्रजपेत् प्राङ्मुखोद्विजः। अनामिकामध्यदेशादधोवामक्रमेणच॥
तर्जनीमूलपर्य्यन्तं जपस्यैषः क्रमः करे। श्वेतपङ्कजवीजानांस्फाटिकानाञ्च संस्कृताम्॥

कृत्वा वा मालिकां राजन् जपेत्तीर्थे सुरालये।
संस्थाप्य मालामश्वत्थपत्रसप्तसु संयतः॥ २०॥
कृत्वा गोरोचनाक्ताञ्च गायत्र्या स्नापयेत् सुधीः।
गायत्रीशतकं तस्यां जपेच्च विधिपूर्वकम्॥ २१॥

अथवा पञ्चगव्येन स्नाता माला च संस्कृता। अथ गङ्गोदकेनैवस्नातावातिसुसंस्कृता॥
एवं क्रमेण राजर्षे दशलक्षं जपं कुरु। साक्षाद्द्रक्ष्यसि सावित्रींत्रिजन्मपातकक्षयात्॥
नित्यं नित्यं त्रिसन्ध्यञ्चकरिष्यसिदिनेदिने। मध्याह्ने चापिसायाह्ने प्रातरेवशुचिःसदा॥
सन्ध्याहीनोऽशुचिर्नित्यमनर्हः सर्वकर्मसु। यदह्ना कुरुते कर्म न तस्यफलभाग् भवेत्॥
नोपतिष्ठति यः पूर्वां नोपास्तेयश्चपश्चिमाम्। सशूद्रवद्वहिष्कार्य्यःसर्वस्माद्द्विजकर्मणः।
यावज्जीवनपर्य्यन्तं यस्त्रिसन्ध्यांकरोतिच। सचसूर्य्यसमोविप्रस्तेजसातपसासदा॥२७॥
तत्पादपद्मरजसा सद्यः पूतावसुन्धरा। जीवन्मुक्तःस तेजस्वी सन्ध्यापूतोहि योद्विजः।
तीर्थानिच पवित्राणि तस्य स्पर्शनमात्रतः। ततः पापानि यान्त्येव वैनतेयादिवोरगाः।
न गृह्णन्ति सुराः पूजां पितरःपिण्डतर्पणम्। स्वेच्छयाचद्विजातेश्च त्रिसन्ध्यरहितस्यच॥
विष्णुमन्त्रविहीनश्च त्रिसन्ध्यरहितो द्विजः। एकादशीविहीनश्च विषहीनो यथोरगः॥
नित्यं नैवेद्यभोजीच धावको वृषवाहकः। शूद्रान्नभोजी विप्रश्च विषहीनो यथोरगः॥
शवदाहीच शूद्राणां यो विप्रो वृषलीपतिः। शूद्राणां सूपकारश्च विषहीनो यथोरगः॥
शूद्राणाञ्चप्रतिग्राही शूद्रयाजी च यो द्विजः। असिजीवीमसिजीवी विषहीनोयथोरगः।
योविप्रोऽवीरान्नभोजी ऋतुस्नानान्नभोजकः। भगजीवी वार्द्धुषिको विषहीनोयथोरगः।
यः कन्याविक्रयी विप्रोयो हरेर्नामविक्रयी। यो विद्याविक्रयीभूप विषहीनो यथोरगः।
सूर्य्योदयेचद्विर्भोजी मत्स्यभोजीचयोद्विजः। शिलापूजादिरहितो विषहीनोयथोरगः॥
इत्युक्त्वाचमुनिश्रेष्ठःसर्वं पूजाविधिक्रमम्। तामुवाच च सावित्र्या ध्यानादिकमभीप्सितम्

दत्त्वा सर्वं नृपेन्द्राय प्रययौ स्वालयं मुनीः। राजा सम्पूज्य सावित्रीं ददर्श वरमाप च

नारद उवाच।

किं वा ध्यानञ्च सावित्र्याः किं वा पूजाविधानकम्।

स्तोत्रमन्त्रञ्च किं दत्त्वा प्रययौ स पराशरः ॥ ४० ॥

नृपः केन विधानेन संपूज्य श्रुतिमातरम्। वरञ्च किं वा संप्राप वद सोऽश्वपतिर्नृपः॥

नारायण उवाच।

ज्यैष्ठे कृष्णत्रयोदश्यां शुद्धे कालेच संयतः। व्रतमेव चतुर्दश्यां व्रती भक्त्या समाचरेत्।

व्रतं चतुर्दशाब्दञ्च द्विसप्तफलसंयुतम्। दत्त्वा द्विसप्तनैवेद्यं पुष्पधूपादिकं तथा ॥ ४३॥

वस्त्रं यज्ञोपवीतञ्च भोज्यञ्च विधिपूर्वकम्। संस्थाप्य मङ्गलघटं फलशाखासमन्वितम्।

गणेशञ्च दिनेशञ्च वह्निं विष्णुं शिवं शिवाम्। संपूज्य पूजयेदिष्टं घटे आवाहिते मुने ॥

शृणुध्यानञ्चसावित्र्याश्चोक्तंमाध्यन्दिनेचयत्। स्तोत्रंपूजाविधानञ्चमन्त्रञ्चसर्वकामदम्।

तप्तकाञ्चनवर्णाभां ज्वलन्तीं ब्रह्मतेजसा। ग्रीष्ममध्याह्नमार्त्तण्डसहस्रसमसुप्रभाम् ॥४७

ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां रत्नभूषणभूषिताम्। वह्निशुद्धांशुकाधानां भक्तानुग्रहकातराम् ॥४८

सुखदांमुक्तिदांशान्तां कान्ताञ्चजगतांविधेः। सर्वसम्पत्स्वरूपाञ्चप्रदात्रींसर्वसम्पदाम्।

वेदाधिष्ठातृदेवीञ्च वेदशास्त्रस्वरूपिणीम्। वेदबीजस्वरूपाञ्च भजे त्वां वेदमातरम्।५०।

ध्यात्वाध्यानेनचानेन दत्त्वा पुष्पंस्वमूर्द्धनि। पुनर्ध्यात्वाघटे भक्त्या देवीमावहयेद्व्रती।

दत्त्वा षोड़शोपचारं वेदोक्तमन्त्रपूर्वकम्। सम्पूज्य स्तुत्वा प्रणमेदेवं देवीं विधानतः ॥

आसनं पाद्यमर्घ्यञ्च स्नानीयञ्चानुलेपनम्। धूपं दीपञ्च नैवेद्यं ताम्बूलं शीतलं जलम् ॥

वसनं भूषणं माल्यं गन्धमाचमनीयकम्। मनोहरं सुतल्पञ्च देयान्येतानि षोड़शः ।५४।

दारुसारविकारञ्च हेमादिनिर्मितञ्चवा। देवाधारं पुण्यदञ्च मया नित्यं निवेदितम्।

तीर्थोदकञ्च पाद्यञ्च पुण्यदं प्रीतिदंमहत्। पूजाङ्गभूतं शुद्धञ्च मया भक्त्यानिवेदितम्॥

पवित्ररूपमर्घ्यञ्च दूर्वापुष्पाक्षतान्वितम्। पुण्यदं शङ्खतोयाक्तं मया तुभ्यं निवेदितम् ॥

सुगन्धिधात्रीतैलञ्च देहसौन्दर्य्यकारणम्। मयानिवेदितंभक्त्या स्नानीयंप्रतिगृह्यताम् ॥

मलयाचलसम्भूतं देहशोभाविवर्द्धनम्। सुगन्धियुक्तं सुखदं मया तुभ्यं निवेदितम् ॥

गन्धद्रव्योद्भवःपुण्यः प्रीतिदोदिव्यगन्धदः। मयानिवेदितो भक्त्याधूपोऽयं प्रतिगृह्यताम्
जगतां दर्शनीयञ्च दर्शनं दीप्तिकारणम्। अन्धकारध्वंसवीजं मया तुभ्यं निवेदितम्॥
तुष्टिदं पुष्टिदञ्चैव प्रीतिदं क्षुद्विनाशनम्। पुण्यदं स्वादुरूपञ्च नैवेद्यं प्रति गृह्यताम्॥
ताम्बूलञ्च वरं रम्यं कर्पूरादिसुवासितम्। तुष्टिदं पुष्टिदञ्चैव मया भक्त्या निवेदितम्।
सुशीतलं वासितञ्च पिपासानाशकारणम्। जगतां जीवरूपञ्च जीवनं प्रतिगृह्यताम्॥
देहशोभास्वरूपञ्च सभाशोभाविवर्द्धनम्। कार्पासजञ्च कृमिजं वसनं प्रतिगृह्यताम्॥
काञ्चनादिविनिर्माणं श्रीयुक्तं श्रीकरं सदा। सुखदं पुण्यदं चैव भूषणं प्रतिगृह्यताम्॥
नानापुष्पविनिर्माणं बहुभाससमन्वितम्। प्रीतिदं पुण्यदञ्चैव माल्यञ्च प्रतिगृह्यताम्।
सर्वमङ्गलरूपश्च सर्वमङ्गलदो वरः। पुण्यप्रदश्च गन्धाढ्यो गन्धश्च प्रतिगृह्यताम्॥६८।
शुद्धं शुद्धिप्रदञ्चैव शुद्धानां प्रीतिदं महत्। रम्यमाचमनीयञ्च मया दत्तं प्रगृह्यताम्॥
रत्नसारादिनिर्माणं पुष्पचन्दनसंयुतम्। सुखदं पुण्यदञ्चैव सुतल्पं प्रतिगृह्यताम्॥७०।
नानावृक्षसमुद्भूतं नानारूपसमन्वितम्। फलस्वरूपं फलदं फलञ्च प्रतिगृह्यताम्॥७१।
सिन्दूरञ्च वरं रम्यं भालशोभाविवर्द्धनम्। पूरणं भूषणानाञ्च सिन्दूरं प्रतिगृह्यताम्॥
विशुद्धिग्रन्थिसंयुक्तंपुण्यसूत्रविनिर्मितम्। पवित्रं वेदमन्त्रेण यज्ञसूत्रञ्च गृह्यताम्॥७२
द्रव्याण्येतानिमूलेनदत्त्वास्तोत्रंपठेत् सुधीः। ततः प्रणम्य विप्रायव्रतीदद्याच्चदक्षिणाम्॥
सावित्रीति चतुर्थ्यन्तं वह्निजायान्तमेव च। लक्ष्मीमायाकामपूर्वं मन्त्रमष्टाक्षरं विदुः॥
मध्यन्दिनोक्तं स्तोत्रश्च सर्ववाञ्छाफलप्रदम्। विप्रजीवनरूपञ्च निवोध कथयामि ते॥
कृष्णेन दत्ता सावित्री गोलोके ब्रह्मणे पुरा। न याति सा तेन सार्द्धं ब्रह्मलोकञ्च नारद॥
ब्रह्मा कृष्णाज्ञया भक्त्या तुष्टाव वेदमातरम्। तदा सा परितुष्टा च ब्रह्माणञ्चकमे सती॥

ब्रह्मोवाच।

नारायणस्वरूपे च नारायणि सनातनि। नारायणात् समुद्भूते प्रसन्ना भव सुन्दरि॥
तेजःस्वरूपे परमे परमानन्दरूपिणि। द्विजातीनां जातिरूपे प्रसन्ना भव सुन्दरि॥८०॥
नित्ये नित्यप्रिये देवि नित्यानन्दस्वरूपिणि। सर्वमङ्गलरूपेण प्रसन्ना भव सुन्दरि॥८१
सर्वस्वरूपे विप्राणां मन्त्रसारे परात्परे। सुखदे मोक्षदे देवि प्रसन्ना भव सुन्दरि॥८२।

विप्र पापेन्ध दाहाय ज्वलदग्निशिखोपमे । ब्रह्मतेजःप्रदे देवि प्रसन्ना भव सुन्दरि ।८३।
कायेन मनसावाचा यत्पापं कुरुतेद्विजः । तत्ते स्मरणमात्रेण भस्मीभूतं भविष्यति ॥
इत्युक्त्वाजगतां धातातत्र तस्थौच संसदि । सावित्रीब्रह्मणासार्द्धं ब्रह्मलोकंजगामसा ।
अनेन स्तवराजेन संस्तूयाश्वपतिर्नृपः । ददर्श ताञ्च सावित्रीं वरं प्राप मनोगतम् ॥८६।
स्तवराजमिदंपुण्यं त्रिसन्ध्यायाञ्चयः पठेत् । पाठेचतुर्णांवेदानां यत्फलंतल्लभेद्ध्रुवम् ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायण-नारदसंवादे सावित्र्युपाख्याने सावित्रीस्तोत्रप्रकरणं नाम त्रयोविंशतितमोऽध्यायः ॥

चतुर्विंशोऽध्यायः

द्वितीयसावित्र्या जन्मविवाहाद्युपाख्यानम् ।

नारायण उवाच ।

स्तुत्वाऽनेन सोऽश्वपतिः संपूज्य विधिपूर्वकम् । ददर्शतत्रतां देवीं सहस्रार्कसमप्रभाम् ।
उवाचसातंराजानंप्रसन्ना सस्मितासती । यथामातास्वपुत्रञ्च द्योतयन्ती दिशस्त्विषा ॥

सावित्र्युवाच ।

जानामिते महाराज यत्तेमनसिवर्त्तते । वाञ्छितं तव पत्न्याश्च सर्वं दास्यामिनिश्चितम्
साध्वी कन्याभिलाषञ्च करोति तव कामिनी । त्वंप्रार्थयसि पुत्रञ्च भविष्यतिक्रमेणते ।
इत्युक्त्वा सा महादेवी ब्रह्मलोकं जगाम ह । राजा जगामस्वगृहंतत्कन्याऽऽदौवभूवह ।
आराधनाच्च सावित्र्यावभूव कमलाकला । सावित्रीति च तन्नाम चकाराश्वपतिर्नृपः ।
कालेन सा वर्द्धमाना वभूव च दिने दिने । रूपयौवनसम्पन्ना शुक्ले चन्द्रकला यथा ॥
सा वरं वरयामास द्युमत्सेनात्मजं तदा । सावित्री च सत्यवन्तं नानागुणसमन्वितम् ।
राजा तस्मै ददौ ताञ्च रत्नभूषणभूषिताम् । स च सार्द्धं यौतुकेन तां गृहीत्वा गृहं ययौ
स च संवत्सरेऽतीते सत्यवान् सत्यविक्रमः । जगाम फलकाष्ठार्थं प्रहर्षं पितुराज्ञया ॥
जगाम तत्र सावित्री तत्पश्चाद्दैवयोगतः । निपत्यवृक्षाद्दैवेन प्राणास्तत्याज सत्यवान् ।

यमस्तज्जीवपुरुषं वृद्धाङ्गुष्ठसमं मुने। गृहीत्वा गमनञ्चक्रे तत्पश्चात् प्रययौ सती॥
पश्चात्तां सुन्दरीं दृष्ट्वा यमः संयमनीपतिः। उवाच मधुरं साध्वीं साधूनां प्रवरो महान्।

यम उवाच।

अहोक्वयासिसावित्रि गृहीत्वा मानुषींतनुम्। यदियास्यासिकान्तेन सार्द्धं देहंतदात्यज
गन्तुं मर्त्योन शक्नोति गृहीत्वा पाञ्चभौतिकम्। देहश्च यमलोकश्च नश्वरंनश्वरः सदा।
भर्त्तुस्ते कालपूर्णश्च बभूव भारते सति। सकर्मफलभोगार्थं सत्यवान् याति मद्गृहम्।
कर्मणाजायते जन्तुः कर्मणैव प्रलीयते। सुखं दुःखं भयं शोकं कर्मणैव प्रपद्यते॥१७॥
कर्मणेन्द्रो भवेज्जीवो ब्रह्मपुत्रः स्वकर्मणा। स्वकर्मणा हरेर्दासो जन्मादि रहितोभवेत्।
स्वकर्मणासर्वसिद्धिममरत्वंलभेद्ध्रुवम्।लभेत्स्वकर्मणाविष्णोःसालोक्यादिचतुष्टयम्।
कर्मणा ब्राह्मणत्वञ्च मुक्तित्वञ्च स्वकर्मणा। सुरत्वञ्च मनुत्वञ्च राजेन्द्रत्वं लभेन्नरः॥
कर्मणाच मुनीन्द्रत्वं तपस्वित्वञ्च कर्मणा। कर्मणा क्षत्रियत्वञ्च वैश्यत्वञ्च स्वकर्मणा।

कर्मणा चैव शूद्रत्वमन्त्यजत्वं स्वकर्मणा॥ २२॥

स्वकर्मणाचम्लेच्छत्वं लभते नात्रसंशयः। स्वकर्मणाजङ्गमत्वं स्थावरत्वं स्वकर्मणा॥
स्वकर्मणाच शैलत्वं वृक्षत्वञ्च स्वकर्मणा। स्वकर्मणा पशुत्वञ्चपक्षित्वञ्च स्वकर्मणा।
स्वकर्मणाक्षुद्रजन्तुः कृमित्वञ्चस्वकर्मणा। स्वकर्मणा च सर्पत्वं गन्धर्वत्वं स्वकर्मणा
स्वकर्मणाराक्षसत्वं किन्नरत्वंस्वकर्मणा। स्वकर्मणाचयक्षत्वं कुष्माण्डत्वंस्वकर्मणा।
स्वकर्मणाच प्रेतत्वं वैतालत्वं स्वकर्मणा। भूतत्वञ्चपिशाचत्वं डाकिनीत्वं स्वकर्मणा।
दैत्यत्वंदानवत्वञ्च असुरत्वंस्वकर्मणा। कर्मणापुण्यवान् जीवो महापापीस्वकर्मणा॥
कर्मणासुन्दरोऽरोगीमहारोगीचकर्मणा। कर्मणाचान्धःकाणश्च कुत्सितश्चस्वकर्मणा।
कर्मणानरकंयान्ति जीवाःस्वर्गंस्वकर्मणा। कर्मणाशक्रलोकञ्च सूर्य्यलोकं स्वकर्मणा॥
कर्मणा चन्द्रलोकञ्च वह्निलोकं स्वकर्मणा। कर्मणा वायुलोकञ्च कर्मणा वरुणालयम्।
तथावै कुवेरलोकञ्च नरोयाति स्वकर्मणा। कर्मणा ध्रुवलोकञ्च शिवलोकं स्वकर्मणा।
याति नक्षत्रलोकञ्च सत्यलोकं स्वकर्मणा। जनलोकं तपोलोकं महर्लोकं स्वकर्मणा॥
स्वकर्मणाच पातालं ब्रह्मलोकं स्वकर्मणा। कर्मणा भारतं पुण्यं सर्वेभ्यश्च वरम्॥

कर्मणायाति वैकुण्ठंगोलोकञ्च निरामयम् । कर्मणा चिरजीवी च क्षणायुश्चस्वकर्मणा
कर्मणाकोटिकल्पायुः क्षीणायुश्चस्वकर्मणा । जीवसञ्चारमात्रायुर्गर्भे मृत्युःस्वकर्मणा ॥
इत्येवं कथितंसर्वं मयातत्त्वञ्चसुन्दरि । कर्मणाते मृतो भर्त्ता गच्छ वत्से यथासुखम् ॥
इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायण-नारदसंवादे कर्मविपाके कर्मणः सर्वहेतुप्रदर्शनं नाम चतुर्विंशतितमोऽध्यायः ।

पञ्चविंशोऽध्यायः

कर्मविपाके सावित्री प्रश्नः ।

श्रीनारायण उवाच ।

यमस्य वचनं श्रुत्वा सावित्री च पतिव्रता । तुष्टाव परया भक्त्या तमुवाच मनस्विनी ॥

सावित्र्युवाच ।

किंकर्म्मवाशुभं धर्म्मराजकिंवाऽशुभंनृणाम् । कर्म्म निर्मुलयन्त्येव केनवासाधवोजनाः ।
कर्म्मणां वीजरूपःकः कोवा कर्म्मफलप्रदः । किं कर्म्म उद्भवेत् केनकोवा तद्धेतुरेवच ॥
कोवाकर्म्मफलंभुङ्क्ते कोवानिर्लिप्त एवच । कोवादेहीकश्चदेहः कोवात्र कर्म्मकारक ॥

किं विज्ञानं मनोवुद्धिः के वा प्राणाः शरीरिणाम् ।
कानीन्द्रियाणि किं तेषां लक्षणं देवताश्च काः ॥ ५ ॥
भोक्ता भोजयिता कोवा को भोगः काच निष्कृतिः ।
को जीवः परमात्मा कः तन्मे व्याख्यातु मर्हसि ॥ ६ ॥

यम उवाच ।

वेदप्रविहितं कर्म्मं तन्मन्ये मङ्गलं परम् । अवैदिकन्तु यत् कर्म्म तदेवाशुभमेव च ॥ ७ ॥
अहैतुकी विष्णुसेवा सङ्कल्परहिता सताम् । कर्म्मनिर्म्मूलरूपा च सा एव हरिभक्तिदा ॥
हरिभक्तो नरो यश्च सच मुक्तः श्रुतौ श्रुतम् । जन्ममृत्युजराव्याधिशोकभीतिविवर्जितः

मुक्तिश्च द्विविधा साध्वि ! श्रुत्युक्ता सर्वसम्मता ।
निर्वाणपददात्री च हरिभक्तिप्रदा नृणाम् ॥ १० ॥

हरिभक्तिस्वरूपाञ्चमुक्तिंवाञ्छन्तिवैष्णवाः । अन्ये निर्वाणरूपाञ्चमुक्तिमिच्छन्तिसाधवः
कर्मणोवीजरूपश्च सन्ततं तत् फलप्रदः । कर्मरूपश्च भगवान् श्रीकृष्णः प्रकृतेः परः ॥
सोऽपि तद्धेतुरूपश्च कर्म तेन भवेत्सति । जीवः कर्मफलं भुङ्क्ते आत्मा निर्लिप्त एवच
आत्मनः प्रतिविम्बश्च देही जीवः स एवच । पाञ्चभौतिकरूपश्च देहो नश्वरएव च ॥
पृथिवीवायुराकाशो जलं तेजस्तथैवच । एतानि सूत्ररूपाणि सृष्टिः सृष्टिविधौ हरेः ॥

कर्त्ता भोक्ता च देही च स्वात्मा भोजयिता सदा ।
भोगो विभवभेदश्च निष्कृतिर्मुक्तिरेव च ॥ १६ ॥

सदसद्भेदवीजञ्च ज्ञानं नानाविधं भवेत् । विषयाणां विभागानां भेदवीजञ्च कीर्त्तिदम् ।
वुद्धिर्विवेचनारूपा सा ज्ञानदीपनी श्रुतौ । वायुभेदाश्च प्राणाश्च वलरूपाश्च देहिनाम् ॥
इन्द्रियाणाञ्च प्रवरम् ईश्वराणां समूहकम् । प्रेरकं कर्मणाञ्चैव दुर्निवार्य्यञ्च देहिनाम् ॥

अनिरूप्यमदृश्यञ्च ज्ञानभेदं मनः स्मृतम् ॥ २० ॥

लोचनं श्रवणं घ्राणं त्वग्जिह्वादिकमिन्द्रियम् । अङ्गिनामङ्गरूपश्च प्रेरकं सर्वकर्मणाम् ॥
रिपुरूपं मित्ररूपं सुखदं दुःखदं सदा । सूर्य्यो वायुश्च पृथिवी वाण्याद्या देवताःस्मृताः
प्राण देहादिभृत् यो हि स जीवः परिकीर्त्तितः । परमात्मा परंब्रह्म निर्गुणः प्रकृतेः परः
कारणं कारणानाञ्च श्रीकृष्णो भगवान् स्वयम् । इत्येवं कथितं सर्वंमयापृष्टंयथागमम्

ज्ञानिनां ज्ञानरूपञ्च गच्छ वत्से यथा सुखम् ॥ २५ ॥

सावित्र्युवाच ।

त्यक्त्वा क्व यामि कान्तं वा त्वां वा ज्ञानार्णवं वुधम् ।
यद् यत् करोमि प्रश्नञ्च तद्भवान् वक्तुमर्हसि ॥ २६ ॥

कां कां योनिंयाति जीवःकर्मणा केन वा यम । केन वा कर्मणा स्वर्गं केन वा नरकंपितः
केन वा कर्मणा मुक्तिः केन भक्तिर्भवेद्धरेः । केन वा कर्मणा रोगी चारोगी केन कर्मणा
केन वा दीर्घजीवी च केनाल्पायुश्च कर्मणः । केन वा कर्मणा दुःखी केनवाकर्मणा सुखी

अङ्गहीनश्च काणश्च बधिरः केन कर्मणा । अन्धो वा कृपणो वापि प्रमत्तः केन कर्मणा
क्षिप्तोऽतिलुब्धकश्चैव केन वा नरघातकः । केन सिद्धिमवाप्नोति सालोक्यादिचतुष्टयम्
केन वा ब्राह्मणत्वञ्च तपस्वित्वञ्च केन वा । स्वर्गभोगादिकं केन वैकुण्ठं केन कर्मणा
गोलोकं केन वा ब्रह्मन् सर्वोत्कृष्टं निरामयम् । नरकं वा कतिविधंकिंसंख्यंनामकिञ्चवा
को वा कं नरकं याति कियन्तंतेषु तिष्ठति । पापिनां कर्मणा केनकोवाव्याधिःप्रजायते
यद्यदस्ति मया पृष्टं तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ ३५ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे सावित्र्युपाख्याने यमसावित्रीसंवादे कर्मविपाके सावित्रीप्रश्नो नाम पञ्चविंशतितमोऽध्यायः ।

षड्विंशोऽध्यायः

कर्मविपाके कर्मानुरूपस्थानगमनम् ।

नारायण उवाच ।

सावित्रीवचनं श्रुत्वा जगाम विस्मयं यमः । प्रहस्य वक्तुमारेभे कर्मपाकञ्च जीविनाम्

यम उवाच ।

कन्या द्वादशवर्षीया वत्से त्वं वयसाधुना । ज्ञानन्ते पूर्वविदुषां योगिनां ज्ञानिनां परम्
सावित्रीवरदानेन त्वं सावित्रीकला सती । प्राप्ता पुरा भूभृता च तपसा तत्समा शुभे
यथा श्रीः श्रीपते क्रोड़े भवानी च भवोरसि । यथाराधाचश्रीकृष्णेसावित्री ब्रह्मवक्षसि
धर्मोरसि यथा मूर्त्तिः शतरूपा मनौ यथा । कर्दमे देवहूती च वशिष्ठेऽरुन्धती यथा ॥
अदितीकश्यपे चापि यथाहल्या च गौतमे । यथा शची महेन्द्रे च यथा चन्द्रेचरोहिणी
यथा रतिः कामदेवे यथा स्वाहा हुताशने । यथा स्वधा च पितृषु यथा संज्ञादिवाकरे
वरुणानी च वरुणे यज्ञे च दक्षिणा यथा । यथा धरा वराहे च देवसेना च कार्त्तिके ॥

सौभाग्या सुप्रिया त्वञ्च भव सत्यवति प्रिये । इति तुभ्यं वरं दत्तमपरञ्च यदीप्सितम्
वृणु देवि महाभागे सर्वं दास्यामि निश्चितम् ।

सावित्र्युवाच ।

सत्यवदौरसेनैव पुत्राणां शतकं मम । भविष्यति महाभाग वरमेतद् मदीप्सितम् ॥१०॥
मत्पितुः पुत्रशतकं श्वशुरस्य च चक्षुषी । राज्यलाभो भवत्वेव वरमेवं मदीप्सितम् ॥
अन्ते सत्यवता सार्द्धं यास्यामि हरिमन्दिरम् । समतीते लक्षवर्षे देहीमं मे जगत्प्रभो ॥
जीवकर्मविपाकञ्च श्रोतुं कौतूहलञ्च मे । विश्वविस्तारवीजञ्च तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥

यम उवाच ।

भविष्यति महासाध्वि सर्वं मानसिकं तव । जीवकर्मविपाकञ्च कथयामि निशामय ॥
शुभानाभशुभानाञ्च कर्म्मणां जन्म भारते । पुण्यक्षेत्रेऽत्र सर्वत्र नान्यत्र भुञ्जते जनाः ॥
सुरादैत्या दानवाश्च गन्धर्वा राक्षसादयः । नरश्च कर्म्मजनको न सर्वेसमजीविनः ॥
विशिष्टजीविनः कर्म्म भुञ्जते सर्वयोनिषु । विशेषतो मानवाश्च भ्रमन्ति सर्वयोनिषु ॥
शुभाशुभं भुञ्जतेच कर्म पूर्वार्जितं परम् । शुभेन कर्मणा यान्ति ते स्वर्गादिकमेव च ॥
कर्म्मणा चाशुभेनैव भ्रमन्ति नरकेषुच । कर्म्म निर्मूलने मुक्तिःसा चोक्ता द्विविधामता ॥
निर्वाणरूपासेवाच कृष्णस्य परमात्मनः । रोगी अकर्म्मणा जीवश्चारोगी शुभकर्म्मणा ॥
दीर्घजीवी च क्षीणायुः सुखी दुःखी च निश्चितम् ।
अन्धादयश्चाङ्गहीनाः कुत्सितेन च कर्मणा ॥ २१ ॥
सिद्ध्यादिकमवाप्नोति सर्वोत्कृष्टेनकर्म्मणा । सामान्यंकथितं सर्वं विशेषं श्रृणुसुन्दरि ॥
सुदुर्लभं सुभोग्यञ्च पुराणे च श्रुतिष्वपि ॥ २३ ॥
दुर्लभा मानवीजातिः सर्वजातिषु भारते । सर्वाभ्योब्राह्मणः श्रेष्ठः प्रशस्तःसर्वकर्म्मसु ।
विष्णुभक्तोद्विजश्चैवगरीयान् भारतेततः । निष्कामश्च सकामश्च वैष्णवोद्विविधःसति ।
सकामश्च प्रधानश्च निष्कामो भक्तएवच । कर्मभोगी सकामश्च निष्कामो निरुपद्रवः ।
स याति देहं त्यक्त्वा च पदं विष्णोर्निरामयम् ।
पुनरागमनं नास्ति तेषां निष्कामिनां सति ॥ २६ ॥

येसेवन्तेचद्विभुजं कृष्णमात्मानमीश्वरम्। गोलोकंयान्तिते भक्ता दिव्यरूपविधारिणः।
येच नारायणं भक्ताः सेवन्ते च चतुर्भुजम्। वैकुण्ठं यान्तिते सर्वे दिव्यरूपविधारिणः।
सकामिनो वैष्णवाश्च गत्वा वैकुण्ठमेव च। भारतं पुनरायान्ति तेषां जन्म द्विजातिषु।
कालेनतेचनिष्कामाभविष्यन्तिक्रमेणच। भक्तिश्चनिर्म्मलांवुद्धिंतेभ्योदास्यतिनिश्चितम्।
ब्राह्मणाद्वैष्णवादन्ये सकामाः सर्वजन्मसु। नतेषां निर्म्मला वुद्धिर्विष्णुभक्तिविवर्जिता।
तीर्थाश्रिता द्विजायेच तपस्यानिरताः सति। येयान्ति ब्रह्मलोकञ्च पुनरायान्तिभारतम्।
स्वधर्म्मनिरता विप्राः सूर्य्यभक्ताश्च भारते। ब्रजन्ति सूर्य्यलोकंते पुनरायान्ति भारतम्।
स्वधर्म्मनिरताविप्राःशैवाःशाक्ताश्चगाणपाः। तेयान्तिशिवलोकञ्चपुनरायान्तिभारतम्॥
येविप्रा अन्यदेवेष्टाः स्वधर्म्मनिरताः सति। तेगत्वा शक्रलोकञ्च पुनरायान्ति भारतम्।
हरिभक्ताश्चनिष्कामाः स्वधर्म्मरहिताद्विजाः। तेऽपियान्ति हरेर्लोकंक्रमाद्भक्तिवलादहो।
स्वधर्म्मरहिताविप्रा देवान्यसेविनः सदा। भ्रष्टाचाराश्चवालाश्चते यान्ति नरकंध्रुवम्॥
स्वधर्म्मनिरताश्चैवं वर्णाश्चत्वार एव च। भवन्त्येव शुभस्यैव कर्म्मणःफलभागिनः॥
स्वधर्म्मरहितास्ते च नरकं यान्तिहि ध्रुवम्। भारतेचभवन्त्येव कर्म्मणः फलभागिनः॥
स्वधर्म्मनिरता विप्राः स्वधर्म्मनिरताय च। कन्यांददाति विप्राय चन्द्रलोकं ब्रजन्तिते।
वसन्ति तत्र ते साध्वि यावदिन्द्राश्चतुर्दश। सालङ्कृताया दानेन द्विगुणं फलमुच्यते।

सकामा यान्ति तल्लोकं न निष्कामाश्च वैष्णवाः।
ते प्रयान्ति विष्णुलोकं फलसन्धानवर्जिताः॥ ४३॥

गव्यश्चरजतं भार्य्यांवस्त्रं शस्यंफलं जलम्। ये ददत्येव विप्रेभ्यस्तल्लोकं हि ब्रजन्तिच॥
वसन्ति ते च तल्लोकं यावन्मन्वन्तरं सति। कालञ्च सुचिरं वासं कुर्वन्ति तत्रतेजनाः।
यो ददातिसुवर्णञ्च गाञ्च ताम्रादिकंसति। ते यान्तिसूर्य्यलोकञ्च शुचये ब्राह्मणाय च॥
वसन्ति तत्रते लोके वर्षाणमयुतं सति। विपुले च चिरं वासं कुर्वन्ति च निरामयाः॥
ददाति भूमिंविप्रेभ्योधान्यानिविपुलानिच। सयातिविष्णुलोकञ्च श्वेतद्वीपमनोहरम्॥
तत्रैव निवसत्येव यावच्चन्द्रदिवाकरौ। विपुलं विपुले वासं करोतिपुण्यवान्सति॥४६

गृहं ददाति विप्राय ये जना भक्तिपूर्वकम्। ते यान्ति सुरलोकञ्च चिरंतत्रभवन्तिते॥

गृहरेणुप्रमाणाब्दं दानं पुण्यदिने यदि । विपुलं विपुले वासं कुर्वन्ति मानवाःसति ॥५१
यस्मै यस्मै च देवाय यो ददाति गृहं नरः । स याति तस्य लोकञ्च रेणुमानाब्दमेवच॥
सौधे चतुर्गुणं पुण्यं पूर्त्ते शतगुणं फलम् । प्रकृष्टेऽष्टगुणं तस्मादित्याह कमलोद्भवः ॥
यो ददाति तड़ागञ्च सर्वभूताय भारते । स याति जनलोकञ्च वर्षाणामयुतं सति ॥५४
वाप्यां फलं शतगुणं प्राप्नोति मानवस्ततः । तथा सेतुप्रदानेन तड़ागस्य फलं लभेत् ॥
धनुश्चतुःसहस्रेण दैर्घ्यें मानेन निश्चितम् । न्यूना वा तावतीप्रस्थेसावापीपरिकीर्त्तिता ॥
दशवापीसमा कन्या यदि पात्रे प्रदीयते । फलं ददाति द्विगुणंयदिसालङ्कृताभवेत् ॥
तत्फलञ्च तड़ागे च पङ्कोद्धारेणतत् फलम् । वाप्याश्चपङ्कोद्धारेणवापीतुल्यफलंलभेत् ॥
अश्वत्थवृक्षमारोप्य प्रतिष्ठाञ्च करोति यः । स याति तपसोलोकंवर्षाणामयुतंपरम् ॥
पुष्पोद्यानं यो ददाति सावित्रि सर्वभूतये । स वसेद् ध्रुवलोकेचवर्षाणामयुतं ध्रुवम् ॥
यो ददातिविमानञ्चविष्णवेभारतेसति । विष्णुलोकेवसेत्सोऽपियावन्मन्वन्तरं परम् ॥
चित्रयुक्ते च विपुले फलं तस्य चतुर्गुणम् । रथार्द्धं शिविकादाने फलमेवलभेद्ध्रुवम् ॥
यो ददातिभक्तियुक्तोहरयेदोलमन्दिरम् । विष्णुलोकेवसेत्सोऽपियावन्मन्वन्तरं परम् ॥
राजमार्गं सौधयुक्तं यः करोति पतिव्रते । वर्षाणामयुतंसोऽपि शक्रलोकेमहीयते ॥६४
ब्राह्मणेभ्योऽपि देवेभ्यो दाने समफलं लभेत् । यच्चदत्तंहितद्भोक्तुर्नदत्तं नोपतिष्ठते ॥६५
भुङ्क्त्वा स्वर्गादिकं सौख्यं पुरायान्तिच भारते । लभेद्विप्रकुलेष्वेवक्रमेणैवोत्तमादिषु ॥
भारते पुण्यवान् विप्रोभुंक्त्वास्वर्गादिकंपरम् । पुनःसोऽपिभवेद्विप्रःनपुनःक्षत्रियादयः ॥
क्षत्रियो वापि वैश्यो वा कल्पकोटिशतेनच । तपसाब्राह्मणत्वञ्चनप्राप्नोतिश्रुतौश्रुतम्॥
स्वधर्मरहिता विप्रानानायोनिंव्रजन्तिच । भुक्त्वाचकर्मभोगञ्च विप्रयोनिं लभेत् पुनः ॥
नाभुक्तं क्षीयते कर्म्म कल्पकोटिशतैरपि । अवश्यमेव भोक्तव्यंकल्पकोटिशतैरपि ॥७०
अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म्म शुभाशुभम् । देवतीर्थे सहायेनकायव्यूहेन शुध्यति ॥७१
एतत्ते कथितं सर्वं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ ७२ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे सावित्र्युपाख्याने कर्म्मविपाके कर्म्मानुरूपदानफलं नाम षड्विंशतितमोऽध्यायः ।

सप्तविंशोऽध्यायः

शुभकर्मविपाकप्रकथनम् ।

सावित्र्युवाच ।

प्रयान्ति स्वर्गमन्यञ्च येन येनैव कर्म्मणा । मानवाः पुण्यवन्तश्चतन्मेव्याख्यातुमर्हसि ॥

यम उवाच ।

अन्नदानञ्च विप्राय यः करोति च भारते । अन्नप्रमाणवर्षञ्च शक्रलोके महीयते ॥२॥

अन्नदानात् परं दानं न भूतं न भविष्यति ।

नात्र पात्रपरीक्षा स्यान्न कालनियमः क्वचित् ॥३॥

देवेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो वा ददाति चासनं यदि ।

महीयते वह्निलोके वर्षाणामयुतं ध्रुवम् ॥ ४ ॥

यो ददाति च विप्राय दिव्यां धेनुं पयस्विनीम् । तल्लोममानवर्षञ्चवैकुण्ठेच महीयते ॥५

चतुर्गुणं पुण्यदिने तीर्थे शतगुणं फलम् । दानं नारायणक्षेत्रेफलंकोटिगुणं भवेत् ॥६॥

गां यो ददाति विप्राय भारते भक्तिपूर्वकम् । वर्षाणामयुतञ्चैव चन्द्रलोके महीयते ॥७

यश्च पयस्विनीदानं करोति ब्राह्मणाय च । तल्लोनमाववर्षञ्च वैकुण्ठे च महीयते ॥ ८॥

यो ददाति ब्राह्मणाय शालग्रामं सवस्त्रकम् । महीयते स वैकुण्ठे यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥

यो ददाति ब्राह्मणाय छत्रञ्च सुमनोहरम् । वर्षाणामयुतं सोऽपि मोदते वरुणालये ॥

विप्राय पादुकायुग्मं यो ददाति च भारते । महीयते वायुलोके वर्षाणामयुतंसति ॥११॥

यो ददाति ब्राह्मणाय शय्यां दिव्यां मनोहराम् । महीयतेचन्द्रलोकेयावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥

यो ददाति प्रदीपञ्च देवाय ब्राह्मणाय च । यावन्मन्वन्तरं सोऽपि ब्रह्मलोके महीयते ॥

सम्प्राप्य मानवीं योनिं चक्षुष्मांश्च भवेद्ध्रुवम् । नयातियमलोकञ्चतेनपुण्येन सुन्दरि ॥

करोति गजदानञ्च यो हि विप्राय भारते । यावदिन्द्रादिदेवस्यलोकेचार्द्धासने वसेत् ॥

भारते योऽश्वदानञ्च करोति ब्राह्मणाय च । मोदते वारुणे लोके यावदिन्द्राश्चतुर्दश: ॥

प्रकृष्टां शिविकां यो हि ददाति ब्राह्मणाय च । महीयतेविष्णुलोकेयावन्मन्वन्तरंसति ॥

योददाति च विप्राय व्यजनं श्वेतचामरम् । महीयते वायुलोके वर्षाणामयुतं ध्रुवम् ॥
धान्याचलं यो ददाति ब्राह्मणाय च भारते । सचधान्यप्रमाणाब्दं विष्णुलोकेमहीयते ॥
ततः स्वयोनिं संप्राप्य चिरजीवीभवेत्सुखी । दातागृहीतातौद्वौचध्रुवंवैकुण्ठगामिनौ ॥
सततं श्रीहरेर्नाम भारते यो जपेन्नरः । स एव चिरजीवी च ततो मृत्युः पलायते॥२१॥
यो नरो भारते वर्षे दोलनं कारयेद्धरेः । पूर्णिमारजनीशेषे जीवन्मुक्तो भवेन्नरः ॥२२॥
इहलोके सुखं भुक्त्वा यात्यन्ते विष्णुमन्दिरम् । निश्चितं निवसेत्तत्रशतमन्वन्तरावधि॥
फलमुत्तरफल्गुन्यां ततोऽपि द्विगुणं भवेत् । कल्पान्तजीवीसभवेदित्याहकमलोद्भवः॥
तिलदानं ब्राह्मणाय यः करोति च भारते । तिलप्रमाणवर्षञ्च मोदतेविष्णुमन्दिरे ॥२५
ततः स्वयोनिं संप्राप्य चिरजीवी भवेत्सुखी । ताम्रपात्रस्थदानेनद्विगुणञ्चफलंलभेत्॥
सालङ्कृताञ्चभोग्याञ्चसवस्त्रांसुन्दरींप्रियाम् । योददातिब्राह्मणायभारतेचपतिव्रताम्॥
महीयते चन्द्रलोके यावदिन्द्राश्चतुर्दश । तत्र स्वर्वेश्यया सार्द्धंमोदतेच दिवानिशम्॥
ततो गन्धर्वलोके च वर्षाणामयुतं सति । दिवानिशं कौतुकेन चोर्वश्या सह मोदते॥

ततो जन्मसहस्रञ्च प्राप्नोति सुन्दरीं प्रियाम् ।
सतीं सौभाग्ययुक्ताञ्च कोमलां प्रियवादिनीम् ॥३०॥

ददाति सफलं वृक्षं ब्राह्मणाय च यो नरः । फलप्रमाणवर्षञ्च शक्रलोके महीयते ॥३१॥
पुनः स्वयोनिं संप्राप्य लभते सुतमुत्तमम् । सफलानाञ्च वृक्षाणांसहस्रञ्चप्रशंसितम्॥
केवलं फलदानञ्च ब्राह्मणाय ददाति यः । सुचिरं स्वर्गवासञ्च कृत्वायाति च भारतम्।
नानाद्रव्यसमायुक्तं नानाशस्यसमन्वितम् । ददातियश्चविप्रायभारतेविपुलं गृहम् ॥३४॥
कुवेरलोके वसति स च मन्वन्तरावधि । ततः स्वयोनिं संप्राप्यमहांश्चधनवान्भवेत्॥
यो जनः शस्यसंयुक्तां भूमिञ्चरुचिरांसति । ददातिभक्त्याविप्रायपुण्यक्षेत्रेचवा सति॥
महीयतेसवैकुण्ठे मन्वन्तरशतं ध्रुवम् । पुनः स्वयोनिं संप्राप्य महांश्चभूमिवान्भवेत्॥
तं न त्यजति भूमिश्च जन्मनां शतकं परम् । श्रीमांश्च धनवांश्चैव पुत्रवांश्च प्रजेश्वरः॥
सप्रजञ्च प्रकृष्टञ्च ग्रामं दद्याद्द्विजातये । लक्षमन्वन्तरं चैव वैकुण्ठे स महीयते ॥३६॥
पुनः स्वयोनिं संप्राप्य ग्रामलक्षं लभेद् ध्रुवम् । नजहातिचतंपृथ्वीजन्मनांलक्षमेव च॥

सप्रजं सुप्रकृष्टञ्च पञ्चशस्यतत्समन्वितम् । नानापुष्करिणीवृक्षैः फलभोगसमन्वितम् ॥
नगरं यश्च विप्राय ददाति भारते भुवि । महीयते स वैकुण्ठे दशलक्षेन्द्रकालकम् ॥४२
पुनः स्वयोनिं संप्राप्य राजेन्द्रोभारतेभवेत् । नगराणाञ्च नियुतं लभते नात्र संशयः ॥
धरा तं न जहात्येव जन्मनां नियुतं ध्रुवम् । परमैश्वर्य्यसंयुक्तो भवेदेवमहीतले ॥४४॥
नगराणाञ्च शतकं देशं यो हि द्विजायते । सुप्रकृष्टप्रजायुक्तं ददाति भक्तिपूर्वकम् ॥४५
वापीतड़ागसंयुक्तं नानावृक्षसमन्वितम् । महीयते स वैकुण्ठे कोटिमन्वन्तरावधि ॥
पुनः स्वयोनिं संप्राप्य जम्बुद्वीपपतिर्भवेत् । परमैश्वर्य्यसंयुक्तो यथाशक्रस्तथा भुवि ॥
मही तं न जहात्येव जन्मनां कोटिमेवच । कल्पान्तजीवी स भवेद्राजराजेश्वरोमहान् ॥
स्वाधिकारं समग्रञ्च यो ददाति द्विजातये । चतुर्गुणं फलं चातो भवेत्तस्यन संशयः ॥
जम्बूद्वीपं यो ददाति ब्राह्मणायपतिव्रते । फलं शतगुणञ्चातो भवेत्तस्य न संशयः ॥५०
सप्तद्वीपमहीदातुः सर्वतीर्थानुसेविनः । सर्वेषां तपसां कर्त्तुः सर्वोपवासकारिणः ॥५१
सर्वदानप्रदातुश्च सर्वसिद्धेश्वरस्य च । अस्त्येव पुनरावृत्ति र्नभक्तस्य हरेरहो ॥५२॥

असंख्यब्रह्मणां पातं पश्यन्ति वैष्णवाः सति ।
निवसन्ति हि गोलोके वैकुण्ठे वा हरेः पदे ॥५३॥

विष्णुमन्त्रोपासकश्च विहाय मानवीं तनुम् । विभर्त्तिदिव्यरूपञ्च जन्ममृत्युजरापहम् ॥
लब्ध्वाविष्णोश्चसारूप्यंविष्णुसेवांकरोतिच । सचपश्यतिगोलोकेह्यसंख्यंप्राकृतं लयम्
नश्यन्तिदेवाःसिद्धाश्चविश्वानिनिखिलानिच । कृष्णभक्तानतश्यन्तिजन्ममृत्युजराहराः ॥
कार्त्तिके तुलसीदानं करोतिहरये च यः । युगं पत्रप्रमाणञ्च मोदते हरिमन्दिरे ॥५७॥
पुनः स्वयोनिंसंप्राप्य हरिभक्तिं लभेत् ध्रुवम् । सुखीच चिरजीवीच स भवेद्भारते भुवि
घृतप्रदीपं हरये कार्त्तिके यो ददाति च । पलप्रमाणवर्षञ्च मोदते हरिमन्दिरे ॥ ५९ ॥

पुनः स्वयोनिं संप्राप्य विष्णुभक्तिलभेत् ध्रुवम् ।
महाधनाढ्यः स भवेच्चक्षुष्मांश्चैव दीप्तिवान् ॥ ६० ॥

माघे यः स्नाति गङ्गायामरुणोदयकालतः । युगषष्टिसहस्राणि मोदते हरिमन्दिरे ॥६१
पुनः स्वयोनिं संप्राप्य विष्णुभक्तिंलभेद्ध्रुवम् । जितेन्द्रियाणांप्रवरःसभवेद्भारतेभुवि ॥

माघे यः स्नाति गङ्गायां प्रयागे चारुणोदये । वैकुण्ठेमोदतेसोऽपिलक्षमन्वन्तरावधि ॥
पुनःस्वयोनिं संप्राप्य विष्णुमन्त्रं लभेत् ध्रुवम् । त्यक्त्वाचमानुषंदेहंपुनर्यातिहरेःपदम् ।
नास्ति तत् पुनरावृत्तिर्वैकुण्ठाच्च महीतले । करोति हरिदास्यञ्चलब्ध्वासारूप्यमेवच ॥
नित्यस्नायी च गङ्गायां स पूतः सूर्य्यवद् भुवि ।
पदे पदेऽश्वमेधस्य लभते निश्चितं फलम् ॥ ६६ ॥
तस्यैव पादरजसा सद्यःपूता वसुन्धरा । मोदते स च वैकुण्ठे यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥
पुनः स्वयोनिं संप्राप्य तपस्वीप्रवरोभवेत् । स्वधर्मनिरतःशुद्धोविद्वांश्चसुजितेन्द्रियः ॥
मीनकर्कटयोर्मध्ये गाढंतपति भास्करे । भारते यो ददात्येव जलमेव सुवासितम् ॥६९
मोदते स च वैकुण्ठेयावदिन्द्राश्चतुर्दश: । पुनः स्वयोनिंसंप्राप्यसुखीनिष्कपटोभवेत् ॥
वैशाखे हरये भक्त्या यो ददाति च चन्दनम् । युगषष्टिसहस्राणिमोदते विष्णुमन्दिरे ॥
पुनः स्वयोनिं संप्राप्य रूपवांश्च सुखी भवेत् ॥७१॥
वैशाखे शक्तुदानञ्च यः करोति द्विजातये । शक्तुरेणुप्रमाणाब्दं मोदतेविष्णुमन्दिरे ॥७२
करोति भारते यो हि कृष्णजन्माष्टमीव्रतम् । शतजन्मकृतात्पापान्मुच्यतेनात्रसंशयः ।
वैकुण्ठेमोदतेसोऽपियावदिन्द्राश्चतुर्दशः । पुनःस्वयोनिंसंप्राप्यकृष्णभक्तिंलभेत्ध्रुवम् ॥
इहैव भारते वर्षे शिवरात्रिं करोति यः । मोदते शिवलोके च सप्तमन्वन्तरावधि ॥७५॥
शिवाय शिवरात्रौ च विल्वपत्रं ददाति यः । पत्रप्रमाणञ्च युगं मोदते शिवमन्दिरे ॥
पुनः स्वयोनिं संप्राप्य शिवभक्तिं लभेद् ध्रुवम् ।
विद्यावान् पुत्रवान् श्रीमान् प्रजावान् भूमिवान् भवेत् ॥७७॥
चैत्रमासेऽथवा माघे शङ्करंयोऽर्चयेद्व्रती । करोतिनर्त्तनंभक्त्या वेत्रपाणिर्दिवानिशम् ॥
मासं वाऽप्यर्द्धमासं वा दशसप्तदिनानि वा । दिनमानं युगं सोऽपि शिवलोकेमहीयते ॥
श्रीरामनवमीं यो हि करोति भारते नरः । सप्तमन्वन्तरं यावन्मोदतेविष्णुमन्दिरे ॥८०
पुनःस्वयोनिंसंप्राप्यरामभक्तिंलभेद्ध्रुवम् । जितेन्द्रियाणांप्रवरोमहांश्चधार्मिकोभवेत् ॥
शारदीयां महापूजां प्रकृतेर्यः करोतिच । महिषैश्छागलैर्मेषैरिक्षुकुष्माण्डकैस्तथा ॥८२
नैवेद्यैरुपहारैश्च धूपदीपादिभिस्तथा । नृत्यगीतादिभिर्वाद्यैर्नानाकौतुकमङ्गलैः ॥८३॥

शिवलोके वसेत्सोऽपिसप्तमन्वन्तरावधि। पुनःस्वयोनिंसंप्राप्यबुद्धिश्च निर्मलांलभेत् ॥
अचलां श्रियमाप्नोति पुत्रपौत्रादिवर्द्धिनीम् । महाप्रभावयुक्तश्च गजवाजिसमन्वितः ॥
राजराजेश्वरः सोऽपि भवेदेव न संशयः ॥८५॥
भाद्रशुक्लाष्टमी प्राप्य महालक्ष्मीश्च योऽर्चयेत् ॥ ८६ ॥
नित्यं भक्त्या पक्षमेकं पुण्यक्षेत्रे च भारते । दत्त्वातस्यैप्रकृष्टानिचोपचाराणि षोड़शः ॥
वैकुण्ठे मोदतेसोऽपियावच्चन्द्रदिवाकरौ । पुनःस्वयोनिंसंप्राप्यराजराजेश्वरो भवेत् ॥
कार्त्तिकीपूर्णिमायाञ्चकृत्वातुरासमण्डलम् । गोपानांशतकंकृत्वागोपीनांशतकंततथा ॥
शिलायां प्रतिमायां वा श्रीकृष्णंराधयासह । भारतेपूजयेद्दत्त्वाचोपचाराणिषोड़शः ॥
गोलोके च वसेत् सोऽपियावद्वैब्रह्मणोवयः । भारतंपुनरागत्यहरिभक्तिलभेद्ध्रुवम् ॥
क्रमेण सुदृढ़ां भक्तिं लब्ध्वा मन्त्रं हरेरपि । देहं त्यक्त्वा च गोलोकंपुनरेवप्रयातिसः ॥
तत्र कृष्णस्य सारूप्यं संप्राप्य पार्षदोभवेत् । पुनस्तत्पतनंनास्तिजरामृत्युहरोमहान् ॥
शुक्लां वाऽप्यथवाकृष्णांकरोत्येकादशीञ्चयः । वैकुण्ठेमोदतेसोऽपियावद्वैब्रह्मणो वयः
भारतं पुनरागत्य हरिभक्तिं लभेद्ध्रुवम् । पुनर्यातिचवैकुण्ठंनतस्यपतनं भवेत् ॥९५॥
भाद्रे शुक्ले च द्वादश्यां यः शक्रं पूजयेन्नरः । षष्टिवर्षसहस्राणि शक्रलोकेमहीयते ॥९६
रविवारेऽर्कसंक्रान्त्यां सप्तम्यां शुक्लपक्षतः । सम्पूज्यार्कंहविष्यान्नंयःकरोतिच भारते ॥
महीयते सोऽर्कलोके यावच्चन्द्रदिवाकरौ । भारतं पुनरागत्य चारोगीश्रीयुतो भवेत् ॥
ज्यैष्ठशुक्लचतुर्दश्यां सावित्रीं यो हि पूजयेत् । महीयतेब्रह्मलोके सप्तमन्वन्तरावधि ॥९९
पुनर्महीं समागत्य श्रीमानतुलविक्रमः । चिरजीवी भवेत्सोऽपिज्ञानवान्सम्पदायुतः ॥
माघस्य शुक्लपञ्चम्यांपूजयेद्यःसरस्वतीम् । संयतोभक्तितोदत्त्वाचोपचाराणिषोड़शः ॥
महीयते स वैकुण्ठे यावद् ब्रह्म दिवानिशम् । संप्राप्यचपुनर्जन्मसभवेत्कविपण्डितः ॥
गां सुवर्णादिकं यो हि ब्राह्मणाय ददाति च । नित्यंजीवनपर्य्यन्तंभक्तियुक्तश्चभारते ॥
गवां लोमप्रमाणाब्दं द्विगुणं विष्णुमन्दिरे । मोदते हरिणासार्द्धंक्रीड़ाकौतुकमङ्गलैः ॥
ततः पुनरिहागत्य विष्णुभक्तिं लभेद्ध्रुवम् ।
ततः पुनरिहागत्यराजराजेश्वरो भवेत् । गोमांश्च पुत्रवान्विद्वान्ज्ञानवान्सर्वतःसुखी ॥

भोजयेद् यो हि मिष्टान्नंब्राह्मणेभ्यश्चभारते । विप्रलोमप्रमाणाब्दंमोदतेविष्णुमन्दिरे ॥
ततः पुनरिहागत्य ससुखीधनवान् भवेत् । विद्वान् सुचिरजीवीचश्रीमानतुलविक्रमः ॥
यो वक्ति वा ददात्येव हरेर्नामानि भारते । युगनामप्रमाणञ्च विष्णुलोके महीयते ॥
ततः पुनरिहागत्य विष्णभक्तिलभेद् ध्रुवम् । यदि नारायणक्षेत्रे फलंकोटिगुणंलभेत् ॥
नाम्नां कोटिंहरेर्यो हि क्षेत्रेनारायणे जपेत् । सर्वपापविनिर्मुक्तो जीवन्मुक्तोभवेद्ध्रुवम्
लभते न पुनर्जन्म वैकुण्ठे स महीयते । लभेद्विष्णोश्च सारूप्यं न तस्यपतनंभवेत् ॥
यः शिवं पूजयेन्नित्यंकृत्वालिङ्गञ्चपार्थिवम् । यावज्जीवनपर्य्यन्तंसयातिशिवमन्दिरम् ॥
मृदां रेणुप्रमाणाब्दं शिवलोके महीयते । ततः पुनरिहागत्य राजेन्द्रो भारते भवेत् ॥
शिलाञ्च योऽर्चयेन्नित्यंशिलातोयञ्च भक्षति । महीयतेसवैकुण्ठेयावद्वैब्रह्मणःशतम् ॥
ततो लब्ध्वा पुनर्जन्म हरिभक्ति सुदुर्लभम् । महीयते विष्णुलोके नतस्यपतनं भवेत् ॥
तपांसि चैव सर्वाणि व्रतानिनिखिलानि च । कृत्वातिष्ठति वैकुण्ठेयावदिन्द्राश्चतुर्दशः ॥
ततो लब्ध्वा पुनर्जन्मराजेन्द्रोभारतेभवेत् । ततो मुक्तोभवेत्पश्चात् पुनर्जन्मनविद्यते ॥
यः स्नाति सर्वतीर्थेषुभुविकृत्वाप्रदक्षिणम् । सचनिर्वाणतांयाति नतज्जन्मभवेद्भुवि ।
पुण्यक्षेत्रे भारते च योऽश्वमेधंकरोति च । अश्वलोमप्रमाणाब्दंशक्रस्यार्द्धासनेवसेत् ॥
चतुर्गुणं राजसूये फलमाप्नोति मानवः । नरमेधेऽश्वमेधार्द्धं गोमेधे च तदेव च ॥१२०
पुत्रेष्टौ च तदर्द्धञ्च सुपुत्रंच लभेद्ध्रुवम् । लभते लाङ्गलेष्टौ च गोमेधसदृशंफलम् ॥१२१॥
तत्समानञ्च विप्रेष्टौ वृद्धियागे च तत्फलम् । पद्मयज्ञेतदर्द्धञ्च फलमाप्नोति मानवः ॥
विशोके च विशोकञ्च पद्मार्द्धं स्वर्गमश्नुते । विजये विजयी राजा स्वर्गंपद्मसमंलभेत् ॥
प्राजापत्ये प्रजालाभो भूवृद्धिर्भूभृतांभवेत् । इह राजश्रियं लब्ध्वा पद्मार्द्धंस्वर्गमश्नुते ॥
ऋद्धियागे महैश्वर्य्यं स्वर्गं पद्मसमं भवेत् ।
विष्णुयज्ञः प्रधानश्च सर्वयज्ञेषु सुन्दरि । ब्रह्मणा च कृतः पूर्वं महासम्भारसंयुतः ॥
बभूव कलहो यत्र दक्षशङ्करयोः सति । शेपुश्च नन्दिनं विप्राः नन्दी विप्रांश्चकोपतः ॥
यतो हेतोर्दक्षयज्ञं बभञ्ज चन्द्रशेखरः । चकार विणुयज्ञञ्च पुरा दक्षप्रजापतिः ॥१२७॥
धर्मश्च कश्यपश्चैव शेषश्चापि च कर्दमः । स्वायम्भुवो मनुश्चैव तत्पुत्रश्च प्रियव्रतः ॥

शिवः सनत्कुमारश्च कपिलश्च ध्रुवस्तथा । राजसूय सहस्राणां समृद्ध्या च क्रतुर्भवेत् ॥
राजसूयसहस्राणांफलमाप्नोतिनिश्चितम् । विष्णुयज्ञात्परोयज्ञोनास्तिवेदेफलप्रदः ॥
बहुकल्पान्तजीवी च जीवन्मुक्तो भवेद्ध्रुवम् । ज्ञानेन तेजसा चैव विष्णुतुल्योभवेदिह ।
देवानाञ्चयथाविष्णुर्वैष्णवानांयथाशिवः । शास्त्राणाञ्चयथावेदाआश्रमाणाञ्चब्राह्मणाः ।
तीर्थानाञ्च यथागङ्गा पवित्राणञ्च वैष्णवाः । एकादशी व्रतानाञ्चपुष्पाणांतुलसीयथा ॥
नक्षत्राणां यथाचन्द्रःपक्षिणांगरुड़ोयथा । यथा स्त्रीणाञ्चप्रकृतिःआधाराणांवसुन्धरा ॥
शीघ्रगानाञ्चेन्द्रियाणां चञ्चलानांयथामनः । प्रजापतीनां ब्रह्मा च प्रजेशानांप्रजापतिः ॥
वृन्दावनं वनानाञ्च वर्षाणां भारतं यथा । श्रीमताञ्च यथा श्रीश्च विदुषाञ्चसरस्वती ॥
पतिव्रतानां दुर्गा च सौभाग्यनाञ्चराधिका । विष्णुयज्ञस्तथा वत्सेयज्ञेषुचमहानिति ॥
अश्वमेधशतेनैव शक्रत्वं लभते ध्रुवम् । सहस्रेण विष्णुपदं संप्राप्य पृथुरेव च ॥१३८॥
स्नानञ्च सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षणम् । सर्वेषाञ्चव्रतानाञ्चतपसांफलमेवच ॥१३६॥
पाठश्चतुर्णां वेदानां प्रादक्षिण्यं भुवस्तथा । फलं वीजमिदं सर्वं मुक्तिदंकृष्णसेवनम् ॥
पुराणेषु च वेदेषु चेतिहासेषु सर्वतः । निरूपितं सारभूतंकृष्णपादाम्बुजार्चनम् ॥१४१॥
तद्वर्णनञ्च तद्ध्यानं तन्नामगुणकीर्त्तनम् । तत्स्तोत्रं स्मरणञ्चैववन्दनं जप एव च १४२
तत्पादोदकनैवेद्यभक्षणं नित्यमेव च । सर्वसम्मतमित्येवं सर्वेप्सितमिदं सति ॥१४३॥
भज कृष्णं परं ब्रह्म निर्गुणं प्रकृतेः परम् । गृहाणस्वामिनंवत्सेसुखं गच्छस्वमन्दिरम् ॥
एतत्ते कथितं सत्रं विपाकं कर्मणा नृणाम् । सर्वेप्सितं सर्वमतं परं तत्त्वप्रदं नृणाम् ॥
इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे सावित्री यमसंवादे
सावित्र्युपाख्याने शुभकर्मविपाकप्रकथनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः ।

अष्टाविंशोऽध्यायः

सावित्रीकृत यमस्तोत्रम् ।

श्रीनारायण उवाच

हरेरुत्कीर्त्तनं श्रुत्वा सावित्री यमवक्त्रतः । साश्रुनेत्रा सपुलका यमं पुनरुवाच सा ।१।

सावित्र्युवाच ।

हरेरुत्कीर्त्तनं धर्मः स्वकुलोद्धारकारणम् । श्रोतॄणाञ्चैव वक्तॄणां जन्ममृत्युजराहरम् ॥
दानानाञ्च व्रतानाञ्च सिद्धिनां तपसां परम् । योगानाञ्चैव वेदानां सेवनं कीर्त्तनं हरेः ॥
मुक्तित्वममरत्वं वा सर्वसिद्धित्वमेव वा । श्रीकृष्णसेवनस्यैव कलां नार्हन्तिषोड़शीम् ।
भजामि केन विधिना श्रीकृष्णं प्रकृतेःपरम् । मूढ़ां मामबलां तात वद वेदविदांवर ॥५।
शुभकर्म्मविपाकञ्च श्रुतं नॄणां मनोहरम् । कर्म्माशुभविपाकञ्च तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥
इत्युक्त्वा सा सती ब्रह्मन् भक्तिनम्रात्मकन्धरा । तुष्टाव धर्म्मराजञ्च वेदोक्तेनस्तवेनच॥

सावित्र्युवाच ।

तपसा धर्म्ममाराध्य पुष्करे भास्करः पुरा । धर्मांशं यं सुतं प्राप धर्मराजं नमाम्यहम् ॥
समता सर्वभूतेषु यस्य सर्वस्य साक्षिणः । अतो यन्नाम शमनमिति तं प्रणमाम्यहम् ॥
येनान्तश्च कृतो विश्वे सर्वेषां जीविनां परम् । कर्मानुरूपकालेन तं कृतान्तं नमाम्यहम् ।
विभर्त्तिदण्डं दण्ड्यायपापिनांशुद्धिहेतवे । नमामि तं दण्डधरं यःशास्तासर्वकर्म्मणाम् ।
विश्वेचकलयत्येव यः सर्वायुश्चापिसन्ततम् । अतीवदुर्निवार्य्यंञ्च तं कालं प्रणमाम्यहम् ।
तपस्वी वैष्णवोधर्म्मी संयमीविजितेन्द्रियः । जीविनांकर्म्मफलदं तं यमंप्रणमाम्यहम् ॥
स्वात्मारामश्चसर्वज्ञोमित्रंपुण्यकृतांभवेत् । पापिनांक्लेशदोयश्चपुण्यंमित्रंनमाम्यहम् ॥
यज्जन्म ब्रह्मणो वंशे ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा । यो ध्यायति परं ब्रह्म ब्रह्मवंशं नमाम्यहम् ॥
इत्युक्त्वा सा च सावित्री प्रणनाम यमं मुने । यमस्तां विष्णुभजनं कर्म्मपाकमुवाचह
इदं यमाष्टकं नित्यं प्रातरुत्थाय यः पठेत् । यमात्तस्यभयं नास्तिसर्वपापात् प्रमुच्यते ॥
महापापीयदि पठेत् नित्यंभक्त्याच नारद । यमः करोतितं शुद्धं कायव्यूहेन निश्चितम् ॥
इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायण-नारदसंवादे सावित्रीकृतयमस्तोत्रं नामाष्टाविंशोऽध्यायः ।

ऊनत्रिंशोऽध्यायः

यमसावित्रीसंवादे नरककुण्डवर्णनम् ।

नारायण उवाच ।

यमस्तस्यै विष्णुमन्त्रं दत्त्वाच विधिपूर्वकम् । कर्म्माशुभविपाकञ्च तामुवाचरवेःसुतः ॥१

यम उवाच ।

शुभकर्म्मविपाकञ्च श्रुतं नानाविधं सति । कर्म्माशुभविपाकञ्च कथयामि निशामय ॥२॥
नानाप्रकारं स्वर्गञ्च याति जीवः स्वकर्म्मणा । कुकर्म्मणाच नरकं याति नानाविधंनरः ॥
नरकाणाञ्च कुण्डानि सन्ति नानाविधानि च । नानापुराणभेदेन नामभेदानि तानि च ।
विस्तृतानिगभीराणि क्लेशदानिचजीविनाम् । भयङ्कराणिघोराणि हे वत्सेकुत्सितानिच ।
षड़शीतिचकुण्डानि संयमन्याञ्चसन्तिच । निबोधतेषां नामानि प्रसिद्धानिश्रुतौसति ॥
वह्निकुण्डंतप्तकुण्डं क्षारकुण्डंभयानकम् । विट्कुण्डंमूत्रकुण्डञ्च श्लेष्मकुण्डञ्चदुःसहम् ।
गरकुण्डं दूषिकाकुण्डं वसाकुण्डं तथैवच । शुक्रकुण्डमसृक्कुण्डमश्रुकुण्डञ्च कुत्सितम् ।
कुण्डं गात्रमलानाञ्च कर्णविट्कुण्डमेवच । मज्जाकुण्डं मांसकुडं नखकुण्डञ्च दुस्तरम् ।

लोम्नां कुण्डं केशकुण्डं अस्थिकुण्डञ्च दुःखदम् ।
ताम्रकुण्डं लौहकुण्डं प्रतप्तं क्लेशदं महत् ॥ १० ॥

तीक्ष्णकण्टककुण्डञ्च विषकुण्डञ्चविघ्नदम् । घर्म्मकुण्डंतप्तसुराकुण्डं चापिप्रकीर्त्तितम् ।
प्रतप्ततैलकुण्डञ्च दन्तकुण्डञ्च दुर्वहम् । कृमिकुण्डं पूयकुण्डं सर्पकुण्डं दुरन्तरम् ॥ १२॥
मशकुण्डं दंशकुण्डं भीमं गरलकुण्डकम् । कुण्डञ्च वज्रदंष्ट्राणां वृश्चिकानाञ्च सुव्रते ॥
शरकुण्डं शूलकुण्डं खड्गकुण्डञ्च भीषणम् । गोलकुण्डं नक्रकुण्डंकाककुण्डं शुचास्पदम्
सञ्चालकुण्डंवाजकुण्डंवन्ध्रकुण्डंसुदुस्तरम् । तप्तपाषाणकुण्डञ्च तीक्ष्णपाषाणकुण्डकम्
लालाकुण्डमसिकुण्डं चूर्णकुण्डंसुदारुणम् । चक्रकुण्डंवज्रकुण्डंकूर्म्मकुण्डंमहोल्वणम् ॥
ज्वालाकुण्डं भस्मकुण्डं पूतिकुण्डञ्च सुन्दरि । तप्तशक्त्यप्यसीपात्रं क्षुरधारं सूचीमुखम्
गोधामुखं नक्रमुखं गजदंशञ्च गोमुखम् । कुम्भीपाकं कालसूत्रमवटोदमरुन्तुदम् ॥१८॥

पांशुभोजं पाशवेष्टं शूलप्रोतं प्रकम्पनम् । उल्कामुखमन्धकूपं वेधनं दण्डताड़नम् ॥१९॥
जालवन्धं देहचूर्णं दलनं शोषणङ्करम् । सर्पज्वालामुखं जिम्भं धूमान्धं नागवेष्टनम् ॥
कुण्डान्येतानि सावित्रि पापिनां क्लेशदानिच । नियुक्तैः किङ्करगणैरक्षितानिच सन्ततम् ।
दण्डहस्तैः शूलहस्तैः पाशहस्तैर्भयङ्करैः । शक्तिहस्तैर्गदाहस्तैर्मदमत्तैश्च दारुणैः ॥ २२॥
तमोयुक्तैर्दयाहीनैर्दुर्निवार्य्यैश्च सर्वतः । तेजस्विभिश्च निःशङ्कैस्ताम्रपिङ्गललोचनैः ॥२३
योगयुक्तैः सिद्धयोगैर्नानारूपधरैर्वरैः । आसन्नमृत्युभिर्दृष्टैः पापिभिः सर्वजीविभिः ॥
स्वकर्म्मनिरतैःशैवैः शाक्तैः सौरैश्च गाणपैः । अदृष्टैः पुण्यकृद्भिश्च सिद्धियोगीभिरेवच॥
स्वधर्म्मनिरतैर्वापि विरतैर्वा स्वतन्त्रकैः । वलवद्भिश्च निःशङ्कैः स्वप्नदृष्टैश्च वैष्णवैः ॥
एतत्तेकथितंसाध्वि कुण्डसंख्यानिरूपणम् । येषांनिवासोयत् कुण्डंनिवोधकथयामिते।

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे सावित्र्युपाख्याने यमसावित्रीसंवादे नरककुण्डसंख्यानं नामोनत्रिंशोऽध्यायः ।

त्रिंशोऽध्यायः

पापिनां नरकनिरूपणम् ।

यम उवाच ।

हरिसेवारतः शुद्धो योगी सिद्धो व्रती सति । तपस्वी ब्रह्मचारी च न याति नरकं यतिः ।
कटुवाचा वान्धवांश्च खलत्वेन चयोनरः । दग्धान् करोतिवलवान् वह्निकुण्डंप्रयातिसः।
गात्रलोमप्रमाणाब्दं तत्र स्थित्वा हुताशने । पशुयोनिमवाप्नोति रौद्रे दग्धस्त्रिजन्मनि ॥
ब्राह्मणं तृषितंक्षुब्धं प्रतप्तं गृहमागतम् । न भोजयति यो मूढ़स्तप्तंकुण्डं प्रयाति सः ॥४॥
तत्र लोमप्रमाणाब्दं स्थित्वा तत्र च दुःखितः । तप्तस्थले वह्निकुण्डे पक्षीच सप्तजन्मसु।
रविवारार्कसंक्रान्त्याममायां श्राद्धवासरे । वस्त्राणां क्षारसंयोक्तं करोति योहि मानवः
स याति क्षारकुण्डञ्च सूत्रमानाब्दमेवच । स व्रजेद्रजकीं योनिं सप्तजन्मसु भारते ॥ ७॥

स्वदत्तां परदत्तां वा ब्रह्मवृत्तिं हरेत्तु यः। षष्टिवर्षसहस्राणि विट्कुण्डञ्च प्रयाति सः॥
षष्टिवर्षसहस्राणि विड्भोजी तत्र तिष्ठति। षष्टिवर्षसहस्राणि विट्क्रमिश्च पुनर्भुवि ॥९।
परकीयतड़ागे च तड़ागं यः करोति च। उत्सृजेद्दैवदोषेण मूत्रकुण्डं प्रयाति सः १०॥
तद्रेणुमानवर्षञ्च तद्भोजी तत्र तिष्ठति। भारते गोधिका चैव स भवेत् सप्तजन्मसु ॥११
एकाकी मिष्टमश्नाति श्लेष्मकुण्डं प्रयातिसः। पूर्णमब्दशतञ्चैव तद्भोजी तत्र तिष्ठति ॥
पूर्णमब्दशतञ्चैव सः प्रेतो भारते भवेत्। श्लेष्ममूत्रगरञ्चैव पूयं भुङ्क्ते ततःशुचिः॥
पितरं मातरञ्चैव गुरुं भार्य्यां सुतं सुताम्। यो न पुष्णात्यनाथञ्च गरकुण्डं प्रयाति सः
पूर्णमब्दसहस्रञ्च तद्भोजी तत्र तिष्ठति। ततो व्रजेद्भूतयोनिं शतवर्षं ततः शुचिः ॥१५
दृष्ट्वाऽतिथिं वक्रचक्षुः करोति योहि मानवः। पितृदेवास्तस्य जलं न गृह्णन्ति च पापिनः
यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च। इहैव लभतेचान्तेदूषिकाकुण्डमाव्रजेत् ॥
पूर्णमब्दशतञ्चैव तद्भोजी तत्र तिष्ठति। ततो नरो भवेद् भूमौ दरिद्रःसप्तजन्मसु ॥१८॥
दत्त्वा द्रव्यञ्च विप्रायचान्यस्मैदीयतेयदि। सतिष्ठतिवसाकुण्डे तद्भोजीशतवत्सरम्॥
ततोभवेत् सचाण्डालस्त्रिजन्मनिततःशुचिः। कृकलासोभवेत्सोऽपिभारतेसप्तजन्मसु॥

ततो भवेन्मानवश्च दरिद्रोऽल्पायुरेव च ॥२०॥

पुमांसं कामिनी वापि कामिनीं वापुमानथ। यः शुक्रंपाययत्येवशुक्रकुण्डं प्रयातिसः॥
पूर्णमब्दशतञ्चैव तद्भोजी तत्र तिष्ठति। योनिक्रमिः शताब्दञ्चभवेद् भुवि ततः शुचिः॥
सन्ताड्य च गुरुं विप्रं रक्तपातञ्चकारयेत्। सचतिष्ठत्यसृक्कुण्डे तद्भोजीशतवत्सरम्॥
ततो भवेद् व्याधजन्म सप्तजन्मसु भारते। ततः शुद्धिमवाप्नोति मानवश्च क्रमेण च॥
अश्रुस्रवन्तं गायन्तं भक्तं दृष्ट्वा च गद्गदम्। श्रीकृष्णगुणसंगीते हसत्येवहियोनरः॥
स वसेदश्रुकुण्डे चतद्भोजीशतवत्सरम्। ततो भवेत् सचाण्डालोत्रिजन्मनिततःशुचिः॥
करोति खलतां शश्वदशुद्धहृदयो नरः। कुण्डंगात्रमलानाञ्च स च यातिदशाब्दकम्॥
ततः स गर्दभींयोनिमवाप्नोतित्रिजन्मनि। त्रिजन्मनिच शार्गालींततःशुद्धोभवेद्ध्रुवम्
बधिरं यो हसत्येवनिन्दत्येव हि मानवः। स वसेत्कर्णविट्कुण्डेतद्भोजीशतवत्सरम्॥

ततो भवेत् स बधिरो दरिद्रः सप्तजन्मसु। सप्तजन्मस्वङ्गहीनस्ततः शुद्धिलभेद्ध्रुवम्॥

लोभात् स्वपालनार्थाय जीविनं हन्ति यो नरः ।
मज्जाकुण्डे वसेत् सोऽपि तद्भोजी लक्षवर्षकम् ॥ ३१ ॥

ततो भवेत् स शशकोमीनश्चसप्तजन्मसु । एणादयश्चकर्मभ्यस्ततःशुद्धिं लभेद्ध्रुवम् ॥
स्वकन्यापालनंकृत्वाविक्रीणातिहियोनरः । अर्थलोभान्महामूढोमांसकुण्डंप्रयातिसः ॥
कन्यालोमप्रमाणाब्दं तद्भोजी तत्रतिष्ठति । तञ्चकुण्डे प्रहारञ्च करोति यमकिङ्करः ॥३४॥
मांसभारं मूर्ध्निकृत्वारक्तधारांलिहेत्क्षुधा । ततो हि भारतेपापी कन्याविट्सुकृमिर्भवेत्
षष्ठिवर्षसहस्राणि व्याधश्च सप्तजन्मसु । त्रिजन्मनि वराहश्चकुक्कुरःसप्तजन्मसु ॥३६॥
सप्तजन्मसु मण्डूको जलौका सप्तजन्मसु । सप्तजन्मसु काकश्चततःशुद्धिंलभेद्ध्रुवम् ॥
व्रतानामुपवासानां श्राद्धादीनाञ्च संयमे । न करोति क्षौरकर्म सोऽशुचिः सर्वकर्मसु ॥
स च तिष्ठति कुण्डेषु नखादीनाञ्च सुन्दरि । तदेव दिनमानाब्दं तद्भोजीदण्डताड़ितः ॥
सकेशं पार्थिवं लिङ्गं यो वाऽर्चयति भारते । स तिष्ठति केशकुण्डे मृद्रेणुमानवर्षकम् ॥
तदन्ते यावनीं योनिंप्रयातिहरकोपतः । शताब्दात् शुद्धिमाप्नोतिस्वकुलंलभतेध्रुवम् ॥
पितॄणां योविष्णुपदेपिण्डं नैवददाति च । स तिष्ठत्यस्थिकुण्डेचस्वलोमाब्दंमहोल्वणे ॥
ततः स्वयोनिं संप्राप्य खञ्जःसप्तसुजन्मसु । भवेन्महादरिद्रश्च ततः शुद्धोहि दण्डतः ॥
यः सेवते महामूढो गुर्विणीञ्च स्वकामिनीम् । प्रतप्तस्ताम्रकुण्डेचशतवर्षंसतिष्ठति ॥४४॥
अवीरान्नञ्च यो भुङ्क्ते ऋतुस्नातान्नमेव च । लोहकुण्डे शताब्दञ्च सच तिष्ठतितप्तके ॥
स व्रजेद्राजकीं योनिं कर्मकारींच सप्तसु । महाव्रणी दरिद्रश्च ततः शुद्धो भवेन्नरः ॥
यो हि घर्माक्तहस्तेन देवद्रव्यमुपस्पृशेत् । शतवर्षप्रमाणञ्च घर्मकुण्डे च तिष्ठति ॥४७॥
यः शूद्रेणाभ्यनुज्ञातो भुङ्क्ते शूद्रान्नमेवच । सच तप्तसुराकुण्डे शताब्दंतिष्ठति द्विजः ॥
ततो भवेच्छूद्रयाजी ब्राह्मणः सप्तजन्मसु । शूद्रश्राद्धान्नभोजी चततःशुद्धोभवेद्ध्रुवम् ॥
वाग्दुष्टाकटुवाचायाताड़येत्स्वामिनंसदा । तीक्ष्णकण्टककुण्डेसातद्भोजीतत्रतिष्ठति ॥
ताड़िता यमदूतेन दण्डेन च चतुर्युगम् । ततःउच्चैःश्रवा सप्तजन्मस्वेव ततः शुचिः ॥५१॥
विषेण जीवनं हन्ति निर्दयो यो हि पामरः । विषकुण्डेच तद्भोजी सहस्राब्दञ्चतिष्ठति ॥
ततोभवेन्नृघाती च व्रणी च सप्तजन्मसु । सप्तजन्मसु कुष्ठी च ततःशुद्धोभवेद्ध्रुवम् ॥

दण्डेन ताड़येद् यो हि वृषञ्च वृषवाहकः । भृत्यद्वारा स्वतन्त्रो वापुण्यक्षेत्रेचभारते ॥
प्रतप्ततैलकुण्डे च स तिष्ठति चतुर्युगम् । गवां लोमप्रमाणाब्दं वृषो भवति तत्परम् ॥
दण्डेन हन्ति जीवं योलौहेणवड़िषेण वा । दन्तकुण्डेवसेत्सोऽपिवर्षाणामयुतंसति ॥
ततः स्वयोनिं संप्राप्य चोदरंव्याधिसंयुतः । जन्मनैकेन क्लेशेन ततः शुद्धो भवेन्नरः ॥
यो भुङ्क्ते च वृथामांसंमत्स्यभोजीचब्राह्मणः । हरेर्नैवेद्यभोजीचकृमिकुण्डंप्रयातिसः ॥
स्वलोममानवर्षंचतद्भोजी तत्रतिष्ठति । ततो भवेत् म्लेच्छजातिस्त्रिजन्मनिततोद्विजः ॥
ब्राह्मणः शूद्रयाजी यः शूद्रश्राद्धान्नभोजकः । शूद्राणांशवदाहीचपूयकुण्डंव्रजेद्ध्रु वम् ॥
यावल्लोमप्रमाणाब्दं यजमानस्य सुव्रते । ताड़ितो यमदूतेन तद्भोजी तत्र तिष्ठति ॥६१॥
ततो भारतमागत्य स शूद्रः सप्तजन्मसु । महाशूली दरिद्रश्च ततः शुद्धः पुनर्द्विजः ।६२।
कृष्णपादमस्तकस्थं सर्पं हन्ति च यो नरः। स्वात्मलोमप्रमाणाब्दं सर्पकुण्डंप्रयातिसः॥

सर्पेण भक्षितः सोऽपि यमदूतेन ताड़ितः ।
वसेच्च सर्वविड्भोजी ततः सर्पो भवेद्ध्रुवम् ॥ ६४ ॥

ततो भवेत् मानवश्चैवाल्पायुर्दद्रुसंयुतः । महाक्लेशेन तन्मृत्युः सर्पेण भक्षितोध्रुवम् ॥
विधिं प्रदत्त्वाजीवांश्चक्षुद्रजन्तूंश्चहन्ति यः । स दंशमशयोः कुण्डेजन्ममानाब्दकंवसेत्॥
दिवानिशं भक्षितस्तैरनाहारश्च शब्दकृत् । हस्तपादादिबद्धश्च यमदूतेन ताड़ितः ॥६७॥
ततो भवेत् क्षुद्रजन्तुर्जातिश्च यावतीस्मृता । ततो भवेन्मानवश्च सोऽङ्गहीनस्ततः शुचिः
यो मूढ़ोमधुगृह्णाति हत्वा च मधुमक्षिकाः । स एवगरलेकुण्डे जीविमानाब्दकं वसेत्
भक्षितो गरलैर्दग्धो यमदूतेन ताड़ितः । ततो हि मक्षिकाजातिस्ततः शुद्धो भवेन्नरः ॥
दण्डं करोत्यदण्ड्यं च विप्रदण्डं करोति च । स कुण्डं वज्रदंष्ट्राणां कीटानाञ्चप्रयातिच
तल्लोममानवर्षञ्च तत्र तिष्ठत्यहर्निशम् । शब्दकृत् भक्षितस्तैश्च ततः शुद्धो भवेन्नरः ।७२।
अर्थलोभेन यो भूपः प्रजादण्डं करोति च । वृश्चिकानाञ्चकुण्डेषु तल्लोमाब्दंवसेत्ध्रुवम्
ततो वृश्चिकजातिश्च सप्तजन्मसु भारते । ततो नरश्चाङ्गहीनो व्याधियुक्तो भवेद्ध्रुवम्
ब्राह्मणः शस्त्रधारी योह्यन्येषांधावकोभवेत् । सन्ध्याहीनश्च मूढ़श्च हरिभक्तिविहीनकः
स तिष्ठति स्वलोमाब्दं कण्डादिषु शरादिषु । विद्धः शरादिभिःशश्वत्ततःशुद्धोभवेन्नरः

कारागारे सान्धकारे निबध्नाति प्रजाश्च यः। प्रमत्तःस्वल्पदोषेण गोलकुण्दंप्रयातिसः
तत्कुण्डं पक्वतोयाक्तं सान्धकारं भयङ्करम्। तीक्ष्णदंष्ट्रैश्च कीटैश्च संयुक्तंगोलकुण्डकम्
कीटैर्विद्धो वसेत्तत्र प्रजालोमाब्दमेव च। ततो भवेत् प्रजाभृत्यस्ततः शुद्धो नरो भुवि
सरोवरादुत्थितांश्च नक्रादीन् हन्ति यः सति। नक्रकण्टकमानाब्दंनक्रकुण्डं प्रयाति सः
ततो नक्रादिजातिश्च भवेन्नद्यादिषु ध्रुवम्। ततः सद्योऽपि शुद्धो हि दण्डेनैव नरः पुनः
वक्षःश्रोणीस्तनास्यञ्च यः पश्यति परस्त्रियाः। कामेनकामुकोयो हि पुण्यक्षेत्रेच भारते
स वसेत्काककुण्डेच काकैश्च क्षुण्णलोचनः। ततःस्वलोममानाब्दं ततश्चान्धस्त्रिजन्मनि
सप्तजन्मदरिद्रश्च महाक्रूरश्च पातकी। भारते स्वर्णकारश्च स च स्वर्णवणिक् ततः॥
यो भारते ताम्रचौरो लौहचौरश्च सुन्दरि। स च लोमप्रमाणाब्दं वाजकुण्डं प्रयातिसः
तत्रैव वाजविड्भोजी वाजैश्च क्षुण्णलोचनः। ताड़ितो यमदूतेन ततः शुद्धो भवेन्नरः॥
भारते देवचौरश्च देवद्रव्यादिहारकः। सुदुष्करे वज्रकुण्डे स्वलोमाब्दं वसेद् ध्रुवम्॥
देहदग्धो हि तद्वज्रैरनाहारश्च शब्दकृत्। ताड़ितो यमदूतेन ततः शुद्धो भवेन्नरः॥ ८८॥
रौप्यगव्यांशुकानाञ्च यश्चौरः सुरविप्रयोः। तप्तपाषाणकुण्डेचस्वलोमाब्दं वसेद्ध्रुवम्॥
त्रिजन्मनिवकः सोऽपि श्वेतहंसस्त्रिजन्मनि। जन्मैकंशङ्खचिल्लश्चततोऽन्ये श्वेतपक्षिणः
ततो रक्तविकारी च शूली च मानवो भवेत्। सप्तजन्मसु चाल्पायुस्ततः शुद्धोभवेन्नरः

रैत्यकांस्यादिपात्रञ्च यो हरेत् सुरविप्रयोः।
तीक्ष्णपाषाणकुण्डे च स्वलोमाब्दं वसेद् ध्रुवम्॥ ९२॥

स भवेदश्वजातिश्च भारते सप्तजन्मसु। ततोऽधिकाङ्गयुक्तश्च पादरोगी ततः शुचिः॥
पुंश्चल्यन्नञ्च यो भुङ्क्ते पुंश्चलीजीव्यजीवनः। स्वलोममानवर्षञ्चलालाकुण्डे वसेद्ध्रुवम्
ताड़ितो यमदूतेन तद्भोजी तत्र तिष्ठति। ततश्चक्षुःशूलरोगी ततः शुद्धः क्रमेण सः।९५।
म्लेच्छसेवी मसीजीवी योविप्रोभारते भुवि। सचतप्तमसीकुण्डेस्वलोमाब्दंवसेद्ध्रुवम्
ताड़ितो यमदूतेन तद्भोजी तत्र तिष्ठति। ततस्त्रिजन्मनि भवेद् कृष्णवर्णः पशुः सति
त्रिजन्मनि भवेच्छागः कृष्णसर्पस्त्रिजन्मनि। ततश्च तालवृक्षश्च ततः शुद्धो भवेन्नरः॥
धान्यादिशस्यंताम्बूलंयोहरेत् सुरविप्रयोः। आसनञ्च तथा तल्पं चूर्णकुण्डंप्रयातिसः

शताब्दं तत्रनिवसेत् यमदूतेन ताडितः । ततो भवेन्मेषजातिः कुक्कुटश्च त्रिजन्मनि १०० ततो भवेद् मानवश्च काशव्याधियुतो भुवि । वंशहीनो दरिद्रश्चैवाल्पायुश्च ततः शुचिः चक्रं करोति विप्राणां हृत्वा द्रव्यञ्च यो नरः । स वसेच्चक्रकुण्डे शताब्दंदण्डताडितः ततो भवेन्मानवश्च तैलकारस्त्रिजन्मनि । व्याधियुक्तो भवेद्रोगी वंशहीनस्ततः शुचिः वान्धवेषु च विप्रेषु करोति वक्रतां नरः । प्रयाति वक्रकुण्डञ्च वसेत्तत्र युगं सति ॥ ततो भवेत् स वक्राङ्गो हीनांगः सप्तजन्मसु । दरिद्रो वंशहीनश्चभार्य्याहीनस्ततःशुचिः शयने कूर्ममांसञ्च ब्राह्मणो यो हि भक्षति । कूर्मकुण्डेवसेत् सोऽपिशताब्दंकूर्मभक्षितः ततो भवेत् कूर्मजन्म त्रिजन्मनि च शूकरः । त्रिजन्मनिविड़ालश्च मयूरश्च त्रिजन्मनि ॥ घृततैलादिकश्चैव यो हरेत् सुरविप्रयोः । स यातिज्वालाकुण्डञ्चभस्मकुण्डञ्चपातकी तत्र स्थित्वा शताब्दञ्च स भवेत्तैलपायिका । सप्तजन्ममत्स्यरंगो मूषिकश्चततःशुचिः सुगन्धितैलं धात्रीञ्च गन्धद्रव्यं तथैव वा । भारते पुण्यवर्षे च यो हरेत्सुरविप्रयोः ॥ वसेद् दुर्गन्धकुण्डे च दुर्गन्धञ्च लभेत् सदा । स्वलोममानवर्षञ्चततोदुर्गन्धिकाभवेत् दुर्गन्धिका सप्तजन्म मृगनाभिस्त्रिजन्मनि । सप्तजन्मसुगन्धिश्च ततो हि मानवोभवेत् वलेनैव खलत्वेन हिंसारूपेण वा सति । वली च यो हरेद्भूमिं भारते परपैतृकीम् ॥ स वसेत्तप्तशक्तौ च भवेत्तप्तो दिवानिशम् । तप्ततैले यथाजीवो दग्धो भ्रमति सन्ततम् भस्मसान्न भवत्येव भोगदेहो न नश्यति । सप्तमन्वन्तरं पापी सन्तप्तस्तत्र तिष्ठति ॥ शब्दं करोत्यनाहारो यमदूतेन ताड़ितः । षष्टिवर्षसहस्राणि विट्कृमिर्भारते ततः ।११६। ततो भवेद्भूमिहीनो दरिद्रश्च ततः शुचिः । ततःस्वयोनिं संप्राप्य शुभकर्मा भवेत्पुनः छिनत्ति जीविनः खड्गैर्दयाहीनः सुदारुणः । नरघाती हन्ति नरमर्थलोभेन भारते ।११८ असिपत्रे स वसेच्च यावदिन्द्राश्चतुर्दश । तेषु चेद्ब्राह्मणान्हन्ति शतमन्वन्तरं तदा ॥ छिन्नांगश्च भवेत्पापी खड्गधारेण सन्ततम् । अनाहारः शब्दकृच्च यमदूतेन ताड़ितः ॥

सञ्चासः शतजन्मानि भारते शूकरो भवेत् ।

कुक्कुरः शतजन्मानि शृगालः सप्तजन्मसु ॥ १२१ ॥

व्याघ्रश्च सप्तजन्मानि वृकश्चैव त्रिजन्मनि । जन्मसप्त गण्डकश्च महिषश्च त्रिजन्मनि

ग्रामं वा नगरं वापिदाहनंयः करोति च। क्षुरधारे वसेत् सोऽपिछिन्नांगस्त्रियुगं सति
ततः प्रेतो भवेत्सद्यो वह्निवक्त्रो भ्रमेन्महीम्। सप्तजन्ममेध्यभोजी खद्योतः सप्तजन्मसु
ततो भवेन्महाशूली मानवः सप्तजन्मसु। सप्तजन्म गलत्कुष्ठी ततः शुद्धो भवेन्नरः॥
परकर्णे मुखं दत्त्वा परनिन्दां करोति यः। परदोषे महाश्लाघी देवब्राह्मणनिन्दकः॥
सूचीमुखे स च वसेत्सूचीविद्धोयुगत्रयम्। ततो भवेद्वृश्चिकश्चसर्पश्चसप्तजन्मसु।१२७
वज्रकीटः सप्तजन्म भस्मकीटस्ततः परम्। ततोभवेन्मानवश्च महाव्याधिस्ततः शुचिः

गृहिणाश्च गृहं भित्वा वस्तुस्तेयं करोति यः।
गाश्च छागांश्च मेषांश्च याति गोधामुखञ्च सः॥ १२६॥

ततो भवेत् सप्तजन्म गोजातिर्व्याधिसंयुतः। त्रिजन्ममेषजातिश्च छागजातिस्त्रिजन्मनि
ततो भवेन्मानवश्च नित्यरोगी दरिद्रकः। भार्य्याहीनोबन्धुहीनः सन्तापी च ततःशुचिः
सामान्यद्रव्यचौरश्च याति नक्रमुखं युगम्। ततो भवेन्मानवश्च महारोगी ततः शुचिः
हन्ति गाश्च गजांश्चैव तुरगांश्च नरांस्तथा। स याति गजदंशञ्च महापापी युगत्रयम्॥
ताड़ितो यमदूतेन गजदन्तेन सन्ततम्। स भवेद्गजजातिश्च तुरगश्च त्रिजन्मनि॥

गोजाति र्म्लेच्छजातिश्च ततः शुद्धो भवेन्नरः॥ १३४॥

जलं पिबन्तींतृषितां गां वारयति यो नरः। तच्छुश्रूषाविहीनश्च गोमुखं याति मानवः॥
नरकं गोमुखाकारं कृमितप्तोदकान्वितम्। तत्र तिष्ठति सन्तप्तो यावन्मन्तरावधि॥
ततो नरोऽपि गोहीनो महारोगी दरिद्रकः। सप्तजन्मान्त्यजातिश्च ततःशुद्धो भवेन्नरः

गोहत्यां ब्रह्महत्याञ्च यः करोत्यातिदेशिकीम्।
यो हि गच्छेदगम्याञ्च सन्ध्याहीनोऽप्यदीक्षितः॥१३८॥

प्रतिग्रही च तीर्थेषु ग्रामयाजी च देवलः। शूद्राणां सूपकारश्च प्रमत्तो वृषलीपतिः॥
गोहत्यां ब्रह्महत्याञ्च स्त्रीहत्याञ्चकरोतियः। मित्रहत्यां भ्रूणहत्यां महापापीच भारते॥
कुम्भीपाके सच वसेत् यावदिन्द्राश्चतुर्दश। ताड़ितो यमदूतेन चूर्णमानश्च सन्ततम्॥
क्षणं पतति वह्नौ च क्षणं पतति कण्टके। क्षणञ्च तप्ततैलेषु तप्ततोयेषु च क्षणम्॥१४२॥
क्षणञ्च तप्तपाषाणे तप्तलौहे क्षणं ततः। गृध्रकोटिसहस्राणि शतजन्मानि शूकरः॥

काकश्च सप्तजन्मानि सर्पश्च सप्तजन्मसु । षष्टिवर्षसहस्राणि ततश्च विट्कृमिर्भवेत् ॥

ततो भवेत् सवृषणो गलत्कुष्ठी दरिद्रकः ।
यक्ष्माग्रस्तो वंशहीनो भार्य्याहीनस्ततः शुचिः ॥ ४५ ॥

सावित्र्युवाच ।

ब्रह्महत्याचगोहत्याकिंविधावातिदेशिकी । कावानृणामगम्यावाकोवा सन्ध्याविहीनकः
अदीक्षितःपुमान् कोवा कोवा तीर्थेप्रतिग्रही । द्विजःकोवाग्रामयाजी कोवाविप्रश्चदेवलः
शूद्राणां सूपकारः कः प्रमत्तो वृषलीपतिः । एतेषां लक्षणं सर्वं वद वेदविदांवरः ॥

यम उवाच ।

श्रीकृष्णेच तदर्चायां मृण्मय्यां प्रकृतौ तथा । शिवेच शिवलिङ्गेवा सूर्य्ये सूर्य्यमणौतथा
गणेशे वा तदर्चायामेवं सर्वत्र सुन्दरि । यः करोति भेदबुद्धिं ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः ॥
स्वगुरौ स्वेष्टदेवे वा जन्मदातरि मातरि । करोति भेदबुद्धिं यो ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः ॥
वैष्णवेष्वन्यभक्तेषु ब्राह्मणेष्वितरेषु च । करोति समतां यो हि ब्रह्महत्यांलभेत्तु सः ॥
यो मूढ़ो विष्णुनैवेद्ये चान्यनैवेद्यके तथा । हरेः पादोदकेष्वन्यदेवेपादोदके तथा ॥

करोति समतां यो हि ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः ॥ १५३ ॥

सर्वेश्वरेश्वरे कृष्णे सर्वकारणकारणे । सर्वाद्ये सर्वदेवानां सेव्ये सर्वान्तरात्मनि ॥
माययाऽनेकरूपे वाप्येक एव हि निर्गुणे । करोत्यन्येन समतां ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः ॥
पितृदेवार्चनां पौर्वापरां वेदविनिर्मिताम् ॥ यः करोति निषेधञ्च ब्रह्महत्यां लभेत्तुसः ॥
ये निन्दन्ति हृषीकेशं तन्मन्त्रोपासकन्तथा । पवित्राणां पवित्रञ्च ब्रह्महत्यां लभन्तिते ॥
शिवं शिवस्वरूपञ्च कृष्णप्राणाधिकं प्रियम् । पवित्राणां पवित्रञ्च ज्ञानानन्दं सनातनम् ।
प्रधानं वैष्णवानाञ्चदेवानां सेव्यमीश्वरम् । ये नार्चयन्ति निन्दन्ति ब्रह्महत्यांलभन्ति ते ।

ये निन्दन्ति विष्णुमायां विष्णुभक्तिप्रदां सतीम् ।
सर्वशक्तिस्वरूपाञ्च प्रकृतिं सर्वमातरम् ॥ १६० ॥

सर्वदेवीस्वरूपाञ्च सर्वाद्यां सर्ववन्दिताम् । सर्वकारणरूपाञ्च ब्रह्महत्यां लभन्ति ते ॥
कृष्णजन्माष्टमीं रामनवमीं पुण्यदां पराम् । शिवरात्रिं तथा चैकादशीं वारं रवेस्तथा ॥

पञ्चपर्वाणिपुण्यानि ये न कुर्वन्ति मानवाः । लभन्तेब्रह्महत्यांते चाण्डालाधिकपापिनः॥
अम्बुवाच्यां भूखननं जले शौचादिकञ्च ये । कुर्वन्ति भारते वत्से ब्रह्महत्यां लभन्तिते।

गुरुञ्च मातरं तातं साध्वीं भार्य्यां सुतं सुताम् ।
अनाथान् यो न पुष्णाति ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः ॥ १६५ ॥

विवाहो यस्य न भवेत् न पश्यति सुतञ्च यः। हरिभक्तिविहीनो यो ब्रह्महत्यां लभेत्तुसः
गामाहारञ्च कुर्वन्तंपिवन्तंयो निवारयेत् । याति गोविप्रयोर्म्मध्ये गोहत्याञ्च लभेत्तुसः
दण्डैर्गास्ताड़येन्मूढ़ो यो विप्रो वृषवाहकः । दिनेदिने गवां हत्यां लभते नात्र संशयः।
पादं ददातिवह्नौचगाश्च पादेनताड़येत् । गृहंविशेद्धौताङ्घ्रिः स्नात्वा गोवधमालभेत् ॥

यो भुङ्क्ते स्निग्धपादेन शेते स्निग्धाङ्घ्रिरेव च ।
सूर्य्योदये च द्विर्भोजी स गोहत्यां लभेद् ध्रुवम् ॥ १७० ॥

अवीरान्नञ्चयोभुङ्क्तेयोनिजीवीचब्राह्मणः । यस्त्रिसन्ध्याविहीनश्चसगोहत्यांलभेद् ध्रुवम्
पितॄंश्चपर्वकालेच तिथिकालेचदेवताम् । न सेवते तिथियोहि गोहत्यां सलभेद्ध्रुवम्।
स्वभर्तरिचकृष्णेच भेदबुद्धिंकरोतिया । कटूक्त्याताड़येत् कान्तंसागोहत्यांलभेद्ध्रुवम्।
गोमार्गखननं कृत्वा वपते शस्यमेवच । तड़ागे वा तदूर्द्ध्वे वा स गोहत्यां लभेद् ध्रुवम्
प्रायश्चित्तंगोवधस्ययःकरोतिव्यतिक्रमम् । अर्थलोभादथाज्ञानात्सगोहत्यां लभेद्ध्रुवम्
राजके दैवके यत्नाद्गोस्वामी गां न पाययेत् । दुःखंददाति योमूढ़ोगोहत्यांस लभेद्ध्रुवम्
प्राणिनं लङ्घयेद् योहिदेवार्चायांरतं जलम् । नैवेद्यंपुष्पमन्नञ्च सगोहत्यां लभेद्ध्रुवम् ॥
शश्वन्नास्तीतिवादीयोमिथ्यावादीप्रतारकः । देवद्वेषीगुरुद्वेषीस गोहत्यां लभेद् ध्रुवम् ॥
देवताप्रतिमांदृष्ट्वा गुरुं वा ब्राह्मणंसति । सम्भ्रमान्न नमेद्यो हि स गोहत्यांलभेद्ध्रुवम्

न ददात्याशिषं कोपात् प्रणताय च यो द्विजः ।
विद्यार्थिने च विद्याञ्च स गोहत्यां लभेद् ध्रुवम् ॥ १८० ॥

गोहत्याब्रह्महत्याचकथिताचातिदेशिकी । यथाश्रुतंसूर्य्यवक्त्रात्किंभूयःश्रोतुमिच्छसि।

सावित्र्युवाच

वास्तवेचातिदेशेचसम्बन्धेपापपुण्ययोः । न्यूनाधिकेचकोभेदस्तन्मांव्याख्यातुमर्हसि॥

यम उवाच

कुत्रापि वास्तवः श्रेष्ठोन्यूनातिदेशिकःसति । कुत्रातिदेशिकःश्रेष्ठोवास्तवोन्यूनएवच ॥
कुत्र वा समता साध्वि तयोर्वेदप्रमाणतः । करोतितत्रनास्थां यो गुरुहत्यांलभेत्तुसः ॥
पुरा परिचिते विप्रे विद्यामन्त्रप्रदातरि । गुरौ पितृत्वमारोपो वास्तवात् श्रेष्ठउच्यते ।
पितुः शतगुणे माता मातुः शतगुणे तथा । विद्यामन्त्रप्रदाता च गुरुः पूज्यः श्रुतेर्मतः ॥
गुरुतो गुरुपत्नी च गौरवेण गरीयसी । यथेष्टं देवपत्नी चपूज्याचाभीष्टदेवता ॥१८७॥
विप्रः शिवसमोयश्चविष्णुतुल्यपराक्रमः । राजातिदेशिकात्श्रेष्ठो वास्तवोगुणलक्षतः ॥
सर्वं गङ्गासमं तोयं सर्वे व्याससमा द्विजाः । ग्रहणे सूर्य्यशशिनोश्चात्रैवसमता तयोः ॥
आतिदेशिकहत्याया वास्तवश्च चतुर्गुणः । सम्मतः सर्वदेवानामित्याह कमलोद्भवः ॥
आतिदेशिकहत्याया भेदश्च कथितः सति । या या गम्यानृणामेव निबोध कथयामिते
स्वस्त्रीगम्या च सर्वेषामितिवेदेनिरूपिता । अगम्या च तदन्या या इतिवेदविदोविदुः ॥
सामान्यं कथितं सर्वं विशेषं श्रृणुसुन्दरि । अत्यगम्याश्च या याश्च निबोध कथयामिते
शूद्राणां विप्रपत्नी च विप्राणां शूद्रकामिनी । अत्यगम्या चनिन्दा चलोके वेदेपतिव्रते ॥

शूद्रश्चेद् ब्राह्मणीं गच्छेद् ब्रह्महत्याशतं लभेत् ।
तत्समं ब्राह्मणी चापि कुम्भीपाकं व्रजेद् ध्रुवम् ॥१९५॥

यदि शूद्रांव्रजेद्विप्रोवृषलीपतिरेवसः । सभ्रष्टो विप्रजातेश्चचाण्डालात्सोऽधमःस्मृतः ॥
विष्ठासमश्च तत्पिण्डोमूत्रतुल्यश्चतर्पणम् । तत्पितृणां सुराणाञ्च पूजने तत्समंसति ॥
कोटिजन्मार्जितं पुण्यंसन्ध्याऽर्चातपसार्जितम् । द्विजस्यवृषलीभोगान्नश्यत्येवनसंशयः
ब्राह्मणश्च सुरापीति विड्भोजीवृषलीपतिः । हरिवासरभोजीचकुम्भीपाकं व्रजेद्ध्रुवम् ॥
गुरुपत्नीं राजपत्नीं सपत्नीमातरं प्रसूम् । सुतां पुत्रवधूं श्वश्रूं सगर्भां भगिनीं सति ॥
सोदरभ्रातृजायाश्च मातुलानीं पितुप्रसूम् । मातुःप्रसूंतत्स्वसारंभगिनींभ्रातृकन्यकाम् ॥

शिष्याञ्च शिष्यपत्नीञ्च भागिनेयस्य कामिनीम् ।
भ्रातुः पुत्रप्रियाञ्चैवात्यगम्यामाह पद्मजः ॥ २०२ ॥

एतास्त्वेकमनेका वा यो व्रजेन्मानवोऽधमः । स्वमातृगामी वेदेषुब्रह्महत्याशतं लभेत् ॥

अकर्म्माहोऽपि सोऽस्पृश्यो लोकेवेदेऽतिनिन्दितः ।
स याति कुम्भीपाकञ्च महापापी सुदुस्तरम् ॥ २०४ ॥
करोत्यशुद्धांसन्ध्याञ्चसन्ध्यांवानकरोतियः। त्रिसन्ध्यांवर्जयेद्योवासन्ध्याहीनश्चसद्विजः
वैष्णवञ्च तथा शैवं शाक्तं सौरञ्च गाणपम् ।
योऽहङ्कारान्न गृह्णाति मन्त्रं सोऽदीक्षितः स्मृतः ॥२०६॥
प्रवाहमवधिं कृत्वा यावद्धस्तचतुष्टयम् । तत्र नारायणः स्वामी गङ्गागर्भान्तरे वरे २०७।
तत्र नारायणक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे हरेः पदे । वाराणस्यां वदर्य्याञ्च गङ्गासागरसङ्गमे ॥२०८॥
पुष्करे भास्करक्षेत्रे प्रभासे रासमण्डले । हरिद्वारे च केदारे सोमे वदरपावने ॥२०९॥
सरस्वती नदीतीरे पुण्ये गृन्दावने वने ।
गोदवर्य्याञ्च कौशिक्यां त्रिवेण्याञ्च हिमालये ॥२१०॥
एष्वन्यत्र यो दानं प्रतिगृह्णाति कामतः । स च तीर्थप्रतिग्राही कुम्भीपाकं प्रयाति च ॥
शूद्रातिरिक्तयाजी यो ग्रामयाजी च कीर्त्तितः । तथादेवोपजीवी चदेवलःपरिकीर्त्तितः ॥
शूद्रपाकोपजीवी यः सूपकार इति स्मृतः। सन्ध्यापूजाविहीनश्च प्रमत्तः पतितःस्मृतः ॥
उक्तं पूर्वप्रकरणे लक्षणं वृषलीपतेः । एतेमहापातकिनःकुम्भीपाकं प्रयान्ति ते ॥२१४॥
कुण्डान्यन्यानि ते यान्ति निवोध कथयामि ते ॥२१५॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे प्रकृतिखण्डे सावित्र्युपाख्याने यमसावित्रीसंवादे पापीनरकनिरूपणं नाम त्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

एकत्रिंशोऽध्यायः

सावित्र्युपाख्याने पापिकुण्डनिर्णयः ।

यम उवाच ।

हरिसेवां विना साध्वि न लभेत् कर्म्म खण्डनम् ।
शुभकर्म्म स्वर्गबीजं नरकञ्च कुकर्म्मणाम् ॥ १ ॥

पुंश्चल्यन्नञ्च यो भुङ्क्ते वेश्यान्नञ्च प्रतिव्रते । तांव्रजेत्तुद्विजोयोहिकालसूत्रंप्रयाति सः ॥
शतवर्षं कालसूत्रे स्थित्वा शूद्रो भवेद्ध्रुवम् । तत्रजन्मनिरोगीचततःशुद्धोभवेद्द्विजः ॥
पतिव्रताचैकपत्नी द्वितीये कुलटा स्मृता । तृतीये धर्षिणी ज्ञेया चतुर्थे पुंश्चलीस्मृता ॥४
वेश्या च पञ्चमे षष्ठे युग्मी च सप्तमेऽष्टमे । अत ऊर्द्ध्वंमहावेश्यासाऽस्पृश्यासर्वजातिषु
यो द्विजः कुलटां गच्छेद्धर्षिणीं पुंश्चलीमपि । युग्मीं वेश्यांमहावेश्यामवटोदंप्रयातिसः
शताब्दं कुलटागामीधृष्टागामी चतुर्गुणम् । षड्गुणं पुंश्चलीगामी वेश्यागामीगुणाष्टकम्
युग्मीगामी दशगुणं वसेत्तत्र न संशयः । महावेश्यागामुकश्च ततः शतगुणं वसेत् ॥८
तदा हि सर्वगामीचेत्येवमाह पितामहः । तत्रैव यातनां भुङ्क्ते यमदूतेन ताड़ितः ॥९॥
तित्तिरःकुलटागामीधृष्टागामीचवायसः । कोकिलःपुंश्चलीगामीवेश्यागामीवृकस्तथा ॥
युग्मीगामी शूकरश्च सप्तजन्मसु भारते । महावेश्यागामुकश्च श्मशाने शाल्मलिस्तरुः ॥
यो भुङ्क्ते ज्ञानहीनश्च ग्रहणे चन्द्रसूर्य्ययोः । अरुन्तुदं स यात्येव चन्द्रमानाब्दमेवच ॥
ततो भवेन्मानवश्च उदरव्याधिसंयुतः । गुल्मयुक्तश्च काणश्चदन्तहीनस्ततः शुचिः ॥

वाक्प्रदत्तां हि कन्याञ्च यश्चान्यस्मै ददाति च ।
स वसेत् पांशुभोजे च तद्भोजी च शताब्दकम् ॥१४॥

दत्तापहारी यः साध्वि पाशवेष्टं शताब्दकम् । निवसेत् शरशय्यायांयमदूतेन ताड़ितः ॥
न पूजयेद्योहिभक्त्याशिवलिङ्गञ्चपार्थिवम् । सयातिशूलिनःकोपात्शूलप्रोतंसुदारुणम् ॥
स्थित्वा शताब्दं तत्रैव श्वापदः सप्तजन्मसु । ततो भवेत्देवलश्चसप्तजन्मततःशुचिः ॥
करोति दण्डं यो विप्रंयद्भयात्कम्पते द्विजः । प्रकम्पनेवसेत्सोऽपिविप्रलोमाब्दमेवच ॥
प्रकोपवदना कोपात् स्वामिनं या च पश्यति । कटूक्तिश्चवदतियातिचोल्कामुखञ्चसा
उल्कां ददाति वक्त्रे च सन्ततं यमकिङ्करः। दण्डेन ताड़येन्मूर्ध्नितल्लोमाब्दप्रमाणकम् ॥
ततो भवेन्मानवी चविधवासप्तजन्मसु । भुक्त्वादुःखञ्चवैधव्यंव्याधियुक्ता ततः शुचिः ॥
या ब्राह्मणी शूद्रभोग्यासान्धकूपंप्रयातिच । तप्तशौचोदकेध्वान्तेतदाहारादिवानिशम् ।
निवसेदतिसन्तप्ता यमदूतेन ताड़िता । शौचोदके निमग्ना च यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥
काकीजन्म सहस्राणि शतजन्मानि शूकरी । कुक्कुरीशतजन्मानिसृगालीसप्तजन्मसु ॥

पारावती सप्तजन्म वानरी सप्तजन्मसु । ततोभवेत्साचण्डालीसर्वभोग्याचभारते ॥
ततो भवेच्च रजकी यक्ष्मग्रस्ता च पुंश्चली । ततः कुष्ठयुता तैलकारी शुद्धाभवेत्ततः॥
वेश्या वसेद्वेधने च युग्मी च दण्डताड़ने । जालबन्धे महावेश्याकुलटा देहचूर्णके ॥२७
स्वैरिणी दलने चैव धृष्टाचशोषणेतथा । निवसेद्यातनायुक्ता यमदूतेन ताड़िता ॥२८॥
विण्मूत्रभक्षणं तत्र यावन्मन्वन्तरं सति । ततो भवेत् विट्कृमिश्च वर्षलक्षंततः शुचिः ॥

ब्राह्मणो ब्राह्मणीं गच्छेत् क्षत्रियामपि क्षत्रियः ।
वैश्यो वैश्याश्च शूद्राश्च शूद्रो वापि व्रजेद्यपि ॥३०॥

स्ववर्ण परदारी च कषं याति तया सह । भुक्त्वा कषायतप्तोदं निवसेत् द्वादशाब्दकम् ॥
ततो विप्रो भवेच्छुद्धश्चैवश्च क्षत्रियादयः । योषितश्चापि शुध्यन्तीत्येवमाह पितामहः ॥

क्षत्रियो ब्राह्मणीं गच्छेत् वैश्यो वापि पतिव्रते ।
मातृगामी भवेत् सोऽपि सूर्पश्च नरकं व्रजेत् ॥३३॥

सूर्पाकारैश्च कृमिभिर्ब्राह्मण्या सह भक्षितः । प्रतप्तमूत्रभोजी च यमदूतेनताड़ितः ।३४।
तत्रैव यातनां भुंक्ते यावदिन्द्राश्चतुर्दशाः । जन्मसप्तवराहश्च छागलश्च ततः शुचिः ॥
करैधृत्वाचतुलसींप्रतिज्ञांयोनपालयेत् । मिथ्यावाशपथंकुर्य्यात्सचज्वालामुखं व्रजेत् ॥
गंगातोयं करे धृत्वा प्रतिज्ञां योनपालयेत् । शिलांवादेवप्रतिमांसचज्वालामुखं व्रजेत् ॥
दत्त्वा च दक्षिणंहस्तंप्रतिज्ञांयोनपालयेत् । स्थित्वादेवगृहेवापिसचज्वालामुखं व्रजेत् ॥
स्पृष्ट्वा च ब्राह्मणं गाश्च वह्निं विष्णुलप्रंसति । नपालयेत्प्रतिज्ञाश्चसचज्वालामुखंव्रजेत् ॥
मित्रद्रोहीकृतघ्नश्चयोहिविश्वासघातकः । मिथ्यासाक्ष्यप्रदश्चैवसचज्वालामुखं व्रजेत् ॥
एते तत्र वसन्त्येव यावदिन्द्राश्चतुर्दशाः । यथाङ्गारप्रदग्धाश्च यमदूतैश्च ताड़ितः ॥४१
चण्डालस्तुलसीस्पर्शी सप्तजन्मततःशुचिः । म्लेच्छोगंगाजलस्पर्शीपञ्चजन्मततःशुचिः ॥
शिलास्पर्शी विट्कृमिश्च सप्तजन्मसुसुन्दरि । अर्चास्पर्शीव्रणकृमिर्जन्मसप्तततःशुचिः ॥
दक्षहस्तप्रदाता च सर्पश्च सप्तजन्मसु । ततो भवेद्धस्तहीनो मानवश्च ततःशुचिः ॥४४
मिथ्यावादी देवगृहे देवलःसप्तजन्मसु । विप्रादिस्पर्शकारीचसोऽग्रदानीभवेद्ध्रुवम् ॥
ततो भवन्ति मूकास्तेबधिराश्च त्रिजन्मनि । भार्याहीनास्त्वंशहीनाबुद्धिहीनास्ततःशुचिः ॥

मित्रद्रोही च नकुलःकृतघ्नश्चापिगण्डकः । विश्वासघातीव्याघ्रश्चसप्तजन्मसुभारते ४७।
मिथ्यासाक्ष्यप्रदश्चैवभल्लूकःसप्तजन्मसु । पूर्वान्सप्तपरान्सप्तपुरुषान्हन्तिचात्मनः ॥
नित्यक्रियाविहीनश्च जड़त्वेन युतोद्विजः । यस्यानास्थावेदवाक्येमन्दंहसतिसन्ततम् ॥
व्रतोपवासहीनश्चसद्वाक्यपरनिन्दकः । जिह्मे जिह्मो वसेत् सोऽपि शताब्दश्च हिमोदके
जलजन्तुर्भवेत् सोऽपि शतजन्म क्रमेणच । ततोनानाप्रकारश्चमत्स्यजातिस्ततः शुचिः ॥
यः करोत्यपहारश्च देवब्राह्मणयोर्धनम् । पातयित्वा स्वपुरुषान् दशपूर्वान् दशापरान् ॥
स्वयं याति च धूमान्धं धूमध्वान्तसमन्वितम् । धूमक्लिष्टोधूमभोजीवसेत्तत्रचतुर्युगम् ॥
ततो मूषिकजातिश्च शतजन्मानि भारते । ततो नानाविधाः पक्षिजातयःकृमिजातयः ॥
ततो नानाविधा वृक्षजातयश्च ततो नरः । भार्य्याहीनो वंशहीनोशवरोव्याधिसंयुतः ॥
ततो भवेत् स्वर्णकारः सुवर्णस्य वणिक् तथा । ततोयवनसेवीचब्राह्मणोगणकस्ततः ॥
विप्रोदैवज्ञोपजीवीवैद्यजीवीचिकित्सकः । लाक्षालौहादिव्यापारीरसादिविक्रयीच यः॥

स याति नागवेष्टश्च नागैर्वेष्टित एव च ।
वसेत् स्वलोममानाब्दं तत्रैव नागदंशितः ॥ ५८ ॥

ततो भवेत् स गणको वैद्यश्चसप्तजन्मसु । गोपश्च कर्मकारश्च शङ्खकारस्ततः शुचिः ॥
प्रसिद्धानि च कुण्डानि कथितानि पतिव्रते । अन्यानिचाप्रसिद्धानिक्षुद्राणितत्रसन्तिवै
सन्ति पातकिनस्तेषु स्वकर्मफलभोगिनः । भ्रमन्तितावत्संसारे न च ते स्वर्गभागिनः

यान्त्ययान्ति च स्वर्गञ्च मर्त्त्यञ्च न हि निर्वृताः ।

निर्वृतिं न हि लिप्स्यन्तिकृष्णसेवांविना नराः । स्वधर्मनिरताश्चापिस्वधर्मविरतास्तथा
गच्छन्तो मर्त्यलोकञ्च दुर्द्धर्षा यमकिङ्कराः । भीताः कृष्णोपासकाच्चवैनतेयादिवोरगाः
स्वदूतं पाशहस्तञ्च गच्छन्तं तं वदाम्यहम् । यास्यसीति च सर्वत्र हरिभक्ताश्रमं विना
कृष्णमन्त्रोपासकानां नामानि च निकृन्तनम् । करोति नखराञ्जल्याचित्रगुप्तश्चभीतवत्

मधुपर्कादिकं ब्रह्मा तेषाञ्च कुरुते पुनः ॥ ६६ ॥

विलङ्घ्य ब्रह्मलोकञ्च गोलोकं गच्छतां सताम् । दुरितातिचनश्यन्तितेषांसंस्पर्शमात्रतः
यथा सुप्रज्वलद्वह्नौ काष्ठानि च तृणानि च ॥ ६७ ॥

प्राप्नोति मोहः संमोहं तांश्च दृष्ट्वा च भीतवत् ।
कामश्च कामिनं याति लोभक्रोधौततःसति । मृत्युः पलायतेरोगोजराशोकोभयन्तथा
कालः शुभाशुभं कर्म हर्षो भोगस्तथैव च ॥ ६६ ॥
ये ये न यान्तियामीश्च कथितास्ते मया सति । श्रृणुदेहविवरणं कथयामि यथागमम्
पृथिवीवायुराकाशं तेजस्तोयमितिस्फुटम् । देहिनां देहवीजञ्च स्रष्टुः सृष्टिविधौ परम्
पृथिव्यादि पञ्चभूतैर्यो देहोनिर्मितोभवेत् । सः कृत्रिमो नश्वरश्च भस्मसाच्च भवेदिह
वृद्धाङ्गुष्ठप्रमाणेन यो जीवः पुरुषाकृतिः । विभर्त्ति सूक्ष्मदेहञ्च तद्रूपं भोगहेतवे ॥ ७३ ॥
स देहो न भवेद्भस्म ज्वलदग्नौ ममालये । जले न नष्टो देहो वा प्रहारै सुचिरै कृते ॥
न शस्त्रे च न चास्त्रे च सुतीक्ष्णे कण्टके तथा । तप्तद्रवे तप्तलौहे तप्तपाषाण एव च ॥
प्रतप्तप्रतिमाश्लेषेऽप्यत्यूर्द्ध्वंपतनेऽपि च । कथितं देवि वृत्तान्तं कारणञ्च यथागमम् ।
कुण्डानां लक्षणं सर्वं निबोध कथयामिते । अधुनादेविकल्याणिकिंभूयःश्रोतुमिच्छसि

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे सावित्र्युपाख्याने पापिकुण्डनिर्णयो नाम एकत्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

द्वात्रिंशोऽध्यायः

यमसावित्रीसंवादवर्णनम् ।

सावित्र्युवाच ।

धर्मराज महाभाग वेदवेदाङ्गपारग । नानापुराणेतिहास-पञ्चरात्र-प्रदर्शक ॥ १ ॥
सर्वेषु सारभूतं यत् सर्वेष्टं सर्वसम्मतम् । कर्मच्छेदवीजरूपं प्रशंस्यं सुखदं नृणाम् ॥
यशःप्रदं धर्मदञ्च सर्वमंगलमंगलम् । येन यामीं न ते यान्ति यातनां भवदुःखदाम् ॥
कुण्डानि च न पश्यन्ति तत्र नैव पतन्ति च । न भवेद्येनजन्मादि तत्कर्म वद सुव्रत ॥
किमाकाराणिकुण्डानि कानि तेषां मितानि च । केनरूपेण तत्रैव तिष्ठन्ति पापिनःसदा

स्वदेहे भस्मसाद्भूते यान्तिलोकान्तरं नराः । केन देहेन वा भोगंभुञ्जते वा शुभाशुभम्
सुचिरं क्लेशभोगेन कथं देहो न नश्यति । देहो वा किंविधोब्रह्मन् तन्मेव्याख्यातुमर्हसि
सावित्रीवचनं श्रुत्वा धर्मराजो हरिं स्मरन् । कथां कथितुमारेभे गुरुं नत्वा च नारद

यम उवाच ।

वत्से चतुर्षु वेदेषु धर्मेषु संहितासु च । पुराणेष्वितिहासेषु पञ्चरात्रादिकेषु च ॥ ९ ॥
अन्येषु सर्वशास्त्रेषु वेदाङ्गेषु च सुव्रते । सर्वष्टसारभूतञ्च मङ्गलं कृष्णसेवनम् ॥१०॥
जन्ममृत्युजरारोगशोकसन्तापतारणम् । सर्वमङ्गलरूपञ्च परमानन्दकारणम् ॥ ११ ॥
कारणं सर्वसिद्धीनां नरकार्णवतारणम् । भक्तिवृक्षाङ्कुरकरं कर्मवृक्षनिकृन्तनम् ॥१२॥
गोलोकमार्गसोपानमविनाशिपदप्रदम् । सालोक्यसार्ष्टिसारूप्यसामीप्यादिप्रदं शुभे ॥
कुण्डानि यमदूतञ्च यमञ्च यमकिङ्करान् । न हिपश्यन्तिस्वप्नेन श्रीकृष्णकिङ्कराःसति
हरिव्रतं ये कुर्वन्ति गृहिणः कर्मभोगिनः । ये स्नान्ति हरितीर्थे च नाश्नन्ति हरिवासरे ।
प्रणमन्ति हरिं नित्यं हर्यर्चां पूजयन्ति च । न यान्तितेचघोराञ्च मम संयमनीं पुरीम्
त्रिसन्ध्यपूता विप्राश्च शुद्धाचारसमन्विताः । स्वधर्मनिरताःशान्ता नयान्तियममन्दिरम्

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे यमसावित्रीसंवादे
द्वात्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

कुण्डानां मानलक्षणवर्णनम् ।

यम उवाच ।

पूर्णेन्दुमण्डलाकारं सर्वकुण्डञ्च वर्त्तुलम् । अतीवनिम्नं पाषाणभेदैश्च खचितं सति ॥
न नश्वरञ्चाप्रलयं निर्मितञ्चेश्वरेच्छया । क्लेशदं पातकिनाञ्च नानारूपं तदालयम् ॥२
ज्वलदङ्गाररूपञ्च शतहस्तशिखान्वितम् । परितः क्रोशमानञ्च वह्निकुण्डं प्रकीर्त्तितम् ॥

महच्छब्दं प्रकुर्वद्भिः पापिभिः परिपूरितम् । रक्षितं ममदूतैश्चताड़ितैश्चापि सन्ततम् ॥
प्रतप्तोदकपूर्णञ्च हिंस्रजन्तुसमन्वितम् । महाघोरान्धकारञ्च पापिसङ्घेन सङ्कुलम् ॥
प्रकुर्वता काकुशब्दं प्रहारैर्घूर्णितेन च । क्रोशार्द्धमानं मद्दूतैस्ताड़ितेन च रक्षितम् ॥६॥
तप्तक्षारोदकैः पूर्णं नक्रैश्च परिवेष्टितम् । सङ्कुलं पापिभिश्चैव क्रोशमानं भयानकम् ॥
त्राहीति शब्दं कुर्वद्भिर्ममदूतैश्च ताड़ितैः । प्रचलद्भिरनाहारैः शुष्ककण्ठौष्ठतालुकैः ॥
विण्मूत्रैरेव पूर्णञ्च क्रोशमानञ्चकुत्सितम् । अतिदुर्गन्धिसंयुक्तं व्याप्तं पापिभिरेव च
ताड़ितैर्ममदूतैश्च अनाहारैरुपद्रवैः । रक्षेति शब्दं कुर्वद्भिस्तत्कीटैरेव भक्षितम् ॥ १० ॥
तप्तमूत्रद्रवैः पूर्णं मूत्रकीटैश्च संकुलम् । युक्तं महापापिभिश्च तत्कीटैर्दंशितं सदा ॥

गव्यूतिमानं ध्वान्ताक्तं शब्दकृद्भिश्च सन्ततम् ।
मद्दूतैस्ताड़ितैर्घोरैः शुष्ककण्ठौष्ठतालुकैः ॥ १२ ॥

श्लेष्मपूर्णं क्रोशमितं वेष्टितं चेष्टितैः सदा । तद्भोजिभिः पापिभिश्चतत्कीटैर्भक्षितैःसदा
क्रोशार्द्धं गरपूर्णञ्च गरभोजिभिरन्वितम् । गरकीटैर्भक्षितैश्च पापिभिः पूर्णमेव च ॥
ताड़ितैर्ममदूतैश्च शब्दकृद्भिश्च कम्पितैः । सर्पाकारैर्वज्रदंष्ट्रैः शुष्ककण्ठैः सुदारुणैः ॥
नेत्रयोर्मलपूर्णञ्च क्रोशार्द्धं कीटसंयुतम् । पापिभिः संकुलं शश्वत् रुवद्भिः कीटभक्षितैः
वसारसेन पूर्णञ्च क्रोशतुर्य्यं सुदुःसहम् । तद्भोजिभिः पातकिभिर्व्याप्तं दूतैश्चताड़ितैः
शुक्रपूर्णं क्रोशतुर्य्यं शुक्रकीटैश्चभक्षितैः । क्रन्दद्भिःपापिभिःशश्वत्संकुलंव्याकुलैर्भिया ॥
दुर्गन्धिरक्तपूर्णञ्च वापीमानं गभीरकम् । तद्भोजिभिः पापिभिश्च संकुलंकीटभक्षितैः ॥
पूर्णनेत्राश्रुभिर्नृणां वाप्यर्द्धं पापिभिर्युतम् । ताड़ितैर्ममदूतेन तद्भक्ष्यैःकीटभक्षितैः ॥२०
नृणां गात्रमलैः पूर्णं तद्भक्ष्यैः पापिभिर्युतम् । ताड़ितैर्ममदूतैश्च व्यग्रैश्च कीटभक्षितैः ॥

कर्णविट्परिपूर्णञ्च तद्भक्ष्यैः पापिभिर्युतम् ।
वापीतुर्य्यप्रमाणञ्च रुदद्भिः कीटभक्षितैः ॥ २२ ॥

मज्जापूर्णं नराणाञ्च महादुर्गन्धि संयुतम् । महापातकिभिर्युक्तं वापीतुर्य्यप्रमाणकम् ।
परिपूर्णं स्निग्धमांसैर्मम दूतैश्च ताड़ितैः । पापिभिः सङ्कुलञ्चैव वापीमानं भयानकम्
कन्याविक्रयिभिश्चैव तद्भक्ष्यैःकीटभक्षितैः । त्राहीति शब्दं कुर्वद्भिस्त्रासितैश्चभयानकैः

वापीतुर्य्यप्रमाणञ्च नखादिकचतुष्टयम् । पापिभिः संकुलं शश्वन्ममदूतैश्च ताड़ितैः ॥
प्रतप्ततात्रकुण्डञ्च ताम्रपर्य्युन्मुखान्वितम् । ताम्राणां प्रतिमालक्षैः प्रतप्तैरावृतंसदा ॥
प्रत्येकं प्रतिमाश्लिष्टैः रुदद्भिः पापिभिर्युतम् ।
गव्यूतिमानं विस्तीर्णं मम दूतैश्च ताड़ितैः ॥ २८ ॥
प्रतप्तलौहधारञ्च ज्वलदङ्गारसंयुतम् । लौहानां प्रतिमालक्षैः प्रतप्तैरावृतं सदा ॥२९॥
प्रत्येकं सर्वाश्लिष्टैश्च शश्वत् विचलितैर्भिया । रक्षरक्षेतिशब्दञ्च कुर्वद्भिर्दूतताड़ितैः ॥
महापातकिभिर्युक्तं द्विगव्यूतिप्रमाणकम् । भयानकं ध्वान्तयुक्तं लोहकुण्डंप्रकीर्त्तितम्
घर्मकुण्डं तप्तसुराकुण्डं वाप्यर्द्धमेव च । तद्भोजिभिः पापिभिश्च व्याप्तंमद्दूतताड़ितैः॥
अधः शाल्मलिवृक्षस्य तीक्ष्णकण्टककुण्डकम् ।
लक्षपौरुषमानञ्च क्रोशमानञ्च दुःखदम् ॥ ३३ ॥
धनुर्मानैः कण्टकैश्च सुतीक्ष्णैः परिवेष्टितम् ॥ ३४ ॥
प्रत्येकं कण्टकैर्विद्धं महापातकिभिर्युतम् । वृक्षाग्रान्निपतद्भिश्च ममदूतैश्च ताड़ितैः ॥
जलं देहीति शब्दञ्च कुर्वद्भिः शुष्कतालुकैः । महाभयातिव्यग्रैश्च दण्डेन भग्नमस्तकैः ।
प्रचलद्भिर्यथा तप्ततैले जीविभिरेवच ॥ ३६ ॥
विषौघैस्तक्षकादीनां पूर्वञ्च क्रोशमानकम् । तद्भक्ष्यैः पापिभिर्युक्तं मम दूतैश्च ताड़ितैः ॥
प्रतप्ततैलजपूर्णञ्च कीटादि परिवर्त्तितम् । तद्भक्ष्यैः पापिभिर्युक्तं स्निग्धगात्रैश्च वेष्टितैः॥
काकुशब्दं प्रकुर्वद्भिश्चलद्भिर्दूतताड़ितैः । महापातकिभिर्युक्तं द्विगव्यूतिप्रमाणकम् ॥
शस्त्रकुण्डं ध्वान्तयुक्तं क्रोशमानं भयानकम् ।
शूलाकारैः सुतीक्ष्णाग्रै लोहशस्त्रैश्च वेष्टितम् ॥ ४० ॥
शस्त्रतल्पस्वरूपञ्च क्रोशतुर्य्यप्रमाणकम् । पातकिभिर्वेष्टितञ्चकुन्तविद्धैश्च वेष्टितम् ॥
ताड़ितैर्मम दूतैश्च शुष्ककण्ठौष्ठतालुकैः । कीटैः संकुलमानैश्च सर्पयानैर्भयङ्करैः ॥
तीक्ष्णदन्तैश्च विकृतैर्व्याप्तं ध्वान्तयुतं सति । महापातकिभिर्युक्तं भीतैश्च कीटभक्षितैः
रुदद्भिः क्रोशमानञ्च ममदूतेन ताडितैः ॥ ४३ ॥
अतिदुर्गन्धिसंयुक्तं क्रोशार्द्धं पूयसंयुतम् । तद्भक्ष्यैः पापिभिर्युक्तं मम दूतेन ताड़ितैः ॥

द्विगव्यूतिप्रमाणञ्च हिमतोयप्रपूरितम् । तालवृक्षप्रमाणैश्च सर्पकोटिभिरावृतम् ॥
सर्पवेष्टितगात्रैश्च,पापिभिः सर्पभक्षितैः । सङ्कुलं शब्दकृद्भिश्च मम दूतैश्च ताड़ितैः ॥४६॥
कुण्डत्रयं मशादीनां पूर्णञ्च मशकादिभिः । सर्वं क्रोशार्द्धमानञ्च महापातकिभिर्युतम् ॥
हस्तपादादिभिर्बद्धैः क्षतैः क्षतजलोहितैः । हाहेति शब्दं कुर्वद्भिः प्रचलद्भिश्च सन्ततम् ॥
वज्रवृश्चिकयोः कुण्डं ताभ्याञ्च परिपूरितम् । वाप्यर्द्धं पापिभिर्युक्तं वज्रवृश्चिकदंशितैः।
कुण्डत्रयं शरादीनां तैरेव परिपूरितम् । तैर्विद्धैः पापिभिर्युक्तं वाप्यर्द्धं रक्तलोहितैः ॥
तप्तपङ्कोदकैःपूर्णं सध्वान्तं गोलकुण्डकम् । कीटैः सङ्कुलमानैश्च भक्षितैःपापिभिर्युतम्।
वाप्यर्द्धं परिपूर्णञ्च जलस्थैः नक्रकोटिभिः । दारुणैर्विकृताकारैर्भक्षितैः पापिभिर्युतम् ॥

विण्मूत्रश्लेष्मभक्ष्यैश्च संयुक्तं शतकोटिभिः ॥ ५३ ॥
काकैश्च विकृताकारैर्धनुर्लक्षञ्च पापिभिः ॥ ५४ ॥

सञ्चालवाजयोःकुण्डं ताभ्याञ्चपरिपूरितम् । भक्षितैःपापिभिर्युक्तं शब्दकृद्भिश्चसन्ततम्॥
धनुःशतं वज्रयुक्तं पापिभिः सङ्कुलं सदा । शब्दकृद्भिर्वज्रदग्धैरन्तध्वान्तमयं सदा ॥५६॥
वापीद्विगुणमानञ्च तप्तप्रस्तरनिर्मितम् । ज्वलदङ्गारसदृशं चलद्भिः पापिभिर्युतम् ॥५७॥
क्षुरधारोपमैस्तीक्ष्णैः पाषाणैर्निर्मितं परम् । महापातकिभिर्युक्तं क्षतं क्षतजलोहितैः ॥

दुर्गन्धि लालपूर्णञ्च तद्भक्ष्यैः पापिभिर्युतम् ।
क्रोशमानं गभीरञ्च मम दूतैश्च ताडितैः ॥ ५९ ॥

तप्ततोयाञ्जनाकारैः परिपूर्णं धनुःशतम् । चलद्भिः पापिभिर्युक्तं मम दूतेन ताड़ितैः ॥
पूर्णं चूर्णद्रवैः क्रोशमानं पापिभिरन्वितम् । तद्भोजिभिः प्रदग्धैश्च मम दूतैश्च ताडितैः

कुण्डं कुलालचक्राभं घूर्ण्यमानञ्च सन्ततम् ॥ ६१ ॥

सुतीक्ष्णषोडशारञ्च घूर्णितैःपापिभिर्युतम् । अतीव वक्रं निम्नञ्च द्विगव्यूतिप्रमाणकम्
कन्दराकारनिर्माणं तप्तोदकसमन्वितम् । महापातकिभिर्युक्तं भक्षितैर्जलजन्तुभिः ॥
प्रचलद्भिः शब्दकृद्भिर्ध्वान्तयुक्तं भयानकम् । कोटिभिर्विकृताकारैः कच्छपैश्चसुदारुणैः
जलस्थैःसंयुतंतैश्चभक्षितैःपापिभिर्युतम् । ज्वालाकलापैस्तेजोभिर्निर्माणंक्रोशमानकम्
शब्दकृद्भिः पापिभिश्च चलद्भिःसंयुतंसदा । क्रोशमानं गभीरञ्च तप्तसर्पभिरन्वितम् ॥

शश्वच्चलद्भिः संयुक्तं पापिभिर्भस्मभक्षितैः ॥ ६७ ॥

तप्तपाषाणलोष्ट्राणां समूहैः परिपूरितम् । पापिभिर्दग्धगात्रैश्च युक्तञ्च शुष्कतालुकैः ॥
क्रोशमानं ध्वान्तमयं गभीरमतिदारुणैः । ताड़ितैर्मम दूतैश्च दग्धकुण्डं प्रकीर्त्तितम् ॥
अत्यूर्मियुक्ततोयञ्च प्रतप्तक्षारसंयुतम् । नानाप्रकारविकृतं जलजन्तुसमन्वितम् ॥ ७० ॥
द्विगव्यूतिप्रमाणञ्च गभीरं ध्वान्तसंयुतम् । तद्भक्ष्यैः पापिभिर्युक्तं दंशितैर्जलजन्तुभिः ॥
चलद्भिः क्रन्दमानैश्च न पश्यद्भिः परस्परम् । उत्तप्तशूर्मिकुण्डञ्च कीर्त्तितञ्च भयानकम् ॥
असीवधारपत्रस्याप्युच्चैस्तालतरोरधः । क्रोशार्द्धमानकुण्डञ्च पतत्पत्रसमन्वितम् ॥
पापिनां रक्तपूर्णञ्च वृक्षाग्रात् पततां परम् । परित्राहीति शब्दञ्च कुर्वतामसतामपि ॥७४
गभीरं ध्वान्तसंयुक्तं रक्तकीटसमन्वितम् । तदसीपत्रकुण्डञ्च कीर्त्तितञ्च भयानकम् ॥
धनुःशतप्रमाणञ्च क्षुराकाराख्रसङ्कुलम् । पापिनां रक्तपूर्णञ्च क्षुरधारं भयानकम् ॥७६॥
सूचीवास्याख्रसंयुक्तं पापिरक्तौघपूरितम् । पञ्चाशद्धनुरायामं क्लेशदञ्च सूचीमुखम् ॥७७
कस्यचिज्जन्तुभेदस्य गोधेत्यस्य मुखाकृतम् । कूपरूपगभीरञ्च धनुर्विंशत्प्रमाणकम् ॥
महापातकिनाञ्चैव महाक्लेशकरं परम् । तत्कीटभक्षितानाञ्च नम्रास्यानाञ्च सन्ततम् ॥
कुण्डं नखमुखाकारं धनुः षोड़शमानकम् । गभीरं कूपरूपञ्च पापिष्ठैः संकुलं सदा ॥८०
गजेन्द्राणां समूहेन व्याप्तं कुण्डाकृतं स्थलम् । गजदन्तहतानाञ्च पापिनां रक्तपूरितम् ॥
तत्कीटभक्षितानाञ्च काकुशब्दकृतां सदा । धनुःशतप्रमाणञ्च कीर्त्तितं गजदंशनम् ॥
धनुस्त्रिंशत्प्रमाणञ्च कुण्डञ्च गोमुखाकृति । पापिनां दुःखदञ्चैव गोमुखंपरिकीर्त्तितम्
भ्रमितं कालचक्रेण सन्ततञ्च भयानकम् । कुम्भाकारं ध्वान्तयुक्तं द्विगव्यूतिप्रमाणकम्
लक्षपौरुषमानञ्च गभीरमतिविस्तृतम् । कुत्रचित्तप्ततैलञ्च कुण्डाभ्यन्तरमन्तिके ॥८५॥
कुत्रचित्तप्तलौहादि ताम्रादि कुण्डमेवच । कुत्रचित् तप्तपाषाणकुण्डाभ्यन्तरमन्तिके ॥

पापिनाञ्च प्रधानैश्च महापातकिभिर्युतम् ॥ ८६ ॥

परस्परं न पश्यद्भिः शब्दकृद्भिश्च सन्ततम् । ताड़ितैर्मम दूतैश्च दण्डैश्च मुषलैस्तथा ॥८७
घूर्णयमानं पतद्भिश्च मूर्च्छितैश्च मुहुर्मुहुः । पातितैर्मम दूतैश्च चात्यूद्ध्र्वात् पतितैःक्षणम्
यावन्तः पापिनः सन्ति सर्वकुण्डेषु सुन्दरि । तत्र कियद्गुणाः सन्ति कुम्भीपाकेच दुस्तरे

सुचिरं पतिताश्चैव भोगदेहविवर्जिताः । सर्वकुण्डप्रधानञ्च कुम्भीपाकं प्रकीर्त्तितम् ॥
कालनिर्मितसूत्रेण निवद्धा यत्र पापिनः । उत्थापिताश्च मद्दूतैः क्षणमेव निमज्जिताः ॥
निश्वासवद्धाः सुचिरं कुण्डानामन्तरे तथा । अतीवक्लेशयुक्ताश्च भोगदेहा न नश्वराः ॥
दण्डेन मुषलेनैव मम दूतैश्च ताड़िताः । प्रतप्ततोययुक्तञ्च कालसूत्रं प्रकीर्त्तितम् ॥ ९३ ॥
अवटः कूपभेदश्च यत्रोदञ्च तदाकृतिः । प्रतप्ततोयपूर्णञ्च धनुर्विंशत्प्रमाणकम् ॥ ९४ ॥
व्याप्तंमहापापिभिश्च दग्धगात्रैश्च सन्ततम् । मद्दूतैस्ताड़ितैःशश्वदवटोदं प्रकीर्त्तितम् ।
यत्तोयस्पर्शमात्रेण सर्वव्याधिश्च पापिनाम् । भवेदकस्मात् पततांयत्र कुण्डे धनुःशते ।
सर्वैरुद्धाः पापिनश्च तुदन्ति यत्र सन्ततम् । हाहेति शब्दं कुर्वन्तस्तदेवारुन्तुदं विदुः ॥
तप्तपांशुभिराकीर्णं ज्वलद्भिस्तु सदग्धकैः । तद्भक्ष्यैःपापिभिर्युक्तं पांशुभोजं धनुःशतम् ॥
पततां पापिनां यत्र भवेदेव प्रकम्पनम् । पतन्मात्रेच पापीच पाशेन वेष्टितो भवेत् ॥
क्रोशमानेच कुण्डे च तत् पाशवेष्टनं विदुः ॥ ९९ ॥
धनुर्विंशत्प्रमाणञ्च शूलप्रोतं प्रकीर्त्तितम् । पतन्मात्रेण पापीच शूलेन ग्रथितो भवेत् ।
पततां पापिनां यत्र भवेदेव प्रकम्पनम् ॥ १०१ ॥
अतीवहिमतोयेच क्रोशार्द्धञ्च प्रकम्पनम् । ददत्येवहि मद्दूता यत्रोल्काः पापिनांमुखे ॥
धनुर्विंशत्प्रमाणञ्च तदुल्काभिश्च सङ्कुलम् । लक्षपौरुषमानञ्च गभीरञ्च धनुःशतम् ॥
नानाप्रकारकृमिभिः संयुक्तञ्च भयानकैः । अत्यन्धकारव्याप्तं यत् कूपाकारंच वर्त्तुलम्
तद्भक्ष्यैः पापिभिर्युक्तं न पश्यद्भिः परस्परम् । तप्ततोयप्रदग्धैश्च चलद्भिः कीटभक्षितैः ॥
ध्वान्तेन चक्षुषा चान्धैरन्धकूपं प्रकीर्त्तितम् ॥ १०५ ॥
नानाप्रकारशस्त्रौघैर्यत्र विद्धाश्च पापिनः । धनुर्विंशत्प्रमाणंच वेधनं तत् प्रकीर्त्तितम् ॥
दण्डेन ताड़िता यत्र मम दूतैश्च पापिनः । धनुःषोड़शमानंच तत् कुण्डं दण्डताड़नम् ॥
निरुद्धाश्च महाजालैर्यथा मीनाश्च पापिनः । धनुस्त्रिंशत्प्रमाणंच जालबद्धं प्रकीर्त्तितम् ।
पततां पापिनां कुण्डे देहाश्चूर्णीभवन्तिच । लौहवेदीनिवद्धान्तः कोटिपौरुषमानकम् ॥
गभीरं ध्वान्तयुक्तंच धनुर्विंशत्प्रमाणकम् । मूर्च्छितानांजड़ानांच देहचूर्णं प्रकीर्त्तितम् ।
दलिताः पापिनो यत्र मद्दूतैर्मुषलैः सदा । धनुःषोड़शमानंच तत् कुण्डं दलनंस्मृतम् ॥

पतन्मात्रे यत्र पापी शुष्ककण्ठौष्ठतालुकः । वालुकासुच तप्तासु धनुस्त्रिंशत्प्रमाणकम् ।
शतपौरुषमानंच गभीरं ध्वान्तसंयुतम् । जलाहारविरहितंशोषणं तत् प्रकीर्त्तितम् ॥११३
नानाचर्मकषायोदं परिपूर्णं धनुःशतम् । दुर्गन्धियुक्तं तद्भक्ष्यैः पापिभिः सङ्कुलंकषम् ॥
सूर्पाकारमुखं कुण्डं धनुर्द्वादशमानकम् । तप्तलौहवालुकाभिः पूर्णं पातकिभिर्युतम् ॥

अन्तराग्निशिखानाञ्च ज्वालाव्याप्तमुखं सदा ।
धनुर्विंशत्प्रमाणञ्च यस्य कुण्डस्य सुन्दरि ॥ ११६ ॥
ज्वालाभिर्दग्धगात्रैश्च पापिभिर्व्याप्तमेव यत् ।
तन्महत् क्लेशदं शश्वत्कुण्डंज्वालामुखं स्मृतम् ॥ ११७ ॥

पतन्मात्राद्यत्रपापीमूर्च्छितोव्यथितो भवेत् । ततेष्टकाभ्यन्तरितंवाप्यद्धंजिह्मकुण्डकम् ॥
धूमान्धकारयुक्तञ्च धूमान्धैः पापिभिर्युतम् । धनुःशतंश्वासवद्धैर्धूमान्धंपरिकीर्त्तितम् ॥
पतन्मात्राद्यत्र पापी नागैश्च वेष्टितो भवेत् । धनुःशतं नागपूर्णं तन्नागवेष्टकुण्डकम् ॥
षड़शीति च कुण्डानिमयोक्तानिनिशामय । लक्षणञ्चापितेषाञ्चकिंभूयःश्रोतुमिच्छसि ॥
इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे यमसावित्रीसंवादे
कुण्डलक्षणप्रकथनं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ।

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

श्रीकृष्णगुणकीर्त्तनम् ।

सावित्र्युवाच

हरिभक्तिं देहि मह्यं सारभूतां सुदुर्लभाम् । त्वत्तः सर्वं श्रुतं देव नावशिष्टोऽधुना मम ।
किञ्चित् कथयमेधर्मं श्रीकृष्णगुणकीर्त्तनम् । पुंसां लक्षोद्धारवीजं नरकार्णवतारणम् ॥
कारणं मुक्तिसाराणां सर्वाशुभनिवारणम् । पावनंकर्मवृक्षाणां कृतपापौघहारणम् ॥३॥

मुक्तयः कतिधा सन्ति किं वा तासाञ्च लक्षणम् ।
हरिभक्तेर्मूर्त्तिभेदं निषेकस्यापि लक्षणम् ॥ ४ ॥
तत्त्वज्ञानविहीना च स्त्रीजातिर्विधिनिर्मिता । किं तज्ज्ञानं सारभूतं वद वेदविदांवर ॥
सर्वदानमनशनं तीर्थस्नानं व्रतं तपः । अज्ञानज्ञानदानस्य कलां नार्हन्ति षोड़शीम् ॥६
पितुः शतगुणा माता गौरवेणातिनिश्चिता । मातुः शतगुणैःपूज्यो ज्ञानदातागुरुःप्रभो ॥

यम उवाच

पूर्वं सर्ववरो दत्तो यत्ते मनसि वाञ्छितः । अधुना हरिभक्तिस्ते वत्सेभवतु मद्वरात् ॥
श्रोतुमिच्छसि कल्याणि श्रीकृष्णगुणकीर्त्तनम् ।
वक्तॄणां प्रश्नकर्त्तॄणां श्रोतॄणां कुलतारणम् ॥ ६ ॥
शेषो वक्त्रसहस्रेण न हि यद्वक्तुमीश्वरः । मृत्युञ्जयो न क्षमश्च वक्तुं पञ्चमुखेन च ॥
धाता चतुर्णां वेदानां विधाताजगतामपि । ब्रह्मा चतुर्मुखेनैव नालंविष्णुश्चसर्ववित् ॥
कार्त्तिकेयः षण्मुखेन नापिवक्तुमलं ध्रुवम् । न गणेशः समर्थश्चयोगीन्द्राणांगुरोर्गुरुः ॥
सारभूताश्च शास्त्राणां वेदाश्चत्वारएव च । कलामात्रंयद्गुणानां नविदन्तिबुधाश्चये ॥
सरस्वती च यत्नेन नालं यद्गुणवर्णने । सनत्कुमारो धर्मश्च सनकश्च सनातनः ॥१४॥
सनन्दः कपिलः सूर्य्योयेऽन्ये च ब्रह्मणःसुताः । विचक्षणा न यद्वक्तुं केवान्येजड़बुद्धयः ॥
न यद्वक्तुं क्षमाःसिद्धामुनीन्द्रायोगिनस्तथा । के वान्ये च वयं केवा भगवद्गुणवर्णने ॥
ध्यायन्ते यत्पदाम्भोजंब्रह्मविष्णुशिवादयः । अतिसाध्यंस्वभक्तानांतदन्येषांसुदुर्लभम् ॥
कश्चित् किञ्चिद्विजानाति तद्गुणोत्कीर्त्तनं महत् ।
अतिरिक्तं विजानाति ब्रह्मा ब्रह्मसुतादयः ॥ १८ ॥
ततोऽतिरिक्तं जानाति गणेशोज्ञानिनां गुरुः । सर्वातिरिक्तं जानातिसर्वज्ञः शम्भुरेवच ॥
तस्मै दत्तं पुरा ज्ञानं कृष्णेन परमात्मना । अतीवनिर्जने रम्ये गोलोके रासमण्डले ॥
तत्रैवकथितंकिञ्चित् यद्गुणोत्कीर्त्तनं पुनः । धर्मायकथयामासशिवलोकेशिवःस्वयम् ॥
धर्मस्तत्कथयामास पुष्करे भास्कराय च । यमाराध्य मम पिता मां प्राप तपसासति ॥

पूर्वं स्वविषयश्चाहं न गृह्णामि प्रयत्नतः । वैराग्ययुक्तस्तपसे गन्तुमिच्छामि सुव्रते ॥२३॥

तदा मां कथयामास पितायद्गुणकीर्त्तनम् । यथागमं तद्वदामि निबोधातीव दुर्गमम् ॥
तद्गुणं स न जानाति तदन्यस्यचकाकथा । यथाकाशो नजानाति स्वान्तमेववरानने ॥
सर्वान्तरात्मा भगवान् सर्वकारणकारणम् । सर्वेश्वरश्च सर्वाद्यःसर्ववित्सर्वरूपधृक् ॥
नित्यरूपी नित्यदेही नित्यानन्दो निराकृतिः । निरङ्कुशश्च निःशङ्को निर्गुणश्च निराश्रयः ॥
निर्लिप्तः सर्वसाक्षी च सर्वाधारः परात्परः । तद्विकाराश्चप्रकृतिस्तद्विकाराश्चप्राकृताः ॥
स्वयं पुमांश्च प्रकृतिः स्वयं च प्रकृतेः परः । रूपं विधत्तेऽरूपश्च भक्तानुग्रहहेतवे ॥२६॥
अतीव कमनीयश्च सुन्दरं सुमनोहरम् । नवीननीरदश्यामं किशोरं गोपवेशकम् ॥३०॥
कन्दर्पकोटिलावण्यलीलाधाम मनोहरम् । शरन्मध्याह्नपद्मानां शोभामोचनलोचनम् ॥
शरत्पार्वणकोटीन्दुशोभाप्रच्छादनाननम् । अमूल्यरत्ननिर्माणरत्नाभरणभूषितम् ॥३२॥
सस्मितं शोभितं शश्वदमूल्यपीतवाससा । परं ब्रह्मस्वरूपञ्च ज्वलन्तंब्रह्मतेजसा ॥३३॥
सुखदृश्यश्चशान्तश्चराधाकान्तमनन्तकम् । गोपीभिर्वीक्ष्यमाणश्चसस्मिताभिःसमन्ततः॥
रासमण्डलमध्यस्थं रत्नसिंहासनस्थितम् । वंशीं क्वणन्तं द्विभुजं वनमालाविभूषितम् ॥
कौस्तुभेनमणीन्द्रेणशश्वद्वक्षःस्थलोज्ज्वलम् । कुङ्कुमागुरुकस्तूरीचन्दनार्चितविग्रहम् ॥
चारुचम्पकमालाब्जमालतीमाल्यमण्डितम् । चारुचम्पकशोभाढ्यचूड़ावङ्किमराजितम् ॥
एवम्भूतञ्च ध्यायन्ते भक्ताभक्तिपरिप्लुताः । यद्भयाज्जगतां धाता विधत्तेसृष्टिमेवच ॥
कर्मानुरूपलिखनं करोति सर्वकर्मणाम् । तपसां फलदाता च कर्मणाञ्च यदाज्ञया ॥

विष्णुः पाता च सर्वेषां यद्भयात् पाति सन्ततम् ।
कालाग्निरुद्रः संहर्त्ता सर्वविश्वेषु यद्भयात् ॥ ४० ॥
शिवो मृत्युञ्जयश्चैव ज्ञानिनाञ्च गुरोर्गुरुः ।
यद्ज्ञानदानात् सिद्धेशो योगीशः सर्ववित् स्वयम् ॥ ४१ ॥

परमानन्दयुक्तश्च भक्तिवैराग्यसंयुतः । यत्प्रसादाद्वाति वातः प्रवरःशीघ्रगामिनाम् ।४२।
तपनश्च प्रतपति यद्भयात् सन्ततं सति । यदाज्ञया वर्षतीन्द्रो मृत्युश्चरति जन्तुषु ।४३।
यदाज्ञया दहेद्वह्निर्जलमेव सुशीतलम् । दिशो रक्षन्ति दिक्पाला महाभीता यदाज्ञया ॥
भ्रमन्ति राशिचक्राणि ग्रहाश्च यद्भयेन च । भयात्फलन्तिवृक्षाश्चपुष्पन्त्यपिचयद्भयात् ॥

भयात् फलानि पक्वानि निष्फलास्तरवोभयात् । यदाज्ञयास्थलस्थाश्चनजीवन्ति जलेषु च
तथा स्थले जलस्थाश्च न जीवन्ति यदाज्ञया । अहं नियमकर्त्ता च धर्माधर्मे च यद्भयात्
कालश्च कलयेत्सर्वं भ्रमत्येव यदाज्ञया । अकाले न हरेत्कालो मृत्युश्च यद्भयेन च ॥
ज्वलदग्नौ पतन्तश्च गभीरे च जलार्णवे । वृक्षाग्रात् तीक्ष्णखड्गे च सर्पादीनां मुखेषु च
नानाशस्त्रास्त्रविद्धश्च रणेषु विषमेषु च । पुष्पचन्दनतल्पे च बन्धुवर्गैश्च रक्षितम् ।

शयानं तन्त्रमन्त्रैश्च काले कालो हरेद्भयात् ॥ ५० ॥
धत्ते वायुस्तोयराशिं तोयं कूर्मं यदाज्ञया ॥ ५१ ॥

कूर्मोऽनन्तं स च क्षौणीं समुद्रान् सप्तपर्वतान् । सर्वांश्चैवक्षमारूपानानारूपंबिभर्त्तिसः
यतः सर्वाणि भूतानि लीयन्तेऽन्ते च तत्र च । इन्द्रायुश्चैवदिव्यानां युगानामेकसप्तति
अष्टाविंशच्छक्रपाते ब्रह्मणश्चेत्यहर्निशम् । अष्टाधिके पञ्चशते सहस्रे पञ्चविंशतौ ॥५४॥
युगे नराणां शक्रायुरेवंसंख्याविदो विदुः । एवंत्रिंशद्दिनैर्मासोद्वाभ्यान्ताभ्यामृतुःस्मृतः
ऋतुभिः षड्भिरेवाब्दं शताब्दं ब्रह्मणो वयः । ब्रह्मणश्च निपाते च चक्षुरुन्मीलनं हरेः ॥
चक्षुर्निमीलने तस्य लयं प्राकृतिकं विदुः । प्रलये प्राकृताः सर्वे देवाद्याश्च चराचराः ॥
लीनाधातरि धाता च श्रीकृष्णनाभिपङ्कजे । विष्णुःक्षीरोदशायी च वैकुण्ठेयश्चतुर्भुजः
विलीना वामपार्श्वे च कृष्णस्य परमात्मनः । रुद्राद्याभैरवाद्याश्च यावन्तश्च शिवानुगाः
शिवाधारे शिवेलीना ज्ञानानन्देसनातने । ज्ञानाधिदेवः कृष्णस्य महादेवस्य चात्मनः ॥
तस्य ज्ञानविलीनश्च बभूव च क्षणं हरेः । दुर्गायां विष्णुमायायां विलीनाः सर्वशक्तयः
सा च कृष्णस्य बुद्धौ च बुद्ध्यधिष्ठातृदेवता । नारायणांशःस्कन्दश्चलीनोवक्षसितस्यच
श्रीकृष्णांशश्च तद्बाहौ देवाधीशो गणेश्वरः । पद्मांशाचापिपद्मायां सा राधायाश्च सुव्रते
गोप्यश्चापिच तस्यां च सर्वाश्चदेवयोषितः । कृष्णप्राणाधिदेवीसातस्यप्राणेषुसा स्थिता
सावित्री च सरस्वत्यांवेदशास्त्राणियानि च । स्थितावाणीचजिह्वायांतस्यैवपरमात्मनः
गोलोकस्य च गोपाश्च विलीनास्तस्यलोमसु । तत्प्राणेषुच सर्वेषांप्राणा वाता हुताशनः
जठराग्नौ विलीनश्च जलं तद्रसनाग्रतः । वैष्णवाश्चरणाम्भोजे परमानन्दसंयुताः ॥६७॥

सारात्सारतरा भक्तिरसपीयूषपायिनः । विराट्क्षुद्रश्च महति लीनः कृष्णे महान् विराट्

यस्यैव लोमकूपेषु विश्वानि निखिलानि च । यस्य चक्षुर्निमेषेण महांश्च प्रलयो भवेत्
चक्षुरुन्मीलने सृष्टिर्यस्यैव पुनरेव च । यावत्कालो निमेषेण तावदुन्मीलने व्ययः ॥७०॥
ब्रह्मणश्च शताब्देन सृष्टिस्तत्र लयः पुनः । ब्रह्मसृष्टिलयानाञ्च संख्या नास्त्येव सुव्रते ॥

यथा भूरजसाञ्चैवा संख्यानाञ्च निशामय ॥ ७१ ॥

चक्षुर्निमेषे प्रलयो यस्य सर्वान्तरात्मनः । उन्मीलने पुनः सृष्टिर्भवेद्देवेश्वरेच्छया ॥७२॥

तद्गुणोत्कीर्त्तनं वक्तुं ब्रह्माण्डेषु च कः क्षमः ॥ ७३ ॥

यथा श्रुतं तातवक्त्रात् तथोक्तञ्च यथागमम् । मुक्तयश्च चतुर्वेदैर्निरुक्ताश्च चतुर्विधाः ॥
तत्प्रधाना हरेर्भक्तिर्मुक्तेरपि गरीयसी । सालोक्यदा हरेरेका चान्या सारूप्यदा परा ॥
सामीप्यदाचनिर्वाणदात्रीचैवमितिस्मृतिः । भक्तास्तानहिवाञ्छन्तिविनातत्सेवनादिकम्
सिद्धित्वममरत्वञ्च ब्रह्मत्वञ्चावहेलया । जन्ममृत्युजराव्याधिभयशोकादिखण्डनम् ॥
दिव्यरूपधारणञ्च निर्वाणं मोक्षदं विदुः । मुक्तिश्च सेवारहिता भक्तिः सेवाविवर्द्धिनी
भक्तिमुक्त्योरयं भेदो निषेकलक्षणं शृणु । विदुर्बुधा निषेकञ्च भोगञ्च कृतकर्मणाम् ॥
तत् खण्डनञ्च शुभदं श्रीकृष्णसेवनं परम् । तत्त्वज्ञानमिदं साध्वि सारञ्च लोकवेदयोः
विघ्नघ्नं शुभदं चोक्तं गच्छवत्सेयथासुखम् । इत्युक्त्वासूर्य्यपुत्रश्चजीवयित्वाचतत्पतिम्
तस्यै शुभाशिषं दत्त्वा गमनं कर्त्तुमुद्यतः । दृष्ट्वा यमञ्चगच्छन्तं सावित्री तं प्रणम्य च
रुरोद चरणेधृत्वा सद्विच्छेदोऽतिदुःखदः । सावित्रीरोदनं दृष्ट्वा यम एव कृपानिधिः

तामित्युवाच सन्तुष्टो रुरोद चापि नारद ॥ ८४ ॥

यम उवाच ।

लक्षवर्षं सुखं भुक्त्वा पुण्यक्षेत्रे च भारते । अन्ते यास्यसि गोलोके श्रीकृष्णभवनं शुभे
गत्वा च स्वगृहं भद्रे सावित्र्याश्च व्रतंकुरु । द्विसप्तवर्षपर्य्यन्तं नारीणां मोक्षकारणम् ॥
ज्यैष्ठे कृष्णचतुर्दश्यां सावित्र्याश्चव्रतंशुभम् । शुक्लाष्टम्यां भाद्रपदे महालक्ष्म्याव्रतंशुभम्
द्व्यष्टवर्षव्रतं चेदं प्रत्यब्दं पक्षमेव च । करोति परया भक्त्या सा याति च हरेः पदम् ॥
प्रतिमङ्गलवारे च देवीं मङ्गलचण्डिकाम् । प्रतिमासे शुक्लषष्ठ्यां षष्ठीं मङ्गलदायिकाम्

तथा चाषाढ़संक्रान्त्यां मनसां सर्वसिद्धिदाम् ।
राधां रासे च कार्त्तिक्यां कृष्णप्राणाधिकां प्रियाम् ॥ ६० ॥
उपोष्य शुक्लाष्टम्याञ्च प्रतिमासे वरप्रदाम् । विष्णुमायां भगवतींदुर्गां दुर्गतिनाशिनीम्
प्रकृतिं जगदम्बां च पतिपुत्रवतीं सतीम् । पतिव्रतासु शुद्धासु यन्त्रेषु प्रतिमासु च ॥
या नारी पूजयेद्भक्त्या धनसन्तानहेतवे । इहलोके सुखं भुक्त्वा यात्यन्ते श्रीहरेः पदम्
इत्युक्त्वा तां धर्मराजोजगामनिजमन्दिरम् । गृहीत्वास्वामिनंसाचसावित्रीचनिजालयम्
सावित्री सत्यवन्तश्च वृत्तान्तञ्च यथाक्रमम् । अन्यांश्चकथयामासबान्धवांश्चैव नारद
सावित्रीजनकः पुत्रान् संप्राप वै क्रमेण च । श्वशुरश्चक्षुषी राज्यं साचपुत्रान्वरेणच
लक्षवर्षं सुखं भुक्त्वा पुण्यक्षेत्रे च भारते । जगाम स्वामिना सार्द्धंगोलोकं सा पतिव्रता
सवितुश्चाधिदेवी या मन्त्राधिष्ठातृदेवता । सावित्रीचापिवेदानांसावित्री तेन कीर्त्तिता
इत्येवं कथितंवत्ससावित्र्याख्यानमुत्तमम् । जीवकर्मविपाकञ्च किं पुनःश्रोतुमिच्छसि

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे सावित्र्युपाख्यानं नाम चतुस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

लक्ष्म्युपाख्यानम् ।

नारद उवाच ।

श्रीकृष्णस्यात्मनश्चैव निर्गुणस्य निराकृतेः । सावित्री यमसंवादे श्रुतं सुनिर्मलं यशः
तद्गुणोत्कीर्त्तनंसत्यंमङ्गलानाञ्चमङ्गलम् । अधुनाश्रोतुमिच्छामिलक्ष्म्युपाख्यानमीश्वर
केनादौ पूजिता सापि किम्भूता केन वा पुरा । तद्गुणोत्कीर्त्तनं सत्यं वद वेदविदांवर

नारायण उवाच ।

सृष्टेरादौ पुरा ब्रह्मन् कृष्णस्य परमात्मनः । देवी वामांशसंभूता बभूव रासमण्डले ॥४
अतीव सुन्दरी श्यामा न्यग्रोधपरिमण्डला । यथा द्वादशवर्षीया शश्वत्सुस्थिरयौवना ।
श्वेतचम्पकवर्णाभा सुखदृश्या मनोहरा । शरत्पार्वणकोटीन्दुप्रभाप्रच्छादनानना ॥६ ॥

शरन्मध्याह्नपद्मानां शोभामोचनलोचना। साच देवी द्विधाभूता सहसैवेश्वरेच्छया ॥
समा रूपेण वर्णेन तेजसा वयसा त्विषा। यशसा वाससा मूर्त्या भूषणेन गुणेन च ॥
स्मितेन वीक्षणेनैव वचसा गमनेन च। मधुरेण स्वरेणैव नयेनानुनयेन च ॥ ६ ॥
तद्वामांशा महालक्ष्मीर्दक्षिणांशाचराधिका। राधादौ वरयामासद्विभुजञ्च परात्परम् ॥
महालक्ष्मीश्च तत्पश्चात् चकाम कमनीयकम्। कृष्णस्तद्गौरवेणैव द्विधारूपो बभूव ह
दक्षिणांशश्च द्विभुजो वामांशश्च चतुर्भुजः। चतुर्भुजाय द्विभुजो महालक्ष्मीं ददौपुरा ॥
लक्ष्यतेद्दृश्यते विश्वं स्निग्धदृष्ट्या ययानिशम्। देवीषुयाचमहती महालक्ष्मीश्चसास्मृता॥

द्विभुजो राधिकाकान्तो लक्ष्मीकान्तश्चतुर्भुजः।
गोलोके द्विभुजस्तस्थौ गोपैर्गोपीभिरावृतः ॥ १४ ॥

चतुर्भुजश्च वैकुण्ठं प्रययौ पद्मया सह। सर्वांशेन समौ तौद्वौ कृष्णनारायणौ परौ ॥
महालक्ष्मीश्च योगेन नानारूपा बभूव सा। वैकुण्ठे च महालक्ष्मीः परिपूर्णतमा परा ॥
शुद्धसत्वस्वरूपा च सर्वसौभाग्यसंयुता। प्रेम्णा साच प्रधानाच सर्वासु रमणीषुच ॥
स्वर्गे च स्वर्गलक्ष्मीश्च शक्रसम्पत्स्वरूपिणी। पातालेषुचमर्त्त्येषुराजलक्ष्मीश्चराजसु ॥
गृहलक्ष्मीर्गृहेष्वेव गृहणी च कलांशया। सम्पत्स्वरूपा गृहिणां सर्वमङ्गलमङ्गला ॥
गवां प्रसूः सा सुरभीदक्षिणायज्ञकामिनी। क्षीरोदसिन्धुकन्यासा श्रीरूपापद्मिनीषुच ॥
शोभारूपा च चन्द्रे च सूर्य्यमण्डलमण्डिता। विभूषणेषु रत्नेषु फलेषु च जलेषु च ॥
नृपेषु नृपपत्नीषु दिव्यस्त्रीषु गृहेषु च। सर्वशस्येषु वस्त्रेषु स्थानेषु संस्कृतेषु च ।२२।
प्रतिमासु च देवानां मङ्गलेषु घटेषु च। माणिक्येषु च मुक्तासु माल्येषु च मनोहरा ॥
मणीन्द्रेषु च हारेषु क्षीरेषु चन्दनेषु च। वृक्षशाखासु रम्यासु नवमेघेषु वस्तुषु ॥२४॥
वैकुण्ठे पूजिता सादौ देवी नारायणेन च। द्वितीये ब्रह्मणा भक्त्या तृतीयेशङ्करेण च ॥
विष्णुना पूजिता सा च क्षीरोदे भारते मुने। स्वाम्भुवेन मनुना मानवेन्द्रैश्च सर्वतः ॥
ऋषीन्द्रैश्चमुनीन्द्रैश्चसद्भिश्चगृहिभिर्भवेत्। गन्धर्वाद्यैश्चनागाद्यैःपातालेषुचपूजिता ॥
शुक्लाष्टम्यां भाद्रपदे कृता पूजाच ब्रह्मणा। भक्त्या च पक्षपर्यन्तं त्रिषु लोकेषुनारद ॥
चैत्रे पौषे च भाद्रे च पुण्ये मङ्गलवासरे। विष्णुनानिर्मिता पूजात्रिषुलोकेषुभक्तितः ॥
वर्षान्ते पौषसंक्रान्त्यां मध्यामावाह्य मङ्गले। मनुस्तां पूजयामास साभूता भुवनत्रये

राजेन्द्रेण पूजिता सा मङ्गलेनैव मङ्गला । केदारेणैव नीलेन नलेन सुबलेन च ॥३१॥
ध्रुवेणौत्तानपादेन शक्रेण बलिना तथा । कश्यपेन च दक्षेण मनुना च विवस्वता ॥
प्रियव्रतेन चन्द्रेण कुवेरेणैव वायुना । यमेन वह्निना चैव वरुणेनैव पूजिता ॥ ३३ ॥
एवं सर्वत्र सर्वैश्च वन्दितापूजितासदा । सर्वैश्वर्य्याधिदेवी सा सर्वसम्पत्स्वरूपिणी

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे लक्ष्म्युपाख्याने पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ।

षट्त्रिंशोऽध्यायः

इन्द्रं प्रति दुर्वाससःशापः ।

नारद उवाच

नारायणप्रिया सा च वरा वैकुण्ठवासिनी । वैकुण्ठाधिष्ठात्रीदेवी महालक्ष्मीःसनातनी
कथं बभूवसादेवीपृथिव्यांसिन्धुकन्यका । किंतद्ध्यानंचकवचं सर्वपूजाविधिक्रमम् ॥
पुरा केन स्तुतादौ सा तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ ३ ॥

नारायण उवाच

पुरा दुर्वाससः शापात् भ्रष्टश्रीकः पुरन्दरः । बभूव देवसंघश्च मर्त्यलोकश्चनारद ॥४॥
लक्ष्मीः स्वर्गादिकंत्यक्त्वारुष्टापरमदुःखिता । गत्वालीनाचवैकुण्ठेमहालक्ष्म्याञ्चनारद ॥
तदा शोकाद्ययुर्देवा दुःखिता ब्रह्मणःसभाम् । ब्रह्माणञ्च पुरस्कृत्य ययुर्वैकुण्ठमेव च ॥
वैकुण्ठे शरणापन्ना देवा नारायणे परे । अतीवदैन्ययुक्ताश्च शुष्ककण्ठौष्ठतालुकाः ॥
तदा लक्ष्मीश्चकलयापुरानारायणाज्ञया । बभूवसिन्धुकन्यासा शक्रसम्पत्स्वरूपिणी ॥
तदा मथित्वा क्षीरोदं देवा दैत्यगणैः सह । संप्रापुश्चवरंलक्ष्म्या दद्वशुस्ताञ्चतत्र हि ॥
सुरादिभ्यो वरं दत्त्वा वरमालाञ्च विष्णवे । ददौ प्रसन्नवदना तुष्टा क्षीरोदशायिने ॥
देवाश्चाप्यसुरग्रस्तं राज्यं प्रापुश्च तद्वरात् । तां सम्पूज्यचसस्तुत्यसर्वत्रच निरापदः ॥

नारद उवाच

कथं शशाप दुर्वासा मुनिश्रेष्ठः पुरन्दरम् । केन दोषेण वाब्रह्मन् ब्रह्मिष्ठंब्रह्मवित् पुरा ॥
ममन्थे केन रूपेण जलधिस्तैः सुरादिभिः । केन स्तोत्रेण सादेवी शक्रसाक्षाद्बभूवह ॥
को वा तयोश्च संवादो बभूव तद्वद प्रभो ॥ १४ ॥

नारायण उवाच

मधुपानप्रमत्तश्च त्रैलोक्याधिपतिः पुरा । क्रीड़ां चकार रहसि रम्भया सह कामुकः
कृत्वा क्रीड़ां तया सार्द्धंकामुक्याहृतचेतनः । तस्थौतत्रमहारण्ये कामोन्मथितचेतनः ॥
कैलासशिखरं यान्तं वैकुण्ठादृषिपुङ्गवम् । दुर्वाससं ददर्शेन्द्रो ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा ॥
ग्रीष्ममध्याह्नमार्त्तण्डसहस्रप्रभमीश्वरम् । प्रतप्तकाञ्चनाकारं जटाभारं महोज्ज्वलम् ॥
शुक्लयज्ञोपवीतञ्च चीरंदण्डंकमण्डलुम् । महोज्ज्वलञ्च तिलकं बिभ्रतंचन्द्रसन्निभम् ॥
समन्वितं शिष्यवर्गैर्वेदवेदाङ्गपारगैः । दृष्ट्वा ननाम शिरसा सम्भ्रमात्तं पुरन्दरः ॥२०॥
शिष्यवर्गञ्च भक्त्या च तुष्टावचमुदान्वितः । मुनिनाचसशिष्येण तस्मै दत्तंशुभाशिषम्
विष्णुदत्तं पारिजातपुष्पञ्च सुमनोहरम् । जरामृत्युरोगशोकहरं मोक्षकरं परम् ॥२२॥
शक्रः पुष्पं गृहीत्वा चप्रमत्तोराजसम्पदा । भ्रमेण स्थापयामास तद्वेहस्तिमस्तके ॥
हस्ती तत्स्पर्शमात्रेणरूपेणच गुणेनच । तेजसा वयसा कान्त्या विष्णुतुल्योबभूवसः ॥
त्यक्त्वा शक्रं गजेन्द्रश्च जगाम घोरकाननम् । न शशाक महेन्द्रस्तं रक्षितुंतेजसामुने ॥
तत्पुष्पं त्यक्तवन्तञ्च दृष्ट्वा शक्रं मुनीश्वरः । तमुवाच महारुष्टः शशाप स रुषान्वितः ॥

मुनिरुवाच

अरे श्रिया प्रमत्तस्त्वं कथं मामवमन्यसे । मद्दत्तपुष्पं दत्तञ्च गर्वेण हस्तिमस्तके ॥२७॥
विष्णोर्निवेदितं पुष्पं नैवेद्यं वाफलंजलम् । प्राप्तिमात्रेण भोक्तव्यं त्यागेनब्रह्महाजनः ॥
भ्रष्टश्रीर्भ्रष्टबुद्धिश्च भ्रष्टज्ञानो भवेन्नरः । यस्त्यजेद्विष्णुनैवेद्यं भाग्येनोपस्थितं शुभम् ॥
प्राप्तिमात्रेणयोभुङ्क्तेभक्त्याविष्णुनिवेदितम् । पुंसांशतंसमुद्धृत्यजीवन्मुक्तःस्वयंभवेत् ॥
विष्णुनैवेद्यभोजीयोनित्यन्तुप्रणमेद्धरिम् । पूजयेत्स्तौतिवाभक्त्यासविष्णुसदृशोभवेत् ॥
तत्स्पर्शवायुना सद्यः तीर्थौघश्च विशुध्यति । तत्पादरजसा मूढ सद्यः पूता वसुन्धरा ॥

पुंश्चल्यन्नमवीरान्नं शूद्रश्राद्धान्नमेव च। यद्धरेरनिवेद्यञ्च वृथामांसमभक्ष्यकम् ॥ ३३ ॥
शिवलिङ्गप्रदात्तान्नं यदन्नं शूद्रयाजिनाम्। चिकित्सकद्विजानाञ्च देवलान्नं तथैव च॥
कन्याविक्रयिणामन्नंयदन्नंयोनिजीविनाम्। अनुष्णान्नंपर्युषितंसर्वभक्ष्यावशेषितम्॥
शूद्रापति द्विजान्नं चवृषवाहद्विजान्नकम्। अदीक्षितद्विजान्नञ्च यदन्नं शवदाहिनाम्॥
अगम्यागामिनाञ्चैव द्विजानामन्नमेव च। मित्रद्रुहां कृतघ्नानामन्नंविश्वासघातिनाम्॥
मिथ्यासाक्षिप्रदानाञ्च ब्राह्मणानां तथैवच। एतत्सर्वं विशुद्धेत विष्णुनैवेद्यभक्षणात्॥

विष्णुसेवी च श्वपचो वंशानां कोटिमुद्धरेत्।
हरेरभक्तो विप्रश्च स्वञ्च रक्षितुमक्षमः ॥ ३६ ॥

अज्ञानाद्यदिगृह्णातिविष्णोर्निर्माल्यमेवच। सप्तजन्मार्जितात्पापान्मुच्यतेनात्रसंशयः॥
ज्ञात्वाभक्त्याचगृह्णातिविष्णोर्नैवेद्यमेवच। कोटिजन्मार्जितात्पापान्मुच्यतेनात्रसंशयः॥

यस्मात् संस्थापितं पुष्पं गर्वेण हस्तिमस्तके।
तस्माद् युष्मान् परित्यज्य यातु लक्ष्मीर्हरेः पदम् ॥ ४२ ॥

नारायणस्यभक्तोऽहंन बिभेमीश्वरंविधिम्। कालंमृत्युंजराञ्चैव कानन्यान्गणयामिच।
किं करिष्यतिते तातः कश्यपश्च प्रजापतिः। बृहस्पतिर्गुरुश्चैव निःशङ्कस्यच मे हरे ॥४४
इदं पुष्पं यस्य मूर्ध्नितस्यैवपूजनंपुरः। मूर्ध्निच्छिन्ने शिवशिशोश्छित्वेदंयोजयिष्यति।
इति श्रुत्वा महेन्द्रश्च धृत्वा तच्चरणद्वयम्। उच्चैरुरोद शोकार्त्तः तमुवाच भयाकुलः॥

इन्द्र उवाच।

दत्तःसमुचितः शापो मह्यंमत्ताय हेप्रभो। हृतात्वयाचेत् सम्पत्तिः कियत्ज्ञानञ्चदेहिमे॥
ऐश्वर्य्यंविपदांवीजं प्रच्छन्नज्ञानकारणम्। मुक्तिमार्गार्गलं दार्ढ्यं हरिभक्तिव्यवायकम्
जन्ममृत्युजरारोगशोकदुःखाङ्कुरं परम्। सम्पत्तितिमिरान्धश्च मुक्तिमार्गं न पश्यति॥
सम्पन्मत्तः सुमूढश्च सुरामत्तः सचेतनः। बान्धवैर्वेष्टितः सोऽपि बन्धुद्वेषकरो मुने॥
सम्पन्मदे प्रमत्तश्च विषयान्धश्च विह्वलः। महाकामी राजसिकः सत्त्वमार्गं न पश्यति।
द्विविधोविषयान्धश्चराजसस्तामसःस्मृतः। अशास्त्रज्ञस्तामसश्चशास्त्रज्ञोराजसःस्मृतः
शास्त्रे च द्विविधं मार्गं निर्दिष्टं मुनिपुङ्गव। प्रवृत्ति वीजमेकञ्च निवृत्तेः कारणं परम् ५३

वरन्ति जीविनश्चादौ प्रवृत्तौ दुःखवर्त्मनि । स्वच्छन्दे च प्रसन्नेचनिर्विरोधेच सन्ततम्
आपातमधुरे लोभात् क्लेशेच सुखमानिनः । परिणामनाशबीजे जन्ममृत्युजराकरे ॥५५॥
अनेकजन्मपर्य्यन्तं कृत्वाच भ्रमणं मुदा । स्वकर्मविहितायाञ्च नानायोन्यां क्रमेण च ॥
ततः कृष्णानुग्रहाच्च सत्सङ्गं लभते जनः । सहस्रेषु शतेष्वेको भवाब्धिपारकारणम् ॥
साधुः सत्त्वप्रदीपेन मुक्तिमार्गं प्रदर्शयेयत् । तदा करोति यत्नञ्च जीवी बन्धनखण्डने ॥
अनेकजन्मयोगेन तपसानशनेन च । तदा लभेन्मुक्तिमार्गं निर्विघ्नं सुखदं परम् ॥ ५९॥
इदं श्रुतं गुरोर्वक्त्रात् प्रसङ्गावसरेण च । न हि पृष्टमतोऽन्यच्च भवजञ्जालवेष्टितः ॥६०॥
अधुना विधिना दत्तो विपत्तौ ज्ञानसागरः । सम्पद्रूपा विपदियं मम निस्तारकारिणी ॥
ज्ञानसिन्धोदीनबन्धो मह्यं दीनायसाम्प्रतम् । देहि किञ्चित् ज्ञानसारं भवपारंदयानिधे
इन्द्रस्य वचनं श्रुत्वा प्रहस्य ज्ञानिनां गुरुः । ज्ञानं कथितुमारेभे ह्यतितुष्टः सनातनः ॥

मुनिरुवाच ।

अहो महेन्द्रमाङ्गल्यं मार्गेष्टं द्रष्टुमिच्छसि । आपातदुःखबीजञ्च परिणामसुखावहम् ॥
स्वगर्भयातनानाशपीड़ाखण्डनकारणम् । दुष्पारासारदुर्वार-संसारार्णवतारणम् ॥६५॥
कर्मवृक्षाङ्कुरच्छेदकारणं सर्वतारणम् । सन्तोषसन्ततिकरं प्रवरं सर्ववर्त्मनाम् ॥ ६६ ॥
दानेन तपसा वापि व्रतेनानशनादिना । कर्मणा स्वर्गभोगादिसुखं भवति जीविनाम् ॥
पूर्वकाम्यकर्मणाञ्च मूलं संछिद्य यत्नतः । अधुनेदं मोक्षबीजं संकल्पाभाव एव च ॥६८
यत्कर्म सात्विकं कुर्य्यादसंकल्पितमेव च । सर्वं कृष्णार्पणं कृत्वा परे ब्रह्मणि लीयते ॥
संसारिकाणामेतत्तु निर्वाणमोक्षणं विदुः । नैच्छन्ति वैष्णवास्तत्तु सेवाविरहकातराः
सेवां कुर्वन्ति ते नित्यं विधाय देहमुत्तमम् । गोलोके वापिवैकुण्ठेतस्यैवपरमात्मनः ॥
हरिसेवादिरूपाञ्च मुक्तिमिच्छन्तिवैष्णवाः । जीवन्मुक्ताश्चतेशक्तस्वकुलोद्धारकारिणः ॥
स्मरणं कीर्त्तनं विष्णोरर्चनं पादसेवनम् । वन्दनं स्तवनं नित्यं भक्त्या नैवेद्यभक्षणम् ॥
चरणोदकपानञ्च तन्मन्त्रजपनं परम् । इदं निस्तारबीजञ्च सर्वेषामीप्सितं भवेत् ॥७४
इदं मृत्युञ्जयं ज्ञानं दत्तं मृत्युञ्जयेन मे । तच्छिष्योऽहञ्च निःशङ्कः तत्प्रसादाचसर्वतः ॥
स जन्मदाता स गुरुः स बन्धुःसतांपरः । यो ददाति हरौभक्तिं त्रैलोक्येच सुदुर्लभाम् ॥

दर्शयेदन्यमार्गञ्च श्रीकृष्णसेवनं विना । स च तं नाशायत्येव ध्रुवं तद्वधभाग् भवेत् ॥
सन्ततं जगतां कृष्णनाम मङ्गलकारणम् । मङ्गलं वर्द्धते नित्यं न भवेदायुषो व्ययः ॥
तेभ्योऽप्यपैति कालश्चमृत्युश्चरोगएवच । सन्तापश्चैवशोकश्च वैनतेयादिवोरगाः ॥
कृष्णमन्त्रोपासकश्चब्राह्मणःश्वपचोऽपिवा । ब्रह्मलोकंसमुल्लङ्घ्ययाति गोलोकमुत्तमम् ॥
ब्रह्मणा पूजितः सोऽपि मधुपर्कादिना च वै । स्तुतःसुरैश्च सिद्धैश्चपरमानन्दभावनः ॥
ज्ञानसारं तपःसारं ब्रह्मसारं परं शिवम् । शिवेनोक्तं योगसारं श्रीकृष्णपादसेवनम् ॥
ब्रह्मादितृणपर्य्यन्तं सर्वं मिथ्यैव स्वप्नवत् । भज सत्यं परं ब्रह्म राधेशं प्रकृतेः परम् ॥
अतीव सुखदं सारं भक्तिदं मुक्तिदं परम् । सिद्धियोगप्रदञ्चैव दातारं सर्वसम्पदाम् ॥
योगिनामपिसिद्धानांयतीनाञ्चतपस्विनाम् । सर्वेषांकर्मभोगोऽस्तिननारायणसेविनाम्

भस्मसाच्च भवेत् पापं यदुपस्पर्शमात्रतः ।
ज्वलदग्नौ पातितञ्च यथा शुष्केन्धनं तथा ॥८६॥

ततो रोगाहि वेपन्ते पापानि च भयानि च । दूरतश्च पलायन्ते यमदूता यतो भयात् ॥
तावन्निवद्धः संसारे कारागारे विधेर्जनः । न यावत् कृष्णमन्त्रञ्चप्राप्नोति गुरुवक्त्रतः ॥
कृतकर्मभोगरूप निगड़च्छेदकारणम् । मायाजालोच्छेदकरं मायापाशनिकृन्तनम् ॥८६
गोलोकमार्गसोपानं निस्तारवीजकारणम् । भक्त्यङ्कुरस्वरूपञ्च नित्यंवृद्धमनश्वरम् ॥६०
सारञ्च सर्वतपसां योगानाञ्च तथैव च । सिद्धीनां वेदपाठानां व्रतादीनाञ्च निश्चितम् ॥
दानानां तीर्थस्नानानां यज्ञादीनां पुरन्दर । पूजानामुपवासनामित्याह कमलोद्भवः ॥६२
पुंसां लक्षपितृणाञ्च शतं मातामहस्य च । पूर्वं परञ्च तत् संख्यं पितरं मातरं गुरुम् ॥
सहोदरं कलत्रञ्च बन्धुं शिष्यञ्च किङ्करम् । समुद्धरेच्च श्वशुरं श्वश्रूं कन्याञ्चततसुतम् ॥
स्वात्मानञ्च सतीर्थञ्च गुरुपत्नीं गुरोः सुतम् । उद्धरेद् बलवान्भक्तोमन्त्रग्रहणमात्रतः ॥
मन्त्रग्रहणमात्रेण जीवन्मुक्तो भवेन्नरः । तत्स्पर्शपूतस्तीर्थौघः सद्यःपूतावसुन्धरा ॥६६
अनेकजन्मपर्य्यन्तं दीक्षाहीनो भवेन्नरः । तदन्यदेवमन्त्रञ्च लभते पुण्यलेशतः ॥६७॥
सप्तजन्मोपदेवानां कृत्वा सेवांस्वकर्मतः । लभते च रवेर्म्मन्त्रंसाक्षिणः सर्वकर्म्मणाम् ।
जन्मत्रयं भास्करञ्च निसेव्य मानवः शुचिः । लभेद्गणेशमन्त्रञ्च सर्वविघ्नहरं परम् ॥६६

जन्मत्रयं तं निसेव्य निर्विघ्नश्च भवेन्नरः। विघ्नेशस्य प्रसादेन दिव्यज्ञानं लभेन्नरः १००
तदा ज्ञानप्रदीपेन समालोच्यमहामतिः। अज्ञानान्धतमश्छित्वा महामायां भजेन्नरः॥
विष्णुमायाञ्चप्रकृतिंदुर्गां दुर्गतिनाशिनीम्। सिद्धिदांसिद्धिरूपाञ्चपरमांसिद्धियोगिनीम्
वाणीरूपाञ्च पद्माञ्च भद्रांकृष्णप्रियात्मिकाम्। नानारूपांतांनिसेव्यजन्मनांशतकं नरः॥
तत्प्रसादाद्भवेज्ज्ञानी ज्ञानानन्दं तदा भजेत्। कृष्णज्ञानाधिदेवञ्च महादेवं सनातनम्॥
शिवं शिवस्वरूपञ्च शिवदं शिवकारणम्। परमानन्दरूपञ्च परमानन्ददायिनम्॥१०५॥
सुखदं मोक्षदं चैव दातारं सर्वसम्पदाम्। अमरत्वप्रदञ्चैव दीर्घमायुष्प्रदं परम्॥१०६॥
इन्द्रत्वञ्च मनुत्वञ्च दातुं शक्तञ्च लीलया। राजेन्द्रत्वप्रदञ्चैव ज्ञानदं हरिभक्तिदम्॥१०७
जन्मत्रयं तमाराध्य चाशुतोषप्रसादतः। सर्वदस्यप्रसादेन शङ्करस्य महात्मनः॥१०८॥
वरदस्य वरेणैव हरिभक्तिं लभेद्ध्रुवम्। तदा तद्भक्तसंसर्गात् कृष्णमन्त्रं लभेद्ध्रुवम्॥
निर्म्मलज्ञानदीपेन प्रदीप्तेन च तत्त्ववित्। ब्रह्मादितृणपर्य्यन्तं सर्वंमिथ्यैवपश्यति॥११०
दयानिधेः प्रसादेन निर्म्मलज्ञानमालभेत्। वरदस्य वरेणैव हरिभक्तिं लभेद्ध्रुवम्॥

तदा निवृत्तिमाप्नोति सारात्सारां परात्पराम्।
यत्र देहे लभेन्मन्त्रं तद्देहावधि भारते॥ ११२॥
तत्पाञ्चभौतिकं त्यक्त्वा विभर्त्ति दिव्यरूपकम्।
करोति दास्यं गोलोके वैकुण्ठे वा हरेः पदे॥ ११३॥

परमानन्दसंयुक्तो मोहादिषु विवर्जितः। न विद्यते पुनर्जन्म पुनरागमनं हरे॥११४॥
पुनश्च न पिबेत्क्षीरंधृत्वामातृस्तनंपरम्। विष्णुमन्त्रोपासकानां गङ्गादितीर्थसेविनाम्॥
स्वधर्मिणाञ्च भिक्षूणां पुनर्जन्म न विद्यते। तीर्थेपरित्यजेत्पापंक्रियांकृत्वाहरिं भजेत्॥
अयं निरूपितो धात्रा स्वधर्मस्तीर्थसेविनाम्। तन्नाममन्त्रं प्रजपेत्तत्सेवादिषुतत्परः॥
तद्व्रतोपवासरत इत्युक्तो विष्णुसेविनाम्। सदन्ने वाकदन्नेवालोष्ट्रे वाकाञ्चने तथा॥
समबुद्धिर्यस्य शश्वत्सर्सन्न्यासीतिकीर्त्तितः। दण्डंकमण्डलुंरक्तवस्त्रमात्रञ्च धारयेत्॥
नित्यं प्रवासी नैकत्र स सन्न्यासीतिकीर्त्तितः। शुद्धाचारद्विजान्नञ्चभुङ्क्तेलोभादिवर्जितः
किन्तु किञ्चिन्नयाचेतससन्न्यासीतिकीर्त्तितः। नव्यापरोनाश्रमीचसर्वकर्मविवर्जितः॥

ध्यायेन्नारायणंशश्वत्ससन्न्यासीतिकीर्त्तितः । शश्वन्मौनीब्रह्मचारीसंभाषापरिवर्जितः॥
सर्वं ब्रह्ममयं पश्येत् ससन्न्यासीतिकीर्त्तितः । सर्वत्रसमबुद्धिश्च हिंसामायादिवर्जितः ॥
क्रोधाहङ्काररहितः ससन्न्यासीतिकीर्त्तितः । अयाचितोपस्थितञ्च मिष्टामिष्टञ्चभुक्तवान् ॥
न याचतेभक्षणार्थीससन्न्यासीतिकीर्त्तितः । नचपश्येन्मुखंस्त्रीणांन तिष्ठेत्तत्समोपतः ॥
दारवीमपि योषाञ्च न स्पृशेत् यःसभिक्षुकः । अयंसन्न्यासिनांधर्मइत्याहकमलोद्भवः ॥
विपर्य्यये विनाशश्च जन्म याम्यं भयंभवेत् । जन्मदुःखं याम्यदुःखंजीविनामतिदारुणम्
सुरशूकरयोनौ वा गर्भे दुःखं समं सुर । योनौ वा क्षुद्रजन्तुनां पश्वादीनां तथैव च ॥
गर्भे स्मरन्ति सर्वे ते कर्म्म जन्मशतोद्भवम् । विस्मरैन्निर्गतोजीवोगर्भाच्चविष्णुमायया।
स्वदेहं पाति यत्नेन सुरो वा कीट एव वा ॥१२६॥
योनेरभ्यन्तरे शुक्रे पतिते पुरुषस्य च । शुक्रः शोणितयुक्तश्च सहसा तत्क्षणं भवेत्॥
रक्ताधिके मातृसमश्चेतरे पितुराकृतिः । युग्माहे च भवेत् पुत्रः कन्यकातद्विपर्य्यये ॥
रविभौमगुरूणाञ्च वारे चेत्तद्भवेत् सुतः । अयुग्माहे तदितरे वारे च कन्यका भवेत्॥
प्रथमप्रहरे जन्म यस्य सोऽल्पायुरेव च । द्वितीये मध्यमश्चैव तृतीये तत्परो भवेत्॥
चतुर्थे चिरजीवी च क्षणानुरूपको भवेत् । दुःखी वाथ सुखी वापि पूर्वकर्मानुरूपतः ॥
यादृशे च क्षणे जन्म प्रसवस्तादृशे भवेत् । प्रसूतिक्षणचर्चाञ्च कुर्वन्त्येव विचक्षणाः ॥
कललन्त्वेकरात्रेण वर्द्धयेच्च दिने दिने । सप्तमे बदराकारो मासे गण्डुसमो भवेत् ॥
मासत्रये मांसपिण्डो हस्तपादादिवर्जितः । सर्वावयवसम्पन्नो देही मासे च पञ्चमे ॥
भवेत्तु जीवसञ्चारः षण्मासे सर्वतत्त्ववित् । दुःखी स्वल्पस्थलस्थायीशकुन्तइव पिञ्जरे ॥
मातृजग्धान्नपानञ्च भुङ्क्तेमेध्यस्थलेस्थितः । हाहेतिशब्दंकृत्वाचचिन्तयेदीश्वरं परम्॥
एवञ्च चतुरो मासान्भुक्त्वापरमयातनाम् । प्रेरितोवायुनाकालेगर्भाच्चनिर्गतोभवेत्॥
दिग्देशकालाव्युत्पन्नोविस्मृतो विष्णुमायया । शश्वद्विण्मूत्रसंयुक्तःशिशुश्च शैशवावधि
परायत्तोऽप्यक्षमश्च मशकादिनिवारणे । कीटादिभुक्तो दुःखी च रौति तत्र पुनःपुनः ॥
स्तनान्धोऽप्यसमर्थश्च याच्ञां कर्त्तुमभीप्सिताम् ।
न वाग्मी निःसरेत्तस्य पौगण्डावधि प्रस्फुटा ॥१४३॥

पौगण्डे यातनां भुक्त्वा प्राप्नोति यौवनं पुनः । नस्मरेन्मायया देही गर्भादियातनां पुनः ॥
आहारमैथुनार्त्तश्च नानामोहादिवेष्टितः । पुत्रं कलत्रमनुगं यत्नेन परिपालयेत् ॥१४५॥
एवं यावत् समर्थश्च तावदेव हि पूजितः । असमर्थश्च मन्यन्ते बान्धवा गोजरं यथा ॥
यदाऽतीव जरायुक्तोजड़ोऽतिवधिरोभवेत् । काशश्वासादियुक्तश्चपरायत्तोऽतिमूढ़वत्
तदन्तरेऽनुतापञ्च करोति सन्ततं पुनः । न सेवितो हरेस्तोर्थं सत्सङ्गश्चापि कामतः ॥
पुनश्च मानवीं योनिं लभामि भारतेयदि । तदातीर्थंगमिष्यामिभजामि कृष्णमित्यहो ॥
इत्येवमादि मनसि कुर्वन्तं तं जड़ं सुर । गृह्णाति यमदूतश्च काले प्राप्तेऽतिदारुणः ॥
स पश्येद्यमदूतञ्च पाशहस्तञ्च दण्डिनम् । अतीवकोपरक्ताक्षं विकृताकारमुल्वणम् ॥
दुर्निवार्य्यमुपायैश्च वलिष्ठञ्च भयङ्करम् । दुर्द्दृष्टं सर्वसिद्धिज्ञं सर्वाद्दृष्टंपुरःस्थितम् ।१५२

दृष्टिमात्रान्महाभीतो विण्मूत्रञ्च समुत्सृजेत् ।
तदा प्राणांस्त्यजेत् सद्यो देहञ्च पाञ्चभौतिकम् ॥ १५३॥

अङ्गुष्ठमात्रं पुरुषं गृहीत्वा यमकिङ्करः । विन्यस्य भोगदेहे च स्वस्थानंप्रापयेत् द्रुतम् ॥
जीवो गत्वा यमं पश्येत् सर्वधर्मज्ञमेव च । रत्नसिंहासनस्थञ्च सस्मितंसुस्थिरंपरम् ॥
धर्माधर्मविचारज्ञं सर्वज्ञं सर्वतोमुखम् । विश्वेष्वेकाधिकारञ्च विधात्रा निर्मितं पुरा ॥
वह्निशुद्धांशुकाधानं रत्नभूषणभूषितम् । वेष्टितं पार्षदगणैर्दूतैश्चापि त्रिकोटिभिः ।१५७
जपन्तं श्रीकृष्णनाम शुद्धस्फाटिकमालया । ध्यायमानंतत्पदाब्जं पुलकाङ्कितविग्रहम् ॥
सगद्गदं साश्रुनेत्रं सर्वत्र समदर्शिनम् । अतीव कमनीयञ्च शश्वत्सुस्थिरयौवनम् ।१५९।
स्वतेजसा प्रज्वलन्तं सुखदृश्यं विचक्षणम् । शरत्पार्वणचन्द्राभं चित्रगुप्तपुरःस्थितम् ॥
पुण्यात्मनां शान्तरूपं पापिनाञ्च भयङ्ककम् । तं दृष्ट्वा प्रमणेद्देही महाभीतश्च तिष्ठति ॥
चित्रगुप्तविचारेण येषांयदुचितं फलम् । शुभाशुभञ्च कुरुते तदेव रविनन्दनः ॥१६२॥
एवं तेषां गतायाते निवृत्तिर्नास्तिजीविनाम् । निवृत्तिहेतुरूपञ्च श्रीकृष्णपादसेवनम् ॥
इत्येतत्कथितं सर्वं वरंप्रार्थयवाञ्छितम् । सर्वं दास्यामि तेवत्सनमेऽसाध्यञ्चकिञ्चन ॥

महेन्द्र उवाच

इन्द्रत्वं च गतं भद्रं किमैश्वर्य्यं प्रयोजनम् । कल्पवृक्ष मुनिश्रेष्ठ देहि मे परमं पदम् ॥

महेन्द्रस्य वचः श्रुत्वा प्रहस्य मुनिपुङ्गवः । तमुवाच वचः सत्यं वेदोक्तं सारमेवच ॥

मुनिरुवाच

परं पदं विषयिणां महेन्द्रातिसुदुर्लभम् । मुक्तिर्युष्मद्विधानाञ्च न लये प्राकृतेऽपि च ॥
आविर्भावः सृष्टिविधौ तिरोभावोलयेऽपिच । यथा जागरणं सुप्तिर्भवत्येव क्रमेण च ॥
यथा भ्रमति कालश्च तथा विषयिणो ध्रुवम् । चक्रनेमिक्रमेणैव नित्यमेवेश्वरेच्छया ॥
पलमेकं भवेदेव यथा विपलषष्टिभिः । षष्टिभिश्च पलैर्दण्डो मुहूर्त्तो द्विगुणात्ततः ॥
त्रिंशद्भिश्च मुहूर्त्तैश्च भवेदेव दिवानिशम् । दशपञ्चदिवारात्रिः पक्षमेकं विदुर्बुधाः ॥

पक्षाभ्यां शुक्लकृष्णाभ्यां मास एव विधीयते ।
ऋतुर्द्वाभ्याञ्च मासाभ्यां संख्याविद्भिः प्रकीर्त्तितः ॥१७२॥

ऋतुत्रयेणायनञ्च ताभ्यां द्वाभ्याञ्च वत्सरः । विंशत्सहस्राधिकैव त्रिचत्वारिंशल्लक्षकैः ॥
वत्सरैर्नरमानैश्च युगाश्चत्वार एवच । षष्ट्यधिके पञ्चशते सहस्रे पञ्चविंशतौ ॥

युगे नराणां शक्रायुर्मनोरायुः प्रकीर्त्तितम् ॥ १७४ ॥
दिग्लक्षेन्द्रनिपातेऽष्टसहस्राधिक एव च ॥ १७५ ॥

निपातोब्रह्मणस्तत्र भवेत्प्राकृतिको लयः । लये प्राकृतिके वत्स कृष्णस्यपरमात्मनः ॥
चक्षुर्निमेषः सृष्टिश्च पुनरुन्मीलने तथा । ब्रह्मसृष्टिलयानाञ्च संख्या नास्ति श्रुतौश्रुतम् ॥
यथा पृथिव्यारेणूनामित्याह चन्द्रशेखरः । एतेषां मोक्षणंनास्ति कथितानिचयानिच ॥
सृष्टिसूत्रस्वरूपं हि चान्यद् वृणुवरंसुर । मुनीन्द्रस्यवचःश्रुत्वा देवेन्द्रो विस्मितोमुने ॥
आत्मनः पूर्वमैश्वर्य्यंवरयामासतत्र वै । तत्प्राप्स्यस्यचिरेणैवेत्युक्त्वा स प्रययौगृहम् ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे मुनीन्द्रसुरेन्द्रसंवादे लक्ष्म्युपाख्याने षट्त्रिंशोऽध्यायः ।

———

सप्तत्रिंशोऽध्यायः

हरिगुणश्रवणादिन्द्रस्य ज्ञानप्राप्तिः ।

नारद उवाच ।

हरेर्गुणं समाकर्ण्य ज्ञानं प्राप्य पुरन्दरः । किञ्चकार गृहं गत्वा तन्मेऽव्याख्यातुमर्हसि ॥

नारायण उवाच ।

श्रीकृष्णस्यगुणं श्रुत्वा वीतरागो बभूव सः । वैराग्यं वर्द्धयामास तदाब्रह्मन् दिनेदिने ॥
मुनिस्थानाद्गृहं गत्वासददर्शामरावतीम् । दैत्यैरसुरसङ्घैश्च समाकीर्णां भयाकुलाम् ॥
विषण्णबान्धवां कुत्र बन्धुहीनाञ्चकुत्रचित् । पितृमातृकलत्रादि विहीनामतिचञ्चलाम् ॥
शत्रुग्रस्ताञ्च तां दृष्ट्वा जगामवाक्पतिं प्रति । शक्रो मन्दाकिनी तीरे ददर्शगुरुमीश्वरम् ॥
ध्यायमानं परंब्रह्म गङ्गातोये स्थितं परम् । सूर्य्याभिसंमुखं पूर्वमुखञ्चविश्वतोमुखम् ॥
साश्रुनेत्रं पुलकितं परमानन्दसंयुतम् । वरिष्ठञ्च गरिष्ठञ्च धर्मिष्ठमिष्टसेविनम् ॥७॥
श्रेष्ठञ्च बन्धुवर्गाणामतिश्रेष्ठञ्च ज्ञानिनाम् । ज्येष्ठञ्चबन्धुवर्गाणां नेष्टञ्च सुरवैरिणाम्
दृष्ट्वा गुरुं जगन्तञ्च तत्र तस्थौ सुरेश्वरः । प्रहरान्ते गुरुं दृष्ट्वा चोत्थितं प्रणनाम सः ॥
प्रणम्य चरणाम्भोजे रुरोदोच्चैर्मुहुर्मुहुः । वृत्तान्तं कथयामास ब्रह्मशापादिकं तथा ॥
पुनर्वरो मया लब्धो ज्ञानप्राप्तिं सुदुर्लभाम् । वैरग्रस्ताञ्च स्वपुरीं क्रमेणैव सुरेश्वरः ॥
शिष्यस्य वचनं श्रुत्वा सतां बुद्धिमतां वरः । बृहस्पतिरुवाचेदं कोपरक्ताक्तलोचनः ॥

गुरुरुवाच ।

श्रुतं सर्वं सुरश्रेष्ठ मारोदीर्वचनं श्रृणु । न कातरो हि नीतिज्ञो विपत्तौ च कदाचन ॥
सम्पत्तिर्वा विपत्तिर्वा नश्वरास्वप्नरूपिणी । पूर्वस्वकर्मायत्ता च स्वयंकर्त्तातयोरपि ॥
सर्वेषाञ्च भ्रमत्येव शश्वज्जन्मनि जन्मनि । चक्रनेमिक्रमेणैव तत्र का परिदेवना ॥१५॥
भुङ्क्ते हि स्वकृतंकर्मसर्वत्रचापिभारते । शुभाशुभञ्च यत्किञ्चित् स्वकर्मफलभुक् पुमान्
माभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि । अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ॥

इत्येवमुक्तं वेदे च कृष्णेन परमात्मना। साम्नि कौथुमशाखायां संबोध्य स्वकुलोद्भवम्
जन्मभोगावशेषे च सर्वेषां कृतकर्मणाम्। अनुरूपश्च तेषाञ्च भारतेऽन्यत्र चैव हि॥
कर्मणा ब्रह्मशापश्च कर्मणा च शुभाशिषम्। कर्मणा च महालक्ष्मीं लभेद्दैन्यञ्च कर्मणा
कोटिजन्मार्जितं कर्म जीविनामनुगच्छति। न हि त्यजेद्विना भोगात् तंछायेव पुरन्दर॥
कालभेदे देशभेदे पात्रभेदे च कर्मणाम्। न्यूनताधिकता वापि भवेदेव हि कर्मणाम्॥
वस्तुदाने च वस्तूनां समं पुण्यं समे दिने। दिनभेदे कोटिगुणमसंख्यं वाधिकं ततः॥
समे देशे च वस्तूनां दाने पुण्यं समं सुर। देशभेदे कोटिगुणमसंख्यंवाधिकं ततः।२४
समे पात्रे समं पुण्यं वस्तूनां कर्त्तुरेव च। पात्रभेदे शतगुणमसंख्यं वा ततोऽधिकम्॥
यथा फलन्ति शस्यानि न्यूनानि वाधिकानि च। कृषकाणां क्षेत्रभेदे पात्रभेदेफलं तथा
सामान्यदिवसे विप्रे दानं समफलं भवेत्। अमायां रविसंक्रान्त्यां फलं शतगुणंभवेत्
चातुर्मास्यां पौर्णमास्यामनन्तफलमेव च॥ २७॥
ग्रहणे शशिनः कोटिगुणञ्च फलमेव च। सूर्य्यस्य ग्रहणे चापि ततो दशगुणं फलम्॥
अक्षयायामक्षयञ्चैवासंख्यं फलमुच्यते। एवमन्यत्र पुण्याहे फलाधिक्यं भवेदिह॥२६॥
यथा दाने तथा स्नाने जपेऽन्य पुण्यकर्मसु। एवं सर्वत्र बोद्धव्यं नराणां कर्मणांफलम्
सामान्यदेशे दानञ्च विप्रे समफलं भवेत्। तीर्थे देवगृहे चैव फलं शतगुणं स्मृतम्॥
गङ्गायाञ्च कोटिगुणं क्षेत्रे नारायणेऽव्ययम्। कुरुक्षेत्रे बदर्य्याञ्च काश्यांकोटिगुणंतथा
यथा चैव कोटिगुणं तथा च विष्णुमन्दिरे। केदारे च लक्षगुणं हरिद्वारे तथा फलम्॥
पुष्करे भास्करक्षेत्रे दशलक्षगुणं फलम्। एवं सर्वत्र बोद्धव्यं फलाधिक्यं क्रमेण च॥
सामान्यब्राह्मणे दानं सममेव फलं लभेत्। लक्षं त्रिसन्ध्यपूते च पण्डिते च जितेन्द्रिये
विष्णुमन्त्रोपासके च बुधेकोटिगुणं फलम्। एवं सर्वत्र बोद्धव्यं फलाधिक्यंगुणाधिके
यथा दण्डेन सूत्रेण शरावेण जलेन च। कुम्भं निर्माति चक्रेण कुम्भकारो मृदाभुवि॥
तथैव कर्मसूत्रेण फलं धाता ददाति च। यस्याज्ञया सृष्टिविधौ पञ्च नारायणं भज॥
स विधाता विधातुश्चपातुः पाताजगत्त्रये। स्रष्टुः स्रष्टा च संहर्त्तुः संहर्ताकालकालकः
महाविपत्तौ संसारे यः स्मरेन्मधुसूदनम्। विपत्तौ तस्य सम्पत्तिर्भवेदित्याह शङ्करः॥

इत्येवमुक्त्वा जीवश्च समालिङ्ग्य सुरेश्वरम् ।
दत्वा शुभाशिषं चेष्टं बोधयामास नारद ॥ ४१ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायण-नारदीये वृहस्पतिमहेन्द्रसंवादे महालक्ष्म्युपाख्याने सप्तत्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

अष्टत्रिंशोऽध्यायः

महालक्ष्म्युपाख्याने विष्णुभक्तस्य शुभकथनम् ।

नारायण उवाच ।

हरिं ध्यात्वा हरिर्ब्रह्मन् जगाम ब्रह्मणः सभाम् । वृहस्पतिं पुरस्कृत्य सर्वैःसुरगणैःसह।
शीघ्रं गत्वा ब्रह्मलोकं दृष्ट्वाच कमलोद्भवम् । प्रणेमुर्देवताः सर्वाः गुरुणा सह नारद ॥२॥
वृत्तान्तंकथयामास सुराचार्य्योविधिंविभुम् । प्रहस्योवाचतत् श्रुत्वामहेन्द्रंकमलोद्भवः ।

ब्रह्मोवाच ।

वत्समद्वंशजातोऽसिप्रपौत्रोमेविचक्षणः । वृहस्पतेश्चशिष्यस्त्वंसुराणामधिपःस्वयम् ॥
मातामहस्ते दक्षश्च विष्णुभक्तःप्रतापवान् । कुलत्रयं यच्छुद्धश्चकथं सोऽहङ्कृतोभवेत्।
मातापतिव्रता यस्य पिताशुद्धोजितेन्द्रियः। मातामहोमातुलश्च कथंसोऽहङ्कृतोभवेत्।
जनः पैतृकदोषेण दोषान्मातामहस्य च । गुरोर्दोषान्नीतिदोषैर्हरिद्वेषी भवेद्ध्रुवम् ॥७॥
सर्वान्तरात्माभगवान् सर्वदेहेष्ववस्थितः । यस्य देहात्सप्रयातिस शवस्तत्क्षणंभवेत् ॥
मनोऽहमिन्द्रियेशश्च ज्ञानरूपो हि शङ्करः । विष्णुः प्राणाश्च प्रकृतिर्बुद्धिर्भगवती सती ॥
निद्रादयः शक्तयश्चताःसर्वाःप्रकृतेःकलाः । आत्मनः प्रतिविम्बश्चजीवो भोगीशरीरभृत्।
आत्मनीशेगते देहात् सर्वेयान्तिःससंभ्रमात् । यथा वर्त्मनिगच्छन्तं नरदेवमिवानुगाः ।
अहं शिवश्चशेषश्च विष्णुर्धर्मो महान् विराट् । वयंयदंशा भक्ताश्च तत् पुष्पं न्यक्कृतंत्वया
शिवेन पूजितं पादपद्मं पुष्पेण येन च । तच्च दुर्वाससा दत्तं दैवेन न्यक्कृतं सुर ॥१३॥

तत् पुष्पंमस्तके यस्य कृष्णपादाब्जप्रच्युतम् । सर्वेषाञ्च सुराणाञ्च तत्पूजा पुरतोभवेत्।
दैवेन वञ्चितस्त्वञ्च दैवञ्च बलवत्तरम् । भाग्यहीनं जनं मूढं कोवा रक्षितुमीश्वरः ॥१५
कृष्णंन मन्यतेयो हि श्रीनाथं सर्ववन्दितम् । प्रयातिरुष्टा तद्दासी महालक्ष्मीर्विहायताम्
शतयज्ञेनयालब्धा दीक्षितेन त्वयापुरा । साश्रीर्गताधुना कोपात् कृष्णनिर्माल्यवर्जनात्।
अधुनागच्छ वैकुण्ठं मयाच गुरुणा सह । निषेव्यतत्रश्रीनाथं श्रियं प्राप्स्यसि तद्वरात्।
इत्येवमुक्त्वा स ब्रह्मा सर्वैः सुरगणैःसह । शीघ्रं जगाम वैकुण्ठंयत्र श्रीशस्तया सह ॥
तत्र गत्वा परं ब्रह्म भगवन्तं सनातनम् । दृष्ट्वा तेजस्वरूपञ्च प्रज्वलन्तं स्वतेजसा ॥२०

ग्रीष्ममध्याह्नमार्त्तण्डशतकोटिसमप्रभम् ।
शान्तञ्चानादिमध्यान्तं लक्ष्मीकान्तमनन्तकम्॥ २१ ॥

चतुर्भुजैः पार्षदैश्च सरस्वत्या स्तुतं नतम् । भक्त्या चतुर्भिर्वेदैश्च गङ्गया परिसेवितम्॥
तं प्रणेमुः सुराः सर्वे मूर्ध्ना ब्रह्मपुरोगमाः । भक्तिनम्रा साश्रुनेत्रास्तुष्टुवुः पुरुषोत्तमम् ॥
वृत्तान्तं कथयामास स्वयं ब्रह्मा कृताञ्जलिः । रुरुदुर्देवताः सर्वाः स्वाधिकारच्युताश्च ताः
स ददर्श सुरगणं विपद्ग्रस्तं भयाकुलम् । वस्त्रभूषणशून्यञ्च वाहनादिविवर्जितम् ॥२५
शोभाशून्यं हतश्रीकमतिनिष्प्रतिभं परम् । उवाच कातरं दृष्ट्वा विपन्नभयभञ्जनः ॥२६॥

नारायण उवाच ।

माभैर्ब्रह्मन् हे सुराश्चभयंकिंवो मयिस्थिते । दास्यामि लक्ष्मीमचलां परमैश्वर्य्यवर्द्धिनीम्।
किञ्च मद्वचनं किञ्चित् श्रूयतां समयोचितम् । हितं सत्यं सारभूतं परिणामसुखावहम्
जनाश्चासंख्यविश्वस्था मदधीनाश्चसन्ततम् । यथातथाहं मद्भक्तैः पराधीनःस्वतन्त्रकः ॥

यो यो रुष्टो हि मद्भक्ते मत्परे हि निरङ्कुशः ।
तद् गृहेऽहं न तिष्ठामि पद्मया सह निश्चितम् ॥ ३० ॥

दुर्वासा शङ्करांशश्च वैष्णवोमत्परायणः । तत् शापादागतोऽहञ्च सश्रीकोवोगृहादपि।
यत्र शङ्खध्वनिर्नास्ति तुलसीच शिलार्चनम् । न भोजनञ्च विप्राणां न पद्मा तत्र तिष्ठति।
मद्भक्तानाञ्च मन्निन्दा यत्र यत्र भवेत् सुराः ।महारुष्टा महालक्ष्मीस्ततोयाति पराभवात्
मद्भक्तिहीनोयो मूढोयो भुङ्क्तेहरिवासरे । ममजन्मदिने चापियाति श्रीःस्तद्गृहादपि ।

मन्नामविक्रयी यश्च विक्रीणाति स्वकन्यकाम् ।
यत्रातिथिर्न भुंक्ते च मत्प्रिया याति तद्गृहात् ॥३५॥

पापिनांयोगृहंयाति शूद्रश्राद्धान्नभोजिनाम् । महारुष्टाततोयाति मन्दिरात्कमलालया ॥
शूद्राणां शवदाही च भागपहीनश्च ब्राह्मणः । यातिरुष्टा तद्गृहाच्च देवी कमलवासिनी ॥
शुद्राणां सूपकारोयो ब्राह्मणो वृषवाहकः । तत्तोयपानभीताच कमलायातितद्गृहात् ॥
विप्रो यवनसेवी च देवलः शूद्रयाजकः । तत्तोयपानभीता च वैष्णवीयाति तद्गृहात् ॥

विश्वासघाती मित्रघ्नो नरघाती कृतघ्नकः ।
योऽगम्यागामुको विप्रो मद्भार्य्या याति तद्गृहात् ॥४०॥

अशुद्धहृदयःक्रूरो हिंसको निन्दकोद्विजः । ब्राह्मण्यां शूद्रजातश्च यातिदेवीचतद्गृहात् ।

यो विप्रः पुंश्चलीपुत्रो महापापी च तत्पतिः ।
अवीरान्नञ्च यो भुङ्क्ते तस्माद्याति जगत्प्रसूः ॥४२॥
तृणं छिनत्ति नखरैस्तैर्वा यो हि लिखेन्महीम् ।
जिह्मो वा मलवासांश्च सा प्रयाति च तद्गृहात् ॥४३॥

सूर्य्योदये चह्निर्भोजीदिवाशायीचब्राह्मणः । दिवामैथुनकारीचतस्माद्याति हरिप्रिया ॥

आचारहीनो यो विप्रः यश्च शूद्रप्रतिग्रही ।
अदीक्षितो हि यो मूढस्तस्मात् लोला प्रयाति च ॥४५॥

स्निग्धपादश्चनग्नोवायःशेतेज्ञानदुर्बलः । शश्वद्धर्मातिवाचालो यात्येव तद्गृहात् सती ॥
शिरः स्नातश्चतैलेनयोऽन्यदङ्गमुपस्पृशेत् । स्वाङ्गे च वादयेद्वाद्यं रमा यातिच तद्गृहात्॥
व्रतोपवासहीनोयःसन्ध्याहीनोऽशुचिर्द्विजः । विष्णुभक्तिविहीनोयस्तस्माद्यातिहरिप्रिया

ब्राह्मणं निन्दयेद् यो हि तांश्च द्वेष्टि च सन्ततम् ।
जीवहिंसी दयाहीनो याति सर्वप्रसूस्ततः ॥ ४६ ॥

यत्र तत्र हरेरर्चा हरेरुत्कीर्त्तनं शुभम् । तत्र तिष्ठति सा देवी कमला सर्वमङ्गला ॥५०॥
यत्र प्रशंसा कृष्णस्य तद्भक्तस्य पितामह । सा च कृष्णप्रिया देवी तत्रतिष्ठतिसन्ततम् ॥
यत्र शङ्खध्वनिः शङ्खः शिलाचतुलसीदलम् । तत्सेवा वन्दनं ध्यानं तत्रसापरितिष्ठति ॥

शिवलिङ्गार्चनं यत्र तस्य चोत्कीर्त्तनं शुभम् । दुर्गार्चनं तद्गुणाश्चतत्रपद्मनिवासिनी ॥
विप्राणां सेवनं यत्र तेषाञ्च भोजनं शुभम् । अर्चनंसर्वदेवानांतत्रपद्ममुखी सती ॥५४॥
इत्युक्त्वा च सुरान् सर्वान् रमामाह रमापतिः । क्षीरोदसागरेजन्मकलयाचलभेतिच ॥
इत्युक्त्वा तान् जगन्नाथो ब्रह्माणं पुनराहच । मथित्वासागरंलक्ष्मींदेवेभ्योदेहि पद्मज ॥
इत्युक्त्वा कमलाकान्तो जगामाभ्यन्तरं मुने । देवाश्चिरेणकालेनययुः क्षीरोदसागरम् ॥
मन्थानं मन्दरं कृत्वा कूर्मं कृत्वा चभाजनम् । कृत्वाशेषंमन्थपाशंसुराश्चक्रुश्च घर्षणम् ॥
धन्वन्तरिञ्च पीयूषमुच्चैश्रवसमीप्सितम् । नानारत्नं हस्तिरत्नं प्रापुर्लक्ष्म्याश्चदर्शनम् ॥
वनमालां ददौ सा च क्षीरोदशायिने मुने । सर्वेश्वराय रम्याय विष्णवेवैष्णवीसती ॥
देवैःस्तुता पूजिता च ब्रह्मणा शङ्करेण च । ददौ दृष्टिं सुरगृहे ब्रह्मशापविमोचने ॥६१॥
प्रापुर्देवाः स्वविषयं दैत्यैर्ग्रस्तं भयङ्करैः । महालक्ष्मीप्रसादेन वरदानेन नारद ॥ ६२ ॥
इत्येवं कथितं सर्वंलक्ष्म्युपाख्यानमुत्तमम् । सुखदंसारभूतञ्चकिंभूयःश्रोतुमिच्छसि ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायण नारद संवादे
लक्ष्म्युपाख्यानेऽष्टत्रिंशोऽध्यायः ।

ऊनचत्वारिंशोऽध्यायः

लक्ष्मीनाशात्पुनस्तत्प्राप्तये इन्द्रेणलक्ष्म्याःपूजनम् ।

नारद उवाच ।

हरेरुत्कीर्त्तनं भद्रं श्रुतं तज्ज्ञानमुत्तमम् । ईप्सितंलक्ष्म्युपाख्यानंध्यानंस्तोत्रादिकंवद ॥
हरिणा पूजिता पूर्वं ततो ब्रह्मादिभिस्तथा । शक्रेणभ्रष्टराज्येन सार्द्धं सुरगणेन च ॥२॥
पूजिता केन ध्यानेन विधिना केनवापुरा । स्तुता वा केनस्तोत्रेणतन्मेव्याख्यातुमर्हसि

श्रीनारायण उवाच ।

स्नात्वा तीर्थे पुरा शक्रो धृत्वा धौते च वाससी ।
घटं संस्थाप्य क्षीरोदे देवषट्कञ्च पूजितम् ॥ ४ ॥

गणेशञ्च दिनेशञ्च वह्निं विष्णुं शिवं शिवाम् । एतान्भक्त्यासमभ्यर्च्यपुष्पगन्धादिभिस्तथा
तत्रावाह्यमहालक्ष्मीं परमैश्वर्य्यरूपिणीम् । पूजाञ्चकार देवेशो ब्रह्मणा च पुरोधसा ॥
पुरःस्थितेषु मुनिषु ब्राह्मणेषु गुरौ तथा । देवादिषु च देवेशे ज्ञानानन्दे शिवे मुने ॥७॥
पारिजातस्य पुष्पञ्चगृहीत्वाचन्दनोक्षितम् । ध्यात्वादेवींमहालक्ष्मींपूजयामास नारद ॥
ध्यानञ्च सामवेदोक्तं यदुक्तं ब्रह्मणे पुरा । हरिणा तेन ध्यानेन तन्निबोध वदामि ते ॥
सहस्रदलपद्मस्य कर्णिकावासिनीं पराम् । शरत्पार्वणकोटीन्दुप्रभाजुष्टकरांवराम् ॥१०

स्वतेजसा प्रज्वलन्तीं सुखदृश्यां मनोहराम् ।
प्रतप्तकाञ्चननिभां शोभां मूर्तिमतीं सतीम् ॥ ११ ॥

रत्नभूषणभूषाढ्यांशोभितांपीतवाससा । ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां शश्वत्सुस्थिरयौवनाम् ॥
सर्वसम्पत्प्रदात्रीञ्च महालक्ष्मीं भजेशुभाम् । ध्यानेनानेनतांध्यात्वा नानोपहारसंयुतः ॥
सम्पूज्य ब्रह्मवाक्येन चोपहाराणि षोड़शः । ददौ भक्त्याविधानेनप्रत्येकंमन्त्रपूर्वकम् ॥
प्रशंस्यानि प्रहृष्टानि दुर्लभानि वराणि च । अमूल्यरत्नसारञ्च निर्मितं विश्वकर्मणा ।

आसनञ्च विचित्रञ्च महालक्ष्मि प्रगृह्यताम् ॥ १५ ॥

शुद्धं गङ्गोदकमिदं सर्ववन्दितमीप्सितम् । पापेध्मवह्निरूपञ्च गृह्यतां कमलालये ॥१६॥
पुष्पचन्दनदूर्वादिसंयुतं जाह्नवीजलम् । शङ्खगर्भस्थितं शुद्धं गृह्यतां पद्मवासिनि ॥१७॥
सुगन्धि विष्णुतैलञ्च सुगन्धामलकीजलम् । देहसौन्दर्य्यबीजञ्च गृह्यतां श्रीहरिप्रिये ॥
वृक्षनिर्यासरूपञ्च गन्धद्रव्यादिसंयुतम् । कृष्णकान्ते पवित्रञ्च धूपञ्चप्रतिगृह्यताम् ॥१६
मलयाचलसम्भूतं वृक्षसारं मनोहरम् । सुगन्धियुक्तं सुखदं चन्दनं देविगृह्यताम् ॥२०॥
जगच्चक्षुः स्वरूपञ्च ध्वान्तप्रध्वंसकारणम् । प्रदीपं शुद्धरूपञ्च गृह्यतां परमेश्वरि ॥२१॥
नानोपहाररूपञ्च नानारससमन्वितम् । नानास्वादुकरञ्चैव नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम् ॥२२॥
अन्नब्रह्मस्वरूपञ्च प्राणरक्षणकारणम् । तुष्टिदं पुष्टिदञ्चैवमन्नञ्च प्रतिगृह्यताम् ॥२३॥
शाल्यक्षतसुपक्वञ्च शर्करागव्यसंयुतम् । सुस्वादुयुक्तं पद्मे च परमान्नं प्रगृह्यताम् ॥२४
शर्करा गव्यपक्वञ्च सुस्वादु सुमनोहरम् । मयानिवेदितंलक्ष्मिस्वस्तिकं प्रतिगृह्यताम् ॥

नानाविधानि रम्याणि पक्वानि च फलानि च ।
स्वादु युक्तानि कमले गृह्यतां फलदानि च ॥ २६ ॥

सुरभीस्तनसम्भूतं सुस्वादु सुमनोहरम् । मर्त्यामृतञ्च गव्यञ्च गृह्यतामच्युतप्रिये ॥२७
सुस्वादु रससंयुक्तमिक्षुवृक्षरसोद्भवम् । अग्निपक्वमपक्वं वा गुड़ञ्चदेविगृह्यताम् ॥२८॥
यवगोधूमशस्यानां चूर्णरेणुसमुद्भवम् । सुपक्वगुड़गव्याक्तं मिष्टान्नं देविगृह्यताम् ॥२६
शस्यचूर्णोद्भवं पक्वं स्वस्तिकादि समन्वितम् । मयानिवेदितंदेविपिष्टकं प्रतिगृह्यताम् ॥
पार्थिवं वृक्षभेदञ्च विविधं द्रव्यकारणम् । सुस्वादुरससंयुक्तमिक्षुञ्च प्रतिगृह्यताम् ॥
शीतवायुप्रदञ्चैव दाहे च सुखदं परम् । कमले गृह्यताञ्चेदं व्यजनंश्वेतचामरम् ॥३२
ताम्बूलञ्च वरं रम्यं कर्पूरादिसुवासितम् । जिह्वाजाड्यच्छेदकरंताम्बूलंदेवि गृह्यताम् ॥
सुवासितं शीतलञ्च पिपासानाशकारणम् । जगज्जीवनरूपञ्च जीवनं देवि गृह्यताम् ॥
देहसौन्दर्य्यवीजञ्च सदा शोभाविवर्द्धनम् । कार्पासजञ्च कृमिजं वसनंदेविगृह्यताम् ॥
रत्नस्वर्णविकारञ्च देहभूषाविवर्द्धनम् । शोभाधानं श्रीकरञ्च भूषणं प्रतिगृह्यताम् ॥
नानाकुसुमनिर्माणं वहुशोभाप्रदं परम् । सुरभूपप्रियं शुद्धं माल्यं देवि प्रगृह्यताम् ॥३७
पुण्यतीर्थोदकञ्चैव विशुद्धं शुद्धिदं सदा । गृह्यतां कृष्णकान्ते च रम्यमाचमनीयकम्॥
रत्नसारादिनिर्माणं पुष्पचन्दनसंयुतम् । रत्नभूषणभूषाढ्यं सुतल्पं प्रतिगृह्यताम् ॥३६॥
यद्यद् द्रव्यमपूर्वञ्च पृथिव्यामतिदुर्लभम् । देवभूपार्हभोग्यञ्च तद् द्रव्यंदेविगृह्यताम् ॥
द्रव्याण्येतानि दत्वा च मूलेन देवपुङ्गव । मूलं जजाप भक्त्या च दशलक्षं विधानतः ॥
जपेन दशलक्षेण मन्त्रसिद्धिर्वभूव ह । मन्त्रश्च ब्रह्मणा दत्तः कल्पवृक्षश्च सर्वदः ॥ ४२॥
लक्ष्मीर्मायाकामवाणीततःकमलवासिनी । स्वाहान्तोवैदिकोमन्त्रराजोऽयं द्वादशाक्षरः
कुवेरोऽनेन मन्त्रेण सर्वैश्वर्य्यमवाप्तवान् । राजराजेश्वरो दक्षः सावर्णिर्मनुरेव च ॥४४

मङ्गलोऽनेन मन्त्रेण सप्तद्वीपवतीपतिः ।
प्रियव्रतोत्तानपादौ केदारो नृप एव च ॥४५॥

एते च सिद्धा राजेन्द्रा मन्त्रेणानेन नारद । सिद्धे मन्त्रे महालक्ष्मीः शक्राय दर्शनददौ ।
रत्नेन्द्रसारनिर्माणविमानस्था वरप्रदा । सप्तद्वीपवतीं पृथ्वीं छादयन्ती त्विषा च सा॥
श्वेतचम्पकवर्णाभा रत्नभूषणभूषिता । ईषद्धास्यप्रसन्नास्या भक्तानुग्रहकातरा ॥ ४८ ॥
विभ्रती रत्नमालाञ्च कोटिचन्द्रसमप्रभा । दृष्ट्वा जगत्प्रसूं शान्तां तुष्टाव तां पुरन्दरः ॥

पुलकाङ्कितसर्वाङ्गः साश्रुनेत्रः कृताञ्जलिः । ब्रह्मणा च प्रदत्तेन स्तोत्रराजेन संयतः ॥
सर्वाभीष्टप्रदेनैव वैदिकेनैव तत्र च ॥ ५० ॥

इन्द्र उवाच ।

ओं नमो महालक्ष्म्यै ।

ओं नमः कमलवासिन्यैनारायण्यै नमो नमः । कृष्णप्रियायैसारायै पद्मायैचनमोनमः ॥
पद्मपत्रेक्षणायैच पद्मास्यायै नमोनमः । पद्मासनायै पद्मिन्यै वैष्णव्यै च नमो नमः ।५२।
सर्वसम्पत्स्वरूपायै सर्वदात्र्यै नमो नमः । सुखदायै मोक्षदायै सिद्धिदायै नमो नमः ॥
हरिभक्तिप्रदात्र्यै च हर्षदात्र्यै नमो नमः । कृष्णवक्षःस्थितायै च कृष्णेशायै नमोनमः ॥
कृष्णशोभास्वरूपायै रत्नपद्मे च शोभने । सम्पत्त्यधिष्ठातृदेव्यै महादेव्यै नमो नमः ॥
शस्याधिष्ठातृदेव्यै च शस्यायैच नमो नमः । नमो बुद्धिस्वरूपायै बुद्धिदायै नमो नमः ॥
वैकुण्ठे या महालक्ष्मीःलक्ष्मीः क्षीरोदसागरे । स्वर्गलक्ष्मीरिन्द्रगेहे राजलक्ष्मीर्नृपालये
गृहलक्ष्मीश्च गृहिणां गेहे च गृहदेवता । सुरभी सा गवां माता दक्षिणा यज्ञकामिनी ।
अदितिर्देवमाता त्वं कमलाकमलालये । स्वाहात्वञ्च हविर्दाने कव्यदाने स्वधा स्मृता
त्वंहि विष्णुस्वरूपा च सर्वाधारा वसुन्धरा । शुद्धसत्वस्वरूपा त्वं नारायणपरायणा
क्रोधहिंसावर्जिता च वरदा च शुभानना । परमार्थप्रदा त्वञ्च हरिदास्यप्रदा परा ॥६१
यया विना जगत् सर्वं भस्मीभूतमसारकम् । जीवन्मृतञ्च विश्वञ्च शवतुल्यं ययाविना
सर्वेषाञ्च परात्वंहि सर्वबान्धवरूपिणी । यया विना नसम्भाष्यो बान्धवैर्बान्धवःसदा
त्वया हीनो बन्धुहीनःत्वयायुक्तःसबान्धवः । धर्मार्थकाममोक्षाणां त्वञ्चकारणरूपिणी
यथामातास्तनान्धानां शिशूनां शैशवे यथा । तथा त्वं सर्वदा माता सर्वेषांसर्वविश्वतः
मातृहीनस्तनत्यक्तः सचेज्जीवति दैवतः । त्वया हीनोजनःकोऽपि न जीवत्येव निश्चितम्
सुप्रसन्नस्वरूपात्वं मां प्रसन्ना भवाम्बिके । वैरिग्रस्तञ्च विषयं देहि मह्यं सनातनि ॥
वयं यावत्त्वया हीना बन्धुहीनाश्च भिक्षुकाः । सर्वसम्पद्विहीनाश्च तावदेव हरिप्रिये ॥
राज्यं देहि श्रियं देहि बलं देहि सुरेश्वरि । कीर्त्तिं देहि धनं देहि यशोमह्यं च देहि वै
कामं देहि मतिं देहिभोगान् देहिहरिप्रिये । ज्ञानं देहि च धर्मञ्च सर्वसौभाग्यमीप्सितम्

प्रभावञ्च प्रतापञ्च सर्वाधिकारमेव च । जयं पराक्रमं युद्धे परमैश्वर्य्यमेव च ॥७१॥
इत्युक्त्वा च महेन्द्रश्च सर्वैः सुरगणैः सह । प्रणनाम साश्रुनेत्रो मूर्ध्नाचैवपुनः पुनः ॥
ब्रह्मा च शङ्करश्चैव शेषो धर्मश्च केशवः । सर्वे चक्रुः परिहारंसुरार्थे च पुनः पुनः ॥७३॥
देवेभ्यश्च वरं दत्त्वा पुष्पमालां मनोहराम् । केशवाय ददौ लक्ष्मीं सन्तुष्टासुरसंसदि॥
ययुर्देवाश्च सन्तुष्टा स्वं स्वं स्थानञ्च नारद । देवी ययौ हरेः क्रोड़ं हृष्टाक्षीरोदशायिनः
ययतुश्चैव स्वगृहं ब्रह्मेशानौ च नारद । दत्त्वाशुभाशिषं तौ च देवेभ्यः प्रीतिपूर्वकम्॥
इदं स्तोत्रं महापुण्यं त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नरः । कुवेरतुल्यः सःभवेत् राजराजेश्वरोमहान्
सिद्धस्तोत्रं यदि पठेत् सोऽपि कल्पतरुर्नरः । पञ्चलक्षजपेनैव स्तोत्रसिद्धिर्भवेन्नृणाम्॥
सिद्धिस्तोत्रं यदि पठेत् मासमेकञ्चसंयतः । महासुखी च राजेन्द्रोभविष्यतिनसंशयः

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे महालक्ष्मीस्तोत्रं समाप्तम् ।

नारद उवाच ।

पुष्पं दुर्वाससा दत्तमस्त्येव यस्य मस्तके । तस्य सर्वपुरः पूजेत्युक्तं पूर्वं त्वया प्रभो
तदेव स्थापितं पुष्पं गजेन्द्रस्यैव मस्तके । कुतो जन्म गणेशस्य सच मत्तो वनं गतः ॥
मूर्ध्निछिन्ने गणपतेःशनेर्दृष्ट्यापुरामुने । तत् स्कन्धेयोजयामास हस्तिमस्तंहरिःस्वयम्
अधुनोक्तं देवषट्कं संपूज्य च पुरन्दरः । पूजयामास लक्ष्मीञ्च क्षीरोदे च सुरैः सह॥
अहो पुराणवक्तॄणां दुर्बोधं वचनं नृणाम् । सुव्यक्तमस्य सिद्धान्तं वद वेदविदांवर॥

श्रीनारायण उवाच ।

यदा शशाप शक्रञ्च दुर्वासा मुनिपुङ्गवः । तदा नास्त्येव तज्जन्म पूजाकाले बभूव सः
सुचिरं दुःखिता देवा बभ्रमुर्ब्रह्मशापतः । पश्चात् प्रापुश्च तां लक्ष्मीं वरेण च हरेर्मुने॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे लक्ष्म्युपाख्यानं नाम ऊनचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

स्वाहोपाख्यानम् ।

नारद उवाच ।

नारायण महाभाग नारायणसमः प्रभो । रूपेण च गुणेनैव यशसातेजसा त्विषा ॥१॥
त्वमेव ज्ञानिनां श्रेष्ठः सिद्धानां योगिनां तथा । तपस्विनां मुनीनाञ्चपरोवेदविदांतथा
महालक्ष्या उपाख्यानं विज्ञातं महदद्भुतम् ॥ २ ॥
अन्यत् किञ्चिदुपाख्यानं निगूढं वद साम्प्रतन् । अतीव गोपनीयं यदुपयुक्तञ्च सर्वतः ।
अप्रकाश्यं पुराणेषु वेदोक्तं धर्मसंयुतम् ॥ ३ ॥

श्री नारायण उवाच ।

नानाप्रकारमाख्यानमप्रकाश्यं पुराणतः । श्रुतौ कतिविधं गूढमास्ते ब्रह्मन् सुदुर्लभम् ॥
तेषु यत्सारभूतञ्च श्रोतुंकिंवात्वमिच्छसि । तन्मे ब्रूहि महाभाग पश्चाद्वक्ष्यामितत्पुनः

नारद उवाच ।

स्वाहादेवहविर्दाने प्रशस्ता सर्वकर्मसु । पितृदाने स्वधा शस्ता दक्षिणा सर्वतो वरा ।
एतासां चरितं जन्म फलं प्राधान्यमेव च । श्रोतुमिच्छामि त्वद्वक्त्रात्वदवेदविदांवर ।

सौतिरुवाच ।

नारदस्य वचः श्रुत्वा प्रहस्य मुनिपुङ्गवः । कथां कथितुमारेभे पुराणोक्तां पुरातनीम् ॥

नारायण उवाच ।

सृष्टेः प्रथमतो देवाश्चाहारार्थं ययुः पुरा । ब्रह्मलोके ब्रह्मसभामगम्यां सुमनोहराम् ॥
गत्वा निवेदनञ्चक्रुराहारहेतुकं मुने । ब्रह्मा श्रुत्वा प्रतिज्ञाय सिषेवे श्रीहरेः पदम् ।१०।
यज्ञरूपो हि भगवान् कलया च बभूव सः । यज्ञे यद्यद्धविर्दानं दत्तं तेभ्यश्च ब्रह्मणा ॥
हविर्ददति विप्राश्च भक्त्या च क्षत्रियादयः । सुरा नैव प्राप्नुवन्ति तद्दानं मुनिपुङ्गव ॥
देवाः विषण्णास्ते सर्वे तत्सभाञ्च पुनर्ययुः । गत्वा निवेदनञ्चक्रुराहाराभाव हेतुकम्
ब्रह्मा श्रुत्वा तु ध्यानेन श्रीकृष्णं शरणं ययौ । पूजयामास प्रकृतिं ध्यानेनैव तदाज्ञया ।

प्रकृतिः कलया चैव सर्वशक्तिस्वरूपिणी । बभूव दाहिकाशक्तिरग्नेः स्वाहास्वरूपिणी ।
ग्रीष्ममध्याह्नमार्त्तण्डप्रभाच्छादनकारिणी । अतीव सुन्दरी रामा रमणीया मनोहरा ॥
ईषद्धास्यप्रसन्नास्या भक्तानुग्रहकातरा । उवाचेति विधेरग्रे पद्मयोने वरं वृणु ॥१७॥
विधिस्तद्वचनं श्रुत्वा सम्भ्रमात् समुवाच ताम् ॥१८ ॥

ब्रह्मोवाच ।

त्वमग्नेर्दाहिका शक्तिर्भवपत्नी च सुन्दरी । दग्धुं न शक्तस्त्वकृती हुताशश्च त्वयाविना
त्वन्नामोच्चार्य्य मन्त्रान्ते यद्दास्यति हविर्नरः ।
सुरेभ्यंस्तत् प्राप्नुवन्ति सुराः सानन्दपूर्वकम् ॥ २०॥
अग्नेः सम्पत् स्वरूपाच श्रीरूपा च गृहेश्वर । देवानां पूजिता शश्वन्नरादीनां भवाम्बिके
ब्रह्मणश्च वचः श्रुत्वासाविषण्णा बभूवह । तमुवाच स्वयं देवी स्वाभिप्रायं स्वयम्भुवम्

स्वाहोवाच ।

अहंकृष्णंभजिष्यामि तपसासुचिरेणच । ब्रह्मन् तदन्यत्यत्किञ्चित् स्वप्नवत्भ्रममेवच ।
विधाताजगतांत्वञ्चशम्भुर्मृत्युञ्जयःप्रभुः । विभर्त्तिशेषो विश्वञ्चधर्म्मःसाक्षीचदेहिनाम्।
सर्वाद्यपूज्यो देवानां गणेषुच गणेश्वरः । प्रकृतिः सर्वसूः सर्वपूजिता यत्प्रसादतः ॥
ऋषयोमुनयश्चैव पूजिता यं निषेव्य च । तत्पादपद्मं पद्मैकं भावेन चिन्तयाम्यहम् ॥
पद्मास्या पाद्ममित्युक्त्वा पद्मलाभानुसारतः । जगाम तपसा पाद्मे पद्मादीशस्य पद्मजा।
तपस्तेपे लक्षवर्षमेकपादेन पाद्मजा । तदा ददर्श श्रीकृष्णं निर्गुणं प्रकृतेः परम् ॥ २८ ॥
अतीव कमनीयञ्च रूपं दृष्ट्वाच सुन्दरी । मूर्च्छां सम्प्राप कामेन कामेशस्यच कामुकी ॥
विज्ञया तदभिप्रायं सर्वज्ञस्तामुवाचसः । समुत्थाप्यच स्वक्रोड़ेक्षीणाङ्गीं तपसाचिरम्।

श्रीकृष्ण उवाच ।

वराहेच त्वमंशेनमम पत्नी भविष्यति । नाम्ना नाग्नजिती कन्याकान्ते नग्नजितस्य च ॥
अधुनाग्नेर्दाहिका त्वं भवपत्नीच भाविनी । मन्त्राङ्गरूपा पूताच मत्प्रसादात् भविष्यति
वह्निस्त्वांभक्तिभावेन सम्पूज्यचगृहेश्वरीम् । रमिष्यते त्वया सार्द्धं रामयारमणीयया।
इत्युक्त्वान्तर्दधे देवो देवीमाश्वास्य नारद । तत्राजगाम सन्त्रस्तो वह्निर्ब्रह्मनिदेशतः ॥

ध्यानैश्च सामवेदोक्तैर्ध्यात्वा तां जगदम्बिकाम् ।
सम्पूज्य परितुष्टाव पाणिं जग्राह मन्त्रतः ॥३५॥

तदा दिव्यं वर्षशतं स रेमे रामया सह । अतीव निर्जने रम्ये सम्भोगसुखदे सदा ॥३६॥
बभूव गर्भं तस्याश्च हुताशस्य च तेजसा । तद्दधारच्च सा देवी दिव्यं द्वादशवत्सरम् ॥
ततः सुषाव पुत्रांश्च रमणीयान्मनोहरान् । दक्षिणाग्निर्गार्हपत्यहवनीयान् क्रमेण च ॥
ऋषयोमुनयश्चैव ब्राह्मणाः क्षत्रियादयः । स्वाहान्तं मन्त्रमुचार्य्य हविर्ददति नित्यशः ।
स्वाहायुक्तश्च मन्त्रश्चयो गृह्णाति प्रशस्तकम् । सर्वसिद्धिर्भवेत्तस्य ब्रह्मन् ग्रहणमात्रतः ।
विषहोनो यथा सर्पो वेदहीनो यथा द्विजः । पतिसेवाविहीना स्त्री विद्याहीनो यथानरः
फलशाखाविहीनश्च यथावृक्षो हि निन्दितः । स्वाहाहीनस्तथा मन्त्रोनद्रुतं फलदायकः ।
परितुष्टा द्विजाः सर्वे देवाः संप्रापुराहुतिम् । स्वाहान्तेनैव मन्त्रेण सफलं सर्वकर्म च ।
इत्येवंवर्णितंसर्वं स्वाहोपाख्यानमुत्तमम् । सुखदं मोक्षदंसारं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ।

नारद उवाच ।

स्वाहापूजाविधानञ्च ध्यानं स्तोत्रं मुनीश्वर । संपूज्य वह्निस्तुष्टाव येन तां वदमेप्रभो ॥

नारायण उवाच ।

ध्यानञ्चसामवेदोक्तं स्तोत्रंपूजाविधानकम् । वदामि श्रूयतांब्रह्मन् सावधानंनिशामय ॥
सर्वयज्ञारम्भकाले शालग्रामे घटेऽथवा । स्वाहां संपूज्य यत्नेन यज्ञं कुर्य्यात् फलाप्तये ।

स्वाहां मन्त्राङ्गपूताञ्च मन्त्रसिद्धिस्वरूपिणीम् ।
सिद्धाञ्च सिद्धिदां नृणां कर्मणां फलदां भजे ॥ ४८ ॥

इति ध्यात्वाचमूलेन दत्वापाद्यादिकंनरः । सर्वसिद्धिं लभेत् स्तुत्वामूलंस्तोत्रंमुनेश्रृणु ।
ओं ह्रीं श्रीं वह्निजायायै देव्यै स्वाहेत्यनेनच । यः पूजयेच्चतां देवींसर्वेष्टं लभतेध्रुवम् ॥

वह्निरुवाच ।

स्वाहाद्या प्रकृतेरंशा मन्त्रतन्त्राङ्गरूपिणी । मन्त्राणां फलदात्रीच धात्रीच जगतां सती

सिद्धिस्वरूपा सिद्धा च सिद्धिदा सर्वदा नृणाम् ।

हुताश दाहिकाशक्तिस्तत्प्राणाधिकरूपिणी ॥ ५२ ॥

संसारसाररूपा च घोरसंसारतारिणी ! देवजीवनरूपा च देवपोषणकारिणी ॥ ५३ ॥
षोडशैतानि नामानि यः पठेत् भक्तिसंयुतः । सर्वसिद्धिर्भवेत्तस्य चेहलोके परत्र च ॥
नाङ्गहीनो भवेत्तस्य सर्वकर्मसु शोभनम् । अपुत्रो लभते पुत्रमभार्य्यो लभते प्रियाम् ।

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारद-संवादे स्वाहोपाख्यानं नाम चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

एकचत्वारिंशोऽध्यायः

स्वधोपाख्यानम् ।

नारायण उवाच ।

श्रृणुनारदवक्ष्यामि स्वधोपाख्यानमुत्तमम् । पितॄणाञ्चतृप्तिकरं श्राद्धानां फलवर्द्धनम् ।
सृष्टेरादौ पितृगणान् ससर्जजगतांविधिः । चतुरश्च मूर्त्तिमतस्त्रींश्च तेजस्वरूपिणः ॥२॥
दृष्ट्वा सप्तपितृगणान् सिद्धिरूपान्मनोहरम् । आहारं ससृजे तेषां श्राद्धतर्पणपूर्वकम् ।३॥
स्नानंतर्पणपर्य्यन्तंश्राद्धान्तं देवपूजनम् । आह्निकञ्चत्रिसन्ध्यान्तं विप्राणाञ्चश्रुतौश्रुतम्
नित्यंनकुर्य्याद्योविप्रस्त्रिसन्ध्यंश्राद्धतर्पणम् । वलिंवेदध्वनिंसोऽपिविषहीनोयथोरगः ।
हरिसेवा विहीनश्च श्रीहरेरनिवेद्यभुक् । भस्मान्तं सूतकं तस्य न कर्मार्हः स नारद ॥६
ब्रह्मा श्राद्धादिकं सृष्ट्वा जगाम पितृहेतवे । न प्राप्नुवन्ति पितरो ददतिब्राह्मणादयः ॥७
सर्वे प्रजग्मुः क्षुधिता विषण्णा ब्रह्मणःसभाम् । सर्वेनिवेदनश्चक्रुस्तमेवजगतां विधिम्॥
ब्रह्मा च मानसीं कन्यां ससृजे तां मनोहराम् । रूपयौवनसम्पन्नां शरच्चन्द्रसमप्रभाम्॥
विद्यावतीं गुणवतीमतिरूपवतीं सतीम् । श्वेतचम्पकवर्णाभां रत्नभूषणभूषिताम् ॥१०॥
विशुद्धां प्रकृतेरंशांसस्मितांवरदांशुभाम् । स्वधाभिधानांसुदतींलक्ष्मी लक्षणसंयुताम् ॥
शतपद्मपदन्यस्तपादपद्मञ्च बिभ्रतीम् । पत्नीं पितॄणां पद्मास्यां पद्मजांपद्मलोचनाम् ॥१२
पितृभ्यस्तां ददौकन्यांतुष्टेभ्यस्तुष्टिरूपिणीम् । ब्राह्मणांश्चोपदेशञ्चचकारगोपनीयकम् ॥

स्वधान्तं मन्त्रमुच्चार्य्य पितृभ्यो देहि चेति च । क्रमेण तेन विप्राश्च पित्रेदानंददुःपुरा ॥
स्वाहा शस्ता देवदाने पितृदाने स्वधा वरा । सर्वत्रदक्षिणाशस्ताहतयज्ञस्त्वदक्षिणः ॥
पितरो देवता विप्रा मुनयोमानवास्तथा । पूजाञ्चक्रुःस्वधांशान्तांतुष्टावपरमादरम् ॥
देवादयश्च सन्तुष्टा परिपूर्णमनोरथाः । विप्रादयश्च पितरः स्वधादेवीवरेण च ॥ १७ ॥
इत्येवं कथितं सर्वंस्वधोपाख्यानमुत्तमम् । सर्वेषाञ्चतुष्टिकरंकिंभूयः श्रोतुमिच्छसि ॥

नारद उवाच ।

स्वधापूजा विधानञ्च ध्यानं स्तोत्रं महामुने श्रोतुमिच्छामियत्नेनवदवेदविदां वर ॥

नारायण उवाच ।

तद्ध्यानं स्तवनं ब्रह्मन् वेदोक्तं सर्वसम्मतम् । सर्वंजानासिचकथंज्ञातुमिच्छसि वृद्धये ॥
शरत्कृष्णत्रयोदश्यां मघायां श्राद्धवासरे । स्वधांसंपूज्ययत्नेनततःश्राद्धंसमाचरेत् ॥२१

स्वधां नाभ्यर्च्य यो विप्रः श्राद्धं कुर्य्यादहं मतिः ।
न भवेत् फलभाक् सत्यं श्राद्धस्य तर्पणस्य च ॥ २२ ॥

ब्रह्मणोमानसींकन्यांशश्वत्सुस्थिरयौवनाम् । पूज्यांपितॄणांदेवानांश्राद्धानांफलदांभजे

इति ध्यात्वा शालग्रामेऽप्यथवा शोभने घटे ।
दद्यात् पाद्यादिकं तस्यै मूलेनेति श्रुतौ श्रुतम् ॥२४॥
ओं ह्रीं श्रीं क्लीं स्वधादेव्यै स्वाहेति च महामनुम् ।
समुच्चार्य्य च संपूज्य स्तुत्वा तां प्रणमेत् द्विजः ॥२५॥

स्तोत्रं शृणु मुनिश्रेष्ठ ब्रह्मपुत्र विशारद । सर्ववाञ्छाप्रदं नृणांब्रह्मणायत्कृतंपुरा ॥२६॥

ब्रह्मोवाच ।

स्वधोच्चारणमात्रेण तीर्थस्नायी भवेन्नरः । मुच्यते सर्वपापेभ्यो वाजपेयफलंलभेत् ॥

स्वधा स्वधा स्वधेत्येवं यदि वारत्रयं स्मरेत् ।
श्राद्धस्य फलमाप्नोति कालस्य तर्पणस्य च ॥२८॥

श्राद्धकाले स्वधास्तोत्रं यः शृणोति समाहितः । लभेत्श्राद्धशतानाञ्च पुण्यमेव न संशयः

स्वधा स्वधा स्वधेत्येवं त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नरः ।

प्रियां विनीतां स लभेत् साध्वीं पुत्रं गुणान्वितम् ॥३०॥

पितॄणां प्राणतुल्या त्वं द्विजजीवनरूपिणी । श्राद्धाधिष्ठातृदेवी च श्राद्धादीनां फलप्रदा
वहिर्गच्छ मन्मनसः पितॄणां तुष्टिहेतवे । संप्रीयते द्विजातीनां गृहिणां वृद्धिहेतवे ॥
नित्या त्वं नित्यरूपासि गुणरूपासि सुव्रते । आविर्भावस्तिरोभाव सृष्टौ च प्रलयेतव
ओंस्वस्तिचनमःस्वाहास्वधात्वंदक्षिणातथा । निरूपिताश्चतुर्वेदेषट्प्रशस्ताश्चकर्मिणाम्
पुरासीत्त्वंस्वधागोपींगोलोकेराधिकासखी। धृतोरसिस्वधात्मानंकृतंतेनस्वधास्मृता

ध्वस्ता त्वं राधिकाशापात् गोलोकाद्विश्वमागता ।
कृष्णाश्लिष्टा तया दृष्टा पुरा वृन्दावने वने ॥ ३६ ॥

कृष्णालिङ्गनपुण्येन भूता मे मानसी सुता । अतृप्ता सुरतौ तेन चतुर्णां स्वामिनांप्रिया
स्वाहा सा सुन्दरीगोपीपुरासीद्राधिकासखी । स्वयं कृष्णमाहरतौतेनस्वाहाप्रकीर्त्तिता
कृष्णेन सार्द्धं सुचिरं वसन्ते रासमण्डले । प्रमत्ता सुरते श्लिष्टा दृष्टा सा राधया पुरा
तस्याः शापेन प्रध्वस्ता गोलोकाद्विश्वमागता । कृष्णालिङ्गनपुण्येन बभूववह्निकामिनी
पवित्ररूपा परमा देवानां वन्दिता नृणाम् । यन्नामोच्चारणेनैव नरो मुच्येत पातकात्
यासुशीलाभिधागोपीपुरासीत्राधिकासखी । उवासदक्षिणेक्रोडे कृष्णस्यराधिकाग्रतः

प्रध्वस्ता सा च तच्छापात् गोलोकाद्विश्वमागता ।
कृष्णालिङ्गन पुण्येन सा वभूव च दक्षिणा ॥ ४३ ॥

सुप्रेयसी रतौ दक्षा प्रशस्ता सर्वकर्मसु । उवास दक्षिणे भर्त्तुर्दक्षिणा तेन कीर्त्तिता ॥
वभूवुस्तिस्रो गोप्यश्च स्वधा स्वहा चदक्षिणा । कर्मिणांकर्मपूर्णार्थं पुराचैवेश्वरेच्छया
इत्येवमुक्त्वा स ब्रह्मा ब्रह्मलोके च संसदि । तस्थौ च सहसा सद्यः स्वधासाविर्वभूवह
तदा पितृभ्यः प्रददौ तामेव कमलाननाम् । तां संप्राप्य ययुस्ते च पितरश्च प्रहर्षिताः।
स्वधास्तोत्रमिदं पुण्यं यः शृणोतिसमाहितः । सस्नातः सर्वतीर्थेषु वेदपाठफलंलभेत्

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे स्वधोपाख्यानंनाम
एकचत्वारिंशोऽध्यायः ।

द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

दक्षिणोपाख्यानवर्णनम् ।

नारायण उवाच ।

उक्तं स्वाहा स्वधाख्यानंप्रशस्तंमधुरं परम् । वक्ष्यामि दक्षिणाख्यानं सावधानंनिशामय
गोपी सुशीलागोलोकेपुरासी त्प्रेयसीहरेः । राधाप्रधाना सध्रीची धन्यामान्यामनोहरा

अतीव सुन्दरी रामा सुभगा सुदती सती ॥ २ ॥

विद्यावती गुणवती सती रूपवती तथा । कलावती कोमलाङ्गी कान्ता कमललोचना ।
सुश्रोणी सुस्तनी श्यामा न्यग्रोधपरिमण्डला । ईषद्धास्यप्रसन्नास्या रत्नालङ्कारभूषिता।
श्वेतचम्पकवर्णाभाविम्बोष्ठी मृगलोचना । कामशास्त्रसुनिष्णाता कामिनीहंसगामिनी
भावानुरक्ताभावज्ञा कृष्णस्य प्रियभाविनी । रसज्ञा रसिकारासे रासेशस्य रसोत्सुका
उवास दक्षिणे क्रोड़े राधायाः पुरतः पुरा । संवभूवानम्रमुखो भयेन मधुसूदनः ॥ ७ ॥
दृष्ट्वा राधाञ्च पुरतो गोपीनां प्रवरां वराम् । मानिनीं रक्तवदनां रक्तपङ्कजलोचनाम् ॥८
कोपेन कम्पिताङ्गीञ्च कोपनां कोपदर्शनाम् । कोपेन निष्ठुरं वक्तुमुद्यतां स्फुरिताधराम्।

आगच्छन्तीञ्च वेगेन विज्ञाय तदनन्तरम् ।

विरोधभीतो भगवानन्तर्द्धानं चकार सः ॥ १० ॥

पलायन्तञ्चतंशान्तंसत्त्वाधारंसुविग्रहम् । विलोक्यकम्पितागोपीसुशीलान्तर्दधौभिया ।
विलोक्य सङ्कटं तत्र गोपीनां लक्षकोटयः । पुटाञ्जलियुता भीता भक्तिनम्रात्मकन्धराः
रक्ष रक्षेत्युक्तवत्यो हे देवीति पुनःपुनः । ययुर्भयेन शरणं तस्याश्चरणपङ्कजे ॥ १३ ॥
त्रिलक्षकोटयो गोपाः सुदामादय एव च । ययुर्भयेन शरणं तत् पादाब्जे च नारद॥१४
पलायन्तञ्च कान्तञ्च विज्ञाय परमेश्वरी । पलायन्ती सहचरीं सुशीलाञ्च शशाप सा ॥
अद्य प्रभृति गोलोकं साचेदायाति गोपिका । सद्यो गमनमात्रेण भस्मसाच्चभविष्यति
इत्येवमुक्त्वा तत्रैव देवदेवीश्वरी रुषा । रासेश्वरी रासमध्ये रासेशमाजुहाव ह ॥ १७ ॥

नालोक्य पुरतः कृष्णं राधा विरहकातरा। युगकोटिसमं मेने क्षणभेदेन सुव्रता ॥१८॥
हेकृष्णहेप्राणनाथागच्छ प्राणाधिकप्रिय। प्राणाधिष्ठातृदेवेह प्राणायान्तित्वयाविना।
श्रीगर्वः पतिसौभाग्याद्वर्द्धतेच दिने दिने। सुस्त्रीचेद्विभवो यस्मात् तंभजेद्धर्मतःसदा॥
पतिर्बन्धुः कुलस्त्रीणामधिदेवः सदागतिः। परं सम्पत्स्वरूपश्च सुखरूपश्च मूर्त्तिमान्॥

धर्मदः सुखदः शश्वत् प्रीतिदः शान्तिदः सदा।
सम्मानदो मानदश्च मान्यश्च मानखण्डनः ॥ २२ ॥

सारात्सारतमः स्वामी वन्धूनां वन्धुवर्द्धनः। नच भर्त्तुः समो वन्धुः सर्वबन्धुषु दृश्यते
भरणादेवभर्त्ताऽयं पालनात् परिरुच्यते। शरीरेशाच्च सःस्वामी कामदात् कान्तएवच।
वन्धुश्चसुखवन्धाच्च प्रीतिदानात् प्रियःपरः। ऐश्वर्यदानादीशश्च प्राणेशात् प्राणनाथकः
रतिदानाच्चरमणः प्रियोनास्तिप्रियात्परः। पुत्रस्तु स्वामिनः शुक्राज्जायते तेन स प्रियः
शतपुत्रात्परः स्वामी कुलजानांप्रियःसदा। असत्कुलप्रसूताया कान्तं विज्ञातुमक्षमा।
स्नानञ्च सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षणम्। प्रादक्षिण्यं पृथिव्याश्च सर्वाणिच तपांसिच॥
सर्वाण्येवव्रतादीनि महादानानि यानिच। उपोषणानि पुण्यानि यान्यन्यानिचविश्वतः
गुरुसेवाविप्रसेवा देवसेवादिकश्चतत्। स्वामिनः पादसेवायाःकलां नार्हन्तिषोड़शीम्।
गुरुविप्रेष्टदेवेषु सर्वेभ्यश्च पतिर्गुरुः। विद्यादाता यथा पुंसां कुलजानां तथाप्रियः ॥३१
गोपी त्रिलक्षकोटीनां गोपानाञ्च तथैवच। ब्रह्माण्डानामसंख्यानां तत्रस्थानां तथैवच।
रमादि गोलकान्तानामीश्वरीयत् प्रसादतः। अहंनजानेतं कान्तं स्त्रीस्वभावोदुरत्ययः
इत्युक्त्वा राधिकाकृष्णं तत्र दध्यौ सुभक्तितः। आरात्संप्राप तं तेन विजहारच तत्रवै
अथसा दक्षिणादेवी ध्वस्ता गोलोकतो मुने। सुचिरञ्चतपस्तप्त्वा विवेश कमलातनौ॥
अथ देवादयः सर्वे यज्ञं कृत्वा सुदुष्करम्। न लभन्ते फलं तेषां विषण्णाःप्रययुर्विधिम्
विधिर्निवेदनंश्रुत्वादेवादीनां जगत्पतिः। दध्यौ सुचिन्तितोभक्त्या तत्प्रत्यादेशमापसः
नारायणश्च भगवान् महालक्ष्म्याश्चदेहतः। विनिष्कृष्य मर्त्यलक्ष्मीं ब्रह्मणेदक्षिणांददौ
ब्रह्मा ददौ तां यज्ञाय पूर्णार्थं कर्मणां सताम्। यज्ञः संपूज्य विधिवत्तां तुष्टाव रमांमुदा
ततकाञ्चनवर्णाभां चन्द्रकोटिसमप्रभाम्। अतीवकमनीयाञ्च सुन्दरीं सुमनोहराम्॥

कमलास्यां कोमलाङ्गीं कमलायतलोचनाम्। कमलासनपूज्याञ्च कमलाङ्गसमुद्भवाम्।
वह्निशुद्धांशुकाधानां विम्बोष्ठीं सुदतींसतीम्। विभ्रतींकवरीभारं मालतीमाल्यभूषितम्
ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां रत्नभूषणभूषिताम्। सुवेशाढ्याञ्च सुस्नातां मुनिमानसमोहिनीम्

कस्तूरीविन्दुभिः सार्द्धं सुगन्धिचन्दनादिभिः।
सिन्दूरविन्दुनात्यन्तमलकाधः स्थलोज्ज्वलाम् ॥ ४४ ॥

सुप्रशस्तनितम्बाढ्यां वृहच्छ्रोणिपयोधराम्। कामदेवाधाररूपां कामवाणप्रपीड़िताम्॥
तां दृष्ट्वा रमणीयाञ्च यज्ञो मूर्च्छामवाप ह। पत्नीं तामेव जग्राह विधिवोधितपूर्वकम्॥
दिव्यं वर्षशतञ्चैव तां गृहीत्वा सुनिर्जने। यज्ञो रेमे मुदायुक्तो रामया रमया सह॥
गर्भं दधार सा देवी दिव्यं द्वादशवत्सरम्। ततः सुषाव पुत्रञ्च फलञ्च सर्वकर्मणाम्।
कर्मणां फलदाताच दक्षिणा कर्मिणां सताम्। परिपूर्णे कर्मणिच तत्पुत्रः फलदायकः।
यज्ञोदक्षिणया सार्द्धं पुत्रेण च फलेन च। कर्मणां फलदाता चेत्येवं वेदविदो विदुः॥
यज्ञश्च दक्षिणां प्राप्य पुत्रञ्च फलदायकम्। फलं ददौ च सर्वेभ्यः कर्मभ्य इति नारद॥
तदा देवादयस्तुष्टाः परिपूर्णमनोरथाः। स्वस्थानं प्रययुः सर्वे धर्मवक्त्रादिदं श्रुतम्॥
कृत्वा कर्म च कर्त्ताच तूर्णं दद्याच्च दक्षिणाम्। तत्क्षणं फलमाप्नोति वेदैरुक्तमिदंमुने।

कर्मी कर्मणि पूर्णे च तत्क्षणात् यदि दक्षिणाम्।
न दद्यात् ब्राह्मणेभ्यश्च दैवेनाज्ञानतोऽथवा ॥ ५४ ॥

मुहूर्त्ते समतीते च द्विगुणा सा भवेत् ध्रुवम् ॥ ५५ ॥

एकरात्र व्यतीते तु भवेत् रसगुणा च सा। त्रिरात्रेच दशगुणं सप्ताहे द्विगुणा ततः॥
मासेलक्षगुणा प्रोक्ता ब्राह्मणानाञ्च वर्द्धते। संवत्सरेव्यतीते तुसात्रिकोटिगुणाभवेत्॥
कर्म तद् यजमानानां सर्वञ्चनिष्फलंभवेत्। सच ब्रह्मस्वापहारी न कर्मार्होऽशुचिर्नरः॥
दरिद्रोव्याधियुक्तश्च तेन पापेनपातकी। तद्गृहाद् यातिलक्ष्मीश्च शापंदत्वा सुदारुणम्
पितरो नैव गृह्णन्ति तद्दत्तं श्राद्धतर्पणम्। एवं सुराश्च तत्पूजां तद्दत्तामग्निराहुतिम्॥६०
दाता न दीयते दानं गृहीता तन्न याचते। उभौ तौ नरकं यातश्छिन्नरज्जुर्यथा घटः ६१

नार्पयेद् यजमानश्चेद् याचिताश्च दक्षिणाम्।

भवेद् ब्रह्मस्वापहारी कुम्भीपाकं व्रजेद् ध्रुवम् ॥ ६२ ॥

वर्षलक्षं वसेत्तत्र यमदूतेन ताड़ितः । ततो भवेत् स चण्डालो व्याधियुक्तो दरिद्रकः ॥

पातयेत् पुरुषान् सप्त पूर्वांश्चपूर्वजन्मनः । इत्येवंकथितं विप्र किंभूयः श्रोतुमिच्छसि ॥

नारद उवाच ।

यत्कर्म दक्षिणाहीनं कोभुङ्क्ते तत्फलं मुने । पूजाविधिं दक्षिणायाः पुरा यज्ञकृतंवद ॥

नारायण उवाच ।

कर्मणोऽदक्षिणस्यैव कुत एव फलं मुने । सदक्षिणे कर्मणिच फलमेव प्रवर्त्तते ॥६६ ॥

याया कर्मणि सामग्री वलिर्भुङ्क्तेच तां मुने । वलये तत् प्रदत्तञ्च वामनेन पुरा मुने ॥

अश्रोत्रियं श्राद्धद्रव्यमश्राद्धं दानमेव च । वृषलीपतिविप्राणां पूजाद्रव्यादिकञ्चयत् ६८॥

ऋत्विजा न कृतं यज्ञमशुचेः पूजनञ्च यत् ।

गुरावभक्तस्य कर्म बलिर्भुङ्क्तेन संशयः ॥६९॥

दक्षिणायाश्च यद्ध्यानं स्तोत्रं पूजाविधिक्रमम् ।

तत्सर्वं काण्वशाखोक्तं प्रवक्ष्यामि निशामय ॥७०॥

पुरा संप्राप्य तां यज्ञः कर्मदक्षाञ्च दक्षिणाम् । मुमोह तस्यारूपेणतुष्टाव कामकातरः ॥

यज्ञ उवाच ।

पुरा गोलोकगोपी त्वं गोपीनां प्रवरापरा । राधासमातत्सखीचश्रीकृष्णप्रेयसीप्रिये ॥

कार्तिकीपूर्णिमायान्तुरासेराधामहोत्सवे । आविर्भूतादक्षिणांशात्कृष्णस्यतेनदक्षिणा ॥

पुरा त्वञ्च सुशीलाख्याशीलेनशोभनेनच । कृष्णदक्षांशवासाच्च राधाशापाच्चदक्षिणा ॥

गोलोकात् त्वं परिध्वस्ता मम भाग्यादुपस्थिता ।

कृपां कुरु त्वमेवाद्य स्वामिनं कुरु मां प्रिये ॥७५॥

कर्मिणां कर्मणां देवी त्वमेव फलदा सदा । त्वयाविनाचसर्वेषांसर्वंकर्मच निष्फलम् ॥

फलशाखाविहीनश्च यथा वृक्षो महीतले । त्वया विना तथा कर्म्मकर्मिणाञ्चनशोभते ॥

ब्रह्मविष्णुमहेशाश्च दिक्पालादय एव च । कर्मणश्च फलं दातुं न शक्ताश्चत्वया विना ॥

कर्मरूपी स्वयं ब्रह्मा फलरूपी महेश्वरः । यज्ञरूपी विष्णुरहं त्वमेषां साररूपिणी ॥७९॥

फलदाता परं ब्रह्म निर्गुणः प्रकृतेः परः । स्वयं कृष्णश्च भगवान्नचशक्तस्त्वयाविना ॥
त्वमेव शक्तिः कान्ते मे शश्वज्जन्मनि जन्मनि । सर्वकर्मणिशक्तोऽहंत्वयासहवरानने ॥
इत्युक्त्वा तत्पुरस्तस्थौ यज्ञाधिष्ठातृदेवकः । तुष्टा बभूव सा देवी भेजे तं कमलाकला॥
इदञ्च दक्षिणास्तोत्रं यज्ञकाले च यः पठेत् । फलञ्च सर्वयज्ञानां लभते नात्र संशयः ॥
राजसूये वाजपेये गोमेधे नरमेधके । अश्वमेधे लाङ्गले च विष्णुयज्ञे यशस्करे ॥ ८४ ॥
धनदे भूमिदे फलगौ पुत्रेष्टौ गजमेधके । लौहयज्ञे स्वर्णयज्ञे पटले व्याधिखण्डने ॥८५॥
शिवयज्ञे रुद्रयज्ञे शत्रुयज्ञे च वन्धके । इष्टौ वरुणयागे च कन्दुके वैरिमर्दने ॥८६ ॥
शुचियागे धर्मयागे रेचने पापमोचने । वन्धने कर्मयागे च मणियागे सुभद्रके ॥८७॥

एतेषाञ्च समारम्भे इदं स्तोत्रञ्च यः पठेत् ।
निर्विघ्नेन च तत् कर्म साङ्गं भवति निश्चितम् ॥८८॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे प्रकृतिखण्डे दक्षिणास्तोत्रं समाप्तम् ।

इदं स्तोत्रञ्च कथितं ध्यानंपूजाविधानकम् । शालग्रामेघटेवापिदक्षिणांपूजयेत्सुधीः ॥
लक्ष्मींदक्षांशसम्भूतां दक्षिणां कमलाकलाम् । सर्वकर्मसुदक्षाञ्चफलदांसर्वकर्मणाम् ॥
विष्णोः शक्तिस्वरूपाञ्च सुशीलांशुभदांभजे । ध्यात्वाऽनेनैववरदांमूलेनपूजयेत्सुधीः ॥
दत्त्वा पाद्यादिकं देव्यै वेदोक्तेन च नारद । ओंह्रींक्लींह्रींदक्षिणायैस्वाहेतिच विचक्षणः ॥
पूजयेद्विधिवद्भक्त्या दक्षिणां सर्वपूजिताम् । इत्येवं कथितं सर्वंदक्षिणाख्यानमुत्तमम् ॥
सुखदं प्रीतिदं चैव फलदं सर्वकर्मणाम् । इदञ्च दक्षिणाख्यानं यःशृणोति समाहितः ॥
अङ्गहीनञ्च तत् कर्म न भवेद्भारते भुवि । अपुत्रो लभतेपुत्रंनिश्चितञ्चगुणान्वितम् ॥९५

भार्य्याहीनो लभेद्भार्य्यां सुशीलां सुन्दरीं पराम् ।
वरारोहां पुत्रवतीं विनीतां प्रियवादिनीम् ॥९६॥

पतिव्रतां सुव्रताञ्च शुद्धाञ्च कुलजां वराम् । विद्याहीनो लभेद्विद्यांधनहीनोधनं लभेत् ॥

भूमिहीनो लभेद्भूमिं प्रजाहीनो लभेत् प्रजाम् ।
सङ्कटे बन्धुविच्छेदे विपत्तौ बन्धने तथा ॥९८॥

मासमेकमिदं श्रुत्वा मुच्यते नात्र संशयः ॥६६॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे दक्षिणोपाख्यानं नाम द्विचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

षष्ठ्युत्पत्तिवर्णनम् ।

नारद उवाच ।

अनेकासाञ्च देवीनां श्रुतमाख्यानमुत्तमम्। अन्यासां चरितं ब्रह्मन् वद वेदविदांवर !१॥

नारायण उवाच ।

सर्वासां चरितं विप्र ! वेदेष्वस्ति पृथक् पृथक् ।
पूर्वोक्तानाञ्च देवीनां त्वं कासां श्रोतुमिच्छसि ॥२॥

नारद उवाच ।

षष्ठी मङ्गलचण्डी च मनसाप्रकृतेःकला । व्युत्पत्तिमासांचरितंश्रोतुमिच्छामितत्वतः ॥

नारायण उवाच ।

षष्ठांशा प्रकृतेर्या च सा च षष्ठी प्रकीर्त्तिता । बालकाधिष्ठातृदेवीविष्णुमायाचबालदा॥
मातृकासुचविख्यातादेवसेनाभिधाचसा । प्राणाधिकप्रियासाध्वीस्कन्दभार्य्याचसुव्रता
आयुःप्रदा च बालानां धात्री रक्षणकारिणी ।
सन्ततं शिशुपार्श्वस्था योगेन सिद्धियोगिनी ॥६॥
तस्याः पूजाविधौ ब्रह्मन्नितिहासविधिं शृणु ।
यत् श्रुतं धर्मवक्त्रेण सुखदं पुत्रदं परम् ॥७॥
राजा प्रियव्रतश्चासीत् स्वायम्भुवमनोः सुतः ।
योगीन्द्रो नोद्वहेद्भार्यां तपस्यासु रतः सदा ॥८॥
ब्रह्माज्ञया च यत्नेन कृतदारो बभूव सः । सुचिरं कृतदारश्च न लभेत्तनयं मुने ॥९॥

पुत्रेष्टियज्ञं तञ्चापि कारयामास कश्यपः । मालिन्यै तस्य कान्तायै मुनिर्यज्ञचरुं ददौ ॥
भुक्त्वा चरुञ्च तस्याश्च सद्यो गर्भो बभूव ह । दधार तञ्च सा देवी दैवं द्वादशवत्सरम् ॥
ततः सुषाव सा ब्रह्मन् कुमारं कनकप्रभम् । सर्वावयवसम्पन्नं मृतमुत्तारलोचनम् ॥१२
तं दृष्ट्वा रुरुदुः सर्वा नार्य्यश्च बान्धवस्त्रियः । मूर्च्छामवाप तन्माता पुत्रशोकेनसुव्रता ॥
श्मशानञ्च ययौ राजा गृहीत्वा बालकं मुने । रुरोद तत्रकान्तारेपुत्रंकृत्वास्ववक्षसि ॥
नोत्सृज्यबालकंराजाप्राणांस्त्यक्तुंसमुद्यतः । ज्ञानयोगंविसस्मारपुत्रशोकात्सुदारुणात्॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र विमानञ्च ददर्श ह । शुद्धस्फटिकसङ्काशं मणिराजविराजितम् ॥१६।
तेजसाज्वलितंशश्वत्शोभितंक्षौमवाससा । नानाचित्रविचित्राढ्यंपुष्पमालाविराजितम्
ददर्श तत्र देवीञ्च कमनीयां मनोहराम् । श्वेतचम्पकवर्णाभां शश्वत्सुस्थिरयौवनाम् ॥
ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां रत्नभूषणभूषिताम् । कृपामयीं योगसिद्धां भक्तानुग्रहकातराम् ॥१६
दृष्ट्वा तां पुरतो राजा तुष्टाव परमादरम् । चकार पूजनं तस्या विहाय बालकं भुवि ॥

पप्रच्छ राजा तां दृष्ट्वा ग्रीष्मसूर्य्यसमप्रभाम् ।
तेजसा ज्वलितां शान्तां कान्तां स्कन्दस्य नारद ॥२१॥

प्रियव्रत उवाच ।

कथं सुशोभने कान्ते कस्य कान्तासि सुव्रते ।
कस्य कन्या वरारोहे धन्या मान्या च योषिताम् ॥२२॥

नृपेन्द्रस्य वचः श्रुत्वा जगन्मङ्गलदायिनी । उवाच देवसेना सा देवरक्षणकारिणी ॥२३
देवानां दैत्यग्रस्तानां पुरा सेना बभूव सा । जयं ददौ च तेभ्यश्च देवसेना च तेन सा॥

देवसेनोवाच ।

ब्रह्मणो मानसी कन्या देवसेनाहमीश्वरी । सृष्ट्वा मां मनसो धाताददौस्कन्दाय भूमिप
मातृकासु च विख्यातास्कन्दसेनाचसुव्रता । विश्वेषष्ठीतिविख्याताषष्ठांशाप्रकृतेर्यतः ॥
अपुत्राय पुत्रदाऽहं प्रियदाता प्रियाय च । धनदा च दरिद्रेभ्यो कर्मिणे शुभकर्मदा ॥२७
सुखं दुःखं भयं शोकं हर्षं मंगलमेव च । सम्पत्तिश्च विपत्तिश्च सर्वं भवति कर्मणा ॥
कर्मणा बहुपुत्री च वंशहीनश्च कर्मणा । कर्मणा रूपवांश्चैव रोगी शश्वत् स्वकर्मणा ॥

कर्मणा मृतपुत्रश्च कर्मणा चिरजीविनः । कर्मणा गुणवन्तश्च कर्मणाचाङ्गहीनकः ॥३०
तस्मात् कर्मपरं राजन् सर्वेभ्यश्च श्रुतौ श्रुतम् । कर्मरूपी चभगवान्तद्द्वाराफलदोहरिः ॥
इत्येवमुक्त्वा सा देवी गृहीत्वा बालकं मुने । महाज्ञानेन सहसा जीवयामास लीलया ॥
राजा ददर्श तं बालं सस्मितं कनकप्रभम् । देवसेना च पश्यन्तं नृपमम्बरमेव च ॥३३॥
गृहीत्वा बालकं देवी गगनं गन्तुमुद्यता । पुनस्तुष्टाव तां राजा शुष्ककण्ठौष्ठतालुकः ॥
नृपस्तोत्रेण सा देवी परितुष्टा बभूव ह । उवाच तं नृपं ब्रह्मन् वेदोक्तं कर्मनिर्मितम् ॥

देवसेनोवाच ।

त्रिषु लोकेषु राजा त्वं स्वायम्भुवमनोः सुतः । मम पूजाञ्च सर्वत्र कारयित्वास्वयंकुरु
तदा दास्यामि पुत्रन्ते कुलपद्मं मनोहरम् । सुव्रतं नामविख्यातं गुणवन्तं सुपण्डितम्
जातिस्मरञ्च योगीन्द्रं नारायणपरायणम् । शतक्रतुकरं श्रेष्ठं क्षत्रियाणाञ्च वन्दितम् ॥
मत्तमातङ्गलक्षाणां धृतवन्तं बलं शुभम् । धन्विनं गुणिनं शुद्धं विदुषां प्रियमेव च ॥
योगिनं ज्ञानिनञ्चैव सिद्धरूपं तपस्विनम् । यशस्विनञ्च लोकेषु दातारं सर्वसम्पदाम् ॥
इत्येवमुक्त्वा सा देवी तस्मै तद्बालकं ददौ । राजा चकार स्वीकारं तत्पूजार्थञ्चसुव्रतः
जगाम देवी स्वर्गञ्च दत्त्वा तस्मै शुभं वरम् । आजगाम महाराजा स्वगृहंहृष्टमानसः ॥
आगत्य कथयामास वृत्तान्तं पुत्रहेतुकम् ॥ ४२ ॥
तुष्टा बभूवुः सन्तुष्टा नरनार्य्यश्च नारद ! । मङ्गलं कारयामास सर्वत्र पुत्रहेतुकम् ॥
देवीञ्च पूजयामास ब्राह्मणेभ्यो धनं ददौ ॥ ४३ ॥
राजा च प्रतिमासेषु शुक्लषष्ठ्यां महोत्सवम् । षष्ठ्यादेव्याश्च यत्नेन कारयामाससर्वतः
बालानां सूतिकागारे षष्ठ्याहे यत्नपूर्वकम् । तत्पूजां कारयामास चैकविंशतिवासरे ॥
बालानां शुभकार्य्ये च शुभान्नप्राशने तथा । सर्वत्र वर्द्धयामास स्वयमेव चकार ह ॥४६
ध्यानं पूजाविधानञ्च स्तोत्रं मत्तो निशामय । यत्श्रुतं धर्मवक्त्रेण कौथुमोक्तञ्च सुव्रत।
शालग्रामे घटेवाऽथ वटमूलेऽथवा मुने । भित्त्यां पुत्तलिकां कृत्वा पूजयेद्वा विचक्षणः
षष्ठांशां प्रकृतेः शुद्धां सुप्रतिष्ठाञ्च सुव्रताम् । सुपुत्रदाञ्च शुभदां दयारूपां जगत्प्रसूम् ॥
श्वेतचम्पकवर्णाभां रत्नभूषणभूषिताम् । पवित्ररूपां परमां देवसेनां परां भजे ॥ ५० ॥

इति ध्यात्वा स्वशिरसि पुष्पंदत्वाविचक्षणः । पुनर्ध्यात्वा चमूलेन पूजयेत्सुव्रतांसतीम्
पाद्यार्घ्याचमनीयैश्च गन्धधूपप्रदीपकैः । नैवेद्यैर्विविधैश्चापि फलेन शोभनेन च ॥५२ ॥
मूलं ओं ह्रीं षष्ठीदेव्यै स्वाहेति विधिपूर्वकम् । अष्टाक्षरं महामन्त्रं यथाशक्ति जपेन्नरः ।
तत्र स्तुत्वा च प्रणमेत् भक्तियुक्तः समाहितः । स्तोत्रञ्च सामवेदोक्तं धनपुत्रफलप्रदम्
अष्टाक्षरं महामन्त्रं लक्षधा यो जपेन्मुने । स पुत्रं लभते नूनमित्याह कमलोद्भवः ॥५५॥
स्तोत्रं शृणु मुनिश्रेष्ठ सर्वेषाञ्च शुभावहम् । वाञ्छाप्रदञ्च सर्वेषां गूढं वेदे च नारद ॥

प्रियव्रत उवाच ।

नमो देव्यै महादेव्यै सिद्ध्यै शान्त्यै नमो नमः । शुभायै देवसेनायै षष्ठीदेव्यै नमो नमः
वरदायै पुत्रदायै धनदायै नमोनमः । सुखदायै मोक्षदायै षष्ठीदेव्यै नमो नमः ॥ ५८ ॥
शक्तेः षष्ठांशरूपायै सिद्धायै च नमो नमः । मायायै सिद्धयोगिन्यै षष्ठीदेव्यै नमो नमः
पारायै पारदायै च षष्ठीदेव्यै नमो नमः । सारायै सारदायै च पारायै सर्वकर्मणाम् ॥
बालाधिष्ठातृदेव्यै च षष्ठीदेव्यै नमो नमः । कल्याणदायै कल्याण्यै फलदायैचकर्मणाम्
प्रत्यक्षायै च भक्तानां षष्ठीदेव्यै नमो नमः । पूज्यायै स्कन्दकान्तायै सर्वेषां सर्वकर्मसु ।
देवरक्षणकारिण्यै षष्ठीदेव्यै नमो नमः । शुद्धसत्वस्वरूपायै वन्दितायै नृणां सदा ॥६३
हिंसाक्रोधवर्जितायै षष्ठीदेव्यै नमो नमः । धनं देहि प्रियां देहि पुत्रं देहि सुरेश्वरि ॥
धर्मं देहि यशो देहि षष्ठीदेव्यै नमो नमः । भूमिं देहि प्रजां देहि देहि विद्यां सुपूजिते ॥
कल्याणञ्च जयं देहि षष्ठीदेव्यै नमो नमः । इति देवीञ्च संस्तूय लेभे पुत्रं प्रियव्रतः ॥
यशस्विनञ्च राजेन्द्रं षष्ठीदेवीप्रसादतः । षष्ठीस्तोत्रमिदं ब्रह्मन् यः शृणोति च वत्सरम्
अपुत्रो लभते पुत्रं वरं सुचिरजीविनम् । वर्षमेकञ्च या भक्त्या संयतेदं शृणोति च ॥
सर्वपापाद्विनिर्मुक्तो महावन्ध्या प्रसूयते । वीरपुत्रञ्च गुणिनं विद्यावन्तं यशस्विनम् ।६६
सुचिरायुष्मन्तमेव षष्ठीमातृप्रसादतः । काकवन्ध्या च या नारी मृतापत्या च या भवेत्
वर्षं श्रुत्वा लभेत्पुत्रं षष्ठीदेवीप्रसादतः । रोगयुक्ते च बाले च पिता माता शृणोति च॥
मासञ्च पूज्यते बालः षष्ठीदेवीप्रसादतः ॥ ७२ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे षष्ठ्युपाख्याने षष्ठीस्तोत्रं नाम त्रिचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

चतुश्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

मङ्गलचण्ड्युपाख्यानम् ।

नारायण उवाच ।

कथितं षष्ठ्युपाख्यानं ब्रह्मपुत्र यथागमम् । देवी मङ्गलचण्डी च तदाख्यानं निशामय
तस्याः पूजादिकं सर्वं धर्मवक्त्राच्च यच्छ्रुतम् । श्रुतिसम्मतमेवेष्टं सर्वेषां विदुषामपि॥
दक्षायां वर्त्तते चण्डी कल्याणेषु चमङ्गलम् । मङ्गलेषु च या दक्षा साचमङ्गलचण्डिका
दुर्गायां विद्यते चण्डी मङ्गलोऽपिमहीसुते । मङ्गलाभीष्टदेवी या सा वा मङ्गलचण्डिका
मङ्गलो मनुवंशश्च सप्तद्वीपावनीपतिः । तस्य पूज्याभीष्टदेवी तेन मङ्गलचण्डिका ॥५॥
मूर्त्तिभेदेन सा दुर्गा मूलप्रकृतिरीश्वरी । कृपारूपातिप्रत्यक्षा योषितामिष्टदेवता ॥ ६॥
प्रथमे पूजिता सा च शङ्करेण पुरा परा । त्रिपुरस्य वधे घोरे विष्णुना प्रेरितेन च ॥७॥
ब्रह्मन् ब्रह्मोपदेशे च दुर्गप्रस्थे च सङ्कटे । आकाशात् पतिते याने दैत्येन पातिते रुषा ॥
ब्रह्मविष्णूपदिष्टश्च दुर्गां तुष्टाव शङ्करः । सा च मङ्गलचण्डी च बभूव रूपभेदतः ॥९॥
उवाच पुरतः शम्भोर्भयं नास्तीति ते प्रभो । भगवान् वृषरूपश्च सर्वेशश्च बभूव ह ॥१०
युद्धशक्तिस्वरूपाहं भविष्यामि तदाज्ञया । मयात्मना च हरिणा सहायेन वृषध्वज ॥११
जहि दैत्यञ्च देवेश सुराणां पदघातकम् । इत्युक्त्वान्तर्हिता देवी शम्भोः शक्तिर्बभूवसा
विष्णुदत्तेन शस्त्रेण जघान तमुमापतिः । मुनीन्द्र पतिते दैत्ये सर्वे देवा महर्षयः ॥१३
तुष्टुवुः शङ्करं देवा भक्तिनम्रात्मकन्धराः । सद्यः शिरसि शम्भोश्च पुष्पवृष्टिर्बभूव ह ॥
ब्रह्मा विष्णुश्च सन्तुष्टो ददौ तस्मै शुभाशिषम् । ब्रह्माविष्णूपदिष्टश्चसुस्नातःशङ्करःशुचिः
पूजयामास तां शक्तिं देवीं मङ्गलचण्डिकाम् । पाद्यार्घ्याचमनीयैश्च बलिभिर्विविधैरपि
पुष्पचन्दननैवेद्यैर्भक्त्या नानाविधैर्मुने । छागैर्मेषैश्च महिषैर्गण्डैर्मायातिभिर्वरैः ॥ १७ ॥
वस्त्रालङ्कारमाल्यैश्च पायसैः पिष्टकैरपि । मधुभिश्च सुधाभिश्च पक्वैर्नानाविधैः फलैः
सङ्गीतैर्नर्त्तनैर्वाद्यैरुत्सवैः कृष्णकीर्त्तनैः । ध्यात्वा माध्यन्दिनोक्तेन ध्यानेनभक्तिपूर्वकम्

ददौ द्रव्याणि मूलेन मन्त्रेणैव च नारद । ओं ह्रीं श्रीं क्लीं सर्वपूज्ये देवि मङ्गलचण्डिके
ऐं क्रूं फट् स्वाहेत्येवं चाप्येकविंशाक्षरो मनुः ॥ २० ॥
पूज्यः कल्पतरुश्चैव भक्तानां सर्व कामदः । दशलक्षजपेनैव मन्त्रसिद्धिर्भवेन्नृणाम् ॥
मन्त्रसिद्धिर्भवेद्यस्य स विष्णुःसर्वकामदः । ध्यानञ्च श्रूयतां ब्रह्मन् वेदोक्तंसर्वसम्मतम्
देवीं षोड़शवर्षीयां शश्वत्सुस्थिरयौवनाम् । सर्वरूपगुणाढ्याञ्च कोमलाङ्गीं मनोहराम् ।
श्वेतचम्पकवर्णाभां चन्द्रकोटिसमप्रभाम् । वह्निशुद्धांशुकाधानां रत्नभूषणभूषिताम् ॥
बिभ्रतीं कवरीभारं मल्लिकामाल्यभूषितम् ।
विम्बोष्ठसुदतीं शुद्धां शरत्पद्मनिभाननाम् ॥ २५ ॥
ईषद्धास्यप्रसन्नास्यांसुनीलोत्पललोचनाम् । जगद्धात्रीञ्चदात्रीञ्चसर्वेभ्यःसर्वसम्पदाम् ।
संसारसागरे घोरे पोतरूपां वरां भजे ॥२७॥
देव्याश्च ध्यानमित्येवं स्तवनं श्रूयतां मुने । प्रयतः सङ्कटग्रस्तो येन तुष्टाव शङ्करः ॥२८

शङ्कर उवाच ।

रक्ष रक्ष जगन्मातर्देवि मङ्गलचण्डिके । हारिके विपदां राशिं हर्षमङ्गलकारिके ॥ २९ ।
हर्षमङ्गलदक्षेच हर्षमङ्गलचण्डिके । शुभे मङ्गलदक्षेच शुभमङ्गलचण्डिके ॥ ३० ॥
मंगले मंगलार्हे च सर्वमंगलमंगले । सतां मंगलदे देवि सर्वेषां मंगलालये ॥ ३१ ॥
पूज्या मंगलवारे च मंगलाभीष्टदैवते । पूज्ये मंगलभूपस्य मनुवंशस्य सन्ततम् ॥ ३२ ॥
मंगलाधिष्ठातृदेवी मंगलानाञ्च मङ्गले । संसारमङ्गलाधारे मोक्षमङ्गलदायिनि ॥ ३३ ॥
सारे च मङ्गलाधारे पारे च सर्वकर्मणाम् । प्रति मङ्गलवारे च पूज्ये च मङ्गलप्रदे ॥३४॥
स्तोत्रेणानेनशम्भुश्च स्तुत्वामङ्गलचण्डिकाम् । प्रतिमङ्गलवारेचपूजां कृत्वा गतःशिवः॥
देव्याश्च मङ्गलस्तोत्रं यः शृणोति समाहितः । तन्मङ्गलं भवेच्छश्वन्नभवेत्तदमङ्गलम् ॥
प्रथमे पूजिता देवी शिवेन सर्वमङ्गला । द्वितीये पूजिता देवी मङ्गलेन ग्रहेण च ॥ ३७॥
तृतीये पूजिता भद्रा मङ्गलेननृपेन च । चतुर्थे मङ्गलेवारे सुन्दरीभिश्च पूजिता ।
पञ्चमे मङ्गलाकाङ्क्षैर्नरैर्मङ्गलचण्डिका ॥ ३८ ॥
पूजिता प्रतिविश्वेषु विश्वेशपूजिता सदा । ततः सर्वत्र संपूज्या सा बभूव सुरेश्वरी ।

देवादिभिश्च मुनिभिर्मनुभिर्मानवैर्मुने । देव्याश्च मङ्गलस्तोत्रं यः शृणोति समाहितः ॥
तन्मङ्गलं भवेच्छश्वन्नभवेत्तदमङ्गलम् । वर्द्धन्ते तत् पुत्रपौत्रा मङ्गलञ्च दिने दिने ॥४१
इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे प्रकृतिखण्डे मङ्गलोपाख्यानं तत् स्तोत्रकथनं नाम चतुश्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

पञ्चचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

मनसादेव्युपाख्यानम् ।

नारायण उवाच ।

उक्तं द्वयोरुपाख्यानं ब्रह्मपुत्र यथागमम् । श्रूयतां मनसाख्यानं यत्श्रुतं धर्मवक्त्रतः ॥१
कन्या साच भगवती कश्यपस्यच मानसी । तेनेयं मनसादेवी मनसा या च दीव्यति॥
मनसा ध्यायते या वा परमात्मानमीश्वरम् । तेन सा मनसादेवी योगेन तेन दीव्यति॥
आत्मारामा च सा देवी वैष्णवी सिद्धयोगिनी ।
त्रियुगञ्च तपस्तप्त्वा कृष्णस्य परमात्मनः ॥ ४ ॥
जरत्कारु शरीरञ्च दृष्ट्वा यां क्षीणमीश्वरः । गोपीपतिर्नामचक्रे जरत्कारुरिति प्रभुः ॥
वाञ्छितञ्चददौ तस्यै कृपयाच कृपानिधिः । पूजाञ्च कारयामास चकार च पुनःस्वयम्
स्वर्गेच नागलोकेच पृथिव्यां ब्रह्मलोकतः । भृशं जगत्सु गौरी सा सुन्दरीच मनोहरा
जगद्गौरीतिविख्यातातेन सापूजितासती । शिवशिष्याच सा देवी तेनशैवीतिकीर्त्तिता
विष्णुभक्तातीव शश्वद्वैष्णवी तेन नारद । नागानां प्राणरक्षित्री यज्ञे जन्मेजयस्य च ॥
नागेश्वरीतिविख्याता सा नागभगिनीतथा । विषं संहर्त्तुमीशासा तेन विषहरीतिसा ॥
सिद्धंयोगं हरात् प्राप तेनातिसिद्धयोगिनी । महाज्ञानञ्च गोप्यञ्चमृतसञ्जीविनींपराम् ॥
महाज्ञानयुतां ताञ्च प्रवदन्ति मनीषिणः ।
आस्तीकस्य मुनीन्द्रस्य माता सा च तपस्विनः ॥ १२ ॥

आस्तिकमाताविख्याता जगत्सुसुप्रतिष्ठिता । प्रियामुनेर्जरत्कारोर्मुनीन्द्रस्यमहात्मनः ।
योगिनो विश्वपूज्यस्य जरत्कारोः प्रियाः ततः ॥ १४ ॥

ओं नमो मनसायै ।

जरत्कारुर्जगद्गौरी मनसा सिद्धियोगिनी । वैष्णवी नागभगिनी शैवी नागेश्वरीतथा
जरत्कारुप्रियाऽऽस्तीकमाता विषहरीति च । महाज्ञानयुता चैव सा देवी विश्वपूजिता
द्वादशैतानिनामानि पूजाकालेच यः पठेत् । तस्य नागभयं नास्तितस्य वंशोद्भवस्यच
नागभीते च शयने नागग्रस्ते च मन्दिरे । नागक्षते महादुर्गे नागवेष्टितविग्रहे ॥ १८ ॥
इदं स्तोत्रं पठित्वा तु मुच्यते नात्रसंशयः । नित्यं पठेत् यस्तं दृष्ट्वा नागवर्गःपलायते ।
दशलक्षजपेनैव स्तोत्रसिद्धिर्भवेन्नृणाम् । स्तोत्रसिद्धोभवेद् यस्यसविषंभोक्तुमीश्वरः ।
नागौघं भूषणं कृत्वा स भवेन्नागवाहनः । नागासनो नागतल्पो महासिद्धो भवेन्नरः ।

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसम्वादे मनसोपाख्यानं मनसास्तोत्रं नाम पञ्चचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

षट्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

मनसापूजाविधानम् ।

नारायण उवाच ।

पूजाविधानं स्तोत्रञ्च श्रूयतां मुनिपुङ्गव । ध्यानञ्च सामवेदोक्तं देवीपूजाविधानकम् ॥
श्वेतचम्पकवर्णाभां रत्नभूषणभूषिताम् । वह्निशुद्धांशुकाधानां नागयज्ञोपवीतिनीम् ॥२॥
महाज्ञानयुताञ्चैव प्रवरां ज्ञानिनां सताम् । सिद्धाधिष्ठातृदेवीञ्चसिद्धांसिद्धिप्रदाम्भजे ॥
इति ध्यात्वा च तां देवीं मूलेनैव प्रपूजयेत् । नैवेद्यैर्विविधैर्दीपैः पुष्पैर्धूपानुलेपनैः ॥४॥
मूलमन्त्रश्च वेदोक्तो भक्तानां वाञ्छितप्रदः । मूलकल्पतरुर्नाम सुसिद्धो द्वादशाक्षरः ॥
ओं ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं मनसादेव्यैस्वाहेतिकीर्त्तितः । पञ्चलक्षजपेनैवमन्त्रसिद्धिर्भवेन्नृणाम् ॥

मन्त्रसिद्धिर्भवेद् यस्य स सिद्धोजगतीतले। सुधासमंविषंतस्यधन्वन्तरिसमोभवेत्॥

ब्रह्मन्नाषाढ़संक्रान्त्यां गुडाशाखासु यत्नतः।
आवाह्य देवीं मासान्तं पूजयेद् यो हि भक्तितः ॥८॥
पञ्चम्यां मनसाख्यायां देव्यै दद्याच्च यो बलिम्।
धनवान् पुत्रवांश्चैव कीर्त्तिमान् स भवेत् ध्रुवम् ॥९॥
पूजाविधानं कथितं तदाख्यानं निशामय।
कथयामि महाभाग यत् श्रुतं धर्म्मवक्त्रतः ॥१०॥
पुरा नागभयाक्रान्ता बभूवुर्म्मानवा भुवि।
यान् यान् खादन्ति नागाश्च न ते जीवन्ति नारद ॥११॥

मन्त्रांश्च ससृजे भीतः कश्यपो ब्रह्मणार्थितः। वेदबीजानुसारेण चोपदेशेन ब्रह्मणः॥
मन्त्राधिष्ठातृदेवीं तां मनसां ससृजे ततः। तपसा मनसा तेन बभूव मनसा च सा॥
कुमारी सा च संभूय जगाम शङ्करालयम्। भक्त्यासम्पूज्यकैलासेतुष्टावचन्द्रशेखरम्॥
दिव्यं वर्षसहस्रञ्च तं सिषेवे मुनेः सुता। आशुतोषो महेशश्च ताञ्च तुष्टो बभूवह ॥१५
महाज्ञानं ददौ तस्यै पाठयामास साम च। कृष्णमन्त्रं कल्पतरुं ददावष्टाक्षरं मुने ॥१६
लक्ष्मीर्मायाकामबीजं ङेन्तं कृष्णपदं तथा। त्रैलोक्यमङ्गलं नाम कवचं पूजनक्रमम्॥
सर्वपूज्यञ्च स्तवनं ध्यानं भुवनपावनम्। पुरश्चर्य्याक्रमञ्चापि वेदोक्तं सर्वसम्मतम्॥१८
प्राप्य मृत्युञ्जयात् ज्ञानं परं मृत्युञ्जयं सती। जगाम तपसे साध्वीपुष्करंशङ्कराज्ञया॥
त्रियुगञ्च तपस्तप्त्वा कृष्णस्य परमात्मनः। सिद्धा बभूव सा देवी ददर्शपुरतःप्रभुम्॥
दृष्ट्वा कृशाङ्गीं बालाञ्च कृपया च कृपानिधिः। पूजाञ्चकारयामासचकारचहरिःस्वयम्॥
वरञ्च प्रददौ तस्यै पूजिता त्वं भवे भव। वरं दत्त्वा च कल्याणै सद्यश्चान्तर्दधेविभुः॥
प्रथमे पूजिता सा च कृष्णेन परमात्मना। द्वितीये शङ्करेणैव कश्यपेन सुरेण च ॥२३
मनुना मुनिना चैव नागेन मानवादिना। बभूव पूजिता सा च त्रिषु लोकेषु सुव्रता॥
जरत्कारु मुनीन्द्राय कश्यपस्तां ददौ पुरा। अयाचितोमुनिश्रेष्ठोजग्राहब्रह्मणाज्ञया॥
कृत्वोद्वाहं महायोगी विश्रान्तस्तपसा चिरम्। सुष्वाप देव्या जघने वटमूलेचपुष्करे॥

निद्रां जगाम समुनिःस्मृत्वा निद्रेशमीश्वरम् । जगामास्तंदिनकरःसायंकालउपस्थितः ॥
संचिन्त्य मनसा तत्र मनसा च पतिव्रता । धर्म्मलोपभयेनैव चकारालोचनंसती ॥२८
अकृत्वा पश्चिमांसन्ध्यांनित्याञ्चैवद्विजन्मनाम् । ब्रह्महत्यादिकंपापंलभिष्यतिपतिर्मम ॥
नोपतिष्ठति यः पूर्वां नोपास्तेयस्तुपश्चिमाम् । सचएवाशुचिर्नित्यंब्रह्महत्यादिकंलभेत् ॥
वेदोक्तमिति संचिन्त्यबोधयामासतंमुनिम् । सचबुद्ध्वामुनिश्रेष्ठश्चुकोपतांभृशंमुनिः ॥

जरत्कारुरुवाच ।

कथं मे सुव्रतेसाध्वि निद्राभङ्गःकृतस्त्वया । व्यर्थंव्रतादिकंतस्याया भर्त्तुश्चापकारिणी ॥
तपश्चानशनञ्चैव व्रतं दानादिकञ्च यत् । भर्त्तुरप्रियकारिण्याः सर्वं भवतिनिष्फलम् ३३
यया पतिः पूजितश्च श्रीकृष्णः पूजितस्तया । पतिव्रताव्रतार्थञ्चपतिरूपीहरिः स्वयम् ॥
सर्वदानं सर्वयज्ञः सर्वतीर्थनिषेवणम् । सर्वं तपो व्रतं सर्वमुपवासादिकञ्च यत् ॥३५॥
सर्वधर्मश्च सत्यञ्च सर्वदेवप्रपूजनम् । तत्सर्वं स्वामिसेवायाः कलां नार्हन्तिषोड़शीम्
सुपुण्ये भारते वर्षे पतिसेवांकरोति या । वैकुण्ठं स्वामिनासार्द्धंसायाति ब्रह्मणःशतम्
विप्रियं कुरुते भर्त्तुर्विप्रियं वदति प्रियम् । असत्कुलप्रजाता या तत्फलं श्रूयतां सति ॥
कुम्भीपाकं व्रजेत् सा च यावच्चन्द्रदिवाकरौ । ततोभवति चाण्डालीपतिपुत्रविवर्जिता
इत्युक्त्वा स मुनिश्रेष्ठो बभूव स्फुरिताधरः । चकम्पे मनसा साध्वीभयेनोवाचतंपतिम्

मनसोवाच ।

सन्ध्यालोपभयेनैव निद्राभङ्गःकृतस्तव । कुरु शान्तिं महाभाग दुष्टाया मम सुव्रत ।४१॥
शृङ्गाराहारनिद्राणां यश्च भङ्गं करोति च । स व्रजेत् कालसूत्रञ्च स्वामिनश्च विशेषतः ।
इत्युक्त्वा मनसा देवी स्वामिनश्चरणाम्बुजे । पपात भक्त्या भीताच रुरोदच पुनः पुनः
कुपितञ्च मुनिं दृष्ट्वा श्रीसूर्य्यं शप्तुमुद्यतम् । तत्राजगाम भगवान् सन्ध्यया सह नारद ।
तत्रागत्य मुनिश्रेष्ठमुवाच भास्करः स्वयम् । विनयेन च भीतश्च तया सह यथोचितम्

श्रीसूर्य्य उवाच ।

सूर्य्यास्तसमयं दृष्ट्वा धर्मलोपभयेन च । बोधयामास त्वां विप्र नाहमस्तं गतस्तदा ॥४६
क्षमस्व भगवन् ब्रह्मन् मां शप्तुं नोचितं मुने । ब्राह्मणानाञ्च हृदयं नवनीतसमं सदा ॥

तेषां क्षणार्द्धं क्रोधश्चततोभस्मभवेज्जगत् । पुनः स्त्रष्टुं द्विजः शक्तो नतेजस्वीद्विजात्परः
ब्रह्मणो वंशसम्भूतःप्रज्ज्वलन् ब्रह्मतेजसा । श्रीकृष्णं भावयेन्नित्यं ब्रह्मज्योतिःसनातनम्
सूर्य्यस्य वचनंश्रुत्वाद्विजस्तुष्टोवभूव ह । सूर्य्यो जगामस्वस्थानं गृहीत्वाब्राह्मणाशिषम्
तत्याज मनसां विप्रः प्रतिज्ञापालनाय च । रुदन्तीं शोकयुक्ताञ्च हृदयेन विदूयता ॥५१
सा सस्मार गुरुं शम्भुमिष्टदेवं हरिं विधिम् । कश्यपं जन्मदातारं विपत्तौ भयकर्षिता
तत्राजगाम भगवान् गोपीशः शम्भुरेव च । विधिश्च कश्यपश्चैव मनसा परिचिन्तितः
स च दृष्ट्वाऽभीष्टदेवं निर्गुणं प्रकृतेः परम् । तुष्टाव परया शक्त्या प्रणनाम मुहुर्मुहुः ५४।
नमश्चकार शम्भुञ्च ब्रह्माणं कश्यपं तथा । कथमागमनन्तत्र इति प्रश्नं चकार सः ॥५५।
ब्रह्मा तद्वचनं श्रुत्वा सहसा समयोचितम् । तमुवाच नमस्कृत्य हृषीकेशपदाम्वुजम् ॥

ब्रह्मोवाच ।

यदित्यक्ता धर्मपत्नी धर्मिष्ठा मनसा सती । कुरुष्वास्यां सुतोत्पत्तिं स्वधर्मपालनाय वै

यति र्वा ब्रह्मचारी वा भिक्षुर्वनचरोऽपि वा ।
जायायाञ्च सुतोत्पत्तिं कृत्वा पश्चाद्‌ भवेन्मुनिः ॥ ५८ ॥
अकृत्वा तु सुतोत्पत्तिं वैरागी यस्त्यजेत् प्रियाम् ।
स्रवेत्तपस्तत् पुण्यञ्च चालन्याञ्च यथा जलम् ॥ ५९ ॥

ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा जरत्कारुर्मुनीश्वरः । चकार तन्नाभिस्पर्शं योगेन मन्त्रपूर्वकम् ॥
तस्मै शुभाशिषं दत्त्वा ययुर्देवामुदन्विताः । मुदान्विताच मनसा जरत्कारुर्मुदान्वितः।
मुनेः करस्पर्शमात्रात् सद्यो गर्भो वभूव ह । मनसाया मुनिश्रेष्ठ मुनिश्रेष्ठ उवाच ताम्॥

जरत्कारुरुवाच ।

गर्भेणानेन मनसे तव पुत्रो भविष्यति । जितेन्द्रियाणां प्रवरो धर्मिष्ठो वैष्णवाग्रणीः ॥
तेजस्वी च तपस्वीच यशस्वीच गुणान्वितः । वरोवेदविदाञ्चैव योगिनां ज्ञानिनां तथा
स च पुत्रोविष्णुभक्तो धार्मिकःकुलमुद्धरेत् । नृत्यन्तिपितरः सर्वे यज्जन्ममात्रतोमुदा ॥
पतिव्रता सुशीला या सा प्रिया प्रियवादिनी । धर्मिष्ठपुत्रमाताच कुलजा कुलपालिका।
हरिभक्तिप्रदो बन्धुस्तदिष्टं यत् सुखप्रदम् । योबन्धच्छित् स च पिता हरेर्वर्त्मप्रदर्शकः ॥

सा गर्भधारिणीयाच्च गर्भवासविमोचनी। विष्णुमन्त्रप्रदाता च स गुरुर्विष्णुभक्तिदः॥
गुरुश्चज्ञानदाताच तज्ज्ञानं कृष्णभावनम्। आब्रह्मस्तम्बपर्य्यन्तं यतो विश्वं चराचरम्॥
आविर्भूतं तिरोभूतं किंवा ज्ञानं तदन्यतः। वेदजं योगजं यद्यत्तत्सारं हरिसेवनम्॥
तत्त्वानां सारभूतञ्च हरेरन्यद्विडम्बनम्। दत्तं ज्ञानं मया तुभ्यं सस्वामी ज्ञानदो हि यः
ज्ञानात् प्रमुच्यतेबन्धात् सरिपुर्योहिबन्धदः। विष्णुभक्तियुतं ज्ञानं नो ददातिहियोगुरुः
स रिपुः शिष्यघाती च यतो बन्धान्न मोचयेत्॥ ७२॥
जननीगर्भजात् क्लेशात् यमताड़नजात्तथा। न मोचयेद्यः सकथं गुरुस्तातोहिबान्धवः।
परमानन्दरूपञ्च कृष्णमार्गमनश्वरम्। न दर्शयेद्यः सकथं कीदृशो बान्धवो नृणाम्।
भज साध्वि परं ब्रह्माच्युतं कृष्णञ्च निर्गुणम्॥ ७४॥
निर्मूलञ्चपुराकर्म भवेद्य यत्सेवयाध्रुवम्। मया छलेन त्वं त्यक्ता क्षम दोषं ममप्रिये॥
क्षमायुतानांसाध्वीनांसत्वात् क्रोधोनविद्यते। पुष्करेतपसेयामि गच्छदेवियथासुखम्।
श्रीकृष्णचरणाम्भोजेध्यानविच्छेदकातरः। धनादिषुस्त्रियांप्रीतिः प्रवृत्तिवर्त्मगच्छताम्
श्रीकृष्णचरणाम्भोजे निष्पृहाणां मनोरथाः॥ ७८॥
जरत्कारुवचः श्रुत्वा मनसा शोककातरा। सा साश्रुनेत्रा विनयादुवाच प्राणवल्लभम्।
मनसोवाच।
दोषेणाहंत्वया त्यक्तानिद्राभङ्गेनमे प्रभो। यत्र स्मरामित्वां बन्धो तत्रमामागमिष्यसि
बन्धुभेदः क्लेशतमः पुत्रभेदस्ततः परः। प्राणेशभेदः प्राणानां विच्छेदात् सर्वतः परः॥
पतिः पतिव्रतानाञ्च शतपुत्राधिकः प्रियः। सर्वस्माच्च प्रियःस्त्रीणां प्रियस्तेनोच्यतेबुधैः
पुत्रे यथैकपुत्राणां वैष्णवानां यथ हरौ। नेत्रे यथैकनेत्राणां तृषितानां यथा जले॥
क्षुधितानां यथान्ने च कामुकानां यथा स्त्रियाम्
यथा परस्वे चौराणां यथा जारे कुयोषिताम्॥ ८४॥
विदुषाञ्च यथाशास्त्रे वाणिज्ये वणिजां यथा।
तथा शश्वन्मनःकान्ते साध्वीनां योषितांप्रभो॥ ८५॥
इत्युक्त्वा मनसादेवी पपात स्वामिनः पदे। क्षणञ्चकार क्रोडे तां कृपयाच कृपानिधिः

नेत्रोदकेन मनसा स्नापयामास तां मुनिः । साश्रुणाचमुनेः क्रोडं सिषेच भेदकातरा
तदा ज्ञानेन तौ द्वौच विशोकौचवभूवतुः । स्मारं स्मारं पदाम्भोजंकृष्णस्य परमात्मनः
जगामतपसेविप्रःस कान्तांसुप्रबोध्यच । जगाममनसाशम्भोः कैलासं मन्दिरंगुरोः॥
पार्वती बोधयामास मनसा शोककर्षिताम् । शिवश्चातीव ज्ञानेन शिवेन च शिवालये॥
सुप्रशस्ते दिने साध्वी सुषाव मङ्गले क्षणे । नारायणांशं पुत्रञ्च ज्ञानिनां योगिनांगुरुम्
गर्भस्थितो महाज्ञानं श्रुत्वा शङ्करवक्त्रतः । स बभूवच योगीन्द्रोयोगिनां ज्ञानिनांगुरुः।
जातकं कारयामास वाचयामास मङ्गलम् । वेदांश्च पाठयामास शिवायच शिवः शिशोः
रत्नत्रिकोटिलक्षञ्च ब्राह्मणेभ्यो ददौ शिवः । पार्वतीच गवां लक्षं रत्नानि विविधानिच।
शम्भुश्च चतुरो वेदान् वेदाङ्गानितरांस्तथा । बालकं पाठयामास ज्ञानं मृत्युञ्जयंपरम्॥
भक्तिरास्ते स्वकान्ते चाभीष्टे देवे हरौगुरौ । यस्यास्तेन च तत्पुत्रो बभूवास्तीकएवच
जगाम तपसे विष्णोःपुष्करं शङ्कराज्ञया । संप्राप्य च महामन्त्रं तपश्च परमात्मनः॥
दिव्यं वर्षत्रिलक्षञ्च तपस्तप्त्वा तपोधनः । आजगाम महायोगी नमस्कर्त्तुं शिवंप्रभुम्।
शङ्करञ्च नमस्कृत्य कृत्वाच बालकं पुरः । सा चाजगाम मनसा कश्यपस्याश्रमं पितुः॥
तां सपुत्रां सुतां दृष्ट्वा मुदं प्राप प्रजापतिः । शतलक्षञ्च रत्नानां ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुने॥

ब्राह्मणान् भोजयामास असंख्यान् श्रेयसे शिशोः ।
अदितिश्च दितिश्चान्या मुदं प्रापुः परं तथा ।

सा सपुत्रा च सुचिरं तस्थौ तातालये तदा । तदीयं पुनराख्यानं वक्ष्यामि तन्निशामय॥
अथाभिमन्युतनये ब्रह्मशापः परिक्षिते । बभूव सहसा ब्रह्मन् दैवदोषेण कर्मणा ।१०३॥
सप्ताहेसमतीते तु तक्षकस्त्वाञ्चमोक्ष्यति । शशाप शृङ्गीचेतीदं कौशिक्याश्च जलेनच।
राजा श्रुत्वा तत्प्रवृत्तिं गङ्गाद्वारंजगामसः । तत्र तस्थौच सप्ताहंशुश्राव धर्मसंहिताम्।
सप्ताहे समतीते तु गच्छन्तं तक्षकं पथि । धन्वन्तरिर्नृपं भोक्तुं ददर्श गामुकोनृपम्
तयोर्बभूव संवादः सुप्रीतिश्च परस्परम् । धन्वन्तरिर्मणिं प्राप तक्षकः स्वेच्छया ददौ।
स ययौ तं गृहीत्वा तु तुष्टः प्रहृष्टमानसः । तक्षको भक्षयामास नृपञ्च मञ्चकस्थितम्
राजाजगाम वैकुण्ठं स्मारंस्मारं हरिंगुरुम् । संस्कारं कारयामास पितुर्जनमेजयः शुचा॥

राजा चकार यज्ञञ्च सर्पसत्रं ततो मुने । प्राणांस्तत्याज सर्पाणां समूहो ब्रह्मतेजसा ॥
स तक्षकश्च भीतश्च महेन्द्रं शरणं ययौ । सेन्द्रञ्च तक्षकं हन्तुं विप्रवर्गः समुद्यतः ॥१११
अथ देवाश्च मुनयश्चाययुर्मनसान्तिकम् । तां तुष्टाव महेन्द्रश्च भयकातरविह्वलः ।११२।
तत्र आस्तीक आगत्य यज्ञञ्च मातुराज्ञया । महेन्द्रतक्षकप्राणान् ययाचे भूमिपं वरम् ॥
ददौ वरं नृपश्रेष्ठः कृपया ब्राह्मणाज्ञया । यज्ञं समाप्य विप्रेभ्यो दक्षिणाश्च ददौ मुदा ॥
विप्राश्च मुनयो देवा गत्वाचमनसान्तिकम् । मनसां पूजयामासुस्तुष्टुवुश्च पृथक्पृथक् ।
शक्रः संभृतसंभारो भक्तियुक्तः सदाशुचिः । मनसां पूजयामास तुष्टाव परमादरम् ११६
दत्त्वा षोड़शोपचारैर्बलिञ्च तत् प्रियं तदा । प्रददौ परितुष्टश्च ब्रह्मविष्णुसुराज्ञया ॥
संपूज्य मनसादेवीं प्रययुःस्वालयञ्चते । इत्येवंकथितं सर्वं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥

नारद उवाच ।

केनस्तोत्रेणतुष्टाव महेन्द्रोमनसांसतीम् । पूजाविधिक्रमंतस्याः श्रोतुमिच्छामितत्वतः ॥

नारायण उवाच ।

सुस्नातःशुचिराचान्तोधृत्वा धौतेच वाससी । रत्नसिंहासने देवीं वासयामासभक्तितः ।
स्वर्गगङ्गाजलेनेव रत्नकुम्भस्थितेन च । स्नापयामास मनसां महेन्द्रो वेदमन्त्रतः ॥
वाससी वासयामास वह्निशुद्धे मनोरमे । सर्वाङ्गे चन्दनं दत्त्वा पाद्यार्घ्यं भक्तिसंयुतः॥
गणेशञ्च दिनेशञ्च वह्निं शिष्णुं शिवंशिवाम् । संपूज्य देवषट्कञ्च पूजयामास तांसतीम्
ओं ह्रीं श्रीं मनसादेव्यै स्वाहेत्येवञ्च मन्त्रतः। दशाक्षरेण मन्त्रेणददौ सर्वं यथोचितम्
दत्त्वा षोड़शोपचारं भक्तितो दुर्लभंहरिः । पूजयामास भक्त्याच ब्रह्मणाप्रेरितो मुदा ॥
वाद्यं नानाप्रकारञ्च वादयामास तत्र वै । बभूव पुष्पवृष्टिश्च नभसो मनसोपरि ।१२६॥
देवो विप्राज्ञया तत्र ब्रह्मविष्णुशिवाज्ञया । तुष्टाव साश्रुनेत्रश्च पुलकाञ्चितविग्रहः ॥

महेन्द्र उवाच ।

देवि त्वां स्तोतुमिच्छामि साध्वीनां प्रवरां वराम् ।
परापराञ्च परमां न हि स्तोतुं क्षमोऽधुना ॥ १२८ ॥

स्तोत्राणां लक्षणं वेदे स्वभावाख्यानतःपरम् । न क्षमः प्रकृतिं वक्तुं गुणानां तव सुव्रते

शुद्धसत्वस्वरूपात्वं कोपहिंसाविवर्जिता। न च शप्तोमुनिस्तेनत्यक्तया च त्वयायतः॥
त्वं मया पूजिता साध्वि जननी च यथादितिः॥ १३०॥
दयारूपाच भगिनी क्षमारूपा यथाप्रसूः। त्वयामे रक्षिताः प्राणाः पुत्रदाराः सुरेश्वरि॥
अहंकरोमित्वां पूज्यां प्रीतिश्चवर्द्धते मम। नित्यं यद्यपित्वं पूज्या भवेऽत्रजगदम्बिके।
तथापि तवपूजाञ्च वर्द्धयामि च सर्वतः। ये त्वामाषाढ़संक्रान्त्यां पूजयिष्यन्ति भक्तितः
पञ्चम्यां मनसाख्यायामिषान्तंवा दिनेदिने। पुत्रपौत्रादयस्तेषां वर्द्धन्ते च धनानि च॥
यशस्विनः कीर्त्तिमन्तो विद्यावन्तो गुणान्विताः।
ये त्वां न पूजयिष्यन्ति निन्दन्त्यज्ञानतो जनाः॥ १३५॥
लक्ष्मीहीना भविष्यन्तितेषांनागभयंसदा। त्वं स्वर्गलक्ष्मीःस्वर्गे च वैकुण्ठेकमलाकला
नारायणांशो भगवान् जरत्कारुर्मुनीश्वरः। तपसा तेजसा त्वाञ्च मनसा ससृजे पिता
अस्माकं रक्षणायैव तेन त्वं मनसाभिधा। मनसा देवितुं शक्ता आत्मनासिद्धयोगिनी
तेन त्वं मनसादेवी पूजिता वन्दिता भवे। यां भक्त्या मनसा देवाःपूजयन्त्यनिशंभृशम्
तेन त्वां मनसादेवीं प्रवदन्ति पुराविदः। सत्यरूपा च देवी त्वं शश्वत् सत्वनिषेवया
यो हि यद्भावयेन्नित्यंशतंप्राप्नोति तत्समम्। इन्द्रश्च मनसांसंपुरवागृहीत्वभगिनीश्चताम्
प्रजगाम स्वभवनं भूषावासपरिच्छदाम्। पुत्रेण सार्द्धं सा देवी चिरं तस्थौपितुर्गृहे॥
भ्रातृभिः पूजिता शश्वन्मान्या वन्द्या च सर्वतः।
गोलोकात् सुरभी ब्रह्मन् तत्रागत्य सुपूजिताम्॥ १४३॥
तां स्नापयित्वा क्षीरेण पूजयामास सादरम्। ज्ञानञ्च कथयामास सुगोप्यं सर्वदुर्लभम्
तदा देवैः पूजिता सा स्वर्गलोकं पुनर्ययौ॥ १४४॥
इदं स्तोत्रं पुण्यबीजं तां संपूज्यच यः पठेत्। तस्य नागभयं नास्तितस्य वंशोद्भवस्यच
विषं भवेत् सुधातुल्यं सिद्धस्तोत्रं यदापठेत्। पञ्चलक्षजपेनैव सिद्धस्तोत्रो भवेन्नरः॥
सर्पशायी भवेत सोऽपि निश्चितं सर्पवाहनः॥ १४७॥
इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे मनसोपाख्याने
स्तोत्रकथनं नाम षट्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः।

सप्तचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

सुरभ्युपाख्यानम् ।

नारद उवाच ।

का वा सा सुरभीदेवी गोलोकादागताचया । तज्जन्मचरितंब्रह्मन्श्रोतुमिच्छामितत्वतः

नारायण उवाच ।

गवामधिष्ठातृदेवी गवामाद्या गवां प्रसूः । गवां प्रधाना सुरभी गोलोके च समुद्भवा ॥
सर्वादिसृष्टेः कथनं कथयामि निशामय । वभूव तेन तज्जन्म पुरा वृन्दावने वने ॥ ३ ॥
एकदा राधिकानाथो राधया सह कौतुकात् । गोपाङ्गनापरिवृतः पुण्यं वृन्दावनं ययौ
सहसा तत्र रहसि विजहार च कौतुकात् । वभूव क्षीरपानेच्छा तदा स्वेच्छामयस्य च
ससृजे सुरभीं देवो लीलया वामपार्श्वतः । वत्सयुक्तां दुग्धवतीं वत्सानाञ्च मनोरमाम्
दृष्ट्वा सवत्सां सुदामा रत्नभाण्डे दुदोह च । क्षीरं सुधातिरिक्तञ्च जन्ममृत्युहरं परम् ॥
तदुष्णञ्च पयः स्वादु पपौ गोपपतिः स्वयम् । सरो वभूव पयसा भाण्डविस्रंसनेनच
दीर्घे च विस्तृते चैव परितः शतयोजनम् । गोलोकेषु प्रसिद्धश्च स च क्षीरसरोवरः ॥
गोपिकानाञ्च राधायाः क्रीड़ावापीवभूवसा । रत्नेन रचिता तूर्णं भूता वापीश्वरेच्छया
वभूव कामधेनूनां सहसा लक्षकोटयः । तावन्तो हि च वत्साश्च सुरभी लोमकूपतः ॥
तासां पुत्राश्च पौत्राश्च संवभूवुरसंख्यकाः । कथिता च गवां सृष्टिस्तयाचपूरितं जगत्
पूजाञ्चकार भगवान् सुरभ्याश्च पुरा मुने । ततो वभूव तत्पूजा त्रिषु लोकेषु दुर्लभा ॥
दीपान्वितापरदिने श्रीकृष्णस्याज्ञया भवे । वभूव सुरभी पूजा धर्म्मवक्त्रादितिश्रुतम् ॥
ध्यानं स्तोत्रं मूलमन्त्रंयद्यत् पूजाविधिक्रमम् । वेदोक्तञ्चमहाभाग निवोधकथयामिते
ओं सुरभ्यैनम इति मन्त्रस्य च षड़क्षरः । सिद्धो लक्षजपेनैव भक्तानां कल्पपादपः ॥
ध्यानञ्च यजुर्वेदोक्तं पूजनं सर्वसम्मतम् । ऋद्धिदां वृद्धिदाञ्चैव मुक्तिदां सर्वकामदाम् ॥
लक्ष्मीस्वरूपां परमां राधासहचरीं पराम् । गवामधिष्ठातृदेवीं गवामाद्यां गवां प्रसूम् ॥

पवित्ररूपां पूज्याञ्च भक्तानां सर्वकामदाम् । यया पूतं सर्वविश्वं तां देवीं सुरभीं भजे
घटे वा धेनुशिरसि बद्धस्तम्भे गवाञ्च वा । शालग्रामे जलेऽग्नौ वा सुरभींपूजयेद्विजः
दीपान्वितापरदिने पूर्वाह्णे भक्तिसंयुतः । यः पूजयेच्च सुरभीं स च पूज्यो भवेद्भुवि ॥
एकदा त्रिषु लोकेषु वाराहे विष्णुमायया । क्षीरं जहार सहसा चिन्तिताश्च सुरादयः
ते गत्वा ब्रह्मलोकञ्च ब्रह्माणं तुष्टुवुस्तदा । तदाज्ञया च सुरभीं तुष्टाव पाकशासनः ॥

महेन्द्र उवाच ।

नमो देव्यै महादेव्यै सुरभ्यै च नमो नमः । गवां वीजस्वरूपायै नमस्तेजगदम्बिके ।२४
नमो राधाप्रियायै च पद्मांशायै नमो नमः । नमः कृष्णप्रियायै च गवां मात्रे नमो नमः
कल्पवृक्षस्वरूपायै सर्वेषां सन्ततं परम् ॥२५॥
श्रीदायै धनदायै च वृद्धिदायै नमो नमः । शुभदायै प्रसन्नायै गोप्रदायै नमो नमः ॥२६
यशोदायै कीर्त्तिदायै धर्म्मज्ञायै नमो नमः । स्तोत्रश्रवणमात्रेण तुष्टा हृष्टा जगत्प्रसूः ॥
आविर्वभूव तत्रैव ब्रह्मलोके सनातनी । महेन्द्राय वरं दत्वा वाञ्छितञ्चापि दुर्लभम् ॥
जगाम सा च गोलोकं ययुर्देवादयो गृहम् । बभूव विश्वं सहसा दुग्धपर्णञ्च नारद ॥
दुग्धात् घृतं ततो यज्ञस्ततःप्रीतिःसुरस्य च । इदं स्तोत्रं महापुण्यं भक्तियुक्तश्चयःपठेत्
स गोमान् धनवांश्चैवकीर्त्तिमान् पुण्यमान्भवेत् । सस्नातःसर्वतीर्थेषुसर्वयज्ञेषुदीक्षितः
इह लोके सुखं भुक्त्वा यात्यन्ते कृष्णमन्दिरम् । सुचिरं निवसेत्तत्र करोतिकृष्णसेवनम्
न पुनर्भवनं तस्य ब्रह्मपुत्र भवे भवेत् ॥ ३३ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे सुरभ्युपाख्यानं नाम सप्तचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

———

अष्टचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

राधिकाख्यानम् ।

नारद उवाच ।

नारायण महाभाग नारायणपरायण । नारायणांश भगवन् ब्रूहि नारायणीं कथाम् ॥१।
श्रुतं सुरभ्युपाख्यानमतीव सुमनोहरम् । गोप्यं सर्वपुराणेषु पुराविद्भिः प्रशंसितम् ॥२॥
अधुना श्रोतुमिच्छामि राधिकाख्यानमुत्तमम् । तदुत्पत्तिश्च तद्ध्यानं स्तोत्रं कवचमुत्तमम्

श्रीनारायण उवाच ।

पुरा कैलासशिखरे भगवन्तं सनातनम् । सिद्धेशं सिद्धिदं सर्वं स्वरूपं शङ्करं परम् ॥४॥
प्रफुल्लवदनं प्रीतं सस्मितं मुनिभिः स्तुतम् । कुमाराय प्रोचन्तं कृष्णस्य परमात्मनः ।
रासोत्सवरसाख्यानं रासमण्डलवर्णनम् ॥ ५ ॥
तदाख्यानावसाने च प्रस्तावावसरे सती ॥६॥
पप्रच्छ पार्वती स्फीता सस्मिता प्राणवल्लभम् । स्तवनं कुर्वती भीताप्राणेशेनप्रसादिता
प्रोवाच तं महादेवं महादेवी सुरेश्वरी । अपूर्वं राधिकाख्यानं पुराणेषु सुदुर्लभम् ॥८॥

श्रीपार्वत्युवाच ।

आगमं निखिलं नाथ श्रुतं सर्वमनुत्तमम् । पञ्चरात्रादिकं नीतिशास्त्रं योगश्चयोगिनाम्
सिद्धानांसिद्धिशास्त्रञ्चनानातन्त्रंमनोहरम् । भक्तानांभक्तिशास्त्रञ्चकृष्णस्यपरमात्मनः
देवीनामपिसर्वासांचरितंत्वन्मुखाम्बुजात् । अधुनाश्रोतुमिच्छामि राधिकाख्यानमुत्तमम्
श्रुतौ श्रुतं प्रशंसा च राधायाश्च समासतः ।
त्वन्मुखात् काण्वशाखायां व्यासेन तां वदाधुना ॥ १२ ॥
आगमाख्यानकाले च भवता स्वीकृतं पुरा । नहीश्वरव्याहृतिश्च मिथ्या भवितुमर्हति
तदुत्पत्तिञ्च तद्ध्यानं नाम्नोमाहात्म्यमुत्तमम् । पूजाविधानंचरितंस्तोत्रंकवचमुत्तमम्
आराधनविधानञ्च पूजापद्धतिमीप्सितम् । साम्प्रतं ब्रूहि भगवन्मांभक्तां भक्तवत्सल

कथं न कथितं पूर्वमागमाख्यानकालतः । पार्वतीवचनं श्रुत्वानम्रवक्त्रो बभूव सः ॥
पञ्चवक्त्रश्च भगवान् शुष्ककण्ठोष्ठतालुकः । स्वसत्यभङ्गभीतश्चमौनीभूतो हिचिन्तितः ॥
सस्मार कृष्णंध्यानेनाभीष्टदेवंकृपानिधिम् । तदनुज्ञाञ्चसंप्राप्यस्वार्द्धाङ्गांतामुवाचसः ॥
निषिद्धोऽहं भगवता कृष्णेन परमात्मना । आगमारम्भसमये राधाख्यानप्रसङ्गतः ॥
मदर्द्धाङ्गस्वरूपा त्वं न मद्भिन्ना स्वरूपतः । अनोऽनुज्ञां ददौ कृष्णः मह्यं वक्तुं महेश्वरि॥
मदीष्टदेवकान्तायाराधायाश्चरितंसति । अतीव गोपनीयञ्च सुखदं कृष्णभक्तिदम् ॥२१

जानामि तदहं दुर्गे सर्वं पूर्वापरं वरम् ।
यज्जानामि रहस्यञ्च न तन् ब्रह्मा फणीश्वरः ॥२२॥
न तत् सनत्कुमारश्च न च धर्म्मः सनातनः ।
न देवेन्द्रो मुनीन्द्राश्च सिद्धेन्द्राः सिद्धपुङ्गवाः ॥२३॥
मत्तो बलवती त्वञ्च प्राणांस्त्यक्तुं समुद्यता ।
अतस्त्वां गोपनीयञ्च कथयामि सुरेश्वरि ॥२४॥

श्रृणु दुर्गे प्रवक्ष्यामि रहस्यं परमाद्भुतम् । चरितं राधिकायाश्च दुर्लभञ्च सुपुण्यदम् ॥
पुरा वृन्दावने रम्ये गोलोके रासमण्डले । शतश्रृङ्गैकदेशे च मालतीमल्लिकावने ॥२६॥
रत्नसिंहासने रम्ये तस्थौ तत्र जगत्पतिः । स्वेच्छामयश्च भगवान् बभूवरमणोत्सुकः ॥

रमणं कर्त्तुमिच्छा च तद्बभूव सुरेश्वरी ।
इच्छया च भवेत् सर्वं तस्य स्वेच्छामयस्य च ॥२८॥
एतस्मिन्नन्तरे दुर्गे द्विधारूपो बभूव सः ।
दक्षिणाङ्गञ्च श्रीकृष्णः वामार्द्धाङ्गञ्च राधिका ॥२९॥

बभूव रमणी रम्या रासेशा रमणोत्सुका । अमूल्यरत्नभरणा रत्नसिंहासनस्थिता ॥३०
वह्निशुद्धांशुकाधाना कोटिपूर्णशशिप्रभा । तप्तकाञ्चनवर्णाभाराजिताचस्वतेजसा ॥३१
सस्मिता सुदती शुद्धा शरत्पद्मनिभानना । बिभ्रतीकवरींरम्यांमालतीमाल्यमण्डिताम्॥
रत्नमालाञ्चदधतीग्रीष्मसूर्य्यसमप्रभाम् । मुक्ताहारेण शुभ्रेण गांगधारानिभेन च ॥३३॥
संयुक्तं वर्तुलोत्तुंङ्गं सुमेरुगिरिसन्निभम् । कठिनं सुन्दरं दृश्यंकस्तूरीपत्रचिह्नितम् ॥३४

मांगल्यं मंगलार्हञ्चस्तनयुग्मञ्च बिभ्रति। नितम्ब श्रोणिभारार्त्ता नवयौवनसंयुता ॥३५

कामातुरां सस्मितां तां ददर्शरसिकेश्वरः। दृष्ट्वाकान्तांजगत्कान्तोबभूवरमणोत्सुकः ॥

दृष्ट्वाचैवं सुकान्तञ्च सा दधार हरेःपुरः। तेन राधासमाख्याता पुराविद्भिर्महेश्वरि ॥३७

राधा भजति श्रीकृष्णं सचताश्च परस्परम्। उभयोःसर्वसाम्यञ्चसदासन्तोवदन्ति च ॥

भवनं धावनं रासे स्मरत्यालिंगनं जपेत्। तेन जल्पतिशङ्केतांशस्यां राधां मदीश्वरः ॥

राशब्दोच्चारणाद्भक्तो याति मुक्तिं सुदुर्लभाम्।

धाशब्दोच्चारणात् दुर्गे धावत्येव हरेःपदम् ॥४०॥

कृष्णवामांशसम्भूता राधा रासेश्वरीपुरा। तस्याश्चांशांशकलया बभूवुर्देवयोषितः ॥

राइत्यादानवचनो धा च निर्वाणवाचकः। ततोऽवाप्नोतिमुक्तिञ्चसाचराधाप्रकीर्त्तिता ॥

बभूव गोपीसंघश्च राधाया लोमकूपतः। श्रीकृष्णलोमकूपेभ्यःबभूवुः सर्ववल्लवाः ॥४३

राधावामांशभागेन महालक्ष्मीर्बभूव सा।

शस्याधिष्ठातृदेवी सा गृहलक्ष्मीर्बभूव सा ॥४४॥

चतुर्भुजस्य सा पत्नी देवी वैकुण्ठवासिनी। तदंशाराजलक्ष्मीश्चराजसम्पत्प्रदायिनी ॥

तदंशा मर्त्यलक्ष्मीश्च गृहिणाञ्च गृहे गृहे। शस्याधिष्ठातृदेवी च सा एव गृहदेवती ॥

स्वयं राधाकृष्णपत्नीकृष्णवक्षःस्थलस्थिता। प्राणाधिष्ठातृदेवीचतस्यैव परमात्मनः ॥

आब्रह्मस्तम्बपर्य्यन्तं सर्वं मिथ्यैव पार्वति। भजसत्यंपरंब्रह्मराधेशंत्रिगुणात्परम् ॥४८

परं प्रधानं परमं परमात्मानमीश्वरम्। सर्वाद्यं सर्वपूज्यञ्च निरीहं प्रकृतेः परम् ॥४९॥

स्वेच्छामयं नित्यरूपं भक्तानुग्रहविग्रहम्। तद्भिन्नानाञ्चदेवानां प्राकृतं रूपमेव च ॥५०॥

तस्य प्राणाधिकाराधाबहु सौभाग्यसंयुता। महद्विष्णोः प्रसूःसाचमूलप्रकृतिरीश्वरी ॥

मानिनींराधिकांसन्तःसदासेवन्तिनित्यशः। सुलभंयत्पदाम्भोजंब्रह्मादीनांसुदुर्लभम् ॥

स्वप्ने राधा पदाम्भोजं न हि पश्यन्ति वल्लवाः।

स्वयं देवी हरेः क्रोड़े छायारूपेण कामिनी ॥५३॥

स च द्वादश गोपानां रायाणः प्रवरः प्रिये।

श्रीकृष्णांशश्च भगवान् विष्णुतुल्यपराक्रमः ॥५४॥

सुदामशापात् सा देवी गोलोकादागता महीम् ।
वृषभानुगृहे जाता तन्माता च कलावती ॥५५॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे हरगौरी-संवादे राधोपाख्यानं नामाष्टचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

हरगौरीसंवादे राधोपाख्यानम् ।

पार्वत्युवाच ।

कथं सुदामशापश्च सा च देवी ललाभ ह ।
कथं शशाप भृत्यो हि स्वाभीष्टदेवकामिनीम् ॥१॥

श्रीभगवानुवाच ।

शृण देवि प्रवक्ष्यामि रहस्यं परमाद्भुतम् । गोप्यं सर्वपुराणेषु शुभदं भक्तिमुक्तिदम् ॥२॥
एकदा राधिकेशश्च गोलोके रासमण्डले । शतशृंगपर्वतैकदेशे वृन्दावने वने ॥३॥

गृहीत्वा विरजां गोपीं सौभाग्यां राधिकासमाम् ।
क्रीड़ाञ्चकार भगवान् रत्नभूषणभूषितः ॥४॥

रत्नप्रदीपसंयुक्ते रत्ननिर्माणमण्डले । अमूल्यरत्ननिर्माण तल्पेचम्पकचर्चिते ॥५॥
कस्तूरीकुङ्कुमासक्ते सुगन्धिचन्दनार्चिते । सुगन्धिमालतीमालासमूहपरिशोभिते ॥६
सुरतेर्विरतिर्नास्ति दम्पती रतिपण्डितौ । तौ द्वौ परस्परासक्तौ सुखसम्भोगतन्त्रितौ ॥
मन्वन्तराणां लक्षश्च कालः परमितोगतः । गोलोकस्यस्वल्पकालेजन्मादिरहितस्यच ॥

दूत्यश्चतस्रो ज्ञात्वा च कथयामासुः राधिकाम् ।
श्रुत्वा परमरुष्टा सा तत्याज हारमीश्वरी ॥६॥

प्रबोधिता च सखिभिः कोपरक्तास्यलोचना । विहाय रत्नालंकारं वह्निशुद्धांशुकेशुभे ॥

क्रीड़ापद्मञ्च सद्रत्ना मूल्यदर्पणमुज्ज्वलम् । चकार लोपं वस्त्रेणसिन्दूरं चित्रपत्रकम् ॥
प्रक्षाल्य तोयाञ्जलिभिर्मुखरागमलक्तकम् । विस्रस्तकवरीभारामुक्तकेशीप्रकम्पिता ॥१२
शुक्लवस्त्रपरीधाना रूक्षावेशादिवर्जिता । ययौ यानान्तिकं तूर्णं प्रियालीभिर्निवारिता ॥
आजुहावसखीसंघंरोषविस्फुरिताधरा । शश्वत्कम्पान्वितांगीसागोपीभिःपरिवारिता
ताभिर्भक्त्यायुताभिश्च कातराभिश्च संस्तुता । आरुरोहरथं दिव्यममूल्यरत्ननिर्मितम् ।
दशयोजनविस्तीर्णं दैर्घ्ये च योजनं शतम् ॥१५॥
सहस्रचक्रयुक्तं च नानाचित्रसमन्वितम् । नानाविचित्रवसनैःसूक्ष्मैःक्षौमैर्विराजितम् ॥
अमूल्यरत्ननिर्माणदर्पणैःपरिशोभितम् । मणीन्द्रजालमालालिपुष्पमालाविराजितम् ॥
सद्रत्नकलसैर्युक्तंरम्यैर्मन्दिरकोटिभिः । त्रिलक्षकोटिभिःसार्द्धंगोपीभिश्चप्रियालिभिः ॥
ययौ रथेन तेनैव सुमनोमालिना प्रिये । श्रुत्वा कोलाहलं गोपःसुदामा कृष्णपार्षदः ॥
कृष्णं कृत्वा सावधानं गोपैः सार्द्धं पलायितः ।
भयेन कृष्णः सन्त्रस्तो विहाय विरजां सतीम् ॥२०॥
स्वप्रेमभग्नो कृष्णोऽपि तिरोधानं चकार सः ।
सा सती समयं ज्ञात्वा विचार्य्य स्वहृदि क्रुधा ॥२१॥
राधाप्रकोपभीता च प्राणांस्तत्याज तत्क्षणम् ।
विरजालिगणास्तत्र भयविह्वलकातराः ॥२२॥
प्रययुः शरणं साध्वीं विरजां तत्क्षणं भिया । गोलोकेसासरिद्रूपा बभूव शैलकन्यके ॥
कोटियोजनविस्तीर्णा दीर्घे शतगुणा तथा । गोलोकं वेष्टयामास परिखेव मनोहरा ॥
बभूवुः क्षुद्रनद्यश्च तदान्या गोप एव च । सर्वा नद्यस्तदंशाश्च प्रतिविश्वेषु सुन्दरि ॥
इमे सप्तसमुद्राश्च विरजानन्दना भुवि । अथागत्य भगवती राधा रासेश्वरी परा ॥२६॥
न दृष्ट्वा विरजां कृष्णं स्वगृहञ्च पुनर्ययौ । जगाम कृष्णस्तां राधांगोपालैरष्टभिःसह ॥
गोपीभिर्द्वारियुक्ताभिर्वारितश्च पुनः पुनः । दृष्ट्वाकृष्णञ्चसादेवी भर्त्सनञ्च चकारतम् ॥
सुदामा भर्त्सयामास तामेव कृष्णसन्निधौ । क्रुद्धाशशापसादेवीसुदामानं सुरेश्वरी ॥
गच्छ त्वमासुरीं योनिं गच्छदूरमतोद्रुतम् । शशापतांसुदामाचत्वमितोगच्छभारतम् ॥

भव गोपीगोपकन्यागोपीभिःस्वाभिरेवच । तत्रतेकृष्णविच्छेदोभविष्यतिशतंसमाः ॥
तत्रभारावतरणं भगवांश्च करिष्यति । इत्येवमुक्त्वा सुदामा प्रणम्य मातरं हरिम् ।
साश्रुनेत्रो मोहयुक्तस्ततश्च गन्तुमुद्यतः ॥३२॥
राधा जगाम तत्पश्चात् साश्रुनेत्रातिविह्वला ।
वत्स क्व यासीत्युच्चार्य्य पुत्रविच्छेदकातरा ॥३३॥
कृष्णस्तां बोधयामास विद्यया चक्रामयीम् । शीघ्रंसंप्राप्स्यसिसुतंमारुदेत्येवमेवच ॥
स चासुरः शङ्खचूडः बभूव तुलसीपतिः । मच्छूलभिन्नकायेनगोलोकञ्चजगामसः ॥३५
राधा जगाम वाराहे गोकुलं भारतं सती । वृषभानोश्चवैश्यस्यसाचकन्याबभूवह ॥३६
अयोनिसम्भवा देवी वायुगर्भा कलावती । सुषुवे मायया वायुं सा तत्राविर्बभूव ह ॥
अतीते द्वादशाब्दे तु दृष्ट्वा तां नवयौवनाम् ॥३८॥
सार्द्धं रायाणवैश्येन तत् सम्बन्धं चकार सः ।
छायां संस्थाप्य तद्गेहे सान्तर्द्धानं चकार ह ॥३९॥
बभूव तस्य वैश्यस्य विवाहश्छायया सह । गते चतुर्दशाब्दे तु कंसभीतश्छलेन च ॥
जगाम गोकुलंकृष्णःशिशुरूपीजगत्पतिः । कृष्णमातायशोदा या रायाणस्तत् सहोदरः ॥
गोलोके गोपकृष्णांशः सम्बन्धात् कृष्णमातुलः ॥४१॥
कृष्णेन सह राधायाः पुण्ये वृन्दावने वने । विवाहंकारयामासविधिनाजगतां विधिः ॥
स्वप्ने राधापदाम्भोजं नहिपश्यन्तिवल्लवाः । स्वयंराधाहरेःक्रोडे छायारायाणमन्दिरे ॥
षष्टिं वर्षसहस्राणि तपस्तेपे पुरा विधिः । राधिकाचरणाम्भोजदर्शनार्थीचपुष्करे ॥४४
भारावतरणे भूमेर्भारते नन्दगोकुले । ददर्श तत् पदाम्भोजं तपसस्तत् फलेन च ॥४५॥
किञ्चित्कालञ्च श्रीकृष्णः पुण्ये वृन्दावने वने ।
रेमे गोलोकनाथश्च राधया सह भारते ॥४६॥
ततः सुदामशापेन विच्छेदश्च बभूव ह । तत्र भारावतरणं भूमेः कृष्णश्चकार सः ॥४७
शताब्दे समतीते तु तीर्थयात्राप्रसंगतः । ददर्श कृष्णं सा राधा स च ताञ्च परस्परम् ॥
ततो जगाम गोलोकं राधया सह तत्क्वचित् । कलावती यशोदा च जगाम राधया सह ॥

वृषभानुश्च नन्दश्च ययौ गोलोकमुत्तमम् ।
सर्वे गोपाश्च गोप्यश्च ययुस्ता याः समागताः ॥५०॥
छायागोपाश्च गोप्यश्च प्रापुर्मुक्तिश्च सन्निधौ ॥५१॥
रेमुरेताश्च तत्रैव सार्द्धं कृष्णेन पार्वति । षट्त्रिंशल्लक्षकोट्यश्चगोप्योगोपाश्चतत्समाः ।
गोलोकं प्रययुर्मुक्ताः सार्द्धं कृष्णेन राधया ॥५२॥
द्रोणः प्रजापतिर्नन्दो यशोदा तत्प्रिया धरा । संप्राप पूर्वतपसा परमात्मानमीश्वरम् ॥
वसुदेवः कश्यपश्च देवकीचादितिः सती । देवमाता देवपिता प्रतिकल्पे स्वभावतः ॥
पितॄणां मानसीकन्या राधामाता कलावती ।
वसुदामापि गोलोकात् वृषभानुः समाययौ ॥५५॥
इत्येवं कथितं दुर्गे राधिकाख्यानमुत्तमम् । सम्पत्करं पापहरं पुत्रपौत्रविवर्द्धनम् ॥५६
श्रीकृष्णश्च द्विधारूपो द्विभुजश्च चतुर्भुजः । चतुर्भुजश्च वैकुण्ठेगोलोकेद्विभुजःस्वयम् ॥
चतुर्भुजस्य पत्नी च महालक्ष्मीः सरस्वती । गंगाचतुलसीचैवदेव्योनारायणप्रियाः ॥
श्रीकृष्णपत्नी सा राधा तदर्द्धांगसमुद्भवा । तेजसा वयसासाध्वीरूपेणचगुणेनच ॥५९
आदौ राधां समुच्चार्यपश्चात्कृष्णंवदेद्बुधः । व्यतिक्रमेब्रह्महत्यांलभतेनात्रसंशयः ॥
कार्त्तिकीपूर्णिमायाञ्चगोलोकेरासमण्डले । चकारपूजांराधायातत्सम्बन्धिमहोत्सवम् ॥
सद्रत्नगुटिकायाञ्च कृत्वा तत् कवचं हरिः ।
दधार कण्ठे वाहौ च दक्षिणे सह गोपकैः ॥६२॥
कृत्वा ध्यानञ्च भक्त्या च स्तोत्रमेव चकारसः । राधाचर्विततम्बूलंचखादमधुसूदनः ॥
राधा पूज्या च कृष्णस्य तत्पूज्यो भगवान् प्रभुः ।
परस्पराभीष्टदेवो भेदकृन्नरकं व्रजेत् ॥६४॥
द्वितीये पूजिता सा च धर्मेण ब्रह्मणा मया ।
अनन्तेन वासुकिना रविणा शशिना पुरा ॥६५॥
महेन्द्रेण च रुद्रैश्च मनुना मानवेन च । सुरेन्द्रैश्च मुनीन्द्रैश्च सर्वविश्वैश्च पूजिता ॥६६
तृतीये पूजिता सा च सप्तद्वीपेश्वरेण च । भारते च सुयज्ञेन पात्रैर्मित्रैर्मुदान्वितैः ॥६७

ब्राह्मणेनाभिशप्तेन दैवदोषेण भूभृता । व्याधिग्रस्तेन हस्तेन दुःखिनाच विदूयता ॥६८
संप्राप राज्यं भ्रष्टश्रीः स च राधावरेण च । ब्रह्मदत्तेन स्तोत्रेणस्तुत्वाचपरमेश्वरीम् ॥
अभेद्यं कवचं तस्याः कण्ठे बाहौ दधारसः । ध्यात्वाचकारपूजाञ्चपुष्करेशतवत्सरम् ॥
अन्ते जगाम गोलोकं रत्नयानेन भूमिपः । इतितेकथितंसर्वंकिम्भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायण नारद संवादे हरगौरीसंवादे राधोपाख्यानं नामैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

सुयज्ञोपाख्यानम् ।

पार्वत्युवाच ।

को वा सुयज्ञोनृपतिः कुत्र वंशे समुद्भवः । कथं विप्राभिशप्तश्च कथं संप्राप राधिकाम्
सर्वात्मनश्च कृष्णस्य पत्नींश्रीकृष्णपूजिताम् । कथं विण्मूत्रधारी च सिषेवेपरमेश्वरीम्
षष्टिं वर्षसहस्राणि तपस्तेपे पुरा विधिः । यत्पादाम्भोजरेणूनां लब्धये पुष्करे विभुः ॥
कथं ददर्श तां देवीं महालक्ष्मींपुरासतीम् । दुर्दर्श्यामपि युष्माकं दृश्यासावाकथंनृणाम्
कथं त्रिजगतां धाता तस्मैतत्कवचं ददौ । ध्यानंपूजाविधिं स्तोत्रंतस्याव्याख्यातुमर्हसि

श्रीमहादेव उवाच ।

स्वायम्भुवो मनुर्देवि मनूनामादिरेव च । ब्रह्मात्मजस्तपस्वी च शतरूपापतिः प्रभुः ॥
उत्तानपादस्तत्पुत्रस्तत्पुत्रो ध्रुव एव च । ध्रुवस्यकीर्त्तिर्विख्यातात्रैलोक्ये शैलकन्यके
उत्कलस्तस्य पुत्रश्च नारायणपरायणः । सहस्रं राजसूयानां पुष्करे स चकार ह ॥८॥
सर्वाणि रत्नपात्राणि ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा । अमूल्यरत्नराशीनां सहस्रं तेजसावृतम् ॥
ब्राह्मणेभ्यो ददौ राजा यज्ञान्ते सुमहोत्सवे । दृष्ट्वा तच्छोभनं यज्ञं विधाताजगतांप्रिये ।
सुयज्ञं नाम नृपतेश्चकार सुरसंसदि । स च राजा सुयज्ञश्च मनुवंश समुद्भवः ॥ ११ ॥

अन्नदाता रत्नदाता दाता च सर्वसम्पदाम् । दशलक्षं गवाञ्चैव रत्नशृङ्गपरिच्छदम् ॥
नित्यं ददौ स विप्रेभ्यो मुदायुक्तःसदक्षिणम् । गवां द्वादशलक्षाणांददौनित्यंमुदान्वितः
सुपक्वानिचमांसानिब्राह्मणेभ्यश्च पार्वति । षट्कोटिं ब्राह्मणानाञ्च भोजयामासनित्यशः
चुष्य चर्व्य लेह्य पेयैरतितृप्तं दिने दिने । विप्रलक्षं सूपकारं भोजयामास तत्परम् ॥१५
सूपमन्नञ्च सूपान्तं सगव्यं मांसवर्जितम् । विप्रा भोजनकाले च मनुवंशसमुद्भवम् ॥

न तुष्टुवुः सुयज्ञञ्च तुष्टुवुस्तत्पितॄंश्च ते ॥ १६ ॥
दिनेषु यज्ञ यज्ञान्ते षट्त्रिंशल्लक्षकोटयः ॥ १७ ॥

चक्रुः सुभोजनं विप्राश्चातितृप्ताश्च सुन्दरि । गृहीतानि च रत्नानि स्वगृहं वोढुमक्षमाः ।

वृषलेभ्यो ददौ किञ्चित् किञ्चित् पथि च तत्यजुः ।
विप्राणां भोजनान्ते च विप्रान्येभ्यो ददौ नृपः ॥ १९ ॥

तथाप्युद्वर्त्तनन्तत्र चान्नराशिसहस्रकम् । कृत्वा यज्ञं महाबाहुः समुवास स्वसंसदि ॥
रत्नेन्द्रसारनिर्माणछत्रकोटिसमन्विते । रत्नसिंहासने रम्ये चावृते च सुसंस्कृते ॥
चन्दनादिसुसंसृष्टे रम्ये चन्दनपल्लवैः । शाखायुक्तपूर्णकुम्भरम्भावृक्षैश्च शोभिते ॥
चन्दनागुरुकस्तूरीफलसिन्दूरसंयुते । वसुवासवचन्द्रेन्द्ररुद्रादित्यसमन्विते ॥२३॥
मुनिनारदमन्वादिब्रह्मविष्णुशिवान्विते । एतस्मिन्नन्तरे तत्र विप्र एकः समाययौ ॥
रूक्षो मलिनवासाश्च शुष्ककण्ठोष्ठतालुकः । रत्नसिंहासनस्थञ्च माल्यचन्दनचर्चितम् ॥
राजानमाशिषश्चक्रे सस्मितः सम्पुटाञ्जलिः । प्रणनाम नृपस्तञ्च नोत्तस्थौ किञ्चिदेव हि
सभासदश्च नोत्तस्थुर्जहसुः स्वल्पमेवच । मुनिभ्योऽपि च देवेभ्योनमस्कृत्यद्विजोत्तमः
शशाप नृपतिं क्रोधात् तत्रातिष्ठन्निरङ्कुशः । गच्छ दूरमतो राज्याद्भ्रष्टश्रीर्भव पामर ॥
भवाचिरंगलत्कुष्ठीबुद्धिहीनोऽप्युपद्रुतः । इत्युक्त्वा कम्पितःक्रोधात्सभास्थान्शप्तुमुद्यतः
ये तत्र जहसुः सर्वे समुत्तस्थुः सभासदः । सर्वे चक्रुः परीहारं क्रोधं तत्याज ब्राह्मणः
राजागत्य तं प्रणम्य रुरोद भयकातरः । निःससार सभामध्यात् हृदयेन विदूयता ।३१
ब्राह्मणो गूढरूपी च प्रज्वलन् ब्रह्मतेजसा । तत्पश्चान्मुनयः सर्वे प्रययुर्भयकातराः ।३२
हे विप्र तिष्ठ तिष्ठेति समुच्चार्य्य पुनः पुनः । पुलहश्च पुलस्त्यश्च प्रचेता भृगुरङ्गिराः ॥

मरीचिः कश्यपश्चैव वशिष्ठः क्रतुरेव च। शुक्रो बृहस्पतिश्चैव दुर्वासा लोमशस्तथा॥
गोतमश्चकणादश्चकण्वःकात्यायनःकठः। पाणिनिर्जाजलिश्चैवऋष्यशृङ्गोविभाण्डकः
आपिशलिस्तैत्तिलिश्च मार्कण्डेयो महातपाः। सनकश्च सनन्दश्च वोढुःपैलः सनातनः॥
सनत्कुमारो भगवान् नरनारायणावृषी। पराशरो जरत्कारुः संवर्त्तः करथस्तथा।३७
औवंश्चच्यवनश्चैवभरद्वाजश्चवाल्मीकिः। अगस्त्योऽत्रिरुतथ्यश्चसङ्कर्त्तोऽस्तीकआसुरिः
शिलालिर्लाङ्गलिश्चैव शालक्यः शाकटायनः। गर्गो वत्सःपञ्चशिखो जमदग्निश्चदेवलः
जैगीषव्यो वामदेवो बालखिल्यादयस्तथा। शक्तिर्दक्षः कर्दमश्च प्रस्कन्नः कपिलस्तथा
विश्वामित्रश्चकौत्सश्च ऋचीकोऽप्यघमर्षणः। एतेचान्येचमुनयः पितरोऽग्निर्हरिप्रिया
दिक्पाला देवताःसर्वेविप्रपश्चात् समाययुः। ब्राह्मणं बोधयामासुर्वासयामासुरीश्वरि
समूचुस्तं क्रमेणैव नीतिं नीतिविशारदाः॥ ४३॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे हरगौरीसंवादे राधोपाख्याने सुयज्ञोपाख्यानं नाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः।

एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

नृपमुनिसंवादः।

श्रीपार्वत्युवाच।

किमूचुर्ब्राह्मणंब्रह्मन् ब्राह्मणाब्रह्मणःसुताः। नीतिज्ञा नीतिवचनंतन्मां व्याख्यातुमर्हसि।

श्रीमहादेव उवाच।

तुष्टं कृत्वा ब्राह्मणश्च स्तवेन विनयेन च। क्रमेण वक्तुमारेभे मुनिसङ्घो वरानने॥ २॥

सनत्कुमार उवाच।

रथन्पश्चादागता लक्ष्मीः कीर्त्तिः सत्वं यशस्तथा।
सुशीलश्च महैश्वर्यं पितरोऽग्निः सुरास्तथा॥ ३॥

आगता नृपगेहेभ्यः कृत्वा भ्रष्टश्रियं नृपम् । भव तुष्टो द्विजश्रेष्ठ आशुतोषश्च ब्राह्मणः ॥
ब्राह्मणानान्तु हृदयं कोमलं नवनीतवत् । शुद्धं सुनिर्मलञ्चैव मार्जितं तपसा मुने ॥५॥
क्षमस्वागच्छ विप्रेन्द्र शुद्धं कुरु नृपालयम् ॥ ६ ॥
अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात् प्रतिनिवर्त्तते । पितरस्तस्य देवाश्च वह्निश्चैव तथैव च ॥७
निराशाः प्रतिगच्छन्ति चातिथेरप्रतिग्रहात् । क्षमस्वागच्छ विप्रेन्द्र शुद्धं कुरुनृपालयम् ॥
स्त्रीघ्नैर्गोघ्नैः कृतघ्नैश्च ब्रह्मघ्नैर्गुरुतल्पगैः । तुल्यदोषो भवत्येतैर्यस्यातिथिरनर्चितः ॥६॥

पुलस्त्य उवाच ।

ये पश्यन्तिवक्रदृष्ट्या चातिथिंगृहमागतम् । दत्वास्वपापंतस्मैतत् पुण्यमादायगच्छति ।
क्षमस्व नृपदोषञ्च गच्छवत्स यथासुखम् । राजा स्वकर्मदोषेणनोत्तस्थौतत्क्षमांकुरु ॥

पुलह उवाच ।

राजश्रियाविद्ययावा ब्राह्मणंयोऽवमन्यते । त्रिसन्ध्याहीनोविप्रश्च श्रीहीनःक्षत्रियोभवेत् ।
एकादशीविहीनश्च विष्णुनैवेद्यवञ्चितः । क्षमस्वागच्छ विप्रेन्द्र शुद्धं कुरु नृपालयम् ॥

क्रतुरुवाच ।

ब्राह्मणःक्षत्रियो वापिवैश्योवा शूद्रएवच । दीक्षाहीनोभवेत् सोऽपिब्राह्मणंयोऽवमन्यते
धनहीनःपुत्रहीनोभार्य्याहीनो भवेद् ध्रुवम् । क्षमस्वागच्छ भगवन् शुद्धंकुरुनृपालयम् ।

अङ्गिरा उवाच ।

ज्ञानवान् ब्राह्मणोभूत्वा ब्राह्मणंयोऽवमन्यते । वृषावाहोभवेत् सोऽपिभारतेसप्तजन्मसु

मरीचिरुवाच ।

पुण्यक्षेत्रे भारतेच देवञ्च ब्राह्मणं गुरुम् । विष्णुभक्तिविहीनश्च स भवेत् योऽवमन्यते ॥

कश्यप उवाच ।

वैष्णवं ब्राह्मणं दृष्ट्वा योऽसत्यमवमन्यते । विष्णुमन्त्रविहीनश्च तत् पूजाविरतोभवेत् ।

प्रचेता उवाच ।

अतिथिं ब्राह्मणं दृष्ट्वा नाभ्युत्थानं करोति यः । पितृमातृभक्तिहीनः स भवेद्भारते भुवि ॥
प्राप्नोति कौअरीं योनिंस मूढः सप्तजन्मसु । शीघ्रंगच्छ द्विजश्रेष्ठ राजानमाशिषंकुरु ॥

दुर्वासा उवाच ।

गुरुंवा ब्राह्मणं वापि देवताप्रतिमामपि । दृष्ट्वा शीघ्रंन नमेद्यो स भवेच्छूकरो भुवि ।२१
मिथ्यासाक्षीचभवति तथाविश्वासघातकः । क्षमस्वसर्वमस्माकमातिथ्यग्रहणं कुरु ॥

राजोवाच ।

छलेन कथितो धर्मो युष्माभिर्मुनिपुङ्गवैः । सर्वं कृत्वाच विस्पष्टं माञ्चमूढं प्रबोधय ॥
स्त्रीघ्नगोघ्नकृतघ्नानां गुरुस्त्रीगामिनान्तथा । ब्रह्मघ्नानाञ्चकोदोषो मां ब्रूत कोविदांवराः ।

वशिष्ठ उवाच ।

कामतोगोवधे राजन् वर्षंतीर्थं भ्रमेन्नरः । यवयावकभोजीच्च करेणच जलं पिबेत् ।२५
तदाधेनुशतंदिव्यंब्राह्मणेभ्यःसदक्षिणम् । दत्त्वामुञ्चतिपापाच्चभोजयित्वा द्विजं शतम् ॥
प्रायश्चित्ते च क्षीणे च सर्वपापान्न मुञ्चति । पापावशेषाद्भवति दुःखी चाण्डाल एवच
आतिदेशिकहत्यायां तदर्द्धं फलमश्नुते । प्रायश्चित्तानुकल्पेन सर्वपापान्न मुञ्चति ॥२८॥

शुक्र उवाच ।

गोहत्याद्विगुणःपापःस्त्रीहत्यायांभवेद्ध्रुवम् । षष्टिवर्षसहस्राणिकालसूत्रेवसेद्ध्रुवम् ।
ततो भवेन्महापापी शूकरः सप्तजन्मसु । ततोभवति सर्पश्च जन्मसप्त ततः शुचिः ॥३०॥

बृहस्पतिरुवाच ।

स्त्रीहत्याद्विगुणःपापो ब्रह्महत्याकृतोभवेत् । लक्षवर्षंमहाघोरे कुम्भीपाकेवसेद्ध्रुवम् ॥
ततो भवेन्महापापी विष्ठाकीटः शताब्दकम् । ततो भवति सर्पश्च सप्तजन्म ततःशुचिः ॥

गोतम उवाच ।

दोषः कृतघ्ने राजेन्द्र ब्रह्महत्याचतुर्गुणः । निष्कृतिर्नास्ति वेदे च कृतघ्नानाञ्च निश्चितम्

राजोवाच ।

लक्षणञ्च कृतघ्नानां वद वेदविदांवर । कृतघ्नः कतिविधः प्रोक्तःकेषु को दोषएव वा ।३४

ऋष्यशृङ्ग उवाच ।

कृतघ्नाः षोड़शविधाः सामवेदे निरूपिताः । सर्वःप्रत्येकदोषेण प्रत्येकं फलमश्नुते ३५॥
कृते सत्येच पुण्येच स्वधर्मे तपसि स्थिते । प्रतिज्ञायाञ्च दाने च स्वगोष्ठीपरिपालने ॥

गुरुकृत्ये देवकृत्ये कामकृत्ये द्विजार्चने । नित्यकृत्ये च विश्वासे परधर्मप्रदानयोः ॥३७॥
एतान् यो हन्तिपापिष्ठः सकृतघ्नइति स्मृतः । एतेषां सन्ति लोकाश्च तज्जन्मभिन्नयोनिषु
यान्यांश्चनरकां स्तेचयान्ति राजेन्द्रपापिनः । तेतेचनरकाःसन्तियमलोकेचनिश्चितम् ॥

सुयज्ञ उवाच ।

केकिंकृत्वाकृतघ्नाश्चकान्कान्गच्छन्तिरौरवान् । प्रत्येकंश्रोतुमिच्छामिवक्तुमर्हसिमेप्रभो

कात्यायन उवाच ।

कृत्वा शपथरूपञ्च सत्यं हन्ति न पालयेत् । स कृतघ्नः कालसूत्रे वसेदेव चतुर्युगम् ४१॥
सप्तजन्मसु काकश्च सप्तजन्मसु पेचकः । ततः शूद्रोमहाव्याधिः सप्तजन्म ततः शुचिः ॥

श्रीसनन्द उवाच ।

पुण्यं कृत्वा वदत्येव कीर्तिवर्द्धनहेतुना । स कृतघ्नस्तप्तसूर्म्यां वसत्येव युगत्रयम् ॥४३॥
पञ्चजन्मसु मण्डूकस्त्रिषु जन्मसु कर्कटः । तदा मूको महाव्याधीदरिद्रश्च ततः शुचिः ॥

सनातन उवाच ।

स्वधर्मं हन्ति यो विप्रः सन्ध्यात्रयविवर्जितः । अतर्पणश्चयतस्नानं विष्णुनैवेद्यवञ्चितः॥
विष्णुपूजा विहीनश्च विष्णुमन्त्र विहीनकः । एकादशीविहीनश्चकृष्णस्यजन्मवासरे ॥
शिवरात्रौ च यो भुङ्क्ते श्रीरामनवमीदिने । पितृकृत्यादिहीनो यःसकृतघ्नइति स्मृतः ॥
कुम्भीपाके वसत्येवं यावदिन्द्राश्चतुर्दशः । ततश्चाण्डालतां याति सप्तजन्मसु निश्चितम्
शतजन्मनि गृध्रश्च शतजन्मनि शूकरः । ततो भवेद् ब्राह्मणश्च शूद्राणां सूपकारकः ॥
ततो भवेज्जन्मसप्त ब्राह्मणो वृषवाहकः । शूद्राणां शवदाही च भवेत् सप्तसु जन्मसु ॥
द्विजो भूत्वा जन्मसप्त भारते वृषलीपतिः । भुक्त्वा स्वभोगलेशञ्च भ्रमित्वायातिरौरवम्
पुनः पुनः पापयोनिं नरकञ्च पुनः पुनः । ततो भवेद्गर्दभश्च मार्जारः पञ्चजन्मसु ॥५२॥
पञ्चजन्मसु मण्डूको भवेच्छुद्ध स्ततः क्रमात् ॥५३॥

सुयज्ञ उवाच ।

शूद्राणां पाककरणे शूद्राणां शवदाहने । शूद्रान्नभोजने वापि शूद्रस्त्रीगमनेऽपि च ॥५४
ब्राह्मणानाञ्च को दोषो वृषवाहनेतथा । एतान्सर्वान्समालोच्यब्रूहि मां निश्चयं मुने

पराशर उवाच ।

शूद्राणां सूपकारश्च यो विप्रो ज्ञानदुर्बलः ।
असीपत्रे वसत्येव युगानामेकसप्ततिः ॥५६॥
ततो भवेद्दर्दभश्च मूषिकः सप्तजन्मसु । तैलकीटो जन्म सप्त ततः शुद्धो भवेन्नरः ॥५७

जरत्कारुरुवाच ।

भृत्य द्वारा स्वयं चापि यो विप्रो वृषवाहकः ।
सकृतघ्न इति ख्यातः प्रसिद्धो भारते नृप ॥५८॥
ब्रह्महत्यासमं पापं तन्नित्यं वृषताड़ने । वृषपृष्ठे भारदानात्पापं तद्द्विगुणं भवेत् ॥५६॥
सूर्य्यातपे वाहयेद् यः क्षुभितं तृषितं वृषम् । ब्रह्महत्याशतं पापं लभते नात्र संशयः॥
अन्नं विष्टा जलं मूत्रं विप्राणां वृषवाहिनाम् । नाधिकारो भवेत्तेषां पितृदेवार्चने नृप॥
लालाकुण्डे वसत्येव यावच्चन्द्रदिवाकरौ । विष्टाभक्ष्यं मूत्रजलं तत्र तस्यभवेद् ध्रुवम्॥
त्रिसन्ध्यां ताड़येत्तञ्च शूलेन यमकिङ्करः । ऊल्कां ददाति मुखतःसूच्याकृन्तन्ति सन्ततम्
षष्टि वर्षसहस्राणि विष्ठायाञ्च कृमिस्ततः। ततः काको जन्मपञ्चजन्मपञ्च वकस्तथा॥
जन्म पञ्च गृध्रकश्च शृगालः सप्तजन्मसु । ततो दरिद्रः शूद्रश्च महाव्याधिस्ततःशुचिः॥

भरद्वाज उवाच ।

शूद्राणां शवदाही यः सः कृतघ्न इति स्मृतः । शवप्रमाणांराजेन्द्रब्रह्महत्यांलभेद्ध्रुवम्॥
तत्तुल्य योनिभ्रमणात् तत्तुल्यनरकाच्छुचिः । योदोषोब्राह्मणानाञ्चशूद्राणां शवदाहने॥
तावदेव भवेद्दोषः शूद्रश्राद्धान्नभोजने ॥६८॥

विभाण्डक उवाच ।

पितृश्राद्धे च शूद्राणां भुङ्क्ते यो ब्राह्मणोऽधमः ।
सुरापीति ब्रह्मघाती पितृदेवार्चनाद्वहिः ॥६६॥

मार्कण्डेय उवाच ।

यो दोषो ब्राह्मणानाञ्च शूद्रस्त्रीगमने नृप । तद्वक्ष्यामि वेदोक्तं सावधानं निशामय॥
कृतघ्नातं प्रधानश्च यो विप्रो वृषलीपतिः । कृमिदंश्च [illegible] सोऽपि यावदिन्द्राश्च तुर्दशः॥

कृमिभक्ष्यो भवेद्विप्रो विह्वलो यमकिङ्करैः । प्रतिमायां तप्तलौह्यामाश्लेषयति नित्यशः
ततश्च पुंश्चलीयोनौ कृमिर्भवति निश्चितम् । एवं वर्षसहस्रञ्च ततः शूद्रस्ततः शुचिः ॥

सुयज्ञ उवाच ।

अन्येषाञ्च कृतघ्नानां वद कर्मफलं मुने । श्लाघ्यो मे ब्रह्मशापश्चकस्यसम्पद्विपद्विना ॥
धन्योऽहं कृतकृत्योऽहं सफलं जीवनं मम । आगतास्तु यतो मुक्तामद्गेहेमुनयःसुराः ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे नृपमुनिसंवादे
एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

हरगौरीसंवादे कर्मविपाकवर्णनम् ।

श्रीपार्वत्युवाच ।

अन्येषाञ्च कृतघ्नानां यद्यत् कर्मफलं प्रभो । तेषां किमूचुर्मुनयो वेदवेदाङ्गपारगाः ॥१

श्रीमहेश्वर उवाच ।

प्रश्नं कुर्वति राजेन्द्रे सर्वेषु मुनिषु प्रिये । तत्र प्रवक्तुमारेभे ऋषिर्नारायणो महान् ॥२॥

नारायण उवाच ।

स्वदत्तां परदत्तांवा ब्रह्मवृत्तिं हरेत्तु यः । स कृतघ्न इति ज्ञेयः फलञ्च शृणु भूमिप ॥३॥
यावन्तो रेणवः सिक्ता विप्राणां नेत्रविन्दुभिः । तावद्वर्षसहस्रञ्च शूलप्रोते स तिष्ठति ॥
तप्ताङ्गारञ्च तद्भक्ष्यं पानञ्च तप्तमूत्रकम् । तप्ताङ्गारे च शयनं ताड़ितो यमकिङ्करैः ॥५॥
तदन्ते च महापापी विष्ठायां जायते कृमिः । षष्टि वर्षसहस्राणि देवमानेन भारते ॥६॥
ततो भवेद्भूमिहीनः प्रजाहीनश्च मानवः । दरिद्रः कृपणो रोगी शूद्रोनिन्द्यस्ततःशुचिः ।

नारद उवाच ।

हन्ति यः परकीर्त्तिञ्च स्वकीर्त्तिं वा नराधमः । स कृतघ्न इति ख्यातस्तत्फलञ्च निशामय

अन्धकूपे वसेत् सोऽपि यावदिन्द्राश्चतुर्दश । कीटैःशकुलमानैश्च भक्षितः सन्ततं नृप॥
तप्तक्षारोदकं पापी नित्यं पिबति खादति । ततः सर्पो जन्मसप्त काकःपञ्च ततःशुचिः॥

देवल उवाच ।

ब्रह्मस्वं वा गुरुस्वं वा देवस्वं वापि यो हरेत् । स कृतघ्न इति ज्ञेयो महापापी च भारते
अवटोदे वसेत्सोऽपि यावदिन्द्राश्चतुर्दशः । ततो भवेत् सुरापीति ततः शूद्रस्ततः शुचिः

जैगीषव्य उवाच ।

पितृमातृगुरूं श्चापि भक्तिहीनो न पालयेत् । वाचा च ताड़येत् तांश्च सकृतघ्न इतिस्मृतः
वाचा च ताड़येन्नित्यं स्वामिनं कुलटा च या ॥ १३ ॥
सा कृतघ्नीति विख्याता भारते पापिनी वरा । वह्निकुण्डं महाघोरं सच साच प्रयातिच
तत्र वह्नौ वसत्येव यावच्चन्द्रदिवाकरौ । ततो भवेज्जलौकाश्च जन्मसप्त ततःशुचि ।१५॥

वाल्मीकिरुवाच ।

यथा तरुषु वृक्षत्वं सर्वत्र न जहाति च । तथा कृतघ्नता राजन् सर्वपापेषु वर्त्तते ॥१६॥
मिथ्यासाक्ष्यं यो ददाति कामात् क्रोधात्तथा भयात् ।
सभायां पाक्षिकं वक्ति स कृतघ्न इति स्मृतः॥१७॥
पुण्यमात्रं चापि राजन् यो हन्ति सकृतघ्नकः । सर्वत्रापिच सर्वेषा पुण्यहानौ कृतघ्नता
मिथ्यासाक्ष्यं पाक्षिकं वाभारते वक्ति यो नृप । यावदिन्द्रसहस्रञ्च सर्पकुण्डेवसेद्ध्रुवम्
सन्ततं वेष्टितः सर्पैर्भीतश्च भक्षितस्तथा । भुङ्क्तेच सर्पविण्मूत्रं यमदूतेन ताड़ितः ॥२०
कृकलासो भवेत्तत्र भारते सप्तजन्मसु । सप्तजन्मसु मण्डूकः पितृभिः सप्तभिःसह ॥
ततो भवेच्च वृक्षश्च महारण्ये च शाल्मलिः । ततो भवेन्नरो मूकस्ततः शूद्रस्ततःशुचि ॥

आस्तीक उवाच ।

गुर्वङ्गनानां गमने मातृगामी भवेन्नरः । नराणां मातृगमने प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥२३॥
भारते च नृपश्रेष्ठ यो दोषो मातृगामिनाम् । ब्राह्मणीगमनेचैव शूद्राणां तावदेव हि॥२४
तावदेव हि ब्राह्मण्या दोषःशूद्रस्य मैथुने । कन्यानां पुत्रपत्नीनां श्वश्रूणां गमने तथा ॥
सगर्भ भ्रातृपत्नीनां भगिनीनां तथैवच । दोषं वक्ष्यामि राजेन्द्र यदाह कमलोद्भवः २६॥

यः करोति महापापी एताभिः सह मैथुनम् ।
जीवन्मृतोभवेत् सोऽपि चाण्डालोऽस्पृश्य एव च ॥ २७ ॥
नाधिकारो भवेत्तस्य सूर्य्यमण्डलदर्शने । शालग्रामं तज्जलञ्च तुलस्याश्च दलं जलम् ॥
सर्वतीर्थजलञ्चैव विप्रपादोदकं तथा । स्प्रष्टुञ्च नैव शक्नोति विट्तुल्यः पातकी नरः॥२६
देवंगुरुं ब्राह्मणञ्च नमस्कर्त्तुं न चार्हति । विष्ठाधिकं तदन्नञ्च जलं मूत्राधिकन्तथा ॥
देवताः पितरो विप्रा नैव गृह्णन्ति भारते । भवेत्तदङ्ग वातेन तीर्थमङ्गारवाहनम् ॥३१॥
सप्तरात्रमुपवसेद् दैवस्पर्शात् तथा द्विजः । भाराक्रान्ता च पृथिवी तद्भारं वोढुमक्षमा
तत्पापात् पतितो देशः कन्याविक्रयिणो यथा ।
तत्स्पर्शाच्च तदालापात् शयनाश्रयभोजनात् ॥ ३३॥
नृणाञ्चतत्समोःपापो भवत्येव न संशयः । कुम्भीपाके वसेत्सोऽपि यावद्वैब्रह्मणःशतम्
दिवानिशं भ्रमेत्तत्र चक्रावर्त्तं निरन्तरम् । दग्धोवाग्निशिखाभिश्च यमदूतैश्च ताड़ितः ॥
एवं नित्यं महापापी भुङ्क्ते निरययातनाम् । आहारश्चापि सर्वत्रकुम्भीपाके विवर्जितः ।
गते प्राकृतिके घोरे महति प्रलये तथा । पुनः सृष्टेः समारम्भे तद् विधो वा भवेत् पुनः
षष्टिवर्षसहस्राणि विष्ठायाञ्च कृमिर्भवेत् । ततो भवति चाण्डालो भार्याहीनोनपुंसकः ।
सप्तजन्मसु शूद्रश्च गलत्कुष्ठी नपुंसकः । ततो भवेद्ब्राह्मणश्चाप्यन्धः कुष्ठी नपुंसकः ॥
एवं लब्ध्वा जन्म सप्त महापापी भवेच्छुचिः ॥ ४० ॥

मुनय ऊचुः ।

इत्येवं कथितंसर्वं मस्माभिर्वो यथागमम् । एभिस्तुल्यो भवेद्दोषोऽप्यतिथीनां पराभवे
प्रणामं कुरु विप्रेन्द्रंगृहंप्रापय निश्चितम् । संपूज्यब्राह्मणं यत्नात् गृहीत्वाब्राह्मणाशिषम् ।
वनं गच्छ महाराज तपस्यां कुरु सत्वरम् । ब्रह्मशापैर्विनिर्मुक्तः पुनरेवागमिष्यसि॥४३
इत्युक्त्वामुनयः सर्वेययुस्तूर्णं स्वमन्दिरम् । सुराश्चापिच राजानो वन्धुवर्गाश्चपार्वति ।

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे प्रकृतिखडे हरगौरीसंवादे
कर्मविपाको नाम द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

सुतपःसुयज्ञसंवादवर्णनम् ।

श्रीपार्वत्युवाच ।

गतेषु मुनिसंघेषु श्रुत्वा कर्मफलं नृणाम् । किञ्चकार नृपश्रेष्ठो ब्रह्मशापेन विह्वलः ॥१॥
अतिथिर्ब्राह्मणोवापि किञ्चकार तदा प्रभो। जगाम नृपगेहं वा नवा तद्वक्तुमर्हसि ॥२॥

महेश्वर उवाच ।

गतेषु मुनिसंघेषु निन्दाग्रस्तो नराधिपः । प्रेरितश्च वशिष्ठेन धर्मिष्ठेन पुरोधसा ॥ ३ ॥
पपात दण्डवद्भूमौ पादयोर्ब्राह्मणस्यच । त्यक्त्वा मन्युं द्विजश्रेष्ठो ददौ तस्मैशुभाशिषम्
सस्मितं ब्राह्मणं दृष्ट्वा त्यक्तमन्युं कृपामयम् । उवाच नृपतिश्रेष्ठः साश्रुनेत्रःपुटाञ्जलिः ॥

राजोवाच ।

कुत्र वंशे भवान् जातःकिंनाम भवतः प्रभो । किंनामवापि तद्ब्रूहि क्व वासःकथमागतः
विप्ररूपीस्वयं विष्णुर्गूढः कपट मानुषः । साक्षात् समूर्त्तिमानग्निःप्रज्वलन् ब्रह्मतेजसा।
कोवा गुरुस्ते भगवन्निष्टदेवश्च भारते । तव वेशः कथमयं ज्ञानपूर्णस्य साम्प्रतम् ॥८॥
गृहाण राज्यं निखिलमैश्वर्य्यं कोषमेवच । स्वभृत्यं कुरुमे पुत्रं माञ्च दासीं स्त्रियं मुने
सप्तसागरसंयुक्तां सप्तद्वीपां वसुन्धराम् । नवद्वयोपद्वीपाक्तां सशैलवनशोभिताम् ।१०।
मया भृत्येन त्वं शाधि राजेन्द्रो भवभारते । रत्नेन्द्रसारनिर्माणे तिष्ठ सिंहासने वरे॥
नृपस्य वचनं श्रुत्वा जहास मुनिपुङ्गवः । उवाच परमं तत्त्वं मद्दत्तं सर्वदुर्लभम् ॥ १२॥

अतिथिरुवाच ।

मरीचिर्ब्रह्मणःपुत्रस्तत्पुत्रःकश्यपःस्वयम् । कश्यपस्यसुताःसर्वेप्रापुःदेवत्वमीप्सितम् ॥
तेषु त्वष्टा महाज्ञानी चकार परमं तपः । दिव्यं वर्षसहस्रञ्च पुष्करे दुष्करं तपः ॥१४॥
सिषिवे ब्राह्मणार्थञ्च देवदेवं हरिं परम् । नारायणाद्वरं प्राप विप्रं तेजस्विनं सुतम् ॥
ततो बभूव तेजस्वी विश्वरूपस्तपोधनः । पुरोधसं चकारेन्द्रो वाक्पतौ तं क्रुधा गते।

मातामहेभ्यो दैत्येभ्यो दत्तवन्तं घृताहुतिम् । चिच्छेद तं सुनाशीरो ब्राह्मणं मातुराज्ञया

विश्वरूपस्य तनयो विरूपो मत्पिता नृप ।

अहञ्च सुतपा नाम वैरागी काश्यपो द्विजः ॥ १८ ॥

महादेवो मम गुरुर्विद्याज्ञानमनुप्रदः । अभीष्टदेवः सर्वात्मा श्रीकृष्णः प्रकृतेः परः ॥१९॥

चिन्तयामितत्पदाब्जंनमेवाञ्छास्तिसम्पदि। सालोक्यसार्ष्टिसारूप्यसामीप्यंराधिकापतेः

तेन दत्तं न गृह्णामि विना तत्सेवनं शुभम् । ब्रह्मत्वममरत्वं वा मन्येऽहं जलविम्ववत् ॥

भक्तिव्यवहितं मिथ्याभ्रममेव तु नश्वरम् । इन्द्रत्वं वा मनुत्वं वा सौरत्वं वा नराधिप

न मन्ये जलरेखेति नृपत्वं केन गण्यते । श्रुत्वा सुयज्ञ यज्ञे तु मुनीनां गमनं नृप ॥२३॥

लालसा विष्णुभक्तिर्मे प्राप्तिहेतुमिहागतः । केवलानुगृहीतस्त्वं न हि शप्तो मयाधुना

समुद्धृतश्च पतितो घोरे निम्ने भवार्णवे । नह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः

ते पुनन्त्युरुकालेन कृष्णभक्ताश्च दर्शनात् । राजन्निर्गम्यतां गेहाद्देहि राज्यं सुताय च ।

पुत्रे न्यस्य प्रियां साध्वीं गच्छ वत्स वनंत्वरा । ब्रह्मादिस्तम्बपर्य्यन्तंसर्वंमिथ्यैवभूमिप

श्रीकृष्णंभजराधेशंपरमात्मानमीश्वरम् । ध्यानासाध्यं दुराराध्यं ब्रह्मविष्णुशिवादिभिः

आविर्भूतैस्तिरोभूतैः प्राकृतैः प्रकृतेः परम् । ब्रह्मा स्रष्टा हरिः पाता हरः संहारकारकः

दिक्पालाश्च दिगीशाश्च भ्रमन्ति यस्यमायया । यदाज्ञयावाति वायुःसूर्य्योदिनपतिःसदा

निशापतिः शशी शश्वच्छस्यसुस्निग्धकारकः । कालेन मृत्युःसर्वेषां सर्वविश्वेषुभीतवत्

काले वर्षति शक्रश्च दहत्यग्निश्च कालतः । भीतवत् विश्वशास्ता च प्रजासंयमनो यमः

कालः संहरते काले काले सृजति पाति च । स्वदेशे च समुद्रश्च स्वदेशे च वसुन्धरा

स्वदेशे पर्वताश्चैव स्वपातालाःस्वदेशतः । स्वर्लोकाः सप्तराजेन्द्र सप्तद्वीपा वसुन्धरा

शैलसागरसंयुक्ताः पातालाः सप्त एव च । एभिर्लोकैश्चब्रह्माण्डं डिम्बाकारं जलप्लुतम्

सन्त्येव प्रतिब्रह्माण्डे ब्रह्मविष्णु शिवादयः । सुरा नराश्च नागाश्च गन्धर्वा राक्षसादयः

आपातालाद्ब्रह्मलोक पर्य्यन्तं डिम्बरूपकम् । इदमेवतु ब्रह्माण्डं ब्रह्मणः कृत्रिमं नृप ॥

नाभिपद्मे विराड्विष्णोः क्षुद्रस्य जलशायिनः । स्थितंयथापद्मवीजंकर्णिकायाञ्च पङ्कजे

एवं सोऽपि शयानश्च जलतल्पे सुविस्तृते । ध्यायते स महायोगी प्राकृतः प्रकृतेः परम्

कालभीतश्च कालेशं कृष्णमात्मानमीश्वरम् ।
महाविष्णोर्लोमकूपे साधारः सोऽस्ति विस्तृते ।
लोम्नां कूपेषु प्रत्येकमेवं विश्वानि सन्ति वै ॥ ४० ॥
महाविष्णोर्गात्रलोम्नां ब्रह्माण्डानाञ्च भूमिप ।
संख्यां कर्त्तुं न शक्नोति कृष्णोऽप्यन्यस्य का कथा ॥ ४१ ॥

महाविष्णुः प्राकृतिकःसोऽपिडिम्बोद्भवःसदा । भवेत्कृष्णेच्छयाडिम्बःप्रकृतेर्गर्भसम्भवः
सर्वाधारोमहान्विष्णुःकालभीतःसशङ्कितः । कालेशंध्यायतेशश्वत्कृष्णमात्मानमीश्वरम्
एवञ्च सर्वविश्वस्था ब्रह्मविष्णुशिवादयः । महान्विराट्क्षुद्रविराट्सर्वे प्राकृतिकाःसदा
सा सर्वबीजरूपा च मूलप्रकृतिरीश्वरी । काले लीना च कालेशे कृष्णे तं ध्यायते सदा
एवं सर्वे कालभीताः प्रकृतिः प्राकृतास्तथा । आविर्भूतास्तिरोभूताः कालेन परमात्मनि
इत्येवं कथितं सर्वं महाज्ञानं सुदुर्लभम् । शिवेन गुरुणा दत्तं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारद-संवादे हरगौरीसंवादे त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

सुतपःसुयज्ञसंवादवर्णनम् ।

राजोवाच

कुत्राधारो महाविष्णोःसर्वाधारस्य तस्य च । कालभीतस्यकतिचकालमाया मुनीश्वर
क्षुद्रस्य कतिचित्कालं ब्रह्मणः प्रकृतेस्तथा । मनोरिन्द्रस्य चन्द्रस्यसूर्य्यस्यायुस्तथैवच
अन्येषाञ्च जनानाञ्च प्राकृतानां परं वयः । वेदोक्तं सुविचार्य्यञ्च वद वेदविदां वर ॥३॥
विश्वानामूर्द्ध्वभागे च कश्च वा लोकएव सः । कथयस्व महाभाग सन्देहच्छेदनं कुरु

मुनिरुवाच ।

विश्वानां गोलोकं राजन् विस्तृतञ्च नभःसमम् ।
शश्वन्नित्यं डिम्बरूपं श्रीकृष्णेच्छासमुद्भवम् ॥ ५ ॥

जलेन परिपूर्णञ्च कृष्णस्य मुखविन्दुना । सृष्ट्युन्मुखस्यादिसर्गे परिश्रान्तस्य क्रीड़तः प्रकृत्या सह युक्तस्य कलया निजया नृप । तत्राधारो महाविष्णुर्विश्वाधारस्यविस्तृतः प्रकृतेर्गर्भसंयुक्तडिम्बोद्भूतस्य भूमिप । सुविस्तृते जलाधारे शयानश्च महाविराट् ॥ राधेश्वरस्य कृष्णस्य षोड़शांशः प्रकीर्त्तितः । दूर्वादलश्यामरूपः सस्मितश्च चतुर्भुजः वनमालाधरः श्रीमान्शोभितः पीतवाससा । ऊर्ध्वे नभसि तद्विष्णोर्नित्यवैकुण्ठमेवच आत्माकाशसमंनित्यंविस्तृतं चन्द्रविम्बवत् । ईश्वरेच्छासमुद्भूतं निर्लक्षञ्च निराश्रयम् आकाशवत्सुविस्तारञ्चामूल्यरत्ननिर्मितम् । तत्र नारायणः श्रीमान् वनमाली चतुर्भुजः

लक्ष्मीसरस्वतीगङ्गातुलसीपतिरीश्वरः ।
सुनन्दनन्दकुमुदपार्षदादिभिरावृतः ॥ १३ ॥

सर्वेशः सर्वसिद्धेशो :भक्तानुग्रहविग्रहः । श्रीकृष्णश्च द्विधाभूतो द्विभुजश्च चतुर्भुजः ॥ चतुर्भुजश्च वैकुण्ठे गोलोके द्विभुजः स्वयम् । ऊर्ध्वं वैकुण्ठदेशाच्चपञ्चाशत्कोटियोजनात् गोलोकं वर्त्तुलाकारं वरिष्ठं सर्वलोकतः अमूल्यरत्ननिर्माणैर्मन्दिरैश्च विभूषितम् ॥१६। रत्नेन्द्रसारनिर्माणैः स्तम्भसोपानचित्रकैः । मणीन्द्रदर्पणासक्तैः कवाटकलसोज्ज्वलैः । नानाचित्रविचित्रैश्च शिविरैश्च विराजितम् । कोटियोजनविस्तीर्णं दैर्घ्ये शतगुणंतथा ।

विरजासरिदाकीर्णशतश्रृङ्गेन वेष्टितम् ॥ १८ ॥

सरिदर्द्धप्रमाणेन दैर्घ्येन विस्तृतेन च । शैलार्द्धपरिमाणेन युक्तं वृन्दावनेन च ॥ १९ ॥ तदर्द्धमाननिर्माणरासमण्डलमण्डितम् सरिच्छैलवनादीनां मध्ये गोलोकमेव च ॥२०॥ यथा पङ्कजमध्ये च कर्णिकारो मनोहरः । तत्र गोगोपगोपीभिर्गोपीशो रासमण्डले ॥ रासेश्वर्य्या राधिकया संयुक्तः सन्ततं नृप । द्विभुजो मुरलीहस्तः शिशुगोपालरूपधृक् । वह्निशुद्धांशुकाधानो रत्नभूणभूषितः । चन्दनोक्षितसर्वाङ्गो रत्नमालाविराजितः ॥ २३॥ रत्नसिंहासनस्थश्च रत्नच्छत्रेण छत्रितः । शश्वत् स प्रियगोपालैः सेवितः श्वेतचामरैः ॥

गोपीभिःसेविताभिश्चमालाचन्दनचर्चितम् । सस्मितःसकटाक्षाभिःसुवेशाभिश्चवीक्षितः
कथितो लोकनिर्माणो यथाशक्ति यथागमम् । यथाश्रुतंशम्भुवक्त्रात् कालमानंनिशामय
पात्रं षट्पलनिर्माणं गभीरं चतुरङ्गुलम् ॥ २७ ॥
स्वर्णमाषैः कृतच्छिद्रं दण्डैश्च चतुरङ्गुलैः । यावज्जलप्लुतं पात्रं तत्कालं दण्डमेव च ॥
दण्डद्वयं मुहूर्त्तश्च यामस्तस्य चतुर्गुणः । वासरश्चाष्टभिर्यामैः पक्षः पञ्चदशःस्मृतः ॥
मासो द्वाभ्याञ्च पक्षाभ्यां वर्षोद्वादशमासकैः । मासेन च नराणाञ्च पितॄणांतदहर्निशम्
कृष्णपक्षे दिनं प्रोक्तं शुक्ले रात्रिः प्रकीर्त्तिता । वत्सरेण नराणाञ्च देवानाञ्चदिवानिशम्
उत्तरायणे दिनं प्रोक्तं रात्रिश्च दक्षिणायने । युगकर्मानुरूपञ्च नरादीनां वयो नृप ॥३२॥
प्रकृतेः प्राकृतानाञ्च ब्रह्मादीनां निशामय । कृतं त्रेताद्वापरञ्च कलिश्चेतिचतुर्युगम् ॥३३॥
दिव्यैर्द्वादशसाहस्रैः सावधानं निशामय । चत्वारि त्रीणि द्वे चैकं कृतादिषु यथायुगम्
तेषांच संध्या संध्यांशौ द्वे सहस्रेप्रकीर्त्तिते । त्रिचत्वारिंशल्लक्षेण विंशत्सहस्राधिकेनच
चतुर्युगं परिमितं नरमाणक्रमेण च । सप्तदशलक्षमितमष्टाविंशत् सहस्रकम् ॥ ३६॥
नृमानेन कृतयुगं संख्याविद्भिः प्रकीर्त्तितम् । द्विषड्लक्षपरिमितं षण्णवतिसहस्रकम् ॥
त्रेतायुगं परिमितं कालविद्भिः प्रकीर्त्तितम् । अष्टलक्षपरिमितं चतुःषष्टिसहस्रकम् ॥३८॥
परिमितं द्वापरञ्च प्रोक्तं संख्याविपश्चिता । चतुर्लक्षपरिमितं द्वात्रिंशच्च सहस्रकम् ॥
नृमानाब्दं कलियुगं विदुः कालविपश्चितः ॥ ३९ ॥
यथा सप्त च वाराश्चतिथयःषोड़शः स्मृताः । दिवारात्रिश्चपक्षौ द्वौ मासोवर्षश्चनिर्मितम्
यथा भ्रमति सततमेवमेव चतुर्युगम् । यथा युगानि राजेन्द्र तथा मन्वन्तराणि च ॥४१
मन्वन्तरन्तु दिव्यानां युगानामेकसप्ततिः । एवं क्रमाद् भ्रमन्त्येव मनवश्च चतुर्दशः ॥
षष्ठ्यधिकं पञ्चशतं पञ्चविंशत् सहस्रकम् । नरमाणयुगञ्चैव परं मन्वन्तरं स्मृतम् ॥४३
आख्यानञ्च मनूनाञ्च धर्मिष्ठानांनराधिप । यच्छ्रुतंशिववक्त्रेण तत्त्वं मत्तोनिशामय
आद्यो मनुर्ब्रह्मपुत्रः शतरूपा पतिव्रता । धर्मिष्ठानां वरिष्ठश्च गरिष्ठो मनुषु प्रभुः ॥ ४५॥
स्वायम्भुवः शम्भुशिष्यो विष्णुव्रतपरायणः । जीवन्मुक्तो महाज्ञानी भवतः प्रपितामहः
राजसूयसहस्रञ्च चकार नर्मदातटे । त्रिलक्षमश्वमेधञ्च त्रिलक्षं नरमेधकम् ॥ ४७ ॥

गोमेधञ्च चतुर्लक्षं विधिवन्महदद्भुतम् । ब्राह्मणानां त्रिकोटिञ्च भोजयामासनित्यशः
पञ्चलक्षगवां मांसैः सुपक्वैर्घृतसंस्कृतैः । चर्व्यचूष्यलेह्यपेयैर्मिष्टद्रव्यैः सुदुर्लभैः ॥४६॥
अमूल्यरत्नलक्षञ्च दशकोटिसुवर्णकम् । स्वर्णशृङ्गयुतं दिव्यं गवां लक्षं सुपूजितम् ॥
वह्निशुद्धञ्च वस्त्रञ्चमुनीन्द्राणाञ्चलक्षकम् । भूमिञ्च सर्वशस्याढ्यांगजेन्द्ररत्नलक्षकम्

त्रिलक्षमश्वरत्नञ्च शातकुम्भविनिर्मितम् ॥ ५१ ॥

सहस्रं रथरत्नञ्च शिविकालक्षमेव च । त्रिकोटिस्वर्णपात्रञ्च सान्नं सजलमीप्सितम्

त्रिकोटिस्वर्णपात्रञ्च कर्पूरादिसुवासितम् ॥ ५२ ॥

ताम्बूलं सुविचित्रञ्च त्रिकोटिस्वर्णतल्पकम् । रत्नेन्द्रसारखचितं रचितं विश्वकर्मणा
वह्निशुद्धांशुकैश्चित्रै राजितं माल्यजालकैः । नित्यंददौब्राह्मणेभ्यो विष्णुप्रीत्याशिवाज्ञया
संप्राप्य शङ्कराज्ज्ञानं कृष्णमन्त्रंसुदुर्लभम् । संप्राप्य कृष्णदास्यञ्च गोलोकञ्चजगामसः
दृष्ट्वा मुक्तं स्वपुत्रञ्च प्रहृष्टश्च प्रजापतिः । तुष्टाव शङ्करं तुष्टः ससृजे मनुमन्यकम् ॥५६॥

स च स्वयम्भुपुत्रश्च स च स्वायम्भुवो मनुः ।

स्वारोचिषो मनुश्चैव द्वितीयो वह्निनन्दनः ॥ ५७ ॥

राजा वदान्यो धर्मिष्ठः स्वायम्भुवसमो महान् । प्रियव्रतसुतावन्यौ द्वौ मनूधर्मिणांवरौ
तौ तृतीयौ चतुर्थौ च वैष्णवौतापसोत्तमौ । तौ च शङ्करशिष्यौ चकृष्णभक्तिपरायणौ
धर्मिष्ठानां वरिष्ठश्च रैवतः पञ्चमो मनुः । षष्ठश्च चाक्षुषो ज्ञेयो विष्णुभक्तिपरायणः ॥
श्राद्धदेवः सूर्य्यसूतो वैष्णवः सप्तमो मनुः । सावर्णिः सूर्य्यतनयो वैष्णवोमनुरष्टमः ॥
नवमो दक्षसावर्णिर्विष्णुव्रतपरायणः । दशमो ब्रह्मसावर्णिर्ब्रह्मज्ञानविशारदः ॥ ६२ ॥
ततश्च धर्मसावर्णिर्मनुरेकादशः स्मृतः । धर्मिष्ठश्च वरिष्ठश्च वैष्णवानां सदा व्रती ॥६३
ज्ञानी च रुद्रसावर्णिर्मनुश्च द्वादशः स्मृतः । धर्मात्मा देवसावर्णिर्मनुरेवत्रयोदशः ॥६४
चतुर्दशो महाज्ञानी चन्द्रसावर्णिरेव च । यावदायुर्मनूनाञ्चैवेन्द्राणां तावदेव हि ॥६५॥

चतुर्दशेन्द्रावच्छिन्नं ब्रह्मणो दिनमुच्यते ।

तावती ब्रह्मणो रात्रिः सा च ब्राह्मी निशा नृप ॥६६॥

कालरात्रिश्च सा ज्ञेया वेदेषु परिकीर्त्तिता । ब्रह्मणोवासरे राजन् क्षुद्रकल्पः प्रकीर्त्तितः

एवं सप्तकल्पजीवी मार्कण्डेयो महातपाः । ब्रह्मलोकादधःसर्वेलोकाद्ग्धाश्चतत्रवै ॥६८

उत्थितेनैव सहसा शङ्कर्षणमुखाग्निना । चन्द्रार्कब्रह्मपुत्राश्च ब्रह्मलोकं गता ध्रुवम् ॥६६

ब्राह्मीरात्रिव्यतिते तु पुनश्च ससृजे विधिः । तस्यां ब्रह्मनिशायाञ्च क्षुद्रप्रलय उच्यते ॥

देवाश्च मनवश्चैव तत्र दग्धा नरादयः । एवं त्रिंशद्दिवारात्रैर्ब्रह्मणो मास एव च ॥७१॥

वर्षं द्वादशमासैश्च ब्रह्मसम्बन्धि चैव हि । एवं पञ्चदशाब्दे तु गते च ब्रह्मणो नृप ।

दैनंदिनन्तु प्रलयो वेदेषु परिकीर्त्तितः ॥७२॥

मोहरात्रिश्च सा प्रोक्ता वेदविद्भिः पुरातनैः ।

तत्र सर्वे प्रणष्टाश्च चन्द्रार्कादिदिगीश्वराः ॥७३

आदित्या वसवो रुद्रा मन्विन्द्रा मानवादयः ।

ऋषयो मुनयश्चैव गन्धर्वा राक्षसादयः ॥७४॥

मार्कण्डेयो लोमशश्च पेचकश्चिरजीविनः । इन्द्रद्युम्नश्च नृपतिश्चाकूपारश्चकच्छपः ॥७५

नाड़ीजङ्घो वकश्चैव सर्वे नष्टाश्च तत्रवै । ब्रह्मलोकादधः सर्वे लोका नागालयास्तथा॥

ब्रह्मलोकं ययुः सर्वे ब्रह्मपुत्रादयस्तथा । गते दैवे दिने ब्रह्मा लोकांश्चससृजे पुनः ॥७७

एवं शताब्दपर्य्यन्तं परमायुश्च ब्रह्मणः । ब्रह्मणश्च निपातेन महाकल्पो भवेन्नृप ॥७८॥

प्रकीर्त्तिता महारात्रिः सा एव च पुरातनैः । ब्रह्मणश्चनिपातेचब्रह्माण्डौघोजलप्लुतः ॥

वेदमाता च सावित्री वेदा धर्म्मादयस्तथा । सर्वे प्रणष्टा मृत्युश्चप्रकृतिश्चशिवं विना ॥

नारायणे प्रलीनाश्च विश्वस्था वैष्णवास्तथा । कालाग्निरुद्रः संहर्त्ता सर्वरुद्रगणैः सह ॥

मृत्युञ्जये महादेवे प्रलीनः स तमोगुणः । ब्रह्मणश्च निपातेन निमेषः प्रकृतेर्भवेत् ॥८२॥

नारायणश्च शम्भोश्च महद्विष्णोश्च निश्चितम् ।

निमेषान्ते पुनः सृष्टिर्भवेत् कृष्णेच्छया नृप ॥८३॥

कृष्णो निमेषरहितो निर्गुणः प्रकृतेः परः । सगुणानां निमेषश्च कालसंख्यावयोमितः ॥

निर्गुणस्य च नित्यस्य चाद्यन्तरहितस्य च । निमेषाणां सहस्रेण प्रकृतेर्दण्ड उच्यते ॥

षष्टिदण्डात्मिका तस्याः वासरश्च प्रकीर्त्तितः ।

मासस्त्रिंशद्दिवारात्रैर्वर्षं द्वादशमासकैः ॥८६॥

एवं गते शताब्दे च श्रीकृष्णे प्रकृतेर्लयः। प्रकृत्याञ्च प्रलीनायां श्रीकृष्णे प्राकृतोलयः॥

सर्वान् संहृत्य सा चैका महाविष्णोः प्रसूश्च या।
कृष्णवक्षसि लीना च मूलप्रकृतिरीश्वरी ॥८८॥

सन्तो वदन्ति तां दुर्गां विष्णुमायांसनातनीम्। सर्वशक्तिस्वरूपाञ्चपरांनारायणींसतीम्
बुद्ध्यधिष्ठातृदेवीञ्चकृष्णस्यनिर्गुणात्मिकाम्। यन्मायामोहिताश्चैवब्रह्मविष्णुशिवादयः
वैष्णवास्तांमहालक्ष्मींपरांराधां वदन्ति ते। अर्द्धाङ्गाचमहालक्ष्मीःप्रियानारायणस्य च॥

प्राणाधिष्ठातृदेवीञ्च प्रेम्णा प्राणाधिकां वराम्।
शश्वत् प्रेममयीं शक्तिं निर्गुणां निर्गुणस्य च ॥६२॥

नारायणश्च शम्भुश्च संहृत्य स्वगणान् बहून्। शुद्धसत्वस्वरूपीचकृष्णे लीनश्च निर्गुणे॥
गोपा गोप्यश्च गावश्च सुरभ्यश्च नराधिप। सर्वे लीनाः प्रकृत्याञ्चप्रकृतिः प्रकृतीश्वरे॥
महाविष्णौ विलीनाश्च ते सर्वेक्षुद्रविष्णवः। महाविष्णुःप्रकृत्याञ्चसाचैवंपरमात्मनि॥
प्रकृतिर्योगनिद्रा च श्रीकृष्णनेत्रपद्मयोः। अधिष्ठानञ्चकारैवं माययाचेश्वरेच्छया ।६६॥

प्रकृतेर्वासरो यावन्मितः कालः प्रकीर्त्तितः।
तावद्वृन्दावने निद्रा कृष्णस्य परमात्मनः ॥६७॥

अमूल्यरत्नतल्पे च वह्निशुद्धांशुकार्चिते। गन्धचन्दनमाल्यानां वायुना सुरभीकृते ॥६८
पुनः प्रजागरे तस्य सर्वसृष्टिर्भवेत् पुनः। एवं सर्वे प्राकृताश्च श्रीकृष्णं निर्गुणं विना॥
तद्वन्दनं तत्स्मरणं तस्य ध्यानं तदर्चनम्। कीर्त्तनंतद्गुणानाञ्चमहापातकनाशनम्॥१००
एतत्ते कथितं सर्वंयद्यन्मृत्युञ्जयाच्छ्रुतम्। यथागमंमहाराजकिंभूयः श्रोतुमिच्छसि॥

सुयज्ञ उवाच।

कालाग्निरुद्रो विश्वानांसंहर्त्ताचतमोगुणः। ब्रह्मणोऽन्तेविलीनश्चसत्वोमृत्युञ्जयेशिवे॥

शिवो लीनो निर्गुणेचेत् श्रीकृष्णे प्राकृते लये।
कथं तव गुरोर्नाम मृत्युञ्जय इति श्रुतौ ॥१०३॥
कथं वा मूलप्रकृतिर्महाविष्णोः प्रसूरियम्।
असंख्यानि च विश्वानि वसन्ति यस्य लोमसु ॥१०४॥

सुतपा उवाच ।

ब्रह्मणोऽन्ते मृत्युकन्या प्रणष्टाजलविम्बवत् । संहर्त्रींसर्वलोकानांब्रह्मादीनांनराधिप ॥
कतिधामृत्युकन्यानां ब्रह्मणां कोटिशो लये । कालेनलीनःशम्भुश्चसत्वरूपेच निर्गुणे ॥
मृत्युकन्या जिताशश्वच्छिवेनगुरुणामम । नमृत्युनाजितःशम्भुःकल्पेकल्पेश्रुतौश्रुतम् ॥
शम्भुर्नारायणस्यैव प्रकृतेश्च नराधिप । नित्यानां लीनता नित्येतन्मायान तु वास्तवी ॥
स्वयं पुमान् निर्गुणश्च कालेनसगुणःस्वयम् । स्वयंनारायणःशम्भुर्माययाप्रकृतिःस्वयम् ॥
तदंशस्तत्समः शश्वद्व यथावह्नेःस्फुलिङ्गवत् । येयेचब्रह्मणासृष्टारुद्रादित्यादयस्तथा ॥
कल्पेकल्पेजितास्तेते नश्वरामृत्युकन्यया । नशिवोब्रह्मणासृष्टःसत्योनित्यः सनातनः ॥
कतिधा ब्रह्मणां पातो यन्निमेषेण भूमिप । अथादिसर्गेश्रीकृष्णःप्रकृत्याश्च जगद्गुरुः ॥
चकारवीर्य्याधानञ्च पुण्ये वृन्दावने वने । तद्वामांशसमुद्भूता रासे रासेश्वरी परा ॥
गर्भं दधार सा राधा यावद्वै ब्रह्मणो वयः । ततःसुषावसाडिम्बंगोलोके रासमण्डले ॥
चुकोप डिम्बं सा दृष्ट्वा हृदयेन विदूयता । तड्डिम्बं प्रेरयामास तदधो विश्वगोलके ॥
त्यक्त्वापत्यं महादेवी रुरोद च मुहुर्मुहुः । कृष्णस्तांबोधयामासमहायोगेनयोगवित् ॥
वभूव तस्माड्डिम्बाच्च सर्वाधारो महाविराट् ॥११७॥

सुयज्ञ उवाच ।

अद्य मे सफलं जन्म जीवनं सार्थकं मम । शापो मे वररूपश्च वभूव भक्तिकारणम् ॥
सुदुर्लभा हरेर्भक्तिः सर्वमङ्गलमङ्गला । न तस्याश्च समं विप्र वेदेषुभक्तिपञ्चकम् ॥११९॥
यथा भक्तिर्मम भवेत् श्रीकृष्णे परमात्मनि । सुदुर्लभा च सर्वेषां तत्कुरुष्वमहामुने ॥
न ह्यम्मयानि तीर्थानि नदेवामृच्छिलामयाः । तेपुनन्त्युरुकालेनकृष्णभक्ताश्चदर्शनात् ॥
सर्वेषामाश्रमाणाञ्च द्विजातिर्जातिरुत्तमा । स्वधर्मनिरताश्चैवतेषुश्रेष्ठाश्च भारते ॥१२२॥
कृष्णमन्त्रोपासकश्च कृष्णभक्तिपरायणः । नित्यंनैवेद्यभोजीचततःश्रेष्ठोमहान् शुचिः ॥
त्वां वैष्णवं द्विजश्रेष्ठं महाज्ञानार्णवं परम् । संप्राप्य शिवशिष्यञ्च कं यामि शरणं मुने ॥
अधुनाहं गलत्कुष्ठी तव शापान्महामुने । कथं तपस्यामशुचिर्नाधिकारी करोमि च ॥

सुतपा उवाच।

हरिभक्तिप्रदात्री सा विष्णुमाया सनातनी। सा च याननुगृह्णातितेभ्योभक्तिंददातिच॥
यांश्च माया मोहयति तेभ्यस्तां न ददाति च। करोति वञ्चनां तेषांनश्वरैणधनेनच॥
कृष्णप्रेममयीं शक्तिं प्राणाधिष्ठातृदेवताम्। भज राधांनिर्गुणांतांप्रदात्रींसर्वसम्पदाम्॥
शीघ्रं यास्यसि गोलोकं तदनुग्रहसेवया। सा सेविता श्रीकृष्णेन सर्वाराध्येन पूजिता॥

ध्यानासाध्यं दुराराध्यं भक्ताः संसेव्य निर्गुणम्।
सुचिरेण च गोलोकं प्रयान्ति बहुजन्मतः॥ १३०॥

कृपामयीश्चसंसेव्यभक्ता यान्त्यचिरेणच। साप्रसूश्चमहाविष्णोः सर्वसम्पत्स्वरूपिणी॥
विप्रपादोदकं भुङ्क्ष्व सहस्रवर्षसंयुतः। कामदेवस्वरूपश्च रोगहीनो भविष्यसि।१३२
विप्रपादोदकक्लिन्ना यावत्तिष्ठति मेदिनी। तावत्पुष्करपत्रेषु पिबन्ति पितरो जलम्॥
पृथिव्यांयानि तीर्थानितानि तीर्थानिसागरे। सागरेयानि तीर्थानि विप्रपादेषु तानि च
विप्रपादोदकञ्चैव पापव्याधिविनाशनम्। सर्वतीर्थोदकसमं भुक्तिमुक्तिप्रदं शुभम्॥
विप्रो मानवरूपी च देवदेवो जनार्दनः। विप्रेण दत्तं द्रव्यञ्च भुञ्जते सर्वदेवताः॥१३६॥
इत्येवमुक्त्वा विप्रश्चगृहीत्वा तस्यपूजनम्। जगामगृहमित्युक्त्वा चायास्ये वत्सरान्तरे॥
भक्त्याच बुभुजे राजा विप्रपादोदकंशिवे। विप्रांश्चपूजयामास भोजयामास वत्सरम्॥
संवत्सरव्यतीते तु निर्मुक्तोव्याधितोनृपः। आजगाम मुनिश्रेष्ठः सुतपाः कश्यपाग्रणीः
राधापूजाविधानञ्च स्तोत्रञ्च कवचं मनुम्। ध्यानञ्च सामवेदोक्तं ददौ तस्मै नृपायच॥
राजन्निर्गम्यतांशीघ्रमित्युक्त्वा तपसेमुनिः। जगामस्वालयं दुर्गे निर्जगामत्वरान्वितः॥
रुरुदुर्बान्धवाःसर्वेत्रिरात्रं शोकमूर्च्छिताः। भार्य्याश्चतत्यजुः प्राणान् पुत्रोराजाबभूवह॥
सुयज्ञः पुष्करं गत्वा चकार दुष्करं तपः। दिव्यं वर्षं शतं राजा जजाप परमं मनुम्॥
तदा ददर्श गगने रथस्थां परमेश्वरीम्। स तद्दर्शनमात्रेण निष्पापश्च बभूव ह॥ १४४॥
तत्याज मानुषं देहं दिव्यां मूर्त्तिं दधार ह। सा देवी तेन यानेन रत्नेन्द्रनिर्मितेन च॥
नृपं नीत्वाच गोलोकं तत्र चैव ययौ तदा। राजा ददर्श गोलोकं नद्या विरजयावृतम्॥
वेष्टितं पर्वतेनैव शतशृङ्गेण चारुणा। श्रीवृन्दावनसंयुक्तं रासमण्डलमण्डितम्॥१४७॥

गोगोपीगोपनिकरैः शोभितं परिसेवितैः। रत्नेन्द्रसारनिर्माणमन्दिरैः सुमनोहरैः॥
नानाचित्रविचित्रैश्च राजितं परिशोभितम्। सप्तत्रिंशदुपवनैः कल्पवृक्षसमन्वितैः॥
पारिजातद्रुमाकीर्णैःवेष्टितं कामधेनुभिः। आकाशवत् सुविस्तीर्णंवर्त्तुलंचन्द्रविम्बवत्॥
अत्यूर्द्ध्वमपि वैकुण्ठात् पञ्चाशत्कोटियोजनम्।
शून्यस्थितं निराधारं ध्रुवमेवेश्वरेच्छया॥ १५१॥
आत्माकाशसमंनित्यमस्माकञ्च सुदुर्लभम्। अहंनारायणोऽनन्तोब्रह्मा विष्णुर्महान्विराट्
धर्मःक्षुद्रविराट्सङ्घोगङ्गालक्ष्मीःसरस्वती। त्वंविष्णुमायासावित्रीतुलसीचगणेश्वरः॥
सनत्कुमारः स्कन्दश्च नरनारायणावृषी। कपिलोदक्षिणा यज्ञो ब्रह्मपुत्राश्चयोगिनः॥
पवनो वरुणश्चन्द्रः सूर्यो रुद्रो हुताशनः। कृष्णमन्त्रोपासकाश्च भारतस्थाश्चवैष्णवाः॥
एभिर्दृष्टश्च गोलोको नान्यैर्दृष्टःकदाचन। निरामयेच तत्रैव रत्नसिंहासने स्थितम्॥
रत्नमालाकिरीटैश्च भूषितं रत्नभूषणैः। सुनिर्मलैः पीतवस्त्रैः वह्निशुद्धैर्विराजितम्॥
चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं किशोरं गोपरूपिणम्। नवीननीरदश्यामं श्वेतपङ्कजलोचनम् १५८
शरत्पार्वणचन्द्रास्यमीषद्धास्यं मनोहरम्। द्विभुजं मुरलीहस्तं भक्तानुग्रहविग्रहम्॥
स्वेच्छामयंपरं ब्रह्म निर्गुणंप्रकृतेःपरम्। ध्यानासाध्यंदुराराध्यमस्माकञ्च सुदुर्लभम्॥
प्रियैर्द्वादशगोपालैः सेवितं श्वेतचामरैः। वीक्षितं गोपिकावृन्दैः सस्मितैः सुमनोहरैः॥
पीड़ितैः कामवाणैश्च शश्वत् सुस्थिरयौवनैः। वह्निशुद्धांशुकाधानैः रत्नभूषणभूषितैः
रासमण्डलमध्यस्थं श्रीकृष्णञ्च परात्परम्। ददर्श राजा तत्रैव राधया दर्शितन्तदा॥
स्तुतं चतुर्भिर्वेदैश्च मूर्त्तिमद्भिर्मनोहरैः। रागिणीनाञ्च रागाणामतीव सुमनोहरम्॥
श्रुतवन्तश्च सङ्गीतं यन्त्रवक्त्रोत्थितं शिवे। नित्यया च सनातन्या प्रकृत्याच सह त्वया
शश्वत् पूजितपादाब्जं मण्डितं तुलसीदलैः। कस्तूरीकुङ्कुमाक्तैश्च गन्धचन्दनचर्चितैः॥
दूर्वाभिरक्षताभिश्च पारिजातप्रसूनकैः। निर्मलैर्विरजातोयैर्दत्तार्घ्यैरतिशोभितम्॥१६७॥
सुप्रसन्नं स्वतन्त्रञ्च सर्वकारणकारणम्। सर्वेषाञ्चान्तरात्मानं सर्वेशं सर्वजीवनम्॥
सर्वाधारंपरं पूज्यंब्रह्मज्योतिः सनातनम्। सर्वसम्पत्स्वरूपञ्चदातारं सर्वसम्पदाम्॥
सर्वमङ्गलरूपञ्च सर्वमङ्गलकारणम्। सर्वमङ्गलदं सर्वमङ्गलानाञ्च मङ्गलम्॥ १७०॥

तं दृष्ट्वा नृपतिस्त्रस्तोह्यवरुह्य रथात् त्वरा । साश्रुनेत्रः पुलकितो मूर्द्ध्ना च प्रणनाम च

परमात्मा ददौ तस्मै स्वदास्यञ्च शुभापितम् ।

स्वभक्तिं निश्चलां सत्यामस्माकञ्च सुदुर्लभम् ॥ १७२ ॥

राधावरुह्य स्वरथादुवासकृष्णवक्षसि । गोपीभिः सुप्रियाभिश्चसेविता श्वेतचामरैः ॥

सम्भाषिता श्रीकृष्णेनसस्मितेनचपूजिता । समुत्थितेनसहसा भक्त्याच सम्भ्रमेणच ॥

आदौ राधां समुच्चार्य्यपश्चात् कृष्णञ्च माधवम् । प्रवदन्तिचवेदेषु वेदविद्भिः पुरातनैः॥

विपर्य्ययं ये वदन्तिये निन्दन्ति जगत्प्रसूम् । कृष्णप्राणाधिकां प्रेममयीं शक्तिञ्चराधिकाम्

ते पच्यन्ते कालसूत्रे यावच्चन्द्रदिवाकरौ । भवन्ति स्त्रीपुत्रहीना रोगिणः शतजन्मसु ॥

इत्येवं कथितं दुर्गे राधिकाख्यानमुत्तमम् । सा त्वं सती भगवती वैष्णवीच सनातनी

नारायणी विष्णुमाया मूलप्रकृतिरीश्वरी । मायया मां पृच्छसि त्वं सर्वज्ञा सर्वरूपिणी

स्त्रीजातिस्वधिदेवी च पराजातिस्मरा वरा। कथितंराधिकाख्यानंकिंभूयःश्रोतुमिच्छसि

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे हरगौरी-
संवादे सुतपः सुयज्ञसंवादे चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

राधिकोपाख्याने राधापूजास्तोत्रम् ।

श्रीपार्वत्युवाच ।

श्रीकृष्णस्य स्थिते मन्त्रे युष्माकमीश्वरस्य च । कथं जग्राहराधाया मन्त्रञ्चवैष्णवोनृपः

किं विधानञ्च किं ध्यानंकिंस्तोत्रं कवचञ्च किम् । कं मन्त्रञ्चददौ राज्ञेतांपूजापद्धतिंवद

श्रीमहेश्वर उवाच ।

हे विप्र कं भजामीति प्रश्नं कुर्वति राजनि । शीघ्रं प्राप्नोमि गोलोकं कस्याराधनया मुने

इत्युक्तवन्तं राजेन्द्रमुवाच ब्राह्मणोत्तमः । तत्सेवया न तल्लोकं प्राप्स्यसे बहुजन्मतः ॥

तत्प्राणाधिष्ठातृदेवीं भज राधां परात्पराम् । कृपामयीप्रसादेन शीघ्रं प्राप्नोति तत्पदम्॥
इत्युक्त्वा राधिकामन्त्रं ददौ तस्मै षड़क्षरम् । ओं राधेति चतुर्थ्यन्तं वह्निजायान्तमेवच
प्राणायामं भूतशुद्धिं मन्त्रन्यासं तथैव च । कराङ्गन्यासमेवञ्च ध्यानं सर्वसुदुर्लभम् ।७
स्तोत्रञ्च कवचन्तञ्च शिक्षयामास भक्तितः । राजा तेन क्रमेणैव जजाप परमं मनुम्॥
ध्यानञ्च सामवेदोक्तं मङ्गलानाञ्च मङ्गलम् । कृष्णस्तां पूजयामास पुरा ध्यानेन येन च
श्वेतचम्पकवर्णाभां कोटिचन्द्रसमप्रभाम् । शरत्पार्वणचन्द्रास्यां शरत्पङ्कजलोचनाम्।
सुश्रोणीं सुनितम्बाञ्च पक्वबिम्बाधरां वराम् ॥१०
मुक्तापङ्क्तिविनिन्द्यैकदन्तपङ्क्तिमनोहराम् । ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां भक्तानुग्रहकातराम्।
वह्निशुद्धांशुकाधानां रत्नमालाविभूषिताम् ॥११॥
रत्नकेयूरवलयां रत्नमञ्जीररञ्जिताम् । रत्नकेयूरयुग्मेन विचित्रेण विराजिताम् ॥
सूर्य्यप्रभाच्छादितेन गण्डस्थलविराजिताम् ॥१२॥
अमूल्यरत्ननिर्म्माणग्रैवेयकविभूषिताम् । सद्रत्नसारनिर्म्माणकिरीटमुकुटोज्वलाम्॥
रत्नाङ्गुरीयसंयुक्तां रत्नपाशकशोभिताम्॥१३॥
बिभ्रतीं कवरीभारं मालतीमाल्यशोभितम् । रूपाधिष्ठातृदेवीञ्च गजेन्द्रमन्दगामिनीम्॥
गोपीभिः सुप्रियाभिश्च सेवितां श्वेतचामरैः ॥१४॥
कस्तूरीविन्दुभिःसार्द्धमधश्चन्दनविन्दुना । सिन्दूरबिन्दुनाचारुसीमन्ताधःस्थलोज्ज्वलाम्
नित्यं सुपूजितां भक्त्या कृष्णेन परमात्मना ॥१५॥
कृष्णसौभाग्यसंयुक्तां कृष्णप्राणाधिकां वराम् ।
कृष्णप्राणाधिदेवीञ्च निर्गुणाञ्च परात्पराम् ॥१६॥
महाविष्णुविधात्रीञ्च दात्रीञ्च सर्वसम्पदाम् । कृष्णभक्तिप्रदांशान्तांमूलप्रकृतिमीश्वरीम्
वैष्णवीं विष्णुमायाञ्च कृष्णप्रेममयीं शुभाम् । रासमण्डलमध्यस्थांरत्नसिंहासनस्थिताम्
रासे रासेश्वरयुतां राधां रासेश्वरीं भजे ॥१९॥
ध्यात्वा पुष्पं मूर्ध्निदत्त्वा पुनर्ध्यायेजगत्प्रसूम् । दद्यात्पुष्पंपुनर्ध्यात्वाचोपहाराणिषोड़श
आसनं वसनं पाद्यमर्घ्यं गन्धानुलेपनम् । धूपं दीपं सुपुष्पञ्च स्नानीयं रत्नभूषणम् ॥२१

नानाप्रकारनैवेद्यं ताम्बूलं वासितं जलम्। मधुपर्कं रत्नतल्पमुपचाराणि षोडश ॥२२॥
प्रत्येकं वेदमन्त्रेण दत्तं भक्त्या च भूभृता। मन्त्रांश्च श्रूयतां दुर्गे वेदोक्तान्सर्वसम्मतान्
रत्नसारविकारञ्च निर्मितं विश्वकर्म्मणा। वरं सिंहासनं रम्यं राधे पूजासु गृह्यताम्
अमूल्यरत्नखचितममूल्यं सूक्ष्ममेव च। वह्निशुद्धं निर्म्मलञ्च वसनं देवि गृह्यताम् ॥२५॥
सद्रत्नसारपात्रस्थं सर्वतीर्थोदकं शुभम्। पादप्रक्षालनार्थञ्च राधे पाद्यञ्च गृह्यताम् ।२६।
दक्षिणावर्त्तशङ्खस्थं सदूर्वापुष्पचन्दनम्। पूतं युक्तं तीर्थतोयैः राधेऽर्घ्यं प्रतिगृह्यताम् ॥
पार्थिवद्रव्यसंभूतमतीवसुरभीकृतम्। मङ्गलार्हं पवित्रञ्च राधे गन्धं गृहाण मे ॥ २८ ॥
श्रीखण्डचूर्णं सुस्निग्धं कस्तूरीकुङ्कुमान्वितम्। सुगन्धयुक्तं देवेशि गृह्यतामनुलेपनम् ॥
वृक्षनिर्यासंसंयुक्तं पार्थिवद्रव्यसंयुतम्। ज्वलदग्निशिखाभूतं धूपं देवि गृहाण मे ॥३०॥
अन्धकारभयहरममूल्यरत्नमुज्ज्वलम्। रत्नप्रदीपं शोभाढ्यं गृहाण परमेश्वरि ॥ ३१ ॥
पारिजातप्रसूनञ्च गन्धचन्दनचर्चितम्। अतीव शोभनं रम्यं गृह्यतां परमेश्वरि ॥ ३२ ॥
सुगन्धामलकीचूर्णं सुस्निग्धं सुमनोहरम्। विष्णुतैलसमायुक्तं स्नानीयं देवि गृह्यताम्
अमूल्यरत्ननिर्माणं केयूरवलयादिकम्। शङ्खं सुशोभनं राधे गृह्यतां भूषणं मम ॥३४॥
कालदेशोद्भवं पक्वफलञ्च लड्डुकादिकम्। परमान्नञ्च मिष्टान्नं नैवेद्यं देवि गृह्यताम् ॥
ताम्बूलञ्च वरं रम्यं कर्पूरादिसुवासितम्। सर्वभोगादिकं स्वादु ताम्बूलं देवि गृह्यताम्

अशनं रत्नपात्रस्थं सुस्वादु सुमनोहरम्।
मया निवेदितं भक्त्या गृह्यतां परमेश्वरि ॥३७॥

रत्नेन्द्रसारनिर्माणं वह्निशुद्धांशुकान्वितम्। पुष्पचन्दनचर्चाढ्यं पर्य्यङ्कं देवि गृह्यताम्॥
एवं संपूज्य देवीं तां दद्यात् पुष्पाञ्जलित्रयम्। यत्नेन पूजयेद्देवीं नायिकाष्टौव्रतेव्रती ॥
प्रागादिक्रमयोगेन दक्षिणावर्त्ततः प्रिये। भक्त्या पञ्चोपचारेणसुप्रियाः परिचारिकाः ॥
मालावतीं पूर्वकोणे वह्निकोणे च माधवीम्। दक्षिणेरत्नमालाञ्चसुशीलांनैर्ऋ तेसति ॥
पश्चिमे च शशिकलां पारिजाताञ्च मारुते। पद्मावतीमुत्तरे च ऐशान्यां सुन्दरीं तथा ॥
यूथिकामालतीपद्ममालां दद्यात् व्रते व्रती। परिहारञ्च कुरुते सामवेदोक्तमेव च ॥४३॥
त्वं देवीजगतांमाताविष्णुमायासनातनी। कृष्णप्राणाधिदेवीचकृष्णप्राणाधिकाशुभा ॥

कृष्णप्रेममयी शक्तिः कृष्णसौभाग्यरूपिणी। कृष्णभक्तिप्रदे राधे नमस्तेमङ्गलप्रदे ॥४५
अद्य मे सफलं जन्म जीवनं सार्थकं मम। पूजितासि मयासाचयाश्रीकृष्णेन पूजिता॥
कृष्णवक्षसि या राधा सर्वसौभाग्यसंयुता। रासे रासेश्वरीरूपा वृन्दावृन्दावने वने॥
कृष्णप्रिया च गोलोके तुलसी कानने तु या। चम्पावतीकृष्णसंगेक्रीड़ाचम्पककानने॥
चन्द्रावली चन्द्रवने शतशृङ्गे सती सति। विरजा दर्पहन्त्री च विरजातटकानने ॥४६॥
पद्मावती पद्मवने कृष्णा कृष्णसरोवरे। भद्रा कुञ्जकुटीरे च काम्या च काम्यके वने॥
वैकुण्ठे च महालक्ष्मीर्वाणी नारायणोरसि। क्षीरोदसिन्धुकन्याचमर्त्त्येलक्ष्मीर्हरिप्रिया
सर्वस्वर्गे स्वर्गलक्ष्मीर्देवदुःखविनाशिनी। सनातनी विष्णुमाया दुर्गा शङ्करवक्षसि॥
सावित्री वेदमाता च कलया ब्रह्मवक्षसि। कलया धर्मपत्नी त्वं नरनारायणप्रसूः ॥५३॥
कलया तुलसी त्वञ्च गङ्गाभुवनपावनी। लोमकूपोद्भवा गोप्यः कलांशा रोहिणी रतिः
कला कलांशरूपा च शतरूपा शची दितिः। अदितिर्देवमाता च त्वत्कलांशा हरिप्रिया
दिव्यश्च मुनिपत्न्यश्च त्वत्कला कलया शुभे। कृष्णभक्तिकृष्णदास्यंदेहिमे कृष्णपूजिते
एवं कृत्वा परीहारं स्तुत्वा च कवचं पठेत् ॥ ५७ ॥
पुराकृतं स्तोत्रमेतत् भक्तिदास्यप्रदं शुभम्। एवं नित्यं पूजयेद् योविष्णुतुल्यःसभारते
जीवन्मुक्तश्च पूतश्च गोलोकं याति निश्चितम् ॥ ५६ ॥
कार्त्तिकी पूर्णिमायाञ्च राधां यः पूजयेच्छिवे। एवं क्रमेण प्रत्यब्दं राजसूयफलं लभेत्
परमैश्वर्य्ययुक्तश्च इहलोके स पुण्यवान्। सर्वपापाद्विनिर्मुक्तो यात्यन्ते विष्णुमन्दिरम्
आदावेवं क्रमेणैव रासे वृन्दावने वने। स्तुत्वा सा पूजिता राधा श्रीकृष्णेन पुरा सति
संपूजिता द्वितीये च धात्रा एवं क्रमेण च। त्वद्वरेण च संप्राप्य विधाता वेदमातरम्
नारायणो महालक्ष्मीं प्राप संपूज्य भारतीम्। गङ्गाञ्च तुलसीञ्चैव परां भुवनपावनीम्
विष्णुः क्षीरोदशायी च प्राप सिन्धुसुतां तथा। मृतायांदक्षकन्यायांमयाकृष्णाज्ञयापुरा
त्वमेव दुर्गा सम्प्राप्ता पूजिता पुष्करे च सा। अदितिकश्यपःप्रापचन्द्रःसंप्रापरोहिणीम्
कामो रतिञ्च संप्राप धर्मो मूर्त्ति पतिव्रताम् ॥ ६७ ॥
देवाश्च मुनयश्चैव यां संपूज्य पतिव्रताम्। संप्रापुर्यद्वरेणैव धर्मकामार्थमोक्षकम् ॥६८॥

एवं पूजाविधानञ्च कथितञ्च स्तवं शृणु ॥ ६८ ॥

श्रीमहेश्वर उवाच ।

एकदा मानिनी राधा बभूवादर्शना प्रभोः । संसक्तस्य तुलस्याञ्च गोप्याञ्च तुलसीवने

सा संहृत्य स्वमूर्त्तीश्च कला सर्वाश्च लीलया ॥६९॥

सर्वे बभूवुर्देवाश्च ब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥ ७० ॥

भ्रष्टैश्वर्य्याश्चनिश्रीका भार्य्याहीनाह्युपद्रुताः । तेचसर्वेसमालोच्य श्रीकृष्णंशरणंययुः॥

तेषांस्तोत्रेण सन्तुष्टःस्नात्वा संपूज्यतांशुचिः । तुष्टाव परमात्मासर्वेषां राधिकां सतीम्

श्रीकृष्ण उवाच ।

एवमेव प्रियोऽहन्ते प्रमोदमेव ते मयि । सुव्यक्तमद्य कापट्यवचनन्ते वरानने ॥ ७३ ॥

हे कृष्ण त्वं मम प्राणा जीवात्मेति च सन्ततम् ।

यद्ब्रूहि नित्यं प्रेम्णा च साम्प्रतन्तद् गतं द्रुतम् ॥७४॥

तस्मात् सर्वमलीकन्ते वचनंजगदम्बिके । क्षुरधारञ्च हृदयं स्त्रीजातीनाञ्च सर्वतः ॥७५

अस्माकंवचनंसत्यं यद्ब्रवीमीतितद्ध्रुवम् । पञ्चप्राणाधिदेवीत्वं राधाप्राणाधिकेतिमे ॥

शक्तो न रक्षितुं त्वाञ्च यान्ति प्राणास्त्वया विना ।

विनाधिष्ठातृदेवींश्च को वा कुत्र च जीवती ॥ ७७ ॥

महाविष्णोश्च माता त्वं मूलप्रकृतिरीश्वरी । सगुणात्वञ्च कलया निर्गुणा स्वयमेवतु ॥

ज्योतीरूपा निराकारा भक्तानुग्रहविग्रहा । भक्तानां रुचिवैचित्र्या मानामूर्त्तिश्च बिभ्रती

महालक्ष्मीश्च वैकुण्ठे भारती च सतां प्रसूः । पुण्यक्षेत्रे भारतेच सतीच पार्वतीतथा८०।

तुलसी पुण्यरूपा च गङ्गा भुवनपावनी । ब्रह्मलोके च सावित्री कलया त्वं वसुन्धरा ॥

गोलोकेराधिका त्वञ्चसर्वगोपालकेश्वरी । त्वयाविनाहं निर्जीवोह्यशक्तः सर्वकर्म्मसु ॥

शिवःशक्तस्त्वयाशक्त्या शवाकारस्त्वयाविना । वेदकर्त्तास्वयंब्रह्मा वेदमात्रात्वयासह॥

नारायणस्त्वया लक्ष्मा जगत्पाता जगत्पतिः । फलंददाति यज्ञश्चत्वया दक्षिणया सह

बिभर्त्ति सृष्टिं शेषश्च त्वां कृत्वा मस्तके भुवम् ।

बिभर्त्ति गङ्गारूपां त्वां मूर्द्धिन गङ्गाधरः शिवः ॥ ८५ ॥

शक्तिमच्चजगत्सर्वं शवरूपंत्वयाविना। वक्तासर्वस्त्वयावाण्या सूतोमूकस्त्वयाविना॥
यथामृदाघटं कर्त्तुं कुलालःशक्तिमान् सदा। सृष्टिं स्रष्टुं तथाहञ्च प्रकृत्याच त्वयासह॥
त्वयाविनाजडश्चाहं सर्वत्र च न शक्तिमान्। सर्वशक्तिस्वरूपात्वं त्वमागच्छममान्तिकम्
वह्नित्वं दाहिकाशक्तिर्नाग्निःशक्तस्त्वयाविना। शोभास्वरूपाचन्द्रेत्वं त्वांविनानसमुन्दरः

प्रभारूपा हि सूर्य्ये त्वं त्वां विना न स भानुमान्।
न कामः कामिनीबन्धुस्त्वया रत्या विना प्रिये॥ ६०॥

इत्येवंस्तवनं कृत्वातां संप्रापजगत् प्रभुः। देवाबभूवुः सश्रीकाःसभार्य्याः शक्तिसंयुताः
सस्त्रीकश्च जगत् सर्वं वभूव शैलकन्यके। गोपीपूर्णश्च गोलोको बभूव तत्प्रसादतः॥
राजा जगामगोलोकमितिस्तुत्वाहरिप्रियाम्। श्रीकृष्णेनकृतं स्तोत्रंराधाया यः पठेन्नरः॥
कृष्णभक्तिश्चतद्दास्यंस प्राप्नोतिनसंशयः। स्त्रीविच्छेदेयःश्रृणोति मासमेकमिदंशुचिः॥
अचिराल्लभते भार्य्यां सुशीलां सुन्दरींसतीम्। भार्य्याहीनो भाग्यहीनोवर्षमेकं श्रृणोतियः
अचिराल्लभतेभार्य्यांसुशीलां सुन्दरींसतीम्। पुरामयाच त्वं प्राप्ता स्तोत्रेणानेनपार्वति॥
मृतायां दक्षकन्यायामाज्ञया परमात्मनः। स्तोत्रेणानेन संप्राप्ता सावित्री ब्रह्मणापुरा॥
पुरादुर्वाससः शापान्निश्रीकेदेवतागणे। स्तोत्रेणानेनदेवैस्तैः संप्राप्ता श्रीः सुदुर्लभम्॥
श्रृणोति वर्षमेकञ्च पुत्रार्थीलभते सुतम्। महाव्याधिरोगमुक्तो भवेत्स्तोत्रप्रसादतः॥
कार्त्तिकीपूर्णिमायान्तु तां संपूज्यपठेत्तुयः। अचलां श्रियमाप्नोति राजसूयफलंलभेत्॥

नारी श्रृणोति चेत् स्तोत्रं स्वामिसौभाग्यतां लभेत्।
भक्त्या श्रृणोति यः स्तोत्रं वन्धनान्मुच्यते ध्रुवम्॥ १०१॥

नित्यंपठतियो भक्त्या राधांसंपूज्यभक्तितः। सप्रयातिच गोलोकंनिर्मुक्तोभववन्धनात्

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे प्रकृतिखण्डे हरगौरीसंवादे श्रीराधिकोपाख्याने राधापूजास्तोत्रं नाम पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः।

षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

राधाकवचवर्णनम् ।

श्रीपार्वत्युवाच ।

पूजाविधानं स्तोत्रञ्च श्रुतमत्यद्भुतं मया । अधुना कवचं ब्रूहि श्रोष्यामि त्वत्प्रसादतः

श्रीमहेश्वर उवाच ।

शृणु वक्ष्यामि हे दुर्गे कवचं परमाद्भुतम् । पुरा मह्यं निगदितं गोलोके परमात्मना ॥२
अतिगुह्यं परं तत्वं सर्वमन्त्रौघविग्रहम् । यद्धृत्वा पठनाद् ब्रह्मा संप्राप वेदमातरम् ॥
यद्धृत्वाहं तव स्वामी सर्वमातुः सुरेश्वरि । नारायणश्च यद्धृत्वा महालक्ष्मीमवापसः
यद्धृत्वा परमात्मा च निर्गुणः प्रकृतेः परः । बभूव शक्तिमान्कृष्णः सृष्टिंस्रष्टुं पुराविभुः

विष्णुःपाता च यद्धृत्वा संप्राप सिन्धुकन्यकाम् ।
शेषो बिभर्त्ति ब्रह्माण्डं मूर्द्धिन सर्षपवद् यतः ॥६ ॥

लोमकूपेषु प्रत्येकं ब्रह्माण्डानिमहान् विराट् । बिभर्त्ति धारणाद्यस्य सर्वाधारोबभूवसः
यद्धारणाच्च पठनाद्धर्म्मः साक्षी च सर्वतः । यद्धारणात् कुवेरश्च धनाध्यक्षश्च भारते ॥
इन्द्रः सुराणामीशश्च पठनाद्धारणाद्यतः । नृपाणां मनुरीशश्च पठनाद्धारणाद् यतः ॥६॥
श्रीमांश्चन्द्रश्च यद्धृत्वा राजसूयं चकार सः । स्वयं सूर्य्यस्त्रिलोकेशः पठनाद्धारणाद्यतः
यद्धृत्वा पठनादग्निर्जगत्पूतं करोति च । यद्धृत्वा वाति वातोऽयं पुनाति भुवनत्रयम् ॥
यद्धृत्वा च स्वतन्त्रो हि मृत्युश्चरतिजन्तुषु । त्रिःसप्तकृत्वा निःक्षत्रांचकारचवसुन्धराम्
जामदग्न्यश्च रामश्च पठनाद्धारणाद् यतः । पपौ समुद्रं यद्धृत्वा पठनात् कुम्भसम्भवः ।
सनत्कुमारो भगवान् यद्धृत्वाज्ञानिनां गुरुः । जीवन्मुक्तौ च सिद्धौचनरनारायणावृषी
यद्धृत्वापठनात् सिद्धोवशिष्ठो ब्रह्मपुत्रकः । सिद्धेशःकपिलो यस्माद्यस्माद्दक्षःप्रजापतिः
यस्माद्भृगुश्च मां द्वेष्टि कूर्म्मः शेषंबिभर्त्ति च । सर्वाधारो यतो वायुर्वरुणःपवनोयतः

ईशानो दिक्पतिश्चैव यमः शास्ता यतः शिवे ।

कालः कालाग्निः रुद्रश्च संहर्त्ता जगतां यतः ॥१७॥

यद्धृत्वा गौतमः सिद्धः कश्यपश्च प्रजापतिः । वसुदेवसुतां प्राप चैकांशेनतुतत्कलाम्

पुरा स्वजायाविच्छेदे दुर्वासा मुनिपुङ्गवः ॥१८॥

संप्राप रामः सीताञ्च रावणेन हृतां पुरा ॥१९॥

पुरा नलश्च संप्राप दमयन्तीं यतः सतीम् । शङ्खचूड़ो महावीरो दैत्यानामीश्वरो यतः वृषो वहति मां दुर्गे यतो हि गरुड़ो हरिम् । एवं संप्राप संसिद्धिं सिद्धाश्चमुनयःपुरा यद्धृत्वा च महालक्ष्मीः प्रदात्री सर्वसम्पदाम् । सरस्वती सतां श्रेष्ठायतःक्रीड़ावतीरतिः सावित्रीवेदमाताचयतःसिद्धिमवाप्नुयात् । सिन्धुकन्यामर्त्यलक्ष्मीर्यतोविष्णुमवापसा यद्धृत्वा तुलसी पूता गङ्गा भुवनपावनी । यद्धृत्वा सर्वशस्याढ्या सर्वाधारा वसुन्धरा यद्धृत्वा मनसा देवी सिद्धा च विश्वपूजिता। यद्धृत्वा देवमाता च विष्णुं पुत्रमवापसा पतिव्रता च यद्धृत्वा लोपामुद्राप्यरुन्धती । लेभे च कपिलं पुत्रं देवहुती यतः सती ॥ प्रियव्रतोत्तानपादौ सुतौ प्राप च तत्प्रसूः । त्वन्माताचापि संप्राप त्वांदेवींगिरिजांयतः एवं सर्वे सिद्धगणाः सर्वैश्वर्य्यमवाप्नुयुः । श्रीजगन्मङ्गलस्यास्य कवचस्य प्रजापतिः ।

ऋषिश्छन्दोऽस्य गायत्री देवी रासेश्वरी स्वयम् ।

श्रीकृष्णभक्तिसंप्राप्तौ विनियोगः प्रकीर्त्तितः ॥२६॥

शिष्याय कृष्णभक्तायब्राह्मणाय प्रकाशयेत् । शठाय परशिष्याय दत्वामृत्युमवाप्नुयात् राज्यं देयं शिरोदेयं न देयं कवचं प्रिये । कण्ठे धृतमिदं भक्त्या कृष्णेन परमात्मना ॥ मया दृष्टञ्च गोलोके ब्रह्मणा विष्णुना पुरा । ओं राधेति चतुर्थ्यन्तं वह्निजायान्तमेव च कृष्णेनोपासितोमन्त्रःकल्पवृक्षःशिरोऽवतु । ओं ह्रीं श्रीं राधिकाङेन्तंवह्निजायान्तमेवच कपालं नेत्रयुग्मञ्च श्रोत्रयुग्मं सदाऽवतु। ओं रां ह्रीं श्रीं राधिकेतिङेन्तंवह्निजायान्तमेवच मस्तकं केशसंघाश्च मन्त्रराजःसदाऽवतु । ओं रां राधेति चतुर्थ्यन्तं वह्निजायान्तमेवच सर्वसिद्धिप्रदःपातुकपोलंनासिकांमुखम् । क्लींश्रींकृष्णप्रियाङेन्तंकण्ठंपातुनमोऽन्तकम् ओं रां रासेश्वरीङेन्तंस्कन्धंपातुनमोऽन्तकम् । ओंरांरासविलासिन्यैपृष्ठंपातुसदाऽवतु वृन्दावनविलासिन्यै स्वाहावक्षः सदावतु । तुलसीवनवासिन्यै स्वाहापातुनितम्बकम्

कृष्णप्राणाधिकाङेन्तं स्वाहान्तं प्रणवादिकम् । पादयुग्मञ्च सर्वाङ्गी सन्ततं पातुसर्वतः
राधा रक्षतु प्राच्याञ्च वह्नौ कृष्णप्रियाऽवतु । दक्षे रासेश्वरी पातु गोपीशा नैर्ऋतेऽवतु
पश्चिमे निर्गुणा पातु वायव्ये कृष्णपूजिता । उत्तरे सन्ततं पातु मूलप्रकृतिरीश्वरी ॥
सर्वेश्वरी सदैश्यानां पातु मां सर्वपूजिता । जले स्थले चान्तरिक्षे स्वप्ने जागरणेतथा
महाविष्णोश्च जननी सर्वतः पातु सन्ततम् । कवचं कथितं दुर्गे श्रीजगन्मङ्गलं परम् ।
यस्मै कस्मैनदातव्यं गूढ़ाद् गूढ़तरं परम् । तव स्नेहान्मयाख्यातं प्रवक्तव्यंन कस्यचित्
गुरुमभ्यर्च्य विधिवद्वस्त्रालङ्कारचन्दनैः । कण्ठे वा दक्षिणेवाहौ धृत्वा विष्णुसमोभवेत्
शतलक्षजपेनैव सिद्धञ्च कवचं भवेत् । यदि स्यात् सिद्धकवचो न दग्धो वह्निनाभवेत्
एतस्मात्कवचाद् दुर्गे राजादुर्य्योधनःपुरा । विशारदोजलस्तम्भेवह्निस्तम्भेचनिश्चितम्
मया सनत्कुमाराय पुरा दत्तञ्च पुष्करे । सूर्य्यपर्वणि मेरौ च स सान्दीपनये ददौ ॥

वलाय तेन दत्तञ्च ददौ दुर्य्योधनाय सः ।
कवचस्य प्रसादेन जीवन्मुक्तो भवेन्नरः ॥४६॥

नित्यं पठति भक्त्येदं तन्मन्त्रोपासकश्चयः । विष्णुतुल्योभवेन्नित्यंराजसूयफलंलभेत् ॥
स्नानेन सर्वतीर्थानां सर्वदानेन यत् फलम् । सर्वव्रतोपवासे चपृथिव्याश्चप्रदक्षिणे॥५१
सर्वयज्ञेषु दीक्षायां नित्यञ्च सत्यरक्षणे । नित्यं श्रीकृष्णसेवायांकृष्णनैवेद्यभक्षणे ॥५२
पाठे चतुर्णां वेदानां यत्फलञ्च लभेन्नरः । तत्फलं लभते नूनं पठनात् कवचस्य च ॥
राजद्वारे श्मशाने च सिंहव्याघ्रान्विते वने । दावाग्नौ संकटेचैव दस्युचौरान्विते भये ॥
कारागारे विपद्ग्रस्ते घोरेचदृढ़बन्धने । व्याधियुक्तोभवेन्मुक्तोधारणात्कवचस्यच ॥
इत्येतत्कथितं दुर्गे तवैवेदं महेश्वरि । त्वमेव सर्वरूपा मां माया पृच्छसि मायया॥५६

श्रीनारायण उवाच ।

इत्युक्त्वाराधिकाख्यानंस्मारंस्मारञ्चमाधवम् । पुलकाङ्कितसर्वांगःसाश्रुनेत्रोवभूवसः ॥
न कृष्णसदृशो देवो न गंगासदृशीसरित् । नपुष्करात्समंतीर्थंनाश्रमोब्राह्मणात् परः ॥
परमाणु परं सूक्ष्मं महाविष्णोः परो महान् । नभःपरञ्चविस्तीर्णंयथानास्त्येवनारद ॥

यथा न वैष्णवात् ज्ञानी योगीन्द्रः शङ्करात् परः ।

कामक्रोधलोभमोहा जितास्तेनैव नारद ॥६०॥
स्वप्ने जागरणे शश्वत् कृष्णध्यानरतः शिवः ।
यथा कृष्णस्तथा शम्भुर्न भेदो माधवेशयोः ॥६१॥

यथा शम्भुर्वैष्णवेषु यथा देवेषु माधवः । तथेदं कवचं वत्स कवचेषु प्रशस्तकम् ॥६२
शिरिति मंगलार्थश्च वकारोदातृवाचकः । मंगलानां प्रदाता यः सशिवःपरिकीर्त्तितः ॥
नराणां सन्ततं विश्वे शं कल्याणं करोतियः । कल्याणंमोक्षवचनंसएवशङ्करःस्मृतः ॥
ब्रह्मादीनां सुराणाञ्च मुनीनां वेदवादिनाम् । तेषाञ्च महतां देवो महादेवःप्रकीर्त्तितः ॥
महती पूजिता विश्वे मूलप्रकृतिरीश्वरी । तस्याः देव पूजितश्च महादेवः स च स्मृतः॥
विश्वस्थानाञ्च सर्वेषां महतामीश्वरः स्वयम् । महेश्वरश्च तेनेमं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥

हे ब्रह्मपुत्र धन्योऽसि यद्गुरुश्च महेश्वरः ।
श्रीकृष्णभक्तिदाता यो भवान् पृच्छति माञ्च किम् ॥६८॥

इति ब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारद संवादे प्रकृतिखण्डे राधिकोपाख्यानं नाम षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

दुर्गोपाख्यानम् ।

नारद उवाच ।

सर्वाख्यानं श्रुतं ब्रह्मन्नतीव परमाद्भुतम् । अधुना श्रोतुमिच्छामिदुर्गोपाख्यानमुत्तमम् ॥
दुर्गा नारायणीशाना विष्णुमायाशिवासती । नित्यासत्याभगवतीसर्वाणीसर्वमंगला ॥
अम्बिका वैष्णवी गौरी पार्वतीचसनातनी । नामानिकौथमोक्तानिसर्वेषांशुभदानिच ॥
अर्थं षोड़शनाम्नां च सर्वेषामीप्सितं वरम् । ब्रूहि वेदविदां श्रेष्ठ वेदोक्तंसर्वसम्मतम् ॥
केन वा पूजिता साद्यौ द्वितीये केन वा पुरा । तृतीये वा चतुर्थे वा केनसर्वप्रपूजिता ॥

नारायण उवाच ।

अर्थं षोड़शनाम्नाञ्च विष्णुर्वेदे चकारसः । पुनःपृच्छसिज्ञात्वात्वंकथयामियथागमम् ॥
दुर्गो-दैत्ये महाविघ्ने भवबन्धेचकर्म्मणि । शोके दुःखे च नरके यमदण्डेच जन्मनि ॥
महाभयेऽतिरोगेचाप्याशब्दोहन्तृवाचकः । एतान्हन्त्येवयादेवीसादुर्गा परिकीर्त्तिता ॥
यशसा तेजसा रूपैर्नारायणसमा गुणैः । शक्तिर्नारायणस्येयं तेन नारायणी स्मृता ॥
ईशानः सर्वसिद्ध्यर्थेचाशब्दोदातृवाचकः । सर्वसिद्धिप्रदात्रीयासापीशानाप्रकीर्त्तिता ॥

सृष्टा माया पुरा सृष्टौ विष्णुना परमात्मना ।
मोहितं मायया विश्वं विष्णुमाया प्रकीर्त्तिता ॥११॥
शिवे कल्याणरूपा च शिवदा च शिवप्रिया ।
प्रिये दातरि चा शब्दो शिवा तेन प्रकीर्त्तिता ॥१२॥

सद्बुद्ध्यधिष्ठातृदेवी विद्यमाना युगे युगे । पतिव्रतासुशीलाचसासतीपरिकीर्त्तिता ॥
यथा नित्योहि भगवान् नित्या भगवती तथा । स्वमायया तिरोभूता तत्रेशे प्राकृतेलये ॥
आब्रह्मस्तम्बपर्य्यन्तं सर्वं मिथ्यैवकृत्रिमम् । दुर्गासत्यस्वरूपासाप्रकृतिर्भगवान्यथा ॥
सिद्धैश्वर्य्यादिकं सर्वं यस्यामस्ति युगे युगे । सिद्धादिकेभगोज्ञेयस्तेनभगवतीस्मृता ॥
सर्वान्मोक्षंप्रापयतिजन्ममृत्युजरादिकम् । चराचरांश्चविश्वस्थान्सर्वाणीतेनकीर्त्तिता ॥
मंगलं मोक्षवचनं चा शब्दोदातृवाचकः । सर्वान्मोक्षान्यादद्दातिसाएव सर्वमंगला ॥
हर्षे सम्पदि कल्याणे मंगलं परिकीर्त्तितम् । तान् ददाति या देवीसाएव सर्वमंगला ॥
अम्बेति मातृवचनो वन्दने पूजने सदा । पूजिता वन्दिता माता जगतांतेन साम्बिका ॥
विष्णुभक्ताविष्णुरूपाविष्णोःशक्तिस्वरूपिणी । सृष्टौचविष्णुनासृष्टावैष्णवीतेनकीर्त्तिता

गौरः पीते च निर्लिप्ते परे ब्रह्मणि निर्म्मले ।
तस्यात्मनः शक्तिरियं गौरी तेन प्रकीर्त्तिता ॥२२॥
गुरुः शम्भुश्च सर्वेषां तस्य शक्तिः प्रिया सती ।
गुरुः कृष्णश्च तन्माया गौरी तेन प्रकीर्त्तिता ॥२३॥

तिथिभेदे सर्वभेदे कल्पभेदेप्रभेदतः । ख्यातौ तेषु च विख्यातापार्वतीतेन कीर्त्तिता ॥२४॥

महोत्सवविशेषे च पर्वन्निति प्रकीर्त्तिता ।
तस्याधिदेवी या सा च पार्वती परिकीर्त्तिता ॥२५॥
पर्वतस्य सुता देवी साविर्भूता च पर्वते । पर्वताधिष्ठातृदेवि पार्वती तेन कीर्त्तिता ॥
सर्वकाले सना प्रोक्ता विद्यमाने तनीति च । सर्वत्र सर्वकाले चविद्यमाना सनातनी ॥
अर्थः षोड़शनाम्नाञ्च कीर्त्तितश्च महामुने । यथागमञ्च वेदोक्तोपाख्यानञ्च निशामय ॥
प्रथमे पूजिता सा च कृष्णेन परमात्मना । वृन्दावने चसृष्ट्यादौगोलोकेरासमण्डले ॥
मधुकैटभभीते च ब्रह्मणा सा द्वितीयतः । त्रिपुरप्रेरितेनैव तृतीये त्रिपुरारिणा ॥३०॥
भ्रष्टश्रिया महेन्द्रेण शापाद् दुर्वाससः पुरा । चतुर्थे पूजिता देवीभक्त्याभगवती सती ॥
तदा मुनीन्द्रैः सिद्धेन्द्रैर्देवैश्च मुनिपुङ्गवैः । पूजिता सर्वविश्वेषु वभूव सर्वतः सदा ॥
तेजःसु सर्वदेवानां साविर्भूता पुरा मुने । सर्वेदेवा ददुस्तस्यै शस्त्राणि भूषणानि च ॥
दुर्गादयश्च दैत्याश्च निहता दुर्गया तया । दत्तं स्वराज्यं देवेभ्यो वरञ्चयदभीप्सितम् ॥
कल्पान्तरे पूजिता सा सुरथेन महात्मना । राज्ञा मेधसशिष्येणमृण्मय्याञ्च सरित्तटे ॥
मेषादिभिश्च महिषैः कृष्णसारैश्चगण्डकैः । छागै रिक्षुककुष्माण्डैःपक्षिभिर्वलिभिर्मुने ॥
वेदोक्तानि व दत्वैवमुपचाराणि षोड़श । ध्यात्वा च कवचंधृत्वासंपूज्यच विधानतः॥
राजा कृत्वा परीहारं वरं प्राप यथेप्सितम् । मुक्तिं संप्राप वैश्यश्चसंपूज्यच सरित्तटे ॥
तुष्टाव राजा वैश्यश्च साश्रुनेत्रःपुटाञ्जलिः । विससर्ज मृण्मयीं तां गभीरेनिर्मले जले ॥
मृण्मयीं तादृशीं दृष्ट्वा जलधौतां नराधिपः । रुरोद च तदा वैश्यस्ततःस्थानान्तरंययौ ॥
त्यक्त्वा देहञ्च वैश्यश्च पुष्करे दुष्करं तपः ॥४१॥
कृत्वा जगाम गोलोकंदुर्गादेवीवरेणसः । राजाययौस्वराज्यञ्चपूज्योनिष्कण्टकंबली ॥
भोगञ्च बुभुजे भूपः षष्टिवर्षसहस्रकम् । भार्य्यां स्वराज्यंसंन्यस्यपुत्रेच कालयोगतः ॥
मनुर्वभूव सावर्णिस्तप्त्वा च पुष्करे तपः । इत्येवं कथितं वत्स समासेन यथागमम् ॥
दुर्गाख्यानं मुनिश्रेष्ठ किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥४५॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारद संवादे दुर्गोपाख्यानं

नाम सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

दुर्गोपाख्याने-तारोपाख्यानम् ।

नारद उवाच ।

कस्य वंशोद्भवो राजासुरथोधर्म्मिणांवरः । कथंसंप्रापज्ज्ञानञ्चमेधसाद्ज्ञानिनां वरात् ॥
कस्य वंशोद्भवो ब्रह्मन् मेधसो मुनिसत्तमः । बभूव कुत्र संवादो नृपस्य मुनिना सह ॥
बभूव कुत्र साक्षाद्वा भगवन् नृपवैश्ययोः । व्यासेन श्रोतुमिच्छामि वद वेदविदांवर॥३

नारायण उवाच ।

अत्रिश्च ब्रह्मणः पुत्रस्तस्य पुत्रोनिशाकरः । स च कृत्वा राजसूयंद्विजराजोबभूव ह ॥४
गुरुपत्न्याञ्च तारायां तस्याभूच्च वुधः सूतः । बुधपुत्रस्तु चैत्रश्चतत् पुत्रःसुरथःस्मृतः ॥

नारद उवाच ।

गुरुपत्न्याञ्च तारायां बभूव तत् सूतः कथम् । अहो व्यतिक्रमं ब्रूहि वेदस्यचमहामुने ॥

नारायण उवाच ।

सम्पन्मत्तो महाकामी ददर्शजाह्नवीतटे । तारां सुरगुरोः पत्नीं धर्म्मिष्ठाञ्च पतिव्रताम् ॥
सुस्नातांसुन्दरींरम्यांपीनोन्नतपयोधराम् । सुश्रोणींसुनितम्बाञ्चमध्यक्षीणांमनोहराम् ॥
सुदतीं कोमलाङ्गीञ्च नवयौवनसंयुताम् । सूक्ष्मवस्त्रपरीधानां रत्नभूषणभूषिताम् ॥६॥
कस्तूरीविन्दुनासार्द्धमधश्चन्दनविन्दुना । सिन्दूरविन्दुनाचारुभालमध्यस्थलोज्ज्वलाम्॥
वायुनाधोवस्त्रहीनांसकामांरक्तलोचनाम् । शरत्पार्वणचन्द्रास्यांपक्वविम्बाधरांवराम् ॥
सस्मितांनम्रवक्त्राञ्चलज्जयाचन्द्रदर्शनात् । गच्छन्तींस्वगृहंहर्षात्गजेन्द्रमन्दगामिनीम् ॥
तां दृष्ट्वामन्मथाक्रान्तंचन्द्रोलज्जांजहौमुने । पुलकाङ्कितसर्वाङ्गःसकामस्तामुवाच स ॥

चन्द्र उवाच ।

योषिच्छ्रेष्ठे क्षणं तिष्ठ वरिष्ठे रसिकासु च ।
सुविदग्धे विदग्धानां मनो हरसि सन्ततम् ॥११॥

निषेव्य प्रकृतिं जन्मसहस्रं कामसागरे । तपः फलेन त्वां प्राप बृहच्छ्रोणिं बृहस्पतिः ॥
अहो तपस्विना सार्द्धमविदग्धेन वेधसा । योजिता त्वं रसवतीशश्वत्कामातुरावरा ॥
किंवा सुखञ्च विज्ञातमविज्ञेषु समागमे । विदग्धाया विदग्धेन संगमः सुखसागरः ॥

कामेन कामिनी त्वञ्च दग्धासि व्यर्थमीश्वरि ।
कर्मणोरात्मदोषाद्वा को जानाति मनस्त्रियाः ॥१८॥

दिने दिने वृथा याति दुर्लभं नवयौवनम् । नवीनयौवनस्थाया वृद्धेन स्वामिना तव ॥
शश्वत्तपस्यायुक्तश्चसकृष्णमात्मनीप्सितम् । स्वप्नेजागरणेवापिध्यायतेचबृहस्पतिः ॥

सर्वकामरसज्ञा त्वं निष्कामं काममीप्सितम् ।
कामुकी ध्यायते शश्वद्यूना शृंगारमात्मनि ॥२१॥
अन्यश्च त्वन्मनः कामोभिन्नं त्वद्भर्त्तुरीप्सितम् ।
का प्रीतिः संगमे कान्ते द्वयोर्विषयभिन्नयोः ॥२२॥

वासन्तीपुष्पतल्पे च गन्धचन्दनचर्चिते । वसन्ते मां गृहीत्वा च मोदस्व माधवीवने ॥
निर्जने चन्दनवने सुगन्धिपुष्पचर्चिते । भवती युवती भाग्यवती तत्रैव मोदताम् ॥२४॥
चन्दने चम्पकवने शीतचम्पकवायुना । रम्ये चम्पकतल्पे च क्रीड़ां कुरु मया सह॥२५॥
इत्युक्त्वा मदनोन्मत्तो मदनाधिकसुन्दरः । पपात चरणे देव्या मन्दो मन्दाकिनीतटे ॥
निरुद्धमार्गा चन्द्रेण शुष्ककण्ठौष्ठतालुका । अभीतोवाच कोपेनर क्तपङ्कजलोचना॥२७

तारोवाच ।

धिक् त्वां चन्द्र तृणं मन्ये परस्त्रीलम्पटं शठम् ।
अत्रेरभाग्यात् त्वं पुत्रो व्यर्थन्ते जन्म जीवनम् ॥२८॥

अरे कृत्वा राजसूयमात्मानं मन्यसे बली । बभूव पुण्यं ते व्यर्थं विप्रस्त्रीषुचयन्मनः ॥
यस्य चित्तं परस्त्रीषुसोऽशुचिःसर्वकर्मसु । नकर्मफलभाक्पापीनिन्द्योविश्वेषुसर्वतः ॥
हंसिचेन्मेसतीत्वञ्चयक्ष्मग्रस्तोभविष्यसि । अत्युच्छ्रितोनिपतनंप्राप्नोतीतिश्रुतौश्रुतम् ॥
दुष्टानां दर्पहा कृष्णो दर्पन्ते निहनिष्यति । त्यजमांमातरं वत्स यदि ते शं भविष्यति॥
इत्युक्त्वा तारका साध्वी रुरोद च मुहुर्मुहुः । चकार साक्षिणं धर्मं सूर्यं वायुं हुताशनम् ॥

ब्रह्माणं परमात्मानमाकाशं पवनं धराम् । दिनंरात्रिञ्चसन्ध्याञ्चसर्वंसुरगणंमुने ॥३५॥
तारकावचनं श्रुत्वा न भीतः स चुकोपह । करे धृत्वा रथेतूर्णंस्थापयामाससुन्दरीम् ॥
रथञ्च चालयामास मनोयायी मनोहरम् । मनोहरां गृहीत्वा तां स च रेमे मनोहरम्
विस्यन्दके सुरवने चन्दने पुष्पभद्रके । पुष्करे च नदीतीरे पुष्पिते पुष्पकानने ॥३७॥
सुगन्धिपुष्पतल्पे च पुष्पचन्दनवायुना । निर्जने मलयद्रोण्यां स्निग्धचन्दनचर्चिते ॥३८
शैले शैले नदे नद्यां शृंगारं कुर्वतस्तयोः । गतं वर्षशतं हर्षान्मुहूर्त्तमिव नारद ॥३९॥
बभूव शरणापन्नो भीतो दैत्येषु चन्द्रमाः । तेजस्विनि तथा शुक्रेतेषाञ्चवलिनां गुरौ ॥
अभयञ्च ददौ तस्मै कृपया भृगुनन्दनः । गुरुं जहास देवानां सुविपक्षं बृहस्पतिम् ॥
सभायां जहसुर्हृष्टा वलिनो दितिनन्दनाः । अभयञ्च ददुस्तस्मै भीताय च कलङ्किने ॥
सती सत्वीत्व ध्वंसेन पापेन चन्द्रमण्डले । बभूव शशरूपञ्च कलङ्कं निर्मले मलम् ॥
उवाच तं महाभीतं शुक्रो वेदविदाम्वरः । हितं तथ्यं वेदयुक्तं परिमाणसुखावहम् ॥४४

शुक्र उवाच ।

त्वमहो ब्रह्मणः पौत्रोऽप्यत्रेर्भगवतः सुतः । दुर्नीतं कर्म ते पुत्र नीचवन्न यशस्करम् ॥
राजसूय पुण्यफले निर्मलेकीर्त्तिमण्डले । सुधाराशौ सुराविन्दुरूपमङ्कमुपार्जितम् ॥४६
त्यज देव गुरोः पत्नीं प्रसूमिव महासतीम् । धर्मिष्ठस्य वरिष्ठस्य ब्राह्मणानां बृहस्पतेः ।
शम्भोः सुराणामीशस्य गुरु पुत्रस्य ब्रह्मणः । पौत्रस्याङ्गिरस शश्वज्ज्वलतो ब्रह्मतेजसा
शत्रोरपि गुणा वाच्या दोषा वाच्या गुरोरपि। इति सद्वंशजातानां स्वभावश्चसतामपि
स शत्रुर्मे सुरगुरुः परो विश्वे निशाकर । तथापि सहजाख्यानं वर्णितं धर्मसंसदि ॥

यत्र लोकाश्च धर्मिष्ठास्तत्र धर्मः सनातनः ॥५०॥

यतोधर्मस्ततः कृष्णो यतः कृष्णस्ततो जयः । गौरैकं पश्च च व्याघ्री सिंहीसत्तप्रसूयते
हिंसकाः प्रलयं यान्ति धर्मोरक्षतिधार्मिकम् । देवाश्च गुरुवो विप्राःशक्तायद्यपिरक्षितुम्
तथापि न हि रक्षन्ति धर्मघ्नं पापिनं जनम् । कुलटा विप्रपत्नीनां गमने सुरविप्रयोः ॥
ब्रह्महत्या षोड़शांशपातकञ्च भवेद्ध्रुवम् । तासामुपस्थितानाञ्च गमने तच्चतुर्थकम् ॥५४
विप्रपत्नी सतीनाञ्च गमनेन वलेन चेत् । ब्रह्महत्याशतं पापं भवेदेव श्रुतौ श्रुतम् ॥५५॥

धर्म्मञ्चर महाभाग ब्राह्मणीं त्यज साम्प्रतम् । कृत्वानुतापं पापाच्च निवृत्तिस्तु महाफला
उपायेन च ते पापं दूरीभूतं करोम्यहम् । शरणागतस्य भीतस्य मयि देवस्य धर्मतः ॥
शस्त्रहीनञ्च भीतञ्च दीनञ्च शरणार्थिनम् । यो न रक्षत्यधर्मिष्ठः कुम्भीपाके वसेद्ध्रुवम्
राजसूयशतानाञ्च रक्षिता लभते फलम् । परमैश्वर्य्ययुक्तश्च धर्मेण स भवेदिह ॥५६॥
इत्युक्त्वा स दैत्यगुरुःस्वर्गे मन्दाकिनीतटे । स्नात्वातां स्नापयामासविष्णुपूजाञ्चकारसः
विष्णुपादोदकं पुण्यं तन्नैवेद्यं शुभप्रदम् । गङ्गोदकञ्च पुण्यञ्च भोजयामास चन्द्रकम् ॥
क्रोड़े कृत्वा तु तं भीतं लज्जितं पापकर्म्मणा । कुशहस्त इत्युवाच स्मारंस्मारं हरिं मुने

शुक्र उवाच ।

यद्यस्ति मे तपः सत्यं सत्यं पूजाफलं हरेः । सत्यं व्रतफलञ्चैव सत्यं सत्यवचःफलम्
तीर्थस्नानफलं सत्यं सत्यं दानफलं यदि । उपवासफलं सत्यं पापान्मुक्तो भवान् भवेत्
त्रिसन्ध्याहीनं विप्रञ्च विष्णुपूजाविहीनकम् । तं गच्छतु महाघोरं चन्द्रपापं सुदारुणम्
स्वभार्य्यां वञ्चनं कृत्वा यः प्रयाति परस्त्रियम् । स यातु नरकं घोरंचन्द्रपापेनपातकी

वाचा वा ताड़येत् कान्तं दुःशीला दुर्मुखा च या ।
सा युगं चन्द्रपापेन यातु लालामुखं ध्रुवम् ॥ ६७ ॥

अनैवेद्यं वृथान्नञ्च यश्च भुङ्क्ते हरेर्द्विजः । स यातु कालसूत्रञ्च चन्द्रपापाच्चतुर्युगम् ।६८
अम्बुवाच्यां भूखननं करोति यो नराधमः । चन्द्रपापात् युगशतं कालसूत्रं स गच्छतु
स्वकान्तं वञ्चनं कृत्वा या याति परपूरुषम् । सा यातुवह्निकुण्डञ्च चन्द्रपापाच्चतुर्युगम्
कीर्त्तिं करोति रजसा परकीर्त्तिं विलुप्य च । स युगं चन्द्रपापेन कुम्भीपाकञ्चगच्छतु
पितरं मातरं भार्य्यां यो न पुष्णाति पातकी । स्वगुरुं चन्द्रपापेन यातुचाण्डालतांध्रुवम्
कुलटान्नमवीरान्नं ऋतुस्नातान्नमेव च । योऽश्नाति चन्द्रपापञ्च तं यातु पापिनं ध्रुवम्
स यातु तेन पापेनकुम्भीपाकंचतुर्युगम् । तस्मादुत्तीर्य्यचाण्डालीं योनिमाप्नोतिपातकी

दिवसे यो ग्राम्यधर्मं महापापी करोति च ।
यो गच्छेत् कामतः कामी गुर्विणीं वा रजस्वलाम् ॥७५॥

तं यातु चन्द्रपापञ्च महाघोरञ्च पापिनम् । स यातु तेन पापेन कालसूत्रं चतुर्युगम्

मुखंश्रोणींस्तनञ्चापि योपश्यतिपरस्त्रियाः । कामतः कामदग्धश्च तं यातुचन्द्रकल्मषम्
स यातु लालाभक्ष्यञ्च चन्द्रपापाच्चतुर्युगम् । तस्मादुत्तीर्य्यभवतुचाण्डालान्धोनपुंसकः
कुहूपूर्णेन्दुसंक्रान्त्यां चतुर्दश्यष्टमीषु च । मांसं मसूरं लकुचं यश्चभुङ्क्ते रवेर्दिने ॥७६॥
कुरुते ग्राम्यधर्म्मञ्च तं यातु चन्द्रकिल्विषम् । चतुर्युगं कालसूत्रं तेन पापेन गच्छतु ॥
तस्मादुत्तीर्य्य चाण्डालीं योनिमाप्नोति पातकी । सप्तजन्ममहारोगी दरिद्रः कुब्जएवच
एकादश्याञ्च यो भुङ्क्ते कृष्णजन्माष्टमीदिने । शिवरात्रौ महापापीतंयातु चन्द्रपातकम्
स यातु कुम्भीपाकञ्च यावदिन्द्राश्चतुर्दश । तेन पापेन प्राप्नोतु चाण्डालीं योनिमेव च ।
ताम्रस्थं दुग्धमाध्वीकमुच्छिष्टे घृतमेव च । नारिकेलोदकं कांस्ये दुग्धं स लवणं तथा
पीतशेषजलञ्चैव भक्षावशेषमोदनम् । ओदनमसकृद् भुङ्क्ते सूर्य्येनास्तं गते द्विजः ॥
तं यातु चन्द्रपापञ्च दुर्निवारञ्च दारुणम् । स यातु तेन पापेन चान्धकूपंचतुर्युगम् ।८६
स्वकन्याविक्रयी विप्रो देवलो वृषवाहकः । शूद्राणां शवदाही च तेषाञ्च सूपकारकः ॥
अश्वत्थतरुघाती च विष्णुवैष्णव निन्दकः । तं यातु चन्द्रपापञ्च दारुणं पापिनं भृशम्

स यातु तस्मात् पापाच्च तप्तशूर्मीञ्च पातकी ।
शश्वद्दग्धो भवतु स यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ ८६ ॥

तस्मादुत्तीर्य्यचाण्डालींयोनिंप्राप्नोतिपातकी । सप्तजन्म स चाण्डालोवृषश्चजन्मपञ्चच
गर्दभो जन्मशतकं शूकरो जन्मसप्त च । तीर्थध्वांङ्क्षो जन्मसप्त विट्कृमिर्जन्म पञ्च च

जलौका जन्मशतकं शुचिर्भवतु तत्परम् ॥६१॥

वृथा मांसं(तु)यो भुङ्क्ते स्वार्थपाकान्नमेव च । तददत्तं महापापी प्राप्नोतुचन्द्रपातकम्
स यातु चन्द्रपापेन चासीपत्रं चतुर्युगम् । ततो भवतु सर्पश्च पशुश्च सप्तजन्म च ॥६३

विप्रो वार्द्धुषिको यो हि योनिजीवी चिकित्सकः ।
हरेर्नाम्नाञ्च विक्रेता यश्च वा स्वाङ्गविक्रयी ॥ ६४ ॥

स्वधर्म्मकथकश्चैव यश्च स्वात्मप्रशंसकः । मसीजीवी धावकश्च कुलटापोष्य एव च ॥
तं यातु चन्द्रपापञ्च चन्द्रो भवतु विज्वरः । स यातु तेन पापेन शूलप्रोतं सुदारुणम्
ततो विद्धो भवतु स यावदिन्द्राश्चतुर्दश । ततो दरिद्रो रोगी च दीक्षाहीनो नरः पशुः

लाक्षामांसरसानाञ्च तिलानां लवणस्य च । अश्वानाञ्चैव लौहानां विक्रेतानरघातकः चौरश्च विप्रो घट्टीशस्तं यातु चन्द्रपातकम् । स यातु तेन पापेन क्षुरधारं सुदुःसहम् तत्र छिन्नो भवतु स यावदिन्द्रसहस्रकम् । तस्मादुत्तीर्य्य भवतु शृगालः सप्तजन्मसु। सप्तजन्म च मार्जारो महिषो जन्मपञ्चकम् । सप्तजन्म च भल्लूकः कुक्कुरो सप्तजन्मच मत्स्यश्च जन्मशतकं कर्कटी जन्मपञ्चकम् । गोधिका जन्मशतकं गर्दभः सप्तजन्मसु॥ सप्तजन्म च मण्डूकस्ततश्च मानवोऽधमः । चर्म्मकारश्च रजकस्तैलकारश्च वार्द्धकी॥

नाविकः शवजीवी च व्याधश्च स्वर्णकारकः ।
कुम्भकारो लौहकारस्ततः क्षत्रस्ततो द्विजः ॥ १०४ ॥

इतिचन्द्रंशुचिंकृत्वासमुवाचतुतारकाम् । त्यक्त्वा चन्द्रंमहासाध्विगच्छकान्तमितिद्विजः प्रायश्चित्तं विना पूता त्वमेव शुद्धमानसा । अकामा या बलिष्ठेन न स्त्री जारेण दुष्यति इत्येवमुक्त्वा शुक्रश्च चन्द्रश्च तारकांसतीम् । सस्मितांसस्मितञ्चैव चकारचशुभाभिपम्

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे दुर्गोपाख्यानं नामाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

एकोनषष्टितमोऽध्यायः

बृहस्पतेस्तारान्वेषणाय शिष्यप्रेषणम् ।

नारद उवाच ।

बृहस्पतिः किञ्चकार तारकाहरणान्तरे । कथं संप्राप तां साध्वीं तन्मे व्याख्यातुमर्हसि

श्रीनारायण उवाच ।

दृष्ट्वा विलम्बं तारायाः भ्रान्त्याश्चापि गुरुः स्वयम् ।
प्रस्थापयामास शिष्यमन्वेषार्थञ्च स्वर्णदीम् ॥२॥

शिष्यो गत्वा स्वर्णदीञ्च संप्राप्य लोकवक्त्रतः । रुदन्नुवाच स्वगुरुं तारकाहरणं मुने॥

श्रुत्वा सुरगुरुर्वार्तां शशिना च प्रियां हृताम् । मुहूर्त्तं प्राप मूर्च्छाञ्चततःसंप्राप चेतनाम्
रुरोदोच्चैः सशिष्यश्च हृदयेन विदूयता । शोकेन लज्जया विप्रो विललाप मुहुर्मुहुः ॥५॥

उवाच शिष्यान् सम्बोध्य नीतिञ्च श्रुतिसम्मताम् ।
साश्रुनेत्रः साश्रुनेत्रान् शोकार्त्तः शोककर्षितान् ॥६॥

वृहस्पतिरुवाच ।

हे वत्साः केन शप्तोऽहं न जाने कारणं परम् । दुःखं धर्म्मविरुद्धो यःसंप्राप्नोतिनसंशयः
यस्य नास्ति सतीभार्य्या गृहेषु प्रियवादिनी । अरण्यं तेन गन्तव्यं यथारण्यंतथागृहम्
भावानुरक्ता वनिता हृता यस्य च शत्रुणा । अरण्यं तेन गन्तव्यं यथारण्यं तथा गृहम्
सुशीला सुन्दरी भार्य्या गता यस्य गृहादहो । अरण्यं तेन गन्तव्यंयथारण्यं तथागृहम्
दैवेनापहृता यस्य पतिसाध्वी पतिव्रता । अरण्यं तेन गन्तव्यं यथारण्यं तथा गृहम् ॥
यस्य माता गृहे नास्ति गृहिणी वा सुशासिता । अरण्यं तेनगन्तव्यं यथारण्यंतथागृहम्
प्रियाहीनं गृहं यस्य पूर्णं द्रविणवन्धुभिः । अरण्यं तेन गन्तव्यं यथारण्यं तथा गृहम् ।
भार्य्याशून्या वनसमाः सभार्य्याश्चगृहा गृहाः । गृहिणी च गृहं प्रोक्तंन गृहं गृहमुच्यते
अशुचिः स्त्रीविहीनश्च दैवे पैत्र्ये च कर्मणि । यदह्ना कुरुते कर्म न तस्यफलभाग्भवेत्
दाहिकाशक्तिहीनश्च यथा मन्दोहुताशनः । प्रभाहीनो यथासूर्य्यः शोभाहीनो यथाशशी
शक्तिहीनो यथाजीवो यथाचात्मातनुंविना । विनाऽऽधारंयथाऽऽधेयोयथेशःप्रकृतिं विना
न च शक्तो यथा यज्ञः फलदां दक्षिणां विना । कर्मणाञ्च फलं दातुं सामग्रीमूलमेव च
विनास्वर्णंस्वर्णकारोयथाशक्तःस्वकर्मणि । यथाशक्तःकुलालश्चमृत्तिकाञ्चविनाद्विजाः
तथा गृही नशक्तश्च सन्ततं सर्वकर्मणि । भार्य्यामूलाक्रियाःसर्वाःभार्य्यामूलागृहास्तथा
भार्य्यामूलं सुखंसर्वंगृहस्थानां गृहे सदा । भार्य्यामूलः सदाहर्षो भार्य्यामूलञ्चमङ्गलम्
भार्य्यामूलञ्चसंसारोभार्य्यामूलञ्चसौरभम् । यथारथञ्च रथिनांगृहिणाञ्चतथागृहम्
सारथिस्तु यथा तेषां गृहिणाञ्च यथाप्रिया । सर्वरत्नप्रधाना च स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि ।
गृहीता सा गृहस्थेनैवेत्याह कमलोद्भवः । यथा जलं विना पद्मं पद्मं शोभा विना यथा
तथैव च गृहसुखं गृहिणां गृहिणीं विना । इत्येवमुक्त्वा स गुरुः प्रविवेश गृहं मुहुः ॥

गृहाद् बहिर्निःससार भूयोभूयः शुचान्वितः । मुहुर्मुहुश्च मूर्च्छांश्च चेतनां समवाप सः
भूयोभूयोरुरोदोच्चैः स्मारंस्मारं प्रियागुणान् । अथान्तरंमहाज्ञानी ज्ञानिभिश्चप्रबोधितः
सच्छिष्यैर्मुनिभिश्चान्यैः पुरन्दरगृहं ययौ । स गुरुः पूजितस्तेन चातिथ्येन मरुत्वता ॥
तमुवाच स्ववृत्तान्तं हृदि शल्यमिवाप्रियम् । वृहस्पतिवचःश्रुत्वा रक्तपङ्कजलोचनः ॥
तमुवाच महेन्द्रश्च कोपप्रस्फुरिताधरः ॥ ३० ॥

महेन्द्र उवाच ।

दूतानाञ्च सहस्रञ्च गच्छतु चारकर्मणि । अतीव निपुणं दक्षं तत्वप्राप्तिनिमित्तकम् ॥३१
यत्रास्ति पातकी चन्द्रो मन्मात्रातारया सह । गच्छामि तत्र सन्नद्धः सर्वैर्देवगणैःसह
त्यज चिन्तां महाभाग सर्वं भद्रं भविष्यति । भद्रबीजं दुर्गमिदं कस्य सम्पद्विपद्विना॥
इत्युक्त्वाच सुनाशीरो दूतानाञ्च सहस्रकम् । तूर्णं प्रस्थापयामास तत्कर्मनिपुणं मुने॥
ते दूताश्च वर्षशतं ययुर्निर्जनमेव च । सुदुर्लङ्घ्यश्च विश्वेषु भ्रमित्वा शक्रमाययुः ॥३५
चन्द्रश्च शुक्रभवने तत्प्रपन्नश्च विज्वरम् । दृष्ट्वा सतारकं भीतं कथयामासुरीश्वरम्॥
इति श्रुत्वा सुनाशीरो नतवक्त्रो वृहस्पतिम् । उवाच शोकसन्तप्तो हृदयेन विदूयता॥

महेन्द्र उवाच ।

शृणु नाथ प्रवक्ष्यामि परिणामसुखावहम् । भयं त्यज महाभाग सर्वं भद्रं भविष्यति॥
त्वयानहि जितः शुक्रो न मया दितिनन्दनः । एतदालोच्य चन्द्रश्च जगाम शरणं कविम्
गच्छ शीघ्रं ब्रह्मलोकमस्माभिः सार्द्धमेवच । ब्रह्माणासहयास्यामः कैलासे शङ्करं वयम्
इत्युक्त्वा तु महेन्द्रश्च सन्तप्तो गुरुणा सह । जगाम ब्रह्मलोकञ्च सुखदृश्यं निरामयम्॥
तत्र दृष्ट्वा च ब्रह्माणं ननाम गुरुणा सह । प्रोवाच सर्ववृत्तान्तं देवानामीश्वरं परम्॥
महेन्द्रवचनं श्रुत्वा जहास कमलोद्भवः । हितं तथ्यं नीतिसारमुवाच विनयान्वितः॥

ब्रह्मोवाच ।

यो ददातिपरस्मै च दुःखमेव च सर्वतः । तस्मै ददाति दुःखञ्चशास्ता कृष्णःसनातनः॥
अहं स्रष्टाच सृष्टेश्च पाता विष्णुः सनातनः । तथा रुद्रश्च संहर्त्ता ददाति च शिवंशिवः॥
निरन्तरं सर्वसाक्षी धर्म्मश्च सर्वकारणः । सर्वे देवा विषयिणः कृष्णाज्ञापरिपालकाः॥

बृहस्पतिरुतथ्यश्च संवर्त्तश्च जितेन्द्रियः। त्रयश्चाङ्गिरसः पुत्रा वेदवेदाङ्गपारगाः ॥४७॥
संवर्त्ताय कनिष्ठाय न च किञ्चिद्ददौ गुरुः। स बभूव तपस्वी चध्यायते कृष्णमीश्वरम्॥

उतथ्यस्य मध्यमस्य भार्य्याञ्च गुर्विणीं सतीम् ॥
जहार कामतस्ताञ्च भ्रातृजायामकामुकीम् ॥ ४६ ॥

यो हरेद् भ्रातृजायाञ्च कामी कामदकामुकीम् ।ब्रह्महत्यासहस्रञ्च लभते नात्रसंशयः॥
स याति कुम्भीपाकञ्च यावच्चन्द्रदिवाकरौ। भ्रातृजायापहारी च मातृगामी भवेन्नरः॥
तस्मादुत्तीर्य्यपापीचविष्ठायां जायतेकृमिः। वर्षकोटिसहस्राणितत्र स्थित्वा च पातकी
ततो भवेन्महापापी वर्षकोटिसहस्रकम्। पुंश्चलीयोनिगर्त्तेच कृमिश्चैव पुरन्दर ॥५३॥
गृध्रः कोटिसहस्राणि शतजन्मानि कुक्कुरः। भ्रातृजायापहरणाच्छतजन्मानि शूकरः॥५४
यो न ददाति दायञ्च वलिष्ठो दुर्वलाय च। सयाति कुम्भीपाकञ्च यावच्चन्द्रदिवाकरौ
मा भुङ्क्ते क्षीयते कर्म्म कल्पकोटिशतैरपि। अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्
जगद्गुरोः शिवस्यापि गुरुपुत्रो बृहस्पतिः। ज्ञातं करोतु वृत्तान्तमीश्वरं वलिनांवरम्
सर्वे समूहाः देवानां सन्नद्धाश्च सवाहनाः। मध्यस्था मुनयश्चैव तिष्ठन्तु नर्म्मदातटे॥

पश्चादहञ्च यास्यामि पुण्यञ्च नर्म्मदातटम्।
गुरुस्तत् गुरुपुत्रोऽपि शीघ्रं यातु शिवालयम् ॥ ५६ ॥

महेन्द्र उवाच।

कथं वा वेदकर्त्तुश्च सिद्धानां योगिनां गुरोः। मृत्युञ्जयस्यशम्भोश्च गुरुपुत्रो बृहस्पतिः
अङ्गिरास्तवपुत्रश्च तत् पुत्रश्चबृहस्पतिः। त्वत्तोज्ञानी महादेवः कथं शिष्यो गुरोःपितुः

ब्रह्मोवाच।

कथेयमतिगुप्ता च पुराणेषु पुरन्दर। इमां पुरा प्रवृत्तिञ्च कथयामि निशामय ॥६२॥
मृतवत्सा कर्म्मदोषाद्भार्य्याचाङ्गिरसः पुरा। व्रतं चकार साचैवं कृष्णस्य परमात्मनः॥
व्रतं पुंसवनं नाम वर्षमेकं चकार सा। सनत्कुमारो भगवान् कारयामास तां व्रतम्॥
तदागत्य च गोलोकात् परमात्मा कृपामयः। स्वेच्छामयं परं ब्रह्म भक्तानुग्रहविग्रहः॥
सुव्रताञ्चसलक्ष्मीकां तामुवाचकृपानिधिः। प्रणतांसाश्रुनेत्राञ्च विनीताञ्चतयास्तुतः

श्रीकृष्ण उवाच ।

गृहाणेदं व्रतफलं मम तेजःसमन्वितम् । भुङ्क्ष्व मद्वरतः पुत्रो भविष्यति मदंशतः ६७
पतिर्गुरुश्च देवानां वृहतां ज्ञानिनां वरः । पुत्रस्ते भविता साध्वि मद्वरेण वृहस्पतिः ६८
मद्वरेण भवेद्योहि स च मद्वरपुत्रकः । त्वद्गर्भे मम पुत्रोऽयं चिरजीवी भविष्यति ॥६९॥
वरजो वीर्य्यजश्चैव क्षेत्रजः पालकस्तथा । विद्यामन्त्रसुतौचैव गृहीतः सप्तमः सुतः ॥
इत्युक्त्वाराधिकानाथःस्वलोकञ्चजगामसः । श्रीकृष्णवरपुत्रोऽयं ज्ञानीश्वरगुरुःस्वयम्
मृत्युञ्जयं महाज्ञानं शिवाय प्रददौ पुरा ॥७१॥
दिव्यं वर्षत्रिलक्षञ्च तपश्चक्रे हिमालये । स्वयोगं ज्ञानमखिलं तेजः स्वात्मसमं परम्॥
स्वशक्तिं विष्णुमायाञ्चस्वांशञ्च वाहनं वृषम् ॥७२॥
स्वशूलञ्च स्वकवचं स्वमन्त्रं द्वादशाक्षरम्। कृपामयः स्तुतस्तेन श्रीकृष्णश्च परात्परः ॥
शिवलोके शिवा सा च विष्णुमाया शिवप्रिया ॥७३॥
शक्तिर्नारायणस्येयं साविर्भूता सनातनी । तेजःसु सर्वदेवानां साविर्भूता सनातनी ॥
जघान दैत्यनिकरं देवेभ्यः प्रददौ पदम् । कल्पान्ते दक्षकन्याच सामूलप्रकृतिः सती ॥
पितृयज्ञेतनुं त्यक्त्वा योगेनसिद्धयोगिनी । वभूव शैलकन्यासा साध्वी च भर्तृनिन्दया
कालेन कृष्णतपसा शङ्करं प्रापसुन्दरी । श्रीकृष्णोहिगुरुः शम्भोः परमात्मापरात्परः॥
कृष्णस्य वरपुत्रोऽयं स्वयमेव वृहस्पतिः । अतो हेतोः सुरगुरुर्गुरुपुत्रः शिवस्य च ।७८
इत्येवं कथितं सर्वमतिगुह्यं पुरातनम् । इति प्रधानसम्बन्धः श्रुतश्च कथितो मया ॥
पारस्परिकमन्यञ्चकथयामि निशामय । दुर्वासा गरुड़श्चैव शङ्करांशःप्रतापवान् ॥८०॥
शिष्यौचाङ्गिरसस्तौद्वौगुरुपुत्रोऽथवाततः । प्राणाधिकायांसत्याञ्चमृतायांदक्षशापतः।
स्वज्ञानंस्वञ्चभगवान्विसस्मार स्वमोहतः । स्मरणंकारयामासकृष्णेनप्रेरितोऽङ्गिराः
अतो हेतोर्गुरुश्चैव शिवस्य मत्सुतश्च सः । शीघ्रं गच्छतु कैलासं स्वयमेव वृहस्पतिः॥
त्वं गच्छ तत्र सन्नद्धः सदेवो नर्म्मदातटम् । इत्युक्त्वा जगतां धाता विरराम च नारद॥
गुरुर्ययौ च कैलासं महेन्द्रो नर्म्मदातटम् ॥ ८५ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे प्रकृतिखण्डे दुर्गोपाख्याने एकोनषष्टितमोऽध्यायः ।

षष्टितमोऽध्यायः

बृहस्पतेः शिवपुरगमनम् ।

नारद उवाच ।

नारायण महाभाग वेदवेदाङ्गपारग । निपीतञ्च सुधाख्यानं तन्मुखेन्दुविनिःसृतम् ॥
अधुनाश्रोतुमिच्छामि किमुवा च बृहस्पतिः । शिवञ्चगत्वा कैलासंदातारंसर्वसम्पदाम्
जगत्कर्त्ता विधाताच किंवा तं प्रत्युवाचसः । एतत् सर्वं समालोच्य वद वेदविदांवर

नारायण उवाच ।

शीघ्रं गत्वा च कैलासं भ्रष्टश्रीः शङ्करं गुरुः । प्रणम्य तस्थौ पुरतो लज्जामलिनविग्रहः॥
दृष्ट्वा गुरुसुतं शम्भुरुदतिष्ठत् कुशासनात् । आलिङ्गनं ददौ तस्मै शीघ्रं मङ्गलमाशिषम् ॥
स्वासने वासयित्वा च पप्रच्छ कुशलं वचः । उवाचमधुरं वाक्यं भीतं तं लज्जितं शिवः

श्रीशङ्कर उवाच ।

कथमेवं विधस्त्वञ्च दुःखी मलिनविग्रहः । साश्रुनेत्रो लज्जितश्च भ्रातस्तत् कारणं वद॥
किंवातपस्याहीनाते सन्ध्याहीनाऽथवा मुने । किंवा श्रीकृष्णसेवाचविहीना दैवदोषतः
किंवा गुरौ भक्तिहीनोऽभीष्टदेवेऽथवा गुरौ । किंवा न रक्षितुं शक्तःप्रपन्नं शरणागतम्॥

किं वाऽतिथिस्ते विमुखः किंवा पोष्या बुभुक्षिताः ।
किंवा स्वतन्त्रा स्त्री वा ते किंवा पुत्रोऽवचस्करः ॥१०॥

सुशासितोनशिष्योवाकिंभृत्याश्चोत्तरप्रदाः । किंवातेविमुखालक्ष्मीःकिंवारुष्टोगुरुस्तव
गरिष्ठश्च वरिष्ठश्च शश्वत् सन्तुष्टमानसः । गुरुस्तव वशिष्ठश्च प्रेष्ठः श्रेष्ठः सतामहो ॥
किंवारुष्टोऽभीष्टदेवः किंवारुष्टाश्चब्राह्मणाः । किंवारुष्टावैष्णवाश्च किंवातेप्रबलोरिपुः
किंवा ते बन्धुविच्छेदो विग्रहोबलिना सह । किंवा पदं परग्रस्तं किंवा बन्धुधनञ्चवा।
केनते वा कृता निन्दा खलेन पापिना मुने । केन वा त्वं परित्यक्तः प्रियेणबान्धवेन वा
बन्धुस्त्यक्तस्त्वया किंवावैराग्येण क्रुधाऽथवा । किंवातीर्थेन हि स्नातंन दत्तंपुण्यवासरे

गुरुनिन्दाबन्धुनिन्दा खलवक्त्रात् श्रुताऽथवा । गुरुनिन्दा हि साधूनां मरणादतिरिच्यते
असद्वंशप्रजातानां खलानां निन्दनं तथा । दुःशीलमेवमसतां शश्वन्नारकिणामिह ॥१८
परप्रशंसकाः सन्तः पुण्यवन्तो हि भारते । शश्वन्मङ्गलयुक्ताश्च राजन्ते मनसा सदा॥
पुत्रे यशसि तोये च समृद्धे च पराक्रमे । ऐश्वर्य्ये वा प्रतापे च प्रजाभूमिधनेषु च॥
वचनेषु च वुद्धौ च स्वभावे च चरित्रतः । आचारे व्यवहारे च ज्ञायते हृदयं नृणाम्॥२१
यादृग् येषाञ्चहृदयंतादृक् तेषाञ्चमङ्गलम् । यादृग् येषांपूर्वपुण्यं तादृक् तेषाञ्च मानसम्॥
इत्युक्त्वा च महादेवो विरराम स्वसंसदि । तमुवाच महावक्ता स्वयमेव वृहस्पतिः॥

वृहस्पतिरुवाच ।

अकथ्यमेव वृत्तान्तं कथयामि किमीश्वर । लोकाः कर्मवशीभूतास्तत्कर्म यत्कृतं पुरा॥
स्वकर्मणां फलं भुङ्क्ते जन्तुर्जन्मनि जन्मनि । नहि नष्टश्चतत्कर्म विना भोगाच्चभारते
सुखं दुःखं भयं शोकं नराणां भारते प्रभो । केचिद्वदन्तीह भवे स्वकृतेन च कर्मणा॥
केचिद्वदन्ति दैवेन स्वभावेनेति केचन । त्रिविधाश्च मता वेदे वेदवेदाङ्गपारग ॥ २७॥
स्वयश्चकर्मजनकस्तत्कर्म दैवकारणम् । स्वभावो जायतेनृणाम् स्वात्मनः पूर्वकर्मणः
स्वकर्मणाञ्च सर्वेषां जन्तूनां प्रतिजन्मनि । सुखंदुःखं भयं शोकं स्वात्मनश्च प्रजायते
स्वकर्मफलभोक्ताच जीवोहिसगुणःसदा । आत्मा भोजयितासाक्षी निर्गुणःप्रकृतेःपरः
स एवात्मा सर्वसेव्यः सर्वेषाञ्च फलप्रदः । स च सृजति दैवञ्च स्वभावं कर्म एवच
कर्मणाच नृणां लज्जा प्रशंसा च प्रफुल्लता । लज्जावीजञ्च वृत्तान्तं तथापिकथयामिते॥
इत्युक्त्वासर्ववृत्तान्तमुवाच तं वृहस्पतिः। श्रुत्वा बभूव नम्रास्योगौरीशो लज्जया तदा॥
जपमाला कराद् भ्रष्टा कोपाविष्टस्य शूलिनः । बभूव सद्यः कम्पश्च रक्तपङ्कजलोचने॥
संहर्त्तुरीशो रुद्रस्यविष्णोःपातुःसखाशिवः । स्रष्टुःस्तुत्यश्चमान्यश्चस्वात्मनःपरमात्मनः॥
निर्गुणस्य च कृष्णस्य प्रकृतीशस्य नारद । कोपात् प्रवक्तुमारेभे शुष्ककण्ठौष्ठतालुकः

शिव उवाच ।

शिवमस्तु च साधूनां वैष्णवानां सतामिह । अवैष्णवानामसतामशिवञ्च पदे पदे॥
ददाति वैष्णवेभ्यश्चयोदुःखं सुस्थितो जनः । श्रीकृष्णस्तस्यसंहर्त्ता विघ्नस्तस्य पदेपदे

अवैष्णवानां हृदयं नहि शुद्धं सदामलम् । श्रीकृष्णमन्त्रस्मरणं मनोनैर्मल्यकारणम् ॥
भिद्यतेहृदयग्रन्थिश्छिद्यते सर्वसंशयः । विष्णुमन्त्रोपासनया क्षीयते कर्म तन्नृणाम् ॥
अहो श्रीकृष्णदासानां कः स्वभावः सुनिर्मलः । हृतभार्य्यर्मूर्च्छितश्चन शशापरिपुंगुरुः
गुरुर्यस्य वशिष्ठश्च क्रोधहीनश्च धार्मिकः । हन्तारञ्च पुत्रशतं न शशाप रिपुंमु निः ॥४२
निश्वासेन सुरगुरोर्भ्रातुर्मम वृहस्पतेः । भस्मीभूतो निमेषेण शतचन्द्रो भवेद् ध्रुवम् ॥
तथापि तं न शशाप धर्म्मभङ्गभयेन च । तपस्या हीयते शम्भुः कोपाविष्टस्य नित्यशः ॥
अहो ह्यत्रेरसत्पुत्रः परस्त्रीलुब्धकः शठः । तपस्विनो वैष्णवस्य ब्रह्मपुत्रस्यधर्मिणः ॥
धर्मिष्ठाब्रह्मणःपुत्रावैष्णवाब्राह्मणास्तथा । केचिद्देवाद्विजादैत्याःपौत्राश्च त्रिविधामताः

ये सात्त्विकाब्राह्मणास्ते देवा राजसिकास्तथा ।
दैत्यास्तामसिका रौद्रा वलिष्ठाः चोद्धता मताः ॥४७॥

स्वधर्म्मनिरताविप्रा नारायणपरायणाः । शैवाःशाक्ताश्चते देवादैत्याःपूजाविवर्जिताः ॥

मुमुक्षवो विष्णुभक्ता ब्राह्मणा दास्यलिप्सवः ।
ऐश्वर्य्यलिप्सवो देवाश्चासुरास्तामसास्तथा ॥ ४९ ॥
ब्राह्मणानां स्वधर्म्मश्च कृष्णस्यार्च्चनमीप्सितम् ।
निष्कामानां निर्गुणस्य परस्य प्रकृतेरपि ॥५०॥

ये ब्राह्मणावैष्णवाश्चस्वतन्त्राःपरमंपदम् । यान्त्यन्योपासकाश्चान्यैःसार्द्धञ्चप्राकृते लये॥
वर्णानांब्राह्मणाःश्रेष्ठाःसाधवोवैष्णवायदि । विष्णुमन्त्रविहीनेभ्योद्विजेभ्यःश्वपचोवरः
परिपक्का विपक्का वा वैष्णवाः साधवश्च ते । सन्ततं पाति तांश्चैवविष्णुचक्रंसुदर्शनम्
यथा वह्नौ शुष्कतृणं भस्मीभूतं भवेत् सदा । तथा पापं वैष्णवेषुकाष्ठानीवहुताशने ॥
गुरुवक्त्रात् विष्णुमन्त्रो यस्य कर्णे प्रवेक्ष्यति । तंवैष्णवंमहापूतंप्रवदन्ति मनीषिणः ॥
पुंसां शतं पितॄणाञ्च शतं मातामहस्य च । स्वसोदराश्च जननीमुद्धरन्त्येव वैष्णवाः ॥

गयायां पिण्डदानेन पिण्डदाः पिण्डभोजिनम् ।
संमुद्धरन्ति पुंसाञ्च वैष्णवाश्च शतं शतम् ॥५७॥

मन्त्रग्रहणमात्रेण जीवन्मुक्तो भवेन्नरः । यमस्तस्मान्महाभीतो वैनतेयादिवोरगः ॥५८

निष्पुनन्त्येव तीर्थानि गङ्गादीनि च भारते ।
कृष्णमन्त्रोपासकाश्च स्पर्शमात्रेण वाक्पते ॥५९॥
पापानि पापिनां तीर्थे यावन्ति प्रभवन्ति च ।
नश्यन्ति तानि सर्वाणि वैष्णवस्पर्शमात्रतः ॥६०॥
कृष्णमन्त्रोपासकानां रजसा पादपद्मयोः । सद्योमुक्तापातकेभ्यःकृत्स्ना पूतावसुन्धरा॥
वायुश्च पवनो वह्निः सूर्य्यः सर्वं पुनाति च । एते पूतावैष्णवानां स्पर्शमात्रेण लीलया
अहं ब्रह्मा च शेषश्च धर्मः साक्षी च कर्म्मणाम् ।
एते हृष्टाश्च वाञ्छन्ति वैष्णवानां समागमम् ॥६३॥
फलं कर्मानुरूपेण सर्वेषां भारते भवेत् । न भवेत्तद्वैष्णवे च सिद्धधान्ये यथाङ्कुरम्॥
हन्ति तेषां कर्म्म पूर्वं भक्तानां भक्तवत्सलः । कृपया स्वपदं तेभ्योददात्येव कृपानिधिः
तेजस्विनांश्च प्रवरं वैष्णवं भृगुनन्दनम् । स चन्द्रो दुर्बलो भीतः शुक्रश्च शरणं ययौ॥
सुदर्शनाद्द वलिष्ठश्च शुक्रं जेतुं न शक्तिमान् । तथापिचोद्धरिष्यामितारांमन्त्रणयागुरो॥
भजसत्यं परं ब्रह्म कृष्णमात्मानमीश्वरम् । सुप्रसन्ने भगवतिपत्नींप्राप्स्यसिलीलया॥
मन्त्रं तस्य प्रदास्यामि भ्रातः कल्पतरुं परम् । कोटिजन्माघनिघ्नश्चसर्वमङ्गलकारणम्॥
ब्रह्मादिस्तम्बपर्य्यन्तं नश्वरं जलबिम्बवत् । शरणं याहि गोविन्दं परमात्मानमीश्वरम्
तावद्भवेच्छा भोगेच्छा स्त्रीसुखेच्छा नृणामिह ॥७०॥
यावद्गुरुमुखाम्भोजान्न प्राप्नोति मनुं हरेः । संप्राप्यदुर्लभंमन्त्रं वितृष्णोहि भवेन्नरः॥
इन्द्रत्वममरत्वञ्च न हि वाञ्छन्ति वैष्णवाः । नहिवाञ्छन्तिमोक्षञ्चदास्यंभक्तिविनाहरेः
भक्तिनिर्मञ्छनंभक्तोनकरोतिचमोक्षणम् । ज्ञानंमृत्युञ्जयत्वञ्चसर्वसिद्धित्वमीप्सितम्॥
वाक्सिद्धित्वञ्च ब्रह्मत्वं भक्तानां न हि वाञ्छितम् ।
भक्तिं विहाय कृष्णस्य विषयं यो हि वाञ्छति ॥७४॥
विषमत्ति सुधां त्यक्त्वा वञ्चितो विष्णुमायया ॥७५॥
अहं ब्रह्मा च विष्णुश्च धर्मोऽनन्तश्च कश्यपः । कपिलश्च कुमारश्च नरनारायणावृषी ।
स्वायम्भुवो मनुश्चैव प्रह्लादश्च पराशरः ॥७६॥

भृगुः शुक्रश्च दुर्वासा वशिष्ठःक्रतुरङ्गिराः। बलिश्च वालखिल्याश्चवरुणश्च हुताशनः॥
वायुः सूर्य्यश्च गरुड़ो दक्षो गणपतिः स्वयम्। एते पराभक्तवराःकृष्णस्यपरमात्मनः॥
ये च तस्य कलाः श्रेष्ठास्ते तद्भक्तिपरायणाः। इत्युक्त्वाशङ्करस्तस्मै ददौ कल्पतरुं मनुम्
लक्ष्मीमायाकामबीजं ङेन्तं कृष्णपदं मुने। परं पूजाविधानञ्चस्तोत्रञ्च कवचं मुने॥
तत्पुरश्चरणं ध्यानं सिद्धे मन्दाकिनीतटे। गुरुः संप्राप्य तं मन्त्रं शङ्कराच्चजगद्गुरोः॥
वितृष्णो हि भवाब्धौ च बभूव तमुवाच ह॥८२॥

बृहस्पतिरुवाच।

आज्ञां कुरु जगन्नाथ यामि तप्तुं हरेस्तपः। तारा तिष्ठतु तत्रैव न तया मे प्रयोजनम्॥
पश्यामि विषतुल्यञ्च सर्वं नश्वरमीश्वर। श्रीकृष्णंशरणं यामि सत्यं नित्यञ्च निर्गुणम्

श्रीमहादेव उवाच।

परग्रस्तां स्त्रियं त्यक्त्वा न प्रशंस्यं तपो मुने। सम्भावितस्यदुश्चर्चा मरणादतिरिच्यते॥
पुरो गच्छ महाभाग तमेव नर्मदातटम्। यत्र ब्रह्मादयो देवास्तत्राहं यामि सत्वरम्॥
शिवस्य वचनंश्रुत्वा ययौ सुरगुरुः स्वयम्। आययौ च महाभागः शङ्करो नर्मदातटम्
सगणं शङ्करं दृष्ट्वा प्रसन्नवदनेक्षणम्। प्रणेमुर्देवताः सर्वा मनवो मुनयस्तथा॥८८॥
ननाम शम्भुः शिरसा विष्णुञ्च कमलोद्भवम्।
ददौ विष्णुर्महेशाय प्रेम्णालिङ्गनमाशिषम्॥८६॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र चागमच्च बृहस्पतिः। प्रणनाम महादेवं विष्णुञ्च कमलोद्भवम्॥
सूर्य्यं धर्ममनन्तञ्च नरं माञ्च मुनीश्वरान्। स्वगुरुं पितरं भक्त्याचोवास तत्र संसदि
सञ्चिन्त्य मनसा युक्तिमुवाचतत्रसंसदि। स्वयंविष्णुश्चभगवान्ब्रह्माणंचन्द्रशेखरम्॥

विष्णुरुवाच।

युवाञ्च मुनयश्चैव समुद्रपुलिनं त्वरा। शुक्रं कञ्चिच्चमध्यस्थंप्रस्थापयितुमर्हसि॥६२
विग्रहेणैव विषमं भविष्यति न संशयः। मदाशिषा सुरगुरुस्तारांप्राप्स्यतिनिश्चितम्॥
सुरैस्स्तुतश्च सन्तुष्टः शुक्राचार्य्यो भविष्यति। सुरैःशुक्रोनजितश्चकृष्णचक्रेण रक्षितः
युवाभ्यां प्रार्थ्यमानोऽहं युवयोः स्तवनेन च। श्वेतद्वीपादागतोऽस्मि परितुष्टस्तवेन च

शुक्राश्रममसीपर्णं सर्वा गच्छन्तु देवताः ॥९६॥
रिपुर्वलिष्ठः स्तोत्रेण वशीभूत इति श्रुतिः । इत्युक्त्वा जगतां नाथ स्तत्रैवान्तरधीयत ॥
स्तुतो ब्रह्मादिभिर्देवैः प्रणतैः परिपूजितः । गते च जगतां नाथे श्वेतद्वीपञ्च नारद॥९८
चिन्तिताश्च सुराः सर्वे विषण्णमानसास्तथा ।
मुनीन् देवांश्च संबोध्य ब्रह्मा च तत्र संसदि ॥९९॥
उवाच नीतिसारञ्च सम्मतः शङ्करेण सः ॥१००॥

ब्रह्मोवाच ।

ममशम्भोश्चविष्णोश्चधर्मस्यसर्वसाक्षिणः । अस्माकञ्चसमःस्नेहोदैत्येदेवेच पुत्रकाः॥
दैत्यानाञ्च गुरौ शुक्रे प्रपन्नश्च निशाकरः । न जितश्चसुरैःशुक्रःपूजितोदितिनन्दनैः ॥
ताराहेतोरहं यामि शुक्रस्य भवनं सुराः । सर्वे समुद्रपुलिनं यान्तु विष्णोर्निदेशतः ॥
इत्युक्त्वा जगतां धाता जगाम शुक्रसन्निधिम् । प्रययुर्देवता विप्राः समुद्रपुलिनं मुने ॥
इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे तारोद्धारण-
प्रस्तावे षष्टितमोऽध्यायः ।

एकषष्टितमोऽध्यायः

ब्रह्मणः शुक्रगृहे गमनम् ।

नारद उवाच ।

ततः परं किं रहस्यं बभूवासुरदेवयोः । श्रोतुमिच्छामि भगवन् परं कौतूहलं मम ॥१॥

नारायण उवाच ।

ब्रह्मा जगाम निलयं शुक्रस्य च महात्मनः । नानादैत्यगणाकीर्णं रत्नमन्दिरभूषितम् ॥
पञ्चाशत्कोटिभिः शिष्यैः परीतं ब्रह्मवादिभिः ।

सप्तभिः परिखाभिश्च वेष्टितं दुर्गमेव च ॥३॥

रक्षितं रक्षकगणैर्दैत्यैश्च शतकोटिभिः ॥४॥
पद्मरागविरचितैः प्राचीरैः परिशोभितम् । ददर्श जगतां धाता सभायां भृगुनन्दनम् ॥
स्तुतं मुनिगणैर्दैत्यै रत्नसिंहासनस्थितम् । जपन्तं परमं ब्रह्म कृष्णमात्मानमीश्वरम् ॥६
शतसूर्य्यप्रभं शश्वज्ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा । दृष्ट्वा पौत्रं प्रभायुक्तं विधाता हृष्टमानसः ।७॥
आत्मानं कृतिनं मेने पुत्रं पौत्रञ्च नारद । दृष्ट्वा पितामहं शुक्रो धातारं जगतां प्रभुम् ॥
उत्थाय सहसा भीतः प्रणनाम पुटाञ्जलिः । प्रदाय पूजयामास चोपचाराणि षोड़श ॥
तुष्टाव परया भक्त्या सम्भ्रमेण यथागमम् ।   उपचारान्
विद्यामन्त्रप्रदातारं दातारं सर्व्वसम्पदाम् ॥१०॥
स्वकर्म्मणाञ्च फलदं सर्वेषां विश्वतो वरम् । शुक्रस्य स्तवनेनैव सन्तुष्टो जगतां पतिः
अवरुह्यरथात्तूर्णमुवाच तत्र संसदि । शुक्रेण शिरसा दत्ते रत्नसिंहासने वरे ॥ १२ ॥
तेजसा ज्वलिते रम्ये निर्म्मिते विश्वकर्म्मणा । शुक्रः प्रणम्यब्रह्माणं कुमारं शकुनंक्रतुम्
वशिष्ठञ्च मरीचञ्च सनन्दञ्च सनातनम् । कपिलञ्च पञ्चशिखं वोढुमङ्गिरसं मुने ॥ १४॥
धर्मं माञ्च नरं भक्त्या प्रणनाम पुटाञ्जलिः । प्रत्येकं पूजयामास सादरञ्च यथोचितम् ॥
सिंहासनेषु रत्नेषु वासयामास धार्मिकः । प्रहृष्टवदनाः सर्वे प्रणेमुर्दितिनन्दनाः ॥१६॥
ऋषिसंघाश्च ब्रह्माणं तुष्टुवुश्च यथागमम् । सर्वान् संस्तूय स कविरुवाच सम्पुटाञ्जलिः
साश्रुनेत्रः सपुलकः प्रणतो विनयान्वितः ॥ १८ ॥

शुक्र उवाच ।

अद्य मे सफलंजन्मजीवितञ्चसुजीवितम् । स्वयं विधाता भगवान्साक्षाद्दृष्टःस्वमन्दिरे
साक्षाद् दृष्टाश्च तत्पुत्रा भगवन्तःसनातनाः । तुष्टः कृष्णोऽद्यमामेवं परमात्मापरात्परः
कृतार्थं कर्त्तुमीशानां युष्माभिःस्वागतं शिशुम् । स्वात्मारामेषु कुशलंप्रश्नमेवविड़म्बनम्
पवित्रं कर्त्तुमीशानां हेतुरागमने तव । अपरं ब्रूहि किं वापि शाधि नः करवाम किम् ॥

ब्रह्मोवाच ।

उद्विग्नाश्चिरविच्छेदात्त्वां पौत्रं द्रष्टुमागतः । विच्छेदः पुत्रपौत्राणां मरणादतिरिच्यते ।
कुशलं ते मुनिश्रेष्ठ पुत्रयोश्चापि योषितः । कुशलं ते स्वकर्माणां काम्यानां तपसामपि

दिने दिनेपरिच्छिन्नं श्रीकृष्णार्चनमीप्सितम् । स्वगुरोः सेवनंनित्यमविच्छिन्नंभवेत्तव
गुर्विष्टयोः पूजनञ्च सर्वमङ्गलकारणम् । पापाधिरोगशोकघ्नं पुण्यहर्षप्रदं शुभम् ॥२६॥
अभीष्टदेवः सन्तुष्टो गुरौ तुष्टे नृणामिह । इष्टदेवे च सन्तुष्टे सन्तुष्टाः सर्वदेवताः ॥
गुरुर्विप्रः सुरोरुष्टो येषां पातकिनामिह । तेषाञ्च कुशलं नास्ति विघ्नस्तस्य पदे पदे ॥
तुष्टश्च सन्ततं वत्स श्रीकृष्णःप्रकृतेः परः । सर्वान्तरात्मा भगवांस्तव भक्त्या च निर्गुणः
तव तुष्टो गुरुरहं विधाता जगतामपि । मयि तुष्टे हरिस्तुष्टो हरौ तुष्टे तु देवताः ।३०
साम्प्रतं श्रृणु मे हेतुं गमनस्य मुनीश्वर । प्रेषितस्य सुराणाञ्च विश्वसंहर्त्तुरेव च ।३१।
शिवस्य गुरुपुत्रस्य साध्वीं तारां वृहस्पतेः । अपहृत्य निशानाथस्तवैव शरणागतः ॥
शम्भुर्धर्म्मश्च सूर्य्यश्चशक्रोऽनन्तश्चपुत्रक । आदित्या वसवोरुद्रादिक्पालाश्चदिगीश्वराः
युद्धायायान्ति सन्नद्धास्तिस्रः कोट्यश्चदेवताः । नागाःकिम्पुरुषाश्चैव यक्षराक्षसगुह्यकाः
भूताः प्रेताःपिशाचाश्चकुष्माण्डाब्रह्मराक्षसाः । किराताश्चैवगन्धर्वाः समुद्रपुलिनेऽधुना
तारकामयसंग्रामे मध्यस्थोऽहं सुतैः सह । देहि तारां रणं किं वा त्यजचन्द्रञ्च कामिनम्

शुक्र उवाच ।

आगच्छन्तु सुरा सर्वे सन्नद्धा रणदुर्मदाः । योत्स्ये विना महेशञ्च सर्वेषाञ्च गुरुं परम्

दैत्या उचुः ।

उभयेषां गुरुः शम्भुर्मान्यो वन्द्यश्च सर्वदा । धर्मश्च साक्षी सर्वेषां त्वमेव च पितामह
अन्यांश्च तृणतुल्यांश्च नहिमन्यामहेवयम् । आगच्छन्तुचयोत्स्यामो व्रजब्रूहिजगद्गुरो
कृपया गुरुपुत्रस्य यद्यायाति महेश्वरः । अग्रेनास्त्रं विधास्यामः पश्चाद्योत्स्यामहे प्रभो

ब्रह्मोवाच ।

कालाग्निरुद्रः संहर्त्ताविश्वस्यवलिनां वरः । हे वत्सास्तेनसार्द्धञ्च कोवायुद्धंकरिष्यति
भद्रकाली जगन्माता खड्गखर्परधारिणी । तया दुर्द्धर्षया सार्द्धं को वा युद्धं करिष्यति॥
सा सहस्रभुजा देवी मुण्डमाला विभूषणा । योजनायतवक्त्रा च दशयोजनविस्तृता ।
सप्ततालप्रमाणाश्च यस्या दन्ता भयानकाः । कोशप्रमाणजिह्वा च महालोला भयङ्करी ॥

अतीव रौद्राः सन्नद्धा भीमाः शङ्करकिङ्कराः । अतिभीमा भैरवाश्च नन्दी च रणकर्कशः

शिवस्य पार्षदाः सर्वे महाबलपराक्रमाः । वीरभद्रादयः शूराः शतसूर्य्यसमप्रभाः ॥४६॥
सहस्रमूर्ध्नः शेषस्य फणैकदेशकोणतः । विश्वं सर्षपतुल्यञ्च को वा योद्धा च तत्समः
कालाग्निरुद्रः संहर्त्ता यस्य शम्भोश्च किङ्करः ॥४७॥
शूलिनस्त्रिपुरघ्नस्य ज्वलतो ब्रह्मतेजसा । यस्यपाशुपतास्त्रेण दुर्निवार्य्येण पुत्रकाः॥४८
भस्मीभूतं भवेद्विश्वं दैत्यानाञ्चैव का कथा । यस्य शूलेन भिन्नश्च शङ्खचूड़ः प्रतापवान्
सुदामा पार्षदवरः कृष्णस्य परमात्मनः । त्रिकोटिसूर्य्यसदृशस्तेजस्वी परमाद्भुतः ॥५०
राधाकवचकण्ठश्च सर्वदैत्यजनेश्वरः । मधुकैटभयोर्हन्ता हिरण्यकशिपोश्च यः ॥५१॥
स च विष्णुः समायाति श्वेतद्वीपात्स्वयं प्रभुः । इत्युक्त्वा जगतांधाताविररामचसंसदि
प्रहस्योवाच प्रह्लादो दानवानामधीश्वरः ॥५३॥

प्रह्लाद उवाच ।

नमस्तुभ्यं जगद्धातः सर्वेषां प्राक्तनेश्वर । सर्वपूज्य सर्वनाथ किं वक्ष्यामि तवाग्रतः ॥
हिरण्यकशिपोर्हन्ता मधुकैटभयोश्च यः । स कला यस्य कृष्णस्य परिपूर्णतमस्य च ॥
सर्वान्तरात्मानन्तस्य चक्रं नाम सुदर्शनम् । अस्माकं लोकमस्मांश्चशश्वद्रक्षतिदुःसहम्
ततो न बलवान् शम्भुर्न च पाशुपतं विधे । न च काली न शेषश्च नच रुद्रादयः सुराः
यस्य लोमसुविश्वानिनिखिलानिजगत्पते । सर्वाधारस्यचविभोः स्थूलात्स्थूलतरस्यच
षोड़शांशो भगवतः स एवचमहान् विराट् । अनन्तो नहि तत्स्थूलो न कालीवृहतीततः
आगच्छन्तु सुराः सर्वे युद्धंकुर्वन्तु साम्प्रतम् । न बिभेमि शरेभ्यश्च नचपाशुपताद्धरात्
नमस्तस्मै भगवते शिवाय शिवरूपिणे । नमोऽनन्ताय साधुभ्यो वैष्णवेभ्यः प्रजापते ।
श्रीकृष्णस्य प्रसादेननिर्भयोऽहंनिरामयः । न मे स्वात्मवलं ब्रह्मंस्तद् बलंयत्प्रभोर्वलम्
स्वपापेन मृतस्तातो पुरा वै विष्णुनिन्दया । निर्बन्धाच्छङ्खचूड़श्च दर्पाच्च मधुकैटभौ ॥
त्रिपुरः किङ्करोऽस्माकं वीरत्वेन न गण्यते । तथापि प्रेरितस्तेन स रथस्थो महेश्वरः ॥
इत्युक्त्वा दानवश्रेष्ठो विरराम च संसदि । उवाच जगतां धाता पुनरेव च नारद ॥६५

ब्रह्मोवाच ।

विनाशकारणं युद्धमुभयोर्दैत्यदेवयोः । सुप्रीतिकारणं वत्स सर्वमङ्गलकारणम् ॥ ६६॥

तारां भिक्षां देहि मह्यं भिक्षुकायच ब्रह्मणे । विमुखे भिक्षुके राजन् गृहस्थःसर्वपापभाक्

सनत्कुमार उवाच ।

स्वकीर्त्तिरक्षराजेन्द्र सिंहस्त्वंसुरदैत्ययोः । यस्य भिक्षुर्जगद्धाता तस्यकीर्त्तिश्चकाकथा

सनातन उवाच ।

न जितस्त्वं सुरेन्द्रैश्च ब्रह्मेशानपुरोगमैः । रक्षितः कृष्णचक्रेण वैष्णवः पुण्यवान् शुचिः

सनन्द उवाच ।

यस्येष्टदेवः सर्वात्मा श्रीकृष्णः प्रकृतेः परः । गुरुश्चवैष्णवःशुक्रः स च केनजितोमहान्

सनक उवाच ।

पुण्यवान्न जितः केन जितःपापीस्वपातकैः । पुण्यदीपो न निर्वाति पाखण्डेनैव वायुना

ऋषय ऊचुः ।

देहि तारां महाभाग चन्द्रं प्राणाधिकं गुरोः । स्वकीर्त्ति रक्ष सुचिरं प्रार्थयामः पुनःपुनः

प्रह्लाद उवाच ।

स्थिते मदीश्वरे साक्षान्नहि भृत्यो विराजते । कर्त्तारं ब्रूहि मन्नाथं गुरुं शुक्रं सतां वरम्
शिष्याणामाधिपत्ये च साधूनां गुरुरीश्वरः । गुरौ समर्पितं पूर्वं सर्वैश्वर्य्यं मुनीश्वरैः ।
वयं भृत्याश्चपोष्याश्चस्वगुरोःपरिचारकाः । ते चशिष्याःकुशलिनो गुर्वाज्ञांपालयन्ति ये

प्रह्लादस्य वचः श्रुत्वा चकार प्रार्थनां कविम् ।
ददौ शुक्रश्च तारां तां चन्द्रश्च मलिनं मुने ॥७६ ॥

दत्त्वा तारां विधुं शुक्रः प्रणनाम विधेःपदे । नमस्कृत्य मुनिभ्यश्च प्रणतः स्वपुरं ययौ ।
प्रह्लादः स्वगणो भक्त्या नमस्कृत्य विधेः पदे ॥ ७७ ॥
प्रत्येकञ्च मुनिगणान् प्रणतः स्वगृहं ययौ । ब्रह्मा ददर्श ताराञ्च प्रणतां स्वपदे सतीम्
लज्जया नम्रवक्त्राञ्च रुदतीं गुर्विणीं मुने ॥ ७८ ॥
चन्द्रञ्च प्रणतं धाता क्रोड़े संस्थाप्य मायया । उवाच मलिनां तारां कातराञ्चकृपामयः
तारे त्यज भयं मातर्भयं किंते मयि स्थिते । सौभाग्ययुक्तास्वपतौ भविष्यसि वरेण मे
दुर्वलाबलिनाग्रस्तानिष्कामानच युताभवेत् । प्रायश्चित्तेनशुद्धासानस्त्री जारेणदुःष्यति

सकामाकामतो जारं भजतेस्वसुखेनच। प्रायश्चित्तान्नशुद्धासा स्वामिना परिवर्जिता॥
कुम्भीपाके पच्यते सा यावच्चन्द्रदिवाकरौ। अन्नं विष्ठा जलं मूत्रं स्पर्शनंसर्वपापदम्॥
पापीयस्याश्चतस्याश्च साधुभिः परिवर्जितम्। कस्यगर्भंवद शुभे गच्छवत्सेगुरोर्गृहम्॥
त्यज लज्जां महाभागे सर्वश्च प्राक्तनाद्भवेत्। ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा समुवाच सतीतदा॥
चन्द्रस्य गर्भं हेतात विभर्मि दैवयोगतः। सर्वे मे साक्षिणः सन्ति दुर्बलायाः प्रजापते॥
यदा जग्राह चन्द्रोमां दयाहीनश्च दुर्मतिः। इत्युक्त्वा तारका देवी सुषाव कनकप्रभम्॥
कुमारं सुन्दरंतत्र ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा। गृहीत्वा तनयं चन्द्रो नत्त्वा ब्रह्माणमीश्वरम्।

जगाम स स्वभवनं ब्रह्मा सिन्धुतटं ययौ॥८८॥

साध्वीं ताराञ्च गुरवे देवेभ्योऽप्यभयं ददौ॥ ८९॥

आशिषं शम्भुधर्माभ्यांब्रह्मलोकं ययौ विधिः। देवा ययुः स्वभवनं स्वगृहञ्चवृहस्पतिः
भावानुरक्तवनितां संप्राप्य हृष्टमानसः। तारकागर्भसंभूतः सव च बुधः स्वयम्॥९१।
तेजस्वी सद्ग्रहो ब्रह्मश्चन्द्रस्य तनयो महान्। सएव नन्दनवने चित्रां संप्राप्य निर्जने॥
घृताच्या गर्भसंभूतां कुवेरस्यच रेतसा। दृष्ट्वाच निर्जने रम्यां कन्यां कमललोचनाम्॥
अतीव यौवनस्थाञ्च वालां द्वादशार्षिकीम्। गान्धर्वेण विवाहेन तां जग्राहविधोःसुतः
तस्यामतीव रहसि वीर्य्याधानं चकार सः। वभूव राजा चित्रायां चैत्रश्च मण्डलेश्वरः
सप्तद्वीपवतीं पृथ्वीं प्रशास्ति धार्मिको वली। शतनद्यो घृतानाञ्च दध्नो नद्यः शतानिच
शतानि नद्यो दुग्धानां मधुनद्यश्च षोड़श। दश नद्यश्च तैलानां शर्करा लक्षराशयः॥
मिष्टान्नानांस्वस्तिकानां लक्षराशिश्चनित्यशः। पञ्चकोटिगवांमांसं सपूपं स्वान्नमेवच॥
एतेषाञ्च नदीराशीभुञ्जते ब्राह्मणा मुने। गवांलक्षञ्च रत्नानां मणीनां लक्षमेव च॥९६॥
शतलक्षं सुवर्णानां लक्षञ्च सूक्ष्मवाससाम्। रत्नानां भूषणं पात्रमतीव सुमनोहरम्॥
ददौ द्विजातये राजा नित्यञ्च जीवनावधि। तस्य चैत्रस्य पुत्रश्च राजाधिरथ एव च॥
तस्य पुत्रश्च सुरथश्चक्रवर्त्ती वृहतश्र(च्छ्र)वाः। महाज्ञानञ्च संप्राप्य मेधसात्मुनिसत्तमात्
भेजे पुरा विष्णुमायां पुण्यक्षेत्रे च भारते। शरत्काले महापूजाञ्चकार स सरित्तटे॥
वैश्येन सार्द्धं स महान् ज्ञानिनामुनिसत्तम। राजाकलिङ्ग देशस्य विराधश्च विशांवरः॥

तस्यपुत्रो महायोगी द्रुमिणो ज्ञानिनांवरः । द्रुमिणो वैष्णवःप्राज्ञः पुष्करे दुष्करंतपः॥
कृत्वासमाधिं संप्रापज्ञानिनां वैष्णवाग्रणीम् । पुत्रदारैर्निरस्तश्चधनलोभाद् दुरात्मभिः
स च कोटिसुवर्णञ्च नित्यंदत्त्वा जलंपपौ । मुक्तिं संप्रापसंसेव्य विष्णुमायांसनातनीम्
राजालेभे मनुत्वञ्चराज्यं निष्कण्टकं मुने । उवाच मधुरंवाक्यं धाता त्रिजगतांपतिः॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे प्रकृतिखण्डे दुर्गोपाख्याने एकषष्टितमोऽध्यायः ।

द्विषष्टितमोऽध्यायः

राज्ञः सुरथस्य वैश्यसमाधेश्च विवरणम् ।

नारद उवाच ।

कथं राजा महाज्ञानंसंप्राप मुनिसत्तमात् । वैश्यो मुक्तिं मेधसाच्चतन्मे व्याख्यातुमर्हसि

श्रीनारायण उवाच ।

ध्रुवस्यपौत्रो वलवान् नन्दिरुत्कलनन्दनः । स्वायम्भुवमनोर्वंशः सत्यवादी जितेन्द्रियः
अक्षौहिणीनां शतकं गृहीत्वा सैन्यमेवच । लोकाञ्च वेष्टयामास सुरथस्य महामतेः॥
युद्धं बभूव नियतं पूर्णमब्दञ्च नारद । चिरजीवी वैष्णवश्च जिगाय सुरथं नृपः॥४॥
एकाकी सुरथो भीतो नन्दिना च वहिष्कृतः । निशायां हयमारुह्य जगाम गहनं वनम्॥
ददर्श तत्र वैश्यञ्च पुष्पभद्रानदीतटे । तयोर्बभूव संप्रीतिः कृतबान्धवयोर्मुने ॥६॥
वैश्येन सार्द्धं नृपतिर्जगाम मेधसाश्रमम् । पुष्करं दुष्करं पुण्यक्षेत्रञ्च भारते सताम्॥
ददर्श तत्र नृपतिर्मुनिं तं तीव्रतेजसम् । शिष्येभ्यश्च प्रवोचन्तं ब्रह्मतत्त्वं सुदुर्लभम्॥
राजाननामवैश्यश्च शिरसामुनिपुङ्गवम् । मुनिस्तौपूजयामास ददौ ताभ्यां शुभाशिषम्॥
प्रश्नं चकार कुशलं जातिं नाम पृथक्क् पृथक् । ददौ प्रत्युत्तरं राजा क्रमेण मुनिपुङ्गवम्

सुरथ उवाच ।

राजाऽहं सुरथो ब्रह्मंश्चैत्रवंश समुद्भवः । वहिर्भूतः स्वराज्याच्च नन्दिना वलिनाधुना ॥
किमुपायंकरिष्यामि कथं राज्यंभवेन्मम । तन्मां ब्रूहि महाभाग त्वय्येवशरणागतम् १२
अयं वैश्यः समाधिश्च स्वगृहाच्च वहिष्कृतः । पुत्रैः कलत्रैर्दैवेन धनलोभेन धार्मिकः ॥
ब्राह्मणाय ददौ नित्यं रत्नकोटिं दिने दिने । निषिद्धमानः पुत्रैश्च कलत्रैर्बान्धवैरयम् ॥
कोपान्निराकृतस्तैश्च पुनरन्वेषितः शुचा । अयं गृहञ्चन ययौ विरक्तो ज्ञानवान् शुचिः ॥
पुत्राश्च पितृशोकेनगृहं त्यक्त्वा ययुर्वनम् । दत्त्वा धनानि विप्रेभ्योविरक्ताः सर्वकर्मसु॥
सुदुर्लभं हरेर्दास्यंवैश्यस्यास्य च वाञ्छितम् ।
कथंप्राप्नोति निष्कामस्तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ १७ ॥

श्रीमेधस उवाच ।

करोतिमायताच्छन्नंविष्णुमायादुरत्यया । निर्गुणस्यचकृष्णस्य त्रिगुणाविश्वमाज्ञया ॥
कृपांकरोतियेषांसा धर्मिणाञ्चकृपामयी । तेभ्यो ददाति कृपया कृष्णभक्तिंसुदुर्लभाम् ॥
येषां मायाविनांमाया न करोति कृपां नृप । माययातान्निवध्नाति मोहजालेनदुर्गतान्॥
नश्वरे नित्यसंसारे भ्रमेण वर्वराः सदा । कुर्वन्ति नित्यवुद्धिञ्च विहाय परमेश्वरम् ॥
देवमन्यंनिषेवन्ते तन्मन्त्रञ्च जपन्ति च । मिथ्याकिञ्चिन्निमित्तञ्च कृत्वा मनसिलोभतः
हरेः कलाः देवताश्च निषेव्य जन्म सप्त च । तदा प्रकृत्याः कृपया सेवन्ते प्रकृतिं तदा
निषेव्य विष्णुमायाञ्च सप्तजन्म कृपामयीम् । शिवे भक्तिं लभन्ते ते ज्ञानानन्दे सनातने
ज्ञानाधिष्ठातृदेवञ्च निषेव्य शङ्करं हरेः । अचिराद्विष्णुभक्तिञ्च प्राप्नुवन्ति महेश्वरात्
सेवन्ते सगुणं सत्त्वं विष्णुं विषयिणं तदा । सत्वज्ञानाच्चपश्यन्ति ज्ञानञ्चनिर्मलंनराः
निषेव्य सगुणं विष्णुं सात्त्विका वैष्णवा नराः । लभन्तेनिर्गुणेभक्तिं श्रीकृष्णेप्रकृतेःपरे
कुर्वन्ति ग्रहणं सन्तो मन्त्रं तस्य निरामयम् । निषेव्य निर्गुणंदेवं ते भवन्ति च निर्गुणाः
असंख्यब्रह्मणः पातं ते च पश्यन्ति वैष्णवाः । दास्यं कुर्वन्तिसततंगोलोके च निरामये
कृष्णभक्तात् कृष्णमन्त्रं यो गृह्णाति नरोत्तमः । पुरुषाणांसहस्रञ्चस्वपितॄणां समुद्धरेत्
मातामहानां पुरुषं सहस्रं मातरं तथा । दासादिकं समुद्धृत्य गोलोकं स प्रयाति च ॥

भवार्णवे महाघोरे कर्णधारस्वरूपिणी । पारं करोति दुर्गातान्कृष्णभक्त्या च नौकया
स्वकर्म्मबन्धनं छेत्तुं वैष्णवानाञ्च वैष्णवी । तीक्ष्णशस्त्रस्वरूपासाकृष्णस्यपरमात्मनः
विवेचनाचावरणी शक्तेः शक्तिर्द्विधा नृप । पूर्वं ददाति भक्ताय चेतराय परां परा ॥३४
सत्यस्वरूपः श्रीकृष्णस्तस्मात् सर्वञ्च नश्वरम् । बुद्धिर्विवेचनेत्येवं वैष्णवानांसनातनी
नित्यरूपा मयेयं श्रीरिति चावरणी च धीः । अवैष्णवानामसतां कर्म्मभोगभुजामहो ।
अहं प्रचेतसः पुत्रः पौत्रश्च ब्रह्मणो नृप । भजामि कृष्णमात्मानं ज्ञानं संप्राप्य शङ्करात्

गच्छ राजन् नदीतीरं भज दुर्गां सनातनीम् ।
बुद्धिमावरणीं तुभ्यं देवी दास्यति कामिने ॥ ३८ ॥

निष्कामाय च वैश्याय वैष्णवायच वैष्णवी । बुद्धिं विवेचनां शुद्धांदास्यत्येवकृपामयी
इत्युक्त्वा च मुनिश्रेष्ठोददौताभ्यां कृपानिधिः । पूजाविधानं दुर्गायाः स्तोत्रञ्चकवचंमनुम्
वैश्यो मुक्तिञ्च संप्रापतांनिषेव्यकृपामयीम् । राजा राज्यं मनुत्वञ्चपरमैश्वर्य्यमीप्सितम्
इत्येवं कथितं सर्वं दुर्गोपाख्यानमुत्तमम् । सुखदं मोक्षदं सारंकिं भूयः श्रोतुमिच्छसि

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारसंवादे दुर्गोपाख्याने
सुरथमेधससंवादे द्विषष्टितमोऽध्यायः ।

त्रिषष्टितमोऽध्यायः

सुरथसमाधिमेधससंवादे प्रकृतिवैश्यसंवादः

नारद उवाच ।

नारायण महाभाग वद वेदविदांवर । राजा केन प्रकारेण सिषेवे प्रकृतिं पराम् ॥ १ ॥
समाधिर्नामवैश्यो वा निष्कामं निर्गुणं विभुम् । भेजे केन प्रकारेण प्रकृतेरुपदेशतः ॥२
किं वा पूजाविधानञ्च ध्यानं वा मनुमेव च । किं स्तोत्रं कवचंकिंवा ददौराज्ञेमहामुनिः
तस्मै वैश्याय प्रकृतिः किंवा ज्ञानं ददौ परम् । सोऽपि ... बभूव सहसा केनवा प्रकृतिस्तयोः

ज्ञानं सम्प्राप्य वैश्यश्च किं पदंप्रापदुर्लभम् । गतिर्बभूव राज्ञश्च का वा ताञ्चश्रृणोम्यहम्

श्रीनारायण उवाच ।

राजा मन्त्रञ्चसंप्राप्यवैश्यश्चमेधसान् मुने । स्तोत्रञ्च कवचं देव्याध्यानञ्चैवपुरस्क्रियाम्
जजाप परमं मन्त्रं राजा वैश्यश्च पुष्करे ॥ ६ ॥

स्नात्वा त्रिकालं वर्षञ्च ततः शुद्धो वभूव सः । साक्षाद्‌ वभूव तत्रैव मूलप्रकृतिरीश्वरी
राज्ञे ददौ राज्यवरं मनुत्वं वाञ्छितं सुखम् । ज्ञानं निगूढ़ं वैश्याय ददौ चातिसुदुर्लभम्
यद्दत्तं शूलिने पूर्वं कृष्णेन परमात्मना । निराहारमतिक्लिष्टं दृष्ट्वा वैश्यं कृपामयी ॥ ९ ॥
रुरोद कृत्वा क्रोड़े तमचेष्टं श्वासवर्जितम् । चेतनां कुरु भो वत्सेत्युच्चार्य्य च पुनःपुनः
चेतनाञ्च ददौ तस्मै स्वयं चैतन्यरूपिणी । संप्राप्य चेतनां वैश्यो रुरोद प्रकृतेः पुरः ॥
तमुवाच प्रसन्ना सा कृपयाऽतिकृपामयी ॥ १२ ॥

श्रीप्रकृतिरुवाच ।

वरं वृणुष्व हे वत्स यत्ते मनसि वर्त्तते । ब्रह्मत्वममरत्वं वा ततो वाऽति सुदुर्लभम्।१३
इन्द्रत्वं वा मनुत्वंवा सर्वसिद्धित्वमेव च । तुच्छं तुभ्यं न दास्यामि नश्वरंवालवञ्चनम्

वैश्य उवाच ।

ब्रह्मत्वममरत्वं वा मातर्मे नहि वाञ्छितम् । ततोऽतिदुर्लभं किंवा न जानेतदभीप्सितम्
त्वय्येव शरणापन्नो देहि यद्वाञ्छितं तव । अनश्वरं सर्वसारं वरं मे दातुमर्हसि ॥१६॥

प्रकृतिरुवाच ।

अदेयं नास्ति मे तुभ्यं दास्यामिममवाञ्छितम् । यतो यास्यसि गोलोकंपदमेवसुदुर्लभम्
सर्वसारञ्च यज्ज्ञानं सुरर्षीणां सुदुर्लभम् । तद्‌गृह्यतां महाभाग गच्छ वत्स हरेः पदम्
स्मरणं वन्दनं ध्यानमर्चनं गुणकीर्त्तनम् । श्रवणं भावनं सेवा सर्वं कृष्णे निवेदितम् ॥
एतदेव वैष्णवानां नवधाभक्तिलक्षणम् । जन्ममृत्युजराव्याधियमताड़नखण्डनम् ॥
आयुर्हरति लोकानां रविरेव हि सन्ततम् । नवधाभक्तिहीनानामसतां पापिनामपि ॥
भक्तास्तद्गतचित्ताश्च वैष्णवाश्चिरजीविनः । जीवन्मुक्ताश्च निष्पापा जन्मादिपरिवर्जिताः
शिवः शेषश्च धर्मश्च ब्रह्मा विष्णुर्महान् विराट् । सनत्कुमारः कपिलः सनकश्चसनन्दनः

वोढुः पञ्चशिखो दक्षो नारदश्च सनातनः। भृगुर्मरीचिर्दुर्वासाः कश्यपः पुलहोऽङ्गिराः
मेधसो लोमशः शुक्रो वशिष्ठः क्रतुरेव च। वृहस्पतिः कर्दमश्च शक्तिरत्रिः पराशरः॥
मार्कण्डेयो बलिश्चैव प्रह्लादश्च गणेश्वरः। यमः सूर्य्यश्च वरुणो वायुश्चन्द्रो हुताशनः।
अकूपार उलूकश्च नाड़ीजङ्घश्च वायुजः। नरनारायणौ कूर्म्म इन्द्रद्युम्नो विभीषणः॥२७
नवधा भक्तियुक्तश्च कृष्णस्य परमात्मनः। एते महान्तो धर्मिष्ठा भक्तानां प्रवरास्तथा।

ये तद्भक्तास्ते तदंशा जीवन्मुक्ताश्च सन्ततम्।
पापापहारास्तीर्थानां पृथिव्याश्च विशाम्पते॥ २९॥

ऊर्द्ध्वे च सप्त स्वर्गाश्चसप्तद्वीपावसुन्धरा। अधः सप्तः च पाताला एतद्ब्रह्माण्डमेवच
एवं विधानां विश्वानां संख्यानास्त्येव पुत्रक। एवञ्च प्रतिविश्वेषु ब्रह्मविष्णुशिवादयः

देवा देवर्षयश्चैव मनवो मानवादयः।
सर्वाश्रमाश्च सर्वत्र सन्ति वद्धाश्च मायया॥ ३२॥
महद्विष्णोर्लोमकूपे सन्ति विश्वानि यस्य च।
स षोड़शांशः कृष्णस्य चात्मनश्च महान् विराट्॥३३॥

भज सत्यं परं ब्रह्म नित्यं निर्गुणमच्युतम्। प्रकृतेःपरमीशानंकृष्णमात्मानमीप्सितम्॥

निरीहञ्च निराकारं निर्विकारं निरञ्जनम्।
निष्कामं निर्विरोधञ्च नित्यानन्दं सनातनम्॥३५॥

स्वेच्छामयं सर्वरूपं भक्तानुग्रहविग्रहम्। तेजःस्वरूपं परमं दातारं सर्वसम्पदाम्॥३६॥
ध्यानासाध्यंदुराराध्यंशिवादीनाञ्चयोगिनाम्। सर्वेश्वरंसर्वपूज्यंसर्वस्य सर्वकामदम्॥
सर्वाधारञ्च सर्वज्ञं सर्वानन्दकरं परम्। सर्वधर्मप्रदं सर्वं सर्वज्ञं प्राणरूपिणम्॥३८॥
सर्वधर्मस्वरूपञ्च सर्वकारणकारणम्। सुखदं मोक्षदं सारं पररूपञ्च भक्तिदम्॥३९॥
दास्यदं धर्मदश्चैव सर्वसिद्धिप्रदं सताम्। सर्वं तद्व्यतिरिक्तञ्च नश्वरं कृत्रिमं सदा॥४०॥
परात्परतरं शुद्धं परिपूर्णतमं शिवम्। यथासुखं गच्छ वत्स भगवन्तमधोक्षजम्॥४१॥
कृष्णेति द्व्यक्षरं मन्त्रं गृहाण कृष्णदास्यदम्। पुष्करं दुष्करं गत्वादशलक्षमिमंजप॥
दशलक्षजपेनैव मन्त्रसिद्धिर्भवेत्तव। इत्युक्त्वा सा भगवती तत्रैवान्तरधीयत॥ ४३॥

वैश्यो नत्वाचतांभक्त्याजगामपुष्करंमुने । पुष्करेदुस्तरं तप्त्वा संप्राप कृष्णमीश्वरम् ।
भगवत्याः प्रसादेन कृष्णदासो बभूव सः ॥४४॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे दुर्गोपाख्याने सुरथसमाधिमेधससंवादे प्रकृतिवैश्यसंवादकथनं नाम त्रिषष्टितमोऽध्यायः ।

चतुःषष्टितमोऽध्यायः

राज्ञः सुरथस्य दुर्गापूजनम् ।

नारायण उवाच ।

राजा येन क्रमेणैव भेजे तां प्रकृतिं पराम् । तच्छ्रूयतां महाभाग वेदोक्तं क्रममेव च ॥
स्नात्वाऽऽचम्य महाराजःकृत्वान्यासत्रयंतदा । स्वकराङ्गाङ्गमन्त्राणांभूतशुद्धिंचकारसः
प्राणायामं ततः कृत्वा कृत्वा च शङ्खशोधनम् ।
ध्यात्वा देवीञ्च मृण्मय्यां चकारावाहनं तदा ॥३॥
पुनर्ध्यात्वा च भक्त्या च पूजयामास भक्तितः ।
देव्याश्च दक्षिणे भागे संस्थाप्य कमलालयाम् ॥४॥
संपूज्य भक्तिभावेन भक्त्या परमधार्मिकः । देवषट्कं समावाह्य देव्याश्चपुरतो घटे ॥५
भक्त्या च पूजयामास विधिपूर्वञ्च नारद । गणेशञ्च दिनेशञ्च वह्निं विष्णुंशिवंशिवाम्॥
देवषट्कञ्च संपूज्य नमस्कृत्य विचक्षणः । तदा ध्यायेन्महादेवीं ध्यानेनानेन भक्तितः॥
ध्यानञ्च सामवेदोक्तं परं कल्पतरुं मुने । ध्यायेन्नित्यं महादेवीं मूलप्रकृतिमीश्वरीम् ॥८
ब्रह्मविष्णुशिवादीनां पूज्यां वन्द्यां सनातनीम् ।
नारायणीं विष्णुमायां वैष्णवीं विष्णुभक्तिदाम् ॥९॥
सर्वस्वरूपां सर्वेषां सर्वाधारां परात्पराम् । सर्वविद्यासर्वमन्त्रसर्वशक्तिस्वरूपिणीम् ॥

सगुणां निर्गुणां सत्यां वरां स्वेच्छामयीं सतीम् ।
महाविष्णोश्च जननीं कृष्णस्यार्द्धाङ्गसम्भवाम् ॥११॥
कृष्णप्रियां कृष्णशक्तिं कृष्णबुद्ध्यधिदेवताम् ।
कृष्णस्तुतां कृष्णपूज्यां कृष्णवन्द्यां कृपामयीम् ॥१२॥
तप्तकाञ्चनवर्णाभां कोटिसूर्य्यसमप्रभाम् । ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां भक्तानुग्रहकातराम् ॥
दुर्गां शतभुजां देवीं महद्दुर्गतिनाशिनीम् ।
त्रिलोचनप्रियां साध्वीं त्रिगुणाञ्च त्रिलोचनाम् ॥१४॥
त्रिलोचनप्राणरूपां शुद्धार्द्धचन्द्रशेखराम् । बिभ्रतीं कवरीभारं मालतीमाल्यमण्डितम् ॥
वर्त्तुलं वामवक्त्रञ्चशम्भोर्मानसमोहिनीम् । रत्नकुण्डलयुग्मेन गण्डस्थलविराजिताम् ॥
नासा दक्षिणभागेन बिभ्रतीं गजमौक्तिकम् । अमूल्यरत्नं वहुलं बिभ्रतीं श्रवणोपरि ॥
मुक्तापंक्तिविनिन्द्यैकदन्तपंक्तिसुशोभिताम् । पक्वबिम्बाधरोष्ठीञ्चसुप्रसन्नां सुमङ्गलाम् ॥
चित्रपत्रावलीरम्यकपोलयुगलोज्ज्वलाम् । रत्नकेयूरवलयरत्नमञ्जीररञ्जिताम् ॥ १६ ॥
रत्नकङ्कणभूषाढ्यां रत्नपाशकशोभिताम् ।
रत्नाङ्गुरीयनिकरैः कराङ्गुलिचयोज्ज्वलाम् ॥२०॥
पादाङ्गुलिनखासक्तालक्तरेखासुशोभनाम् । वह्निशुद्धांशुकाधानांगन्धचन्दनचर्च्चिताम् ॥
बिभ्रतीं स्तनयुग्मञ्च कस्तूरीविन्दुशोभिताम् ।
सर्वरूपगुणवतीं गजेन्द्रमन्दगामिनीम् ॥२२॥
अतीव कान्तां शान्ताञ्च नीतान्तां योगसिद्धिषु ।
विधातुश्च विधात्रीञ्च सर्वधात्रीञ्च शङ्करीम् ॥२३॥
शरत्पार्वणचन्द्रास्यामतीव सुमनोहराम् । कस्तूरीविन्दुभिः सार्द्धमधश्चन्दनविन्दुना ॥
सिन्दूरविन्दुना शश्वद् भालमध्यस्थलोज्ज्वलाम् ।
शरन्मध्याह्नकमलप्रभामोचनलोचनाम् ॥ २५ ॥
चारुकज्जलरेखाभ्यांसर्वतश्चसमुज्ज्वलाम् । कोटिकन्दर्पलावण्यलीलानिन्दितविग्रहाम् ॥
रत्नसिंहासनस्थाञ्च सद्रत्नमुकुटोज्ज्वलाम् । स्रष्टौ स्रष्टुः शिल्परूपां दयां पातुश्च पालने ॥

संहारकाले संहर्त्तुः परां संहाररूपिणीम् । निशुम्भशुम्भमथिनीं महिषासुरमर्दिनीम् ॥
पुरा त्रिपुरयुद्धे च संस्तुतां त्रिपुरारिणा । मधुकैटभयोर्युद्धे विष्णुशक्तिस्वरूपिणीम् ॥
सर्वदैत्य निहन्त्रीञ्च रक्तबीजविनाशिनीम् । नृसिंहशक्तिरूपाञ्च हिरण्यकशिपोर्वधे ॥
वराहशक्तिं वाराहे हिरण्याक्षवधे तथा । परब्रह्मस्वरूपाञ्च सर्वशक्तिं सदा भजे ॥३१॥

इति ध्यात्वा स्वशिरसि पुष्पं दत्त्वा विचक्षणः ।
पुनर्ध्यात्वा चैव भक्त्या कुर्य्यादावाहनन्ततः ॥३२॥

प्रकृतेः प्रतिमां धृत्वा मन्त्रमेवं पठेन्नरः । जीवन्यासं ततः कुर्य्यात् मनुमानेनयत्नतः ॥
एह्येहि भगवत्यम्ब शिवलोकात् सनातनि । गृहाण मम पूजाञ्च शारदीयां सुरेश्वरि ॥
इहागच्छ जगत्पूज्ये तिष्ठ तिष्ठ महेश्वरि । हे मातरस्यामर्चायांसन्निरुद्धाभवाम्बिके ॥
इहागच्छन्तु त्वत् प्राणाश्चाधःप्राणैः सहाच्युते । इहागच्छन्तु त्वरितं तवैवसर्वशक्तयः
ओं ह्रींश्रींक्लीं चदुर्गायैवह्निजायान्तमेवच । समुच्चार्य्योरसिप्राणाःसन्तिष्ठन्तुसदाशिवे ॥
सर्वेन्द्रियाधिदेवास्ते इहागच्छन्तु चण्डिके । इहागच्छन्तुतेशक्त्यइहागच्छन्तुईश्वराः ॥
स इहागच्छेत्यावाह्य परिहारं करोति च । मन्त्रेणानेन विप्रेन्द्रतच्छृणुष्व समाहितः ॥
स्वागतं भगवत्यम्ब शिवलोकाच्छिवप्रिये । प्रसादं कुरुमांभद्रेभद्रकालि नमोऽस्तुते ॥
धन्योऽहं कृत्यकृत्योऽहं सफलं जीवनं मम । आगतासियतोदुर्गेमाहेश्वरि मदालयम् ॥

अद्य मे सफलं जन्म सार्थकं जीवनं मम ।
पूजयामि यतो दुर्गां पुण्यक्षेत्रे च भारते ॥४२॥

भारते भवतीं पूज्यां दुर्गां यः पूजयेद्बुधः । सोऽन्तेयातिचगोलोकं परमैश्वर्य्यवानिह
कृत्वाचवैष्णवीपूजांविष्णुलोकंव्रजेत्सुधीः । माहेश्वरीञ्चसंपूज्यशिवलोकञ्चगच्छति ॥
सात्त्विकी राजसीचैवत्रिधापूजाचतामसी । भगवत्याश्चवेदोक्ताचोत्तमामध्यमाधमा ॥
सात्त्विकीवैष्णवानाञ्चशाक्तादीनाञ्चराजसी । अदीक्षितानामसतामन्यानांतामसीस्मृता
जीवहत्याविहीनायावरापूजाचवैष्णवी । वैष्णवा यान्ति गोलोकं वैष्णवीवरदानतः ॥
माहेश्वरी राजसी च बलिदानसमन्विता । शाक्तादयोराजसाश्चकैलासं यान्ति ते तया॥
किराता नरकं यान्ति तामस्या पूजया तया । त्वमेव जगतांमातश्चतुर्वर्गफलप्रदा ॥४६

सर्वशक्तिस्वरूपा च कृष्णस्य परमात्मनः । जन्ममृत्युजराव्याधिहरा त्वञ्चपरात्परा ॥
सुखदा मोक्षदा भद्रा कृष्णभक्तिप्रदा सदा । नारायणि महामाये दुर्गे दुर्गतिनाशिनि ॥
दुर्गेति स्मृतिमात्रेण याति दुर्गं नृणामिह । इति कृत्वा परिहारं देव्यावामे च साधकः
त्रिपद्या उपरिष्टात्तु कुर्य्याच्च शङ्खरक्षणम् । तत्र दत्वा जलं पूर्णं दूर्वां पुष्पञ्च चन्दनम् ॥
धृत्वा दक्षिणहस्तेन मन्त्रमेवं पठेन्नरः ।
पुण्यस्त्वं शङ्ख पुण्यानां मङ्गलानाञ्च मङ्गलम् । प्रभवः शङ्खचूडात्त्वं पुराकल्पे पवित्रकः
ततोऽर्घ्यपात्रं संस्थाप्य विधिनानेन पण्डितः । दत्त्वा संपूजयेद्देवीमुपचाराणि षोड़श
त्रिकोणमण्डलं कृत्वा सजलेन कुशेन च । कूर्मं शेषं धरित्रीञ्च संपूज्य तत्र धार्मिकः
त्रिपदिं स्थापयेत्तत्र त्रिपद्यां शङ्खमेव च । शङ्खे त्रिभागतोयञ्च दत्त्वा संपूजयेत्ततः ॥५७॥
गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति । नर्म्मदे सिन्धु कावेरी चन्द्रभागे च कौशिकि
स्वर्णरेखे कनखले पारिभद्रे च गण्डकि । श्वेतगङ्गे चन्द्ररेखे पम्पे चम्पे च गोमति ॥५६
पद्मावति त्रिपर्णाशे विपाशे विरजे प्रभे । शतह्रदे चेलगङ्गे जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु ॥
वह्निं सूर्य्यञ्च चन्द्रञ्च विष्णुञ्च वरुणं शिवम् । पूजयेत्तत्र तोये च तुलस्या चन्दनेन च ।
नैवेद्यानि च सर्वाणि प्रोक्षयेत्तज्जलेन च ॥६१॥
ततो दद्याच्च प्रत्येकमुपचाराणि षोड़श । आसनं वसनं पाद्यं स्नानीयमनुलेपनम् ॥६२॥
मधुपर्कं गन्धमर्घ्यं पुष्पं नैवेद्यमीप्सितम् । पुनराचमनीयञ्च ताम्बूलं रत्नभूषणम् ॥६३॥
धूपं प्रदीपं तल्पञ्चेत्युपचाराणि षोड़श ॥ ६४ ॥
अमूल्यरत्ननिर्माणं नानाचित्रविराजितम् । वरं सिंहासनश्रेष्ठं गृह्यतां शङ्करप्रिये ॥ ६५॥
अनन्तसूत्रप्रभवमीश्वरेच्छाविनिर्मितम् । ज्वलदग्निविशुद्धञ्च वसनं गृह्यतां शिवे ॥६६॥
अमूल्यरत्नपात्रस्थं निर्मलं जाह्नवीजलम् । पादप्रक्षालनार्थाय दुर्गे पाद्यं प्रगृह्यताम् ॥६७
सुगन्धामलकी स्निग्धद्रवमेव सुदुर्लभम् । सुपक्कं विष्णुतैलञ्च गृह्यतां परमेश्वरि ॥६८॥
कस्तूरी कुङ्कुमाक्तञ्च सुगन्धि चन्दनद्रवम् । सुवासितं जगन्मातर्गृह्यतामनुलेपनम् ॥६६
माध्वीकं रत्नपात्रस्थं सुपवित्रं सुमङ्गलम् । मधुपर्कं महादेवि गृह्यतां प्रीतिपूर्वकम्
वृक्षभेदमूलचूर्णं गन्धद्रव्यसमन्वितम् । सुपवित्रं मङ्गलार्हं देवि गन्धं गृहाण मे ॥७१॥

पवित्रशङ्खपात्रस्थं दूर्वापुष्पाक्षतान्वितम् । स्वर्गमन्दाकिनीतोयमर्घ्यं चण्डि गृहाण मे ॥
सुगन्धिपुष्पश्रेष्ठञ्च पारिजाततरूद्भवम् । मालत्यादिपुष्पमाल्यं गृह्यतां जगदम्बिके ॥

दिव्यं सिद्धान्नमामान्नं पिष्टकं पायसादिकम् ।
मिष्टान्नं लड्डुकफलं नैवेद्यं गृह्यतां शिवे ॥ ७४ ॥

सुवासितं शीततोयं कर्पूरादिसुसंस्कृतम् । मया निवेदितं भक्त्या गृह्यतां शैलकन्यके ॥
गुवाकपर्णचूर्णञ्च कर्पूरादि सुवासितम् । सर्वभोगवरं रम्यं ताम्बूलं देवि गृह्यताम् ॥
अत्यमूल्यरत्नसारनिर्माणमीश्वरेच्छया । सर्वाङ्गशोभनकरं भूषणं देवि गृह्यताम् ॥७७॥
तरुनिर्य्यासचूर्णञ्च गन्धवस्तुसमन्वितम् । हुताशनशिखाशुद्धं धूपञ्च देवि गृह्यताम् ॥
दिव्यरत्नविशेषञ्च सान्द्रध्वान्तनिराकृतम् । सुपवित्रं प्रदीपञ्च गृह्यतां परमेश्वरि ॥७९॥
रत्नसारविनिर्माणं दिव्यं पर्य्यङ्कमुत्तमम् । सूक्ष्मवस्त्रसमाकीर्णं देवि तल्पं प्रगृह्यताम् ॥
एवं संपूज्य तां दुर्गां दद्यात् पुष्पाञ्जलिं मुने । ततोऽष्टनायिका देव्या यत्नतःपरिपूजयेत्

उग्रचण्डां प्रचण्डां च चण्डोग्रां चण्डनायिकाम् ।
अतिचण्डाञ्च चामुण्डां चण्डां चण्डवतीं तथा ॥ ८२ ॥

पद्मे चाष्टदले चैताः प्रागादिक्रमतस्तथा । पञ्चोपचारैः संपूज्य भैरवान्मध्यदेशतः ॥८३
आदौ महाभैरवञ्च संहारभैरवं तथा । असिताङ्गभैरवञ्च रुरुभैरवमेव च ॥ ८४ ॥
ततः कालभैरवञ्च क्रोधभैरवमेव च । ताम्रचूडं चन्द्रचूडमन्ते च भैरवद्वयम् ॥ ८५ ॥
एतान् संपूज्य मध्ये च नवशक्तीश्च पूजयेत् । तत्र पद्मे चाष्टदले मध्ये च भक्तिपूर्वकम्
वैष्णवीञ्चैव ब्रह्माणींरौद्रींमाहेश्वरीं तथा । नारसिंहीञ्चवाराहीमिन्द्राणींकार्त्तिकींतथा
सर्वशक्तिस्वरूपाञ्च प्रधानां सर्वमङ्गलाम् । नवशक्तीश्च संपूज्य घटे देवांश्च पूजयेत् ॥
शङ्करं कार्त्तिकेयञ्च सूर्य्यं सोमं हुताशनम् । वायुञ्च वरुणञ्चैव देव्याश्चेटीं वटुन्तथा
चतुःषष्टियोगिनीञ्च संपूज्य विधिपूर्वकम् । यथाशक्ति बलिंदत्त्वा करोति स्तवनंबुधः
कवचञ्च गले बद्ध्वा पठित्वा भक्तिपूर्वकम् । ततः कृत्वापरीहारंनमस्कुर्य्याद्विचक्षणः
बलिदानविधानञ्च श्रूयतां मुनिसत्तम । मायाति महिषं छागं दद्यान्मेषादिकं शुभम् ॥
सहस्रवर्षं सुप्रीता दुर्गामायाति वाजतः । महिषेण वर्षशतं दशवर्षञ्च छागलात् ॥९२॥

वर्षं मेषेण कूष्माण्डैः पक्षिभिर्हरिणैस्तथा । दशवर्षं कृष्णसारैः सहस्राब्दञ्च गण्डकैः ।
कृत्रिमैः पिष्टनिर्माणैः षण्मासं पशुभिस्तथा । मासं सुपक्कादिफलैरक्षतैरिति नारद ॥
युवकं व्याधिहीनञ्च सश्रृङ्गं लक्षणान्वितम् । विशुद्धमविकाराङ्गं सुपर्णं पुष्टमेव च ॥
शिशुना बलिना दातुर्हन्ति पुत्रञ्च चण्डिका । वृद्धेनैव गुरुजनं कृशेण बान्धवस्तथा ॥
धनञ्चैवाधिकाङ्गेन हीनाङ्गेन प्रजान्तथा । कामिनीं श्रृङ्गभङ्गेन काणेन भ्रातरन्तथा ।९८
घुटिकेन भवेन्मृत्युर्विघ्नश्च चित्रमस्तकैः । हतं मित्रं ताम्रपिष्टैर्भ्रष्टश्रीः पुच्छहीनतः ।९९
मायातीनाञ्च निर्णीतं श्रूयतां मुनिसत्तम । वक्ष्याम्यथर्ववेदोक्तं फलहानिर्व्यतिक्रमे ॥
पितृमातृविहीनञ्च युवकं व्याधिवर्जितम् । विवाहितं दीक्षितञ्च परदारविहीनकम् ॥
अजारजं विशुद्धश्च सच्छूद्रं मूलकं वरम् । तद्वन्धुभ्यो धनं दत्वा क्रीतं मूल्यातिरेकतः
स्नापयित्वाच तं धर्मी संपूज्य वस्त्रचन्दनैः । माल्यैर्धूपैश्च सिन्दूरैर्दधिगोरोचनादिभिः
तश्च वर्षं भ्रामयित्वा चरद्वारेण यत्नतः । वर्षान्तेच समुत्सृज्य दुर्गायै तं निवेदयेत् ॥
अष्टमीनवमीसन्धौ दद्यान्मायातिमेव च । इत्येवं कथितं सर्वं बलिदानं प्रसङ्गतः ॥

बलिं दत्त्वा च स्तुत्वा च धृत्वा च कवचं बुधः ।
प्रणम्य दण्डवद् भूमौ दद्याद्विप्राय दक्षिणाम् ॥ १०६ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे दुर्गोपाख्याने चतुःषष्टितमोऽध्यायः ।

पञ्चषष्टितमोऽध्यायः

दुर्गोपाख्याने ज्ञानकथनम् ।

नारद उवाच ।

श्रुतं सर्वं महाभाग सुधारसपरं वरम् । स्तोत्रञ्च कवचं पूजाफलं कामं वद प्रभो ॥१॥

नारायण उवाच ।

आर्द्रायां बोधयेद्देवीं मूलेनैव प्रवेशयेत् । उत्तरेणार्चनं कृत्वा श्रवणायां विसर्जयेत् ॥२॥

आर्द्राशुक्लनवम्यान्तु कृत्वा देव्याश्च बोधनम् ।
पूजायाः शतवार्षिक्याः फलमाप्नोति मानवः ॥ ३ ॥

मूलायान्तु प्रवेशे च नरमेधफलं लभेत् । उत्तरे पूजनं कृत्वा वाजपेयफलं लभेत् ॥४॥
कृत्वा विसर्जनं देव्याः श्रवणायाञ्चमानवः । लक्ष्मीञ्च पुत्रपौत्राणां लभते नात्रसंशयः
भुवः प्रदक्षिणं पुण्यं पूजायां लभते नरः । नक्षत्रहीने वर्षे चेत् पार्वत्याश्चैव नारद ॥६॥
नवम्यां बोधनं कृत्वा पक्षं संपूज्यमानवः । अश्वमेधफलं लब्ध्वा दशम्याञ्च विसर्जयेत्
सप्तम्यां पूजनं कृत्वा बलिं दद्याद्विचक्षणः । अष्टम्यां पूजनं शस्तं बलिदानविवर्जितम् ॥
अष्टम्यां बलिदानेन विपत्तिर्जायते नृणाम् । दद्याद्विचक्षणो भक्त्यानवम्यां विधिवद्बलिम्
बलिदानेन विप्रेन्द्र दुर्गाप्रीतिर्भवेन्नृणाम् । हिंसाजन्यञ्च पापञ्च लभते नात्रसंशयः ॥१०
उत्सर्गकर्त्ता दाता च छेत्ता पोष्टा च रक्षकः । अग्रपश्चान्निबद्धा च सप्तैते वधभागिनः ॥
यो यं हन्ति सतंहन्ति चेति वेदोक्तमेव च । कुर्वन्ति वैष्णवीं पूजां वैष्णवास्तेन हेतुना
एवं संपूज्य सुरथः पूर्णं वर्षञ्च भक्तितः । कवचञ्च गले बद्ध्वा तुष्टाव परमेश्वरीम् ॥
स्तोत्रेण परितुष्टा सा तस्य साक्षाद्बभूवह । स ददर्श पुरो देवीं ग्रीष्मसूर्य्यसमप्रभाम् ॥
तेजःस्वरूपां परमां सगुणां निर्गुणां वराम् । दृष्ट्वा तां कमनीयाञ्च तेजोमण्डलमध्यतः ॥
स्वेच्छामयीं कृपारूपां भक्तानुग्रहकातराम् । पुनस्तुष्टाव राजेन्द्रो भक्तिनम्रात्मकन्धरः ॥
स्तवेन परितुष्टा सा सस्मिता भक्तिपूर्वकम् । उवाच सत्यं राजेन्द्रं कृपया जगदम्बिका ॥

प्रकृतिरुवाच ।

साक्षात् संप्राप्य मां राजन् वृणोषि विभवं वरम् ।
ददामि तुभ्यं विभवं साम्प्रतं वाञ्छितं तव ॥ १८ ॥

निर्जित्यसर्वान् शत्रूंश्च लभ राज्यमकण्टकम् । भविष्यसि महाराज सावर्णिरष्टमोमनुः
दास्यामि तुभ्यं ज्ञानञ्च परिणामे नराधिप । भक्तिं दास्यञ्च परमे श्रीकृष्णे परमात्मनि ॥

वृणोति विभवं यो हि साक्षान्मां प्राप्य मन्दधीः ।
मायया वञ्चितः सोऽपि विषमत्त्यमृतं त्यजेत् ॥ २१ ॥

ब्रह्मादिस्तम्बपर्य्यन्तं सर्वं नश्वरमेव च । नित्यं सत्यं परं ब्रह्म कृष्णं निर्गुणमेव च ॥

ब्रह्मविष्णुशिवादीनां महमाद्यापरात्परा । सगुणानिर्गुणा चापि वरा स्वेच्छामयीसदा॥
नित्यानित्या सर्वरूपा सर्वकारणकारणा । बीजरूपा च सर्वेषां मूलप्राकृतिरीश्वरी ।२४
पुण्ये वृन्दावने रम्ये गोलोके रासमण्डले । राधा प्राणाधिकाहञ्च कृष्णस्य परमात्मनः
अहं दुर्गा विष्णुमाया बुद्धयधिष्ठातृदेवता । अहं लक्ष्मीश्च वैकुण्ठे स्वयं देवी सरस्वती॥
सावित्री वेदमाताऽहं ब्रह्माणी ब्रह्मलोकतः । अहं गङ्गा च तुलसी सर्वाधारा वसुन्धरा
नानाविधाहं कलया मायया सर्वयोषितः । साहं कृष्णेन सृष्टाच भ्रूभङ्गलीलया नृप॥

भ्रूभङ्गलीलया सृष्टो येन पुंसा महान् विराट् ।
यस्य लोम्नाञ्च कूपेषु विश्वानि सन्ति नित्यशः ॥२६ ॥

असंख्यानिच तान्येवकृत्रिमाणिच मायया । अनित्येषुनित्यबुद्धिं सर्वे कुर्वन्ति सन्ततम्
सप्तसागरसंयुक्ता सप्तद्वीपा वसुन्धरा । तदधः सप्तपातालाः स्वर्लोकाश्चैव सप्त च॥
एवंविश्वञ्च निर्माणं ब्रह्माण्डं ब्रह्मणा कृतम् । प्रत्येकं सर्वब्रह्माण्डे ब्रह्मविष्णुशिवादयः॥
सर्वेषामीश्वरः कृष्ण इति ज्ञानं परात्परम् । वेदानाञ्च व्रतानाञ्च तीर्थानां तपसांतथा॥
देवानाञ्चैव पुण्यानां सारःकृष्ण इतिस्मृतः । तद्भक्तिहीनो यो मूढः सचजीवन्मृतोध्रुवम्
पवित्राणिच तीर्थानि तद्भक्तस्पर्शवायुना । तन्मन्त्रोपासकश्चैव जीवन्मुक्तइति स्मृतः॥
मन्त्रग्रहणमात्रेण नरो नारायणो भवेत् । विना जपेन तपसा विना तीर्थेन पूजया॥
मातामहानां शतकं पितॄणाञ्च सहस्रकम् । पुंसामेवं समुद्धृत्य गोलोकं स च गच्छति॥
इदं ज्ञानं सारभूतं कथितं ते नराधिप । मन्वन्तरान्ते भोगान्ते भक्तिं दास्यामिते हरौ॥
माभुक्तं क्षीयते कर्म्म कल्पकोटिशतैरपि । अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म्म शुभाशुभम्॥

अहं यमनुगृह्णामि तस्मै दास्यामि निर्म्मलाम् ।
निश्चलां सुदृढ़ां भक्तिं श्रीकृष्णे परमात्मनि ॥ ४० ॥

करोमि वञ्चनां यंयं तेभ्योदास्यामि सम्पदम् । प्रातःस्वप्नस्वरूपञ्च मिथ्येतिभ्रमरूपिणीम्
इति ते कथितं ज्ञानं गच्छ वत्स यथासुखम् । इत्युक्त्वाच महादेवी तत्रैवान्तरधीयत॥
राजा संप्राप्य राज्यञ्च नत्वा तां प्रययौगृहम् । इतिते कथितंवत्स दुर्गोपाख्यानमुत्तमम्

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्त महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे दुर्गोपाख्याने प्रकृतिसुरथसंवादे ज्ञानकथनं नाम पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ।

षट्षष्टितमोऽध्यायः

श्रीकृष्णकृतदुर्गास्तोत्रम् ।

नारद उवाच ।

श्रुतं सर्वं नावशिष्टं किञ्चिदेव हि निश्चितम् । प्रकृतेः कवचं स्तोत्रं ब्रूहि मे मुनिसत्तम॥

नारायण उवाच ।

पुरा स्तुता सा गोलोके कृष्णेन परमात्मना । संपूज्य मधुमासे च प्रीतेन रासमण्डले ।
मधुकैटभयोर्युद्धे द्वितीये विष्णुना पुरा ॥ २ ॥

तत्रैव काले सा दुर्गा ब्रह्मणा प्राणसंकटे । चतुर्थे संस्तुता देवी भक्त्याच त्रिपुरारिणा
पुरा त्रिपुरयुद्धेन महाघोरतरे मुने । पञ्चमे संस्तुता देवी वृत्रासुरवधे तथा ॥ ४ ॥
शक्रेण सर्वदेवैश्च घोरे च प्राणसङ्कटे । तदा मुनीन्द्रैर्मनुभिर्मानवैः सुरथादिभिः ॥ ५ ॥
संस्तुतापूजितासा च कल्पेकल्पेपरात्परा । स्तोत्रञ्चश्रूयतांब्रह्मन् सर्वविघ्नविनाशनम् ॥
सुखदं मोक्षदं सारं भवाब्धिपारकारणम् ॥ ६ ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

त्वमेव सर्वजननी मूलप्रकृतिरीश्वरी । त्वमेवाद्या सृष्टिविधौ स्वेच्छया त्रिगुणात्मिका
कार्य्यार्थे सगुणा त्वञ्च वस्तुतो निर्गुणा स्वयम् ।
परब्रह्मस्वरूपा त्वं सत्या नित्या सनातनी ॥ ८ ॥
तेजःस्वरूपा परमा भक्तानुहविग्रहा । सर्वस्वरूपा सर्वेशा सर्वाधारा परात्परा ॥ ६ ॥
सर्वबीजस्वरूपा च सर्वपूज्या निराश्रया । सर्वज्ञा सर्वतोभद्रा सर्वमङ्गलमङ्गला ॥१०॥
सर्वबुद्धिस्वरूपा च सर्वशक्तिस्वरूपिणी । सर्वज्ञानप्रदा देवी सर्वज्ञा सर्वभाविनी ॥११
त्वं स्वाहा देवदाने च पितृदाने स्वधास्वयम् । दक्षिणासर्वदानेचसर्वशक्तिस्वरूपिणी॥
निद्रा त्वञ्च दया त्वञ्च तृष्णा त्वञ्चात्मनश्च मे ।
क्षुत्क्षान्तिः शान्तिरीशा च कान्तिः सृष्टिश्च शाश्वती ॥१३॥
श्रद्धा पुष्टिश्च तन्द्रा च लज्जा शोभा दया सदा । सतांसम्पत्स्वरूपाश्रीविपत्तिरसतामिह
प्रीतिरूपा पुण्यवतां पापिनां कलहाङ्कुरा । शश्वत्कर्ममयीशक्तिःसर्वदा सर्वजीविनाम् ॥

देवेभ्यः स्वपदं दात्री धातुर्धात्री कृपामयी। हिताय सर्वदेवानां सर्वासुरविनाशिनी॥
योगनिद्रा योगरूपा योगदात्री च योगिनाम्।
सिद्धिस्वरूपा सिद्धानां सिद्धिदा सिद्धियोगिनी॥१७॥
माहेश्वरी च ब्रह्माणी विष्णुमाया च वैष्णवी। भद्रदा भद्रकालीचसर्वलोकभयङ्करी॥
ग्रामे ग्रामे ग्रामदेवी गृहदेवी गृहे गृहे। सतां कीर्त्तिः प्रतिष्ठा च निन्दा त्वमसतां सदा
महायुद्धे महामारी दुष्टसंहाररूपिणी। रक्षास्वरूपा शिष्टानां मातेव हितकारिणी॥२०
वन्द्या पूज्या स्तुतात्वञ्चब्रह्मादीनाञ्चसर्वदा। ब्राह्मण्यरूपाविप्राणांतपस्याचतपस्विनाम्
विद्याविद्यावतांत्वञ्चबुद्धिर्बुद्धिमतांसताम्। मेधास्मृतिस्वरूपाचप्रतिभाप्रतिभावताम्॥
राज्ञां प्रतापरूपा च विशां वाणिज्यरूपिणी। सृष्टिस्वरूपा सृष्टौ त्वं रक्षारूपाच पालने
तथान्ते त्वंमहामारीविश्वस्यविश्वपूजिते। कालरात्रिर्म्महारात्रिर्मोहरात्रिश्च मोहिनी॥
दुरत्यया मे माया त्वं यया संमोहितंजगत्। ययामुग्धोहिविद्वांश्चमोक्षमार्गंनपश्यति॥
इत्यात्मना कृतं स्तोत्रं दुर्गायादुर्गनाशनम्। पूजाकालेपठेद्योहिसिद्धिर्भवतिवाञ्छिते॥
वन्ध्या च काकवन्ध्या च मृतवत्सा च दुर्भगा।
श्रुत्वा स्तोत्रं वर्षमेकं सुपुत्रं लभते ध्रुवम्॥२७॥
कारागारे महाघोरे यो बद्धो दृढबन्धने।
श्रुत्वा स्तोत्रं मासमेकं बन्धनान्मुच्यते ध्रुवम्॥२८॥
यक्ष्माग्रस्तो गलत्कुष्ठी महाशूली महाज्वरी।
श्रुत्वा स्तोत्रं वर्षमेकं सद्यो रोगात् प्रमुच्यते॥२९॥
पुत्रभेदे प्रजाभेदे पत्नीभेदे च दुर्गतः। श्रुत्वा स्तोत्रं मासमेकं लभते नात्रसंशयः॥३०
राजद्वारे श्मशाने च महारण्ये रणस्थले। हिंस्रजन्तुसमीपे च श्रुत्वा स्तोत्रंप्रमुच्यते॥
गृहदाहे च दावाग्नौ दस्युसैन्यसमन्विते। स्तोत्रश्रवणमात्रेण लभते नात्र संशयः॥
महादरिद्रो मूर्खश्च वर्षं स्तोत्रं पठेत्तु यः। विद्यावान् धनवांश्चैव सभवेन्नात्रसंशयः॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे प्रकृतिखण्डे दुर्गोपाख्याने दुर्गास्तोत्रं नाम षट्षष्टितमोऽध्यायः।

सप्तषष्टितमोऽध्यायः

प्रकृतिकवचापरनामकं ब्रह्माण्डमोहनकवचम् ।

नारद उवाच ।

भगवन् सर्वधर्म्मज्ञ सर्वज्ञानविशारद । ब्रह्माण्डमोहनं नाम प्रकृतेः कवचं वद ॥ १ ॥

नारायण उवाच ।

शृणु वक्ष्यामि हे वत्स कवचञ्च सुदुर्लभम् । श्रीकृष्णेनैव कथितं कृपया ब्रह्मणे पुरा ॥
ब्रह्मणा कथितं सर्वं धर्माय जाह्नवीतटे । धर्मेण दत्तं मह्यञ्च कृपया पुष्करे प्रभुः ॥३॥
त्रिपुरारिश्च यद्धृत्वा जघान त्रिपुरं पुरा । मुमोच ब्रह्मा यद् धृत्वा मधुकैटभयोर्भयम् ।
संजहार रक्तबीजं यद्धृत्वा भद्रकालिका ॥४॥
यद्धृत्वा तु महेन्द्रश्च संप्राप कमलालयाम् । यद्धृत्वाचमहाकालश्चिरजीवीचधार्मिकः ॥
यद्धृत्वा च महाज्ञानी नन्दी सानन्दपूर्वकम् ।
यद्धृत्वा च महायोद्धा रामः शत्रुभयङ्करः ॥६॥
यद्धृत्वा शिवतुल्यश्चदुर्वासाज्ञानिनांवरः । ओं दुर्गेतिचतुर्थ्यन्तंस्वाहान्तोमेशिरोऽवतु॥
मन्त्रः षडक्षरोऽयञ्च भक्तानां कल्पपादपः । विचारो नास्ति वेदेषु ग्रहणे चमनोर्मुने॥८
मन्त्रग्रहणमात्रेण विष्णुतुल्यो भवेन्नरः । मम वक्त्रं सदापातु ओं दुर्गायैनमोऽन्ततः ॥
ओं दुर्गे रक्ष इति च कण्ठं पातु सदा मम ।
ओं ह्रीं श्रीं इति मन्त्रोऽयं स्कन्धं पातु निरन्तरम् ॥१०॥
ओं ह्रीं श्रीं क्लीं इति पृष्ठञ्च पातु मे सर्वतः सदा ।
ह्रीं मे वक्षस्थलं पातु हस्तं श्रीमितिसन्ततम् ॥११॥
ओं श्रीं ह्रीं श्रीं पातु सर्वाङ्गं स्वप्ने जागरणे तथा ।
प्राच्यां मां पातु प्रकृतिः पातु वह्नौ च चण्डिका ॥१२॥
दक्षिणे भद्रकाली च नैर्ऋते च महेश्वरी । वारुणे पातु वाराही वायव्यां सर्वमङ्गला ॥

उत्तरे वैष्णवी पातु तथैशान्यां शिवप्रिया । जलेस्थलेचान्तरीक्षेपातुमां जगदम्बिका ॥
इति ते कथितं वत्स कवचञ्च सुदुर्लभम् । यस्मैकस्मैनदातव्यंप्रवक्तव्यंनकस्यचित् ॥
गुरुमभ्यर्च्य विधिवद्वस्त्रालङ्कारचन्दनैः । कवचं धारयेद्यस्तु सोऽपि विष्णुर्न संशयः ॥
भ्रमणे सर्वतीर्थानां पृथिव्याश्च प्रदक्षिणे । यत् फलं लभते लोकस्तदेतद्धारणेमुने ॥१७
पञ्चलक्षजपेनैव सिद्धमेतद्भवेद् ध्रुवम् । लोकञ्च सिद्धकवचं नास्त्रं विध्यति सङ्कटे ॥
नतस्यमृत्युर्भवतिजलेवह्नौविशेद्ध्रुवम् । जीवन्मुक्तोभवेत्सोऽपिसर्वसिद्धेश्वरः स्वयम्
यदिस्यात्सिद्धकवचोविष्णुतुल्योभवेद्ध्रुवम् । कथितंप्रकृतेःखण्डंसुधाखण्डात्परं मुने

या एव मूलप्रकृतिर्यस्याः पुत्रो गणेश्वरः ।
कृत्वा कृष्णव्रतं सा च लेभे गणपतिं सुतम् ॥२१॥
स्वांशेन कृष्णो भगवान् बभूव च गणेश्वरः ॥२२॥

श्रुत्वाचप्रकृतेःखण्डं सुश्रवञ्चसुधोपमम् । भोजयित्वाचदध्यन्नंतस्मैदद्याच्चकाञ्चनम्
सवत्सां सुरभीं रम्यां दद्याच्च भक्तिपूर्वकम् ॥२३॥
वासोऽलङ्काररत्नैश्च तोषयेद्वाचकं मुने । पुष्पालङ्कारवसनैर्नानोपाहारसंयुतैः ॥२४॥
पुस्तकं पूजयेदेवं भक्तिश्रद्धासमन्वितः । एवं कृत्वा यःश्रृणोतितस्यविष्णुः प्रसीदति॥
वर्द्धते पुत्रपौत्रादिर्यशस्वी तत्प्रसादतः । लक्ष्मीर्वसति तद्गेहेह्यन्तेगोलोकमाप्नुयात् ॥
लभेत् कृष्णस्य दास्यं स भक्तिं कृष्णे सुनिश्चलाम् ॥२६॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे प्रकृतिखण्डे दुर्गोपाख्याने
प्रकृतिकवचं नाम सप्तषष्टितमोऽध्यायः ।

समाप्तश्चायं प्रकृतिखण्डः ।

———

* श्रीगणेशायनमः *

अथ तृतीयं गणपतिखण्डम्

प्रथमोऽध्यायः

गणेशजन्मविषयकप्रश्नविचारः ।

नारायणं नमस्कृत्य नरञ्चैव नरोत्तमम् । देवीं सरस्वतीञ्चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥१॥

नारद उवाच ।

श्रुतं प्रकृतिखण्डं तदमृतार्णवमुत्तमम् । सर्वोत्कृष्टमीप्सितञ्च मूढ़ानां ज्ञानवर्द्धनम् ॥

अधुना श्रोतुमिच्छामि गणेशखण्डमीश्वर । तज्जन्मचरितं नृणां सर्वमङ्गलमङ्गलम् ॥३॥

कथं जज्ञे सुरश्रेष्ठः पार्वत्या उदरे शुभे । देवी केन प्रकारेण ललाभ तादृशं सुतम् ॥४॥

सचांशःकस्य देवस्य कथंजन्मललाभसः । अयोनिसम्भवःकिंवाऽसौचकिंयोनिसम्भवः

किं वा तद् ब्रह्मतेजो वा किं तस्य च पराक्रमः ।

का तपस्या च कि ज्ञानं किं वा तन्निर्म्मलं यशः ॥६॥

कथं तस्य पुरः पूजा विश्वेषु निखिलेषु च । स्थिते नारायणेशम्भौजगदीशेचब्रह्मणि ॥

पुराणेषु निगूढ़ञ्च तज्जन्म परिकीर्तितम् । कथं वा गजवक्त्रोऽयमेकदन्तो महोदरः ॥

एतत् सर्वं समाचक्ष्व श्रोतुं कौतूहलं मम । सुविस्तीर्णं महाभाग तद्तीव मनोहरम् ॥

श्रीनारायण उवाच ।

शृणु नारद वक्ष्यामि रहस्यं परमाद्भुतम् । पापसन्तापहरणं सर्वविघ्नविनाशनम् ॥१०॥

सर्वमङ्गलदं सारं सर्वश्रुतिमनोहरम् । सुखदं मोक्षबीजञ्च पापमूलनिकृन्तनम् ॥ ११ ॥

दैत्यार्दितानां देवानां तेजोराशिसमुद्भवा । देवी संहृत्य दैत्यौघान् दक्षकन्या बभूव ह

सा च नाम्नासती देवीस्वामिनोनिन्दया पुरा । देहं संत्यज्य योगेन जाताशैलप्रियोदरे

शङ्कराय ददौ ताञ्च पार्वतीं पर्वतो मुदा। तां गृहीत्वा महादेवो जगाम निर्जनं वनम्।
शय्यां रतिकरीं कृत्वा पुष्पचन्दनचर्चिताम्। स रेमे नर्म्मदातीरे पुष्पोद्याने तया सह।
सहस्रवर्षपर्य्यन्तं देवमानेन नारद। तयोर्बभूव शृङ्गारं विपरीतादिकं परम्॥ १६॥

दुर्गाङ्गस्पर्शमात्रेण कामेन मूर्च्छितः शिवः।
मूर्च्छिता सा शिवस्पर्शाद् बुबुधे न दिवानिशम्॥ १७॥

हंसकारण्डवाकीर्णे पुंस्कोकिलरुतश्रुते। नानापुष्पविकसिते भ्रमरध्वनिसंयुते॥१८॥
सुगन्धिकुसुमाक्तेन वायुना सुरभीकृते। अतीव सुखदे तत्र सर्वजन्तुविवर्जिते॥ १६॥
दृष्ट्वा तयोस्तच्छृङ्गारं चिन्तांप्रापुःसुराःपराम्। ब्रह्माणञ्चपुरस्कृत्य ययुर्नारायणान्तिकम्
तं नत्वा कथयामास ब्रह्मावृत्तान्तमीप्सितम्। संतस्थुर्देवताः सर्वाश्चित्तपुत्तलिकायथा

ब्रह्मोवाच।

सहस्रवर्षपर्य्यन्तं देवमानेन शङ्करः। रतौ रतश्च निश्चेष्टो न योगी विरराम ह॥ २२॥
मैथुनस्य विरामे च दम्पत्योर्जगदीश्वर। किं भूतं भवितापत्यं तथ्यं कथितुमर्हसि॥

श्रीभगवानुवाच।

चिन्ता नास्ति जगद्धातः सर्वं भद्रंभविष्यति। मयि ये शरणापन्नास्तेषां दुःखंकुतोविधे
येनोपायेन तद्वीर्य्यं भूमौ पतति निश्चितम्। तत्कुरुष्व प्रयत्नेन सार्द्धं देवगणेन च।२५।
यदा च शम्भोर्वीर्य्यन्तत्पार्वत्या उदरे पतेत्। ततोऽपत्यञ्च भविता सुरासुरविमर्दकम्
ततः शक्रादयः सर्वे सुरा नारायणाज्ञया। प्रययुर्नर्म्मदातीरं ययौ ब्रह्मा निजालयम्।२७
तत्रैव पर्वतद्रोणी वहिर्देशे सुराः पराः। विषण्णवदनाः सर्वे बभूवुर्भयकातराः॥ २८॥
शक्रोराजा कुवेरञ्च कुबेरो वरुणन्तथा। समीरणं च वरुणो यमं समीरणस्तथा॥२६॥
हुताशनं यमश्चैव भास्करञ्च हुताशनः। चन्द्रं तथा भास्करश्च ईशानं चन्द्र एव च॥
एवं देवाः प्रेरयन्ति देवांश्च रतिभञ्जने। हरश्रृङ्गारभङ्गञ्च कुर्वित्युक्त्वा परस्परम्॥ ३१॥

द्वारस्थितो वक्रशिराः शक्रः प्राह महेश्वरम्॥३२॥

इन्द्र उवाच।

किङ्करोषि महादेव योगीश्वर नमोऽस्तु ते। जगदीश जगद्बीज भक्तानां भयभञ्जन॥

हरिर्जगामेत्युक्त्वैवमाजगाम च भास्करः। उवाच भीतो द्वारस्थो भयार्त्तो वक्रचक्षुषा

श्रीसूर्य्य उवाच।

किङ्करोषि महादेव जगतां परिपालक। सुरश्रेष्ठ महाभाग पार्वतीश नमोऽस्तुते ॥३५॥
इत्येवमुक्त्वा श्रीसूर्य्यः प्रजगाम भयात्ततः। आजगाम तथा चन्द्र उवाच वक्रकन्धरः ॥

चन्द्र उवाच।

किङ्करोषि त्रिलोकेश त्रिलोचन नमोऽस्तुते। आत्माराम पूर्णकाम पुण्यश्रवणकीर्त्तन
इत्येवमुक्त्वा भीतश्च विरराम निशापतिः। संवीक्ष्योवाच द्वारस्थः स्वयमेव समीरणः

पवन उवाच।

किङ्करोषि जगन्नाथ जगद्बन्धो नमोऽस्तु ते। धर्मार्थकाममोक्षाणां वीजरूप सनातन
इत्येवं स्तवनं श्रुत्वा योगज्ञानविशारदः। त्यक्तुकामो न तत्याजशृङ्गारंपार्वतीभयात् ॥
दृष्ट्वा सुरान् भयार्त्तांश्चपुनःस्तोतुंसमुद्यतान्। विजहौ सुखसम्भोगंकण्ठलग्नाञ्चपार्वतीम्
उत्तिष्ठतो महेशस्य त्रस्तस्य लज्जितस्य च। भूमौ पपात तद्वीर्य्यं ततः स्कन्दो वभूव ह
पश्चात्तां कथयिष्यामिकथामतिमनोहराम्। स्कन्दजन्मप्रसङ्गे च साम्प्रतंवाञ्छितंशृणु

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे गणपतिखण्डे नारायणनारदसंवादे शंकरपार्वती-
समागमवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः।

द्वितीयोऽध्यायः

क्रीडाविरतेन शिवेन देवदर्शनम्।

नारायण उवाच।

त्यक्त्वा रतिं महादेवो ददर्श पुरतः सुरान्। पलायध्वमित्युवाच कृपया पार्वतीभयात्
देवाः पलायिता भीताः पार्वतीशापहेतुना। ब्रह्माण्डसर्वसंहर्त्ता चकम्पे पार्वतीभयात्
तल्पादुत्थाय सा दुर्गा न च दृष्ट्वा पुरः सुरान्। समुत्थितं कोपवह्निस्तम्भयामासदेहतः
अद्य प्रभृति ते देवा व्यर्थवीर्य्या भवन्त्विति। शशाप देवी तान्देवानतिरुष्टा वभूव ह

ततः शिवः शिवां दृष्ट्वा क्रोधसंरक्तलोचनाम् । रुदन्तीं नम्रवदनां लिखन्तीं धरणीतलम्।
शिवस्तां दुःखितां दृष्ट्वा क्रोधसंरक्तलोचनाम् । हस्तेगृहीत्वा देवेशो वासयामासवक्षसि
अतीव भीतः संत्रस्त उवाच मधुरं वचः ॥७॥

शङ्कर उवाच।

कथं रुष्टा गिरिश्रेष्ठकन्ये धन्ये मनोहरे। मम सौभाग्यरूपे च प्राणाधिष्ठातृदेवते ॥
किन्तेऽभीष्टं करिष्यामि वद मां जगदम्बिके ॥ ८ ॥
ब्रह्माण्डसङ्घनिखिले किमसाध्यमिहावयोः । अहो निरपराधं मां प्रसन्ना भव सुन्दरि।
दैवादज्ञातदोषस्य शान्तिं मे कर्त्तुमर्हसि। त्वया युक्तः शिवोऽहञ्च सर्वेषां शिवदायकः
त्वयाविनाहीश्वरश्चशवतुल्योऽशिवः सदा। प्रकृतिस्त्वञ्चबुद्धिस्त्वंशक्तिस्त्वञ्चक्षमादया
तुष्टिस्त्वञ्च तथापुष्टिःशान्तिस्त्वं क्षान्तिरेवच। क्षुत्त्वंछायातथानिद्रातन्द्राश्रद्धासुरेश्वरी
सर्वाधारस्वरूपा त्वं सर्ववीजस्वरूपिणी। स्मितपूर्वं वद वचः साम्प्रतं सरसं शिवे।
त्वत्कोपविषसंदग्धं तेन जीवय मां मृतम् ॥ १४ ॥
शङ्करस्य वचः श्रुत्वा कोपयुक्ता च पार्वती। उवाच मधुरं देवी हृदयेन विदूयता ॥१५॥

पार्वत्युवाच।

किन्त्वाहं कथयिष्यामि सर्वज्ञं सर्वरूपिणम्। आत्मारामं पूर्णकामं सर्वदेहेष्ववस्थितम्
कामिनी मानसं काममप्रज्ञं स्वामिनं वदेत्। सर्वेषां हृदयज्ञश्च हृदीष्टं कथयामि किम्।
सुगोप्यं सर्वनारीणां लज्जाजनककारणम्। अकथ्यमपि सर्वासां तथापि कथयामि ते
सुखेषु मध्ये स्त्रीणाञ्च विभवेषु सुरेश्वर। सत्पुंसा सह सम्भोगो निर्जनेषु परं सुखम्।
तद्भङ्गेन च यद्दुःखंतत्समंनास्ति च स्त्रियाः। कान्तानांकान्तविच्छेदःशोकःपरमदारुणः
कृष्णपक्षे यथा चन्द्रः क्षीयमाणो दिने दिने।
तथा कान्तं विना कान्ता क्षीणा कान्त क्षणे क्षणे ॥ २१ ॥
चिन्ताज्वरश्च सर्वेषामुपतापश्चवाससाम्। साध्वीनां कान्तविच्छेदस्तुरगानाञ्चमैथुनम्
रतिभङ्गो दुःखमेकं द्वितीयं वीर्यप्रपातनम्। दुःखातिरेकदुःखञ्च तृतीयमनपत्यता ॥२३
त्रैलोक्यकान्तं कान्तस्वालम्भ्यापिनचमेसुतः। या स्त्री पुत्रविहीनाचजीवनंतन्निरर्थकम्

जन्मान्तरसुखं पुण्यं तपोदानसमुद्भवम्। सद्वंशजातपुत्रश्च परत्रेह सुखप्रदः ॥
सुपुत्रः स्वामिनोंऽशश्च स्वामितुल्यसुखप्रदः। कुपुत्रश्च कुलाङ्गारो मनस्तापायकेवलम्।
स्वामी स्वांशेन स्वस्त्रीणां गर्भे जन्म लभेद् ध्रुवम्।
साध्वी स्त्री मातृतुल्या च सततं हितकारिणी ॥ २७ ॥
असाध्वी वैरितुल्याचशश्वत्सन्तापदायिनी। मुखदुष्टायोनिदुष्टाचैवासाध्वीतिहिस्मृता
किमुपायं करिष्यामि वद योगीश्वरेश्वर। उपायसिन्धो तपसां सर्वेषाञ्च फलप्रद ॥
इत्युक्त्वा पार्वतीदेवी नम्रवक्त्रा बभूव ह।
प्रहस्य शङ्करोदेवो बोधयामास पार्वतीम्। सत्पुत्रबीजं सुखदं सन्तापनाशकारणम्।
मितं स्निग्धं सुरुचिरं प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥ ३१ ॥
इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारद संवादे गणपतिखण्डे शिवाशिवयोः
पुत्रमुपलक्ष्यसम्वादवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः।

तृतीयोऽध्यायः

पार्वतीम्प्रति हरिव्रतकरणाय शिवस्योपदेशः।

श्रीमहादेव उवाच।

शृणु पार्वति वक्ष्यामि तव भद्रं भविष्यति। उपायतः कार्य्यसिद्धिर्भवेदेव जगत्त्रये ॥
सर्ववाञ्छितसिद्धेस्तु बीजरूपं सुमङ्गलम्। मनसः प्रीतिजननमुपायं कथयामि ते ॥२॥
हरेराराधनं कृत्वा व्रतं कुरु वरानने। व्रतञ्च पुण्यकं नाम वर्षमेकं करिष्यसि ॥ ३ ॥
महाकठोरबीजञ्च वाञ्छाकल्पतरुं परम्। सुखदं पुण्यदं सारं पुत्रदं सर्वसम्पदम् ॥४॥
नदीनाञ्च यथा गङ्गा देवानाञ्च हरिर्यथा। वैष्णवानां यथाहञ्च देवीनां त्वं यथाप्रिये ॥
आश्रमाणांयथा विप्रस्तीर्थानां पुष्करो यथा। पुष्पाणांपारिजातञ्चपत्राणांतुलसी यथा
यथा पुण्यप्रदानाञ्च तिथिरेकादशी स्मृता। रविवारश्च वाराणां यथा पुण्यप्रदः शिवे ॥
मासानां मार्गशीर्षश्चऋतूनांमाधवोयथा। संवत्सरोवत्सराणांयुगानाञ्चकृतंयथा ॥८॥

विद्याप्रदश्च पूज्यानां गुरूणां जननी यथा।
साध्वी पत्नी यथाप्तानां विश्वस्तानां मनो यथा ॥ ६ ॥

यथा धनानां रत्नञ्च प्रियाणाञ्च यथा पतिः। यथापुत्रश्च बन्धूनां वृक्षाणां कल्पपादपः॥
चूतफलं फलानाञ्च वर्षाणां भारतं यथा। वृन्दावनं वनानाञ्च शतरूपाच योषिताम्॥
यथाकाशी पुरीणाञ्च सूर्य्यस्तेजस्विनांयथा। यथेन्दुःसुखदानाञ्च सुन्दराणाञ्चमन्मथः॥

शास्त्राणाञ्च यथा वेदाः सिद्धानां कपिलो यथा।
हनूमान् वानराणाञ्च क्षेत्राणां ब्राह्मणाननम् ॥ १३ ॥

यशोदानां यथा विद्या कविताच मनोहरा। आकाशोव्यापकानाञ्च ह्यङ्गानां लोचनं यथा
विभवानां हरिकथासुखानां हरिचिन्तनम्। स्पर्शानांपुत्रसंस्पर्शो हिंस्रानाञ्च यथा खलः
पापानाञ्चयथामिथ्यापापिनांपुंश्चलीयथा। पुण्यानाञ्चयथा सत्यं तपसां हरिसेवनम्॥
यथाघृतञ्च गव्यानांयथा ब्रह्मातपस्विनाम्। अमृतं भक्ष्यवस्तूनां शस्यानां धान्यकंयथा
पुण्यदानां यथा तोयं शुद्धानाञ्च हुताशनः। सुवर्णं तैजसानाञ्च मिष्टानां प्रियभाषणम्
गरुड़ः पक्षिणाञ्चैव हस्तिनामिन्द्रवाहनः। योगिनाञ्च कुमारश्चदेवर्षीणाञ्च नारदः॥

गन्धर्वाणां चित्ररथो जीवो बुद्धिमतां यथा।
सुकवीनां यथा शुक्रः काव्यानाञ्च पुराणकम् ॥२०॥
स्रोतःस्वतां समुद्रश्च यथा पृथ्वी क्षमावताम्।
लाभानाञ्च यथा मुक्तिर्हरिभक्तिश्च सम्पदाम् ॥ २१ ॥

पवित्राणांवैष्णवाश्च वर्णानां प्रणवोयथा। विष्णुमन्त्रश्चमन्त्राणां बीजानां प्रकृतिर्यथा
विदुषाञ्चयथा वाणीगायत्री छन्दसांयथ। यथा कुवेरोयक्षाणां सर्पाणां वासुकिर्यथा॥
यथा पिता ते शैलानां गवाञ्च सुरभिर्यथा। वेदानां सामवेदश्च तृणानाञ्च यथा कुशः॥
सुखदानां यथा लक्ष्मीर्मनश्च शीघ्रगामिनाम्। अक्षाराणामकारश्च हितैषिणांपितायथा॥
शालग्रामश्च यन्त्राणां पशूनां विष्णुपञ्जरः। चतुष्पदानांपञ्चास्यो मानवो जीविनांयथा
यथा स्वान्तमिन्द्रियाणां मन्दाग्निश्चरुजांयथा। बलिनाञ्च यथाशक्तिरहंशक्तिमतांयथा॥
महान्विराट्च स्थूलानां सूक्ष्माणांपरमाणुकः। यथेन्द्रआदितेयानां दैत्यानाञ्चबलिर्यथा

प्रह्लादश्चैवसाधूनां दातॄणांदधीचिर्यथा। ब्रह्मास्त्रञ्चयथास्त्राणां चक्राणाञ्चसुदर्शनम्॥
नृणांराजारामचन्द्रो धन्विनां लक्ष्मणो यथा। सर्वाधारः सर्वसेव्यः सर्वबीजञ्चसर्वदः
सर्वसारो यथा कृष्णो व्रतानां पुण्यकं यथा॥ ३० ॥
व्रतं कुरु महाभागे त्रिषु लोकेषु दुर्लभम्। सर्वसारञ्च पुत्रस्ते व्रतादेव भविष्यति॥
व्रताराध्यश्च श्रीकृष्णः सर्वेषां वाञ्छितप्रदः।
जनो यत्सेवनान्मुक्तः पितृभिः कोटिभिः सह॥ ३२ ॥
हरिमन्त्रं गृहीत्वाच हरिसेवां करोति यः। भारते जन्मसफलं स्वात्मनः स करोति च
उद्धृत्य कोटिपुरुषान् वैकुण्ठं याति निश्चितम्। श्रीकृष्णपार्षदो भूत्वा सुखंतत्रैवमोदते
सहोदरान्स्वभृत्यांश्च स्वबन्धून्सहचारिणम्। स्वस्त्रियञ्च समुद्धृत्यभक्तोयातिहरेःपरम्
तस्माद् गृहाण गिरिजे हरेर्म्मन्त्रं सुदुर्लभम्। जपमन्त्रं व्रतेतत्र पितॄणां मुक्तिकारणम्
इत्युक्त्वा शङ्करो देवो गत्वा गिरिजया सह। शीघ्रञ्च जाह्नवीतीरं हरेर्म्मन्त्रं मनोहरम्॥
तस्यै ददौ च संप्रीत्या कवचं स्तोत्रसंयुतम्। पूजाविधाननियमं कथयामास तां मुने॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे गणपतिखण्डे
हरिव्रतफलवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः।

चतुर्थोऽध्यायः

शिवेनपार्वत्यै व्रतोपकरणकथनम्।

नारायण उवाच।

श्रुत्वा व्रतविधानञ्च दुर्गा प्रहृष्टमानसा। सर्वं व्रतविधानञ्च संप्रष्टुमुपचक्रमे॥ १ ॥

पार्वत्युवाच।

सर्वं व्रतविधानं मां वद वेदविदां वर। हे नाथ करुणासिन्धो दीनबन्धो परात्पर॥२
कानि व्रतोपयुक्तानि द्रव्याणि च फलानि च। समयं नियमं भक्ष्यंविधानंतत्फलंप्रभो
देहि महां विनीतायै नियुक्तंसत्पुरोहितम्। पुष्पोपहारान्विप्रांश्च द्रव्याहरणकिङ्करान्॥

अन्यानि चोपयुक्तानिमयाज्ञातानियानिच । सन्नियोजयतत्सर्वंस्त्रीणांस्वामीचसर्वदः ॥
पिता कौमारकाले चसर्वपालनकारकः । भर्त्ता मध्ये सुतःशेषेत्रिधावस्था च योषिताम्

तातोऽशोकः प्राणतुल्यां दत्त्वा सत्स्वामिने सुताम् ।
स्वामी निर्वृतिमाप्नोति संन्यस्य स्वसुते प्रियाम् ॥७॥

बन्धुत्रययुता या स्त्रीसाचभाग्यवतीपरा । किञ्चिद्विहीनामध्याचसर्वहीनाऽधमा भुवि ॥
एतेषाञ्च समीपस्था प्रशंस्या सा जगत्त्रये । निन्दितान्येषु संन्यस्तासर्वमेतच्छ्रुतौश्रुतम्
सर्वात्मा भगवांस्त्वञ्च सर्वसाक्षीचसर्ववित् । देहिमह्यंपुत्रवरंस्वात्मनिर्वृतिहेतुकम् ॥
स्वात्मबोधानुमानेनमहात्मनिनिवेदितम् । सर्वान्तराभिप्रायज्ञंबोधज्ञंबोधयामि किम्॥

इत्युक्त्वा पार्वती प्रीत्या पपात स्वामिनः पदे ।
कृपासिन्धुश्च भगवान् प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥१२॥

श्रीमहादेव उवाच ।

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि विधानं नियमं फलम् ।
फलानि चैव द्रव्याणि व्रतोपयौगिकानि च ॥१३॥

विप्राणां शतकं शुद्धं फलपुष्पोपहारकम् । किङ्कराणाञ्च शतकंद्रव्याहरणकारकम् ॥१४
दासीनां शतकं लक्ष्यं नियुक्तञ्च पुरोहितम् । सर्वव्रतविधानज्ञं वेदवेदान्तपारगम् ॥१५॥
प्रवरं हरिभक्तानां सर्वज्ञं ज्ञानिनां वरम् । सनत्कुमारं मत्तुल्यं गृहाण व्रतहेतवे ॥१६॥
देवि शुद्धे च काले च परं नियमपूर्वकम् । माघशुक्लत्रयोदश्यां व्रतारम्भः शुभः प्रिये ॥
गात्रं सुनिर्म्मलं कृत्वा शिरः संस्कारपूर्वकम् । उपोष्यपूर्वदिवसे वस्त्रंप्रक्षाल्ययत्नतः॥
अरुणोदयवेलायां तल्पादुत्थाय सुव्रती । मुखप्रक्षालनं कृत्वा स्नात्वाचनिर्म्मलेजले॥१६
आचम्य यत्नपूतो हि हरिस्मरणपूर्वकम् । दत्त्वार्घ्यं हरयेभक्त्यागृहमागत्यसत्वरम् ॥

धौते च वाससी धृत्वा उपविश्यासने शुचौ ।
आचम्य तिलकं कृत्वा निर्वाप्यस्त्वाह्निकं पुनः ॥२१॥

घटमारोपणं कृत्वा स्वस्तिवाचनपूर्वकम् । पुरोहितस्य वरणं पुरः कृत्वा प्रयत्नतः ।

सङ्कल्प्य वेदविहितं व्रतमेतत् समाचरेत् ॥२३॥

व्रते द्रव्याणि नित्यानि चोपचाराणि षोड़श।
देयानि नित्यं देवेशि कृष्णाय परमात्मने ॥२३॥
आसनं स्वागतं पाद्यमर्घ्यमाचमनीयकम् ॥२४॥
मधुपर्कश्च स्नानीयं वस्त्राणि भूषणानि च। सुगन्धिपुष्पधूपश्च दीपनैवेद्यचन्दनम् ॥२५॥
यज्ञसूत्रश्च ताम्बूलं कर्पूरादिसुवासितम्। द्रव्याण्येतानि पूजायाश्चाङ्गरूपाणि सुन्दरि ॥
देवि किञ्चिद्विहीनेनैवाङ्गहानिः प्रजायते। अङ्गहीनश्च यत् कर्म्म चाङ्गहीनो यथा नरः॥
अङ्गहीने च कार्य्ये च फलहानिः प्रजायते ॥२७॥
अष्टोत्तरशतं पुष्पं पारिजातस्य विष्णवे। देयं प्रतिदिनं दुर्गे स्वात्मनो रूपहेतवे ॥२८॥
श्वेतचम्पकपुष्पाणां लक्षमक्षतमीप्सितम्। प्रदेयं हरये भक्त्या वर्णसौन्दर्य्यहेतवे॥२६।
सहस्रपत्रं पद्मानामक्षतं पुष्पलक्षकम्। भक्त्या देयञ्च हरये मुखसौन्दर्य्यहेतवे ॥३०॥
अमूल्यरत्नरचितं दर्पणानां सहस्रकम्। देयं नारायणायैव नेत्रयोर्दीप्तिहेतवे ॥३१॥
नीलोत्पलानां लक्षञ्च देयं कृष्णाय भक्तितः। व्रताङ्गभूतं देवेशि चक्षुषो रूपहेतवे ॥३२
हिमालयोद्भवं लक्षं रुचिरं श्वेतचामरम्। प्रदेयं केशवायैव केशसौन्दर्य्यहेतवे ॥३३॥
अमूल्यरत्नरचितं पुटकानां सहस्रकम्। प्रदेयं गोपिकेशाय नासिकारूपहेतवे ॥३४॥
वन्धूकपुष्पलक्षञ्च देयं राधेश्वराय च। सौम्यौष्ठाधरयोश्चैव वर्णसौन्दर्य्यहेतवे ॥३५
मुक्ताफलानां लक्षञ्च दन्तसौन्दर्य्यहेतवे। देयं गोलोकनाथाय शैलजे भक्तिपूर्वकम् ॥
रत्नगण्डूकलक्षञ्च गण्डसौन्दर्य्यहेतवे। मदीश्वराय दातव्यं व्रते शैलेन्द्रकन्यके ॥३७॥
रत्नपाशकलक्षञ्च देयं ब्रह्मेश्वराय च। ओष्ठाधःस्थलरूपाय प्राणेशि भक्तितो व्रती ॥३८
कर्णभूषणलक्षञ्च रत्नसारविनिर्म्मितम्। देयं सर्वेश्वरायैव कर्णसौन्दर्य्यहेतवे ॥३६॥
माध्वीककलसानाञ्च लक्षं रत्नविनिर्म्मितम्। देयंविश्वेश्वरायैव स्वरसौन्दर्य्यहेतवे ॥
सुधापूर्णञ्च कुम्भानां सहस्रं रत्ननिर्म्मितम्।
देयं कृष्णाय देवेशि वाक्यसौन्दर्य्यहेतवे ॥४१॥
रत्नप्रदीपलक्षञ्च गोपवेशविधायिने। देयं किशोरवेशाय दृष्टिसौन्दर्य्यहेतवे ॥४२॥
धुस्तूरकुसुमाकारं रत्नपात्रसहस्रकम्। देयं गोरक्षकायैव गलसौन्दर्य्यहेतवे ॥ ४३ ॥

सद्रत्नसाररचितं पद्मनालसहस्रकम् । देयं चण्डकपालाय बाहुसौन्दर्य्यहेतवे ॥ ४४ ॥
लक्षञ्च रक्तपद्मानां करसौन्दर्य्यहेतवे । देयं गोपाङ्गनेशाय नारायणि हरिव्रते ॥४५ ॥
अङ्गुरीयकलक्षञ्च रत्नसारविनिर्म्मितम् । अङ्गुलीनाञ्च रूपार्थं देयं देवेश्वराय च ॥४६
मणीन्द्रसारलक्षञ्च श्वेतवर्णं मनोहरम् । देयं मुनीन्द्रनाथाय नखसौन्दर्य्यहेतवे ॥४७॥
सद्रत्नसारहाराणां लक्षञ्चातिमनोहरम् । देयं मदनमोहाय वक्षःसौन्दर्य्यहेतवे ॥ ४८ ॥
सुपक्वश्रीफलानाञ्च लक्षञ्च सुमनोहरम् । देयं सिद्धेन्द्रनाथाय स्तनसौन्दर्य्यहेतवे ॥४६
सद्रत्नवर्त्तुलाकारं पात्रं लक्षं मनोहरम् । देयं पद्मालयेशाय देहस्य रूपहेतवे ॥ ५० ॥
सद्रत्नसाररचितं नाभीनाञ्च सहस्रकम् । प्रदेयं पद्मनाभाय नाभिसौन्दर्य्यहेतवे ॥५१॥
सद्रत्नसाररचितं नखचन्द्रसहस्रकम् । नितम्बसौन्दर्य्यार्थञ्च प्रदेयंचक्रपाणये ॥ ५२ ॥
सुवर्णरम्भास्तम्भानां लक्षञ्च सुमनोहरम् । प्रदेयं श्रीनिवासाय श्रोणिसौन्दर्य्यहेतवे ॥
शतपत्रस्थलाब्जानां लक्षमम्लानमक्षतम् । प्रदेयं पद्मनेत्राय पादसौन्दर्य्यहेतवे ॥ ५४ ॥
सुवर्णरचितानाञ्च खञ्जनानां सहस्रकम् । गतिसौन्दर्य्यहेत्वर्थं देयं लक्ष्मीश्वराय च ॥
राजहंससहस्रञ्च गजेन्द्राणां सहस्रकम् । सुवर्णरचितं देयं हरये गतिहेतवे ॥ ५६ ॥
सुवर्णछत्रलक्षञ्च देयं नारायणाय च । विचित्रंरत्नसारेण मूर्द्धसौन्दर्य्यहेतवे ॥५७ ॥
मालतीनाञ्च कुसुममक्षतं लक्षमीश्वरि । देयं वृन्दावनेशाय हास्यसौन्दर्य्यहेतवे ॥५८॥
अमूल्यरत्नलक्षञ्च देयं नारायणाय वै । सुव्रते व्रतपूर्णार्थं शीलसौन्दर्य्यहेतवे ॥ ५६ ॥
स्वच्छस्फटिकसङ्काशं मणीन्द्रसारलक्षकम् । देयं मुनीन्द्रनाथाय मनःसौन्दर्य्यहेतवे ॥
प्रवालसारसङ्काशं मणिसारसहस्रकम् । देयं कृष्णाय भक्त्या च प्रियानुरागवृद्धये ॥६१
माणिक्यसारलक्षञ्च देयंकृष्णाययत्नतः । जन्मनःकोटिपर्य्यन्तं स्वामिसौभाग्यहेतवे ॥
कुष्माण्डं नारिकेलञ्च जम्बीरं श्रीफलन्तथा । फलान्येतानि देयानि हरये पुत्रहेतवे ॥
रत्नेन्द्रसार लक्षञ्च देयं कृष्णाय यत्नतः । असंख्यजन्मपर्य्यन्तं स्वामिनो धनवृद्धये ॥
वाद्यं नानाप्रकारञ्च कांस्यतालादिकं परम् । व्रते सम्पत्तिवृद्ध्यर्थं श्रीहरिं श्रावयेद् व्रती
पायसं पिष्टकं सर्पिः शर्करार्क्तं मनोहरम् । प्रदेयं हरये भक्त्या स्वामिनो भोगवृद्धये ॥
सुगन्धिपुष्पमालानां लक्षमक्षतमीप्सितम् । प्रदेयं हरये भक्त्या हरिभक्तिविवृद्धये ॥६७॥

नैवेद्यानि च देयानि स्वादूनि मधुराणि च। श्रीकृष्णप्रीतिप्राप्त्यर्थं दुर्गे नानाविधानिच नानाविधानि पुष्पाणि तुलसीसंयुतानि च। श्रीकृष्ण प्रीतये भक्त्या व्रते देयानि सुव्रते ब्राह्मणानां सहस्रञ्च प्रत्यहं भोजयेद्व्रती। स्वात्मनः शस्यवृद्ध्यर्थं व्रते जन्मनिजन्मनि पुष्पाञ्जलिशतं देयं नित्यं पूर्णञ्च पूजने। प्रणामशतकं देवि कर्त्तव्यं भक्तिवृद्धये ॥७१॥ षण्मासांश्च हविष्यान्नं मासान् पञ्चफलादिकम्। हविः पक्षं जलं पक्षं व्रतेभक्षेच्चसुव्रते रत्नप्रदीपशतकं वह्निं दद्याद्दिवानिशम्। रात्रौ कुशासनं कृत्वा नित्यं जागरणं व्रते ॥ स्मरणं कीर्त्तनं केलिः श्रवणं गुह्यभाषणम्। सङ्कल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिष्पत्तिहेतवे स्वप्न मैथुनकं त्याज्यं व्रती क्रीड़ा च शुद्धये। सम्पूर्णे च व्रते देवि प्रतिष्ठा तदनन्तरम् ॥ त्रिशतञ्च षष्ट्यधिकं डल्लकं वस्त्रसंयुतम्। सभोज्यं सोपवीतञ्च सोपहारं मनोहरम् त्रिशतञ्च षष्ट्यधिकं सहस्रं विप्रभोजनम्। त्रिशतञ्च षष्ट्यधिकं सहस्रं तिलहोमकम् त्रिशतञ्च षष्ट्यधिकं सहस्रस्वर्णमेव च। देया व्रतसमाप्तौ च दक्षिणा विधिबोधिता अन्यां समाप्ति दिवसे कथयिष्यामि दक्षिणाम्। एतद्व्रतफलं देवि दृढ़ाभक्तिर्हरौभवेत् हरितुल्यो भवेत्पुत्रोविख्यातोभुवनत्रये। सौन्दर्य्यं स्वामिसौभाग्यमैश्वर्य्यंविपुलंधनम् सर्वं वाञ्छितसिद्धीनां बीजं जन्मनि जन्मनि। इत्येवं कथितं देवि व्रतं कुरु महेश्वरि

पुत्रस्ते भविता साध्वीत्युक्त्वा स विरराम ह ॥ ८२ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे गणपतिखण्डे नारायणनारदसंवादे व्रतमाहात्म्यविधानं नाम चतुर्थोऽध्यायः।

पञ्चमोऽध्यायः

व्रतमाहात्म्यकथा।

नारायण उवाच।

श्रुत्वा व्रतविधानञ्चदुर्गा प्रहृष्टमानसा। पुनः पप्रच्छ कान्तंसा दिव्यां व्रतकथांशुभाम्

श्रीपार्वत्युवाच ।

किमद्भुतं व्रतं नाथ विधानं फलमस्य च । अधिकान्तत् कथां ब्रूहि व्रतं केन प्रकाशितम्

अथ व्रत कथा । श्रीमहादेव उवाच

शतरूपा मनोः पत्नी पुत्रदुःखेन दुःखिता । ब्रह्मणः स्थानमागत्य सा ब्रह्माणमुवाच ह ॥

शतरूपोवाच ।

ब्रह्मन् केन प्रकारेण वन्ध्यायाश्च सुतो भवेत् । तन्मे ब्रूहि जगद्धातः सृष्टिकारणकारण

तज्जन्म निष्फलं ब्रह्मन्नैश्वर्य्यं धनमेव च ।

किञ्चिन्न शोभते गेहे विना पुत्रेण पुत्रिणाम् ॥ ५ ॥

तपोदानोद्भवं पुण्यं जन्मान्तरसुखावहम् । सुखदो मोक्षदः प्रीति दाता पुत्रश्चपुत्रिणाम्

पुत्री पुत्रमुखंदृष्ट्वा शताश्वमेधिनां फलम् । पुन्नामनरकत्राणकारणं लभते ध्रुवम् ॥ ७ ॥

पुत्रोपायं यदि विधे वद मां तापसंयुताम् । तदा भद्रं नचेद्भर्त्रा सह यास्यामि काननम्

गृहाण राज्यमैश्वर्य्यं धनं पृथ्वीं प्रजावहाम् । किमेतेनावयोस्तात विना पुत्रैरपुत्रिणोः।

अपुत्रिणो मुखं द्रष्टुं विद्वान्नोत्सहतेऽशिवम् । मुखं दर्शयितुं लज्जां समवाप्नोत्यपुत्रकः॥

अथवा गरलं भुक्त्वा प्रवेक्ष्यामि हुताशनम् । अपुत्रपुत्रमशिवं गृहाण स्त्रीविहीनकम् ॥

इत्येवमुक्त्वा सा साक्षाद् ब्रह्मणश्च रुरोद ह । कृपानिधिश्च तां दृष्ट्वा प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥

ब्रह्मोवाच ।

शृणु वत्से प्रवक्ष्यामि पुत्रोपायं सुखावहम् । सर्वैश्वर्य्यादिबीजञ्चसर्ववाञ्छाप्रदंशुभम्

माघशुक्लत्रयोदश्यां व्रतमेतत् सुपुण्यकम् । कर्त्तव्यं शुद्धकाले च कृष्णमाराध्य सर्वदम्

संवत्सरञ्च कर्त्तव्यं सर्वविघ्नविनाशनम् । वेदोक्तानि च द्रव्याणि व्रते देयानि सुव्रते ॥

व्रतञ्च काण्वशाखोक्तं सर्ववाञ्छितसिद्धिदम् । कृत्वा पुत्रं लभशुभे विष्णुतुल्यपराक्रमम्

ब्रह्मणश्च वचः श्रुत्वा साकृत्वा व्रतमुत्तमम् । प्रियव्रतोत्तानपादौ लेभे पुत्रौ मनोहरौ ॥

व्रतं कृत्वा देवहूती लेभे सिद्धेश्वरं सुतम् । नारायणांशं कपिलं पुण्यकं पुण्यदं शुभम्॥

अरुन्धतीदं कृत्वा तु लेभे शक्तिसुतं शुभा । शक्तिकान्ता व्रतं कृत्वा सुतं लेभे पराशरम्

अदितिश्च व्रतं कृत्वा लेभे वामनकं सुतम् । शची जयन्तं पुत्रञ्च लेभे कृत्वेदमीश्वरी ॥

उत्तानपादपत्नीदं कृत्वा लेभे ध्रुवं सुतम् । कुबेरजाया कृत्वेदं लेभे च नलकूवरम् ॥२१।
सूर्य्यपत्नी मनुं लेभे कृत्वेदं व्रतमुत्तमम् । अत्रिपत्नी सुतं चन्द्रं लेभे कृत्वेदमुत्तमम् ॥२२
लेभे चाङ्गिरसः पत्नी कृत्वेदं व्रतमुत्तमम् । वृहस्पतिं सुरगुरुं पुत्रमस्य प्रभावतः ॥२३॥
भृगोर्भार्य्या व्रतं कृत्वा लेभे दैत्यगुरुं सुतम् । शुक्रं नारायणांशञ्च सर्वतेजस्विनांपरम्।
इत्येवं कथितं देवि व्रतानां व्रतमुत्तमम् । त्वमेव कुरु कल्याणि हिमालयसुते शुभे ।२५
साध्यंराजेन्द्रपत्नीनां देवीनाञ्चसुखावहम् । व्रतमेतन्महासाध्वि साध्वीनांप्राणतःप्रियम्॥
व्रतस्यास्य प्रभावेण स्वयं गोपाङ्गनेश्वरः । ईश्वरः सर्वदेवानां तव पुत्रो भविष्यति ॥
इत्युक्त्वा शङ्करस्तत्र विरराम च नारद । व्रतञ्चकार सा देवी प्रहृष्टा शङ्कराज्ञया ॥२८॥
इत्येवं कथितं सर्वं किम्भूयः श्रोतुमिच्छसि । सुखदं मोक्षदं सारं गणेशजन्मकारणम्

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे गणपतिखण्डे व्रतकथा-
प्रकरणं नाम पञ्चमोऽध्यायः ।

षष्ठोऽध्याय

पार्वत्या व्रतारम्भोद्योगः ।

शौनक उवाच ।

नारायणवचः श्रुत्वा नारदो हृष्टमानसः । किं पप्रच्छ पुनः साधो तन्मे ब्रूहि तपोधन॥

सूत उवाच ।

नारायणवचः श्रुत्वा नारदो हृष्टमानसः । व्रतारम्भविधानञ्च संप्रष्टुमुपचक्रमे ॥ २ ॥

नारद उवाच ।

कृतं केन प्रकारेण व्रतमेतत् शुभावहम् । तन्मे ब्रूहि मुनिश्रेष्ठ पार्वत्या भर्त्तुराज्ञया ॥ ३॥
ललाभ जन्म गोपीशः कृते सुव्रतया व्रते । ब्रह्मन् केन प्रकारेण तन्नः शंसितुमर्हसि ॥

नारायण उवाच ।

कथयित्वाकथां दिव्यां विधानञ्च व्रतस्यच । स्वयंविधाता तपसां जगाम तपसेशिवः।
हरेराराधनव्यग्रो मूर्त्तिभेदधरो हरिः । हरिभावनशीलश्च हरिध्यानपरायणः ॥ ६ ॥
परमानन्दपूर्णश्च ज्ञानानन्दः सनातनः । दिवानिशं न जानाति हरिमन्त्रं यहिः स्मरन्॥
प्रहृष्टमनसा देवी पार्वती भर्त्तुराज्ञया । किङ्करान् प्रेरयामास विप्रांश्च व्रतहेतवे ॥ ८ ॥
आनीय सर्वद्रव्याणि व्रतोपयौगिकानि च । व्रतं कर्त्तुं समारेभे शुभदा सा शुभक्षणे॥
सनत्कुमारो भगवानाजगाम विधेःसुतः । मूर्त्तिमांस्तेजसां राशिः प्रज्वलन् ब्रह्मतेजसा
ब्रह्माजगाम हृष्टश्च ब्रह्मलोकात् सभार्य्यकः। अतित्रस्तो हि भगवानाजगाम महेश्वरः।
विष्णुःक्षीरोदशायीच सलक्ष्मीकश्चतुर्भुजः । भगवाञ्जगतां पाता शास्ताभर्त्ता सपार्षदः
वनमालाधरः श्यामो भूषितो रत्नभूषणैः । महासम्भूतसम्भारो रत्नयानेन नारद ॥१३॥
सनकश्च सनन्दश्च कपिलश्च सनातनः । आसुरिश्च क्रतुर्हंसी वोढुः पञ्चशिखोऽरुणिः॥
यतिश्च सुमतिश्चैव वशिष्ठश्च सहानुगः । पुहलश्च पुलस्त्यश्च अत्रिश्च भृगुरङ्गिराः ॥१५

अगस्त्यश्च प्रचेताश्च दुर्वासाश्च्यवनस्तथा ।
मरीचिः कश्यपः कण्वो जरत्कारुश्च गौतमः ॥ १६ ॥

वृहस्पतिरुतथ्यश्च संवर्त्तः सौरभिस्तथा । जाबालिर्जमदग्निश्च जैगीषव्यश्च देवलः ॥१७
गोकामुखो वक्ररथः पारिभद्रः पराशरः । विश्वामित्रो वामदेव ऋष्यश्रृङ्गो विभाण्डकः
मार्कण्डेयो मृकण्डुश्च पुष्करो लोमशस्तथा । कौत्सो वत्सश्च दक्षश्च बालाग्निरघमर्षणः
कात्यायनः कणादश्च पाणिनिः शाकटायनः । शङ्कुरापिशलिश्चैव शाकल्यः शङ्खएव च
एते चान्ये च बहवः सशिष्या मुनयो मुने । आवाञ्च धर्म्मपुत्रौ च नरनारायणौ समौ
दिक्पालाश्च तथा देवा यक्षगन्धर्वकिङ्कराः। आजग्मुः पर्वताः सर्वे सगणाः पार्वतीव्रते
हिमालयः शैलराजः सापत्यश्च सभार्य्यकः। सगणः सानुगश्चैव रत्नभूषणभूषितः ॥
महासम्भूतसम्भारो नानाद्रव्यसमन्वितः । मणिमाणिक्यरत्नानि व्रतोपयौगिकानि च ।
नानाप्रकारवस्तूनि जगतां दुर्लभानि च । लक्षञ्च गजरत्नानामश्वरत्नं त्रिलक्षकम्॥२५॥

दशलक्षं गवां रत्नं शतलक्षं सुवर्णकम् । रुचकानां हीरकाणां स्पर्शानाञ्च तथैव च ॥२६

मुक्तानाञ्च चतुर्लक्षं कौस्तुभानां सहस्रकम् । सुस्वादुमिष्टद्रव्याणांलक्षभाराणिकौतुकी
अनन्तरत्नप्रभव आजगाम सुताव्रते ॥२७॥
ब्राह्मणा मनवः सिद्धानागाविद्याधरास्तथा । सन्यासिनो भिक्षुकाश्च वन्दिनःपार्वतीव्रते
विद्याधरी नर्त्तकी च नर्त्तकाऽप्सरसां गणाः ।
नानाविधा वाद्यभाण्डा आजग्मुः शिवमन्दिरम् ॥ २९ ॥
कैलासराजमार्गञ्च चन्दनेन सुसंस्कृतम् । आम्रपल्लवसूत्राक्तं कदलीस्तम्भशोभितम् ॥३०
दूर्वाधान्यपर्णलाजफलपुष्पविभूषितम् । निर्मितं पद्मरागेण ददृशुस्ते गणा मुदा ॥३१॥
उच्चैः सिंहासनेष्वेते पूजिताः शङ्करेण च । कैलासवासिनः सर्वे परमानन्दसंयुताः ।३२
दानाध्यक्षः सुनाशीरः कुवेरः कोषरक्षकः । आदेष्टा च स्वयं सूर्य्यः परिवेष्टा जलाधिपः
दध्नां नद्यः सहस्राणि दुग्धानाञ्च तथैव च । सहस्राणि घृतानाञ्च गुड़ानाञ्च शतानि च
माध्वीकानां सहस्राणि तैलानाञ्च शतानि च । लक्षाणि चैव तक्राणां वभूवुः पार्वतीव्रते
पीयूषाणाञ्च कुम्भानि शतलक्षाणि नारद । मिष्टान्नानां शर्कराणां वभूवुर्लक्षराशयः ॥
यवगोधूमचूर्णानां घृताक्तानाञ्च नारद ॥ ३६ ॥
स्वस्तिकानाञ्च पूपानां वभूवुर्लक्षराशयः । गुड़संस्कृतलाजानां वभूवुः कोटिराशयः ॥
शालीनां पृथुकानाञ्च राशीनां दशकोटयः । तण्डुलानाञ्च राशीनां मुने संख्या न विद्यते
स्वर्णरौप्यप्रवालानां मणीनाञ्च महामुने । वभूवुः पर्वतास्तत्र कैलासे पार्वतीव्रते ॥
पायसं पिष्टकञ्चैव शाल्यन्नं सुमनोहरम् । चकार लक्ष्मीः पाकञ्च व्यञ्जनं घृतसंस्कृतम्
वुभुजे देवर्षिगणैः सार्द्धं नारायणः स्वयम् । वभूवुर्लक्षविप्राश्च परिवेशनकारकाः ॥४१।
ताम्वूलञ्च ददौ तेभ्यः कर्पूरादिसुवासितम् । रत्नसिंहासनस्थेभ्यो विप्रलक्षाः सुदक्षकाः
रत्नसिंहासनस्थञ्च विष्णुं क्षीरोदशायिनम् । सेव्यमानं पार्षदैश्च सस्मितैः श्वेतचामरैः
ऋषिभिस्स्तूयमानाञ्च सिद्धैर्देवगणैस्तथा । विद्याधरीणां नृत्यानि पश्यन्तं सस्मितं मुदा
गन्धर्वाणाञ्च सङ्गीतं श्रुतवन्तं मनोहरम् ॥ ४४ ॥
पप्रच्छ शङ्करो व्रह्मन् व्रह्मेशं भक्तिपूर्वकम् । व्रह्मणा प्रेरितो युक्तं व्रतं कर्त्तव्यमीप्सितम्
देवर्षिगणपूर्णायां सभायां स पुटाञ्जलिः ॥ ४६ ॥

श्रीमहादेव उवाच ।

मदीयं प्रार्थनं नाथ श्रीनिवास शृणु प्रभो । तपःस्वरूप तपसां कर्मणाञ्च फलप्रद ॥४७॥
व्रतानां जपयज्ञानां पूजानां सर्वपूजित । सर्वेषां बीजरूपेण वाञ्छाकल्पतरो हरे ॥४८॥
सुपुण्यकव्रतं कर्त्तुं ब्रह्मन्निच्छति पार्वती । पुत्रार्थिनी सा शोकार्त्ता हृदयेन विदूयता
रतिभङ्गे कृते देवैर्वीर्य्यव्यर्थशुचार्दिता । प्रबोधिता मया साध्वी विविधैर्वचनामृतैः ॥
सत्पुत्रंस्वामिसौभाग्यंसुव्रतायाचतेव्रते । ताभ्यांविनानसन्तुष्टास्वप्राणांस्त्यक्तुमिच्छति
पुरा त्यक्त्वा स्वदेहञ्च पितृयज्ञे च मानिनी । मन्निन्दया शैलगेहे पुनर्जन्म ललाभ सा ॥
सर्वं जानासि वृत्तान्तं सर्वज्ञं त्वां वदामि किम् । काऽऽज्ञा तांवद्तत्त्वज्ञपरिणामशुभप्रदाम्
दुर्निवार्य्यश्च सर्वेश स्त्रीस्वभावश्च चापलः ।
दुस्त्यज्यं योगिभिः सिद्धैरस्माभिश्च तपस्विभिः ॥ ५४ ॥
जितेन्द्रियैर्जितक्रोधैः स्त्रीरूपं मोहकारणम् । सर्वमायाकरण्डञ्च कामवर्द्धनकारणम् ॥
ब्रह्मास्त्रं कामदेवस्य दुर्भेद्यं जयकारणम् । अनिर्मितञ्च विधिना सर्वाद्यं विधिपूर्वजम् ॥
मोक्षद्वारकपाटञ्च हरिभक्तिनिरोधनम् । संसारबन्धनस्तम्भरज्जुरूपमकृन्तनम् ॥ ५७ ॥
वैराग्यनाशबीजञ्च शश्वद्रागविवर्द्धनम् । पत्तनं साहसानाञ्च दोषाणामालयं सदा ॥५८॥
अप्रत्ययानां क्षेत्रञ्च स्वयं कपटमूर्त्तिमत् । अहङ्काराश्रयं शश्वद्विषकुम्भं सुधामुखम् ॥
सर्वैरसाध्यमानञ्च दुराराध्यञ्च सर्वदा । स्वकार्य्यसाध्यञ्चाराध्यं कलहाङ्कुरकारणम् ॥
सर्वं निवेदितं नाथ कर्त्तव्यं वक्तुमर्हसि । कार्य्यं सर्वं परामर्शे परिणामसुखावहम् ॥६१॥

श्रीनारायण उवाच ।

इत्येवमुक्त्वा भगवान्निरीक्ष्य ब्रह्मणोमुखम् । विररामसभामध्ये स्तुत्वाच कमलापतिम्
शङ्करस्य वचः श्रुत्वा प्रहस्य जगदीश्वरः । हितं नीतिञ्च वचनं प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥ ६३ ॥

श्रीविष्णुरुवाच ।

सुपुण्यकव्रतं सारं सती सन्तानहेतवे । स्वामिसौभाग्यबीजञ्चपत्नीते कर्त्तुमिच्छति ॥
सर्वासाध्यं दुराराध्यं सर्वकामफलप्रदम् । सुखदं सुखसारञ्च मोक्षदंपार्वतीश्वर ॥६५॥

आत्मा साक्षिस्वरूपश्च ज्योतीरूपः सनातनः ।

निराश्रयश्च निर्लिप्तो निरुपाधिर्निरामयः ॥६६॥

भक्तप्राणश्च भक्तेशो भक्तानुग्रहकारकः ।

दुराराध्यो हि योऽन्येषां भक्तानामतिसाधकः ॥६७॥

भक्त्याधीनो हि भगवान् सर्वसिद्धो हि निष्फलः ।

ते यस्य च कलाः पुंसो ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥६८॥

महान् विराट् यदंशश्च निर्लिप्तः प्रकृतेः परः ।

अव्ययो निग्रहश्चोग्रो भक्तानुग्रहविग्रहः ॥६९॥

उग्रग्रहोग्रहाणाञ्च ग्रहनिग्रहकारकः । त्रिकोटिजन्ममध्ये च न साध्यो भवता विना ॥
लब्ध्वा हि भारते जन्म हरिभक्तिं लभेन्नर- । सेवनं क्षुद्रदेवानां कृत्वा सप्तसु जन्मसु ॥
सूर्य्यमन्त्रमवाप्नोति केवलं स तदाशिषा । सूर्य्यमन्त्रं समाराध्य त्रिषु जन्मसु भारते ॥
प्राप्नोति शैवं मन्त्रञ्च सर्वदं मानवो मुदा । संसेव्य परया भक्त्या त्वामेव सप्तजन्मसु
प्राप्नोति मायामन्त्रञ्च त्वत्पदाब्जप्रसादतः । शतं जन्मसमाराध्यमायांनारायणीं पराम्
नारायणकलां सेव्यां समवाप्नोति मानवः । कलां निषेव्य वर्षेऽत्रपुण्यक्षेत्रे सुदुर्लभे ॥
कृष्णभक्तिमवाप्नोति भक्तसंसर्गहेतुकीम् । संप्राप्यभक्तिनिष्पक्कांभ्रामंभ्रामञ्च भारते ॥
प्राप्नोति परिपक्वाञ्च भक्तिं भक्तनिषेवया । तदा भक्तप्रसादेन देवानामाशिषा शिव ॥

श्रीकृष्णमन्त्रं प्राप्नोति निर्वाणफलदं परम् ॥७७॥

कृष्णव्रतं कृष्णमन्त्रं सर्वकामफलप्रदम् । कृष्णतुल्यो भवेद्भक्तश्चिरं कृष्णनिषेवया ॥७८
महति प्रलये पातः सर्वेषां सर्वनिश्चितम् । नपातःकृष्णभक्तानांसाधूनामविनाशिनाम् ॥
अविनाशिनिगोलोकेमोदन्तेकृष्णकिङ्कराः । हसन्तितेसुनिश्चिन्तादेवान्ब्रह्मादिकान्शिव
त्वं संहर्त्ता च सर्वेषां न भक्तानां महेश्वर । माया मोहयते सर्वान्भक्तान्नकृपया मम ॥
मायानारायणीमातासर्वेषांकृष्णभक्तिदा । नकृष्णभक्तिप्राप्नोतिविनामायानिषेवणम् ॥
सा च नारायणीमायामूलप्रकृतिरीश्वरी । कृष्णप्रियाकृष्णभक्ता कृष्णतुल्याविनाशिनी
सा च तेजःस्वरूपा च स्वेच्छाविग्रहधारिणी । आविर्भूताचदेवानांतेजसा सुरनिग्रहे ॥
निहत्य दैत्यसङ्घांश्च दक्षपत्न्याच भारते । ललाभ दक्षस्तपसा जन्म चानेकजन्मनः ॥

त्यक्त्वा देहं पितुर्यज्ञे सा सती तव निन्दया ।
जगाम देवी गोलोकं कृष्णशक्तिः सनातनी ॥८६॥

गृहीत्वा विग्रहं तस्या गुणरूपाश्रयं परम् । भ्रामं भ्रामं भारते त्वं विष्णोऽभूःपुराहर॥ प्रबोधिता मया त्वञ्च श्रीशैलेषु सरित्तटे । ललाभ जन्म सा शैलकान्तायामचिरेणच करोतु पुण्यकं साध्वी सुव्रता सुव्रतं शिवा । राजसूयसहस्राणां पुण्यं शङ्कर पुण्यके॥ राजसूयसहस्राणां व्रते यत्र धनव्ययः । न साध्यं सर्वसाध्वीनां व्रतमेतत् त्रिलोचन॥ स्वयं गोलोकनाथश्च पुण्यकस्य प्रभावतः । पार्वतीगर्भजातश्च तव पुत्रो भविष्यति॥ स्वयं देवगणानाञ्च यस्मादीशःकृपानिधिः । गणेशइतिविख्यातोभविष्यति जगत्त्रये॥ यस्य स्मरणमात्रेण विघ्ननिघ्नं भवेद्ध्रुवम् । जगतांहेतुना तेन विघ्ननिघ्नाभिधो विभुः नानाविधानिद्रव्याणियस्माद्देयानिपुण्यके । भुक्त्वा लम्बोदरत्वञ्च तेनलम्बोदरः स्मृतः शनिदृष्ट्या शिरश्छेदाद्गजवक्त्रेण योजितः । गजाननः शिशुस्तेन निश्चयःकेनवार्य्यते॥ पर्शुना पर्शुरामस्य यदेकदन्तखण्डनम् । भविष्यति निश्चयेन चैकदन्ताभिधः शिशुः॥ पूज्यश्च सर्वदेवानामस्माकं जगतां विभुः । सर्वाग्रे पूजनन्तस्य भविता मद्वरेण वै॥९७ पूजासु सर्वदेवानामग्रे संपूज्य तं जनः । पूजाफलमवाप्नोतिनिर्विघ्नेनवृथाऽन्यथा ९८ गणेशञ्च दिनेशञ्च विष्णुंश्चम्भुंहुताशनम् । दुर्गामेतान् सन्निषेव्य पूजयेद्देवतान्तरम्॥ गणेशपूजने विघ्ननिर्विघ्नं जगतांभवेत् । निर्व्याधिःसूर्य्यपूजायांशुचिःश्रीविष्णुपूजने॥ मोक्षश्च पापनाशश्च यशश्चैश्वर्य्यं वर्द्धनम् । तत्त्वज्ञानसुतृप्तानां बीजंशङ्करपूजनम्॥१०१ स्वबुद्धिशुद्धिजननं कीर्त्तितंवह्निपूजनम् । विधिसंस्कृतवह्नेस्तु ज्ञानमृत्युं लभेन्नरः॥१०२ दाता भोक्ता च भवति शङ्कराग्निनिषेवणात् । हरिभक्तिप्रदञ्चैव परंदुर्गार्च्चनंशिवम्॥ विपरीतं त्रिजगतामेतेषां पूजनं विना । एवं क्रमो महादेव कल्पेकल्पेऽस्ति निश्चितम्॥ एते शश्वद्विद्यमाना नित्याः सृष्टिपरायणाः । आविर्भावतिरोभावौचैतेषामीश्वरेच्छया इत्युक्त्वा श्रीहरिस्तत्र विरराम सभातले । प्रहृष्टा देवता विप्राःपार्वत्यासहशङ्करः॥१०६

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे गणपतिखण्डे व्रताज्ञाग्रहणं नाम षष्ठोऽध्यायः ।

सप्तमोऽध्यायः

हरेरादेशात् व्रतविधानम् ।

नारायण उवाच ।

हरेराज्ञां समादाय हरः प्रहृष्टमानसः । उवाच पार्वतीं प्रीत्या हरिसंलापमङ्गलम् ॥१॥
शिवाज्ञाञ्च समादाय शिवा प्रहृष्टमानसा । वाद्यञ्च वादयामास मङ्गलं मङ्गलव्रते ॥२
सुस्नातासुदतीशुद्धाबिभ्रतीधौतवाससी । संस्थाप्यरत्नकलसं शुक्लधान्योपरिस्थितम् ॥
आम्रपल्लवसंयुक्तं फलाक्षतसुशोभितम् । चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमेन विभूषितम् ॥ ४ ॥
रत्नासनस्था रत्नाढ्या रत्नोद्भवसुता सती । रत्नसिंहासनस्थांश्च संपूज्यमुनिपुङ्गवान्
रत्नसिंहासनस्थञ्च संपूज्य च पुरोहितम् । चन्दनागुरुकस्तूरीरत्नभूषणभूषितम् ॥६॥

संस्थाप्य पुरतो भक्त्या दिक्पालान् रत्नभूषितान् ।
देवान्नरांश्च नागांश्च समच्चर्य विधिबोधितम् ॥७॥

समच्चर्य परया भक्त्या ब्रह्मविष्णुमहेश्वरान् । चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमेनविराजितान् ॥
वह्निशुद्धांश्च वस्त्रैश्च सद्रत्नभूषणेन च । पूजार्हद्रव्यैर्विविधैः पूजितान् पुण्यके मुने ।

समारेभे व्रतं देवी स्वस्तिवाचनपूर्वकम् ॥१०॥

आवाह्याभीष्टदेवं तं श्रीकृष्णं मङ्गले घटे । भक्त्या ददौ क्रमेणैव चोपचाराणि षोड़श॥
यानि व्रते विधेयानि देयानि विविधानि च । प्रददौ तानिसर्वाणिप्रत्येकंफलदानि च ॥
व्रतोक्तमुपहारञ्च दुर्लभं भुवनत्रये । तच्च सर्वं ददौ भक्त्या सुव्रते सुव्रता सती ॥१२॥

दत्त्वा सर्वाणि द्रव्याणि वेदमन्त्रेण सा सती ।
होमञ्च कारयामास त्रिलक्षं तिलसर्पिषा ।
ब्राह्मणान् भोजयामास देवानतिथिपूजितान् ॥१३॥

कर्त्तव्यमेव कर्त्तव्ये सुव्रते सुव्रता सती । प्रत्यहं सावधानञ्च चकार पूर्णवत्सरम् ॥१४
समाप्तिदिवसे विप्रस्तामुवाच पुरोहितः । सुव्रते सुव्रते मह्यं देहीति पतिदक्षिणाम्॥१५

श्रुत्वा पुरोहितोक्तं सा विलप्य सुरसंसदि । मूर्च्छां प्रापमहामायामायामोहितचेतसा
तां ते च मूर्च्छितां दृष्ट्वा प्रहस्य मुनिपुङ्गवाः । शङ्करं प्रेषयामास ब्रह्मा विष्णुश्चनारद ॥
संप्रेरितः सभासद्भिः शिवां बोधयितुं तदा । शिवः समुद्यमश्चक्रे प्रवक्तुं वदतां वरः ॥

श्रीमहादेव उवाच ।

उत्तिष्ठ भद्रे भद्रं ते भविष्यति न संशयः । साम्प्रतं चेतनं कृत्वा मदीयं वचनं शृणु ॥

शिवः शिवां तामित्युक्त्वा शुष्ककण्ठौष्ठतालुकाम् ।
वक्षसि स्थापयामास कारयामास चेतनाम् ॥२०॥

हितं सत्यं मितं सर्वं परिणामसुखावहम् । यशस्करञ्च फलदं प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥२१॥
शृणु देवि प्रवक्ष्यामि यद्वेदे न रूपितम् । सर्वसम्मतमिष्टञ्च धर्मार्थं धर्म्मसंसदि ॥२२
सर्वेषां कर्म्मणां देवि सारभूताचदक्षिणा । यशोदाफलदानित्यंधर्म्मिष्ठे धर्म्मकर्म्मणि ॥
दैवं वा पैतृकं वापिनित्यंनैमित्तिकंप्रिये । यत्कर्म्मदक्षिणाहीनंतत्सर्वंनिष्फलंभवेत्

दाता च कर्म्मणा तेन कालसूत्रं व्रजेद्ध्रुवम् ॥२४॥

अथान्ते दैत्यमाप्नोति शत्रुणा परिपीड़ितः । दक्षिणा विप्रमुद्दिश्यतत्कालन्तुनदीयते ॥
तन्मुहूर्त्ते व्यतीते तु दक्षिणा द्विगुणा भवेत् । चतुर्गुणा दिनातीते पक्षेशतगुणाभवेत् ॥
मासे पञ्चशतगुणा षण्मासे तच्चतुर्गुणा । संवत्सरे व्यतीते तु तत्कर्म्मनिष्फलंभवेत्॥
दाता च नरकं याति यावद्वर्षसहस्रकम् । पुत्रपौत्रधनैश्वर्य्यं क्षयमाप्नोतिपातकात् ।

धर्मो नष्टो भवेत्तस्य धर्म्महीने च कर्म्मणि ॥२८॥

श्रीविष्णुरुवाच ।

रक्ष स्वधर्मं धर्मिष्ठे धर्मज्ञे धर्मकर्मणि । सर्वेषाञ्च भवेद्रक्षा स्वधर्मपरिपालने ॥२६॥

ब्रह्मोवाच ।

यश्च केन निमित्तेन न धर्मं परिरक्षति । धर्मे नष्टे च धर्मज्ञे तस्य धर्मो विनश्यति ॥३०॥

धर्म्म उवाच ।

मां रक्ष यत्नतः साध्वि प्रदाय प्रतिदक्षिणाम् ।
मयि स्थिते महासाध्वि सर्वं भद्रं भविष्यति ॥३१॥

देवा ऊचुः ।

धर्मं रक्ष महासाध्वि कुरु पूर्णं व्रतं सति । वयं तव व्रते पूर्णं कुर्मस्ते पूर्णमानसम् ॥३२

मुनय ऊचुः ।

कृत्वा साध्वि पूर्णहोमं देहि विप्राय दक्षिणाम् ।
स्थितेष्वस्मासु धर्मज्ञे किमभद्रं भविष्यति ॥३३॥

सनत्कुमार उवाच ।

शिवे शिवं देहि मह्यं न चेद्व्रतफलंत्यज । सुचिरंसञ्चितस्यापिस्वात्मनस्तपसःफलम्
कर्मण्यदक्षिणे साध्वि यागस्याहन्तुतत्फलम् । प्राप्स्यामियजमानस्यसंपूर्णकर्मणःफलम्

पार्वत्युवाच ।

किं कर्म्मणा मे देवेशा किं मे दक्षिणया मुने ।
किं पुत्रेण च धर्मेण यत्र भर्त्ता च दक्षिणा ॥३६॥
वृक्षार्चने फलं किं वै यदि भूमिर्न चार्च्यते ।
गते च कारणे कार्य्यं कुतः शस्यं कुतः फलम् ॥३७॥
प्राणास्त्यक्ताः स्वेच्छया चेद्देहेन किं प्रयोजनम् ॥३८॥
शतपुत्रसमः स्वामी साध्वीनाञ्च सुरेश्वराः । यदि भर्त्ता व्रते देयःकिंव्रतेन सुतेन वा
भर्त्तुर्वंशश्च तनयः केवलं भर्त्तृमूलकः ।
यत्र मूलं भवेद् भ्रष्टं तद्वाणिज्यञ्च निष्फलम् ॥ ४० ॥

श्रीविष्णुरुवाच ।

पुत्रादपि परः स्वामी धर्मश्च स्वामिनः परः । नष्टे धर्मेच धर्मिष्ठे स्वामिना किं सुतेनवा

ब्रह्मोवाच ।

स्वामिनश्च परोधर्मो धर्मात् सत्यश्च सुव्रते । सत्यं सङ्कल्पितं कर्म न तु भ्रष्टं कुरु व्रतम्

पार्वत्युवाच ।

निरूपितश्च वेदेषुस्वंशब्दो धनवाचकः । तद् यस्यास्तीति स स्वामी वेदज्ञ शृणु मद्वचः
तस्य दाता सदा स्वामी न च स्वं स्वामिनो भवेत् ।

अहो व्यवस्था भवतां वेदज्ञानामबोधता ॥ ४४ ॥

धर्म्म उवाच ।

पत्नी विनान्यंस्वंसाध्वि स्वामिनंदातुमक्षमा । दम्पतीध्रुवमेकाङ्गौ द्वयोर्दाताचद्वौसमौ॥

पार्वत्युवाच ।

पिता ददाति जामात्रे सच गृह्णाति तत्सुताम्। न श्रुतं विपरीतञ्च श्रुतौ श्रुतिपरायणाः।

देवा ऊचुः ।

बुद्धिस्वरूपा त्वं दुर्गे बुद्धिमन्तो वयं त्वया । वेदज्ञेवेदवादेषु के वा तां जेतुमीश्वराः॥

निरूपितापुण्यकेतु व्रते स्वामीच दक्षिणा । श्रुतौश्रुतो यःस धर्म्मो विपरीतो ह्यधर्मकः

पार्वत्युवाच ।

केवलं वेदमाश्रित्य कः करोति विनिर्णयम्।

बलवान् लौकिको वेदाल्लोकाचारश्च कस्त्यजेत् ॥४६॥

वेदे प्रकृतिपुंसोश्चगरीयान् पुरुषोध्रुवम् । निबोधतसुराः प्राज्ञाबालाहं कथयामिकिम्॥

बृहस्पतिरुवाच ।

न पुमांसं विनासृष्टिर्न साध्वि प्रकृतिंविना। श्रीकृष्णश्च द्वयोःस्रष्टा समौ प्रकृतिपूरुषौ

पार्वत्युवाच ।

यः कृष्णः स्रष्टा सर्वेषां सोंऽशेन सगुणः पुमान् ।

पुमान् गरीयान् प्रकृतेस्तथापि न ततश्च सा ॥ ५२ ॥

एतस्मिन्नन्तरे देवा मुनयस्तत्र संसदि । रत्नेन्द्रसारनिर्माणमाकाशे ददृशू रथम् ॥५३॥

पार्षदैश्च परिवृतं सर्वैः श्यामैश्चतुर्भुजैः । वनमालापरिवृतै रत्नभूषणषितैः।

अवरुह्य मुदा यानादाजगाम सभातलम् ॥ ५४ ॥

तुष्टुवुस्तं सुरेन्द्रास्ते देवं वैकुण्ठवासिनम् । शङ्खचक्रगदापद्मधरमीशश्चतुर्भुजम् ॥ ५५ ॥

लक्ष्मीसरस्वतीकान्तं शान्तं तं सुमनोहरम् । सुखदृश्यमभक्तानामदृश्यं कोटिजन्मभिः॥

कोटिकन्दर्पनीलाभं कोटिचन्द्रसमप्रभम् । अमूल्यरत्नरचितं चारुभूषणभूषितम् ॥ ५७ ॥

सेव्यं ब्रह्मादिदेवैश्च सेवकैः सन्ततं स्तुतम् । तद्दासस्य च प्रकृतैर्वेष्टितश्च सुरर्षिभिः ॥

वासयामास तं ते च रत्नसिंहसने वरे। तं प्रणेमुश्च शिरसा ब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥५६॥

सम्पुटाञ्जलयः सर्वे पुलकाङ्काश्रुलोचनाः ॥ ६० ॥

सस्मितस्तांश्च पप्रच्छ सर्वं मधुरया गिरा। प्रबोधितः सुबोधज्ञः प्रवक्तुमुपचक्रमे ।६१

श्री नारायण उवाच ।

सहबुद्धया बुद्धिमन्तोनवक्तुमुचितंसुराः। सर्वे शक्त्या यया विश्वे शक्तिमन्तोहिजीविनः

ब्रह्मादितृणपर्य्यन्तं सर्वं प्राकृतिकं जगत्। सत्यं सत्यं विनामाञ्चमया शक्तिः प्रकाशिता

आविर्भूताच सा मत्तः सृष्टौ देवी मदिच्छया। तिरोहिता च स शेपे सृष्टिसंहरणे मयि

सृष्टिकर्त्री च प्रकृतिः सर्वेषां जननी परा। मम तुल्या च मन्माया तेन नारायणी स्मृता

सुचिरं तपसा तप्तं शम्भुना ध्यायताच माम्। तेन तस्मै मया दत्ता तपसां फलरूपिणी

व्रतञ्च लोकशिक्षार्थमस्या न स्वार्थमेव च। स्वयं व्रतानां तपसां फलदात्री जगत्त्रये॥

माययामोहिताःसर्वेकिमस्या वा स्तवं व्रतम्। साध्यमस्याव्रतकलं कल्पेकल्पे पुनःपुनः

सुरेश्वरा मदंशाश्च ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः। कलाः कलांशरूपाश्च जीविनश्च सुरादयः॥६६

मृना विना घटं कर्त्तुं कुलालश्च यथाक्षमः। विना स्वर्णं स्वर्णकारः कुण्डलंकर्त्तुमक्षमः

विना शक्त्या तथाऽहञ्च स्वसृष्टिं कर्त्तुमक्षमः ॥ ७० ॥

शक्तिप्रधाना सृष्टिश्च सर्वदर्शनसम्मता। अहमात्माहि निर्लिप्तोऽदृश्यः साक्षीचदेहिनाम्

देहाः प्राकृतिकाः सर्वे नश्वराः पाञ्चभौतिकाः। अहं नित्यः शरीरी च भानुविग्रहविग्रहः

सर्वाधाराच प्रकृतिः सर्वात्माहं जगत्सु च ॥ ७३ ॥

अहमात्मामनो ब्रह्मा ज्ञानरूपोमहेश्वरः। पञ्च प्राणाःस्वयं विष्णुर्वुद्धिः प्रकृतिरीश्वरी॥

मेधा निन्द्रादयश्चैताः सर्वाश्च प्रकृतेःकलाः। सा च शैलेन्द्रकन्यैपा इति वेदे निरूपितम्

अहं गोलोकनाथश्च वैकुण्ठेशः सनातनः। गोपीगोपैः परिवृतस्तत्रैव द्विभुजः स्वयम्॥

चतुर्भुजोऽत्र देवेशो लक्ष्मीशः पार्षदैर्वृतः ॥ ७६ ॥

ऊर्द्ध्वंपरश्च वैकुण्ठात् पञ्चाशत्कोटियोजने। ममाश्रयश्चगोलोके यत्राहं गोपिकापतिः

व्रताराध्यो हि द्विभुजः स च तत्फलदायकः।

यद्रूपं चिन्तयेद् यो हि तच्च तत्फलदायकम् ॥७८॥

व्रतं पूर्णं कुरुशिवे शिवं दत्वाचदक्षिणाम् । पुनःसमुचितं मूल्यं दत्त्वा नाथं ग्रहीष्यसि

विष्णुदेहा यथा गावो विष्णुदेहस्तथा शिवः ।

द्विजाय दत्वा गोमूल्यं गृहाण स्वामिनं शुभे ॥ ८० ॥

यज्ञपत्नीं यथा दातुं क्षमःस्वामी सदैवतु । तथा सा स्वामिनं दातुमीश्वरीति श्रुतेर्मतम्

इत्युक्त्वा स सभामध्ये तत्रैवान्तरधीयत ।

हृष्टास्ते सा च संहृष्टा दक्षिणां दातुमुद्यताः ॥ ८२ ॥

कृत्वा शिवा पूर्णहोमं सा शिवंदक्षिणां ददौ । स्वस्तीत्युक्त्वाचजग्राह कुमारोदेवसंसदि

उवाच दुर्गा संत्रस्ता शुष्ककण्ठौष्ठतालुका । पुटाञ्जलियुता विप्रं हृदयेन विदूयता ॥

पार्वत्युवाच ।

गोमूल्यं मत्पतिसममिति वेदे निरूपितम् । गवां लक्षं प्रवक्ष्यामि देहि मत्स्वामिनंद्विज

तदा दास्यामिविप्रेभ्योदानानिविविधानिच । आत्महीनो हि देहश्चकिंकर्म्मकर्त्तुमीश्वरः

सनत्कुमार उवाच ।

गवां लक्षेण मे देवि विप्रस्य किं प्रयोजनम् । दत्तस्यामूल्यरत्नस्य गवां प्रत्यर्पणेन च

स्वस्य स्वस्य स्वयं कर्त्ता लोकः सर्वो जगत्त्रये ।

कर्त्तुरेवेप्सितं कर्म भवेत् किं वा परेच्छया ॥ ८८ ॥

दिगम्बरं पुनःकृत्वाभ्रमिष्यामिजगत्त्रयम् । बालकानां बालिकानांसमूहस्मितकारणम्

इत्युक्त्वा ब्रह्मणः पुत्रो गृहीत्वा शङ्करं मुने । सन्निधौ वासयामास तेजस्वी देवसंसदि

दृष्ट्वा शिवं गृह्यमाणं कुमारेण च पार्वती । समुद्यता तनुं त्यक्तुं शुष्ककण्ठौष्ठतालुका ॥

विचिन्त्य मनसा साध्वीत्येवमेव दुरत्ययम् । न दृष्टोऽभीष्टदेवश्च न च प्राप्तं फलं व्रत

एतस्मिन्नन्तरे देवाः पार्वतीसहितास्तदा । सद्यो ददृशुराकाशे तेजसां निकरं परम् ॥९३

कोटिसूर्य्यप्रभोद्धर्वञ्च प्रज्वलञ्च दिशोदश । कैलासशैलं पुरतः सर्वदेवादिभिर्युतम् ॥

सर्वान् कुर्वन्तं प्रच्छन्नं विस्तीर्णमण्डलाकृतिम् । दृष्ट्वा तच्च भगवतस्तुष्टुवुस्ते क्रमेण च

विष्णुरुवाच ।

ब्रह्माण्डानि च सर्वाणि यल्लोमविवरेषु च । सोऽयंतेषोडशांशश्च के वयं यो महाविराट्

ब्रह्मोवाच ।

वेदोपयुक्तं दृश्यं यत्प्रत्यक्षं द्रष्टुमीश्वर । स्तोतुं तद्वर्णितुमहं शक्तः किं स्तौमि तत्परः ॥

श्रीमहादेव उवाच ।

ज्ञानाधिष्ठातृदेवोऽहं स्तौमि ज्ञानपरञ्च किम् ।
सर्वानिर्वचनीयं यं तं त्वां स्वेच्छामयं विभुम् ॥ ६८ ॥

धर्म उवाच ।

अदृश्यमवतारेषु यद्दृश्यं सर्वजन्तुभिः । किं स्तौमि तेजोरूपन्तद्भक्तानुग्रहविग्रहम् ॥ ६६

देवा ऊचुः ।

के वयं त्वत्कलांशाश्च किंवा त्वांस्तोतुमीश्वराः । स्तोतुं न शक्ता वेदायं न च शक्ता सरस्वती

मुनय ऊचुः ।

वेदान्पठित्वा विद्वांसो वयं किं वेदकारणम् । स्तोतुमीशा न वाणी च त्वां वाङ्मनसोःपरम्

सरस्वत्युवाच ।

वागधिष्ठातृदेवीं मां वदन्ति वेदवादिनः । किञ्चिन्न शक्ता त्वां स्तोतुमहो वाङ्मनसोःपरम्

सावित्री उवाच ।

वेदप्रसूरहं नाथ सृष्टा त्वत्कलया पुरा । किं स्तौमि स्त्रीस्वभावेन सर्वकारणकारणम् ।

लक्ष्मीरुवाच ।

त्वदंशविष्णुकान्ताहं जगत्पोषणकारिणी । किं स्तौमि त्वत्कलासृष्टा जगतां वीजकारणम्

हिमालय उवाच ।

हसन्ति सन्तो मां नाथ कर्मणा स्थावरं परम् । स्तोतुं समुद्यतं क्षुद्रः किं स्तौमि स्तोतुमक्षमः

क्रमेण सर्वे तं स्तुत्वा देवा विररमुर्मुने । देव्यश्च मुनयः सर्वे पार्वती स्तोतुमुद्यता ॥

धौतवस्त्रजटाभारं विभ्रती सुव्रता व्रते । प्रेरिता परमात्मानं व्रताराध्यं शिवेन च ॥

ज्वलदग्निशिखारूपा तेजोमूर्त्तिमती सती । तपसां फलदा माता जगतां सर्वकर्मणाम् ॥

पार्वत्युवाच ।

कृष्ण जानासि मां भद्र नाहं त्वां ज्ञातुमीश्वरी । के वा जानन्ति वेदज्ञा वेदा वा वेदकारकाः

त्वदंशास्त्वां न जानन्ति कथं ज्ञास्यन्ति त्वत्कलाः ।
त्वञ्चापि तत्त्वं जानासि किमन्ये ज्ञातुमीश्वराः ॥ ११० ॥
सूक्ष्मात् सूक्ष्मतमोऽव्यक्तः स्थूलात् स्थूलतमो महान् ।
विश्वस्त्वं विश्वरूपश्च विश्वबीज सनातनः ॥ १११ ॥
कार्य्यं त्वंकारणंत्वञ्चकारणानाञ्चकारणम् । तेजः स्वरूपो भगवान्निराकारोनिराश्रयः
निर्लिप्तोनिर्गुणःसाक्षीस्वात्मारामः परात्परः । प्रकृतीशोविराड्बीजंविराड्रूपस्त्वमेवच
सगुणस्त्वं प्राकृतिकः कलया सृष्टिहेतवे ॥ ११३ ॥
प्रकृतिस्त्वं पुमांस्त्वञ्च वेदान्यो न क्वचिद्भवेत् ।
जीवस्त्वं साक्षिणो भोगी स्वात्मनः प्रतिबिम्बकः ॥ ११४ ॥
कर्म त्वं कर्मबीजं त्वं कर्मणांफलदायकः । ध्यायन्ति योगिनस्तेजस्त्वदीयमशरीरिणम्
केचिच्चतुर्भुजं शान्तं लक्ष्मीकान्तं मनोहरम् ॥ ११५ ॥
वैष्णवाश्चैव साकारं कमनीयं मनोहरम् । शङ्खचक्रगदापद्मधरं पीताम्बरं परम् ॥११६॥
द्विभुजं कमनीयञ्च किशोरं श्यामसुन्दरम् । शान्तं गोपाङ्गनाकान्तं रत्नभूषणभूषितम् ॥
एवं तेजस्विनं भक्ताः सेवन्तेसन्ततं मुदा । ध्यायन्तियोगिनो यत्तत्कुतस्तेजस्विनंविना
तत्तेजो बिभ्रतां देव देवानां तेजसा पुरा । आविर्भूता सुराणाञ्च वधाय ब्रह्मणः स्तुता ।
नित्या तेजःस्वरूपाऽहं विधृत्य विग्रहं विभो । स्त्रीरूपं कमनीयञ्च विधाय समुपस्थिता
मायया तव मायाहं मोहयित्वा सुरान् पुरा । निहत्य सर्वान् शैलेन्द्रमगमंतंहिमाचलम्
ततोऽहं संस्तुता देवैस्तारकाक्षेण पीड़ितैः । अभवं दक्षजायायां शिवस्त्री भवजन्मनि ।
त्यक्त्वा देहं दक्षयज्ञे शिवाहं शिवनिन्दया । अभवं शैलजायायां शैलाधीशस्य कर्मणा ।
अनेकतपसा प्राप्तः शिवश्चात्रापिजन्मनि । पाणिं जग्राह मे योगी प्रार्थितोब्रह्मणाविभुः
शृङ्गारजञ्च तत्तेजो नालभम् देवमायया । स्तौमि त्वमेव तेनेश पुत्रदुःखेन दुःखिता ॥
व्रते भवद्विधं पुत्रं लब्धुमिच्छामि साम्प्रतम् ।
देवेन विहिता वेदे साङ्गे स्वस्वामिदक्षिणा ॥ १२६ ॥

श्रुत्वा सर्वं कृपासिन्धो कृपां मां कर्त्तुमर्हसि । इत्युक्त्वा पार्वती तत्र विरराम च नारद

भारते पार्वतीस्तोत्रं यः शृणोति सुसंयतः । सत्पुत्रं लभते नूनं विष्णुतुल्यपराक्रमम् ॥
संवत्सरं हविष्याशी हरिमभ्यर्च्य भक्तितः । सुपुण्यकव्रतफलं लभते नात्र संशयः ॥
विष्णुस्तोत्रमिदं ब्रह्मन् सर्वसम्पत्तिवर्द्धनम् । सुखदंमोक्षदंसारं स्वामिसौभाग्यवर्द्धनम्
सर्वसौन्दर्य्यबीजञ्च यशोराशिविवर्द्धनम् । हरिभक्तिप्रदं तत्त्वज्ञानबुद्धिविवर्द्धनम् ।१३१

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे गणपतिखण्डे नारायननारदसंवादे पुण्यकव्रते पार्वतीकृतं श्रीकृष्णस्तोत्रकथनं नाम सप्तमोऽध्यायः ।

अष्टमोऽध्यायः

स्तवप्रीतेन कृष्णेन पार्वत्यै निजरूपप्रदर्शनं वरप्रदानञ्च ।

नारायण उवाच ।

पार्वतीस्तवनं श्रुत्वा श्रीकृष्णः करुणानिधिः । स्वरूपं दर्शयामास सर्वादृश्यं सुदुर्लभम्
स्तुत्वा देवी ध्यानलग्ना कृष्णैकतानमानसा । ददर्श तेजसां मध्ये स्वरूपं सारमोहनम्
सद्रत्नसारनिर्माणे हीरकेण परिष्कृते । युक्ते माणिक्यमालाभी रत्नपूर्णे मनोरथे॥ ३ ॥
वह्निसंशुद्धपीतांशुधरं वंशीकरं परम् । वनमालागलं श्यामं रत्नभूषणभूषितम् ॥ ४ ॥
किशोरवयसं वेशविचित्रं चन्दनाङ्कितम् । चारुस्मितास्यमाढ्यं तच्छारदेन्दुविनिन्दकम्
मालतीमाल्यसंयुक्तमयूरपुच्छचूड़कम् । गोपाङ्गनापरिवृतं राधावक्षःस्थलोज्ज्वलम् ॥
कोटिकन्दर्पलावण्यलीलाधाम मनोहरम् । अतीव हृष्टं सर्वेष्टं भक्तानुग्रहकारकम् ॥ ७ ॥
दृष्ट्वा रूपं रूपवती पुत्रं तदनुरूपकम् । मनसा वरयामास वरं संप्राप्य तत्क्षणम् ॥ ८ ॥
वरं दत्त्वा वरेशस्तु यद्यन्मनसि वाञ्छितम् । दत्त्वाभीष्टं सुरेभ्यश्च तत्तेजोऽन्तरधीयत
कुमारं बोधयित्वा तु देवा देव्यै दिगम्बरम् । ददुर्निरुपमं तत्र प्रहृष्टायै कृपान्विताः ॥
ब्राह्मणेभ्योददौदुर्गारत्नानिविविधानि च । सुवर्णानि चभिक्षुभ्योवन्दिभ्योविश्वनन्दिता
ब्राह्मणान् भोजयामास देवांश्च पर्वतांस्तथा । शङ्करं पूजयामास चोपहारैरनुत्तमैः ॥१२

दुन्दुभिं वादयामास कारयामास मङ्गलम्। सङ्गीतं गाययामास हरिसम्बन्धि सुन्दरम्

व्रतं समाप्य सा दुर्गा दत्त्वा दानानि सस्मिता।
सर्वांश्च भोजयित्वा तु बुभुजे स्वामिना सह ॥ १४ ॥

ताम्बूलञ्च वरं रम्यं कर्पूरादिसुवासितम्। क्रमात् प्रदाय सर्वेभ्यो बुभुजे तेन कौतुकात्

पयःफेननिभां शय्यां रम्यां सद्रत्ननिर्मिताम्। पुष्पचन्दनसंयुक्तां कस्तूरीकुङ्कुमान्विताम्

रहसि स्वामिना सार्द्धं सुष्वाप परमेश्वरी ॥ १६ ॥

कैलासस्यैकदेशे च रम्ये चन्दनकानने। सुगन्धिकुसुमाक्तेन वायुना सुरभीकृते ॥१७॥

भ्रमरध्वनिसंयुक्ते पुंस्कोकिलरुतश्रुते। विजहार सुरसिका तत्र तेन सहाम्बिका ॥१८॥

रेतः पतनकाले च स विष्णुर्विष्णुमायया। विधाय विप्ररूपन्तु आजगाम रतेर्गृहम्॥

रुक्ष्मवन्तं विना तैलं कुचैलं भिक्षुकं मुने। अतीव शुक्लदशनं तृष्णया परिपीड़ितम्॥२०

अतीव कृशमात्रञ्च बिभ्रत्तिलकमुज्ज्वलम्। वहुकाकुस्वरं दीनं दैन्यात्कुत्सितमूर्त्तिमत्।

आजुहाव महादेवमतिवृद्धोऽन्नयाचकः। दण्डावलम्बनं कृत्वा रतिद्वारेऽतिदुर्बलः ॥२२॥

ब्राह्मण उवाच।

किङ्करोषि महादेव रक्ष मां शरणागतम्। सप्तरात्रिव्रतेऽतीते पारणाकाङ्क्षिणं क्षुधा॥

किङ्करोषि महादेव हे तात करुणानिधे। पश्य वृद्धं जराग्रस्तं तृष्णया परिपीड़ितम्॥

मातरुत्तिष्ठ मामन्नं प्रयच्छ वासितं जलम्। अनन्तरत्नोद्भवजे रक्ष मां शरणागतम् ॥२५

मातर्मातर्जगन्मातर्हिनाहंजगद्बहिः। सीदामि तृष्णया कस्मात् स्थितायामात्ममातरि

इति काकुस्वरं श्रुत्वा शिवस्योत्तिष्ठतोमुने। पपातवीर्य्यंशय्यायां न योनौ प्रकृतेस्तदा

उत्तस्थौ पार्वती त्रस्ता सूक्ष्मवस्त्रं विधाय च। आजगाम रतिद्वारं पार्वत्या सह शङ्करः

ददर्श ब्राह्मणं दीनं जरया परिपीड़ितम्। वृद्धं लुलितगात्रञ्च बिभ्रतं दण्डमानतम् ॥२८

तपस्विनमशान्तञ्च शुष्ककण्ठौष्ठतालुकम्। कुर्वन्तं परया शक्त्या प्रमाणं स्तवनं तयोः

श्रुत्वा तद्वचनं तत्र नीलकण्ठः सुधोत्तमम्। उवाच परया प्रीत्या प्रसन्नस्तं प्रहस्य च

शङ्कर उवाच।

गृहन्ते कुत्र विप्रर्षे वद वेदविदांवर। किन्नाम भवतः क्षिप्रं ज्ञातुमिच्छामि साम्प्रतम्।

पार्वत्युवाच ।

आगतोऽसि कुतो विप्र मम भाग्यादुपस्थितः ।
अद्य मे सफलं जन्म ब्राह्मणो मद्गृहेऽतिथिः ॥ ३३ ॥

अतिथिः पूजितो येन त्रिजगत्तेन पूजितम् । तत्रैवाधिष्ठिता देवा ब्राह्मणा गुरवो द्विज॥ तीर्थान्यतिथिपादेषु शश्वत्तिष्ठन्ति निश्चितम् । तत्पादधौततोयेन मिश्रितानि लभेद्गृही सस्नातःसर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः । अतिथिः पूजितोयेन स्वात्मशक्त्या यथोचितम् महादानानि सर्वाणि कृतानि तेन भूतले । अतिथिः पूजितो येन भारते भक्तिपूर्वकम् ॥ नानाप्रकारपुण्यानि वेदोक्तानिचयानिच । अन्येवातिथिसेवायाःकलां नार्हन्तिषोड़शीम् अपूजितोऽतिथिर्यस्य भवनाद्विनिवर्त्तते । पितृदेवाग्नयः पश्चाद्गुरवो यान्त्यपूजिताः ॥

यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च ।
तानि सर्वाणि लभते नाऽभ्यच्चर्यातिथिमीप्सितम् ॥ ४० ॥

ब्राह्मण उवाच ।

जानासि वेदान् वेदज्ञे वेदोक्तं कुरुपूजनम् । क्षुत्तृड्भ्यां पीड़ितोमातर्वचनञ्च श्रुतौश्रुतम् व्याधियुक्तो निराहारो यदा वाऽनशनव्रती । मनोरथेनोपहारं भोक्तुमिच्छति मानवः ॥

पार्वत्युवाच ।

भोक्तुमिच्छसि किं विप्र त्रैलोक्ये चेत् सुदुर्लभम् ।
दास्यामि भोक्तुं त्वामद्य मज्जन्म सफलं कुरु ॥ ४३ ॥

ब्राह्मण उवाच ।

व्रते सुव्रतया सर्वमुपहारं समाहृतम् । नानाविधं मिष्टमिष्टं भोक्तुं श्रुत्वा समागतः ॥ सुव्रते तव पुत्रोऽहमग्रे मां पूजायिष्यसि । दत्त्वामिष्टानि वस्तूनि त्रैलोक्ये दुर्लभानिच

ताताः पञ्चविधाः प्रोक्ता मातरो विविधाः स्मृताः ।
पुत्रः पञ्चविधः साध्वि कथितो वेदवादिभिः ॥ ४६ ॥

विद्यादाताऽन्नदाताच भयत्राताच जन्मदः । कन्यादाताच वेदोक्ता नराणां पितरःस्मृताः गुरुपत्नीगर्भधात्री स्तनदात्रीपितुः स्वसा । स्वसा मातुः सपत्नीच पुत्रभार्य्यान्नदायिका

भृत्यः शिष्यश्च पोष्यश्च वीर्य्यजः शरणागतः ।
धर्मपुत्राश्च चत्वारो वीर्य्यजो धनभागिति ॥ ४६ ॥

क्षुत्तृड्भ्यांपीड़ितो मातर्वृद्धोऽहं शरणागतः । साम्प्रतंतव वन्ध्याया अनाथः पुत्रएवच
पिष्टकं परमान्नञ्च सुपक्कानि फलानि च । नानाविधानि पिष्टानि कालदेशोद्भवानिच ॥
पक्वान्नं स्वस्तिकं क्षीरमिक्षुमिक्षुविकारजम् । घृतं दधि च शाल्यन्नं घृतपक्वञ्चव्यञ्जनम्
लड्डुकानि तिलानाञ्च भृष्टान्नैःसगुड़ानिच । ममाज्ञातानि वस्तूनि सुधयातुल्यकानिच
ताम्बूलञ्चवरं रम्यं कर्पूरादिसुवासितम् । जलंसुनिर्म्मलंस्वादु द्रव्याण्येतानिवासितम्
द्रव्याणि यानि भुक्त्वा मे चारु लम्बोदरं भवेत् । अनन्तरत्नोद्भवजे तानि मह्यं प्रदास्यसि
स्वामी ते त्रिजगत्कर्त्ता प्रदाता सर्वसम्पदाम् । महालक्ष्मीस्वरूपात्वं सर्वैश्वर्य्यप्रदायिनी
रत्नसिंहासनं रम्यममूल्यं रत्नभूषणम् । वह्निशुद्धांशुकं चारु प्रदास्यसि सुदुर्लभम् ॥५७॥
सुदुर्लभं हरेर्मन्त्रं हरौ भक्तिं दृढ़ां सति । हरिप्रिया हरेः शक्तिस्त्वमेव सर्वदा सदा ।५८
ज्ञानं मृत्युञ्जयं नाम दातृशक्ति सुखप्रदाम् । सर्वसिद्धिञ्च किं मातर्देयं स्वसुताय च ॥
मनः सुनिर्मलं कृत्वा धर्मे तपसि सन्ततम् । श्रेष्ठे सर्वं करिष्यामि न कामे जन्महेतुके ।

स्वकामात् कुरुते कर्म कर्मणो भोग एव च ।
भोगौ शुभाशुभौ ज्ञेयौ तौ हेतू सुखदुःखयोः ॥ ६१ ॥

दुःखं न कस्माद्भवति सुखं वा जगदम्बिके । सर्वं स्वकर्मणो भोगस्तेन तद्विरतो बुधः ।
कर्म निर्मूलयन्त्येव सन्तो हि सततं मुदा । हरिभावनबुद्ध्या तत्तपसा भक्तसङ्गतः ॥
इन्द्रियद्रव्यसंयोगसुखं विध्वंसनावधि । हरिसंलापरूपञ्च सुखं तत्सर्वकालिकम् ॥६४॥
हरिस्मरणशीलानां नायुर्याति सतां सति । न तेषामीश्वरः कालो नचमृत्युञ्जयो ध्रुवम्
चिरं जीवन्ति ते भक्ता भारतेचिरजीविनः । सर्वसिद्धिञ्च विज्ञाय स्वच्छन्दंसर्वगामिनः
जातिस्मरा हरेर्भक्ता जानन्तिकोटिजन्मनः । कथयन्ति कथां जन्म लभन्तेस्वेच्छयामुदा
परं पुनन्ति ते पूतास्तीर्थानि स्वाचलीलया । पुण्यक्षेत्रेऽत्र सेवायै परार्थञ्च भ्रमन्ति ते ॥
वैष्णवानां पदस्पर्शात् सद्यः पूता वसुन्धरा । कालं गोदोहनमात्रं तीर्थे यत्र वसन्तिते

गुरोरास्याद्विष्णुमन्त्रः श्रुतो यस्य प्रविश्यति । तं वैष्णवं तीर्थपूतं प्रवदन्ति पुराविदः

पुरुषाणां शतं पूर्वमुद्धरन्ति शतं परम् । लीलया भारते भक्त्या सोदरान्मातरं तथा ।७१

मातामहानां पुरुषान् दशपूर्वान् दशापरान् ।
मातुः प्रसूमुद्धरन्ति दारुणात् यमताड़नात् ॥ ७२ ॥

भक्तदर्शनमाश्लेषं मानवाः प्राप्नुवन्ति ये । ते याताः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षिताः ॥
न लिप्ताः पातके भक्ताः सन्ततं हरिमानसाः । यथाग्नयः सर्वभक्ष्या यथाद्रव्येषु वायवः
त्रिकोटिजन्मनोजन्तुःप्राप्नोतिजन्ममानवम् । प्राप्तोतिभक्तसङ्गं स मानुषेकोटिजन्मनः
भक्तसङ्गात् भवेत् भक्तेरङ्कुरो जीविनः सति । अभक्तदर्शनादेव सच प्राप्नोतिशुष्कताम्
पुनः प्रफुल्लतां याति वैष्णवालापमात्रतः । अङ्कुरश्चाविनाशी च वर्द्धते प्रतिजन्मनि ।७७
तत्तरोर्वर्द्धमानस्य हरिदास्यं फलं सति । परिणामे भक्तिपाके पार्षदश्च भवेद्धरेः ॥७८॥
महति प्रलये नाशो न भवेत्तस्य निश्चितम् । सर्वसृष्टेश्च संहारे ब्रह्मलोकस्य ब्रह्मणः ॥
तस्मान्नारायणे भक्तिं देहिमामम्बिके सदा । न भवेद्विष्णुभक्तिश्च विष्णुमाये त्वयाविना
तद्वन्तं लोकशिक्षार्थं स्वतपस्तवपूजनम् । सर्वेषां फलदात्री त्वं नित्यरूपा सनातनी ॥
गणेशरूपः श्रीकृष्णः कल्पे कल्पे तवात्मजः । त्वत्क्रोड़मागतःक्षिप्रमित्युक्त्वान्तरधीयत
कृत्वान्तर्द्धानमीशश्च बालरूपं विधाय सः । जगाम पार्वतीतल्पं मन्दिराभ्यन्तरस्थितम्
तल्पस्थे शिववीर्य्ये च मिश्रितः स बभूव ह । ददर्श गेहशिखरं प्रसूतो बालको यथा ॥
शुद्धचम्पकवर्णाभः कोटिचन्द्रसमप्रभः । सुखदृश्यः सर्वजनैश्चक्षूरश्मिविवर्द्धकः ॥८५॥
अतीव सुन्दरतनुः कामदेवविमोहनः । मुखं निरुपमं बिभ्रच्छारदेन्दुविनिन्दकम् ॥८६॥
सुन्दरे लोचने बिभ्रच्चारुपद्मविनिन्दके । ओष्ठाधरपुटं बिभ्रत् पक्वबिम्बविनिन्दकम् ।८७।
कपालश्च कपोलश्च परमं सुमनोहरम् । नासाग्रं रुचिरं बिभ्रत् खगेन्द्रचञ्चुनिन्दकम् ॥
त्रैलोक्येषु निरुपमं सर्वाङ्गं बिभ्रदुत्तमम् । शयानः शयने रम्ये प्रेरयन् हस्तपादकम् ८९

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे गणपतिखण्डे नारायणनारसंवादे गणेशोत्पत्तिर्नाम
अष्टमोऽध्यायः ।

———

नवमोऽध्यायः

हरौ तिरोहिते पार्वत्या ब्राह्मणान्वेषणम् ।

नारायण उवाच ।

हरौ तिरोहिते भूते दुर्गा च शङ्करस्तदा । ब्राह्मणान्वेषणं कृत्वा बभ्राम परितो मुने ॥१

पार्वत्युवाच ।

अये विप्रेन्द्रातिवृद्ध क्व गतोऽसि क्षुधातुरः । हे तात दर्शनं देहि प्राणांश्च रक्ष मे विभो
शिव शीघ्रं समुत्तिष्ठ ब्राह्मणान्वेषणं कुरु । क्षणमुन्मनसोरेषः प्रत्यक्षमावयोर्गतः ॥३॥

अगृहीत्वा गृहात् पूजां गृहिणोऽतिथिरीश्वर ।
यदि याति क्षुधार्त्तश्च तस्य किं जीवनं वृथा ॥ ४ ॥

पितरस्तन्न गृह्णन्ति पिण्डदानञ्च तर्पणम् । तस्याहुतिं न गृह्णन्ति वह्निः पुष्पं जलं सुराः
हव्यं पुष्पं जलं द्रव्यमशुचेश्च सुरासमम् । अमेध्यसदृशः पिण्डः स्पर्शनं पुण्यनाशनम् ॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र वाग्बभूवाशरीरिणी । कैवल्ययुक्ता सा दुर्गा तां शुश्राव शुचातुरा ॥
शान्ता भव जगन्मातः स्वसुतं पश्य मन्दिरे । कृष्णं गोलोकनाथं तं परिपूर्णतमं परम्
सुपुण्यकव्रततरोः फलरूपं सनातनम् । यत्तेजो योगिनः शश्वत् ध्यायन्ते सन्ततं मुदा
ध्यायन्तेवैष्णवा देवा ब्रह्मविष्णुशिवादयः । यस्यपूज्यस्य सर्वाग्रे कल्पे कल्पेच पूजनम्
यस्य स्मरणमात्रेण सर्वविघ्नो विनश्यति । पुण्यराशिस्वरूपञ्च स्वसुतं पश्य मन्दिरे ॥
कल्पे कल्पे ध्यायसे यं ज्योतीरूपं सनातनम् । पश्यत्वं मुक्तिदं पुत्रं भक्तानुग्रहविग्रहम्
तव वाञ्छापूर्णबीजं तपः कल्पतरोः फलम् । सुन्दरं स्वसुतं पश्य कोटिकन्दर्पनन्दकम्
नायं विप्रः क्षुधार्त्तश्च विप्ररूपी जनार्दनः । किं वा विलपसे दुर्गे क्ववात्तृद्ध.क्वचातिथिः

सरस्वतीत्येवमुक्त्वा विरराम च नारद ॥१४ ॥

त्रस्ता श्रुत्वाऽऽकाशवाणीं जगामस्वालयं सती । ददर्श बालं पर्य्यङ्के शयानंसस्मितंमुदा
पश्यन्तं गेहशिखरं शतचन्द्रसमप्रभम् । स्वप्रभापटलेनैव द्योतयन्तं महीतलम् ॥ १६ ॥

कुर्वन्तं भ्रमणं तल्पे पश्यन्तं स्वेच्छया मुदा। उमेति शब्दं कुर्वन्तंरुदन्तं तं स्तनार्थिनम्
दृष्ट्वा तमद्भुतं रूपं त्रस्ता शङ्करसन्निधिम्। गत्वेत्युवाच प्राणेशं मङ्गलं सर्वमङ्गला ॥१८

पार्वत्युवाच।

गृहमागच्छ प्राणेश तपसां फलदायकम्। कल्पे कल्पे ध्यायसे यं तं पश्यागत्यमन्दिरम्
शीघ्रं पुत्रमुखं पश्य पुण्यबीजं महोत्सवम्। पुन्नामनरकत्राणं कारणं भवतारणम्॥२०
स्नानञ्च सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षणम्। पुत्रसुदर्शनस्यास्य कलां नार्हति षोड़शीम्
सर्वदानेन यत्पुण्यंयत्पृथिव्याः प्रदक्षिणात्। पुत्रदर्शनपुण्यस्य कलां नार्हति षोड़शीम्
सर्वैस्तपोभिर्यत्पुण्यं यदेवानशनैर्व्रतैः। मत्पुत्रोद्भवपुण्यस्य कलां नार्हति षोड़शीम्।
यद्विप्रभोजनैः पुण्यं यदेव सुरसेवनैः। सत्पुत्रप्राप्तिपुण्यस्य कलां नार्हति षोड़शीम्
पार्वती वचनं श्रुत्वा शिवः प्रहृष्टमानसः। आजगाम स्वभवनं क्षिप्रं स कान्तया सह।
ददर्श तल्पे स्वसुतं तप्तकाञ्चनसन्निभम्। हृदयस्थं च यद्रूपं तदेवाति मनोहरम्॥२५॥
दुर्गा तल्पात् समादाय कृत्वावक्षसि तं सुतम्। चुचुम्बानन्दजलधौ निमग्नासेत्युवाचह
संप्राप्यामूल्यरत्नं त्वां पूर्णमेव सनातनम्। यथा मनो दरिद्रस्यसहसा प्राप्यसद्धनम्।
कान्ते सुचिरमायाते प्रोषिते योषितो यथा। मानसं परिपूर्णञ्च बभूव च तथा मनः॥
सुचिरं गतमायान्तमेकपुत्रा यथा सुतम्। दृष्ट्वा तुष्टा यथा वत्स तथाहमपि साम्प्रतम्॥
सद्रत्नं सुचिरं भ्रष्टं प्राप्य हृष्टो यथा जनः। अनावृष्टौ सुवृष्टिञ्च सम्प्राप्याहं तथासुतम्
यथा सुचिरमन्धानां स्थितानाञ्च निराश्रये। चक्षुः सुनिर्मलं प्राप्य मनः पूर्णं तथैवमे
दुस्तरे सागरे घोरे पतितस्य च सङ्कटे। अनौकस्य प्राप्य नौकां मनः पूर्णं तथा मम॥
तृष्णया शुष्ककण्ठानां सुचिराच्चसुशीतलम्। सुवासितंजलंप्राप्य मनःपूर्णं तथामम॥
दावाग्निपतितानाञ्च स्थितानाञ्च निराश्रये। निरग्निमाश्रयं प्राप्यमनः पूर्णं तथा मम॥
चिरं बुभुक्षितानाञ्च व्रतोपवासकारिणाम्। सदन्नं पुरतो दृष्ट्वा मनः पूर्णं तथा मम॥
इत्युक्त्वा पार्वती तत्र क्रोड़े कृत्वा स्वबालकम्॥ ३५॥
प्रीत्या स्तनं ददौ तस्मै परमानन्दमानसा। क्रोड़े चकार भगवान् बालकं हृष्टमानसः॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे गणपतिखण्डे गणेशदर्शनं नाम नवमोऽध्यायः।

दशमोऽध्यायः

सर्वेभ्यो बहुविधदानम् ।

नारायण उवाच ।

तौ दम्पती बहिर्गत्वा पुत्रमङ्गलहेतवे । विविधानि च रत्नानि ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा ॥
वन्दिभ्यो भिक्षुकेभ्यश्च दानानि विविधानि च ।
नानाविधानि वाद्यानि वादयामास शङ्करः ॥ २ ॥
हिमालयश्च रत्नानां ददौ लक्षं द्विजातये । सहस्रञ्च गजेन्द्राणामश्वानाञ्च त्रिलक्षकम् ॥
दशलक्षं गवाञ्चैव पञ्चलक्षं सुवर्णकम् । मुक्तामाणिक्यरत्नानि मणिश्रेष्ठानि यानि च ॥
अन्यान्यपिच दानानिवस्त्राणिभूषणानिच । सर्वाण्यमूल्यरत्नानि क्षीरोदसम्भवानिच
ब्राह्मणेभ्यो ददौ विष्णुः कौस्तुभं कौतुकान्वितः ।
ब्रह्मा विशिष्टदानानि विप्राणां वाञ्छितानि च ।
सुदुर्लभानि सृष्टौ च ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा ॥ ६ ॥
धर्मः सूर्य्यश्च शक्रश्च देवाश्चा मुनयस्तथा । गन्धर्व्वाः पर्वता देव्यो ददुर्दानं क्रमेण च ॥
माणिक्यानांसहस्राणि रत्नानाञ्चशतानिच । शतानिकौस्तुभानाञ्च हीरकाणांशतानिच॥
हरिद्वर्णमणीन्द्राणां सहस्राणि मुदान्वितः ॥ ९ ॥
गवां रत्नानि लक्षाणि गजरत्नंसहस्रकम् । अमूल्यान्यन्यरत्नानि श्वेतवर्णानिकौतुकात्
शतलक्षं सुवर्णानां वह्निशुद्धांशुकानि च । ब्राह्मणेभ्यो ददौ ब्रह्मन् तत्र क्षीरोदकार्णवः॥
हारश्चामूल्यरत्नानां त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् । अतीवनिर्मलं सारं सूर्य्यभाऽनुविनिन्दकम्
परिष्कृतञ्च माणिक्यैर्हीरकैश्च विराजितम् । रम्यं कौस्तुभमध्यस्थं ददौ देवी सरस्वती॥
त्रैलोक्यसारहारञ्च सद्रत्नसारनिर्मितम् । भूषणानिच सर्वाणि सा सावित्री ददौ मुदा
लक्षं सुवर्णलोष्ट्राणां धनानि विविधानि च । शतान्यमूल्यरत्नानां कुबेरश्च ददौ मुदा ॥
दानानि दत्त्वा विप्रेभ्यस्ते सर्वे ददृशुः शिशुम् । परमानन्दसंयुक्ताः शिवपुत्रोत्सवे मुने ॥

भारंवोढुमशक्ताश्चब्राह्मणा वन्दिनस्तथा। स्थायंस्थायञ्चगच्छन्तोधनानां पथि कातराः
कथयन्ति कथाः सर्वे विश्रान्ताः पूर्वदायिनाम्।
वृद्धाः शृण्वन्ति मुदिता युवानो भिक्षुका मुने॥ १८॥
विष्णुः प्रमुदितस्तत्र वादयामास दुन्दुभिम्। सङ्गीतं गाययामासकारयामास नर्त्तनम्
वेदांश्च पाठयामास पुराणानि च नारद।
मुनीन्द्रानानयामास पूजयामास तान् मुदा। आशिषं दापयामास कारयामासमङ्गलम्।
सार्द्धं देवैश्च देवीभिर्ददौ तस्मै शुभाशिषम्॥ २०॥

विष्णुरुवाच।

शिवेन तुल्यं ज्ञानन्ते परमायुश्च बालक। पराक्रमे मया तुल्यः सर्वसिद्धीश्वरो भव॥

ब्रह्मोवाच।

यशसा ते जगत् पूर्णं सर्वपूज्यो भवाचिरम्। सर्वेषां पुरतः पूजा भवत्वतिसुदुर्लभा॥

धर्म्म उवाच।

मया तुल्यः सुधर्मिष्ठो भवान् भव सुदुर्लभः। सर्वज्ञश्चदयायुक्तो हरिभक्तो हरेःसमः॥

महादेव उवाच।

दाताभवमया तुल्योहरिभक्तश्च बुद्धिमान्। विद्यावान् पुण्यवान् शान्तोदान्तश्चप्राणवल्लभ

लक्ष्मीरुवाच।

मम स्थितिश्च गेहे ते देहे भवतु शाश्वती। पतिव्रता मयातुल्या शान्ता कान्तामनोहरा

सरस्वत्युवाच।

मया तुल्या सुकविता धारणाशक्तिरेव च। स्मृतिर्विवेचनाशक्तिर्भवत्वतिशया सुत॥

साविञ्युवाच।

वत्साहं वेदजननी वेदज्ञानी भवाचिरम्। मन्मन्त्रजपशीलश्च प्रवरो वेदवादिनाम्॥२७।

हिमालय उवाच

श्रीकृष्णेतिमतिःशश्वत्भक्तिर्भवतुशाश्वती। श्रीकृष्णतुल्योगुणवान्भवकृष्णपरायणः

मेनकोवाच।

समुद्रतुल्यो गाम्भीर्य्येकामतुल्यश्च रूपवान्। श्रीयुक्तःश्रीपतिसमो धर्मे धर्मसमोभव॥

वसुन्धरोवाच ।

क्षमाशीलो मया तुल्यः शरण्यःसर्वरत्नवान् । निर्विघ्नो विघ्ननिघ्नश्च भव वत्सशुभाश्रयः

पार्वत्युवाच ।

ताततुल्यमहायोगी सिद्धः सिद्धिप्रदः शुभः । मृत्युञ्जयश्च भगवान् भवत्वतिविशारदः
ऋषयो मुनयः सिद्धाः सर्वे युयुजुः शेषम् । ब्राह्मणा वन्दिनश्चैव युयुजुःसर्वमङ्गलम्
सर्वं ते कथितं वत्स सर्वमङ्गलमङ्गलम् । गणेशजन्मकथनं सर्वविघ्नविनाशनम् ॥ ३३ ॥
इमं सुमङ्गलाध्यायं यः शृणोति सुसंयतः । सर्वमङ्गलसंयुक्तः स भवेन्मङ्गलालयः ॥३४
अपुत्रो लभते पुत्रमधनो लभते धनम् । कृपणो लभते सत्वं शश्वत् सम्पत्प्रदायि च ॥
भार्य्यार्थीलभतेभार्य्यां प्रजार्थीलभतेप्रजाम् । आरोग्यंलभते रोगी सौभाग्यंदुर्भगालभेत्
भ्रष्टपुत्रं नष्टधनं प्रोषितञ्च प्रियं लभेत् । शोकाविष्टःसदानन्दं लभते नात्र संशयः ॥३७॥
गणेशाख्यानश्रवणे यत् पुण्यं लभते नरः । तत् फलं लभते नूनमध्यायश्रवणे मुने ॥
अयञ्च मङ्गलाध्यायो यस्य गेहे च तिष्ठति । सदा मङ्गलसंयुक्तः स भवेन्नात्र संशयः ३९
यात्राकाले च पुण्याहे यः शृणोति समाहितः । सर्वाभीष्टं सलभते श्रीगणेशप्रसादतः॥

इति श्री ब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारद-संवादे गणपतिखण्डे
गणेशोद्भवमङ्गलं नाम दशमोऽध्यायः ।

एकादशोऽध्यायः

गणेशदर्शनार्थं शनैश्चरागमनम् ।

नारायण उवाच ।

हरिस्तमाशिषं कृत्वा रत्नसिंहासने वरे । दैवैश्च मुनिभिः सार्द्धमुवास तत्र संसदि ॥१॥
दक्षिणे शङ्करस्तस्य वामे ब्रह्मा प्रजापतिः । पुरतो जगतां साक्षी धर्मो धर्मवतां वरः ॥
आवां धर्मसमीपे च सूर्यः शक्रःकलानिधिः । देवाश्च मुनयो ब्रह्मन्नूषुःशैलाःसुखासने ॥

ननर्त्त नर्त्तकश्रेणी जगुर्गन्धर्वकिन्नराः। श्रुतिसारं श्रुतिसुखं तुष्टुवुः श्रुतयो हरिम् ॥४॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र द्रष्टुं शङ्करनन्दनम्। आजगाम महायोगी सूर्य्यपुत्रः शनैश्चरः ॥ ५ ॥
अत्यन्तनम्रवदन ईषन्मुद्रितलोचनः। अन्तर्वहिः स्मरन् कृष्णं कृष्णैकगतमानसः ॥ ६ ॥
तपःफलाशी तेजस्वी ज्वलदग्निशिखोपमः। अतीवसुन्दरः श्याम पीताम्वरधरो वरः ॥७
प्रणम्य विष्णुं ब्रह्माणं शिवं धर्मं रविं सुरान्। मुनीन्द्रान् वालकं द्रष्टुं जगाम तदनुज्ञया
प्रधानद्वारमासाद्य शिवतुल्यपराक्रमम्। द्वारिणं शूलहस्तञ्च विशालाक्षमुवाच ह ॥६॥

शनैश्चर उवाच।

शिवाज्ञया शिशुं द्रष्टुं यामि शङ्करकिङ्कर। विष्णुप्रमुखदेवानां मुनीनामनुरोधतः ॥१०॥
आज्ञां देहि च मां गन्तुं पार्वतीसन्निधिं वुध।
पुनर्यामि शिशुं दृष्ट्वा विषयासक्तमानसः ॥११॥

विशालाक्ष उवाच।

आज्ञावहो न देवानां नाहं शङ्करकिङ्करः।
द्वारं दातुं न शक्तोऽहं विनाऽऽत्ममातुराज्ञया ॥१२॥

इत्युक्त्वाभ्यन्तरभ्येत्य प्रेरितः स शिवाज्ञया। ददौ द्वारं ग्रहेशायविशालाक्षो मुदा ततः
शनिरभ्यन्तरं गत्वा ननाम नम्रकन्धरः। रत्नसिंहासनस्थाञ्च पार्वतीं सस्मितां मुदा ॥
सखिभिःपञ्चभिःशश्वत्सेवितांश्वेतचामरैः। सखिदत्तञ्चताम्वूलंभुक्तवन्तींसुवासितम् ॥
वह्निशुद्धांशुकाधानां रत्नभूषणभूषिताम्। पश्यन्तीं नर्त्तकीनृत्यं पुत्रंकृत्वाचवक्षसि ॥
नतं सूर्य्यसुतं दृष्ट्वा दुर्गा संभाष्य सत्वरम्। शुभाशिषं ददौ तस्मैपृष्टातन्मङ्गलंशुभम् ॥

पार्वत्युवाच।

कथमानम्रवक्त्रस्त्वं श्रोतुमिच्छामि साम्प्रतम्।
किं न पश्यसि मां साधो वालकं वा ग्रहेश्वर ॥१८॥

शनिरुवाच।

सर्वे स्वकर्मणा साध्वि भुञ्जते तपसः फलम्। शुभाशुभञ्चयत्कर्मकोटिकल्पैर्नलुप्यते ॥
कर्मणा जायते जन्तुर्ब्रह्मेन्द्रसूर्य्यमन्दिरे। कर्मणा नरगेहेषु पश्वादिषु च कर्मणा ॥२०॥

कर्मणा नरकं याति वैकुण्ठं याति कर्मणा । स्वकर्मणाचराजेन्द्रोभृत्यश्चापि स्वकर्मणा ॥
कर्मणासुन्दरःशश्वद्व्याधियुक्तःस्वकर्मणा । कर्मणा विषयीमातर्निर्लिप्तश्चस्वकर्मणा ॥
कर्मणा धनवान्लोकोदैन्ययुक्तःस्वकर्मणा । कर्मणासत्कुटुम्बीचकर्मणाबन्धुकण्टकः ॥
सुभार्य्यश्चसुपुत्रश्चसुखीशश्वत्स्वकर्मणा । अपुत्रकश्चकुस्त्रीवान्निस्त्रीकश्च स्वकर्मणा॥

इतिहासश्चातिगोप्यं शृणु शङ्करवल्लभे ।
अकथ्यं जननीसाक्षाल्लज्जाजनककारणम् ॥२५॥
आबालात् कृष्णभक्तोऽहं कृष्णध्यानैकमानसः ।
तपस्यासु रतः शश्वत् विषये विरतः सदा ॥२६॥
पिता ददौ विवाहे तु कन्याश्चित्ररथस्य च ।
अतितेजस्विनी शश्वत् तपस्यासु रता सती ॥२७॥
एकदा सा ऋतुस्नाता सुवेशं स्वं विधाय च ।
रत्नालङ्कारसंयुक्ता मुनिमानसमोहिनी ॥२८॥

हरेः पादं ध्यायमानं सा मां पश्येत्युवाचह । मत्समीपं समागत्य सस्मितालोललोचना
शशाप मामपश्यन्तं ऋतुनष्टा स्वकोपतः । बाह्यज्ञानविहीनश्च ध्यानैकतानमानसम् ॥
न दृष्टाहं त्वया येन न कृतमृतुरक्षणम् । त्वया दृष्टश्च यद्वस्तु मूढ़ सर्वं विनश्यति ॥३१
अहञ्च विरते ध्यानेऽतोषयं तां तदा सतीम् । शापं मोक्तुं न शक्तासा पश्चात्तापं चकारह
तेनमात र्न पश्यामि किञ्चिद्वस्तु स्वचक्षुषा । ततः प्रकृतिनम्रास्यः प्राणिहिंसाभयादहम्
शनैश्चरवचः श्रुत्वा जहास पार्वती मुने । ऊचैः प्रजहसुः सर्वा नर्त्तकीकिन्नरीगणाः ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे गणपतिखण्डे शनिपार्वती-
संवादो नामैकादशोऽध्यायः ।

———

द्वादशोऽध्यायः

शनिना बालकदर्शनम् ।

नारायण उवाच ।

दुर्गा तद्वचनं श्रुत्वा सस्मार हरिमीश्वरम् । ईश्वरेच्छावशीभूतं जगदेवेत्युवाचह ॥१॥

साचदेवी वशीभूता शनिं प्रोवाच कौतुकात् । पश्यमां मच्छिशुमिति निषेकःकेनवार्य्यते

पार्वतीवचनं श्रुत्वा शनिर्मेने हृदा स्वयम् । पश्यामि किंन पश्यामि पार्वतीसुतमित्यहो

यदि वा नो मया दृष्टस्तस्य विघ्नो भवेद् ध्रुवम् ॥ ३ ॥

इत्येवमुक्त्वा धर्मिष्ठो धर्मं कृत्वा तु साक्षिणम् । बालं द्रष्टुं मनश्चक्रे न बालमातरं शनिः

विषण्णमानसः पूर्वं शुष्ककण्ठौष्ठतालुकः । सव्यलोचनकोणेन ददर्शच शिशोर्मुखम् ५।

शनेश्च दृष्टिमात्रेण चिच्छेद मस्तकं मुने । चक्षुर्निवारयामास तस्थौ नम्राननः शनिः।६।

तस्थौ च पार्वतीक्रोड़े तत्सर्वाङ्गः सलोहितः ।

विवेश मस्तकं कृष्णे गत्वा गोलोकमीप्सितम् ॥ ७ ॥

मूर्च्छां संप्राप सादेवी विलप्यच भृशंमुहुः । मत्ताइव पृथिव्यान्तुकृत्वा वक्षसिबालकम्

विस्मितास्ते सुराः सर्वे चित्रपुत्तलिका यथा ।

देव्यश्च शैला गन्धर्वाः शिवः कैलासवासिनः ॥ ६ ॥

तान् सर्वान् मूर्च्छितान् दृष्ट्वैवारुह्य गरुड़ं हरिः ।

जगाम पुष्पभद्रां स उत्तरस्यां दिशि स्थिताम् ॥ १० ॥

पुष्पभद्रानदीतीरे ददर्श कानने स्थितः । गजेन्द्रं निद्रितं तत्र शयानं हस्तिनीयुतम् ॥११॥

दिश्युत्तरस्यां शिरसंमूर्च्छितं सुरतश्रमात् । परितः शावकान् कृत्वा परमानन्दमानसम्

शीघ्रं सुदर्शनेनैव चिच्छेद तच्छिरोमुदा । स्थापयामास गरुड़े रुधिराक्तं मनोहरम् ।१३

गजच्छिन्नाङ्गविक्षेपात् प्रबोधं प्राप्य हस्तिनी । शावकान्बोधयामास चाशुभं वदतीतदा

रुरोद शावकैः सार्द्धं सा विलप्य शुचातुरा ॥ १४ ॥

तुष्टाव कमलाकान्तं शान्तं सस्मितमीश्वरम् । शङ्खचक्रगदापद्मधरं पीताम्बरं परम् ।
गरुड़स्थं जगत्कान्तं भ्रामयन्तं सुदर्शनम् ॥ १५ ॥

निषेकं खण्डितुं शक्तं निषेकजनकं विभुम् । निषेकभोगदातारं भोगनिस्तारकारणम् ॥
प्रभुस्तत् स्तवनात्तुष्टस्तस्मै विप्रवरंददौ । मुण्डान्मुण्डं विनिष्कृत्य युयुजेऽन्यगजस्यच
जीवयामास तं तत्र ब्रह्मज्ञानेन ब्रह्मवित् । सर्वाङ्गे योजयामास गजस्य चरणाम्बुजम् ॥
त्वं जीवाकल्पपर्य्यन्तं परिवारैः समंगजः । इत्युक्त्वा च मनोयायी कैलासमाजगामसः

आगत्य पार्वतीस्थानं बालं कृत्वा स्ववक्षसि ।
रुचिरं तच्छिरः कृत्वा योजयामास बालके ॥ २० ॥

ब्रह्मस्वरूपो भगवान् ब्रह्मज्ञानेन लीलया । जीवनं कारयामास हुङ्कारोच्चारणेन च ॥२१

पार्वतीं बोधयित्वा तु कृत्वा क्रोड़े च तं शिशुम् ।
बोधयामास तां कृष्ण आध्यात्मिकविबोधनैः ॥ २२ ॥

विष्णुरुवाच ।

ब्रह्मादिकीटपर्य्यन्तं जगद् भुंक्ते स्वकर्मणा ।
जगद्वुद्धिस्वरूपासि त्वं न जानासि किं शिवे ॥ २३ ॥
कल्पकोटिशतं भोगो जीविनां तत् स्वकर्मणा ।
उपस्थितो भवेन्नित्यं प्रतियोनौ शुभाशुभैः ॥ २४ ॥

इन्द्रः स्वकर्मणा कीटयोनौ जन्म लभेत् सति । कीटश्चापि भवेदिन्द्रः पूर्वकर्मफलेनवै
सिंहोऽपि मक्षिकां हन्तुमक्षमः प्राक्तनं विना । मशको हस्तिनं हन्तुं क्षमःस्वप्राक्तनेनच

सुखं दुःखं भयं शोकमानन्दं कर्मणः फलम् ।
सुकर्मणः सुखं हर्षमितरे पापकर्मणः ॥ २७ ॥

इहैव कर्मणो भोगः परत्र च शुभाशुभैः । कर्मोपार्जनयोग्यश्च पुण्यक्षेत्रश्च भारतम् ॥२८
कर्मणःफलदाताच विधाताच विधेरपि । मृत्योर्मृत्युः कालकालोनिषेकस्य निषेककृत्
संहर्त्तु रपि संहर्त्ता पातुः पाताः परात्परः । गोलोकनाथः श्रीकृष्णःपरिपूर्णतमः स्वयम्
वयं यस्य कला पुंसो ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः । महाविराड्यदंशश्च यल्लोमविवरे जगत् ॥

कलांशाः केऽपि तद्धर्मे कलांशांशाश्च केचन। चराचरं जगत् सर्वं तत्रतस्थौविनायकः
श्रीविष्णोर्वचनं श्रुत्वा परितुष्टा च पार्वती। स्तनं ददौ च शिशवे तं प्रणम्य गदाधरम्
तुष्टाव पार्वती तुष्टा प्रेरिता शङ्करेण च। पुटाञ्जलियुता भक्त्या विष्णुं तं कमलापतिम्॥
आशिषं युयुजे विष्णुः शिशुश्च शिशुमातरम्। ददौ गले वालकस्य कौस्तुभञ्चस्वभूषणम्
व्रह्मा ददौ स्वमुकुटं धर्मश्च रत्नभूषणम्। क्रमेण देव्यो रत्नानि ददुः सर्वे यथोचितम्॥
तुष्टाव तं महादेवश्चातीवहृष्टमानसः। देवाश्च मुनयः शैला गन्धर्वाः सर्वयोषितः॥३७॥
दृष्ट्वा शिवः शिवाचैव वालकं मृतजीवितम्। व्राह्मणेभ्यो ददौ तत्र कोटिरत्नानि नारद

अश्वानाञ्च गजानाञ्च सहस्राणि शतानि च।

वन्दिभ्यः प्रददौ तत्र बालके मृतजीविते॥ ३९॥

हिमालयश्च संहृष्टो हृष्टा देवाश्च तत्र वै। ददुर्दानानि विप्रेभ्यो वन्दिभ्यः सर्वयोषितः
व्राह्मणान् भोजयामास कारयामास मङ्गलम्। वेदांश्च पाठयामास पुराणानि रमापतिः
शनिं सलज्जितं दृष्ट्वा पार्वती कोपशालिनी। शशाप च सभामध्येऽप्यङ्गहीनो भवेति च
दृष्ट्वा शप्तं शनिं सूर्य्यः कश्यपश्च यमस्तथा। तेऽतिरुष्टाःसमुत्तस्थुर्गामुकाः शङ्करालयात्
रक्ताक्षास्ते रक्तमुखाः कोपप्रस्फुरिताधराः। तां धर्मं साक्षिणंकृत्वा विष्णुश्चशप्तुमुद्यताः
व्रह्मा तान्बोधयामासविष्णुनाप्रेरितैः सुरैः। रक्तास्यांपार्वतीञ्चैवकोपप्रस्फुरिताधराम्
व्रह्माणमूचुस्ते तत्र क्रमेण समयोचितम्। भीरवो देवताः सर्वे मुनयः पर्वतास्तथा॥

कश्यप उवाच।

दुर्दृष्टोऽयं प्राक्तनेन पत्नीशापेन सर्वदा। बालं ददर्श यत्नेन तस्यैव मातुराज्ञया॥ ४७॥

श्रीसूर्य्य उवाच।

तं धर्मं साक्षिणं कृत्वा पुत्रस्य मातुराज्ञया। मत्पुत्रोऽतिप्रयत्नेन ददर्श पार्वती सुतम्
यथा निरपराधेन मत्पुत्रं सा शशाप ह। तत्पुत्रस्याङ्गभङ्गश्च भविष्यति न संशयः॥

यम उवाच।

प्रदाय स्वयमाज्ञाञ्च शशाप कस्मात्कथम्। वयं शपामः कोऽधर्मा जिघांसोश्चविहिंसने

ब्रह्मोवाच ।

शशाप पार्वती रुष्टा स्त्रीस्वभावाच्च चापलात् । सर्वेषां वचनेनैव क्षन्तुमर्हन्तु साधवः ॥
दुर्गे दत्त्वा त्वमाज्ञाञ्च पुत्रदर्शनहेतवे । कथं शपसि निर्दोषमतिथिं त्वद्गृहागतम् ॥५२
इत्युक्त्वा शनिमादाय बोधयित्वा तु पार्वतीम् । तां तं समर्पणं चक्रे शापमोचनहेतवे
बभूव पार्वती तुष्टा ब्रह्मणो वचनान्मुने । शान्ता बभूवुस्ते तत्र दिनेशयमकश्यपाः ॥५४
उवाच पार्वती तत्र संन्तुष्टा तं शनैश्चरम् । प्रसादिता शिवेनैव ब्रह्मणा परिसेविता ॥

पार्वत्युवाच ।

ग्रहराजो भव शने मद्वरेण हरिप्रियः । चिरजीवी च योगीन्द्रो हरिभक्तस्य का विपत्
अद्य प्रभृतिनिर्विघ्नाहरौभक्तिर्दृढ़ास्तु ते । मच्छापामोघतो वत्सकिञ्चित्खञ्जोभविष्यति
इत्युक्त्वा पार्वतीतुष्टाबालंकृत्वाचवक्षसि । उवास योषितां मध्ये तस्मैदत्त्वाशुभाशिषम्
शनिर्जगाम देवानां समीपं हृष्टमानसः । प्रणम्य भक्त्या तां ब्रह्मन्नम्बिकां जगदम्बिकाम्

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे गणपतिखण्डे नारायणनारदसंवादे विघ्नोपखण्डनं नाम द्वादशोऽध्यायः ।

त्रयोदशोऽध्यायः

विष्णुकृतं गणेशस्तोत्रम् ।

नारायण उवाच ।

अथ विष्णुः शुभे काले देवैश्च मुनिभिः सह । पूजयामास तं बालमुपहारैरनुत्तमैः ॥१॥
सर्वाग्रे च तव पूजा च मया दत्तासुरोत्तम । सर्वपूज्यश्च योगीन्द्रो भववत्सेत्युवाचतम्
वनमालां ददौ तस्मै ब्रह्मज्ञानञ्च मुक्तिदम् । सर्वसिद्धिं प्रदायैव चकारात्मसमं हरिः ॥
ददौ द्रव्याणि चारूणि चोपचाराणि षोडश । तन्नामकरणं चक्रे मुनिभिश्च समं सुरैः

विघ्नेशश्च गणेशश्च हेरम्बश्च गजाननः । लम्बोदरश्चैकदन्तः शूर्पकर्णो विनायकः ॥५॥

एतान्यष्टौ च नामानि तस्य चक्रे सनातनः। आशिषं दापयामास चानयामासतान्मुनीन्
सिद्धासनं ददौ धर्मस्तस्मै ब्रह्मा कमण्डलुम्। शङ्करो योगपट्टञ्च तत्त्वज्ञानं सुदुर्लभम्
रत्नसिंहासनं शक्रः सूर्य्यश्च मणिकुण्डले। माणिक्यमालां चन्द्रश्च कुवेरश्च किरीटकम्
वह्निशुद्धञ्च वसनं ददौ तस्मै हुताशनः। रत्नछत्रञ्च वरुणो वायुः रत्नाङ्गुरीयकम् ॥ ९ ॥
क्षीरोदोद्भवसद्रत्नरचितं वलयं वरम्। मञ्जीरञ्चापि केयूरं ददौ पद्मालया मुने ॥ १० ॥
कण्ठभूषाञ्च सावित्री भारती हारमुज्ज्वलम्। क्रमेण सर्वदेवाश्च देव्यश्च यौतुकं ददुः।
मुनयः पर्वताश्चैव रत्नानि विविधानि च। वसुन्धरा ददौ तस्मै वाहनाय च मूषिकम्।
क्रमेण देवा देव्यश्च मुनयः पर्वतादयः। गन्धर्वाः किन्नरा यक्षा मनवो मानवास्तथा ॥
नानाविधानि द्रव्याणि स्वादूनि मधुराणि च। पूजाञ्चक्रुश्च ते सर्वे क्रमेण भक्तिपूर्वकम्
पार्वती जगतां माता स्मेराननसरोरुहा। रत्नसिंहासने पुत्रं वासयामास नारद ॥१५॥
सर्वतीर्थोदकानाञ्च कलसानां शतेन च। स्नापयामास वेदोक्तमन्त्रेण मुनिभिस्तदा ॥
अग्निशौचे च वसने ददौ तस्मै सती मुदा ॥ १६ ॥
गोदावर्य्युदकं पाद्यमर्घ्यं गङ्गोदकेन च। दूर्वाभिरक्षतैः पुष्पैश्चन्दनेन समन्वितम् ॥१७॥
पुष्करोदकमानीय पुनराचमनीयकम्। मधुपर्कं रत्नपात्रैरासवं शर्करान्वितम् ॥ १८ ॥
स्नानीयं विष्णुतैलञ्च स्ववैद्येन विनिर्मितम्। अमूल्यरत्नरचितचारूणि भूषणानि च ॥
पारिजातप्रसूनानां माल्यानां शतकानि च। मालतीचम्पकादीनां पुष्पाणि विविधानिच
पूजार्हाणि च पात्राणि तुलसीवर्जितानि च ॥२० ॥
चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमानि च सादरम्। रत्नप्रदीपनिकरं धूपञ्च परितो ददौ ॥ २१ ॥
नैवेद्यं तत्प्रियञ्चैव तिललड्डुकपर्वतम्। यवगोधूमचूर्णानां पिष्टकानाञ्च पर्वतम् ॥२२।
पक्वान्नानां पर्वतञ्च सुस्वादु सुमनोहरम्। पर्वतं स्वस्तिकानाञ्च सुस्वादुशर्करान्वितम्
गुडाक्तानाञ्च लाजानां पृथुकानाञ्च पर्वतम्। शाल्यन्नानां पिष्टकानां पर्वतं व्यञ्जनैःसह
कलसानाञ्च पयसां लक्षाणि प्रददौ मुदा ॥२४॥
लक्षाणि कलसानाञ्च दध्नां नारद पूजने। मधूनां कलसानाञ्च त्रिलक्षाणि च सुन्दरी
सर्पिषां कलसानाञ्च पञ्चलक्षाणि सादरम्।

दाड़िम्बानां श्रीफलानामसंख्यानि फलानि च ॥ २६ ॥

खर्जूराणां करञ्जानां जम्बूनां विविधानि च । आम्राणां पनसानाञ्च कदलीनाञ्च नारद
फलानि नारिकेलानामसंख्यानि ददौ मुदा ॥ २७ ॥

अन्यानि परिपक्वानि कालदेशोद्भवानि च । ददौ तानि महामाया स्वादूनि मधुराणिच
स्वच्छं सुनिर्मलञ्चैव कर्पूरादिसुवासितम् । गङ्गाजलञ्च पानार्थं पुनराचमनीयकम् ॥
ताम्बूलञ्च वरं रम्यं कर्पूरादिसुवासितम् । सुवर्णपात्रशतकं परिपूर्णञ्च नारद ॥ ३० ॥
शैलेश्वरी शैलराजः शैलजः शैलराजजः । शैलराजप्रियामात्याः पुपूजुः शैलजात्मजम् ॥
ओं श्रीं ह्रीं क्लीं गणेश्वराय ब्रह्मरूपाय चारवे । सर्वसिद्धिप्रदेशाय विघ्नेशाय नमो नमः
इत्यनेनैव मन्त्रेण दत्त्वा द्रव्याणि भक्तितः । सर्वे प्रमुदितास्तत्र ब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥
द्वात्रिंशदक्षरो मालामन्त्रोऽयं सर्वकामदः । धर्मार्थकाममोक्षाणां फलदः सर्वसिद्धिदः
पञ्चलक्षजपेनैव मन्त्रसिद्धिस्तु मन्त्रिणः । मन्त्रसिद्धिर्भवेद्यस्य स च विष्णुश्च भारते
विघ्नानि च पलायन्ते तन्नामस्मरणेन च । महावाग्मी महासिद्धः सर्वसिद्धिसमन्वितः
वाक्पतिर्जगतांयातितस्यसाक्षात्सुनिश्चितम् । महाकवीन्द्रोगुणवान्विदुषाञ्चगुरोर्गुरुः
संपूज्यानेन मन्त्रेण देवा आनन्दसंप्लुताः । नानाविधानि वाद्यानि वादयामासुरुत्सवे
ब्राह्मणान् भोजयामासुः कारयामासुरुत्सवम् । ददुर्दानानि तेभ्यश्च वन्दिभ्यश्चविशेषतः

नारायण उवाच ।

अथ विष्णुः सभामध्ये संपूज्य तं गणेश्वरम् । तुष्टाव परया भक्त्यासर्वविघ्नविनायकम्

श्रीविष्णुरुवाच ।

ईश त्वां स्तोतुमिच्छामिब्रह्मज्योतिःसनातनम् । निरूपितुमशक्तोऽहमनुरूपमनीहकम् ॥
प्रवरं सर्वदेवानां सिद्धानां योगिनां गुरुम् । सर्वस्वरूपं सर्वेशं ज्ञानराशिस्वरूपिणम् ॥
अव्यक्तमक्षरं नित्यंसत्यमात्मस्वरूपिणम् । वायुतुल्यातिनिर्लिप्तंचाक्षतंसर्वसाक्षिणम् ॥
संसारार्णवपारे च मायापोते सुदुर्लभे । कर्णधारस्वरूपञ्च भक्तानुग्रहकारकम् ॥४४॥
वरं वरेण्यं वरदं वरदानामपीश्वरम् । सिद्धं सिद्धिस्वरूपञ्च सिद्धिदं सिद्धिसाधनम् ॥
ध्यानातिरिक्तं ध्येयञ्च ध्यानासाध्यञ्च धार्मिकम् । धर्मस्वरूपं धर्मज्ञंधर्माधर्मफलप्रदम् ॥

बीजं संसारवृक्षाणामङ्कुरञ्च तदाश्रयम् । स्त्रीपुंनपुंसकानाञ्च रूपमेतदतीन्द्रियम् ॥४७॥
सर्वाद्यमग्रपूज्यञ्च सर्वपूज्यं गुणार्णवम् । स्वेच्छया सगुणं ब्रह्मनिर्गुणञ्चापिस्वेच्छया॥
स्वयं प्रकृतिरूपञ्च प्राकृतं प्रकृतेः परम् । त्वां स्तोतुमक्षमोऽनन्तः सहस्रवदनेन च ॥४६
न क्षमः पञ्चवक्त्रश्च न क्षमश्चतुराननः । सरस्वती न शक्ता च न शक्तोऽहं तव स्तुतौ॥

न शक्ताश्च चतुर्वेदाः के वा ते वेदवादिनः ॥५०॥

इत्येवं स्तवनं कृत्वा सुरेशं सुरसंसदि । सुरेशश्च सुरैः सार्द्धं विरराम रमापतिः ॥५१॥
इदं विष्णुकृतं स्तोत्रं गणेशस्य च यःपठेत् । सायंप्रातश्चमध्याह्ने भक्तियुक्तः समाहितः ॥
तद्विघ्ननिघ्नं कुरुते विघ्नेशः सततं मुने । वर्द्धते सर्वकल्याणं कल्याणजनकःसदा ॥५३
यात्राकाले पठित्वा तु यो याति भक्तिपूर्वकम् । तस्यसर्वाभीष्टसिद्धिर्भवत्येवनसंशयः॥
तेन दृष्टञ्च दुःस्वप्नं सुस्वप्नमुपजायते । कदापि न भवेत्तस्य ग्रहपीड़ा च दारुणा ॥५५
भवेद्विनाशः शत्रूणां बन्धूनाञ्च विवर्द्धनम् । शश्वद्विघ्नविनाशश्च शश्वत् सम्पद्विवर्द्धनम्॥
स्थिरा भवेद्गृहे लक्ष्मीः पुत्रपौत्रविवर्द्धनी । सर्वैश्वर्य्यमिह प्राप्यह्यन्तेविष्णुपदंलभेत्
फलञ्चापि च तीर्थानां यज्ञानां यद्भवेद्ध्रुवम् । महतां सर्वदानानां श्रीगणेशप्रसादतः ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे विष्णुकृतं गणेशस्तोत्रं समाप्तम् ।

नारद उवाच ।

श्रुतं स्तोत्रं गणेशस्य पूजनञ्च मनोहरम् । कवचं श्रोतुमिच्छामि साम्प्रतंभवतारणम् ॥

नारायण उवाच ।

पूजायां सुनिवृत्तायां सभामध्ये शनैश्चरः । उवाच विष्णुं सर्वेषां तारकंजगतांगुरुम् ॥

शनैश्चर उवाच ।

सर्वदुःखविनाशाय दुःखप्रशमनाय च । कवचं विघ्ननिघ्नस्य वद वेदविदां वर ॥६१॥

बभूव नो विवादश्च शक्त्या च मायया सह ।
तद्विघ्नप्रशमार्थञ्च कवचं धारयाम्यहम् ॥६२॥

श्रीविष्णुरुवाच ।

विनाकस्य कवचं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् । सुगोप्यञ्च पुराणेषु दुर्लभञ्चागमेषु च ॥६३॥

उक्तं कौथुमशाखायां सामवेदे मनोहरम् । कवचं विघ्ननाथस्य सर्वविघ्नहरं परम् ॥६४॥
राज्यं देयं शिरो देयं प्राणा देयाश्च सूर्य्यज । एवम्भूतञ्च कवचं न देयं प्राणसङ्कटे ॥६५॥

आविर्भावस्तिरोभावः स्वेच्छयाऽस्य च मायया ।
नित्योऽयमेकदन्तश्च कवचं चास्य वत्सक ॥६६॥
पूजास्य नित्या स्तोत्रञ्च कल्पे कल्पेऽस्ति सन्ततम् ।
अस्यास्य जन्मनः पूर्वं मुनयश्च सिषेविरे ॥६७॥

यथा मदवतारेषु जन्मविग्रहधारणम् । तथा गणेश्वरस्यापि जन्म शैलसुतोदरे ॥६८॥
यद्धृत्वा मुनयः सर्वे जीवन्मुक्ताश्च भारते । निःशङ्काश्च सुराः सर्वे शत्रुपक्षविमर्दकाः॥

कवचं बिभ्रतां मृत्युर्न याति सन्निधिं भिया ।
नायुर्व्ययो नाशुभञ्च ब्रह्माण्डे न पराजयः ॥७०॥

दशलक्षजपेनैव सिद्धञ्च कवचं भवेत् । यो भवेत् सिद्धकवचो मृत्युं जेतुं स च क्षमः ॥
सुसिद्धकवचो वाग्मी चिरजीवी महीतले । सर्वत्र विजयी पूज्यो भवेद्ग्रहणमात्रतः ॥
मालामन्त्रमिमं पुण्यं कवचञ्चेदमेव च । बिभ्रतां सर्वपापानि प्रणश्यन्ति सुनिश्चितम्
भूतप्रेतपिशाचाश्च कूष्माण्डा ब्रह्मराक्षसाः । डाकिन्यो योगिन्यश्चैव वेतालादयएवच
बालग्रहा ग्रहाश्चैव क्षेत्रपालादय स्तथा । तेषाञ्च शब्दमात्रेण पलायन्ते च भीरवः ॥
आधयो व्याधयश्चैवशोकाश्चैवभयावहाः । न यान्तिसन्निधिंतेषांगरुड़स्य यथोरगाः॥
ऋजवे गुरुभक्ताय स्वशिष्यायप्रकाशयेत् । खलायपरशिष्यायदत्त्वामृत्युमवाप्नुयात् ॥
संसारमोहकस्यास्य कवचस्य प्रजापतिः । ऋषिश्छन्दश्चवृहतीदेवोलम्बोदरः स्वयम् ॥

धर्मार्थकाममोक्षेषु विनियोगः प्रकीर्त्तितः ॥७९॥

सर्वेषां कवचानाञ्च सारभूतमिदं मुने । ओं गं हुं श्रीगणेशाय स्वाहामेपातु मस्तकम् ।

द्वात्रिंशदक्षरोमन्त्रो ललाटं मे सदावतु ॥८०॥

ओं ह्रीं क्लीं श्रीं गमिति च सन्ततंपातुलोचनम् । तालुकंपातुविघ्नेशःसन्ततंधरणीतले ॥
ओं ह्रीं श्रीं क्लीमितिचसन्ततंपातुनासिकाम् । ओंगौंगंशूर्पकर्णायस्वाहा पात्वधरं मम ।

दन्तानि तालुकां जिह्वां पातु मे षोड़शाक्षरः ॥८३॥

ओं लं श्रीं लम्बोदरायेति स्वाहा गण्डं सदाऽवतु ।
ओं क्लीं ह्रीं विघ्ननाशाय स्वाहा कर्णं सदाऽवतु च ॥ ८४॥
ओं श्रीं गं गजाननायेति स्वाहा स्कन्धं सदाऽवतु ।
ओं ह्रीं विनायकायेति स्वाहा पृष्ठं सदाऽवतु ॥ ८५ ॥
ओं क्लीं ह्रीमिति कङ्कालं पातु वक्षःस्थलञ्च गम् ।
करौ पादौ सदा पातु सर्वाङ्गं विघ्ननिघ्नकृत् ॥ ८६ ॥
प्राच्यांलम्बोदरःपातु आग्नेय्यांविघ्ननायकः । दक्षिणेपातु विघ्नेशो नैर्ऋत्यान्तुगजाननः
पश्चिमे पार्वतीपुत्रो वायव्यां शङ्करात्मजः । कृष्णस्यांशश्चोत्तरे च परिपूर्णतमस्य च ॥
ऐशान्यामेकदन्तश्च हेरम्बः पातु चोर्ध्वतः । अधो गणाधिपः पातु सर्वपूज्यश्च सर्वतः
स्वप्ने जागरणे चैव पातु मां योगिनां गुरुः ॥९० ॥
इति ते कथितं वत्स सर्वमन्त्रौघविग्रहम् । संसारमोहनं नाम कवचं परमाद्भुतम् ॥९१।
श्रीकृष्णेन पुरा दत्तं गोलोके रासमण्डले । वृन्दावने विनीताय मह्यं दिनकरात्मज ॥
मया दत्तश्च तुभ्यञ्च यस्मै कस्मै न दास्यसि । परं वरं सर्वपूज्यं सर्वसङ्कटतारणम् ९३
गुरुमभ्यर्च्यविधिवत् कवचं धारयेत्तुयः । कण्ठेवा दक्षिणे वाहौसोऽपि विष्णुर्नसंशयः
अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च । ग्रहेन्द्र कवचस्यास्य कलां नार्हन्ति षोड़शीम्
इदं कवचमज्ञात्वा यो भजेच्छङ्करात्मजम् । शतलक्षप्रजप्तोऽपि न मन्त्रःसिद्धिदायकः ॥
इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते संसारमोहनं नाम कवचम् ।
दत्त्वेदं सूर्य्यपुत्राय विरराम सुरेश्वरः ।
परमानन्दसंयुक्ता देवा ऊचुः समीपतः ॥ ९६ ॥
इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारद संवादे गणपतिखण्डे गणेशपूजा
स्तवकवचकथनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ।

चतुर्दशोऽध्यायः

कार्तिकेयप्रवृत्तिप्राप्तिः ।

नारायण उवाच ।

देवा विष्णुसभायांते सर्वे प्रहृष्टमानसाः । गन्धर्वा मुनयःशैलाः पश्यन्तः सुमहोत्सवम्
एतस्मिन्नन्तरे दुर्गा स्मेराननसरोरुहा । उवाच विष्णुं प्रणता देवेशं देवसंसदि ॥ २ ॥

पार्वत्युवाच ।

त्वं पाता सर्वजगतां नाथनाहंजगद्बहिः । कथं मत्स्वामिनो वीर्य्यं नामोघं रक्षितंप्रभो
रतिभङ्गे कृते देवैर्ब्रह्मणा प्रेरितैस्त्वया । भूमौ निपतितं वीर्य्यं केन देवेन वै हृतम् ॥४॥
सर्वे देवास्त्वत्पुरतस्तदन्वेषणमर्हति । अराजकं कथं युक्तं तिष्ठति त्वयि राजनि ॥५॥
पार्वतीवचनं श्रुत्वा प्रहस्य जगदीश्वरः । उवाच देववर्गे च मुनिवर्गे च तिष्ठति ॥ ६ ॥

श्रीविष्णुरुवाच ।

देवाः शृणुत मद्वाक्यं पार्वतीवचनं श्रुतम् । शिवस्यामोघवीर्य्यं यत्तत् पुराकेननिहृतम्
सभामानय तत् क्षिप्रं न चेत्सदण्डमर्हति । सकोराजान शास्ताय: प्रजाबाध्यश्चपाक्षिकः
विष्णोस्तद्वचनं श्रुत्वा समालोच्य परस्परम् । ऊचुः सर्वे क्रमेणैव त्रासिताःपुरतोहरेः

ब्रह्मोवाच ।

तद्वीर्य्यं निहृतं येन पुण्यभूमौ च भारते । स वञ्चितो भवत्वत्र पुण्याहे पुण्यकर्मणि ॥

महादेव उवाच ।

स्ववीर्य्यं निहृतं येन पुण्यभूमौ च भारते । स वञ्चितो भवत्वत्र सेवने पूजने तव॥११॥

यम उवाच ।

स वञ्चितो भवत्वत्र शरणागतरक्षणे । एकादशीव्रते चैव तद्वीर्य्यं येन निहृतम् ॥१२॥

इन्द्र उवाच ।

तद्वीर्य्यं निहृतं येन पापिनां पापमोचने । भवत्वत्र यशोलुप्तन्तत् पुण्यकर्म सन्ततम् ॥

वरुण उवाच ।

भवत्वत्र कलौ जन्म वर्षेऽस्य भारते हरे । शूद्रयाजकपत्न्याश्च गर्भे तद्धु येन निर्हृतम् ।

कुवेर उवाच ।

स्थाप्यहारी स भवतु विश्वाघ्नश्च मित्रहा । सत्यघ्नश्च कृतघ्नश्च तद्वीर्य्यं येन निर्हृतम् ॥

ईशान उवाच ।

परद्रव्यापहारी च स भवत्वत्र भारते । नरघाती गुरुद्रोही तद्वीर्य्यं येन निर्हृतम् ॥१६॥

रुद्रा ऊचुः ।

ते मिथ्यावादिनः सन्तु भारते पारदारिकाः । गुरुनिन्दारताः शश्वत्तद्वीर्य्यं येननिर्हृतम्

कामदेव उवाच ।

कृत्वाप्रतिज्ञां योमूढ़ोन सम्पालयते भ्रमात् । भाजनं तस्य पापस्य सभवेत्येननिर्हृतम्

स्ववैद्यावूचतुः ।

मातुः पितुर्गुरोश्चैव स्त्रीपुत्राणाञ्च पोषणे ।
भवेतां वञ्चितौ तौ च याभ्यां वीर्य्यञ्च निर्हृतम् ॥ १९ ॥

सर्वे देवा ऊचुः ।

मिथ्यासाक्ष्यप्रदातारो भवन्त्वत्रच भारते । अपुत्रिणोदरिद्राश्च यैश्चवीर्यञ्च निर्हृतम् ॥

देवपत्न्य ऊचुः ।

तानिन्दन्तु स्वभर्त्तारं गच्छन्तु परपूरुषम् । सन्तु बुद्धिविहीनाश्च याभिर्वीर्य्यञ्चनिर्हृतम्

देवानांवचनं श्रुत्वा देवीनाञ्च हरिःस्वयम् । कर्मणां साक्षिणं धर्मं सूर्य्यं चन्द्रंहुताशनम्

पवनं पृथिवीं तोयं सन्ध्ये रात्रिं दिनं मुने । उवाच जगतां कर्त्ता पाता शास्ताजगत्त्रये

श्रीविष्णुरुवाच ।

देवैर्न निर्हृतं वीर्य्यं तद्देतत् केन निर्हृतम् । तदमोघं भगवतो महेशस्य जगद्गुरोः ॥

यूयञ्च साक्षिणो विश्वेसन्ततं सर्वकर्मणाम् । युष्माभिर्निर्हृतं किंवा किम्भूतं वक्तुमर्हथ

ईश्वरस्य वचः श्रुत्वा सभायां कम्पिताश्च ते । परस्परं समालोच्य क्रमेणोचुः पुरोहरेः

श्रीधर्म उवाच ।

रतेरुत्तिष्ठतो वीर्य्यं पपात वसुधातले । मया ज्ञातममोघं तच्छङ्करस्य प्रकोपतः ॥२७॥

क्षितिरुवाच ।

वीर्य्यं वोढुमशक्ताहं तद्वह्नौ न्यक्षिपं पुरा । अतीव दुर्वहं ब्रह्मन्नबलां क्षन्तुमर्हसि ॥२८॥

अग्निरुवाच ।

वीर्य्यं वोढुमशक्तोऽहं न्यक्षिपं शरकानने । दुर्बलस्य जगन्नाथ किं यशः किञ्च पौरुषम्

वायुरुवाच ।

शरेषु पतितं वीर्य्यं सद्यो बालो बभूव ह । अतीवसुन्दरो विष्णो स्वर्णरेखानदीतटे ३०

श्रीसूर्य्य उवाच ।

रुदन्तं बालकं दृष्ट्वागममस्ताचलं प्रति । प्रेरितः कालचक्रेण निशि संस्थातुमक्षमः ॥३१॥

चन्द्र उवाच ।

रुदन्तंबालकंप्राप्य गृहीत्वा कृत्तिकागणः । जगाम स्वालयं विष्णोर्गच्छन्वदरिकाश्रमात्

जलमुवाच ।

अमुं रुदन्तमानीय स्तनं दत्त्वा स्तनार्थिने । वर्द्धयामासुरीशस्य सुतं सूर्य्याधिकप्रभम्

सन्ध्ये ऊचतुः ।

अधुनाकृत्तिकानाञ्चषण्णांतत्पोष्यपुत्रकः। तन्नामचक्रुस्ताःप्रेम्णाकार्त्तिकश्चेतिकौतुकात्

रात्रिरुवाच ।

न चक्रुर्बालकं ताश्च लोचनानामगोचरम् । प्राणेभ्योऽपि प्रेमपात्रं यः पोष्टा तस्यपुत्रकः

दिन उवाच ।

यानियानिच वस्तूनित्रैलोक्ये दुर्लभानिच । प्रशंसितानि स्वादूनि भोजयामासुरेव तम्॥

तेषां तद्वचनं श्रुत्वा सन्तुष्टो मधुसूदनः । ते सर्वे हरिमित्यूचुः सभायां हृष्टमानसाः ॥

पुत्रस्य वार्त्तां सम्प्राप्य पार्वती हृष्टमानसा । कोटिरत्नानि विप्रेभ्यो ददौवहुधनानिच

ददौ सर्वाणि विप्रेभ्यो वासांसि विविधानि च ॥३८॥

लक्ष्मीः सरस्वती मेना सावित्री सर्वयोषितः । विष्णुश्चसर्वदेवाश्चब्राह्मणेभ्योददुर्धनम्

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे गणपतिखण्डे नारायणनारदसंवादे कार्त्तिकप्रवृत्ति-

प्राप्तिर्नाम चतुर्दशोऽध्यायः ।

पञ्चदशोऽध्यायः

शिवदूतैः कृत्तिकाभवनगमनम् कार्तिकनन्दिसंवादश्च ।

नारायण उवाच ।

पुत्रस्य वार्त्तां सम्प्राप्य पार्वत्या सह शङ्करः । प्रेरितो विष्णुना देवैर्मुनिभिः पर्वतैर्मुने
दूतान् प्रस्थापयामास महाबलपराक्रमान् । वीरभद्रं विशालाक्षं शङ्कुकर्णं कबन्धकम् ॥
नन्दीश्वरं महाकालं वज्रदन्तं भगन्दरम् । गोधामुखं दधिमुखं ज्वलदग्निशिखोपमम् ॥
लक्षञ्च क्षेत्रपालानां भूतानाञ्च त्रिलक्षकम् । वेतालानां चतुर्लक्षं यक्षाणां पञ्चलक्षकम् ।
कुष्माण्डानाञ्चतुर्लक्षं त्रिलक्षं ब्रह्मरक्षसाम् । डाकिनीनाञ्चतुर्लक्षं योगिनीनांत्रिलक्षकम्
रुद्रांश्च भैरवांश्चैव शिवतुल्यपराक्रमान् । अन्यांश्च विकृताकारानसंख्यानपि नारद ॥६॥
ते सर्वे शिवदूताश्च नानाशस्त्रास्त्रपाणयः । कृत्तिकानाञ्च भवनं वेष्टयामासुःसत्वरम्॥७
दृष्ट्वा तान् कृत्तिकाः सर्वा भयविह्वलमानसाः । कार्त्तिकं कथयामासुर्ज्वलन्तंब्रह्मतेजसा

कृत्तिका ऊचुः ।

वत्स सैन्यान्यसंख्यानि वेष्टयामासुरालयम् । न जानीमोवयंकस्यकरालानिचकार्त्तिक

कार्त्तिकेय उवाच ।

भयं त्यजत कल्याण्यो भयं किं वोमयिस्थिते । दुर्निवार्य्यो निषेकश्चमातरःकेनवार्य्यते
एतस्मिन्नन्तरे तत्र सैन्येन्द्रो नन्दिकेश्वरः । पुरतः कार्त्तिकस्यापि तिष्ठंस्तासामुवाच ह

नन्दिकेश्वर उवाच ।

भ्रातः प्रवृत्तिं शृणु मे मातरश्च शुभावहम् । प्रेषितस्य सुरेन्द्रस्य संहर्तुः शङ्करस्य च ॥
कैलासे सर्वदेवाश्च ब्रह्मविष्णुशिवादयः। सभायां ते वसन्तश्च गणेशोत्सवमङ्गलम्॥१२
शैलेन्द्रकन्या तं विष्णुं जगतां परिपालकम् । संबोध्य कथयामास तवान्वेषणहेतुकम्
पप्रच्छदेवान् विष्णुस्तान् क्रमेणावाप्तिहेतवे । प्रत्युत्तरं ददुस्ते तु प्रत्येकञ्च यथोचितम्
त्वमत्र कृत्तिकास्थाने कथयामासुरीश्वरम् । सर्वे धर्मादयो देवाधर्माधर्मस्यसाक्षिणः

या बभूव रहःक्रीड़ा पार्वतीशिवयोः पुरा ॥ १६ ॥
दृष्टस्य च सुरैः शम्भोर्वीर्य्यं भूमौ पपात ह । भूमिस्तदक्षिपद्वह्नौ वह्निश्च शरकानने॥
ततो लब्धः कृत्तिकाभिरमूभिर्गच्छ साम्प्रतम् ॥ १७ ॥
तवाभिषेकं विष्णुश्च करिष्यति सुरैः सह । हनिष्यसि तारकाख्यं सर्वशस्त्रंलभिष्यसि
पुत्रस्त्वं विश्वसंहर्त्तुस्त्वां गोप्तुं न क्षमा इमाः ॥ १८ ॥
नाग्निं गोप्तुं यथा शक्तः शुष्कवृक्षःस्वकोटरै । दीप्तिमांस्त्वञ्च विश्वेषुतासांगेहेषुशोभसे
यथा पतन्महाकूपे द्विजराजो न राजते ॥ १६ ॥
करोषि जगदालोकंनाच्छन्नोऽस्याङ्गतेजसा । यथा सूर्य्यः कराच्छन्नोनभवेन्मानवस्यच
विष्णुस्त्वञ्च जगद्व्यापी नासां व्याप्योऽसि शाम्भव ।
यथा न केषां व्योप्यश्च तत्सर्वं व्यापकं नभः ॥ २१ ॥
योगीन्द्रो नानुलिप्तस्त्वं भोगीचपरिपोषणे । नैवलिप्तोयथात्मा चकर्म्मभोगेषुजीविनाम्
विश्वाधारस्त्वमीशश्चनामृतेसम्भवेत् स्थितिः । सागरस्ययथा नद्यांसरितामाश्रयस्यच
न हि सर्वेश्वरावासः सम्भवेत् कृत्तिकालये । गरुड़स्य यथावासः क्षुद्रे च चटकोदरे
त्वाञ्च देवा न जानन्ति भक्तानुग्रहविग्रहम् । गुणानां तेजसां राशिं यथाज्ञानमयोगिनः
त्वामनिर्वचनीयञ्च कथं जानन्ति कृत्तिकाः । यथा परां हरेर्भक्तिमभक्ता मूढ़चेतसः
भ्रातर्यं यं न जानन्तितेतंकुर्वन्त्यनादरम् । नाद्रियन्ते यथा भेकास्त्वेकवासांश्चपङ्कजान्

कार्त्तिक उवाच ।

भ्रातः सर्वं विजानामि ज्ञानंत्रैकालिकञ्च यत् । ज्ञानीत्वंकाप्रशंसा तेयतोमृत्युञ्जयाश्रितः
कर्मणा जन्म येषां वायासुयासु चयोनिषु । तासु तेनिर्वृतिंभ्रातःप्राप्नुवन्तिचसन्ततम्
ये यत्र सन्ति सन्तो वामूढ़ावा कर्मभोगतः । तेऽपि तं बहुमन्यन्तेमोहिताविष्णुमायया
साम्प्रतं जगतां माताविष्णुमायासनातनी । सर्वाद्या विष्णुमाया चसर्वदाविष्णुमङ्गला
शैलेन्द्रपत्नीगर्भे सा ललाभ जन्म भारते । दारुणञ्च तपस्तप्त्वा सम्प्राप शङ्करं पतिम् ॥
ब्रह्मादितृणपर्य्यन्तं सर्वं मिथ्यैवकृत्रिमम् । सर्वे कृष्णोद्भवाः काले विलीनास्तत्रकेवलम्
कल्पे कल्पे जगन्माता मातामेप्रतिजन्मनि । यजन्ममायया बद्धो नित्यःसृष्टिविधावहम्

प्रकृतेरुद्भवाः सर्वा जगत्सुसर्वयोषितः । काश्चिदंशाःकलाः काश्चित् कलांशांशेनकाश्चन
कृत्तिका ज्ञानवत्यश्च योगिन्यः प्रकृतेः कलाः । स्तनेनाभिर्वर्द्धितोऽहमुपहारेण सन्ततम्
तासामहंपोष्यपुत्रोमदस्याःपोषणादिमाः । तस्याश्चप्रकृतेःपुत्रो यतस्त्वत्स्वामिवीर्य्यतः
न गर्भजोऽहं शैलेन्द्रकन्याया नन्दिकेश्वर। सा च मे धर्मतो माता तथेमाः सर्वसम्मताः

स्तनदात्री गर्भधात्री भक्ष्यदात्री गुरुप्रिया ।

अभीष्टदेवपत्नी च पितुः पत्नी च कन्यकाः । सगर्भकन्याभगिनी पुत्रपत्नी प्रियाप्रसूः ।
मातुर्माता पितुर्माता सोदरस्य प्रिया तथा । मातुः पितुश्च भगिनीमातुलानीतथैव च

जनानां वेदविहिता मातरः षोड़शः स्मृताः ॥३८॥

इमाश्च सर्वसिद्धिज्ञाः परमैश्वर्य्यसंयुताः । न क्षुद्रा ब्रह्मणःकन्यास्त्रिषुलोकेषुपूजिताः ॥
विष्णुनाप्रेरितस्त्वञ्चशम्भोःपुत्रसमोमहान् । गच्छयामित्वयासार्द्धंद्रक्ष्यामि देवताकुलम्

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे गणपतिखण्डे नन्दिकार्त्तिक-
संवादे पञ्चदशोऽध्यायः ।

षोड़शोऽध्यायः

कार्त्तिकागमनम् ।

नारायण उवाच ।

इत्येवमुक्त्वा तं शीघ्रं संबोध्य कृत्तिकागणम् । उवाच नीतियुक्तश्च वचनं शङ्करात्मजः ॥

कार्त्तिक उवाच ।

यास्यामि शङ्करस्थानं द्रक्ष्यामि देवताकुलम् । मातरं बन्धुवर्गांश्च विदायं दत्तमातरः ॥
दैवाधीनं जगत्सर्वं जन्म कर्म शुभावहम् । संयोगश्च वियोगश्च न च दैवात्परंबलम्॥
कृष्णायत्तश्च तद्दैवं स च दैवात् परस्ततः । भजन्ति सततंसन्तः परमात्मानमीश्वरम् ॥
दैवं वर्द्धयितुं शक्तः क्षयं कर्त्तुं स्वलीलया । न दैवबद्धस्तद्भक्तश्चाविनाशी च निर्णय

तस्माद्भजत गोविन्दं मोहं त्यजत दुःखदम् । सुखदं मोक्षदं सारं जन्ममृत्युभयापहम् ॥
परमानन्दजननं मोहजालनिकृन्तनम् । शश्वद्भजन्ति यत् सर्वे ब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥७॥
कोऽहं भवाब्धौ युष्माकं का वा यूयं ममात्मिकाः ।
तत्कर्म स्रोतसां सर्वं पुञ्जीभूतञ्च फेनवत् ॥८॥
संश्लेषं विपरीतं वा तत्सर्वमीश्वरेच्छया । ब्रह्माण्डमीश्वराधीनं न स्वतन्त्रं विदुर्बुधाः
जलबुद्बुदवत् सर्वमनित्यञ्च जगत्त्रयम् । मायामनित्ये कुर्वन्ति माययामूढचेतसः ॥१०
सन्तस्तत्र न लिप्यन्ति वायुवत्कृष्णचेतसः । तस्मान्मोहंपरित्यज्य विदायंदत्तमातरः ॥
इत्येवमुक्त्वा ता नत्वा सार्द्धं शङ्करपार्षदैः । यात्राञ्चकार भगवान्मनसाश्रीहरिंस्मरन् ॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र ददर्श रथमुत्तमम् । विश्वकर्मनिर्मितञ्च हीरकेण विराजितम् ॥१३॥
सद्रत्नसाररचितं माणिक्येन विराजितम् । पारिजातप्रसूनानांमालाजालैश्चशोभितम् ॥
मणीन्द्रदर्पणैः श्वेतचामरैरतिदीपितम् । क्रीडार्हमन्दिरै रम्यैश्चित्रितैश्चित्रितंवरम् ॥१५
शतचक्रं सुविस्तीर्णं मनोयायि मनोहरम् । प्रस्थापितञ्च पार्वत्या वेष्टितं पार्षदैर्वरैः ।
तमारुहन्तं यानं ता हृदयेन विदूयता ॥१६॥
सहसा चेतनां प्राप्य मुक्तकेश्यः सुचातुराः ॥१७॥
दृष्ट्वा च स्वपुरः स्कन्दं स्तम्भिता अतिशोकतः । उन्मत्ता इव तत्रैव वक्तुमारेभिरेभिया॥

कृत्तिका ऊचुः ।

किं कुर्मः क्व च यास्यामो वयं वत्स त्वदाश्रयाः ।
विहायास्मान् क्व यासि त्वं नायं धर्म्मस्तवाधुना ॥१९॥
स्नेहेनवर्द्धितोऽस्माभिःपुत्रोऽस्माकंस्वधर्मतः । नायंधर्मोमातृवर्गानुपयुक्तः सुतस्त्यजेत्॥
इत्युक्त्वा कृत्तिकाः सर्वाः कृत्वा वक्षसि कार्त्तिकम् ।
पुनर्मूर्च्छामवापुस्ताः सुतविच्छेददारुणाम् ॥२१॥
कुमारो बोधयित्वा ता अध्यात्मवचनेन वै । ताभिश्च पार्षदैः सार्द्धमारुरोह रथं मुने॥
पूर्णकुम्भं द्विजं वेश्यां शुक्लधान्यञ्च दर्पणम् । दध्याज्यंमधुलाजञ्चपुष्पंदूर्वाक्षतंसितम्।
वृषं गजेन्द्रं तुरगं ज्वलदग्निं सुवर्णकम् । पूर्णञ्च परिपक्वानि फलानि विविधानि च ।

पतिपुत्रवतीं नारीं प्रदीपं मणिमुत्तमम् । मुक्तां प्रसूनमालाञ्च सद्यो मांसञ्च चन्दनम् ।
दद्दर्शैतानि वस्तूनि मङ्गलानि पुरो मुने ॥२३॥
शृगालं नकुलं कुम्भं शवं वामे शुभावहम् । राजहंसं मयूरञ्च खञ्जनञ्च शुकं पिकम् ।
पारावतं शङ्खचिल्लं चक्रवाकञ्च मङ्गलम् । कृष्णसारञ्च सुरभीं चामरीं श्वेरचामरम् ।
धेनुञ्च वत्ससंयुक्तां पताकां:दक्षिणे शुभाम् । नानाप्रकारवाद्यञ्च शुश्राव मङ्गलध्वनिम्
हरिशब्दस्य सङ्गीतं घण्टाशङ्खध्वनिन्तथा ॥२४॥
दृष्ट्वा श्रुत्वा मङ्गलं स जगाम तातमन्दिरम् । क्षणेनानन्दयुक्तश्च मनोयायिरथेन च ॥२५
कुमारः प्राप्य कैलासं न्यग्रोधाक्षयमूलके । क्षणं तस्थौ कृत्तिकाभिः पार्षदप्रवरैः सह॥
पार्वती मङ्गलं कृत्वा राजमार्गं मनोहरम् ।
पद्मरागैरिन्द्रनीलैः संस्कृतं परितः पुरम् ॥२७॥
रम्भास्तम्भसमूहैश्च पट्टसूत्रप्रवर्द्धितैः । श्रीखण्डपल्लवैर्युक्तं पूर्णकुम्भैः सुशोभितम् ॥२८
पूर्णकुम्भजलैर्व्याप्तं सिक्तं चन्दनवारिभिः । रत्नप्रदीपासंख्यैश्च मणिराजैर्विराजितम् ॥
नटनर्त्तकवेश्यानामुत्सवैः संकुलं सदा । वन्दिभिर्विप्रवर्गैश्च दूर्वापुष्पकरैर्युतम् ।
पतिपुत्रवतीभिश्च साध्वीभिश्च समन्विताम् ॥३०॥
लक्ष्मीं सरस्वतीं दुर्गां सावित्रींतुलसींरतिम् । अरुन्धतीमहल्याञ्चदितितारां मनोरमाम् ।
अदितिं शतरूपाञ्च शचीं सन्ध्याञ्च रोहिणीम् ॥३१॥
अनसूयाञ्च स्वाहाञ्च संज्ञां वरुणकामिनीम् । आकूतिञ्च प्रसूतिञ्च देवहूतीञ्च मेनकाम्॥
तामेकपाटलामेकपर्णां मैनाककामिनीम् । वसुन्धराञ्च मनसां पुरस्कृत्य समाययौ ॥
रम्भा तिलोत्तमा मेना घृताची मोहिनी शुभा ।
उर्वशी रत्नमाला च सुशीला ललिता कला ॥३४॥
कदम्बमाला सुरसा वनमाला च सुन्दरी । एताश्चान्याश्चबह्वयश्चविप्रेन्द्राऽप्सरसाङ्गणाः
सङ्गीतनर्त्तनपराः सस्मिता वेशसंयुताः । करतालकराः सर्वा जग्मुरानन्दपूर्वकम् ॥३६
देवाश्च मुनयः शैला गन्धर्वाः किन्नरास्तथा । सर्वे ययुः प्रमुदिताः कुमारस्यानुमज्जने ॥
नानाप्रकारवाद्यैश्च रुद्रैश्च पार्षदैः सह । भैरवैः क्षेत्रपालैश्च ययौ सार्द्धं महेश्वरः ॥३८॥

अथ शक्तिधरो हृष्टो दृष्ट्वाऽऽरात् पार्वतीन्तदा । अवरुह्य रथात्तूर्णं शिरसा प्रणनाम ह
तं पद्माप्रमुखं देवीगणञ्च मुनिकामिनीम् । शिवञ्च परया भक्त्यासर्वान्संभाष्ययत्नतः।
पार्वती कार्त्तिकं दृष्ट्वा क्रोड़े कृत्वा चुचुम्ब च ॥४०॥
शङ्करश्च सुराः शैला देव्यश्च शैलयोषितः । पार्वतीप्रमुखा देव्यो देवाश्च शङ्करस्तथा।
शैलाश्च मुनयः सर्वे ददुस्तस्मै शुभाशिषम् ॥४१॥
कुमारः सगणैः सार्द्धमागत्यच शिवालयम् । ददर्शतंसभामध्ये विष्णुं क्षीरोदशायिनम्।
रत्नसिंहासनस्थञ्च रत्नभूषणभूषितम् ॥४२॥
धर्मब्रह्मेन्द्रचन्द्रार्कवह्निवाय्वादिभिर्युतम्। ईषद्धास्यं प्रसन्नास्यं भक्तानुग्रहकातरम्।
स्तुतं मुनीन्द्रैर्देवेन्द्रैः सेवितं श्वेतचामरैः ॥४३॥
तं दृष्ट्वा जगतां नाथं भक्तिनम्रात्मकन्धरः । पुलकान्वितसर्वाङ्गैः शिरसा प्रणनाम ह॥
विधिं धर्मञ्च देवांश्च मुनीन्द्रांश्च मुदान्वितान् । प्रणनाम च प्रत्येकंप्राप तेषां शुभाशिषम्
सर्वान् संभाष्य प्रत्येकमुवास कनकासने। ददौ धनानि विप्रेभ्यः पार्वत्यासहशङ्करः॥
इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे गणपतिखण्डे कार्त्तिकागमनं
नाम षोड़शोऽध्यायः ।

सप्तदशोऽध्यायः

कुमाराभिषेकः ।

नारायण उवाच ।

अथविष्णुर्जगत्कान्तोहृष्टःकृत्वाशुभक्षणम् । रत्नसिंहासनेरम्येवासयामासकार्त्तिकम्॥
नानाविधानि वाद्यानि कांस्यतालादिकानि च ।
नानाविधानि यन्त्राणि वादयामास कौतुकात् ॥२॥
वेदमन्त्राभिषिक्तैश्च सर्वतीर्थोदपूर्णकैः । सद्रत्नकुम्भशतकैः स्नापयामास तं मुदा ॥३॥

सद्रत्नसाररचितकिरीटमङ्गलाङ्गदम् । अमूल्यरत्नरचितभूषणानि बहूनि च ॥
वह्निशुद्धांशुके दिव्ये क्षीरोदार्णवसम्भवम् । कौस्तुभं वनमालाञ्च तस्मै चक्रं ददौ मुदा
ब्रह्मा ददौ यज्ञसूत्रं वेदांश्च वेदमातरम् । सन्ध्यामन्त्रं कृष्णमन्त्रं स्तोत्रञ्च कवचं हरेः ॥
कमण्डलुञ्च ब्रह्मास्त्रं विद्याञ्च वैरिमर्दिनीम् । धर्मो धर्ममतिं दिव्यां सर्वजीवे दयां ददौ
परं मृत्युञ्जयं ज्ञानं सर्वशास्त्रावबोधनम् । शश्वत् सुखप्रदं तत्त्वज्ञानञ्च सुमनोहरम् ॥
योगतत्त्वं सिद्धितत्त्वं ब्रह्मज्ञानं सुदुर्लभम् । शूलं पिनाकं परशुं शक्तिं पाशुपतं धनुः ॥

संहारास्त्रविनिक्षेपं तत् संहारं ददौ शिवः ॥८॥

श्वेतच्छत्रं रत्नमालां ददौ तस्मै जलेश्वरः । गजेन्द्रञ्च महेन्द्रश्च सुधाकुम्भं सुधानिधिः
मनोयायिरथं सूर्य्यः सन्नाहञ्च मनोरमम् । यमदण्डं यमश्चैव महाशक्तिं हुताशनः ॥

नानाशस्त्राण्युपायानि सर्वे देवा ददुर्मुदा ॥ १० ॥

कामशास्त्रं कामदेवो ददौ तस्मैमुदान्वितः । क्षीरोदोऽमूल्यरत्नानि विशिष्टंरत्ननूपुरम्

पार्वती सस्मिता हृष्टा परमानन्दमानसा ।
महाविद्यां सुशीलाञ्च विद्यां मेधां दयां स्मृतिम् ॥
वुद्धिं सुनिर्मलां शान्तिं तुष्टिं पुष्टिं क्षमां धृतिम् ।
सद्दृढाञ्च हरौ भक्तिं हरिदास्यं ददौ मुदा ॥ १२ ॥

प्रजापतिर्देवसेनां रत्नभूषणभूषिताम् । सुविनीतां सुशीलाञ्च सुन्दरीं सुमनोहराम् ॥
ददौ तस्मै विवाहेन वेदमन्त्रेण नारद । यां वदन्ति महाषष्ठीं पण्डिताः शिशुपालिकाम्
अभिषिच्य कुमारञ्च सर्वे देवा ययुर्गृहम् । मुनयश्चैव गन्धर्वाः प्रणम्य जगदीश्वरान्
नारायणञ्च ब्रह्माणं धर्मं तुष्टाव शङ्करः । प्रणनाम हरिं तातं धर्ममालिङ्ग्य नारद ॥१५॥
प्रीत्या ययौ च शैलेन्द्रः सगणः शङ्करार्च्चितः । ये ये तत्रागताः सर्वे ययुरानन्दपूर्वकम्
परमानन्दसंयुक्तो देव्या सह महेश्वरः । कालान्तरे च तान् सर्वान् पुनरानीय शङ्करः ।

पुष्टिं ददौ विवाहेन गणेशाय महात्मने ॥ १७ ॥

सुताभ्यां सगणैः सार्द्धं पार्वती हृष्टमानसा । सिषेवे स्वामिनः पादपद्मं सासर्वकामदम्

इत्येवं कथितं सर्वं कुमारस्याभिषेचनम् । विवाहः पूजनं तस्य गणेशस्य विवाहकम् ।

पार्वतीपुत्रलाभश्च देवानाञ्चसमागमः । कातेमनसिवाञ्छास्ति किं भूयःश्रोतुमिच्छसि

इति श्री ब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे गणपतिखण्डे नारायणनारदसंवादे कुमाराभिषेको नाम सप्तदशोऽध्यायः ।

———

अष्टादशोऽध्यायः

विघ्नेशविघ्नकथनम् ।

नारद उवाच ।

नारायण महाभाग वेदवेदाङ्गपारग । पृच्छामि त्वामहं किञ्चिदतिसन्देहमीश्वर ॥ १ ॥
सुतस्य त्रिदशेशस्य शङ्करस्य महात्मनः । विघ्ननिघ्नस्य यद्विघ्नमीश्वरस्य कथं प्रभो ॥२॥
परिपूर्णतमः श्रीमान् परमात्मा परात्परः । गोलोकनाथः स्वांशेन पार्वतीतनयः स्वयम्
अहो भगवतस्तस्य मस्तकच्छेदनं विभो । ग्रहदृष्ट्या ग्रहेशस्य तन्मे त्वं वक्तुमर्हसि ॥

नारायण उवाच ।

सावधानं श्रृणु ब्रह्मन्नितिहासं पुरातनम् । विघ्नेशस्य विघ्नमिदं बभूव येन नारद ॥५॥
एकदा शङ्करः सूर्य्यं जघान परमक्रुधा । मालिसुमालिहन्तारं शूलेन भक्तवत्सलः ॥६॥
श्रीसूर्य्योऽव्यर्थशूलेन शिवतुल्येन तेजसा । जहार चेतनां सद्यो रथाच्च निपपात ह ॥७॥
ददर्श कश्यपः पुत्रं मृतमुत्तानलोचनम् । कृत्वा वक्षसि तं शोकात् विललाप भृशं मुहुः
हाहाकारं सुरास्त्रस्ताश्चक्रुर्विललपुर्भृशम् । अन्धीभूतं जगत्सर्वं बभूव तमसावृतम् ॥९
निष्प्रभं तनयं दृष्ट्वा शशाप कश्यपः शिवम् । तपस्वी ब्रह्मणः पौत्रः प्रज्वलन्ब्रह्मतेजसा
मत्पुत्रस्य यथा वक्षश्छिन्नं शूलेन तेऽद्य च । त्वत्पुत्रस्य शिरश्छिन्नमेवम्भूतम्भविष्यति
शिवश्च गलितक्रोधः क्षणेनैवाशुतोषकः । ब्रह्मज्ञानेन तत्सूर्य्यं जीवयामास तत्क्षणात् ॥
ब्रह्मविष्णुमहेशानामंशश्च त्रिगुणात्मकः । सूर्यश्च चेतनां प्राप्य समुत्तस्थौ पितुः पुरः।

ननाम पितरं भक्त्या शङ्करं भक्तवत्सलः । विज्ञाय शम्भोः शापञ्च कश्यपश्च चुकोप ह

विषयं नैव जग्राह कोपेनैवमुवाच ह । विषयञ्च परित्यज्य भजामि कृष्णमीश्वरम् ॥१५
सर्वं तुच्छमनित्यञ्च नश्वरं चेश्वरं विना । विहाय मङ्गलं सत्यं विद्वान्नेच्छेदमङ्गलम् ॥
देवैश्च प्रेरितो ब्रह्मा समागत्य ससम्भ्रमः । बोधयित्वा रविं तत्र युयोज विषये प्रभुः ।
शिवस्तमाशिषं कृत्वा ब्रह्मा च स्वालयं मुदा । जगाम कश्यपश्चैव स्वराशिं रविरेव च
अथ माली सुमाली च व्याधिग्रस्तौबभूवतुः । श्वित्रौगलितसर्वाङ्गौ शक्तिहीनौ हतप्रभौ
तावुवाच स्वयं ब्रह्मा युवाञ्च भजतां रविम् । सूर्य्यकोपेन गलितौ युवामेव हतप्रभौ ॥
सूर्य्यस्य कवचं स्तोत्रंसर्वंपूजाविधिंविधिः । जगाम कथयित्वा तौ ब्रह्मलोकंसनातनः

ततस्तौ पुष्करं गत्वा सिषेवाते रविं मुने ।
स्नात्वा त्रिकालं भक्त्या च जपन्तौ मन्त्रमुत्तमम् ॥ २२ ॥

ततः सूर्य्याद्वरं प्राप्य निजरूपौ बभूवतुः । इत्येवं कथितं सर्वं किम्भूयः श्रोतुमिच्छसि

इति श्री ब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे गणपतिखण्डे नारायणनारदसंवादे विघ्नेशविघ्नकथनं नाम अष्टादशोऽध्यायः ।

एकोनविंशोऽध्यायः

भास्करपूजनं स्तोत्रञ्च ।

नारद उवाच ।

किं स्तोत्रं कवचं ब्रह्मन् ब्रह्मणा च ददौ मुने । दानवाभ्यांपुरादत्तं सूर्य्यस्य परमात्मनः
किं वा पूजा विधानंवाकिंमन्त्रंव्याधिनाशनम् । सर्वं चास्यमहाभागतन्मेत्वंवक्तुमर्हसि

सूत उवाच ।

नारदस्य वचः श्रुत्वा भगवान् करुणानिधिः । स्तोत्रञ्च कवचं मन्त्रमुवाच पूजनक्रमम्

नारायण उवाच ।

शृणु नारद वक्ष्यामि श्रीसूर्य्यपूजनक्रमम् । स्तोत्रञ्च कवचं सर्वं पापव्याधिविमोचनम्

मालिसुमालिनौदैत्यौव्याधिग्रस्तौ बभूवतुः । विधिं सस्मरतुः स्तोतुंशिवमन्त्रप्रदायकम्
ब्रह्मा गत्वा च वैकुण्ठं पप्रच्छ कमलापतिम् । शिवं तत्रैवगच्छन्तं वसन्तं हरिसन्निधौ

ब्रह्मोवाच ।

मालिसुमालिनौ दैत्यौ व्याधिग्रस्तौ बभूवतुः । कमुपायं वद ब्रह्मंस्तयोर्व्याधिविनाशने

विष्णुरुवाच ।

कृत्वा सूर्य्यस्य सेवाञ्च पुष्करे पूर्णवत्सरम् । व्याधिहन्तुर्मदंशस्यतौ च मुक्तौभविष्यतः

शङ्कर उवाच ।

सूर्य्यस्य स्तोत्रंकवचंमन्त्रंकल्पतरुं परम् । देहि ताभ्यांजगत्कान्त व्याधिहन्तुर्महात्मनः
आरात् सम्पत् प्रदातारौ सर्वदाता हरिः स्वयम् ।
व्याधिहन्ता दिनकरो यस्य यो विषयो विधे ॥ १० ॥
तयोरनुमतिं प्राप्य ययौ दैत्यगृहं विधिः । प्रणम्य तौ तं पृष्ट्वा च तस्मै ददतुरासनम् ॥
तावुवाच स्वयं ब्रह्मा गलितौ च दयानिधिः । स्तब्धावाहाररहितौ पूयदुर्गन्धसंयुतौ ॥

ब्रह्मोवाच ।

गृहीत्वा कवचंस्तोत्रंमन्त्रं पूजाविधिक्रमम् । गत्वाहिपुष्करं वत्सौ भजथःप्रणतौरविम्

तावूचतुः ।

भजावः केन विधिना केन मन्त्रेणवाविधे । किं स्तोत्रं कवचं किंवा तदावाभ्यांप्रदेहिव

ब्रह्मोवाच ।

कृत्वा त्रिकालंस्नानञ्चमन्त्रेणानेनभास्करम् । संसेव्य भास्करंभक्त्यानीरुजौचभविष्यथः
ओं ह्रीं नमो भगवते सूर्य्याय परमात्मने स्वाहा । इत्यनेनच मन्त्रेणसावधानंदिवाकरम्
संपूज्य भक्त्या दत्त्वा चैवोपहाराणि षोड़श । एवं संवत्सरं यावत्ध्रुवंमुक्तौभविष्यथः
अपूर्वं कवचं तस्य युवाभ्यां प्रददाम्यहम् । यद्दत्तं गुरुणा पूर्वमिन्द्राय प्रीतिपूर्वकम् ॥
तत् सहस्रभगाङ्गाय शापेन गौतमस्य च । अहल्याहरणेनैव पापयुक्ताय सङ्कटे ॥ १८ ॥

बृहस्पतिरुवाच ।

इन्द्र शृणु प्रवक्ष्यामि कवचं परमाद्भुतम् । यद्धृत्वा मुनयः पूता जीवन्मुक्ताश्च भारते ॥

कवचं बिभ्रतो व्याधिर्न याति सन्निधिं भिया। यथा दृष्ट्वा वैनतेयं पलायन्ते भुजङ्गमाः
शुद्धाय गुरुभक्तायस्वशिष्यायप्रकाशयेत्। खलाय परिशिष्याय दत्त्वामृत्युमवाप्नुयात्
जगद्विलक्षणस्यास्य कवचस्य प्रजापतिः। ऋषिश्छन्दश्च गायत्री देवो दिनकरःस्वयम्

व्याधिप्रणाशे सौन्दर्य्ये विनियोगः प्रकीर्त्तितः॥ २२॥

सद्यः पूतकरं सारं सर्वपापप्रणाशनम्।

ओं क्लीं ह्रीं श्रीं श्रीसूर्य्याय स्वाहा मे पातु मस्तकम्॥ २३॥

अष्टादशाक्षरोमन्त्रःकपालंमेसदावतु। ओं ह्रीं ह्रीं श्रीं श्रीसूर्य्यायस्वाहामेपातुनासिकाम्
चक्षुर्मे पातु सूर्य्यश्च तारकाञ्च विकर्त्तनः। भास्करो मेऽधरं पातु दन्तं दिनकरः सदा
प्रचण्डः पातु गण्डं मे मार्त्तण्डः कर्णमेव च। मिहिरश्च सदा स्कन्धंपातु जङ्घेचपूषणः
वक्षः पातु रविः शश्वन्नाभिं सूर्य्यः स्वयं सदा। कङ्कालं मे सदापातु सर्वदेवनमस्कृतः
करौ पातु सदा ब्रध्नः पातु पादौ प्रभाकरः। विभाकरो मे सर्वाङ्गंपातु सन्ततमीश्वरः
इति ते कथितं वत्स कवचं सुमनोहरम्। जगद्विलक्षणं नाम त्रिजगत्सु सुदुर्लभम्॥
पुरा दत्तश्च मनवे पुलस्त्यः पुष्करे मुदा। मया दत्तश्च तुभ्यञ्च यस्मै कस्मै न दास्यसि
व्याधितो मुच्यसे त्वं च कवचस्य प्रसादतः। भवानरोगी श्रीमांश्च भविष्यतिनसंशयः
लक्षवर्षहविष्येण यत्फलं लभते नरः। तत्फलं लभते नूनं कवचस्यास्य धारणात्॥३२
इदं कवचमज्ञात्वा यो मूढो भास्करं भजेत्। दशलक्षप्रजप्तोऽपि मन्त्रसिद्धिर्न जायते

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे सूर्य्यकवचं समाप्तम्।

ब्रह्मोवाच।

धृत्वेदं कवचं वत्सौ कृत्वा च स्तवनं रवेः।

युवां व्याधिविमुक्तौ च निश्चितन्तु भविष्यथः॥ ३४॥

स्तवनं सामवेदोक्तं सूर्य्यस्य व्याधिमोचनम्। सर्वपापहरं सारं श्रीरारोग्यकरं परम्॥

ब्रह्मोवाच।

तं ब्रह्म परमं धाम ज्योतीरूपं सनातनम्। त्वामहं स्तोतुमिच्छामि भक्तानुग्रहकारकम्।

त्रैलोक्यलोचनं लोकनाथं पापप्रमोचनम् । तपसां फलदातारं दुःखदं पापिनां सदा ॥
कर्मानुरूपफलदं कर्मबीजं दयानिधिम् । कर्मरूपं क्रियारूपमरूपं कर्मबीजकम् ॥ ३८ ॥
ब्रह्मविष्णुमहेशानामंशञ्च त्रिगुणात्मकम् । व्याधिदंव्याधिहन्तारं शोकमोहभयापहम्
सुखदं मोक्षदं सारं भक्तिदं सर्वकामदम् ॥ ३९ ॥
सर्वेश्वरं सर्वरूपं साक्षिणं सर्वकर्मणाम् । प्रत्यक्षं सर्वलोकानामप्रत्यक्षंमनोहरम् ॥४०
शश्वद्रसहरं पश्चाद्रसदं सर्वसिद्धिदम् । सिद्धिस्वरूपं सिद्धेशं सिद्धानां परमं गुरुम् ॥
स्तवराजमिदं प्रोक्तं गुह्याद्गुह्यतरं परम् । त्रिसन्ध्यंयः पठेन्नित्यं सर्वव्याधिःप्रमुच्यते
आन्ध्यं कुष्ठञ्च दारिद्र्यं रोगं शोकं भयं कलिः ।
तस्य नश्यति विश्वेश श्रीसूर्य्यकृपया ध्रुवम् ॥ ४३ ॥
महाकुष्ठीच गलितो चक्षुर्हीनो महाव्रणी । यक्ष्मग्रस्तोमहाशूली नानाव्याधियुतोऽपिव
मासंकृत्वा हविष्यान्नं श्रुत्वास मुच्यतेध्रुवम् । स्नानञ्च सर्वतीर्थानां लभते नात्रसंशयः
पुष्करं गच्छतं शीघ्रं भास्करं भजतं सुतौ । इत्येवमुक्त्वा स विधिर्जगाम स्वालयं मुदा
तौनिषेव्य दिनेशंतं नीरुजौ तौ बभूवतुः । इत्येवं कथितं वत्स किम्भूयःश्रोतुमिच्छसि
सर्वविघ्नहरं सारं विघ्नेशविघ्नकारणम् । स्तोत्रेणानेन तं स्तुत्वा मुच्यते नात्रसंशयः ॥
इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारद-संवादे गणपतिखण्डे विघ्न-
कारणकथनं नामोनविंशतितमोऽध्यायः ।

विंशोऽध्यायः

गजमुखयोजनहेतुकथनम् ।

नारद उवाच ।

हरेरंशसमुत्पन्नो हरितुल्यो भवान् धिया । तेजसा विक्रमेणैव मत्प्रश्नं श्रोतुमर्हसि ॥१

विघ्ननिघ्नस्य यद्विघ्नं श्रुतं तत्परमाद्भुतम् । तद्विघ्नकारिणश्चैव विश्वकारणवक्त्रतः ॥२॥

अधुनाश्रोतुमिच्छामि स्वात्मसन्देहभञ्जनम्। त्रैलोक्यनाथतनये गजास्ययोजनाकथम्
स्थितेष्वन्येषु सर्वेषां जन्तूनां जन्तुसम्भव। विशिष्टानां सुरूपेषु नानारूपेषु रूपिणाम्

श्रीनारायण उवाच।

गजास्ययोजनायाश्च कारणं शृणु नारद! गोप्यं सर्वपुराणेषु वेदेषु च सुदुर्लभम्॥ ५॥
तारणं सर्वदुःखानां कारणं सर्वसम्पदाम्। हारणं विपदाञ्चैव रहस्यं पापमोचनम्॥६॥
महालक्ष्म्याश्च चरितं सर्वमङ्गलमङ्गलम्। सुखदंमोक्षदञ्चैव चतुर्वर्गफलप्रदम्॥ ७॥
शृणु तात प्रवक्ष्येऽहमितिहासं पुरातनम्। रहस्यं पाद्मकल्पस्य पुरा तातमुखाच्छ्रुतम्।
एकदैव महेन्द्रश्च पुष्पभद्रां नदीं ययौ। महासम्पन्मदोन्मत्तः कामी राजश्रियान्वितः॥
तत्तीरेऽतिरहःस्थाने पुष्पोद्याने मनोहरे। अतीवदुर्गमेऽरण्ये सर्वजन्तुविवर्जिते॥१०॥
भ्रमरध्वनिसंयुक्ते पुंस्कोकिलरुतश्रुते। सुगन्धिपुष्पसंश्लिष्टवायुना सुरभीकृते॥११॥
ददर्श रम्भां तत्रैव चन्द्रलोकात् समागताम्। सुरतश्रमविश्रामकामुकीं कामकामुकीम्।

इच्छन्तीमीप्सितां क्रीड़ां गच्छन्तीं मदनाश्रमम्।
एकाकिनीमुन्मनस्कां मन्मथोद्गतमानसाम्॥ १३॥

सुश्रोणीं सुदतींश्यामां विम्बाधरसरोरुहाम्। वृहन्नितम्बभारार्त्तां गजेन्द्रमन्दगामिनीम्।
सस्मितास्यशरच्चन्द्रां सकटाक्षश्च विभ्रतीम्। विभ्रतींकवरीं रम्यांमालतीमाल्यशोभिताम्
वह्निशुद्धांशुकधरां रत्नभूषणभूषिताम्। कस्तूरीविन्दुना सार्द्धं सिन्दूरविन्दुमण्डिताम्॥
नीलोत्पलविनिन्द्यैककज्जलोज्ज्वललोचनाम्। मणिकुण्डलयुग्मेनगण्डस्थलविराजिताम्
अत्युन्नतं सुकठिनं पत्रराजिविराजितम्। सुखदं रसिकानाञ्च स्तनयुग्मञ्च विभ्रतीम्॥

सर्वशोभाढ्यवेशाढ्यां सुभगां सुरतोत्सुकाम्।
प्राणाधिकाञ्च देवानां स्वच्छां स्वच्छन्दगामिनीम्॥ १६॥

वरामप्सरसां रम्यामतीवस्थिरयौवनाम्। गुणरूपवतीं शान्तां मुनिमानसमोहिनीम्॥
दृष्ट्वा तामतिवेशाढ्यां तत्कटाक्षेण पीड़ितः। इन्द्रोऽतीन्द्रियचापल्यात् प्रवक्तुमुपचक्रमे

इन्द्र उवाच।

क गच्छसि वरारोहे क्वागतासि मनोहरे। मया दृष्टा(सि) सुचिरं मत्प्रियापि त्वमङ्गना।

तवान्वेषणकर्त्ताहं श्रुत्वा वाचिकवक्त्रतः । शश्वत्तवानुरक्तश्च कामन्यां गणयामि च ।
सुवासितजलार्थीयः किमिच्छेत्पङ्किलंजलम् । पङ्कंनेच्छेच्चन्दनार्थी पङ्कजार्थींनचोत्पलम्
सुधार्थी न सुरामिच्छेद् दुग्धार्थी न जलाविलम् ।
सुगन्धिपुष्पशायी यो न चास्त्रतल्पमिच्छति ॥ २५ ॥
यः स्वर्गी नरकं नेच्छेत् सुभोगी मन्दभोजनम् ।
पण्डितैः सह संवासी नेच्छेत् कामिनीसन्निधिम् ॥ २६ ॥
विहाय रत्नाभरणं कोऽपीच्छेल्लोहभूषणम् ।
त्वामाश्लिष्य महाविज्ञां को मूढो गन्तुमिच्छति ।
विहाय गङ्गां को विज्ञो नदीमन्याञ्च वाञ्छति ॥२७॥
नेन्द्रियैश्चेन्द्रियरतिं वर्द्धमानाश्च सेवनैः । वरं प्रार्थयितारश्च जीविनश्च सुखार्थिनः ॥२८
इत्येवमुक्त्वा भगवानवरुह्य गजेश्वरात् । कामयुक्तश्च पुरतस्तस्थौ तस्याश्च नारद ।२९॥
श्रुत्वा तद्वचनं रम्भा महाश्रृङ्गारलोलुपा । जहासानम्रवदना पुलकाञ्चितविग्रहा ॥३०॥
स्मेराननंकटाक्षेण स्तनोरुदर्शनेन च । कामाग्न्याहुतिवाक्येन जहार तस्य चेतनम् ॥३१
मितं सारं सुमधुरं सुस्निग्धं कोमलं प्रियम् । पुरुषायत्तबीजञ्च प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥३२॥

रम्भोवाच ।

यास्यामि वाञ्छितं यत्र प्रश्नेन तव किं फलम् । नाहंसन्तोषजननीधूर्त्तानांदुष्टमित्रता ॥
यथा मधुकरो लोभात् सर्वपुष्पासवं लभेत् । स्वादुयत्रातिरिक्तंसतत्रतिष्ठतिसन्ततम् ॥
तथैव लम्पटपुमान् भ्रमेद् भ्रमरवत् सदा । न विबद्धो हि कास्वेव वायुवद्रसमाहरेत् ॥
सुपुमानङ्गवत्स्त्रीणांयथाशाखाश्चशाखिषु । लम्पटःकाकवल्लोलःफलंभुक्त्वाप्रयाति च ॥
स्वकार्य्यमुद्धरेद् यावत्तावद्वासप्रयोजनम् । स्थितिः कार्य्यानुरोधेनयथाकाष्ठेहुताशनः ॥
यावत्तड़ागेतोयानितावद्यादांसितेषुच । शुष्कारम्भेचतोयानांयान्तिस्थानान्तरं पुनः ॥
त्वं देवानामीश्वरोऽसि कामिनीनाञ्च वाञ्छितः ।
पुमांसं रसिकं शश्वद् वाञ्छन्ति रसिकाः सुखात् ॥३६॥

युवानं रसिकं शान्तंसुवेशंसुन्दरंप्रियम् । गुणिनंधनिनंस्वच्छंकान्तमिच्छतिकामिनी ॥

दुःशीलं रोगिणं वृद्धं रतिशक्तिविहीनकम्। अदातारमविज्ञञ्च नैव वाञ्छन्तियोषितः ॥
का मूढ़ा न च वाञ्छन्ति त्वामेवं गुणसागरम्।
तवाज्ञाकारिणीं दासीं गृहाणात्र यथासुखम् ॥४२॥
इत्युक्त्वा सस्मिता साचतंपपौचक्रचक्षुषा। कामाग्निदग्धाविगलल्लज्ञातस्थौ समीपतः ॥
ज्ञात्वा भावं स्मरार्त्तायाः स्मरशास्त्रविशारदः। गृहीत्वातांपुष्पतल्पेविजहारतया सह ॥
सहसा रहसि प्रौढ़ां नग्नाञ्चसुभगांवराम्। पक्वबिम्वाधरौष्ठींचचुचुम्ब चुम्बितस्तया ॥
नानाप्रकारशृङ्गारं विपरीतादिकं मुने। चकार कामी तत्रैव शृङ्गारो मूर्त्तिमानिव ॥४६
तौ कामाहितचित्तौ मा वुवुधाते दिवानिशम्।
शश्वत्तद्गतचित्तौ च कामार्त्तौ ज्ञानवर्जितौ ॥४७॥
स च कृत्वा स्थले क्रीड़ां तया सहसुरेश्वरः। ययौजलविहारार्थं पुष्पभद्रानदीजलम् ॥
स चकार जलक्रीड़ां तया सह क्षणं मुदा। जलात् स्थलेस्थलात्तोयेविजहारपुनःपुनः ॥
एतस्मिन्नन्तरे तेन वर्त्मना मुनिपुङ्गवः। सशिष्यो याति दुर्वासा वैकुण्ठाच्छङ्करालये॥
तञ्च दृष्ट्वा मुनीन्द्रञ्च देवेन्द्रः स्तम्भमानसः। ननामागत्य सहसा ददौतस्मैसचाशिषः ॥
पारिजातप्रसूनं यद्दत्तं नारायणेन वै। तच्च दत्तं महेन्द्राय मुनीन्द्रेण महात्मना ॥५२॥
दत्त्वा पुष्पं महाभागस्तमुवाचकृपानिधिः। माहात्म्यंतस्ययत्किञ्चिदपूर्वंमुनिसत्तमः ॥

दुर्वासा उवाच।

सर्वविघ्नहरं पुष्पं नारायणनिवेदितम्। मूद्धर्न्नीदं यस्य देवेन्द्र जयस्तस्यैव सर्वतः ॥५४
पुरः पूजा च सर्वेषां देवानामग्रणीर्भवेत्। तच्छायेव महालक्ष्मीर्न जहाति कदापि तम् ॥
ज्ञानेव तेजसा बुद्ध्या विक्रमेण बलेन च। सर्वदेवाधिकः श्रीमान्हरितुल्यपराक्रमः ॥
भक्त्या मूर्ध्नि न गृह्णाति योऽहङ्कारेण पामरः। नैवेद्यञ्च हरेरेवसभ्रष्टश्रीःस्वजातिभिः ॥
इत्युक्त्वा शङ्करांशश्च जगाम शङ्करालयम् ॥५७॥
शक्रो रम्भान्तिके पुष्पं संस्थाप्य गजमस्तके। शक्रं भ्रष्टश्रियंदृष्ट्वासाजगामसुरालयम् ॥
पुंश्चली योग्यमिच्छन्ती नापरं चञ्चलाधमा ॥५८॥
देवराजं परित्यज्य गजराजो महाबली। प्रविवेश महारण्यं तं निक्षिप्य स्वतेजसा ॥

तत्रैव करिणीं प्राप्य मत्तःसंबुभुजेबलात् । सातद्वभूववशगा योषिज्जातिः सुखार्थिनी ।
तयोर्बभूवापत्यानां निवहस्तत्र कानने ॥६०॥
हरिस्तन्मस्तकं छित्त्वा युयोजतेनबालके । इत्येवंकथितंवत्सकिंभूयः श्रोतुमिच्छसि ॥
गजास्ययोजनायाश्च कारणं पापनाशनम् ॥ ६१ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे गणपतिखण्डे गजास्ययोजनहेतुकथनं नाम विंशतितमोऽध्यायः ।

एकविंशोऽध्यायः

शक्रलक्ष्मीप्राप्तिः ।

नारद उवाच ।

ते देवा ब्रह्मशापेन निश्रीकाः केन वा प्रभो । बभूवुस्तद्रहस्यञ्च गोपनीयं सुदुर्लभम् ॥
कथं वा प्रापुरेते तां कमलां जगतां प्रसूम् । किञ्चकार महेन्द्रश्च तद्भवान् वक्तुमर्हसि ॥

नारायण उवाच ।

गजेन्द्रेण पराभूतो रम्भया च सुमन्दधीः । भ्रष्टश्रीर्दैन्ययुक्तश्च स जगामामरावतीम् ॥
तां ददर्श निरानन्दो निरानन्दां पुरीं मुने । दैन्यग्रस्तां बन्धुहीनां वैरिवर्गैःसमाकुलाम् ॥
सर्वं श्रुत्वा दूतमुखाज्जगाम मन्दिरं गुरोः । तेन देवगणैः सार्द्धंजगामब्रह्मणःसभाम् ॥
गत्वा ननाम तं शक्रः सुरैः सार्द्धं तथा गुरुः ।
तुष्टाव वेदविधिना स्तोत्रेण भक्तिसंयुतः । प्रवृत्तिं कथयामास वाक्पतिस्तं प्रजापतिम् ॥
श्रुत्वा ब्रह्मा नम्रवक्त्रः प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥ ६ ॥

ब्रह्मोवाच ।

मत्प्रपौत्रोऽसि देवेन्द्र शश्वद्राजन् श्रिया ज्वलन् ।

लक्ष्मीसमःशचीभर्त्ता परस्त्रीलोलुपः सदा ॥ ७ ॥

गौतमस्याभिशापेन भगाङ्गः सुरसंसदि । पुनर्लज्जाविहीनस्त्वं परस्त्रीरतिलोलुपः ॥८॥
यःपरस्त्रीषुनिरतस्तस्य श्रीर्वाकुतो यशः । स च निन्द्यः पापयुक्तः शश्वत् सर्वसभासुच
नैवेद्यं श्रीहरेरेव दत्तं दुर्वाससा च ते । गजमूर्ध्नित्वया न्यस्तं रम्भया हतचेतसा ॥१०॥

क्व सा रम्भा सर्वभोग्या क्वाधुना त्वं श्रिया हतः ।
पद्मा त्यक्ता यन्निमित्ताद्गता त्वत्तः क्षणेन सा ॥ ११ ॥

वेश्या सश्रीकमिच्छन्ती निःश्रीकं न च चञ्चला । नवंनवं प्रार्थयन्ती परिनिन्द्य पुरातनम्
यद्गतं तद्गतं वत्स निष्पन्नं न निवर्त्तते । भज नारायणं भक्त्या पद्मायाः प्राप्तिहेतवे ॥१३
इत्युक्त्वा तं जगत्स्रष्टुः स्तोत्रञ्च कवचं ददौ । नारायणस्य मन्त्रञ्च नारायणपरायणः ॥
स तैः सार्द्धञ्च गुरुणा जजाप मन्त्रमीप्सितम् । गृहीत्वा कवचं तेन तुष्टाव पुष्करेहरिम्
वर्षमेकं निराहारो भारते पुण्यदे शुभे । सिषेव कमलाकान्तं कमलाप्राप्तिहेतवे ॥ १६ ॥
आविर्भूय हरिस्तस्मै वाञ्छितञ्च वरं ददौ । लक्ष्मीस्तोत्रञ्च कवचं मन्त्रमैश्वर्य्यवर्द्धनम्
दत्त्वा जगाम वैकुण्ठमिन्द्रः क्षीरोदमेव च । गृहीत्वा कवचं स्तुत्वा प्राप पद्मालयां मुने
सुरेश्वरोऽरिं जित्वा स ललाभामरावतीम् । प्रत्येकञ्च सुराः सर्वे स्वालयंप्रापुरीप्सितम्

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे गणपतिखण्डे शक्र-
लक्ष्मीप्राप्तिर्नामैकविंशतितमोऽध्यायः ।

द्वाविंशोऽध्यायः

लक्ष्मीस्तोत्रं कवचञ्च ।

नारद उवाच ।

आविर्भूय हरिस्तस्मै किं स्तोत्रं कवचं ददौ । महालक्ष्म्याश्च लक्ष्मीशस्तन्मे ब्रूहितपोधन

नारायण उवाच ।

पुष्करे च तपस्तप्त्वा विरराम सुरेश्वरः । आविर्बभूव तत्रैव क्लिष्टं दृष्ट्वा हरिः स्वयम् ॥

तमुवाच हृषीकेशो वरं वृणु यथेप्सितम्। स च वव्रे वरं लक्ष्मीमीशस्तस्मै ददौ मुदा॥
वरं दत्त्वा हृषीकेशः प्रवक्तुमुपचक्रमे। हितं सत्यञ्च सारञ्च परिणामसुखावहम्॥४॥

श्रीमधुसूदन उवाच।

गृहाण कवचं शक्र सर्वदुःखविनाशनम्। परमैश्वर्य्यजनकं सर्वशत्रुविमर्दनम्॥५॥
ब्रह्मणे च पुरा दत्तं संसारे च जलप्लुते। यद्धृत्वा जगतां श्रेष्ठः सर्वैश्वर्य्ययुतो विधिः
बभूवुर्मनवः सर्वे सर्वैश्वर्य्ययुता यतः। सर्वैश्वर्य्यप्रदस्यास्य कवचस्य ऋषिर्विधिः॥
पङ्क्तिश्छन्दश्चसा देवी स्वयं पद्मालया सुर। सिद्धैश्वर्य्यजपेष्वेव विनियोगःप्रकीर्त्तितः
यद्धृत्वा कवचं लोकः सर्वत्र विजयी भवेत्॥८॥
मस्तकं पातु मे पद्मा कण्ठं पातु हरिप्रिया।
नासिकां पातु मे लक्ष्मीः कमला पातु लोचनम्॥९॥
केशान् केशवकान्ता च कपालं कमलालया। जगत्प्रसूर्गण्डयुग्मं स्कधं सम्पत्प्रदा सदा
ओं श्रीं कमलवासिन्यैस्वाहा पृष्ठं सदाऽवतु। ओं श्रीं पद्मालयायै स्वाहा वक्षः सदाऽवतु
पातु श्रीर्मम कङ्कालं बाहुयुग्मञ्च श्रीं नमः॥ ११॥
ओं ह्रीं श्रीं लक्ष्म्यै नमः पादौ पातु मे सन्ततञ्चिरम्।
ओं ह्रीं श्रीं नमः पद्मायै स्वाहा पातु नितम्बकम्॥ १२॥
ओं श्रीं महालक्ष्म्यै स्वाहा सर्वाङ्गं पातु मे सदा।
ओं ह्रीं श्रीं क्लीं महालक्ष्म्यै स्वाहा मां पातु सर्वतः॥ १३॥
इति ते कथितं वत्स सर्वसम्पत्करंपरम्। सर्वैश्वर्य्यप्रदं नाम कवचं परमाद्भुतम्॥१४॥
गुरुमभ्यर्च्य विधिवत् कवचं धारयेत्तु यः। कण्ठेवा दक्षिणे बाहौ स सर्वविजयीभवेत्
महालक्ष्मीर्गृहं तस्य न जहाति कदाचन। तस्य छायेव सततं सा च जन्मनि जन्मनि
इदं कवचमज्ञात्वा भजेल्लक्ष्मीं सुमन्दधीः। शतलक्षप्रजप्तोऽपि न मन्त्रः सिद्धिदायकः।

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे लक्ष्मीकवचं समाप्तम्।

नारायण उवाच।

दत्त्वा तस्मै च कवचं मन्त्रञ्च षोड़शाक्षरम्। सन्तुष्टश्च जगन्नाथो जगतां हितकारणम्

ओं ह्रीं श्रीं क्लीं नमो महालक्ष्म्यै हरिप्रियायै स्वाहा ।

ददौ तस्मै च कृपया इन्द्राय च महामुने ॥ १६ ॥

ध्यानञ्च सामवेदोक्तं गोपनीयं सुदुर्लभम् । सिद्धैर्मुनीन्द्रैर्दुष्प्राप्यं ध्रुवं सिद्धिप्रदं शुभम्

श्वेतचम्पकवर्णाभां शतचन्द्रसमप्रभाम् । वह्निशुद्धांशुकाधानां रत्नभूषणभूषिताम् ॥२१॥

ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां भक्तानुग्रहकारकाम् । सहस्रदलपद्मस्थां स्वस्थाञ्च सुमनोहराम् ॥

शान्ताञ्च श्रीहरेः कान्तां तां भजेज्जगतां प्रसूम् ॥ २३ ॥

ध्यानेनानेनदेवेन्द्रध्यात्वालक्ष्मीं मनोहराम् । भक्त्यादास्यसि तस्यैचचोपचाराणिषोड़श

स्तुत्वानेन स्तवेनैव वक्ष्यमाणेन वासव । नत्वा वरंगृहीत्वा च लभिष्यसिचनिर्वृतिम्

स्तवनं शृणु देवेन्द्र महालक्ष्म्याः सुखप्रदम् । कथयामि सुगोप्यञ्च त्रिषु लोकेषु दुर्लभम्

नारायण उवाच ।

देवित्वांस्तोतुमिच्छामिनक्षमाःस्तोतुमीश्वराः । बुद्धेरगोचरांसूक्ष्मांतेजोरूपांसनातनीम्

अत्यनिर्वचनीयाञ्च को वा निर्वक्तुमीश्वरः ॥ २७ ॥

स्वेच्छामयींनिराकारांभक्तानुग्रहविग्रहाम् । स्तौमिवाङ्मनसोःपारांकिंवाऽहंजगदम्बिके

परां चतुर्णां वेदानां पारबीजं भवार्णवे । सर्वशस्याधिदेवीञ्च सर्वासामपि सम्पदाम् ॥

योगिनाञ्चैव योगानां ज्ञानानां ज्ञानिनान्तथा ।

वेदानाञ्च वेदविदां जननीं वर्णयामि किम् ॥ ३० ॥

यया विना जगत्सर्वमवस्तुनिष्फलं ध्रुवम् । यथा स्तनान्धबालानांमात्रावस्तुत्वयासह

प्रसीद जगतां माता रक्षास्मानतिकातरान् । वयं त्वच्चरणाम्भोजे प्रपन्नाः शरणं गताः

नमः शक्तिस्वरूपायै जगन्मात्रे नमो नमः । ज्ञानदायै बुद्धिदायै सर्वदायै नमो नमः ॥

हरिभक्तिप्रदायिन्यै मुक्तिदायै नमो नमः । सर्वज्ञायै सर्वदायै महालक्ष्म्यै नमो नमः ॥

कुपुत्राः कुत्रचित् सन्ति न कुत्रचित्कुमातरः । कुत्र माता पुत्रदोषे तं विहायचगच्छति

हे मातर्दर्शनंदेहि स्तनान्धान् बालकानिव । कृपां कुरु कृपासिन्धुप्रियेऽस्मान्भक्तवत्सले

इत्येवं कथितं वत्स पद्मायाश्च शुभावहम् । सुखदं मोक्षदं सारं शुभदं सम्पदः पदम् ॥

इदं स्तोत्रं महापुण्यं पूजाकाले च यः पठेत् । महालक्ष्मीर्गृहं तस्य न जहाति कदाचन

इत्युक्त्वा श्रीहरिस्तत्र तत्रैवान्तरधीयत। देवो जगाम क्षीरोदं सुरैः सार्द्धं तदाज्ञया॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे गणपतिखण्डे नारायणनारदसंवादे लक्ष्मीस्तव-कवचपूजाकथनं नाम द्वाविंशतितमोऽध्यायः।

———

त्रयोविंशोऽध्यायः।

महालक्ष्मीचरितम्।

नारायण उवाच।

इन्द्रश्च गुरुणा सार्द्धं सुरैश्च हृष्टमानसः। जगाम शीघ्रं पद्मायै तीरं क्षीरपयोनिधेः॥
कवचञ्च गले बद्ध्वा सद्रत्नगुटिकान्वितम्। मनसा स्तवनं दिव्यं स्मारं स्मारं पुनः पुनः
ते सर्वे भक्तिरक्ताश्च तुष्टुवुः कमलालयाम्। साश्रुनेत्रातिदीनाश्च भक्तिनम्रात्मकन्धराः
सा तेषां स्तवनं श्रुत्वा सद्यः साक्षाद् बभूव ह। सहस्रदलपद्मस्था शतचन्द्रसमप्रभा॥
जगद्व्याप्तं सुप्रभया जगन्मात्रा यया मुने। तानुवाच जगद्धात्री हितं सारं यथोचितम्

श्रीमहालक्ष्मीरुवाच।

वत्सा नेच्छामि वो गेहान्गन्तुं नैवं क्षमाधुना। भ्रष्टानां ब्रह्मशापेन बिभेमि ब्रह्मशापतः
प्राणा मे ब्राह्मणाः सर्वे शश्वत् पुत्राधिकप्रियाः। विप्रदत्तञ्च यत्किञ्चिदुपजीव्यंसदैवच
विप्रा ब्रुवन्तु मां तुष्टा यास्यामिचतदाज्ञया। न मे पूजां ध्रुवं कर्त्तुं क्षमास्तेचतपस्विनः
गुरुभिर्ब्राह्मणैर्देवैर्भिक्षुभिर्वैष्णवैस्तथा। यद्यभाग्यं भवेद् दैवात्ते शप्ताः सन्ति सन्ततम्
नारायणश्च भगवान् बिभेति ब्रह्मशापतः। सर्वजीवश्च भगवान् सर्वेशश्च सनातनः॥
एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मन् ब्राह्मणाहृष्टमानसाः। आजग्मुःसस्मिताः सर्वे ज्वलन्तोब्रह्मतेजसा
अङ्गिराश्च प्रचेताश्च क्रतुश्च भृगुरेव च। पुलहश्च पुलस्त्यश्च मरीचिरत्रिरेव च॥
सनकश्च सनन्दश्च तृतीयश्च सनातनः। सनत्कुमारो भगवान् साक्षान्नारायणात्मकः।
कपिलश्चासुरिश्चैव वोढुःपञ्चशिखस्तथा। दुर्वासाः कश्यपोऽगस्त्योगौतमःकण्वएवच

और्वःकात्यायनश्चैवकणादःपाणिनिस्तथा। मार्कण्डेयोलोमशश्चवशिष्ठोभगवान्स्वयम्
ब्राह्मणा विविधैर्द्रव्यैः पूजयामासुरीश्वरीम्। देवाश्चारण्यनैवेद्यैः परिहारेण भक्तितः॥
स्तुत्वा मुनीन्द्रास्तां भक्त्या चक्रुराराधनं मुदा। आगच्छ देवभवनं मर्त्यञ्चजगदम्बिके
तेषां तद्वचनं श्रुत्वा तानुवाच जगत्प्रसूः। परितुष्टा गामुकीच निर्भया ब्राह्मणाज्ञया॥

श्रीमहालक्ष्मीरुवाच।

गृहान् यास्यामिदेवानां युष्माकमाज्ञया द्विजाः। येषां गेहं नगच्छामिश्रृणुध्वंभारतेषुच
स्थिरा पुण्यवतां गेहे सुनीतिविवेदिनामहम्। गृहस्थाणां नृपाणां वा पुत्रवत्पालयामि तान्
यं यं रुष्टो गुरुर्देवो मातातातश्चवान्धवाः। अतिथिः पितृलोकश्च न यामितस्यमन्दिरम्
मिथ्यावादीचयःशश्वन्नास्तीतिवाचकः सदा। सत्वहीनश्चदुःशीलोनगेहंतस्ययाम्यहम्
सत्यहीनःस्थाप्यहारीमिथ्यासाक्ष्यप्रदायकः। विश्वासघ्नः कृतघ्नोयोनयामितस्यमन्दिरम्

चिन्ताग्रस्तो भयग्रस्तः शत्रुग्रस्तोऽतिपातकी।
ऋणग्रस्तोऽतिकृपणो न गेहं यामि पापिनाम्॥ २०॥

दीक्षाहीनश्च शोकार्त्तो मन्दधीःस्त्रीजितःसदा। न यामिचकदा गेहंपुंश्चल्याःपतिपुत्रयोः
योदुर्वाक् कलहाविष्टःकलिःशश्वद् यदालये। स्त्रीप्रधानागृहे यस्यनयामितस्यमन्दिरम्
यत्र नास्ति हरेः पूजा तदीयगुणकीर्त्तनम्। नोत्सुकस्तत्प्रशंसायांन यामितस्यमन्दिरम्
कन्यान्नवेदविक्रेता नरघाती च हिंसकः। नरकागारसदृशं न यामि तस्य मन्दिरम्॥
मातरं पितरंभार्य्यां गुरुपत्नींगुरुं सुतम्। अनाथांभगिनीं कन्यामनन्याश्रयवान्धवान्॥
कापर्ण्याद् यो न पुष्णातिसञ्चयंकुरुते सदा। तद्गेहान्नरकागारान्न यामितान्मुनीश्वराः
दशनं वसनं यस्य समलं रूक्षमस्तकम्। विकृतौ ग्रासहासौ न यामि तस्य मन्दिरम्
मूत्रं पुरीषमुत्सृज्य यस्तत्पश्यति मन्दधीः। यःशेते स्निग्धपादेन न यामि तस्यमन्दिरम्

अधौतपादशायी यो नग्नः शेतेऽतिनिद्रितः।
सन्ध्याशायी दिवाशायी न यामि तस्य मन्दिरम्॥ २६॥

मूर्द्धध्नतैलंपुरोदत्त्वा योऽन्यदङ्गमुपस्पृशेत्। ददातिपश्चाद्गात्रे वान यामितस्यमन्दिरम्
दत्त्वा तैलं मूर्द्धनिगात्रे विण्मूत्रंयःसमुत्सृजेत्। प्रणमेदाहरेत् पुष्पंनयामितस्यमन्दिरम्

तृणं छिनत्ति नखरैर्नखरैर्विलिखेन्महीम् । गात्रे पादे मलं यस्य न यामि तस्य मन्दिरम्
स्वदत्तां परदत्तां वा ब्रह्मवृत्तिं सुरस्य च । यो हरेज्ज्ञानशीलश्च न यामि तस्य मन्दिरम्
यत्कर्म दक्षिणाहीनं कुरुते मूढधी शठः । स पापी पुण्यहीनश्च न यामि तस्य मन्दिरम्
मन्त्रविद्योपजीवी च ग्रामयाजी चिकित्सकः । सूपकृद्देवलश्चैव न यामि तस्य मन्दिरम्
विवाहंधर्मकार्य्यंवा यो निहन्ति चकोपतः । दिवामैथुनकारी यो न यामितस्य मन्दिरम्
इत्युक्त्वा च महालक्ष्मीरन्तर्द्धानं चकार ह । ददौ दृष्टिञ्च देवानां गृहे मर्त्ये च नारद॥
तां प्रणम्य सुराः सर्वे मुनयश्च मुदान्विताः । प्रजग्मुः स्वालयंशीघ्रं शत्रुत्यक्तंसुदुद्धृतम्
नेदुर्दुन्दुभयः स्वर्गे बभूवुः पुष्पवृष्टयः । प्रापुर्देवाः स्वराज्यञ्च निश्चलां कमलां मुने॥
इत्येवं कथितं वत्स लक्ष्मीचरितमुत्तमम् । सुखदं मोक्षदं सारं किं पुनः श्रोतुमिच्छसि

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे गणपतिखण्डे नारायणनारदसंवादे लक्ष्मीचरितं नाम त्रयोविंशतिमोऽध्यायः ।

चतुर्विंशोऽध्यायः

गणेशस्य एकदन्तत्वे विवरणम् ।

नारद उवाच ।

नारायण महाभाग हरेरंशसमुद्भव । सर्वं श्रुतं त्वत् प्रसादाद्गणेशचरितं शुभम् ॥ १ ॥
दन्तद्वययुतं वक्त्रं गजराजस्य बालके । विष्णुना योजितं ब्रह्मन्नेकदन्तः कथं शिशुः ॥
कुतो गतोऽस्य दन्तोऽन्यस्तद्भवान्वक्तुमर्हति । सर्वेश्वरस्त्वंसर्वज्ञःकृपावान्भक्तवत्सलः

सूत उवाच ।

नारदस्य वचः श्रुत्वा स्मेरारुणसरोरुहः । एकदन्तस्य कथनं प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥ ४ ॥

नारायण उवाच ।

शृणु नारद वक्ष्येऽहमितिहासं पुरातनम् । एकदन्तस्य चरितं सर्वमङ्गलमङ्गलम् ॥ ५ ॥

एकदा कार्त्तवीर्य्यश्च जगाम मृगयां मुने। मृगान्निहत्य बहुलान् परिश्रान्तो बभूव सः
निशामुखे दिनेऽतीते तत्र तस्थौ वने नृपः। जमदग्न्याश्रमाभ्यासे उपोष्य सैन्यसंयुतः
प्रातः सरोवरे राजा स्नातः शुचिरलंकृतः। दत्तात्रेयेन दत्तञ्च जजाप भक्तितो मनुम् ॥
मुनिर्ददर्श राजानं शुष्ककण्ठौष्ठतालुकम्। प्रीत्या सम्भाषयामास पप्रच्छ कुशलं मुनिः
ननाम सम्भ्रमाद्राजा मुनिं सूर्य्यसमप्रभम्। सच तस्मै ददौप्रीत्या प्रणताय शुभाशिषम्
वृत्तान्तं कथयामास राजा चानशनादिकम्। सम्भ्रमेणैव मुनिना त्रस्तं राजानिमन्त्रितः
विज्ञाप्य तं मुनिश्रेष्ठः प्रययौ स्वालयं मुदा। लक्ष्मीसमां कामधेनुं कथयामास मातरम्
उवाच सा मुनिं भीतं भयं किं ते मयि स्थिते। जगद्भोजयितुं शक्तस्त्वं मयाकोनृपोमुने
राजभोजनयोग्यार्हं यद् यद् द्रव्यं प्रयाचसे। सर्वंतुभ्यं प्रदास्यामि त्रिषुलोकेषुदुर्लभम्

सौवर्णानि राजतानि पात्राणि विविधानि च।
भोजनार्हाण्यसंख्यानि पाकपात्राणि यानि च ॥ १५ ॥

पात्राणि स्वादुपूर्णानि प्रददौ मुनये च सा। नानाविधानि स्वादूनि परिपक्वफलानिच
पनसाम्रनारिकेलश्रीफलानि च नारद। राशीभूतान्यसंख्यानि स्वादूनि लड्डुकानि च
यवगोधूमचूर्णानां पिष्टकानां बहूनि च। पक्वान्नानां पर्वतञ्च परमान्नस्य कन्दरम् ॥१८
दुग्धानाञ्च घृतानाञ्च नदीं दध्नां ददौ मुदा। शर्कराणां तथा राशिं मोदकानाञ्चपर्वतम्

पृथुकानां सुशालीनां पर्वतं प्रददौ मुदा ॥ १६ ॥

ताम्बूलं प्रददौ पूर्णं कर्पूरादिसुवासितम्। नृपयोग्यं कौतुकञ्च सुन्दरं वस्त्रभूषणम् ॥२०
मुनिः सम्भृतसम्भारो दत्त्वा द्रव्यं मनोहरम्। भोजयामास राजानं ससैन्यमवलीलया
यद् यत् सुदुर्लभं वस्तु परिपूर्णं नृपेश्वरः। जगाम विस्मयं राजा दृष्ट्वा पात्रमुवाच ह ॥

राजोवाच।

द्रव्याण्येतानि सचिव दुर्लभान्यश्रुतानि च। ममासाध्यानि सहसा क्वागतान्यवलोकय
नृपाज्ञया च सचिवः सर्वं दृष्ट्वा मुनेर्गृहे। राजानं कथयामास वृत्तान्तं महदद्भुतम् ॥२४

सचिव उवाच।

दृष्टं सर्वं महाराज निबोध मुनिमन्दिरे। वह्निकुण्डयज्ञकाष्ठकुशपुष्पफलान्वितम् ॥२५॥

कृष्णचर्मस्रुवस्रुग्भिः शिष्यसंघैश्च सङ्कुलम् । तैजसाधारशस्यादि सर्वसम्पद्विवर्जितम्
वृक्षचर्मपरीधाना दृष्टाः सर्वे जटाधराः ॥ २७ ॥
हैकदेशे दृष्टा सा कपिलैका मनोहरा । चार्वङ्गी चन्द्रवर्णाभा रक्तपङ्कजलोचना ॥२८
ज्वलन्ती तेजसा तत्र पूर्णचन्द्रसमप्रभा । सर्वसम्पद्गुणाधारा साक्षादिव हरिप्रिया ॥
सर्वथाराधितो राजा दुर्बुद्धिः सचिवाज्ञया । मुनिं ययाचे तां धेनुं निवद्धः कालपाशतः
किंवापुण्यश्चकाबुद्धिर्निषेकः सर्वतोबली । पुण्यवान् बुद्धिमान्दैवाद्राजेन्द्रोयाचतेद्विजम्
पुण्यात्प्रजायते कर्म पुण्यरूपञ्च भारते । पापात्प्रजायते कर्म पापरूपं भयावहम् ॥३१॥
पुण्यात् कृत्वा स्वर्गभोगं जन्म पुण्यस्थले नृणाम् ।
पापात् भुक्त्वा च नरकं कुत्सितं जन्म जीविनाम् ॥ ३२ ॥
जीविनां निष्कृतिर्नास्ति स्थिते कर्मणिनारद । तेन कुर्वन्ति सन्तश्च सन्ततंकर्मणःक्षयम्
सा विद्या तत्तपो ज्ञानं स गुरुःसचवान्धवः । सामाता सपिता पुत्रस्तत्क्षयंकारयेत्तुयः
जीविनां दारुणो रोगः कर्मभोगः शुभाशुभः । भक्तवैद्यस्तंनिहन्ति कृष्णभक्तिरसायनात्
माया ददाति तां भक्तिं प्रतिजन्मनि सेविता । परितुष्टा जगद्धात्री भक्ताय बुद्धिदायिनी
परा परमभक्ताय माया यस्मै ददाति च । मायां दत्त्वा मोहयितुं न विवेकं कदाचन ॥
मायाविमोहितो राजा मुनिमानीय यत्नतः । उवाच विनयं भक्त्या पुटाञ्जलियुतो मुदा

राजोवाच ।

भिक्षां देहि कल्पतरो कामधेनुञ्च कामदाम् । मह्यं भक्ताय भक्तेश भक्तानुग्रहकातर ॥
युष्मद्विधानां दातॄणामदेयं नास्ति भारते । दधीचिर्देवताभ्यश्च ददौ स्वास्थि पुराश्रुतम्
भ्रूभङ्गलीलामात्रेण तपोराशे तपोधन । समूहं कामधेनूनां स्रष्टुं शक्तोऽसि भारते ॥४२

मुनिरुवाच ।

अहो व्यतिक्रमं राजन् ब्रवीषि शठ वञ्चक । दानं दास्यामि विप्रोऽहं क्षत्रियायनृपाधम
कृष्णेन दत्ता गोलोके ब्रह्मणे परमात्मना । कामधेनुरियं यज्ञे न देयाः प्राणतः प्रिया ॥
ब्रह्मणा भृगवे दत्ता प्रियपुत्राय भूमिप । मह्यं दत्ता च भृगुणा कपिला पैतृकी मम ॥
गोलकजा कामधेनुर्दुर्लभा भुवनत्रये । लीलामात्रात् कथमहं कपिलां स्रष्टुमीश्वरः ॥

नाहं रे हालिकोमूढ़त्वयानोत्थापितोवुधः । क्षणेनभस्मसात् कर्त्तुं क्षमोऽहमतिथिंविना
गृहं गच्छ गृहं गच्छ मत्कोपं नैव वर्द्धय । पुत्रदारादिकं पश्य दैववाधित पामर ॥४८॥
मुनेस्तद्वचनं श्रुत्वा चुकोप स नराधिपः । नत्वा मुनिं सैन्यमध्यं प्रययौ विधिवाधितः
गत्वा सैन्यसकाशं स कोपप्रस्फुरिताधरः । किङ्करान् प्रेषयामास धेनुमानयितुं वलात्
कपिलासन्निधिं गत्वा रुरोद मुनिपुङ्गवः । कथयामास वृत्तान्तं शोकेन हतचेतनः ॥५१
रुदन्तं ब्राह्मणं दृष्ट्वा सुरभिस्तमुवाच ह । साक्षाल्लक्ष्मीः स्वरूपा सा भक्तानुग्रहकातरा

सुरभिरुवाच ।

इन्द्रोवाहालिकोवापिस्ववस्तुदातुमीश्वरः । शास्ता पालयितादातास्ववस्तूनाञ्चसन्ततम्
स्वेच्छया चेन्नृपेन्द्राय मांददासि तपोधन । तेनसार्द्धं गमिष्यामि स्वेच्छयाचतवाज्ञया
अथवा न ददासि त्वं न गमिष्यामि ते गृहात् । मत्तोदत्तेन सैन्येन दूरीभूतं नृपं कुरु ॥
कथं रोदिषि सर्वज्ञ मायामोहितचेतनः । संयोगश्च वियोगश्च कालसाध्यो नचात्मनः
त्वंवा कोमे तवाहं का सम्वन्धः कालयोजितः । यावदेव हि सम्वन्धोममत्वंतावदेवहि
मनो जानाति यद्द्रव्यमात्मनश्चापिकेवलम् । दुःखञ्चतस्यविच्छेदात्यावत्स्वत्वञ्चतत्रवै
इत्युक्त्वाकामधेनुश्चसुषावविविधानि च । शस्त्राण्यस्त्राणि सैन्यानिसूर्य्यतुल्यप्रभाणिच
निर्गताःकपिलावक्त्रात्त्रिकोटिखड्गधारिणः । विनिःसृतानासिकायाःशूलिनःपञ्चकोटयः
विनिःसृतालोचनाभ्यांशतकोटिधनुर्द्धराः । कपालान्निःसृतावीरास्त्रिकोटिदण्डधारिणः
वक्षःस्थलान्निःसृताश्चत्रिकोटिशक्तिधारिणः । शतकोटिगदाहस्ताःपृष्ठदेशात्विनिर्गताः
विनिःसृताः पादतलाद्वाद्यभाण्डाःसहस्रशः । जङ्घादेशान्निःसृताश्च त्रिकोटिराजपुत्रकाः
विनिर्गता गुह्यदेशात्त्रिकोटि म्लेच्छजातयः । दत्त्वा सैन्यानि कपिलामुनयेनिर्भयं ददौ

युद्धं कुर्वन्तु सैन्यानि त्वं न यासीत्युवाच ह ॥ ६४ ॥

मुनिः सम्भृतसम्भारैर्हर्षयुक्तो वभूव ह । नृपेण प्रेरितो भृत्यो नृपं सर्वमुवाच ह ॥६५॥
कपिलासैन्यवृत्तान्तमात्मवर्गपराजयम् । तच्छ्रुत्वा नृपशार्दूलस्त्रस्तः कातरमानसः

दूतद्वारा च सैन्यानि चाजहार स्वदेशतः ॥ ६६ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे गणपतिखण्डे नारायणनारदसंवादे एकदन्त-
प्रश्नप्रसङ्गे जमदग्निकार्तवीर्य्ययुद्धे चतुर्विंशोऽध्यायः ।

पञ्चविंशोऽध्यायः

जमदग्नि-कार्त्तवीर्य्यार्जुनयुद्धम् ।

नारायण उवाच ।

हरिं स्मरन् कार्त्तवीर्य्यो हृदयेन विदूयता । दूतं प्रस्थापयामास कुपितोमुनिसन्निधिम् ॥

युद्धं देहि मुनिश्रेष्ठ किं वा धेनुञ्च वाञ्छितम् ।
मह्यं भृत्यायातिथये सुविचार्य्य यथोचितम् ॥२॥

दूतस्य वचनं श्रुत्वा जहास मुनिपुङ्गवः । हितं सत्यं नीतिसारं सर्वं दूतमुवाच ह ॥३॥

मुनिरुवाच ।

दृष्टो नृपो निराहारः समानीतो मया गृहम् ।
विविधञ्च यथा शक्त्या भोजितञ्च यथोचितम् ॥४॥
कपिलां याचते राजा मम प्राणाधिकां बलात् ।
तां दातुमक्षमो दूत युद्धं दास्यामि निश्चितम् ॥५॥

मुनेस्तद्वचनं श्रुत्वा दूतः सर्वमुवाच ह । नृपेन्द्रश्च सभामध्ये सन्नाहसंयुक्तं भिया ॥६॥
मुनिश्च कपिलामाह साम्प्रतंकिङ्करोम्यहम् । कर्णधारंविनानौकातथासैन्यंमयाविना ॥
कपिला चददौतस्मैशस्त्राणिविविधानिच । युद्धशास्त्रोपदेशञ्चसन्धानमौपयोगिकम् ॥
जयं भवतु ते विप्र युद्धेजेष्यसिनिश्चितम् । तवमृत्युर्नभविताचाव्यर्थास्त्रंविना ध्रुवम् ॥
नृपेण सार्द्धं ते युद्धमयुक्तं ब्राह्मणस्य च । दत्तात्रेयस्यशिष्येणैवाव्यर्थशक्तिधारिणा ॥
इत्युक्त्वा कपिला ब्रह्मन् विरराम मनस्विनी ॥१०॥
मुनिर्मनस्वी सैन्यञ्च सज्जीभूतञ्चकार ह । गृहीत्वा सर्वसैन्यञ्च प्रजगामरणस्थलम् ॥११
राजा जगाम युद्धाय ननाम मुनिपुङ्गवम् । उभयोः सैन्ययोर्युद्धं बभूव बहु दुष्करम् ॥
राजसैन्यं जितं सर्वं कपिलासेनया बलात् । विचित्रञ्च रथं राज्ञो बभञ्ज लीलया रणे॥

धनुश्चिच्छेद सन्नाहं सा सेना कापिली मुदा ।

नृपेन्द्रः कापिलेयानि सैन्यानि जेतुमक्षमः ॥१४॥

सैन्यानि तंशस्त्रवृष्ट्यान्यस्तशस्त्रश्चकारह। शरवृष्ट्याशस्त्रवृष्ट्याराजामूर्च्छामवापह ॥

किञ्चित् सैन्यं मृतं राज्ञःकिञ्चिदेवपलायितम्। मुनीन्द्रोमूर्च्छितंदृष्ट्वानृपेन्द्रमतिथिमुने ॥

कृपानिधिश्च कृपया तत्सैन्यं सञ्जहार च। गत्वासैन्यंविलीनञ्चकपिलायाञ्च कृत्रिमम् ॥

नृपाय मुनिना शीघ्रं दत्त्वा चरणरेणवः। आशीर्वादं प्रदत्तश्चजयोऽस्त्वितिकृपालुना ॥

कमण्डलुजलं दत्त्वा कारयामास चेतनाम् ॥१८॥

स राजा चेतनां प्राप्य समुत्थाय रणाजिरे। मूर्ध्नानामभक्त्याचमुनिश्रेष्ठं पुटाञ्जलिः ॥

मुनिः शुभाशिषं दत्त्वा राजानमालिलिङ्ग च।

पुनस्तं स्नापयित्वा च भोजयामास यत्नतः ॥२०॥

नावनीतञ्च हृदयं ब्राह्मणानाञ्च सन्ततम्। अन्येषां क्षुरधाराभमसाध्यं दारुणं सदा ॥

उवाच तं मुनिश्रेष्ठो गृहं गच्छ नृपाधिप।

राजोवाच।

रणं देहि महाबाहो धेनुं किंवा मयेप्सिताम् ॥२२॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे गणपतिखण्डे नृपमुनियुद्ध-कथनं नाम पञ्चविंशतितमोऽध्यायः।

षड्विंशतितमोऽध्यायः

पुनः जमदग्निकार्तवीर्यार्जुन युद्धम्।

नारायण उवाच।

हरिं स्मरन् मुनिश्रेष्ठो वाक्यं श्रुत्वा च भूभृतः। हितं सत्यंनीतिसारंप्रवक्तुमुपचक्रमे ॥

मुनिरुवाच।

गृहं गच्छ महाभाग रक्ष धर्मंसनातनम्। सर्वसम्पत्स्थिराशश्वत्स्थितेधर्मे सुनिश्चितम् ॥

त्वाञ्च दृष्ट्वा निराहारं समानीय गृहं नृप। तव पूजामकरवं यथाशक्त्या विधानतः ॥३॥

साम्प्रतं मूर्च्छितं दृष्ट्वा पादरेणु शुभाशिषम्। अददं चेतनां कृत्वा वसुमेवोचितं च ॥

नृपस्तद्वचनं श्रुत्वा प्रणम्य मुनिपुङ्गवम् । रथमन्यमारुरोह युद्धं देहीत्युवाच ह ॥ ५ ॥
मुनिः कृत्वा च सन्नाहं तं योद्धुमुपचक्रमे । राजा तं युयुधे तत्र कोपेनाहतचेतनः ॥६
कपिलादत्तशस्त्रेण न्यस्तशस्त्रं चकार तम् । कपिलादत्तयाशक्त्यापुनर्मूर्च्छां चकार च॥
पुनश्च चेतनां प्राप्य राजा राजीवलोचनः । मुनिना युयुधे तत्र कोपेन पुनरेव च ॥८॥
वह्निश्च योजयामास समरे मुनिपुङ्गवः । मुनिर्निर्वापयामास वारुणेनावलीलया ॥ ९ ॥
नृपेन्द्रो वारुणास्त्रञ्च चिक्षेप समरेमुनौ । वायव्यास्त्रेणसमुनिःशमयायामास लीलया ॥
वायव्यास्त्रं नृपश्रेष्ठश्चिक्षेप समरे तदा । गान्धर्वेण मुनिश्रेष्ठःशमयामासतत्क्षणम् ॥११
नागास्त्रञ्च नृपश्रेष्ठश्चिक्षेप रणमूर्द्धनि । गारुड़ेन मुनिश्रेष्ठो जघान तत्क्षणं मुदा ॥१२॥
माहेश्वरं महास्त्रञ्च शतसूर्य्यसमप्रभम् । चिक्षेप नृपतिश्रेष्ठो द्योतयन्तं दिशोदश ॥१३॥
वैष्णवास्त्रेण दिव्येन त्रिलोकव्यापकेन च । मुनिर्निर्वापयामास बहुयत्नेन नारद ॥१४
मुनिर्नारायणास्त्रञ्च चिक्षेप मन्त्रपूर्वकम् । शस्त्रं दृष्ट्वा महाराजो ननाम शरणं ययौ ॥
ऊर्द्धर्वञ्च भ्रमणं कृत्वा क्षणं दीप्त्वा दिशोदश । प्रलयाग्निसमन्तत्र स्वयमन्तरधीयत ॥
जृम्भणास्त्रञ्च स मुनिश्चिक्षेप रणमूर्द्धनि । निद्रां प्राप तेन राजा सुष्वाप च मृतोयथा
दृष्ट्वा नृपं निद्रितञ्च अर्द्धचन्द्रेण तत्क्षणम् । चिच्छेद सारथिं यानं धनुर्वाणंमुनिस्तदा ॥
मुकुटञ्च क्षुरप्रेण छत्रं सन्नाहमेव च । अस्त्रं तूणं वाजिगणं विविधेन च भूभृतः ॥१६
मुनिस्तत्सचिवान् सर्वान् नागास्त्रेणावलीलया । निबध्यस्थापयामासप्रहस्यसमरस्थले ॥
मुनिस्तंबोधयामाससुमन्त्रेणावलीलया । निबद्धान्सचिवान्सर्वान्दर्शयामासभूमिपम्॥
दर्शयित्वा नृपं तांश्च मोक्षयामास तत्क्षणम् । नृपेन्द्रमाशिषं कृत्वागृहंगच्छेत्युवाचह ॥
राजा कोपात् समुत्थाय शूलमुद्यम्ययत्नतः । चिक्षेपतंमुनिश्रेष्ठंमुनिःशक्त्याजघान तम् ॥
एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा समागत्य रणस्थलम् । सुप्रीतिं कारयामास सुनीत्याचपरस्परम् ॥
मुनिर्ननाम ब्रह्माणं सन्तुष्टश्च रणस्थले । राजा नत्वा विधिं विप्रं स्वालयंप्रययौ तदा ॥
मुनिर्ययौ च स्वगृहं स्वगृहं कमलोद्भवः । इत्येवं कथितं किञ्चिदपरं कथयामिते ॥२६

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे गणपतिखण्डे जमदग्नि-
कार्त्तवीर्य्यार्जुन युद्धविरामो नाम षड्विंशतितमोऽध्यायः ।

सप्तविंशतितमोऽध्यायः

ससैन्यस्य राज्ञः मुनितपोवने पुनर्गमनम् ।

नारायण उवाच ।

हरिं स्मृत्वा गृहं गत्वा राजा विस्मितमानसः । पुनर्जगामारण्यञ्चजमदग्न्याश्रमंतदा ॥
रथानाञ्च चतुर्लक्षं रथीनां दशलक्षकम् । अश्वेन्द्राणांगजेन्द्राणां पदातीनामसंख्यकम् ॥
राजेन्द्राणां सहस्रञ्च महाबलपराक्रमम् । महासमृद्धियुक्तश्च त्रैलोक्यं जेतुमीश्वरः ॥३
समृद्ध्या वेष्टयामास जमदग्न्याश्रमंमुदा । रथस्थोवर्मयुक्तश्चकार्त्तवीर्य्यार्जुनःस्वयम् ॥
सैन्यशब्दैर्वाद्यशब्दैर्महाकोलाहलैर्मुने । जमदग्न्याश्रमस्थाश्च मूर्च्छामापुर्भयेन च ॥५॥
पुरीं प्रविश्य बलवान् गृहीत्वा कपिलां शुभाम् । गृहं गन्तुं मनश्चक्रेदुर्बुद्धिरसदाश्रयः ॥
समुत्तस्थौ मुनिश्रेष्ठो गृहीत्वा सशरं धनुः । एकाकी मुक्तगात्रश्चधेनुंनत्वाहरिंस्मरन् ॥

आश्रमस्थान् जनान् सर्वान् समाश्वास्य च यत्नतः ।
आजगाम रणस्थानं निःशङ्को नृपतेः पुरः ॥८॥

चकार शरजालञ्च स मुनिर्मन्त्रपूर्वकम् । चच्छाद स्वाश्रमं तैश्च मानवं वर्मणा यथा ॥
अपरं शरजालञ्च चकार मुनिपुङ्गवः । तैरेव वारयामास सर्वसैन्यं यथाक्रमम् ॥ १० ॥
मुनिना शरजालेन सर्वसैन्यं समावृतम् । तानिसर्वाणिगुप्तानिपत्राणिपञ्जरे यथा ॥११॥
राजा दृष्ट्वा मुनिश्रेष्ठमवरुह्य रथात् पुरः । सार्द्धं नृपेन्द्रैर्भक्त्या च प्रणनाम पुटाञ्जलिः ॥
नत्वा रुरोह यानं स मुनेः प्राप्य शुभाशिषम् । आरुरोह नृपेन्द्रश्चस्वयानं हृष्टमानसः ॥
नृपैः सार्द्धं नृपश्रेष्ठश्चिक्षेप मुनिपुङ्गवम् । अस्त्रं शस्त्रं गदां शक्तिं जघानलीलयामुनिः ॥
मुनिश्चिक्षेप दिव्यास्त्रं चिच्छेद लीलया नृपः । शूलञ्चिक्षेपनृपतिर्जघान तत्तदामुनिः ॥

अपरं शरजालञ्च चिक्षेप मुनिपुङ्गवः ॥१५॥

शस्त्रौघैर्दुर्निवार्य्यैश्च खण्डखण्डं नृपा ययुः । निबद्धाशरजालेननचशक्ताःपलायितुम् ॥
जृम्भणास्त्रेण मुनिना ते चसर्वेविजृम्भिताः । हस्त्यश्वरथपादातसहितं सर्वसैन्यकम् ॥

राजानं निद्रितं दृष्ट्वा न जघान मुनीश्वरः ।
गृहीत्वा कपिलां हृष्टो रुदन्तीं शोकमूर्च्छिताम् ।
बोधयित्वा पुरः कृत्वा स्वगृहं गन्तुमुद्यतः ॥१८॥

एतस्मिन्नन्तरे राजा चेतनां प्राप्य नारद । निवारयामास मुनिं गृहीत्वा सशरं धनुः ॥
जगामकपिलात्रस्तास्वस्थानञ्चरणस्थलात् । मुनिश्चतस्थौनिःशङ्कोगृहीत्वासशरंधनुः ॥
ब्रह्मास्त्रञ्च नृपश्रेष्ठः प्रचिक्षेप मुनौ तदा । ब्रह्मास्त्रेण मुनीन्द्रस्य सद्यो निर्वाणतांगतम् ॥
दिव्यास्त्रेण मुनिश्रेष्ठो नृपस्य सशरं धनुः । रथञ्च सारथिञ्चैव चिच्छेदवर्म दुर्वहम् ॥
अथ राजा महाक्रुद्धो ददर्श स्वसमीपतः । दत्तेन दत्तां शक्तिं तामेकपुरुषघातिनीम् ॥
जग्राह नत्वा दत्तं तं प्रणम्य शक्तिमुल्वणाम् । घूर्णयामास तत्रैव शतसूर्य्यसमप्रभाम् ॥
यत्तेजः सर्वदेवानां तेजो नारायणस्य च । शम्भोश्च ब्रह्मणश्चैव मायायाश्चैव नारद ॥
तत्रैवावाहयामास स योगी मन्त्रपूर्वकम् । तेजसा द्योतयामास गगनञ्चदिशोदश ॥२६
दृष्ट्वा क्षिपन्तीं तां देवा हाहाकारंचकारह । आकाशस्थाश्चसमरंपश्यन्तोदुःखिता इदा ॥
चिक्षेपतांघूर्णयित्वाकार्त्तवीर्य्यार्जुनःस्वयम् । सद्यःपपातसाशक्तिर्ज्वलन्तीमुनिवक्षसि ॥
विदार्य्योरो मुनेः शक्ति र्जगाम हरिसन्निधिम् । दत्ताय हरिणा दत्तादत्तेनैवनृपायसा ॥

मूर्च्छां सम्प्राप्य स मुनिःप्राणां स्तत्याज तत्क्षणम् ।
तेजोऽम्बरे भ्रमित्वा च ब्रह्मलोकं जगाम ह ॥३०॥

युद्धे मुनिं मृतं दृष्ट्वा रुरोद कपिला मुहुः । हे तात तातेत्युच्चार्य्यगोलोकंसा जगाम ह ॥
सर्वं सा कथयामासगोलोकेकृष्णमीश्वरम् । रत्नसिंहासनस्थंतं गोपैर्गोपीभिरावृतम् ॥
कृष्णेन ब्रह्मणे दत्ता ब्रह्मणा भृगवे पुरा । सा प्रीत्या पुष्करे ब्रह्मन् भृगुणा जमदग्नये ॥
नत्वा च कामधेनूनां समूहं सा जगाम ह । तदश्रुविन्दुना मर्त्ये रत्नसङ्घो बभूव ह ॥

अथ राजा तं निहत्य बोधयित्वा स्वसैन्यकम् ।
प्रायश्चित्तं विनिर्वर्त्य जगाम स्वालयं मुदा ॥३५॥

प्राणनाथं मृतं श्रुत्वा जगाम रेणुकासती । मुनिवक्षसिसंस्थाप्यस्वपाणिंमूर्च्छामवाप सा ॥

तदा सा चेतनां प्राप्य न रुरोद पतिव्रता । एहि वत्स भृगोराम राम रामेत्युवाच ह ॥

आजगाम भृगुस्तूर्णं क्षणेन पुष्करादहो । ननाम मातरं भक्त्या मनोयायीचयोगवित् ॥

दृष्ट्वा रामो मृतं तातं शोकार्त्तां जननीं सतीम् ।

आकर्ण्य रणवृत्तान्तं प्रयान्तीं कपिलां शुचा ॥३६॥

विललाप भृशं तत्र हे तात जननीति च । चिताञ्चकार योगीन्द्रश्चन्दनैराज्यसंयुताम् ॥

रेणुका राम मादाय तूर्णं कृत्वा स्ववक्षसि । चुचुम्ब गण्डेशिरसि रुरोदोच्चैर्भृशंमुहुः ॥

राम राम महाबाहो क यामि त्वां विहाय च । वत्सवत्सेतिकृत्वैवंविललापभृशंमुहुः ॥

मत्प्राणाधिक हे वत्स मदीयं वचनं शृणु । पित्रोःशेषक्रियांकृत्वापुत्र युद्धे न यास्यसि

गृहे तिष्ठ सुखं वत्स तपस्यां कुरु शाश्वतीम् । समरं नैव सुखदं दारुणैः क्षत्रियैःसह ॥

मातुर्वचनमश्रुत्वा प्रतिज्ञां तां चकार ह । त्रिःसप्तकृत्वोनिर्भूपांकरिष्यामिध्रुवंमहीम् ॥

कार्त्तवीर्य्यं हनिष्यामि लीलया क्षत्रियाधमम् । पितॄंश्चतर्पयिष्यामिक्षत्रियक्षतजेन च ॥

इत्युदीर्य्य पुरो मातु विललाप मुहुर्मुहुः । हितं तथ्यं नीतिसारं बोधयामास मातरम् ॥

राम उवाच ।

पितुः शासन हन्तारं पितुर्वधविधायकम् । यो न हन्ति महामूढोरौरवंसव्रजेद्ध्रुवम् ॥

अग्निदो गरदश्चैव शस्त्रपाणिर्धनापहः । क्षेत्रदारापहारी च पितृबन्धुविहिंसकः ॥४६॥

सततं मन्दकारी च निन्दकः कटुवाचकः । एकादशैते पापिष्ठा वधार्हा वेदसम्मताः ॥

द्विजानां द्रविणादानं स्थानान्निर्वासनं सति । वपनं ताड़नञ्चैववधमाहुर्म्मनीषिणः ॥

एतस्मिन्नन्तरे तत्र आजगाम भृगुः स्वयम् । अतित्रस्तो मनस्वी च हृदयेनविदूयता ॥

दृष्ट्वा तं रेणुका रामो विनयञ्च चकार ह । सताबुवाच वेदोक्तं परलोकहिताय च ॥५२

भृगुरुवाच ।

मद्वंश जातो ज्ञानी त्वं कथं विलपसेसुत । जलबुद्बुदवत् सर्वं संसारे च चराचरम् ॥

सत्यसारं सत्यबीजं कृष्णं चिन्तय पुत्रक । यद्गतं तद्गतं वत्स गतं मा पुनरागतम् ॥५५

यद्भवेत्तद्भवत्येव भविता यद्भविष्यति । सत्यं नैषेकिकं कर्म निषेकः केन वार्य्यते ॥५६।

भूतं भव्यं भविष्यञ्च यत् कृष्णेन निरूपितम् । निरूपितंयत्तत्कर्मकेनवत्सनिर्वार्य्यते ॥

मायाबीजं मायिनाञ्च शरीरं पाञ्चभौतिकम् । सङ्केतपूर्वकं नाम प्रातःस्वप्नसमं सुत॥५८

क्षुधा निद्रा दया शान्ति क्षमा कान्त्यादय स्तथा ।
यान्ति प्राणा मनो ज्ञानं प्रयाते परमात्मनि ॥५६॥

बुद्धिश्च शक्तयः सर्वा राजेन्द्रमिव किङ्कराः । सर्वे तमनुगच्छन्तितंकृष्णंभज यत्नतः ॥
केवा केषाञ्च पितरः केवा केषां सुताः सुत । कर्मोर्मिप्रेरिताःसर्वेभवाब्धौदुस्तरे परम् ॥
ज्ञानिनो मा रुदन्त्येव मा रोदीः पुत्र साम्प्रतम् । रोदनाश्रुप्रपतनान्मृतानांनरकंध्रुवम् ॥
संकेताभिधमुच्चार्य्य यद् रुदन्तिचबान्धवाः । शतवर्षंरुदित्वातंनप्राप्नुवन्तिनिश्चितम् ॥
पार्थिवांशञ्च पृथिवी गृह्णाति च त्वचादिकम् ॥६३॥

तोयांशञ्च तथा तोयं शून्यांशं गगनं तथा । वाय्वंशञ्चतथा वायुस्तेजस्तेजांशकंतथा ॥
सर्वे विलीनाःसर्वेषुकोवाऽऽयास्यतिरोदनात् । नामश्रुतियशःकर्मकथामात्रावशेषिताः ॥
वेदोक्तञ्चैव यत् कर्म कुरु तत् पारलौकिकम् । सच बन्धुःसपुत्रश्चपरलोकहिताय यः॥
भृगोस्तद्वचनं श्रुत्वा शोकं तत्याज तत्क्षणम् । रेणुका च महासाध्वी तं वक्तुमुपचक्रमे

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे गणपतिखण्डे परशुरामंप्रति भृगोःप्रबोधवचनं नाम सप्तविंशतितमोऽध्यायः ।

अष्टाविंशतितमोऽध्यायः

भृगु रेणुका संवादः ।

रेणुकोवाच ।

ब्रह्मन्ननुगमिष्यामि प्राणनाथस्य साम्प्रतम् । अतोश्चतुर्थदिवसे मृतोऽय मद्य मानदः ॥
कर्त्तव्या का व्यवस्थात्र वद वेदविदांवर । त्वमागतो मे सहसापुण्येन कति जन्मनाम्

भृगुरुवाच ।

अहो पुण्यवतो भर्त्तुरनुगच्छ महासति । चतुर्थदिवसं शुद्धं स्वामिनः सर्वकर्मसु ॥३॥
शुद्धा भर्त्तुश्चतुर्थेऽह्नि न शुद्धा दैवपैत्रयोः । दैवे कर्मणि पैत्रे च पञ्चमेऽह्नि विशुद्ध्यति ।

व्यालग्राहीयथाव्यालंविलादुद्धरते वलात् । तद्वत्स्वामिनमादाय साध्वीस्वर्गंप्रयातिच
मोदतेस्वामिनातत्रयावदिन्द्राश्चतुर्दश। अत ऊर्द्ध्वं कर्मभोगं भुङ्क्ष्वसाध्विशुभाशुभम्
स पुत्रोभक्तिदातायःसाचस्त्री यानुगच्छति । स वन्धुर्दानदाता यःसशिष्योगुरुमर्चयेत्
सोऽभीष्टदेवो योरक्षेत्सराजापालयेत्प्रजाः । स च स्वामी प्रियाधर्मे मतिंदातुमिहेश्वरः
स गुरुर्धर्मदाता यो हरिभक्तिप्रदायकः । एते प्रशंस्या वेदेषु पुराणेषु च निश्चितम् ॥

रैणुकोवाच ।

गन्तुं स्वस्वामिना सार्द्धं का शक्ताभारते मुने । का वाप्यशक्ता नार्य्यश्चतन्मेब्रूहितपोधन

भृगुरुवाच ।

बालापत्याश्च गर्भिण्यो ह्यदृष्टऋतवस्तथा । रजस्वला च कुलटा गलितव्याधिसंयुता ॥
पतिसेवाविहीनाया अभक्ताकटुवाचकाः । एतागच्छन्तिचेद्दैवात् नकान्तंप्राप्नुवन्तिताः

संस्कृताग्निं पुरो दत्त्वा चितासु शायिनं पतिम् ।
कान्तास्तमनुगच्छन्ति कान्ताश्चेत् प्राप्नुवन्ति ताः ॥ १३ ॥

अनुगच्छन्ति याःकान्तंतमेव प्राप्नुवन्ति ताः । सार्द्धंकृत्वापुण्यभोगं प्रतिजन्मनिजन्मनि
इयन्ते कथितासाध्विव्यवस्था गृहिणांध्रुवम् । तीर्थे ज्ञानमृतानाञ्च वैष्णवानाञ्चश्रूयताम्
यासाध्वीवैष्णवंकान्तं यत्रयत्रानुगच्छति । प्रयातिस्वामिनासार्द्धं वैकुण्ठेहरिसन्निधिम्
विशेषो नास्तिभक्तानां तीर्थेवान्यत्र नारद । मरणे च समफलं मुक्तानां कृष्णभाविनाम्
तयोः पातोनास्ति तस्मान्महति प्रलये सति। नारायणं तंभजेत पुमांस्त्री कमलालयाम्
तीर्थे ज्ञानमृतश्चापि वैकुण्ठं याति निश्चितम् । सभार्य्यो मोदते तत्र यावद्वैब्रह्मणःशतम्
इत्युक्त्वा रैणुकां तत्र पर्शुराममुवाच ह । वेदोक्तवचनं सर्वं स भृगुः समयोचितम् ॥२०
एहि वत्स महाभाग त्यजशोकममङ्गलम् । उत्तानं कुरु तातञ्च दक्षिणाशिरसं भृगो ॥
वस्त्रं यज्ञोपवीतञ्च नूतनं परिधापय । अनश्रुनयनो भूत्वा सन्तिष्ठ दक्षिणामुखः ॥२२॥
अरणीसंभवाग्निञ्च गृहाण भक्तिपूर्वकम् । पृथिव्यां यानि तीर्थानि सर्वाणि स्मरणंकुरु
गयादीनि च तीर्थानियेच पुण्याः शिलोच्चयाः । कुरुक्षेत्रञ्च गङ्गाञ्च यमुनाञ्च सरिद्वराम्
कौशकीं चन्द्रभागाञ्च सर्वपापप्रणाशिनीम् । गण्डकीमवकाशीञ्च पनसां सरयूं तथा ॥

पुष्पभद्राञ्च भद्राञ्च नर्म्मदाञ्च सरस्वतीम्। गोदावरीञ्च कावेरीं स्वर्णरेखाञ्च पुष्करम्
रैवतञ्च वराहञ्च श्रीशैलं गन्धमादनम्। हिमालयञ्च कैलासं सुमेरुं रत्नपर्वतम् ॥२७॥
वाराणसीं प्रयागञ्च पुण्यं वृन्दावनं वनम्। हरिद्वारञ्च बदरीं स्मारं स्मारं पुनः पुनः॥
चन्दनागुरुकस्तूरीं सुगन्धिकुसुमं तथा। प्रदाय वासमाच्छाद्य स्थापयैनं चितोपरि॥
कर्णाक्षिनासिकास्येषुशलाकाञ्चहिरण्मयीम्। कृत्वानिर्म्मच्छनं तातदेहिविप्रायसादरम्
सतिलं ताम्रपात्रञ्च धेनुञ्च रजतन्तथा। सदक्षिणं सुवर्णञ्च दत्त्वाग्निं देह्यकातरम् ॥३१

ओं कृत्वा तु दुष्कृतं कर्म्म जानता वाप्यजानता।
मृत्युकालवशं प्राप्य नरं पञ्चत्वमागतम् ॥ ३२ ॥

धर्माधर्मसमायुक्तं लोभलोहसमावृतम्। दहेयं सर्वगात्राणि दिव्यान् लोकान्सगच्छतु
इमं मन्त्रं पठित्वा तु तातं कृत्वा प्रदक्षिणम्। मन्त्रेणानेन देह्यग्निं जनकाय हरिंस्मरन्।

ओं अस्मत्कुले त्वं जातोऽसि त्वदीयं जायतां पुनः।
असौ लोकाय स्वर्गाय स्वाहेति वद साम्प्रतम् ॥ ३५ ॥

अग्निं देहि शिरःस्थाने हे भृगो भ्रातृभिःसह। तच्चकार भृगुःसर्वं सगोत्रैराज्ञया भृगोः
अथ पुत्रं रेणुका सा कृत्वा तत्र स्ववक्षसि। उवाच किञ्चिद्वचनं परिणाममुखावहम् ॥
अविरोधौ भवाब्धौ च सर्वमङ्गलमङ्गलम्। विरोधो नाशबीजञ्च सर्वोपद्रवकारणम् ॥
अकर्त्तव्यो विरोधो वै दारुणैः क्षत्रियैः सह। प्रतिज्ञा चैव कर्त्तव्या मदीये वचनेश्रुते।
आलोच्य ब्रह्मणासार्द्धं भृगुणादिव्यमन्त्रिणा। यथोचितञ्चकर्त्तव्यं सद्भिरालोचनंशुभम्

इत्युक्त्वा तं परित्यज्य कान्तं कृत्वा स्ववक्षसि।
सा सुष्वाप चितायाञ्च पश्यन्ती तं हरिं स्मरन् ॥ ४१ ॥
वह्निं ददौ चितायाञ्च स रामो भ्रातृभिः सह।
भ्रातृभिः पितृशिष्यैश्च सार्द्धं स विललाप च ॥ ४२ ॥

रामरामेति रामेति वाक्यमुच्चार्य्य सा सती। पुरस्तात् पर्शुरामस्य भस्मीभूता बभूवसा।
भर्त्तुर्नाम समाकर्ण्य तत्राजग्मु र्हरेश्वराः। रथस्थाः श्यामवर्णाश्च सर्वे चारुचतुर्भुजाः॥
शङ्खचक्रगदापद्मधारिणो वनमालिनः। किरीटिनः कुण्डलिनः पीतकौशेयवाससः॥४५।

रथे कृत्वा रेणुकां तां गत्वाते ब्रह्मलोककम् । जमदग्निं समादाय प्रजग्मु र्हरिसन्निधिम्
तौ दम्पती च वैकुण्ठे तस्थतुर्हरिसन्निधौ । कृत्वा दास्यं हरेः शश्वत् सर्वमङ्गलमङ्गलम्
अथ रामो ब्राह्मणैश्च भृगुणा सह नारद । पित्रोः शेषक्रियां कृत्वा ब्राह्मणेभ्योधनंददौ॥
गोभूहिरण्यवासांसि दिव्यशय्यां मनोरमाम् । सुवर्णाधारसहितां जलमन्नञ्च चन्दनम् ॥
रत्नदीपं रौप्यशैलं सुवर्णासनमुत्तमम् । सुवर्णाधारसहितं ताम्बूलञ्च सुवासितम् ॥
छत्रञ्च पादुकाञ्चैव फलं माल्यं मनोहरम् । फल मूलं जलञ्चैव मिष्टान्नञ्च मनोहरम् ॥
ब्राह्मणेभ्यो धनं दत्त्वा ब्रह्मलोकं जगाम सः ॥ ५१ ॥
ददर्श ब्रह्मलोकं स शातकुम्भविनिर्मितम् । स्वर्णप्राकारसंयुक्तं स्वर्णस्तम्भैर्विभूषितम् ॥
ददर्श तत्र ब्रह्माणं ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा । रत्नसिंहासनस्थञ्च रत्नभूषणभूषितम् ॥ ५३ ॥
सिद्धेन्द्रैश्च मुनीन्द्रैश्च ऋषीन्द्रैः परिवेष्टितम् । विद्याधरीणां नृत्यञ्च पश्यन्तं सस्मितंमुदा
सङ्गीतं श्रुतवन्तञ्च गीयमानञ्च गायनैः । चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमेन विराजितम् ॥५५॥
तपसां फलदातारं दातारं सर्वसम्पदाम् । धातारं सर्वजगतां कर्त्तारमीश्वरं परम् ।५६।
परिपूर्णतमं ब्रह्म जपन्तं कृष्णमीश्वरम् । गुह्ययोगं प्रगदन्तं पृच्छन्तं शिष्यमण्डलम् ।५७
दृष्ट्वा तमव्ययं भक्त्या प्रणनाम भृगुः पुरः । उच्चैश्च रोदनं कृत्वा स्ववृत्तान्तमुवाच ह

भृगुरुवाच ।

ब्रह्मंस्त्वद्वंशजातोऽहं जमदग्निसुतो विधे ।
पितामह स्त्वमस्माकं त्वां विना कथयामि किम् ॥ ५६ ॥
मृगयामागतं भूपमुपोषन्तं पिता मम । पारणां कारयामास कपिलादत्तवस्तुना ॥
स राजा कपिलालोभात् कार्त्तवीर्य्यार्जुनः स्वयम् ।
घातयामास मत्तातमित्युक्त्वोच्चै रुरोद सः ॥ ६१ ॥
निरुध्यवाष्पंस पुनरुवाच करुणानिधिम् । मातामेऽनुगता साध्वीमां विहायजगद्गुरो
अधुनाहमनाथश्च त्वंमे माता पिता गुरुः । कर्त्ता पालयिता दाता पाहिमां शरणागतम्
आगतोऽहं तव सभां प्रमातुर्मातुराज्ञया । उपायेन जगन्नाथ मद्वैरिसूदनं कुरु ॥ ६४ ॥
सराजा सच धर्मिष्ठःस दयालुर्यशस्करः । स पूज्यःस स्थिरश्रीश्चयो दीनं परिपालयेत्

उच्चैर्नीचं समं दृष्ट्वा यः प्रजां नच पालयेत् । तद्देहाद्दुयातिरुष्टाश्रीः स भवेद् भ्रष्टलक्ष्मीकः
श्रुत्वाविप्रवटोर्वाक्यं करुणासागरो विधिः । दत्त्वाशुभाशिषंतस्मै वासयामासवक्षसि
श्रुत्वा भृगोः प्रतिज्ञाञ्च विस्मितश्चतुराननः । अतीव दुष्करांघोरां बहुजीविविघातिनीम्
निषेकेण भवेत् सर्वमिति कृत्वा तु मानसे । उवाच पर्शुरामं तं परिणामसुखावहम् ॥

ब्रह्मोवाच ।

प्रतिज्ञा दुर्ल्लभा वत्स बहुजीविविघातिनी । सृष्टिरेषा भगवतः सम्भवेदीश्वरेच्छया।
सृष्टिः सृष्टा मया पुत्र क्लेशेनैवेश्वराज्ञया । सृष्टिलुप्ता प्रतिज्ञाते दारुणा करुणा परा॥
त्रिःसप्तकृत्वोनिर्भूपां कर्त्तुमिच्छसि मेदनीम् । एकक्षत्रियदोषेण तज्जातिं हन्तुमिच्छसि
ब्रह्मक्षत्रियविट्शूद्रैर्नित्या सृष्टिश्चतुर्विधैः । आविर्भूता तिरोभूता हरेरेव पुनः पुनः ॥७३॥
अन्यथा त्वत्प्रतिज्ञा च भविता प्राकृतेन च । बह्वायासेन ते कार्य्यसिद्धिर्भवितुमर्हति ॥
शिवलोकं गच्छ वत्स शङ्करं शरणं व्रज । पृथिव्यां बहवो भूपाः सन्ति शङ्करकिङ्कराः

विनाज्ञया महेशस्य को वा तान् हन्तुमीश्वरः ।
बिभ्रतः कवचं दिव्यं शक्तेश्च शङ्करस्य च ॥ ७६ ॥

उपायं कुरु यत्नेन जयबीजं शुभावहम् । उपायतः समारब्धाः सर्वे सिद्धन्त्युपक्रमाः ॥
कृष्णस्य मन्त्रं कवचं ग्रहणं कुरु शङ्करात् । दुर्ल्लभं वैष्णवं तेजः शैवं शाक्तं विजेष्यति॥
गुरुस्तेजगतां नाथःशिवो जन्मनिजन्मनि । मन्त्रो मत्तोनयुक्तस्तेयोयुक्तःसभवेद्विधिः।
निषेकाल्लभ्यते मन्त्रः कान्तः कान्ता गुरुः सुरः । स्वयमेवोपतिष्ठन्ते ये येषां तेषुतेध्रुवम्

त्रैलोक्यविजयं नाम गृहीत्वा कवचं वरम् ।
त्रिःसप्तकृत्वो निर्भूपां करिष्यसि महीं भृगो ॥ ८१ ॥

दिव्यं पाशुपतं तुभ्यं दाता दास्यति शङ्करः । तेन देयेन मन्त्रेण क्षत्रसङ्घं विजेष्यसि ॥

इति ब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायण नारद संवादे गणपतिखण्डे
परशुरामंप्रति ब्रह्मवाक्यं नामाष्टाविंशतितमोऽध्यायः ।

उनत्रिंशत्तमोऽध्यायः

परशुरामस्य शिवसमीपे गमनम् तपस्योद्योगश्च ।

नारायण उवाच ।

ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा प्रणम्य च जगद्गुरुम् ।
स्फीतस्तस्माद्दूरं प्राप्य शिवलोकं जगाम सः ॥ १ ॥

लक्षयोजनमूद्र्ध्वञ्च ब्रह्मलोकाद्विलक्षणम् । अत्यनिर्वचनीयञ्च वाय्वाधारं मनोहरम् ॥
वैकुण्ठं दक्षिणे यस्य गौरीलोकञ्च वामतः । यदधो ध्रुवलोकश्च सर्वलोकात् परःस्मृतः
तेषामूर्द्ध्वञ्च गोलोकः पञ्चाशत्कोटियोजनम् । अतऊद्र्ध्वं न लोकश्च सर्वोपरिश्चसस्मृतः
मनोयायी स योगीन्द्रः शिवलोकं ददर्श ह । उपमानोपमेयाभ्यां रहितं महदद्भुतम् ॥५॥
योगीन्द्राणाञ्च प्रवरैः सिद्धविद्याविशारदैः । कोटिकल्पतपःपूतैः पुण्यवद्भिर्निषेवितम् ॥
वेष्टितं कल्पवृक्षाणां समूहैर्वाञ्छितप्रदैः । समूहैः कामधेनूनामसंख्यानां विराजितम् ॥
पारिजाततरूणाञ्च वनराजिविराजितम् । पुष्पोद्यानायुतैर्युक्तं सदाचातिसुशोभितम् ॥
मणीन्द्रसाररचितैः शोभितैर्मणिवेदिभिः । राजमार्गशतैर्दिव्यैरभ्यन्तरविभूषितम् ॥६॥
मणीन्द्रसारनिर्माणशतकोटिगृहैर्युतम् । नानाचित्रविचित्राढ्यैर्मणीन्द्रकलसोज्ज्वलैः ।
तन्मध्यदेशे रम्ये च ददर्श शङ्करालयम् । मणीन्द्रसारनिर्माणप्राकारं सुमनोहरम् ॥११॥
अत्यूद्र्ध्वमम्बरस्पर्शि क्षीरनीरनिभं परम् । षोड़शद्वारसंयुक्तं शोभितं शतमन्दिरैः ।१२
अमूल्यरत्नरचितै रत्नसोपानभूषितैः । रत्नस्तम्भकपाटैश्च हीरकेण परिष्कृतैः ॥ १३ ॥
माणिक्यजालमालाभिः सद्रत्नकलसोज्ज्वलैः । नानाचित्रविचित्रेण चित्रितैःसुमनोहरैः
आलयस्य पुरतस्तत्र सिंहद्वारं ददर्श सः । रत्नेन्द्रसारनिर्माणकपाटैश्च विराजितैः ॥१५॥
शोभितं वेदिकाभिश्च वाह्याभ्यन्तरतः सदा । रचिताभिः पद्मरागैर्महामरकतैर्गृहम् ॥१६
नानाप्रकारचित्रेण चित्रितं सुमनोहरम् । द्वारे नियुक्तौ ददर्श द्वारपालौ भयङ्करौ ॥१७॥
महाकरालदन्ताढ्यौ विकृतौ रक्तलोचनौ । दग्धशैलप्रतीकाशौ महाबलपराक्रमौ ॥१८॥

विभूतिभूषिताङ्गौ च व्याघ्रचर्माम्बरौवरौ। पिङ्गलाक्षौ विशालाक्षौजटिलौचत्रिलाचनौ॥
त्रिशूलपट्टिशधरौ ज्वलन्तौ ब्रह्मतेजसा। तौ दृष्ट्वा मनसा भीतस्त्रस्तः किञ्चिदुवाचह॥
विनयेन विनीतश्च दुर्विनीतौ महाबलौ। आत्मनः सर्ववृत्तान्तं कथयामासतत्पुरः॥२१
विप्रस्य वचनं श्रुत्वा कृपायुक्तौ बभूवतुः। गृहीत्वाज्ञाञ्चरद्वारा शङ्करस्यमहात्मनः॥२२
प्रवेष्टुमाज्ञां ददतुरीश्वरानुचरौ वरौ। भृगुस्तदाज्ञामादाय प्रविवेश हरिंस्मरन्॥२३॥

प्रत्येकं षोड़शद्वारान्ददर्श सुमनोहरान्।
द्वारपालान्नियुक्तांश्च नानाचित्रविचित्रतान्॥२४॥
दृष्ट्वा तान्महदाश्चर्य्यं ददर्श शूलिनः सभाम्।
नानासिद्धगणाकीर्णां महर्षिगणसेविताम्॥२५॥

पारिजातप्रसूनाक्तवायुना सुरभीकृताम्। ददर्श तत्र देवेशं शङ्करं चन्द्रशेखरम्॥२६॥
त्रिशूलपट्टिशधरं व्याघ्रचर्माम्बरं परम्। विभूतिभूषिताङ्गं तं नागयज्ञोपवीतिनम्।

रत्नसिंहासनस्थञ्च रत्नभूषणभूषितम्॥२७॥

महाशिवं शिवकरं शिवबीजं शिवाश्रयम्। आत्मारामं पूर्णकामंसूर्य्यकोटिसमप्रभम्॥

ईषद्धास्यं प्रसन्नास्यं भक्तानुग्रहकातरम्॥२६॥

शश्वज्ज्योतिःस्वरूपञ्च लोकानुग्रहविग्रहम्। धृतवन्तं जटाजालं दक्षकन्यास्थिभूषितम्॥
तपसां फलदातारं दातारं सर्वसम्पदाम्। शुद्धस्फटिकसङ्काशं पञ्चवक्त्रं त्रिलोचनम्॥

गुह्यं ब्रह्म प्रवोचन्तं शिष्येभ्यस्तत्त्वमुद्रया।
स्तूयमानञ्च योगीन्द्रैः सिद्धेन्द्रैः परिसेवितम्।
पार्षदप्रवरैः शश्वत् सेवितं श्वेतचामरैः॥३२॥

ध्यायमानं परं ब्रह्म परिपूर्णतमं परम्। स्वेच्छामयं गुणातीतं जरामृत्युहरं परम्॥३३
ज्योतीरूपञ्च सर्वाद्यं श्रीकृष्णं प्रकृतेः परम्। ध्यायन्तं परमानन्दं पुलकाञ्चितविग्रहम्।

सुस्वरं साश्रुनेत्रञ्च उद्गायन्तं गुणार्णवम्॥३४॥

भवेन्द्रैश्च रुद्रगणैः क्षेत्रपालैश्च वेष्टितम्। मूद्र्ध्ना ननाम तं दृष्ट्वापर्शुरामोऽतिसादरम्॥
तद्वामे कार्त्तिकेयञ्च दक्षिणे च गणेश्वरम्। नन्दीश्वरं महाकालं वीरभद्रञ्च तत्पुरः।

क्रोडे ददर्श कान्तां तां गौरीं शैलेन्द्रकन्यकाम् ॥३६॥
ननाम सर्वान्मूर्द्धर्ना च भक्त्या च परया मुदा ।
दृष्ट्वा हरं परं सारं तं स्तोतुमुपचक्रमे ॥३७॥
सगद्गदपदं दीनं साश्रुनेत्रोऽतिकातरः । पुटाञ्जलियुतः शान्तः शोकार्त्तःशोकनाशनम् ॥

परशुराम उवाच ।

ईश त्वां स्तोतुमिच्छामि सर्वथा स्तोतुमक्षमः ।
अक्षराक्षयवीजञ्च किं वा स्तौमि निरीहकम् ॥३६॥
न योजनांकर्त्तुमीशोदेवेशंस्तौमिमूढ़धीः । वेदानशक्तायंस्तोतुंकस्त्वांस्तोतुमिहेश्वरः ॥
बुद्धेर्वाङ्मनसोः पारं सारात्सारं परात्परम् ।
ज्ञानबुद्धेरसाध्यञ्च सिद्धं सिद्धैर्निषेवितम् ॥४१॥
यमाकाशमिवासीनमनन्तमादिमव्ययम् । विश्वतन्त्रमतन्त्रञ्च स्वतन्त्रं तन्त्रवीजकम् ॥
ध्यानासाध्यं दुराराध्यमतिसाध्यं कृपानिधिम् ।
त्राहि मां करुणासिन्धो दीनबन्धोऽतिदीनकम् ॥४३॥
अद्य मे सफलं जन्म जीवितञ्चसुजीवितम् । स्वप्नादृष्टञ्चभक्तानांपश्यामिचक्षुषाधुना ॥
शक्रादयः सुरगणाः कलया यस्य सम्भवाः । चराचराः कलांशेन तंनमामिमहेश्वरम् ॥
यं भास्करस्वरूपञ्च शशिरूपं हुताशनम् । जलरूपंवायुरूपं तं नमामि महेश्वरम् ॥४६॥
अनन्तविश्वसृष्टीनां संहर्त्तारं भयङ्करम् । क्षणेन लीलामात्रेण तं नमामि महेश्वरम् ॥
यः कालः कालकालश्च कालवीजञ्चकालजः । अजःप्रजश्चयःसर्वस्तंनमामि महेश्वरम् ॥
इत्येव मुक्त्वा स भृगुः पपात चरणाम्बुजे । आशिषञ्च ददौ तस्मै सुप्रसन्नोबभूव सः ॥
जामदग्न्यकृतं स्तोत्रं यः पठेद्भक्तिसंयुतः । सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवलोकं स गच्छति ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे गणपतिखण्डे
शिवस्तोत्रकथनं नामोनत्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

त्रिंशत्तमोऽध्यायः

शिवशिवा समीपे परशुरामस्य वरप्रार्थनम् ।

शङ्कर उवाच ।

क स्त्वं वटो कस्य पुत्रः क वासः स्तवनं कथम् ।
किं वा तेऽहं करिष्यामि वाञ्छितं वद साम्प्रतम् ॥१॥

पार्वत्युवाच ।

शोकाकुलं त्वां पश्यामि विमनस्कं सुविस्मितम् ।
वयसातिशिशुं शान्तं गुणेन गुणिनां वरम् ॥२॥

भृगुरुवाच ।

जमदग्निसुतोऽहञ्च भृगुवंशसमुद्भवः । माता मे रेणुका साध्वी पर्शुरामश्च नामतः ॥३॥
क्रीणीहि मां दयासिन्धो विद्यापत्रेण किङ्करम् । मदीशशरणापन्नंरक्षमां दीनवत्सल ॥४
मृगयामागतं भूपमुपोषन्तं पिता मम । चकारातिथ्यमानीय कपिलादत्तवस्तुना ॥ ५ ॥

राजा तं कपिलालोभाद् घातयामास मन्दधीः ।
कपिला तं मृतं दृष्ट्वा गोलोकञ्च जगाम सा ॥६॥
मातानुगमनं चक्रे अनाथोहञ्च साम्प्रतम् ।
त्वं मे पिता शिवा माता रक्ष मां पुत्रवत् प्रभो ॥७॥

मया कृता प्रतिज्ञा चशोकेनैवातिदुष्करा । त्रिःसप्तकृत्वोनिर्भूपांकरिष्यामि महीमिति ॥
कार्त्तवीर्य्यं हनिष्यामि समरे तातघातकम् । इत्येवं परिपूर्णं मे भगवान् कर्त्तुमर्हति ॥६
ब्राह्मणस्य वचः श्रुत्वा दृष्ट्वा दुर्गामुखं हरः । बभूवानम्रवक्त्रश्चसाच शुष्कौष्ठतालुका ॥

पार्वत्युवाच ।

तपस्विन्विप्रपुत्रस्त्वंनिर्भूपांकर्त्तुमिच्छसि । त्रिःसप्तकृत्वःकोपेनसाहसस्तेमहान्वटो ॥
हन्तुमिच्छसि निःशस्त्रःसहस्रार्जुनमीश्वरम् । भ्रूभङ्गलीलयायस्यरावणस्य पराजयः ॥

तस्मै प्रदत्तं दत्तेन श्रीहरेः कवचं वटो । शक्तिरव्यर्थरूपाच यया ते हिंसितः पिता ॥१३

हरेर्मन्त्रञ्च स्तवनं ध्यायते स दिवानिशम् । को वा शक्नोतितंहन्तुंनपश्यामीहभूतले ॥
अरे विप्र गृहं गच्छ किङ्करिष्यतिशङ्करः । अन्येभूपाश्चमद्भृत्याःकाभीस्तेपांमयिस्थिते ॥

भद्रकाल्युवाच ।

अरे विप्रवटो जाल्म निर्भूपान्कर्त्तुमिच्छसि । यथाहिवामनश्चन्द्रं करेणाहर्त्तुमिच्छति ॥
नानायज्ञकृतः पुण्यान् महाबलपराक्रमान् । दिगम्बरसहायेनमद्भृत्यान्हन्तुमिच्छसि ॥
स तयोर्वचनं श्रुत्वा रुरोदोच्चैश्च शोकतः । सहसा पुरतस्तेषां प्राणांस्त्यक्तुंसमुद्यतः ॥
विप्रस्य रोदनं श्रुत्वाशङ्करःकरुणानिधिः । पश्यन्दुर्गाञ्चकालीञ्चकृत्वातिविनयंविभुः ॥
तयोरनुमतिं प्राप्य सर्वेषां भक्तवत्सलः । जमदग्निसुतं सद्यः प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥ २० ॥

शङ्कर उवाच ।

अद्य प्रभृति हे वत्स त्वं मे पुत्रसमो महान् ।
दास्यामि मन्त्रं गुह्यं ते त्रिषु लोकेषु दुर्ल्लभम् ॥२१॥

एवं भूतञ्च कवचं दास्यामि परमाद्भुतम् । लीलया मत्प्रसादेन कार्त्तवीर्य्यं हनिष्यसि ॥
त्रिःसप्तकृत्वो निर्भूपां करिष्यसि महीं द्विज । जगत्ते यशसा पूर्णंभविष्यतिनसंशयः ॥
इत्युक्त्वा शङ्करस्तस्मै ददौ मन्त्रं सुदुर्लभम् । त्रैलोक्यविजयं नामकवचंपरमाद्भुतम् ॥
स्तवं पूजाविधानञ्च पुरश्चरणपूर्वकम् । मन्त्रसिद्धेरनुष्ठानं यथावन्नियमक्रमम् ॥ २५ ॥
सिद्धिस्थानंकालसंख्यं कथयामास नारद । वेदवेदाङ्गनिखिलं पाठयामास तत्क्षणम् ॥
नागपाशं पाशुपतं ब्रह्मास्त्रञ्च सुदुर्ल्लभम् । वह्निं नारायणास्त्रञ्च वायव्यं वारुणन्तथा ॥
गान्धर्वं गारुड़ञ्चैव जृम्भणास्त्रं तथैव च । गदां शक्तिं तथा पर्शुं शूलमव्यर्थमुत्तमम् ॥

नानाप्रकारशस्त्रास्त्रमन्त्रञ्च विधिपूर्वकम् ।
शस्त्रास्त्राणाञ्च संहारं विक्षेप मक्षयंधनुः ॥२६ ॥

आत्मरक्षणसन्धानं संग्रामविजयक्रमम् । मायायुद्धञ्च विविधं हुङ्कारं मन्त्रपूर्वकम् ॥३०
रक्षणञ्च स्वसैन्यानां परसैन्यविमर्दनम् । नानाप्रकारमतुलमुपायं रणसङ्कटे ।

संहारमोहिनीं विद्यां जन्ममृत्युहरां हरः ॥३१॥

शित्वाचिरंगुरोर्वासेसर्वविद्यांविवोध्यसः। तीर्थंकृत्वामन्त्रसिद्धिंतांश्चनत्वाजगामसः॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे गणपतिखण्डे परशुरामाय नानाविधास्त्रप्राप्तिर्नाम त्रिंशत्तमोऽध्यायः।

एकत्रिंशत्तमोऽध्यायः

तुष्टेन शिवेन स्वकवचादि दानम्।

नारद उवाच।

भगवन् श्रोतु मिच्छामि किं मन्त्रं भगवान् हरः।
कृपया पर्शुरामाय किं स्तोत्रं कवचं ददौ ॥१॥
को वास्य मन्त्रस्याराध्यः किं फलं कवचस्य च।
स्तवनस्य फलं किं वा तद्भवान् वक्तुमर्हति ॥२॥

नारायण उवाच।

मन्त्राराध्योहिभगवान्परिपूर्णतमःस्वयम्। गोलोकनाथःश्रीकृष्णोगोपगोपीश्वरः प्रभुः
त्रैलोक्यविजयं नाम कवचं परमाद्भुतम्। स्तवराजं महापुण्यं विभूतियोगसम्भवम् ॥४॥
मन्त्रकल्पतरुं नाम सर्वकामफलफलप्रदम्। प्रददौ पर्शुरामाय रत्नपर्वतसन्निधौ ॥५॥
स्वयंप्रभानदीतीरे पारिजातवनान्तरे। आश्रमे लोकदेवस्य माधवस्य च सन्निधौ ॥६॥

महादेव उवाच।

वत्सागच्छ महाभाग भृगुवंशसमुद्भवम्। पुत्राधिकोऽसि प्रेम्णा मे कवचग्रहणंकुरु॥
शृणु राम प्रवक्ष्यामि ब्रह्माण्डे परमाद्भुतम्। त्रैलोक्यविजयंनामश्रीकृष्णस्य जयावहम्॥
श्रीकृष्णेन पुरा दत्तं गोलोके राधिकाश्रमे। रासमण्डलमध्येचमह्यंवृन्दावने वने॥ ९॥
अति गुह्यतरं तत्त्वं सर्वमन्त्रौघविग्रहम्। पुण्यात् पुण्यतरञ्चैव परं स्नेहाद्ददामि ते॥

यद्धृत्वा पठनाद्देवी मूलप्रकृतिरीश्वरी। शुम्भं निशुम्भं महिषं रक्तबीजं जघानह ॥११॥

यद्धृत्वाऽहञ्च जगतां संहर्त्ता सर्वतत्त्ववित्। अवध्यं त्रिपुरं पूर्वं दुरन्तमवलीलया ॥
यद्धृत्वा पठनाद् ब्रह्मा ससृजे सृष्टिमुत्तमाम्।
यद्धृत्वा भगवान् शेषो विधत्ते विश्वमेव च ॥१३॥
यद्धृत्वाकूर्म्मराजश्चशेषंधत्तेऽवलीलया। यद्धृत्वाभगवान्वायुर्विश्वाधारोविभुःस्वयम्
यद्धृत्वा वरुणः सिद्धः कुवेरश्च धनेश्वरः। यद्धृत्वा पठनादिन्द्रोदेवानामधिपःस्वयम्
यद्धृत्वा भाति भुवने तेजोराशिः स्वयं रविः। यद्धृत्वा पठनाच्चन्द्रो महाबलपराक्रमः
अगस्त्यः सागरान् सप्त यद्धृत्वा पठनात् पपौ।
चकार तेजसा जीर्णं दैत्यं वातापिसंज्ञकम् ॥१७॥
यद्धृत्वा पठनाद्देवी सर्वाधारा वसुन्धरा। यद्धृत्वा पठनात् पूता गङ्गाभुवनपावनी ॥
यद्धृत्वा जगतां साक्षी धर्मो धर्मभृतां वरः। सर्वविद्याधिदेवीसा यच्चधृत्वा सरस्वती
यद्धृत्वा जगतां लक्ष्मीरन्नदात्री परात्परा। यद्धृत्वा पठनाद्वेदान् सावित्री प्रसुषाव च
वेदाश्च धर्म्मवक्तारो यद्धृत्वा पठनाद्भृगो। यद्धृत्वापठनाच्छुद्धस्तेजस्वी हव्यवाहनः
सनत्कुमारो भगवान् यद्धृत्वा ज्ञानिनां वरः ॥२१॥
दातव्यं कृष्णभक्ताय साधवे च महात्मने। शठाय परशिष्याय दत्त्वामृत्युमवाप्नुयात्
त्रैलोक्यविजयास्यास्य कवचस्य प्रजापतिः। ऋषिश्छन्दश्चगायत्रीदेवोरामेश्वरःस्वयम्
त्रैलोक्यविजयप्राप्तौ विनियोगः प्रकीर्त्तितः। परात्परञ्च कवचं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम्
प्रणवो मे शिरः पातुश्रीकृष्णायनमःसदा। सदापायात्कपालंकृष्णायस्वाहेतिपञ्चाक्षरः
कृष्णेति पातु नेत्रे च कृष्णस्वाहेति तारकम्।
हराय नम इत्येवं भ्रूलतां पातु मे सदा ॥२६॥
ओं गोविन्दाय स्वाहेति नासिकां पातु सन्ततम्।
गोपालाय नमो गण्डौ पातु मे सर्वतः सदा ॥२७॥
ओं नमो गोपाङ्गनेशाय कर्णौ पातु सदा मम।
ओं कृष्णाय नमः शश्वत् पातु मेऽधरयुग्मकम् ॥२८॥

ओं गोविन्दाय स्वाहेति दन्तावलिं मे सदावतु।

ओं कृष्णाय दन्तरन्ध्रं दन्तोद्र्ध्वं क्लीं सदावतु ॥२६॥

ओं श्रीकृष्णाय स्वाहेति जिह्विकां पातुमेसदा । रामेश्वराय स्वाहेतितालुकंपातुमेसदा
राधिकेशाय स्वाहेति कण्ठं पातु सदा मम। नमो गोपाङ्गनेशाय वक्षः पातु सदा मम
ओं गोपेशाय स्वाहेति स्कन्धं पातु सदा मम । नमःकिशोरवेशायस्वाहापृष्ठं सदावतु
उदरं पातु मे नित्यं मुकुन्दाय नमः सदा । ओं ह्रींक्लींकृष्णायस्वाहेतिकरौपादौसदामम
ओं विष्णवे नमो बाहुयुग्मं पातु सदा मम। ओं ह्रीं भगवते स्वाहा नखरंपातु मे सदा
ओं नमो नारायणायेति नखरन्ध्रं सदाऽवतु। ओं ह्रीं ह्रीं पद्मनाभाय नाभिंपातुसदामम
ओं सर्वेशाय स्वाहेति कङ्कालं पातु मे सदा। ओंगोपीरमणायस्वाहानितम्बंपातुमेसदा
ओं गोपीरमणनाथाय पादौ पातु सदा मम । ओं ह्रीं श्रींरसिकेशायस्वाहासर्वंसदावतु
ओं केशवाय स्वाहेति मम केशान् सदावतु । नमः कृष्णाय स्वाहेति ब्रह्मरन्ध्रंसदावतु
ओं माधवाय स्वाहेति लोमानि मे सदावतु । ओं ह्रीं श्रींरसिकेशायस्वाहासर्वंसदावतु
परिपूर्णतमः कृष्णः प्राच्यां मां सर्वदावतु । स्वयं गोलोकनाथोमामाग्नेय्यांदिशिरक्षतु
पूर्णब्रह्मस्वरूपश्च दक्षिणे मां सदावतु । नैर्ऋत्यां पातु मां कृष्णः पश्चिमे पातुमां हरिः

गोविन्दः पातु मां शश्वद्वायव्यां दिशि नित्यशः ।
उत्तरे मां सदा पातु रसिकानां शिरोमणिः ॥४२ ॥
ऐशान्यां मां सदा पातु वृन्दावनविहारकृत् ।
वृन्दावतीप्राणनाथः पातु मामूर्द्र्ध्वदेशतः ॥४३॥

सदैव माधवः पातु बलिहारी महाबलः। जले स्थले चान्तरीक्षे नृसिंहः पातु मां सदा॥
स्वप्ने जागरणे शश्वत् पातु मांमाधवःसदा। सर्वान्तरात्मानिर्लिप्तोरक्षमांसर्वतो विभुः
इति ते कथितं वत्स सर्वमन्त्रौघविग्रहम्। त्रैलोक्यविजयं नाम कवचं परमाद्भुतम्॥
मया श्रुतं कृष्णवक्त्रात् प्रवक्तव्यंनकस्यचित् । गुरुमभ्यच्चर्यविधिवत्कवचंधारयेत्तुयः

कण्ठे वा दक्षिणे बाहौ सोऽपि विष्णुर्न संशयः ।
स च भक्तो वसेद् यत्र लक्ष्मी वाणी वसेत्ततः ॥४८॥

यदि स्यात् सिद्धकवचो जीवन्मुक्तो भवेत्तु सः ।

निश्चितं कोटिवर्षाणां पूजायाः फलमाप्नुयात् ॥४९॥
राजसूयसहस्राणि वाजपेयशतानि च । अश्वमेधायुतान्येव नरमेधायुतानि च ॥ ५० ॥
महादानानि यान्येव प्रादक्षिण्यं भुवस्तथा ।
त्रैलोक्यविजयस्यास्य कलां नार्हन्ति षोड़शीम् ॥५१॥
व्रतोपवासनियमं स्वाध्यायाध्ययनं तपः । स्नानञ्च सर्वतीर्थेषु नास्यार्हन्ति कलामपि ॥
सिद्धित्वममरत्वञ्च दास्यत्वं श्रीहरेरपि । यदि स्यात्सिद्धकवचःसर्वंप्राप्नोति निश्चितम्
स भवेत् सिद्धकवचो दशलक्षं जपेत्तु यः । यो भवेत् सिद्धकवचःसर्वज्ञः सभवेद्ध्रुवम्
इदं कवचमज्ञात्वा भजेत् कृष्णंसुमन्दधीः । कोटिकल्पप्रजप्तोऽपिनमन्त्रः सिद्धिदायकः
गृहीत्वा कवचं वत्स महीं निःक्षत्रियांकुरु । त्रिःसप्तकृत्वोनिःशङ्कासदानन्दोऽवलीलया
राज्यं देयं शिरो देयं प्राणादेयाश्च पुत्रक । एवं भूतञ्च कवचं न देयं प्राणसङ्कटे ॥५७॥
इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे गणपतिखण्डे कवचप्रदानं
नामैकत्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

द्वात्रिंशत्तमोऽध्यायः

परशुरामाय स्तोत्रमन्त्रपूजाप्रदानम् ।

भृगुरुवाच ।

सम्प्राप्तं कवचं नाथ शश्वत्सर्वाङ्गरक्षणम् । सुखदं मोक्षदं सारं शत्रुसंहारकारणम् ॥१
अधुना भगवन्मन्त्रं स्तोत्रं पूजाविधिं प्रभो । देहिमह्यमनाथाय शरणागतपालक ॥२ ॥

महादेव उवाच ।

ओं श्रीं नमः श्रीकृष्णाय परिपूर्णतमाय च । मन्त्रेषु मन्त्रराजोऽयं महान् सप्तदशाक्षरः
सिद्धोऽयं पञ्चलक्षेण जपेन मुनिपुङ्गव । तद्दशांशञ्च हवनं तद्दशांशाभिषेचनम् ॥
तर्पणं तद्दशांशञ्च तद्दशांशञ्च मार्जनम् । सुवर्णानाञ्च शतकं पुरश्चरणदक्षिणा ॥४॥

मन्त्रसिद्धस्य पुंसश्च विश्वं करतलं मुने। शक्तः पातुं समुद्रांश्च विश्वं संहर्त्तुमीश्वरः॥
पाञ्चभौतिकदेहेन वैकुण्ठं गन्तुमीश्वरः॥ ५॥
तस्य संस्पर्शमात्रेण पादपङ्कजरेणुना। पूतानि सर्वतीर्थानि सद्यः पूता वसुन्धरा॥६॥
ध्यानञ्च सामवेदोक्तं शृणुमन्मुखतो मुने। सर्वेश्वरस्य कृष्णस्य भक्तिमुक्तिप्रदायि च॥
नवीनजलदश्यामं नीलेन्दीवरलोचनम्। शरत्पार्वणचन्द्रास्यमीषद्धास्यं मनोहरम्॥८॥
कोटिकन्दर्पलावण्यलीलाधाम मनोहरम्। रत्नसिंहासनस्थं तं रत्नभूषणभूषितम्॥ ९
चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं पीताम्बरधरंवरम्। वीक्ष्यमाणञ्च गोपीभिः सस्मिताभिश्चसन्ततम्
प्रफुल्लमालतीमालावनमालाविभूषितम्। दधतङ्कुन्दपुष्पाढ्यां चूड़ां चन्द्रकचर्चिताम्।
प्रभां क्षिपन्तीं नभसश्चन्द्रताराान्वितस्य च। रत्नभूषणसर्वाङ्गं राधावक्षःस्थलस्थितम्।
सिद्धेन्द्रैश्च मुनीन्द्रैश्च देवेन्द्रैः परिसेवितम्। ब्रह्मविष्णुमहेशैश्च श्रुतिभिश्च स्तुतं भजे।
ध्यानेनानेन तं ध्यात्वा चोपचाराणि षोड़श।
दत्त्वा भक्त्या च संपूज्य सर्वज्ञत्वं लभेत् पुमान्॥ १४॥
आद्यं पाद्यमासनञ्च वसनं भूषणं तथा। गामर्घ्यं मधुपर्कञ्च यज्ञसूत्रमनुत्तमम्॥ १५॥
धूपदीपौ च नैवेद्यं पुनराचमनीयकम्। नानाप्रकारपुष्पञ्च ताम्बूलञ्च सुवासितम्॥१६
चन्दनागुरुकस्तूरीदिव्यतल्पं मनोहरम्। भक्त्या भगवते देयं माल्यं पुष्पाञ्जलित्रयम्।
ततः षड़ङ्गं संपूज्य पश्चात् सम्पूजयेद्गणम्। श्रीदामानं सुदामानं वसुदामानमेव च॥१८
हरिभानुं चन्द्रभानुं सूर्य्यभानुं सुभानुकम्। पार्षदप्रवरान् सप्त पूजयेद्भक्तिभावतः॥१९
गोपीश्वरीं राधिकाञ्च मूलप्रकृतिमीश्वरीम्। कृष्णशक्तिं कृष्णपूज्यां पूजयेद्भक्तिपूर्वकम्
गोपगोपीगणं शान्तं मां ब्रह्माणञ्च पार्वतीम्। लक्ष्मीं सरस्वतीं पृथ्वींसर्वदेवंसविग्रहम्
देवषट्कं समभ्यचर्य पुनः पञ्चोपचारतः। पश्चादेवं क्रमेणैव श्रीकृष्णं पूजयेत् सुधीः॥
गणेशञ्च दिनेशञ्च वह्निं विष्णुं शिवं शिवाम्। समभ्यचर्य देवषट्कमिष्टदेवञ्च पूजयेत्।
गणेशं विघ्ननाशाय व्याधिनाशाय भास्करम्।
आत्मनः शुद्धये वह्निं श्रीविष्णुं मुक्तिहेतवे॥ २४॥
ज्ञानाय शङ्करं दुर्गां परमैश्वर्य्यहेतवे। सम्पूजने फलमिदं विपरीतमपूजने॥ २५॥

ततः कृत्वा परीहारमिष्टदेवञ्च भक्तितः । स्तोत्रञ्च सामवेदोक्तं पठेद्भक्त्या च तच्छृणु ॥

महादेव उवाच ।

परं ब्रह्म परं धाम परं ज्योतिः सनातनम् । निर्लिप्तं परमात्मानं नमामि सर्वकारणम् ॥
स्थूलात्स्थूलतमं देवं सूक्ष्मात्सूक्ष्मतमं परम् । सर्वदृश्यमदृश्यञ्च स्वेच्छाचारंनमाम्यहम्
साकारञ्च निराकारं सगुणं निर्गुणं प्रभुम् । सर्वाधारञ्च सर्वञ्च स्वेच्छारूपं नमाम्यहम्
अतीवकमनीयञ्च रूपं निरूपमं विभुम् । करालरूपमत्यन्तं विभ्रतं प्रणमाम्यहम् ॥३०॥
कर्म्मणः कर्म्मरूपं तं साक्षिणं सर्वकर्मणः । फलञ्च फलदातारं सर्वरूपं नमाम्यहम् ॥

स्रष्टा पाता च संहर्त्ता कलया मूर्त्तिभेदतः ।
नानामूर्त्तिः कलांशेन यः पुमांस्तं नमाम्यहम् ॥ ३२ ॥

स्वयं प्रकृतिरूपश्च मायया च स्वयं पुमान् । तयोः परं स्वयं शश्वत् तंनमामिपरात्परम्
स्त्रीपुंनपुंसकं रूपंयोविभर्त्ति स्वमायया । स्वयं माया स्वयंमायी योदेवस्तंनमाम्यहम्
तारणं सर्वदुःखानां सर्वकारणकारणम् । धारणं सर्वविश्वनां सर्ववीजं नमाम्यहम् ॥
तेजस्विनां रविर्योहि सर्वजातिषु ब्राह्मणः । नक्षत्राणाञ्च यश्चन्द्रस्तं नमामिजगत्प्रभुम्
रुद्राणां वैष्णवानाञ्च ज्ञानिनां योहिशङ्करः । नागानां योहि शेषश्च तंनमामिजगत्पतिम्
प्रजापतीनां यो ब्रह्मासिद्धानांकपिलः स्वयम् । सनत्कुमारो मुनिषुतंनमामिजगद्गुरुम्
देवानां योहि विष्णुश्च देवीनांप्रकृतिःस्वयम् । स्वायम्भुवो मनूनांयोमानवेषुचवैष्णवः

नारीणां शतरूपा च वहुरूपं नमाम्यहम् ॥ ३६ ॥

ऋतूनां योवसन्तश्च मासानांमार्गशीर्षकः । एकादशी तिथीनाञ्च नमामि सर्वरूपिणीम्
सागरः सरितां यश्च पर्वतानां हिमालयः । वसुन्धरा सहिष्णूनां तं सर्वं प्रणमाम्यहम्
पत्राणां तुलसीपत्रं दारुरूपेषु चन्दनम् । वृक्षाणां कल्पवृक्षो यस्तं नमामि जगत्पतिम्
पुष्पाणां पारिजातश्च शस्यानां धान्यमेव च । अमृतं भक्ष्यवस्तूनां नानारूपंनमाम्यहम्
ऐरावतो गजेन्द्राणां वैनतेयश्च पक्षिणाम् । कामधेनूश्च धेनूनां सर्वरूपं नमाम्यहम् ॥
तेजसानां सुवर्णश्च धान्यानां यमएव च । यः केशरी पशूनाञ्च वररूपं नमाम्यहम् ४५॥
यक्षाणाञ्च कुवेरो यो ग्रहाणाञ्च वृहस्पतिः । दिक्पालानां महेन्द्रश्च तं नमामिपरंवरम्

वेदसङ्घश्च शास्त्राणां पण्डितानां सरस्वती । अक्षराणामकारो यस्तं प्रधानं नमाम्यहम्

मन्त्राणां विष्णुमन्त्रश्च तीर्थानां जाह्नवी स्वयम् ।
इन्द्रियाणां मनो यो हि सर्वश्रेष्ठं नमाम्यहम् ॥ ४८ ॥

सुदर्शनश्च शस्त्राणां व्याधिनां वैष्णवो ज्वरः । तेजसां ब्रह्मतेजश्च वरेण्यश्च नमाम्यहम्
निषेकश्च बलवतां मनश्च शीघ्रगामिनाम् । कालः कलयतां योहि तं नमामि विलक्षणम्
ज्ञानदाता गुरूणाञ्च मातृरूपश्च बन्धुषु । मित्रेषु जन्मदाता यस्तं सारं प्रणमाम्यहम्॥
शिल्पीनां विश्वकर्मायःकामदेवश्च रूपिणाम् । पतिव्रता च पत्नीनां नमस्यन्तंनमाम्यहम्
प्रियेषु पुत्ररूपो यो नृपरूपो नरेषु च । शालग्रामश्च यन्त्राणां तं विशिष्टं नमाम्यहम्॥
धर्म्मः कल्याणबीजानां वेदानांसामवेदकः । धर्म्माणांसत्यरूपोयो विशिष्टंतंनमाम्यहम्
जले शैत्यस्वरूपो यो गन्धरूपश्च भूमिषु । शब्दरूपश्च गगने तं प्रणम्यं नमाम्यहम्॥
क्रतूनां राजसूयो यो गायत्री छन्दसाञ्च यः । गन्धर्वाणां चित्ररथस्तं गरिष्ठंनमाम्यहम्
क्षीरस्वरूपो गव्यानां पवित्राणाञ्च पावकः । पुण्यदानाञ्च यः स्तोत्रं तंनमामि शुभप्रदम्
तृणानां कुशरूपो यो व्याधिरूपश्च वैरिणाम् । गुणानांशान्तरूपो यश्चित्ररूपंनमाम्यहम्
तेजो रूपो ज्ञानरूपः सर्वरूपश्च यो महान् । सर्वानिर्वचनीयश्च तं नमामि स्वयं विभुम्

सर्वाधारेषु यो वायुर्यथात्मा नित्यरूपिणाम् ।
आकाशो व्यापकानां यो व्यापकं तं नमाम्यहम् ॥ ६० ॥

वेदानिर्वचनीयं यन्न स्तोतुं पण्डितः क्षमः । यदनिर्वचनीयञ्च को वा तत्स्तोतुमीश्वरः॥
वेदा नशक्तायंस्तोतुं जड़ीभूतासरस्वती । तञ्च वाङ्मनसोः पारंकोविद्वान्स्तोतुमीश्वरः
शुद्धतेजःस्वरूपञ्च भक्तानुग्रहविग्रहम् । अतीवकमनीयञ्च श्यामरूपं नमाम्यहम् ॥ ६३॥
द्विभुजं मुरलीवक्त्रं किशोरं सस्मितं मुदा । शश्वद्गोपाङ्गनाभिश्च वीक्ष्यमाणंनमाम्यहम्
राधया दत्तताम्बूलं भुक्तवन्तं मनोहरम् । रत्नसिंहासनस्थञ्च तमीशं प्रणमाम्यहम् ॥६५
रत्नभूषणभूषाढ्यं सेवितं श्वेतचामरैः । पार्षदप्रवरैर्गोपकुमारैस्तं नमाम्यहम् ॥ ६६ ॥
वृन्दावनान्तरे रम्ये रासोल्लाससमुत्सुकम् । रासमण्डलमध्यस्थं नमामि रसिकेश्वरम्।
शतशृङ्गे महाशैले गोलोके रत्नपर्वते । विरजापुलिने रम्ये प्रणमामि विहारिणम् ॥६८॥

परिपूर्णतमं शान्तं राधाकान्तं मनोहरम्। सत्यं ब्रह्मस्वरूपञ्च नित्यं कृष्णं नमाम्यहम्।
श्रीकृष्णस्य स्तोत्रमिदं त्रिसन्ध्यं यःपठेन्नरः। धर्मार्थकाममोक्षाणां सदाताभारतेभवेत्
हरिदास्यं हरौभक्तिंलभेत् स्तोत्रप्रसादतः। इह लोके जगत्पूज्योविष्णुतुल्योभवेद्ध्रुवम्
सर्वसिद्धेश्वरः शान्तोऽप्यन्ते यातिहरेःपदम्। तेजसा यशसा भाति यथासूर्य्योमहीतले
जीवन्मुक्तः कृष्णभक्तः सभवेन्नात्रसंशयः। अरोगीगुणवान्विद्वान् पुत्रवान्धनवान्सदा
षड़भिज्ञो दशबलो मनोयायी भवेद्ध्रुवम्। सर्वज्ञः सर्वदश्चैव स दाता सर्वसम्पदा॥

कल्पवृक्षसमः शश्वद्भवेत् कृष्णप्रसादतः॥ ७४॥
इत्येवं कथितं स्तोत्रं त्वं वत्स गच्छ पुष्करम्।
तत्र कृत्वा मन्त्रसिद्धिं पश्चात् प्राप्स्यसि वाञ्छितम्॥ ७५॥

त्रिःसप्तकृत्वो निर्भूपां कुरु पृथ्वींयथासुखम्। ममाशिषा मुनिश्रेष्ठ श्रीकृष्णस्यप्रसादतः

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे गणपतिखण्डे नारायणनारदसंवादे स्तवप्रदानं
नाम द्वात्रिंशत्तमोऽध्यायः।

त्रयस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः

परशुरामस्य तपश्चरणम्।

नारायण उवाच।

शिवं प्रणम्यसभृगुर्दुर्गां कालीं मुदान्वितः। गत्वा पुष्करतीर्थञ्च मन्त्रसिद्धिञ्चकारह
स बभूवनिराहारो मासं भक्तिसमन्वितः। ध्यायन्कृष्णपदाम्भोजं वायुरोधञ्चकारसः
ददर्श चक्षुरुन्मील्य गगनं तेजसावृतम्। दिशो दश द्योतयन्तं समाच्छन्नदिवाकरम्॥३
तेजोमण्डलमध्यस्थं रत्नयानं ददर्श ह। ददर्श तत्र पुरुषमतीव सुन्दरं वरम्॥ ४॥
ईषद्धास्यप्रसन्नास्यं भक्तानुग्रहकारकम्। मूद्ध्नार्ं प्रणम्य दण्डवद्वरं वव्रे तमीश्वरीम्॥
त्रिःसप्तकृत्वो निर्भूपां करिष्यामि महीमिति। पदारविन्दे सुदृढ़ां तां भक्तिमनपायिनीम्

दास्यं सुदुर्लभं शश्वत् त्वं पादाब्जे च देहि मे। कृष्णस्तस्मै वरंदत्त्वा तत्रैवान्तरधीयत
भृगुः प्रणम्य भवनं जगाम तत्परात्परम्। पस्पन्द दक्षिणाङ्गञ्च परं मङ्गलसूचकम् ॥८॥
वाञ्छाप्रतीतिजननं सुस्वप्नञ्च ददर्श ह। मनः प्रसन्नं स्फीतञ्च तद्बभूव दिवानिशम्
संभाष्य स्वजनं सर्वं गृहे तस्थौ मुदान्वितः ॥ ९ ॥
स्वशिष्यान् पितृशिष्यांश्च भ्रातृवर्गांश्च वान्धवान्।
आनीयानीय विविधान् मन्त्रांश्च स चकारह ॥ १० ॥
पौर्वापर्य्यं स्ववृत्तान्तं तानेवोक्त्वा शुभक्षणे। तैरेव सार्द्धं वलवान् बभूव गमनोन्मुखः ॥
ददर्श मङ्गलं रामः शुश्राव जयसूचकम्। वुबुधे मनसा सर्वं स्वजयं वैरिसंक्षयम् ॥१२॥
यात्राकाले च पुरतः शुश्राव सहसा मुनिः। हरिशब्दं सिंहशब्दं घण्टादुन्दुभिवादनम्॥
आकाशवाणीं सङ्गीतं जयस्ते भवितेति च। नवेङ्गितञ्च कल्याणं मेघशब्दं जयावहम्॥
चकार यात्रां भगवान् श्रुत्वैवं विविधं शुभम्। ददर्श पुरतो विप्रवन्दिदैवज्ञभिक्षुकान्।
ज्वलत्प्रदीपं विभ्रन्तीं पतिपुत्रवतीं सतीम्। पुरो ददर्श स्मेरास्यां नानाभूषणभूषिताम्॥
शवंशिवांपूर्णकुम्भं चासञ्च नकुलन्तथा। गच्छन्ददर्श रामश्च यात्रामङ्गलसूचकम् ॥१७॥
कृष्णसारं गजं सिंहं तुरगं गण्डकं द्विपम्। चमरीं राजहंसञ्च चक्रवाकं शुकं पिकम्॥
मयूरं खञ्जनं चैव शङ्खचिल्लं चकोरकम्। पारावतं बलाकाञ्च कारण्डं चातकं चटम्॥
सौदामिनीं शक्रचापं सूर्य्यं सूर्य्यशोभां शुभम्।
सद्योमांसं सजीवञ्च मत्स्यं शङ्खं सुवर्णकम्॥ २० ॥
माणिक्यं रजतं मुक्तां मणीन्द्रञ्च प्रवालकम्। दधि लाजं शुक्लधान्यं शुक्लपुष्पञ्च कुङ्कुमम्
पर्णं पताकां छत्रञ्च दर्पणं श्वेतचामरम्। धेनुं वत्सप्रयुक्ताञ्च रथस्थं भूमिपं तथा ॥२२
दुग्धमाज्यं तथा पूगममृतं पायसन्तथा। शालग्रामं पक्वफलं स्वस्तिकं शर्करां मधु॥
मार्जारञ्च वृषेन्द्रञ्च मेषं पर्वतमूषिकम्। मेघाच्छन्नस्य च रवेरुदयं चन्द्रमण्डलम् ।२४।
कस्तूरीव्यजनं तोयं हरिद्रां तीर्थमृत्तिकाम्।
सिद्धार्थं सर्षपं दूर्वां विप्रवालञ्च बालिकाम्॥ २५ ॥
मृगं वेश्याञ्च भ्रमरं कर्पूरं पीतवाससम्। गोमूत्रं गोपुरीषञ्च गोधूलिं गोपदाङ्कितम् ॥

गोष्ठं गवां वर्त्मरम्यां गोशालां गोगतिं शुभाम्।
भूषणं देवप्रतिमां ज्वलदग्निं महोत्सवम्॥ २७॥

ताम्रञ्च स्फटिकं वैद्यं सिन्दूरं माल्यचन्दनम्। गन्धञ्च हीरकं रत्नं ददर्श दक्षिणे शुभम्।
सुगन्धिवायोराघ्राणं प्राप विप्राशिषं शुभम्॥ २९॥

इत्येवं मङ्गलं ज्ञात्वा प्रययौ स मुदान्वितः। अस्तं गते दिनकरे नर्म्मदातीरसन्निधौ॥
तत्राक्षयवटं दिव्यं ददर्श सुमनोहरम्। अत्यूदुच्चं विस्तृतमति पुण्याश्रमपदं परम्॥३१॥
पौलस्त्यतपसः स्थानं सुगन्धिवायुनान्वितम्। कार्त्तवीर्य्यार्जुनाभ्यासे तत्रतस्थौगणैःसह
सुष्वाप पुष्पशय्यायां किङ्करैः परिसेवितः। निद्रां ययौ परिश्रान्तः परमानन्दसंयुतः

निशातीते च सभृगुश्चारु स्वप्नं ददर्श ह।
न चिन्तितं यन्मनसा वायुपित्तकफं विना॥ ३४॥

गजाश्वशैलप्रासादगोवृक्षफलितेषु च। आरुह्यमाणमात्मानं रुदन्तं कृमिभक्षितम्॥३५॥
आरुह्यमाणमात्मानंनौकायां चन्दनोक्षितम्। धृतवन्तं पुष्पमालां शोभितं पीतवाससा
विण्मूत्रोक्षितसर्वाङ्गं वशापूयसमन्वितम्। वीणां वरां वादयन्तमात्मानञ्च ददर्श ह॥
विस्तीर्णपद्मपत्रैश्च स्वं ददर्श सरित्तटे। दध्याज्यमधुसंयुक्तं भुक्तवन्तञ्च पायसम्॥
भुक्तवन्तञ्च ताम्बूलं लभन्तं ब्राह्मणाशिषम्। फलपुष्पप्रदीपञ्च पश्यन्तं स्वं ददर्श ह॥
परिपक्वफलं क्षीरमुष्णान्नं शर्करान्वितम्। स्वस्तिकं भुक्तवन्तं स्वं ददर्श च पुनः पुनः॥
जलौकसा वृश्चिकेन मीनेन भुजगेन च। भक्षितं भीतमात्मानं पलायन्तं ददर्श सः॥
ततो ददर्श चात्मानं मण्डलं चन्द्रसूर्य्ययोः। पतिपुत्रवतीं नारीं पश्यन्तं सस्मितंद्विजम्
सुवेशया कन्यकया सस्मितेन द्विजेन च। ददर्श श्लिष्टमात्मानं तुष्टेन परितुष्टया॥४३
फलितं पुष्पितं वृक्षं देवताप्रतिमां नृपम्। गजस्थञ्च रथस्थञ्च पश्यन्तं स्वं ददर्श ह
पीतवस्त्रपरिधानां रत्नालङ्कारभूषिताम्। विशन्तीं ब्राह्मणीं गेहं पश्यन्तं स्वं ददर्श ह॥
शङ्खञ्च स्फटिकं श्वेतमालां मुक्ताञ्च चन्दनम्। सुवर्णं रजतं रत्नं पश्यन्तं स्वं ददर्श ह।
गजं वृषञ्च सर्पञ्च श्वेतञ्च श्वेतचामरम्। नीलोत्पलं दर्पणञ्च भार्गवःस्वं ददर्श ह॥
रथस्थं नवरत्नस्थं मालतीमाल्यभूषितम्। रत्नसिंहासनस्थं स्वं भृगुः स्वप्ने ददर्श ह॥

पद्मश्रेणीं पूर्णकुम्भं दधि लाजं घृतं मधु। पर्णछत्रं छत्रिणञ्च भृगुः स्वप्ने ददर्श ह॥
वकपङ्क्ति हंसपङ्क्ति कन्यापङ्क्ति व्रतान्विताम्। पूजयन्तीं घटं शुभंभृगुःस्वप्नेददर्शह
मण्डपस्थं द्विजगणं पूजयन्तं हरं हरिम्। जयोऽस्त्वित्युक्तवन्तं तं भृगुः स्वप्नेददर्शह
सुधावृष्टिं पर्णवृष्टिं फलवृष्टिञ्च शाश्वतीम्। पुष्पचन्दनवृष्टिञ्च भृगुः स्वप्ने ददर्श ह
सद्यो मांसं जीवमत्स्यं मयूरं श्वेतखञ्जनम्। सरोवरञ्च तीर्थानि भृगुः स्वप्ने ददर्श ह
पारावतं शुकं चासं शङ्खचिल्लञ्च चातकम्। व्याघ्रं सिंहञ्च सुरभींभृगुः स्वप्ने ददर्शह
गोरोचनां हरिद्राञ्च शुक्लधान्याचलं वरम्। ज्वलदग्निं तथा दूर्वां भृगुः स्वप्नेददर्श ह
देवालयसमूहञ्च शिवलिङ्गञ्च पूजितम्। अर्चितां मृण्मयीं शैवां भृगुः स्वप्ने ददर्शह
यवगोधूमचूर्णानां पिष्टानि लड्डुकानि च। भृगुर्ददर्श स्वप्ने च बुभुजे च पुनः पुनः॥
दिव्यवस्त्रपरीधाना रत्नभूषणभूषिताः। अगम्यागमनं स्वप्ने चकार भृगुनन्दनः॥५८॥
ददर्श नर्त्तकीं वेश्यां रुधिरञ्च सुरां पपौ। रुधिरोक्षितसर्वाङ्गः स्वप्ने चभृगुनन्दनः॥
पक्षिणां पीतवर्णानां मानुषाणाञ्च नारद। मांसानि बुभुजे रामो हृष्टः स्वप्नेऽरुणोदये
अकस्मान्निगडैर्बद्धं क्षतं शस्त्रेण स्वं भृगुम्। दृष्ट्वा च बुबुधेप्रातः समुत्तस्थौहरिंस्मरन्
अतीव हृष्टः स्वप्नेन प्रातःकृत्यञ्चकार सः। मनसा बुबुधे सर्वं विजेष्यामि रिपुं ध्रुवम्
इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे गणपतिखण्डे नारायणनारदसंवादे परशुरामस्वप्नदर्शनं
नाम त्रयस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः।

चतुस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः

परशुरामेण राजसमीपे दूतप्रेषणम्।

नारायण उवाच।

स प्रातराह्निकं कृत्वा समालोच्य च तैः सह। दूतंप्रस्थापयामास कार्त्तवीर्य्याश्रमंभृगुः
स दूतः शीघ्रमागत्य वसन्तं राजसंसदि। वेष्टितं सचिवैः सार्द्धमुवाच नृपतीश्वरम्॥

रामदूत उवाच ।

नर्म्मदातीरसान्निध्ये न्यग्रोधाक्षयमूलके। स भृगुर्भ्रातृभिः सार्द्धं त्वं तत्र गन्तुमर्हसि ॥

युद्धं कुरु महाराज ज्ञातिभिर्ज्ञातिभिः सह। त्रिः सप्तकृत्वो निर्भूपां करिष्यतिमहीमिति

इत्युक्त्वा रामदूतश्च जगाम रामसन्निधिम्। राजा विधाय सन्नाहं समरं गन्तुमुद्यतः।

गच्छन्तं समरं दृष्ट्वा प्राणेशं सा मनोरमा। तमेव वारयामास वासयामास सन्निधौ ॥

राजा मनोरमां दृष्ट्वा प्रसन्नवदनेक्षणः। तामुवाच सभामध्ये वाक्यं मानसिकं मुने ॥

कार्त्तवीर्य्यार्जुन उवाच ।

मामेवाह्वयते कान्ते जमदग्निसुतो महान्। स तिष्ठन्नर्म्मदातीरे रणाय भ्रातृभिः सह ॥

सम्प्राप्य शङ्कराच्छस्त्रं मन्त्रञ्च कवचं हरेः।
त्रिःसप्तकृत्वो निर्भूपां कर्त्तुमिच्छति मेदिनीम् ॥ ६ ॥

आन्दोलयति मे प्राणान्मनःसंक्षुभितं मुहुः। शश्वत्स्फुरति वामाङ्गं दृष्टंस्वप्नंश्रृणुप्रिये

तैलाभ्यङ्गितमात्मानमदर्शं गर्दभोपरि। बिभ्रन्तमोड्रपुष्पस्य माल्यञ्च रक्तचन्दनम् ॥११

रक्तवस्त्रपरीधानं लौहालङ्कारभूषितम्। हसन्तञ्चैव क्रीडन्तं निर्वाणाङ्गारराशिना ॥

भस्माच्छन्नाञ्च पृथिवीं जवापुष्पान्वितां सति।
रहितं चन्द्रसूर्य्याभ्यां रक्तसंध्यान्वितं नभः ॥ १३ ॥

मुक्तकेशाञ्चनृत्यन्तीं विधवां छिन्ननासिकाम्। रक्तवस्त्रपरीधानामदर्शमट्टहासिनीम्

सशरामग्निरहितां चितां भस्मसमन्विताम्। भस्मवृष्टिमसृग्वृष्टिमङ्गारवृष्टिमीश्वरि ॥

पक्वतालफलाकीर्णां पृथिवीमस्थिसंयुताम्। अदर्शं कर्पराशिञ्च छिन्नकेशनखान्वितम्

पर्वतं लवणानाञ्च राशीभूतं कपर्दकम्। चूर्णानाञ्चैव तैलानामदर्शं कन्दरं निशि ॥१७॥

अदर्शं पुष्पितं वृक्षमशोककरवीरयोः। तालवृक्षञ्च फलितं तत्र एव पतत् फलम् ॥१८

स्वकात् पूर्णकलसः पपात च बभञ्ज च। इत्यदर्शञ्च गगनात् सम्पतच्चन्द्रमण्डलम् ॥

अदर्शमम्बरात् सूर्य्यमण्डलं सम्पतद्भुवि। उल्कापातं धूमकेतुं ग्रहणञ्चन्द्रसूर्य्ययोः ॥

विकृताकारपुरुषं विकटास्यं दिगम्बरम्। आगच्छन्तञ्चाग्रतस्तु अदर्शञ्च भयानकम् ॥

बाला द्वादशवर्षीया वस्त्रभूषणभूषिता। संक्रुद्धा याति मद्गेहादित्यदर्शमहं निशि ॥२२॥

विदायं देहि राजेन्द्र त्वद्गेहाद् यामि काननम् ।
वदसि त्वं मामिति च निश्यदर्शमहं शुचा ॥ २३ ॥

रुष्टो विप्रो मां शपते सन्यासीचतथा गुरुः । भित्तौ पुत्तलिकाश्चित्रानृत्यन्तीत्यदर्शं परम्
चञ्चलानाञ्च गृध्राणां काकानां निकरैः सदा । पोड़ितं महिषाणाञ्चस्वमदर्शमहंनिशि
तैलं पीड़ितयन्त्रञ्च तैलकारेण भ्रामितम् । दिगम्बरान् पाशहस्तानदर्शमहमीश्वरि ॥

नृत्यन्ति गायनाः सर्वे गानं गायन्ति मे गृहे ।
विवाहं परमानन्दमित्यदर्शमहं निशि ॥ २७ ॥

रमणं कुर्वतो लोकान् केशाकेशीति कुर्वतः । अदर्शं समरं रात्रौ काकानाञ्च शुनामिति

मोटकानि च पिण्डानि श्याशानं शवसंयुतम् ।
रक्तवस्त्रं शुक्लवस्त्रमदर्शं निशि कामिनि ॥ २९ ॥

कृष्णाम्बराकृष्णवर्णा नग्नाच मुक्तकेशिनी । विधवा श्लिष्यतिच मामदर्शंनिशिशोभने॥
नापितो मुण्डितो मुण्डं श्मश्रुश्रेणीं मम प्रिये । वक्षःस्थलञ्च नखरमित्यदर्शमहं निशि ॥
पादुकाचर्मरज्जूनामदर्शं राशिमुल्वणम् । चक्रं भ्रमन्तं भूमौ च कुलालस्येति सुन्दरि ॥
वात्यया घूर्णमानञ्च शुष्कवृक्षं तमुत्थितम् । घूर्णमानं कवन्धञ्चैवादर्शं निशि सुव्रते ॥
ग्रथितां मुण्डमालाञ्च चूर्णमानाञ्च वात्यया । अतीव घोरदशनामित्यदर्शमहं वरे ॥
भूतप्रेता मुक्तकेशा वमन्तश्च हुताशनम् । मां भीषयन्ति सततमित्यदर्शमहं निशि ॥३५॥
दग्धजीवं दग्धवृक्षं व्याधिग्रस्तं नरं परम् । अङ्गहीनञ्च वृषलमित्यदर्शमहं निशि ॥ ३६ ।
गेहपर्वतवृक्षाणां सहसा पतनं परम् । मुहुर्मुहुर्वज्रपातमित्यदर्शमहं निशि ॥ ३७ ॥
कुक्कुराणां शृगालानां रोदनञ्च मुहुर्मुहुः । गृहे गृहे च नियतमित्यदर्शमहं निशि ॥ ३८ ।

अधोमस्तमूद्र्ध्वपादं मुक्तकेशं दिगम्बरम् ।
भूमौ भ्रमन्तं गच्छन्तमित्यदर्शमहं नरम् ॥ ३९ ॥

विकृताकारशब्दञ्च ग्रामाधिदेवरोदनम् । प्रातः श्रुत्वैवाववोधञ्च कमुपायं वदाधुना ॥
नृपतेर्वचनं श्रुत्वा हृदयेन विदूयता । [illegible] सा नपश्वरम् ॥ ४१ ॥

मनोरमा उवाच।

हे नाथ रमणश्रेष्ठ श्रेष्ठ सर्वमहीभृताम्। प्राणातिरेक प्राणेश शृणु वाक्यं शुभावहम्॥
नारायणांशोभगवान् जामदग्न्योमहाबली। सृष्टिसंहर्त्तुरीशस्य शिष्योऽयं जगतःप्रभोः
त्रिःसप्तकृत्वो निर्भूपां करिष्यामि महीमिति। प्रतिज्ञायस्य रामस्य तेनःसार्द्धंरणंत्यज
पापिनं रावणं जित्वा शूरं स्वमपि मन्यसे। सत्वया न जितो नाथस्वपापेन पराजितः
यो न रक्षति धर्म्मञ्च तस्यको रक्षिता भुवि। सनश्यति स्वयं मूढ़ो जीवन्नपि मृतोहिसः

शुभाशुभस्य सततं साक्षी धर्म्मस्य मर्म्मणः।
आत्मारामः स्थितः स्वान्तः मूढ़स्त्वं नहि पश्यति॥ ४७॥

पुत्रदारादिकं यद्वयत् सर्वैश्वर्य्यं सुधर्म्मिणाम्। जलबुद्‌बुदवत् सर्वमनित्यं नश्वरं नृप
संसारं स्वप्नसदृशं मत्वा सन्तोऽत्र भारते। ध्यायन्तेसततं धर्म्मं तपः कुर्वन्ति भक्तितः

दत्तेन दत्तं यज्ज्ञानं तत् सर्वं विस्मृतं त्वया।
अस्ति चेत् विप्रहिंसायां कुबुद्धे त्वन्मनः कथम्॥ ५०॥

सुखार्थे मृगयां गत्वा तत्रोपोष्य द्विजाश्रमे। भुक्त्वामिष्टमपूर्वञ्च हतो विप्रो निरर्थकम्
गुरुविप्रसुराणाञ्च यः करोति पराभवम्। अभीष्टदेवस्तं रुष्टो विपत्तिस्तस्य सन्निधौ॥
स्मरणं कुरु राजेन्द्र दत्तात्रेयपदाम्बुजम्। गुरौ भक्तिश्च सर्वेषां सर्वविघ्नविनाशिनी॥
गुरुदेवं समभ्यर्च्य तं भृगुं शरणं व्रज। विप्रे देवे प्रसन्ने च क्षत्रियाणां न हि क्षतिः॥
विप्रस्य किङ्करोभूपो वैश्यो भूपस्य भूमिप। सर्वेषांकिङ्कराः शूद्रा ब्राह्मणस्य विशेषतः
अयशः शरणं शश्वत् क्षत्रियस्य च क्षत्रिये। महद् यशस्तच्छरणं गुरुदेवद्विजेषु च॥
ब्राह्मणं भज राजेन्द्र गरीयांसं सुरादपि। ब्राह्मणे परितुष्टे च सन्तुष्टाः सर्वदेवताः॥५७
इत्येवमुक्त्वा राजेन्द्रं क्रोड़े कृत्वा महासती। मुहुर्मुहुर्मुखं दृष्ट्वा विललाप रुरोद च॥
क्षणं तिष्ठ महाराज पुनरेवमुवाच सा। स्नानं कुरु महाराज भोजयिष्यामि वाञ्छितम्
चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमावीरमुत्तमम्। अनुलेपं करिष्यामि सर्वाङ्गे तव सुन्दरे॥६०॥
क्षणं सिंहासने तिष्ठ क्षणं वक्षसि मे प्रभो। सभायां रचितेतल्पे पश्यामि जन्मशोधनम्
शतपुत्राधिकः प्रेम्णा सतीनाञ्च पतिर्नृप। निरूपितो भगवता वेदेषु हरिणा स्वयम्॥

मनोरमावचः वचः श्रुत्वा राजा परमपण्डितः। बोधयामासतां राज्ञीं ददौप्रत्युत्तरंपुनः

कार्त्तवीर्य्यार्जुन उवाच।

शृणु कान्ते प्रवक्ष्यामि श्रुतं सर्वं त्वयेरितम्। शोकार्त्तानाञ्च वचनं नप्रशंस्यं सभासुच
सुखं दुःखं भयं शोकं कलहः प्रीतिरेव च। कर्मभोगार्हकालेन सर्वं भवति सुन्दरि॥
कालो ददाति राजत्वं कालो मृत्युं पुनर्भवम्। कालः सृजतिसंसारं कालः संहरतेपुनः
करोति पालनं कालः कालरूपी जनार्दनः। कालस्यकालः श्रीकृष्णो विधातुर्विधिरेवच
संहर्त्तुर्वापि संहर्त्ता पातुः पाता निषेककृत्। स निषेको निषेकेण ददाति तपसां फलम्
कः केन हन्यते जन्तुर्निषेकेण विना सति॥ ६८॥
स्रष्टासृजति सृष्टिञ्चसंहर्त्ता संहरेत् पुनः। पाता पाति च भूतानि यस्याज्ञां परिपालयेत्
यस्याज्ञया वाति वातः सन्ततं भयविह्वलः। शश्वत् सञ्चरते मृत्युः सूर्यस्तपति सन्ततम्
वर्षतीन्द्रो दहत्यग्निः कालो भ्रमति भीतवत्।
तिष्ठन्ति स्थावराः सर्वे चरन्ति सन्ततं चराः॥ ७१॥
वृक्षाश्च पुष्पिताःकाले फलिताःपल्लवान्विताः। शुष्यन्ति कालतःकाले वर्द्धन्तेचतदाज्ञया
आविर्भूता तिरोभूतासृष्टिरेवतदाज्ञया। तस्याज्ञयाभवेत् सर्वंनकिञ्चित् स्वेच्छयानृणाम्
नारायणांशो भगवान् पर्शुरामो महाबलः। त्रिःसप्त कृत्वो निर्भूपां करिष्यतिमहीमिति
प्रतिज्ञा विफला तस्य न भवेत्तु कदाचन। निश्चितं तस्य बध्योऽहमिति जानामिसुव्रते
ज्ञात्वासर्वं भविष्यञ्च शरणं यामितत्कथम्। प्रतिष्ठितानां चाकीर्त्तिर्मरणादतिरिच्यते
इत्येवमुक्त्वा राजेन्द्रः समरं गन्तुमुद्यतः। वाद्यञ्च वादयामास कारयामास मङ्गलम्॥
शतकोटिर्नृपाणाञ्च राजेन्द्राणां त्रिलक्षकम्। अक्षौहिणीनां शतकं महाबलपराक्रमम्॥
अश्वानाञ्च गजानाञ्च पदातीनां तथैव च। असंख्यकं रथानाञ्च गृहीत्वा गन्तुमुद्यतः॥
बभूव स्तम्भिता साध्वी दृष्ट्वा तं गमनोन्मुखम्। धृतवन्तञ्च सन्नाहमक्षयं सशरं धनुः॥
क्रीड़ागारे क्षणं तस्थौ कृत्वा कान्तं स्ववक्षसि।
पश्यन्ती तन्मुखाम्भोजं चुचुम्ब च मुहुर्मुहुः॥ ८१॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे गणपतिखण्डे कार्तवीर्ययुद्धप्रस्थानं नाम चतुस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः।

पञ्चत्रिंशत्तमोऽध्यायः

राज्ञो युद्धयात्रा ।

नारायण उवाच ।

मनोरमा प्राणनाथंक्षणंकृत्वास्ववक्षसि । भविष्यं मनसाचक्रे यद्यत्स्वामिमुखाच्छ्रुतम्
पुत्रांश्च पुरतः कृत्वा बान्धवांश्च स्वकिङ्करान् । सासस्मार हरिपदं मेने सत्यं भवे मुने
योगेन भित्वा षट्चक्रं वायुं संस्थाप्य मूर्द्धनि । ब्रह्मरन्ध्रस्थकमले सहस्रदलसंयुते ॥३।
स्वान्तमाकृष्य विषयाज्जलबुद्बुदसन्निभात् । संस्थाप्यवद्ध्वाज्ञानेनलोलंब्रह्मणि निष्कले
द्विविधं कर्म संन्यस्य निर्मूलमपुनर्भवम् । तत्र प्राणांश्चतत्याज न च प्राणाधिकं प्रियम्
स राजा तां मृतांदृष्ट्वा विललाप रुरोद च । सन्नाहंसंपरित्यज्य कृत्वा वक्षस्युवाचताम्

राजोवाच ।

मनोरमे समुत्तिष्ठ न यास्यामि रणाजिरे । पश्य मां चेतनां प्राप्य विलपन्तं मुहुर्मुहुः ॥
मनोरमे समुत्तिष्ठ मया सार्द्धं गृहं व्रज । न करिष्यामि समरं भृगुणा सह भाविनि ॥
मनोरमे समुत्तिष्ठ श्रीशैलं व्रजसुन्दरि । तत्रक्रीड़ांकरिष्यामि त्वयासार्द्धं यथापुरा ॥
मनोरमे समुत्तिष्ठ व्रज गोदावरीं प्रिये । जलक्रीड़ां करिष्यामि त्वया सार्द्धं यथा पुरा
मनोरमे समुत्तिष्ठ नन्दनं व्रज सुन्दरि । पुष्पभद्रानदीतीरे विहरिष्यामि निर्जने ॥ ११ ॥
मनोरमे समुत्तिष्ठ मलयं व्रज सुन्दरि । त्वया सार्द्धं रमिष्यामि तत्र चन्दनकानने ॥१२।
शीतेन गन्धयुक्तेन वायुना सुरभीकृते । भ्रमरध्वनिसंयुक्ते पुंस्कोकिलरुतश्रिते ॥ १३ ॥
चन्दनागुरुकस्तूरीं ममाङ्गे लेपनं कुरु । चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं पश्य मां सस्मिते सति ॥
सुधातुल्यं सुमधुरं वचनं रचय प्रिये । कुटिलभ्रूविकारञ्च कथं न कुरुषेऽधुना ॥ १५ ॥
नृपस्य रोदनं श्रुत्वा वाग् बभूवाशरीरिणी । स्थिरो भव महाराज करोषि रोदनंकथम्
जलबुद्बुदवत् सर्वं संसारं पश्य शोभनम् त्वं महाज्ञानिनां श्रेष्ठो दत्तात्रेयप्रसादतः ।
कमलांशा च सा साध्वी जगाम कमलालयम् ।

त्वमेव गच्छ वैकुण्ठं रणं कृत्वा रणाजिरे ॥ १८ ॥
इत्येवं वचनं श्रुत्वा जहौ शोकं नराधिपः। ततश्चन्दनकाष्ठेन चितां दिव्याञ्चकार ह॥
संस्काराग्निंकारयित्वा पुत्रद्वारादद्दाह ताम्। नानाविधानि रत्नानि ब्राह्मणेभ्योददौमुदा
नानाविधानि दानानि वस्त्राणि विविधानि च।
मनोरमायाः पुण्येन ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा ॥ २१ ॥
भुज्यतां भुज्यतां शश्वद्दीयतां दीयतामिति। शब्दो बभूव सर्वत्र कार्त्तवीर्य्याश्रमे मुने॥
कोषेषु स्वाधिकारेषु स्थितं यद् यद्धनं तदा। मनोरमायाः पुण्येनब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा
राजा जगाम समरं हृदयेन विदूयता। सार्द्धं सैन्यसमूहैश्च वाद्यभाण्डैरसंख्यकैः ॥२४॥
ददर्शामङ्गलं राजा पुरो वर्त्मनि वर्त्मनि। ययौ तथापि समरं नाजगाम गृहं पुनः।२५।
मुक्तकेशीं छिन्ननाशां रुदतीञ्च दिगम्बराम्। कृष्णवस्त्रपरिधानामपरा विधवामपि।२६।
मुखदुष्टां योनिदुष्टां व्याधियुक्ताञ्च कुट्टनीम्। पतिपुत्रविहीनाञ्च डाकिनीं पुंश्चलीं तथा
कुम्भकारं तैलकारं व्याधं सर्पोपजीविनम्। कुचैलमतिरूक्षाङ्गं नग्नं काषायवासिनम्।
वसाविक्रयिणञ्चैव कन्याविक्रयिणन्तथा। चितादग्धं शवं भस्म निर्वाणाङ्गारमेव च॥
सर्पक्षतनरं सर्पं गोधाञ्च शशकं विषम्। श्राद्धपाकञ्च पिण्डञ्च मोटकञ्च तिलांस्तथा
देवलं वृषवाहञ्च शूद्रश्राद्धान्नभोजिनम्। शूद्रान्नपाचकं शूद्रयाजकं ग्रामयाजकम् ॥३१।
कुशपुत्तलिकाञ्चैव शवदाहनकारिणम्। शून्यकुम्भं भग्नकुम्भं तैलं लवणमस्थि च॥
कार्पासं कच्छपं चूर्णं कुक्कुरं शब्दकारिणम्। दक्षिणे च श्रृगालञ्च कुर्वन्तं भैरवं रवम्
कपर्दकञ्च क्षौरञ्च छिन्नकेशं नखं मलम्। कलहञ्च विलापञ्च विलापकारिणं जनम्॥
अमङ्गलं रुदन्तञ्च रुदन्तं शोककारिणम्॥ ३५॥
मिथ्यासाक्ष्यप्रदातारं चौरञ्च नरघातिनम्। पुंश्चलीपतिपुत्रौ च पुंश्चल्योदनभोजिनम्।
देवतागुरुविप्राणां वस्तुवित्तापहारिणम्। दत्तापहारिणं दस्युं हिंसकं सूचकं खलम्॥
पितृमातृविरक्तञ्च द्विजाश्वत्थविघातिनम्। सत्यघ्नञ्च कृतघ्नञ्च स्थाप्यापहारिणं जनम्
विप्रद्रोहं मित्रद्रोहं क्षतं विश्वासघातकम्॥ ३६॥

गुरुदेवद्विजानाञ्च निन्दकं स्वाङ्गघातकम्। जीवानां घातकञ्चैव स्वाङ्गहीनञ्च निर्दयम्

व्रतोपवासहीनञ्च दीक्षाहीनं नपुंसकम्। गलितव्याधिगात्रञ्च काणं वधिरमेव च ॥४१।
पुक्कसं छिन्नलिङ्गञ्च सुरामत्तं सुरां तथा। क्षिप्तं वमन्तं रुधिरं महिषं गर्दभं तथा।
मूत्रं पुरीषं श्लेष्माणं रूक्षिणं नृकपालकम् ॥ ४२ ॥
झञ्झावातं रक्तवृष्टिं वाद्यञ्च वृक्षपातनम्। वृकञ्च शूकरं गृध्रं श्येनं कङ्कञ्च भल्लुकम्।
पाशञ्च शुष्ककाष्ठञ्च वायसं गन्धकं तथा ॥ ४४ ॥
अग्रदानिब्राह्मणञ्च तन्त्रमन्त्रोपजीविनम्। वैद्यञ्च रक्तपुष्पञ्च औषधं तुषमेव च ॥ ४५ ॥
कुवार्त्तां मृतवार्त्ताञ्च विप्रशापञ्च दारुणम्। दुर्गन्धिवातं दुःशब्दं राजा सम्प्रापवर्त्मनि
मनश्च कुत्सितं प्राणाः क्षुभिताश्च निरन्तरम्। वामाङ्गस्पन्दनं देहजाड्यं राज्ञो बभूव ह
तथापि राजा निःशङ्को ददर्श युद्धमङ्गलम्। सर्वसैन्यसमायुक्तः प्रविवेश रणाजिरम् ॥
अवरुह्य रथात्तूर्णं दृष्ट्वा च पुरतो भृगुम्। ननाम दण्डवद् भूमौ राजेन्द्रैः सह भक्तितः ॥
आशिषं युयुजे रामः स्वर्गं याहीतिवाञ्छितम्। तेषांसह्यंतद्बभूवदुर्लङ्घ्या ब्राह्मणाशिषः
भृगुं प्रणम्य राजेन्द्रो राजेन्द्रैः सह तत्क्षणात्। आरुरोह रथं तूर्णं नानासज्जसमन्वितम्
नानाप्रकारवाद्यञ्च दुन्दुभि मुरजादिकम्। वादयामास सहसा ब्राह्मणेभ्यो ददौ धनम्
उवाच रामो राजेन्द्रं राजेन्द्राणाञ्च संसदि। हितं सत्यं नीतिसारं वाक्यं वेदविदांवरः

परशुराम उवाच।

भये राजेन्द्र धर्म्मिष्ठ चन्द्रवंशसमुद्भव। विष्णोरंशस्य शिष्यस्त्वं दत्तात्रेयस्य धीमतः
स्वयं विद्वांश्च वेदांश्च श्रुत्वा वेदविदो मुखात्। कथं दुर्बुद्धिरधुनासज्जनानां विडम्बना
पूर्वमहनस्त्वं लोभान्निरीहं ब्राह्मणं कथम्। ब्राह्मणी शोकसन्तप्ता भर्त्रासार्द्धं गता सती
किं भविष्यति ते भूप परत्रैवानयोर्वधात्। सर्वं मिथ्यैव संसारं पद्मपत्रे यथा जलम् ॥
सत्कीर्त्तिश्चाथ दुष्कीर्त्तिः कथा मात्रावशेषिता।
विडम्बना वा किमतो दुष्कीर्तेश्च सतामहो ॥ ५८ ॥
क्व गता कपिला त्वं क्व क्व विवादो मुनिःकुतः। यत्कृतंविदुषाराज्ञा न कृतंबालिकेनतत्
त्वामुपोषन्तमीशं हि दृष्ट्वा तातो हि धार्मिकः। पारणां कारयामासदत्तंतस्यफलं त्वया
अधीतं विधिवद्दत्तं ब्राह्मणेभ्यो दिनेदिने। जगत् ते यशसा पूर्णमयशो वार्द्धके कथम्

दाता वरिष्ठो धर्मिष्ठो यशस्वान् पुण्यवान् सुधीः ।
कार्त्तवीर्य्यार्जुनसमो न भूतो न भविष्यति ॥ ६२ ॥
पुरातना वदन्तीति वन्दिनो धरणीतले । यो विख्यातः पुराणेषु तस्य दुष्कीर्त्तिरीदृशो
दुर्वाक्यं दुःसहं राजन् तीक्ष्णास्त्रादपि जीविनाम् ।
सङ्कटेऽपि सतां वक्त्राद् द्विरुक्तिर्न विनिर्गता ॥ ६४ ॥
न ददामि द्विरुक्तिन्ते प्रकृतं कथयाम्यहम् । उत्तरं देहि राजेन्द्र मह्यं राजेन्द्रसंसदि ॥
सूर्य्यचन्द्रमनूनाञ्च वंशाः सन्त्यत्र संसदि । सत्यं वद सभायाञ्च शृण्वन्तु पितरः सुराः
शृण्वन्तु सर्वे राजेन्द्राः सदसद्वक्तुमीश्वराः । पश्यन्तो हि समंसन्तःपाक्षिकंनवदन्तिच
इत्युक्त्वा पर्शुरामश्च विरराम रणस्थले । राजा बृहस्पतिसमः प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥ ६८ ॥

कार्त्तवीर्य्यार्जुन उवाच ।

अये राम हरेरंशो हरिभक्तो जितेन्द्रियः । श्रुतो धर्मो मुखात्येषां त्वञ्च तेषां गुरोर्गुरुः
कर्म्मणा ब्राह्मणो जातः करोति ब्रह्मभावनम् ।
स्वधर्म्मनिरतः शुद्धस्तस्माद् ब्राह्मण उच्यते ॥७०॥
अन्तर्वहिश्च मननात् करोति कर्म्म जन्मनि ।
मौनी शश्वद्वदेत् काले यो हि स मुनिरुच्यते ॥७१॥
स्वर्णे लोष्ट्रे गृहेऽरण्ये पङ्के सुस्निग्धचन्दने । समता भावना यस्य सयोगीपरिकीर्त्तितः
सर्वजीवेषु यो विष्णुं भावयेत् समताधिया ।
हरौ करोति भक्तिञ्च हरिभक्तः स च स्मृतः ॥ ७३ ॥
तपोधनं ब्राह्मणानां तपः कल्पतरुर्यथा । तपस्या कामधेनुश्च सन्ततं तपसि स्पृहा ॥
ऐश्वर्य्ये क्षत्रियाणाञ्च वाणिज्ये च तथा विशाम् ।
क्षत्रियाणाञ्च तपसि स्पृहाऽतीवाऽप्रशंसिता ॥७५॥
ब्राह्मणानां विवादे च स्पृहाऽतीवविनिन्दिता ॥७६॥
रागी राजसिकं कार्य्यं कुरुते कर्म्मरागतः । रागात्यश्च राजसिकस्तेन राजा प्रकीर्त्तितः

रागतः कामधेनुश्च मया भिक्षा कृतामुने । को दोष एव मे जातः क्षत्रियस्यानुरागिणः

कुतः कस्य मुनेरस्ति कामधेनुस्त्वयाविना । स्पृहारणे वा भोगेवायुष्माकञ्चव्यतिक्रमः

त्रिंशदक्षौहिणीं सेनां राजेन्द्राणां त्रिकोटिकाम् ।

निहत्यायान्तमेकं मां न हन्तुं सहनं मुने ॥८०॥

आत्मानं हन्तु मायान्तमपि वेदाङ्गपारगम् । न दोषो हनने तस्य न तेन ब्रह्महा भवेत्

प्रायश्चित्तं हिंसकानां न वेदेषु निरूपितम् । वधः समुचितस्तेषामित्याह कमलोद्भवः ॥

पित्रा ते निहता भूपा महावलपराक्रमाः । इदानीं राजपुत्राश्च शिशवोऽत्र समागताः ॥

त्रिःसप्त कृत्वो निर्भूपां कृत्स्नां कर्त्तुं महीमिति ।

त्वया कृता प्रतिज्ञा या तस्याश्च पालनं कुरु ॥८४॥

क्षत्रियाणां रणो धर्मो रणे मृत्युर्न गर्हितः । रणे स्पृहा ब्राह्मणानां लोकेवेदे विड़म्बना

तपोधनानां विप्राणां वाग्वलानां युगे युगे । शान्तिः स्वस्त्ययनंकर्म्मविप्रधर्मोनसङ्गरः

क्षत्रियाणां वलं युद्धं व्यापारश्चवलंविशाम् । भिक्षावलंभिक्षुकाणांशुद्राणां विप्रसेवनम्

हरौ भक्तिर्हरेर्दास्यं वैष्णवानां वलं हरिः । हिंसा वलं खलानाञ्च तपस्याच तपस्विनाम्

वलं वेशश्च वेश्यानां योषितां यौवनं वलम् । वलं प्रतापो भूपानां वालानां रोदनंवलम्

सतां सत्यं वलं मिथ्या वलमेवा सतां सदा । अनुगानामनुगमः स्वल्पस्वानाञ्चसञ्चयः

विद्या वलं पण्डितानां गाम्भीर्य्यं साहसीवलम् ॥६१॥

धनं वलञ्च धनिनां शुचीनाञ्च विशेषतः । वलं विवेकः शान्तानां गुणिनां वलमेकता

गुणो वलञ्च गुणिनां चौराणां चौर्य्यमेवच । प्रियवाक्यञ्चकापट्यमधर्म्मःपुंश्चलीवलम्

हिंसा च हिंस्रजन्तूनां सतीनां पतिसेवनम् । वरशापौ सुराणाञ्च शिष्याणांगुरुसेवनम्

वलं धर्मो गृहस्थानां भृत्यानां राजसेवनम् । वलं स्तवःस्तावकानांब्रह्मचब्रह्मचारिणाम्

यतीनाञ्च सदाचारो न्यासः सन्यासिनां वलम् ।

पापं वलं पातकीनामशक्तानां हरिर्वलम् ॥६६॥

पुण्यं वलं पुण्यवतां प्रजानां नृपतिर्वलम् । फलं वलञ्च वृक्षाणां जलौकानां जलं वलम्

जलं वलञ्च शस्यानां मत्स्यानाञ्च जलं वलम् ।

शान्तिर्वलञ्च भूपानां विप्राणाञ्च विशेषतः ॥६८॥

विप्रः शान्तो रणोद्योगी नैव दृष्टो नच श्रुतः। स्थिते नारायणेदेवे बभूवान्य विपर्य्ययः
इत्येवमुक्त्वा राजेन्द्रो विरराम रणाजिरे। तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सर्वस्तूष्णीं बभूवह॥
रामस्य भ्रातरः सर्वे सुतीक्ष्णशस्त्रपाणयः। आरेभिरे रणं कर्त्तुं महावीरास्तदाज्ञया॥
रणोन्मुखांश्च तान्दृष्ट्वा मत्स्यराजो महाबलः। समारेभे रणं कर्त्तुं मङ्गलोमङ्गलालयः॥
शरजालेन राजेन्द्रो वारयामास तानपि। चिच्छिदुः शरजालञ्च जमदग्निसुतास्तदा॥
राजा चिक्षेप दिव्यास्त्रं शतसूर्य्यप्रभं मुने। माहेश्वरेण मुनयश्चिच्छिदुश्चावलीलया॥
दिव्यास्त्रेणैव मुनयश्चिच्छिदुः सशरं धनुः। रथञ्च सारथिञ्चैव राज्ञः सन्नाहमेवच॥
न्यस्तशस्त्रं नृपं दृष्ट्वा मुनयो हर्षविह्वलाः। दधार शूलिनः शूलं मत्स्यराजजिघांसया॥
शूलनिःक्षेपसमये वागवभूवाशरीरिणी। शूलं त्यजत विप्रेन्द्राः शिवस्याव्यर्थमेव च॥
शिवस्य कवचं दिव्यं दत्तं दुर्वाससा पुरा। मत्स्यराजगलेऽस्तीति सर्वावयवरक्षणम्॥
प्राणानाञ्च प्रदातारं कवचं याचतं नृपम्।
तदा निक्षिप्य शूलञ्च जघान नृपतीश्वरम्॥१०६॥
तच्छूलं तं नृपं प्राप्य शतखण्डं गतं मुने। श्रुत्वैवाकाशवाणीञ्च शृङ्गी सन्न्यासवेशकृत
ययाचे कवचं भूपं जमदग्निसुतो महान्। राजा ददौ च कवचं ब्रह्माण्डे विजयं परम्॥
गृहीत्वा कवचं तच्च शूलेनैव जघान ह। पपात मत्स्यराजश्च शतचन्द्रसमाननः।
महाबलिष्ठो गुणवान् चन्द्रवंशसमुद्भवः॥११२॥

नारद उवाच।

शिवस्य कवचं ब्रूहि मत्स्यराजेन यद्धृतम्। नारायण महाभाग श्रोतुं कौतूहलं मम

नारायण उवाच।

कवचं शृणु विप्रेन्द्र शङ्करस्य महात्मनः। ब्रह्माण्डविजयं नाम सर्वावयवरक्षणम्॥
पुरा दुर्वाससा दत्तं मत्स्यराजाय धीमते। दत्वा षड़क्षरं मन्त्रं सर्वपापप्रणाशनम्॥
स्थिते च कवचे देहे नास्ति मृत्युश्च जीविनाम्।
अस्त्रे शस्त्रे जले वह्नौ सिद्धिश्चेन्नास्ति संशयः॥११६॥

यद्धृत्वा पठनाद्बाण शिवत्वं प्राप लीलया। बभूव शिवतुल्यश्च यद्धृत्वानन्दिकेश्वरः

वीरश्रेष्ठो वीरभद्रो बभूव धारणाद् यतः। त्रैलोक्यविजयो राजा हिरण्यकशिपुः स्वयम्
हिरण्याक्षश्च विजयी बभूव धारणाद्यतः। यद्धृत्वापठनात्सिद्धोदुर्वासा विश्वपूजितः
जैगीषव्यो महायोगी पठनात् धारणाद् यतः। यद्धृत्वावामदेवश्चदेवलश्च्यवनः स्वयम्
अगस्त्यश्च पुलस्त्यश्च बभूव विश्वपूजितः ॥१२०॥
ओं नमः शिवायेति च मस्तकं मे सदावतु। ओं नमः शिवायेति चस्वाहाभालंसदावतु
ओं ह्रीं श्रीं क्लीं शिवायेति स्वाहा नेत्रे सदावतु।
ओं ह्रीं क्लीं ह्रूं शिवायेति नमो मे पातु नासिकाम् ॥१२२॥
ओं नमः शिवाय शान्ताय स्वाहा कण्ठं सदावतु।
ओं ह्रीं श्रीं ह्रूं संहारकर्त्रे स्वाहा कर्णौ सदावतु ॥१२३॥
ओं ह्रीं श्रीं पञ्चवक्त्राय स्वाहा दन्तं सदावतु।
ओं ह्रीं महेशाय स्वाहा चाधरं पातु मे सदा ॥१२४॥
ओं ह्रीं श्रीं क्लीं त्रिनेत्राय स्वाहा केशान् सदावतु।
ओं ह्रीं ऐं महादेवाय स्वाहा वक्षः सदावतु ॥१२५॥
ओं ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं रुद्राय स्वाहा नाभिं सदावतु।
ओं ह्रीं ऐं श्रीं ईश्वराय स्वाहा पृष्ठं सदावतु ॥१२६॥
ओं ह्रीं क्लीं मृत्युञ्जयाय स्वाहा भ्रूश्च सदावतु।
ओं ह्रीं श्रीं क्लीं ईशानाय स्वाहा पार्श्वं सदावतु ॥१२७॥
ओं ह्रीं ईश्वराय स्वाहा उदरं पातु मे सदा।
ओं श्रीं क्लीं मृत्युञ्जयाय स्वाहा बाहू सदावतु ॥१२८॥
ओं ह्रीं श्रीं क्लीं ईश्वराय स्वाहाःपातु करौ मम। ओंमहेश्वरायरुद्रायनितम्बंपातुमेसदा
ओं ह्रीं श्रीं भूतनाथाय स्वाहा पादौसदावतु। ओंसर्वेश्वरायसर्वायस्वाहासर्वंसदावतु
प्राच्यां मां पातु भूतेश आग्नेय्यां पातु शङ्करः। दक्षिणेपातुमांरुद्रोनैर्ऋत्यांस्थाणुरेवच
पश्चिमे खण्डपरशुर्वायव्यां चन्द्रशेखरः। उत्तरे गिरिशः पातु ऐशान्यामीश्वरः स्वयम् ॥
ऊर्ध्वे मृडः सदा पातु अधोमृत्युञ्जयःस्वयम्। जलेस्थलेचान्तरीक्षेस्वप्नेजागरणेसदा

पिनाकी पातु मां प्रीत्या भक्तश्च भक्तवत्सलः ॥१३४॥

इति ते कथितं वत्स कवचं परमाद्भुतम् । दशलक्षजपेनैव सिद्धिर्भवतिनिश्चितम् ॥१३५

यदि स्यात्सिद्धकवचोरुद्रतुल्योभवेद्ध्रुवम् । तवस्नेहान्मयाख्यातंप्रवक्तव्यंनकस्यचित्

कवचं काण्वशाखोक्तमतिगोप्यं सुदुर्लभम् । अश्वमेधसहस्राणि राजसूयशतानि च ॥

सर्वाणि कवचस्यास्य कलां नार्हन्ति षोड़शीम् ।

कवचस्य प्रसादेन जीवन्मुक्तो भवेन्नरः ॥१३८॥

सर्वज्ञः सर्वसिद्धीशो मनोयायी भवेद् ध्रुवम् । इदं कवचमज्ञात्वा भजेद्यःशङ्करं प्रभुम्

शतलक्षप्रजप्तोऽपि न मन्त्रः सिद्धिदायकः ॥१३९॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे गणपतिखण्डे शङ्करकवच-प्रकथनं नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ।

षट्त्रिंशत्तमोऽध्यायः

सुचन्द्रेण नृपतिना सह रामस्य युद्धम् ।

नारायण उवाच ।

मत्स्यराजे निपतिते राजा युद्धविशारदः । राजेन्द्रान् प्रेषयामास युद्धशास्त्रविशारदान्

बृहद्बलं सोमदत्तं विदर्भं मिथिलेश्वरम् । निषधाधिपतिञ्चैव मगधाधिपतिन्तथा ॥

आययुः समरे योद्धुं पर्शुरामं महारथाः । त्रिभिरक्षौहिणीभिश्च सेनाभिः सह नारद ॥

रामस्य भ्रातरः सर्वे वीरास्तीक्ष्णास्त्रपाणयः । वारयामासुरस्त्रैश्च तानेव रणमूर्द्धनि ॥

ते वीराः शरजालेन दिव्यास्त्रेण प्रयत्नतः । वारयामास सुरैकैकं भ्रातृवर्गान् भृगोस्तथा

आययौ समरे शीघ्रं दृष्ट्वा तांश्च पराजितान् ।

पिनाकहस्तः सभृगुर्ज्वलदग्निशिखोपमः ॥६॥

चिक्षेप नागपाशञ्च पर्शुरामे महाबलः । चिच्छेद तं गारुडेन सोमदत्तो महाबलः ॥७॥

भृगुः शङ्करशूलेन सोमदत्तं जघान ह । बृहद्बलञ्च गदया विदर्भं मुष्टिभिस्तथा ॥८॥
मैथिलं मुद्गरेणैव शक्त्या च नैषधं तथा । मागधं चरणोद्घातैरस्त्रजालेन सैनिकान् ॥९॥

निहत्य निखिलान् भूपान् संहाराग्निसमो रणे ।
दुद्राव कार्त्तवीर्य्यञ्च पर्शुरामो महाबलः ॥१०॥

दृष्ट्वा तं योद्धुमायान्तं राजानश्च महारथाः । आययुः समरं कर्त्तुं कार्त्तवीर्य्यंनिवार्य्य च
कान्यकुब्जाश्च शतशः सौराष्ट्राः शतशस्तथा । राढीया शतशश्चैव वारेन्द्राः शतशस्तथा

सौम्या वाङ्गाश्च शतशो महाराष्ट्रास्तथा दश ।
कतिधा गुर्जजातीयाः कालिङ्गाः शतशस्तथा ॥१३॥
कृत्वा तु शरजालञ्च भृगुश्छिच्छेद तत्क्षणम् ।
तं छित्त्वाभ्युत्थितो रामो नीहारमिव भास्करः ॥१४॥

त्रिरात्रं युयुधे रामस्तैःसार्द्धं समराजिरे । द्वादशाक्षौहिणीं सेनां ततश्चिच्छेद पर्शुना ॥
रम्भास्तम्भसमूहञ्च यथा खड्गेन लीलया । छित्त्वा सेनां भूपवर्गं जघान शिवशूलतः ॥
सर्वांस्तान्निहतान् दृष्ट्वा सूर्य्यवंशसमुद्भवः । आजगाम सुचन्द्रश्च लक्षराजेन्द्रसंयुतः ॥
द्वादशाक्षौहिणीभिश्च सेनाभिः सह संयुगे । कोपेन युयुधे रामं सिंहं सिंहो यथारणे ॥
भृगुः शङ्करशूलेन नृपलक्षं निहत्य च । द्वादशाक्षौहिणीं सेनां जघान पर्शुना बली ॥१९
निहत्य सर्वाः सेनाश्च सुचन्द्रं युयुधे बली । नागास्त्रं प्रेरयामास निहंतुंतंभृगुःस्वयम्
नागपाशञ्च चिच्छेद गारुड़ेन नृपेश्वरः । जहास च भृगुं राजा समरे च पुनःपुनः ॥२१
भृगुर्नारायणास्त्रञ्च चिक्षेप रणमूर्द्धनि । अस्त्रं ययौ तं निहन्तुं शतसूर्य्यसमप्रभम् ॥२२॥

दृष्ट्वास्त्रं नृपशार्दूलश्चावरुह्य रथात् क्षणात् ।
न्यस्तशस्त्रः प्रणनाम स्तुत्वा नारायणं शिवम् ॥२३॥

तमेव प्रणतं त्यक्त्वा ययौ नारायणान्तिकम् । अस्त्रराजो भगवतोरामःसंप्रापविस्मयम्
भृगुः शक्तिञ्च मुषलं तोमरं पट्टिशं तथा । गदां पर्शुञ्च कोपेन चिक्षेप नृपहिंसया ॥२५

जग्राह काली तान् सर्वान् सुचन्द्रस्यन्दनस्थिता ।
चिक्षेप शिवशूलं स नृपमाल्यं बभूव तत् ॥२६॥

ददर्श पुरतो रामो भद्रकालीं जगत्प्रसूम् । वहन्तीं मुण्डमालाञ्च विकटास्यां भयङ्करीम्
विहाय शस्त्रमस्त्रञ्च पिनाकञ्च भृगुस्तदा । तुष्टाव तां महामायां भक्तिनम्रात्मकन्धरः

परशुराम उवाच ।

नमः शङ्करकान्तायै सारायै ते नमो नमः । नमो दुर्गतिनाशिन्यै मायायै ते नमो नमः
नमो नमो जगद्धात्र्यै जगत्कर्त्र्यै नमो नमः । नमोऽस्तुतेजगन्मात्रेकारणायै नमोनमः॥
प्रसीद जगतां मातः सृष्टिसंहारकारिणि । त्वत्पादे शरणं यामि प्रतिज्ञां सार्थकं कुरु ॥
त्वयि मे विमुखायाञ्च को मां रक्षितुमीश्वरः । त्वं प्रसन्ना भव शुभेमांभक्तं भक्तवत्सले
युष्माभिः शिवलोके च मह्यं दत्तो वरः पुरा । तं वरं सफलं कर्त्तुं त्वमर्हसि वरानने
पर्शुरामस्तवं श्रुत्वा प्रसन्नाभवदम्बिका । माभैरित्येवमुक्त्वा तु तत्रैवान्तरधीयत ॥३४॥
एतद् भृगुकृतं स्तोत्रं भक्तियुक्तश्च यः पठेत् । महाभयात्समुत्तीर्णः स भवेद्लीलया ॥
स पूजितश्च त्रैलोक्ये त्रैलोक्यविजयी भवेत् । ज्ञानिश्रेष्ठो भवेच्चैव वैरिपक्षविमर्दकः

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे भृगुकृतं कालीस्तोत्रम् ।

एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा भृगुं धर्म्मभृतां वरम् । आगत्य कथयामास रहस्यंराममेवच ॥३७

ब्रह्मोवाच ।

शृणु राम महाभाग रहस्यं पूर्व्वमेव च । सुचन्द्रजयहेतुञ्च प्रतिज्ञासार्थकाय च ॥३८॥
दशाक्षरी महाविद्या दत्ता दुर्वाससा पुरा । सुचन्द्रायैव कवचं भद्रकाल्याः सुदुर्लभम्
कवचं भद्रकाल्याश्च देवानाञ्च सुदुर्लभम् । कवचं तद्गलेयस्य सर्वशत्रुविमर्दकम् ॥
अतीव पूज्यं शस्तञ्च त्रैलक्यजयकारणम् । तस्मिन् स्थिते च कवचेकस्त्वंजेतुमलं भुवि
भृगो गच्छतु भिक्षार्थं करोतु प्रार्थनां नृप । सूर्य्यवंशोद्भवो राजा दाता परमधार्मिकः
प्राणांश्च कवचं मन्त्रं सर्वं दास्यति निश्चितम् ॥४३॥
भृगुः सन्न्यासिवेषेण गत्वा राजान्तिकं मुने । भिक्षाञ्चकार मन्त्रञ्चकवचंपरमाद्भुतम्
राजा ददौ च मन्त्रञ्च कवचं परमादरात् । ततः शङ्करशूलेन जघान तं नृपं भृगुः ॥४५॥
इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे गणपतिखण्डे नारायणनारदसंवादे कालीस्तोत्रं नाम

षट्त्रिंशत्तमोऽध्यायः

सप्तत्रिंशत्तमोऽध्यायः

कालीकवचम् ।

नारद उवाच ।

कवचं श्रोतुमिच्छामिताञ्चविद्यांदशाक्षरीम् । नाथ त्वत्तोहिसर्वज्ञभद्रकाल्याश्चसाम्प्रतम्

नारायण उवाच ।

शृणु नारद वक्ष्यामि महाविद्यां दशाक्षरीम् । गोपनीयञ्च कवचं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम्

ओं ह्रीं श्रीं क्लीं कालिकायै स्वाहेति च महामन्त्रम् ।

दुर्वासा हि ददौ राज्ञे पुष्करे सूर्य्यपर्वणि ॥ ३ ॥

दशलक्षजपेनैव मन्त्रसिद्धिः कृता पुरा । पञ्चलक्षजपेनैव राज्ञा कवचमुत्तमम् ॥ ४ ॥

बभूव सिद्धकवचोऽप्ययोध्यामाजगाम सः । कृत्स्नांहि पृथिवींजिग्येकवचस्य प्रसादतः

नारद उवाच ।

श्रुता दशाक्षरी विद्या त्रिषु लोकेषु दुर्लभा । अधुना श्रोतुमिच्छामि कवचं ब्रूहिमेप्रभो

नारायण उवाच ।

शृणु वक्ष्यामि विप्रेन्द्र कवचं परमाद्भुतम् । नारायणेन यद्दत्तं कृपया शूलिने पुरा ॥७॥

त्रिपुरस्य बधे घोरे शिवस्य विजयाय च । तदेव शूलिना दत्तं पुरा दुर्वाससे मुने ॥८॥

दुर्वाससा च यद्दत्तं सुचन्द्राय महात्मने । अतिगुह्यतरं तत्त्वं सर्वमन्त्रौघविग्रहम् ॥९॥

ओं ह्रीं श्रीं क्लीं कालिकायै स्वाहा मे पातु मस्तकम् ।

क्लीं कपालं सदा पातु ह्रीं ह्रीं ह्रीं इति लोचने ॥ १० ॥

ओं ह्रीं त्रिलोचने स्वाहा नासिकां मेसदावतु । क्रीं कालिके रक्षरक्षस्वाहादन्तंसदावतु

ह्रीं भद्रकालिकेस्वाहापातुमेऽधरयुग्मकम् । ओं ह्रीं ह्रींक्लींकालिकायैस्वाहाकण्ठंसदावतु

ओं ह्रींकालिकायैस्वाहाकर्णयुग्मंसदावतु । ओं क्रीं क्रीं काल्यैस्वाहास्कन्धंपातुसदावतु

ओं क्रीं भद्रकाल्यै स्वाहाममवक्षः सदावतु । ओं क्रीं कालिकायैस्वाहाममनाभिंसदावतु

ओं ह्रीं कालिकायैस्वाहा ममपृष्ठं सदावतु। रक्तबीजविनाशिन्यै स्वाहा हस्तौ सदावतु
ओं ह्रीं क्लीं मुण्डमालिन्यै स्वाहा पादौ सदावतु।
ओं ह्रीं चामुण्डायै स्वाहा सर्वाङ्गं मे सदावतु ॥ १६ ॥
प्राच्यांपातुमहाकालीआग्नेय्यांरक्तदन्तिका। दक्षिणेपातुचामुण्डानैर्ऋत्यांपातुकालिका
श्यामाच वारुणेपातु वायव्यांपातु चण्डिका। उत्तरेविकटास्याचऐशान्यांसाट्टहासिनी
ऊर्द्ध्वंपातुलोलजिह्वा मायाद्यापात्वधः सदा। जलेस्थले चान्तरिक्षेपातुविश्वप्रसूःसदा
इति ते कथितं वत्स सर्वमन्त्रौघविग्रहम्। सर्वेषां कवचानाञ्च सारभूतं परात्परम्॥
सप्तद्वीपेश्वरो राजा सुचन्द्रोऽस्य प्रसादतः। कवचस्य प्रसादेन मान्धाता पृथिवीपतिः
प्रचेता लोमशश्चैव यतः सिद्धो बभूव ह। यतो हि योगिनां श्रेष्ठः सौभरिःपिप्पलायनः
यदिस्यात् सिद्धकवचः सर्वसिद्धीश्वरोभवेत्। महादानानि सर्वाणितपांसिचव्रतानिच
निश्चितं कवचस्यास्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ २३ ॥
इदं कवचमज्ञात्वा भजेत् कालीं जगत्प्रसूम्। शतलक्षप्रजप्तोऽपि न मन्त्रः सिद्धिदायकः
इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे गणपतिखण्डे नारायणनारदसंवादे
कालीकवचं नाम सप्तत्रिंशत्तमोऽध्यायः।

अष्टत्रिंशत्तमोऽध्यायः

सुचन्द्रं पतितं दृष्ट्वाऽपरैः राजभिः सह रामयुद्धम्

नारायण उवाच।

सुचन्द्रे पतिते ब्रह्मन्राजेन्द्राणांशिरोमणौ। आजगाम पुष्कराक्षः सेनाक्ष्यक्षौहिणीयुतः
सूर्य्यवंशोद्भवो राजा सुचन्द्रतनयोमहान्। महालक्ष्मीसेवकश्च लक्ष्मीवान्सूर्य्यसन्निभः
महालक्ष्म्याश्च कवचं गले यस्य मनोहरम्। परमैश्वर्य्यसंयुक्तस्त्रैलोक्य विजयी ततः।
तं दृष्ट्वा भ्रातरं सर्वे पर्शुरामस्य भीमतः। आययुः समरं कर्त्तुं नानाशस्त्रास्त्रपाणयः॥

राजेन्द्रः शरजालेन छेदयामास लीलया। चिच्छिदुः शरजालञ्च ते वीराश्चावलीलया॥
चिच्छिदुः स्यन्दनं राज्ञस्ते वीराः पञ्चवाणतः। सारथिं पञ्चवाणेन रथाश्वं दशवाणतः
तद्धनुः सप्तवाणेन तूर्णञ्च पञ्चवाणतः। चिच्छिदुस्तद्भ्रातृवर्गान् विप्राः शङ्करशूलतः॥
ते च त्र्यक्षौहिणींसेनां निजघ्नुश्चावलीलया। हन्तुं नृपेन्द्रं ते वीराःशिवशूलंनिचिक्षिपुः

गले वभूव तत् शूलं राज्ञः पुष्करमालिका॥ ८॥

शक्तिञ्च परिघञ्चैव भुशुण्डीं मुद्गरन्तथा। गदाञ्च चिक्षिपुर्विप्राः कोपेन ज्वलदग्नयः॥६॥
तानि शस्त्राणि चूर्णानि नृपेन्द्रदेहयोगतः। विस्मिता भ्रातरः सर्वे भृगोरेव महामुने॥
रथंधनुश्चशस्त्राणिचास्त्राणिविविधानिच। सेनांप्रस्थापयामासकार्त्तवीर्य्यार्जुनःस्वयम्
राजा स्यन्दनमारुह्य पुष्कराक्षो महावलः। चकार शरजालञ्च महाघोरतरं मुने॥१२॥
चिच्छिदुः शरजालञ्च ते वीराः शस्त्रपाणयः। राजा प्रस्वापनेनैव निद्रितांस्तांचकारह
भ्रातॄंश्च निद्रितान्दृष्ट्वा पर्शरामो महावलः। क्षतविक्षतसर्वाङ्गान् वोधयामास तत्त्वतः॥
वोधयित्वा तान्निवार्य्य जगाम रणमूर्द्धनि। चिक्षेप पर्शुं कोपेन शीघ्रं राजजिघांसया
छित्त्वा राज्ञः किरीटञ्च पर्शुर्भूमौ पपात ह। जग्राह परशुं शीघ्रं पर्शुरामो महावलः॥
तदा शङ्करशूलञ्च चिक्षेप मन्त्रपूर्वकम्। नृपस्य कुण्डलं छित्त्वा जगामशिवसन्निधिम्
राजा निहन्तुं तं रामं शरजालञ्चकार ह। चिच्छेद शरजालञ्च पर्शुरामश्च लीलया॥
क्रमेण राजा नानास्त्रं चिक्षेप मन्त्रपूर्वकम्। तच्छिच्छेद क्रमेणैव भृगुः शस्त्रभृतांवरः
भृगुश्चिच्चेप नानास्त्रं महासन्धानपूर्वकम्। तच्छिच्छेद महाराजः सन्धानेनावलीलया
रामश्चिक्षेप ब्रह्मास्त्रं सन्धानमन्त्रपूर्वकम्। राजा निर्वापणञ्चक्रे सन्धानेनावलीलया॥
सर्वाण्यस्त्राणिशस्त्राणिरामः पाशुपतंविना। चिक्षेपकोपविभ्रान्तो भूपश्चिच्छेदतानिच
रामः स्तुत्वा शिवं नत्वा ददे पाशुपतं मुने। नारायणश्च भगवानुवाच विप्ररूपधृक्॥

ब्राह्मण उवाच।

किङ्करोषि भृगो वत्स त्वमेवज्ञानिनां वरः। नरं हन्तुं पाशुपतं कोपात्किंक्षिपसिभ्रमात्
विश्वं पाशुपतेनैव भवेद्भस्म च सत्वरम्। सर्वघ्नञ्च शस्त्रमिदं विना श्रीकृष्णमीश्वरम्
अहो पाशुपतं ... सुदर्शनम्। हरेः सुदर्शनञ्चैव सर्वास्त्रपरिमर्दकम्॥ २६॥

पाशुपतं पशुपतेर्हरेरेव सुदर्शनम्। एते प्रधाने सर्वेषामस्त्राणाञ्च जगत्त्रये ॥ २७ ॥
त्यज पाशुपतं ब्रह्मन् मदीयं वचनं शृणु। यथा जेष्यसि राजानं पुष्कराक्षं महाबलम् ॥
कार्त्तवीर्य्यमजेतारं यथा जेष्यति साम्प्रतम्। श्रूयतां सावधानेन तत्सर्वं कथयामि ते।
महालक्ष्म्याश्च कवचं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम्। भक्त्याश्च पुष्कराक्षेण धृतं कण्ठेविधानतः
परं दुर्गतिनाशिन्याः कवचं परमाद्भुतम्। धृतञ्च दक्षिणे बाहौ पुष्कराक्षसुतेन च ॥
कवचस्य प्रसादेन विश्वं जेतुं क्षमौ च तौ। को जेता च त्रिभुवने देहे चकवचे स्थिते
अहं यास्यामि भिक्षार्थं सन्निधाने तयोर्मुने। करिष्यामि च तद्भिक्षां प्रतिज्ञासफलायते
ब्राह्मणस्य वचः श्रुत्वा रामः संत्रस्तमानसः। उवाच ब्राह्मणं वृद्धं हृदयेन विदूयता ॥

परशुराम उवाच।

न जानामि महाप्राज्ञकस्त्वंब्राह्मणरूपधृक्। शीघ्रञ्च ब्रूहि मांमूढं तदागच्छनृपान्तिकम्
पर्शुरामवचः श्रुत्वा प्रहस्य ब्राह्मणः स्वयम्।
अहं विष्णुरेवमुक्त्वा ययौ भिक्षितुमीश्वरः ॥ ३६ ॥
गत्वातयोः सन्निधानं ययाचे कवचश्चतौ। ददतुस्तौ च कवचे विष्णवे विष्णुमायया ॥
गृहीत्वा कवचे विष्णुर्वैकुण्ठं प्रजगाम सः ॥ ३७ ॥

नारद उवाच।

महालक्ष्म्याश्च कवचं केन दत्तं महामुने। पुष्कराक्षाय भूपाय श्रोतुं कौतूहलं मम ॥३८
कवचञ्चापि दुर्गायाः पुष्कराक्षसुताय च। दुर्लभं केन वा दत्तं तद्भवान् वक्तुमर्हसि ॥
कवचञ्चापि किम्भूतं तयोश्च तस्य किं फलम्।
मन्त्रौ च किं प्रकारौ तन्मे ब्रूहि जगद्गुरो ॥ ४० ॥

नारायण उवाच।

दत्तं सनत्कुमारेण पुष्कराक्षाय धीमते। महालक्ष्म्याश्च कवचं मन्त्रश्चापि दशाक्षरः ॥
स्तवनञ्चापि गोप्यञ्चैवोक्तं तच्चरितञ्च यत्। ध्यानञ्च सामवेदोक्तं पूजाविधिमनोहरम्
दुर्गायाश्चापि कवचं दत्तं दुर्वाससा पुरा। स्तवनञ्चापि गोप्यञ्च मन्त्रश्चापि दशाक्षरः
पश्चात् श्रोष्यसि तत् सर्वं दुर्गायाश्च परमाद्भुतम्। महायुद्धसमारम्भेदत्तं प्रार्थनयाचयत्

महालक्ष्म्याश्च मन्त्रञ्च शृणु तं कथयामि ते।
ओं श्रीं कमलवासिन्यै स्वाहेति परमाद्भुतम् ॥ ४५ ॥
ध्यानञ्च सामवेदोक्तं शृणु पूजाविधिं मुने। दत्तं तस्मै कुमारेण पुष्कराक्षाय धीमते ॥
सहस्रदलपद्मस्थां पद्मनाभप्रियां सतीम् । पद्मालयां पद्मवक्त्रां पद्मपत्राभलोचनाम् ॥
पद्मपुष्पप्रियां पद्मपुष्पतल्पविशायिनीम् । पद्मिनीं पद्महस्ताञ्च पद्ममालाविभूषिताम्॥४८
पद्मभूषणभूषाढ्यां पद्मशोभाविवर्द्धनीम् । पद्मकाननं पश्यन्तीं सस्मितां तां भजे मुदा ॥
चन्दनाष्टदले पद्मे पद्मपुष्पेण पूजयेत् । गणं सम्पूज्य दत्वाचैवोपचाराणि षोड़श॥५०॥
ततस्तुत्वा च प्रणमेत् साधको भक्तिपूर्वकम्। कवचं श्रूयतां ब्रह्मन् सर्वसारं वदामिते

नारायण उवाच।

शृणु विप्रेन्द्र पद्मायाः कवचं परमं शुभम् । पद्मनाभेन यद्दत्तं नाभिपद्मे च ब्रह्मणे ॥५२॥
सम्प्राप्य कवचं ब्रह्मा तत् पद्मे ससृजे जगत्। पद्मालयाप्रसादेन सलक्ष्मीको बभूव सः
पद्मालयावरं प्राप्य पाद्मश्च जगतां प्रभुः । पाद्मेन पद्मकल्पे च कवचं परमाद्भुतम् ॥५४॥
दत्तं सनत्कुमाराय प्रियपुत्राय धीमते । कुमारेण च यद्दत्तं पुष्कराय च नारद ॥ ५५ ॥
यद्धृत्वा पठनाद्ब्रह्मा सर्वसिद्धेश्वरो महान्। परमैश्वर्य्यसंयुक्तः सर्वसम्पत्समन्वितः ॥
यद्धृत्वाच धनाध्यक्षः कुवेरश्च धनाधिपः। स्वायम्भुवो मनुःश्रीमान् पठनाद्धारणाद्यतः
प्रियव्रतोत्तानपादौ लक्ष्मीवन्तौ यतो मुने। पृथुः पृथ्वीपतिः सद्यो बभूव धारणाद्यतः
कवचस्य प्रसादेन स्वयं दक्षः प्रजापतिः। धर्म्मश्च कर्म्मणां साक्षी पातायस्य प्रसादतः
यद्धृत्त्वा दक्षिणे वाहौ विष्णुः क्षीरोदशायिकः।
भक्त्या विधत्ते कण्ठे च शेषो नारायणांशकः ॥ ६० ॥
यद्धृत्वा वामनं लेभे कश्यपश्च प्रजापतिः। सर्वदेवाधिपः श्रीमान्महेन्द्रो धारणाद् यतः
राजा मरुत्तो भगवान् वभूव धारणाद् यतः।
त्रैलोक्याधिपतिः श्रीमान्नहुषो यस्य धारणात् ॥ ६२ ॥
विश्वं विजिग्ये खट्वाङ्गःपठनाद्धरणाद्यतः। मुचुकुन्दो यतःश्रीमान्मान्धातृतनयोमहान्
सर्वसम्पत्प्रदस्यास्य कवचस्य प्रजापतिः। ऋषिश्छन्दश्च वृहती देवी पद्मालयास्वयम्

धर्मार्थकाममोक्षेषु विनियोगः प्रकीर्त्तितः। पुण्यबीजञ्च महतां कवचं परमाद्भुतम् ॥६५

ओं ह्रीं कमलावासिन्यै स्वाहा मे पातु मस्तकम्।
श्रीं मे पातु कपालञ्च लोचने श्रीं श्रियै नमः ॥ ६६ ॥
ओं श्रीं श्रियै स्वाहेति च कर्णयुग्मं सदावतु।
ओं श्रीं ह्रीं क्लीं महालक्ष्म्यै स्वाहा मे पातु नासिकाम् ॥ ६७ ॥
ओं श्रीं पद्मालयायै च स्वाहा दन्तं सदावतु।
ओं श्रीं कृष्णप्रियायै च दन्तरन्ध्रं सदावतु ॥ ६८ ॥
ओं श्रीं नारायणेशायै मम कण्ठं सदावतु ।
ओं श्रीं केशवकान्तायै मम स्कन्धं सदावतु ॥ ६६ ॥
ओं श्रीं पद्मनिवासिन्यै स्वाहा नाभिं सदावतु।
ओं ह्रीं श्रीं संसारमात्रे मम वक्षः सदावतु ॥ ७० ॥
ओं श्रीं श्रीं कृष्णकान्तायै स्वाहा पृष्ठं सदावतु।
ओं ह्रीं श्रीं श्रियै स्वाहा मम हस्तौ सदावतु ॥ ७१ ॥
ओं श्रीं निवासकान्तायै मम पादौ सदावतु।
ओ ह्रीं श्रीं क्लीं श्रियै स्वाहा सर्वाङ्गं मे सदावतु ॥ ७२ ॥
प्राच्यां पातु महालक्ष्मीराग्नेय्यां कमलालया।
पद्मा मां दक्षिणे पातु नैर्ऋत्यां श्रीहरिप्रिया ॥ ७३ ॥
पद्मालया पश्चिमे मां वायव्यां पातु श्रीः स्वयम्।
उत्तरे कमला पातु ऐशान्यां सिन्धुकन्यका ॥ ७४ ॥

नारायणेशी पातूर्द्ध्वमधो विष्णुप्रियाऽवतु। सन्ततं सर्वतः पातु विष्णुप्राणाधिका मम
इति ते कथितं वत्स सर्वमन्त्रौघविग्रहम्। सर्वैश्वर्य्यप्रदं नाम कवचं परमाद्भुतम् ७६॥
सुवर्णपर्वतं दत्त्वा मेरुतुल्यं द्विजातये। यत् फलं लभते धर्मी कवचेन ततोऽधिकम् ॥
गुरुमभ्यर्च्य विधिवत्कवचं धारयेत्तु यः। कण्ठे वा दक्षिणे बाहौ स श्रीमान् प्रतिजन्मनि

अस्ति लक्ष्मीर्गृहे तस्य निश्चला शतपुरुषम्।

देवेन्द्रैश्चासुरेन्द्रैश्च सोऽवध्यो निश्चितं भवेत् ॥ ७६ ॥
स सर्वपुण्यवान्धीमान् सर्वयज्ञेषु दीक्षितः । सस्नातः सर्वतीर्थेषु यस्येदं कवचं गले ॥
यस्मै कस्मै न दातव्यं लोभमोह भयैरपि । गुरुभक्ताय शिष्याय शरणाय प्रकाशयेत्
इदंकवचमज्ञात्वा जपेल्लक्ष्मींजगत्प्रसूम् । कोटिसंख्यप्रजप्तोऽपिनमन्त्रः सिद्धिदायकः॥
इति ब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे गणपतिखण्डे लक्ष्मीकवचं नामाष्टात्रि-
शत्तमोऽध्यायः ।

एकोनचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

दुर्गाकवचम् ।

नारद उवाच ।

कवचं कथितं ब्रह्मन् पद्मायाश्च मनोहरम् । परं दुर्गतिनाशिन्याः कवचं कथय प्रभो ॥
पद्माक्षप्राणतुल्यञ्च जीवनं बलकारणम् । कवचानाञ्च यत् सारं दुर्गासेवनकारणम् ॥२

नारायण उवाच ।

शृणु नारद वक्ष्यामि दुर्गायाः कवचं शुभम् । श्रीकृष्णेनैव यद्दत्तं गोलोके ब्रह्मणे पुरा॥
ब्रह्मा त्रिपुरसंग्रामे शङ्कराय ददौ पुरा । जघान त्रिपुरं रुद्रो यद्धृत्त्वा भक्तिपूर्वकम् ॥४॥
हरो ददौ गौतमाय पद्माक्षाय च गौतमः । यतो बभूव पद्माक्षः सप्तद्वीपेश्वरो जयी ॥५
यद्धृत्वापठनाद् ब्रह्माज्ञानवान् शक्तिमान् भुवि । शिवो बभूव सर्वज्ञो योगिनाञ्चगुरुर्यतः
शिवतुल्यो गौतमश्च बभूव मुनिसत्तमः ॥ ६ ॥
ब्रह्माण्डविजयस्यास्य कवचस्य प्रजापतिः । ऋषिश्छन्दश्च गायत्रीदेवी दुर्गतिनाशिनी।
ब्रह्माण्डविजये चैव विनियोगः प्रकीर्त्तितः । पुण्यतीर्थञ्च महतां कवचं परमाद्भुतम् ॥८।
ओं ह्रीं दुर्गतिनाशिन्यै स्वाहा मे पातु मस्तकम् ॥
ओं ह्रीं मे पातु कपालञ्च ओं ह्रीं श्रीमिति लोचने ॥ ९ ॥

पातुमे कर्णयुग्मञ्च ओं दुर्गायैनमःसदा । ओं ह्रीं श्रीमितिनासांमे सदा पातु च सर्वतः॥

ह्रीं श्रीं ह्रू मिति दन्तानि पातु क्लीमोष्ठयुग्मकम् ।
क्रीं क्रीं क्रीं पातु कण्ठञ्च दुर्गे रक्षतु गण्डकम् ॥ ११ ॥

स्कन्धं दुर्गविनाशन्यैस्वाहा पातुनिरन्तरम् । वक्षो विपद्विनाशिन्यैस्वाहा मे पातुसर्वतः

दुर्गे दुर्गे रक्षणीति स्वाहा नाभिं सदावतु । दुर्गे दुर्गे रक्ष रक्ष पृष्ठं मे पातु सर्वतः ॥१३

ओं ह्रीं दुर्गायै स्वाहा च हस्तौ पादौ सदावतु ।
ओं ह्रीं दुर्गायै स्वाहा च सर्वाङ्गं मे सदावतु ॥ १४ ॥
प्राच्यां पातु महामाया आग्नेय्यां पातु कालिका ।
दक्षिणे दक्षकन्या च नैर्ऋत्यां शिवसुन्दरी ॥ १५ ॥

पश्चिमे पार्वती पातु वाराही वारुणे सदा । कुवेरमाता कौवेर्य्यामैशान्यामीश्वरी सदा॥

ऊर्द्ध्वे नारायणी पातु अम्बिकाधः सदावतु । ज्ञाने ज्ञानप्रदा पातु स्वप्ने निद्रासदावतु

इति ते कथितं वत्स सर्वमन्त्रौघविग्रहम् । ब्रह्माण्डविजयं नाम कवचं परमाद्भुतम्॥

सुस्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु यत् फलम् । सर्वव्रतोपवासे च तत्फलं लभते नरः ॥

गुरुमभ्यचर्य विधिवद्वस्त्रालङ्कारचन्दनैः । कण्ठे वा दक्षिणे वाहौ कवचं धारयेत्तु यः

स च त्रैलोक्यविजयी सर्वशत्रुप्रमर्दकः । इदं कवचमज्ञात्वा भजेद्दुर्गतिनाशिनीम् ॥

शतलक्षप्रजप्तोऽपि न मन्त्रः सिद्धिदायकः ॥ २२ ॥

कवचं काण्वशाखोक्तमुक्तं नारद सुन्दरम् । यस्मै कस्मै न दातव्यं गोपनीयंसुदुर्लभम्

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे गणपतिखण्डे नारायणनारदसंवादे
दुर्गाकवचंनामैकोनचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

सहस्राक्षमरणानन्तरं कार्तवीर्यस्य युद्धागमनम्।

नारायण उवाच।

ते गृहीत्वा तदा विष्णौ वैकुण्ठञ्च गते सति। सपुत्रञ्च सहस्राक्षं जघान भृगुनन्दनः॥

कृत्वा युद्धन्तु सप्ताहं ब्रह्मास्त्रेण प्रयत्नतः। राजा कवचहीनोऽपि सपुत्रश्च पपात ह॥

पतिते तु सहस्राक्षे कार्त्तवीर्य्यार्जुनः स्वयम्। आजगाममहावीरोद्विलक्षाक्षौहिणीयुतः

सुवर्णरथमारुह्य रत्नसारपरिच्छदम्। नानास्त्रं परितः कृत्वा तस्थौ समरमूर्द्धनि॥४॥

परशुरामश्च समरे तं राजेन्द्रं ददर्श ह। रत्नालङ्कारभूषाढ्यै राजेन्द्रकोटिभिः सह॥५॥

रत्नातपत्रभूषाढ्यं रत्नालङ्कारभूषितम्। चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं सस्मितं सुमनोहरम्॥६॥

राजा दृष्ट्वा मुनीन्द्रं तमवरुह्य रथादहो। प्रणम्य रथमारुह्य तस्थौ नृपगणैः सह॥ ७॥

ददौ शुभाशिषं तस्मै रामश्च समयोचितम्। प्रोवाच च गतार्थञ्च स्वर्गं गच्छेतिसानुगः

उभयोः सेनयोर्युद्धं बभूव तत्र नारद। पलायिता रामशिष्या भ्रातरश्च महाबलाः।

क्षतविक्षतसर्वाङ्गाः कार्त्तवीर्य्यप्रपीड़िताः॥ ६॥

नृपस्य शरजालेन रामः शस्त्रभृतां वरः। न ददर्श स्वसैन्यञ्च राजसैन्यं स्वमेव च १०।

चिक्षेप वह्निं रामश्च बभूवाग्निमयं रणे। निर्वापयामास राजा वारुणेनावलीलया॥११॥

चिक्षेप रामो गान्धर्वं शैलसर्पसमन्वितम्। वायव्येन महाराजः प्रेरयामास लीलया॥

चिक्षेप रामो नागास्त्रं दुर्निवार्य्यं भयङ्करम्। गारुड़ेन महाराजः प्रेरयामास लीलया॥

माहेश्वरञ्च भगवांश्चिक्षेप भृगुनन्दनः। निर्वापयामास राजा वैष्णवास्त्रेण लीलया॥

भृगुश्चिक्षेप ब्रह्मास्त्रं नृपनाशाय नारद। ब्रह्मास्त्रेण च भूपस्य प्राप निर्वापणं रणे॥

दत्तदत्तञ्च यच्छूलमव्यर्थं मन्त्रपूर्वकम्। जग्राह राजा समरे पर्शुरामवधाय च॥१६॥

शूलं ददर्श रामश्च शतसूर्य्यसमप्रभम्। प्रलयाग्निशिखोद्रिक्तं दुर्निवार्य्यं सुरैरपि॥ १७॥

पपात शूलं समरे रामस्योपरि नारद। मूर्च्छामवाप स भृगुः पपात च हरिं स्मरन्।१८

पतिते पर्शुरामे च सर्वे देवा भयाकुलाः । आजग्मुः समरं तत्र ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥
शङ्करश्च महाज्ञानी महाज्ञानेन लीलया । ब्राह्मणं जीवयामास तूर्णं नारायणाज्ञया ॥२०॥
भृगुश्च चेतनां प्राप्य ददर्श पुरतः सुरान् । प्रणनाम परं भक्त्या लज्जा नम्रात्मकन्धरः ॥
राजा दृष्ट्वा सुरेशांश्च भक्तिनम्रात्मकन्धरः । प्रणम्य शिरसा मूर्द्ध्ना तुष्टाव परमेश्वरान्
तत्राजगाम भगवान् दत्तात्रेयो रणस्थलम् । शिष्यरक्षानिमित्तेन कृपालुर्भक्तवत्सलः ॥
भृगुः पाशुपतास्त्रञ्च जग्राह कोपसंयुतः । दत्तदत्तेन दृष्टेन बभूव स्तम्भितो रणे ॥२४॥
ददर्श स्तम्भितो रामो राजानं रणमूर्द्धनि । नानापार्षदयुक्तेन कृष्णेन रक्षितं रणे ॥२५
सुदर्शनं प्रज्ज्वलन्तं भ्रमणं कुर्वता सदा । सस्मितेन स्तुतेनैव ब्रह्मविष्णुमहेश्वरैः ॥२६॥
गोपालशतयुक्तेन गोपवेशविधारिणा । नवीनजलदाभेन वंशीहस्तेन वादयन् ॥ २७ ॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र वाग्बभूवाशरीरिणी । दत्तेन दत्तं कवचं कृष्णस्य परमात्मनः ॥२८॥

राज्ञोऽस्ति दक्षिणे बाहौ सद्रत्नगुटिकान्वितम् ।
गृहीतकवचे शम्भौ भिक्षया योगिनां गुरौ ॥ २६ ॥

तदाहन्तुं नृपं शक्तो भृगुश्चेति च नारद । श्रुत्वाऽशरीरिणीं वाणीं शङ्करो द्विजरूपधृक्
भिक्षां कृत्वा तु कवचमानीय च नृपस्य च । शम्भुना भृगवे दत्तं कृष्णस्यकवचञ्च यत्
एतस्मिन्नन्तरे देवा जग्मुः स्वस्थानमुत्तमम् । उवाच पर्शुरामश्च राजानं समरं प्रति ॥

परशुराम उवाच ।

राजेन्द्रोत्तिष्ठ समरं कुरु साहसपूर्वकम् । कालभेदे जयो नृणां कालभेदे पराजयः ॥
अधीतं विधिवद्दत्तं कृत्स्ना पृथ्वी सुशासिता । यशःकृतश्चसंग्रामोत्वयाहंमूर्च्छितोऽधुना
जिताः सर्वे च राजेन्द्रा लीलया रावणोजितः । जितोऽहंदत्तशूलेनशम्भुनाजीवितः पुनः
रामस्य वचनं श्रुत्वा राजा परमधार्मिकः । मूर्द्ध्ना प्रणम्य तंभक्त्यायथार्थोक्तिमुवाचह

राजोवाच ।

किमधीतं किं वा दत्तं कावा पृथ्वी सुशासिता । गताःकतिविधाभूपामादृशाधरणीतले
बुद्धिस्तेजो विक्रमश्च विविधा रणमन्त्रणा । श्रीरैश्वर्यंतथाज्ञानंदानशक्तिश्चलौकिकम्

आचारो विनयो विद्या प्रतिष्ठा परमं तपः । सर्वं मनोरमासङ्गे गतमेव मम प्रभो ॥३६॥

सा च स्त्री प्राणतुल्या मे साध्वीपद्मांशसम्भवा। यज्ञेषु पत्नी मातेवस्नेहेक्रीड़तिसङ्गिनी आबाल्यात्सङ्गिनी शश्वत्शयनेभोजने रणे। तां विना प्राणहीनोऽहंविषहीनोयथोरगः त्वया न दृष्टं युद्धं मे पुरेयं शोचना स्थिता। द्वितीयशोचना विप्र हतोऽहं ब्राह्मणेन च काले सिंहः श्रृगालश्च श्रृगालः सिंहमेवच। काले व्याघ्रं हन्ति मृगोगजेन्द्रंहरिणस्तथा महिषं मक्षिका काले गरुड़श्च तथोरगः। किङ्करःस्तौतिराजेन्द्रं कालेराजा च किङ्करम् इन्द्रश्च मानवः काले काले ब्रह्मा मरिष्यति। तिरोभूत्वाच प्रकृतिः काले श्रीकृष्णविग्रहे मरिष्यन्ति सुराः सर्वे त्रिलोकस्थाश्चराचराः। सर्वे कालेलयंयान्तिकालोहिदुरतिक्रमः

कालस्य कालः श्रीकृष्णः स्त्रष्टुः स्त्रष्टा यथेच्छया।
संहर्त्ताचैव संहर्त्तुः पातुः पाता परात्परः ॥ ४७ ॥

महान् स्थूलतमः(स्थूलात्)सूक्ष्मात् सूक्ष्मतमःकृशः। परमाणुपरःकालःकालश्चकालभेदकः यस्य लोमानिविश्वानि स पुमांश्चमहाविराट्। तेजसा षोड़शांशश्चकृष्णस्यपरमात्मनः ततः क्षुद्रविराड् जातः सर्वेषां कारणंपरम्। यः स्त्रष्टा च स्वयं ब्रह्मायन्नाभिकमलोद्भवः नाभेः कमलदण्डस्य योऽन्तं न प्राप यत्नतः। भ्रमणाल्लक्षवर्षञ्च ततः स्वस्थानसंस्थितिः तपश्चक्रे ततस्तत्र लक्षवर्षञ्च वायुभुक्। ततो ददर्श गोलोकं श्रीकृष्णञ्च सपार्षदम् ॥ गोपगोपीपरिवृतं द्विभुजं मुरलीकरम्। रत्नसिंहासनस्थञ्च राधावक्षःस्थलस्थितम् ॥ दृष्ट्वानुज्ञां गृहीत्वा च प्रणम्य च पुनः पुनः। ईश्वरेच्छाञ्च विज्ञाय स्त्रष्टुं सृष्टिं मनो दधे यः शिवःसृष्टिसंहर्त्ता स च स्त्रष्टुर्ललाटजः। विष्णुःपाताक्षुद्रविराट् श्वेतद्वीपनिवासकृत् सृष्टिकारणभूताश्च ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः। सन्ति विश्वेषु सर्वेषु श्रीकृष्णस्य कलोद्भवाः

तेऽपि देवाः प्राकृतिकाः प्राकृतश्च महाविराट्।
सर्वप्रसूतिः प्रकृतिः श्रीकृष्णः प्रकृतेः परः ॥५७॥
न शक्तः परमेशोऽपि तां शक्तिं प्रकृतिं विना।
सृष्टिं विधातुं मायेशो न सृष्टिर्म्मायया विना ॥५८॥

सा च कृष्णे तिरोभूत्वा सृष्टिसंहारपालके। साविर्भूता सृष्टिकाले साचनित्यामहेश्वरी

[illegible] कुलालश्च घटं कर्त्तुं यथा शक्तो मृदं विना। स्वर्णं विना स्वर्णकारः कुण्डलं कर्त्तुमक्षमः

सा च शक्तिः सृष्टिकाले पञ्चधा चेश्वरेच्छया । राधापद्मा चसावित्रीदुर्गादेवीसरस्वती
प्राणाधिष्ठात्री या देवीकृष्णस्यपरमात्मनः । प्राणाधिकप्रियतमा सा राधा परिकीर्त्तिता
ऐश्वर्य्याधिष्ठात्रिदेवी सर्वमङ्गलकारिणी । परमानन्दरूपा च सा लक्ष्मीः परिकीर्त्तिता
विद्याधिष्ठात्रिदेवी या परमेशस्य दुर्लभा । वेदशास्त्रयोगमाता सा सावित्री प्रकीर्त्तिता
बुद्ध्यधिष्ठात्रि या देवी सर्वशक्तिस्वरूपिणी । सर्वज्ञानात्मिका सर्वासादुर्गादुर्गनाशिनी
वागधिष्ठात्रि या देवी शास्त्रज्ञानप्रदा सदा । कृष्णकण्ठोद्भवा साच याचदेवी सरस्वती
पञ्चधादौ स्वयं देवी मूलप्रकृतिरीश्वरी । ततः सृष्टिक्रमेणैव वहुधा कलया च सा ॥६७
योषितः प्रकृतेरंशाः पुमांसः पुरुषस्य च । मायया सृष्टिकाले च तद्विना न भवेद्भवः ॥
सृष्टिश्च प्रतिविश्वेषु ब्रह्मन् ब्रह्मोद्भवासदा । पाताविष्णुश्च संहर्त्ता शिवःशश्वत्शिवप्रदः
दत्तदत्तं ज्ञानमिदं राम मह्यञ्च पुष्करे । दीक्षाकाले च माघ्याञ्च मुनिप्रवरसन्निधौ ॥
इत्युक्त्वा कार्त्तवीर्य्यश्च रामं नत्वा च सस्मितः । आरुरोह रथं शीघ्रं गृहीत्वासशरंधनुः
रामस्ततो राजसैन्यं ब्रह्मास्त्रेण जघान ह । नृपं पाशुपतेनैव लीलया श्रीहरिं स्मरन् ॥
एवं त्रिःसप्तकृत्वश्च क्रमेण च वसुन्धराम् । रामश्चकार निर्भूपां लीलया च शिवंस्मरन्
गर्भस्थं मातृक्रोड़स्थं शिशुं वृद्धञ्च मध्यमम् । जघान क्षत्रियं रामः प्रतिज्ञा पालनाय वै
कार्त्तवीर्य्यश्च गोलोकंजगामकृष्णसन्निधिम् । जगामपरशुरामश्च स्वालयंश्रीहरिंस्मरन्
त्रिःसप्त कृत्वो निर्भूपां महीं दृष्ट्वा महेश्वरः । पर्शुना रमणं दृष्ट्वा पर्शुरामश्चकार तम् ॥
देवाश्च मुनयो देव्यः सिद्धगन्धर्वकिन्नराः । सर्वे चक्रुः पुष्पवृष्टिं राममूर्द्धि्न च नारद
स्वर्गे दुन्दुभयो नेदुर्हरिशब्दो वभूव ह । परशुरामस्य यशसा शुभ्रेण पूरितं जगत् ॥७८
ब्रह्मा भृगुश्च शुक्रश्च च्यवनो वाल्मीकिस्तथा । जमदग्निर्ब्रह्मलोकादाजगाम प्रहर्षितः ॥
पुलकाङ्कितसर्वाङ्गाः सानन्दाश्रुसमन्विताः । दूर्वापुष्पकराः सर्वे कुर्वन्तो मङ्गलाशिषम्
प्रणनाम च तान्रामोदण्डवत् पतितोभुवि । क्रोड़े चकार ब्रह्मादौ क्रमाज्ज्ञातेतिसंवदन्
तमुवाच स्वयं ब्रह्मा पर्शुरामं जगद्गुरुः । हितं नीतिं वेदसारं परिणामसुखावहम् ८२

ब्रह्मोवाच ।

शृणु राम प्रवक्ष्यामि सर्वसम्पत्करं परम् । काण्वशाखोक्तवचनं सत्यञ्च सर्वसम्मतम् ।

पूज्यानामेव सर्वेषामिष्टः पूज्यतमः परः। जनको जन्मदानत्वात् पालनाच्च पितास्मृतः
गरीयान् जन्मदातुश्च सोऽन्नदाता पिता मुने। विनान्नं नश्वरो देहोनित्यश्च पितुरुद्भवः
तयोः शतगुणेमातापूज्यामान्या चवन्दिता। गर्भधारणपोषाभ्यां साचताभ्यां गरीयसी
तेभ्यः शतगुणे पूज्योऽभीष्टदेवः श्रुतौ श्रुतः। ज्ञानविद्यामन्त्रदाताऽभीष्टदेवात्परो गुरुः
गुरुवद् गुरुपुत्रश्च गुरुपत्नी ततोऽधिका। देवे रुष्टे गुरू रक्षेद् गुरौ रुष्टे न कश्चन ॥८८
गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः। गुरुरेव परं ब्रह्म ब्राह्मणेभ्यः प्रियः परः ॥ ८९ ॥
गुरुर्ज्ञानं ददात्येव ज्ञानञ्च हरिभक्तिदम्। हरिभक्तिप्रदाता यः को वा बन्धुस्ततः परः ॥

अज्ञानतिमिराच्छन्नो ज्ञानदीपं यतो लभेत्।
लब्ध्वा च निर्मलं पश्येत् को वा बन्धुस्ततः परम् ॥ ९१ ॥

गुरुदत्तश्चमन्त्रञ्चजप्त्वाज्ञानंततोलभेत्। सर्वज्ञत्वञ्च सिद्धिञ्च कोवा बन्धुस्ततोऽधिकः
सुखं जयति सर्वत्र विद्यया गुरुदत्तया। यया पूज्योऽपिजगति कोवाबन्धुस्ततोऽधिक

विद्यान्धो वा धनान्धो वा यो मूढ़ो न भजेद् गुरुम्।
ब्रह्महत्याधिकं पापं लभते नात्र संशयः ॥ ९४ ॥

दरिद्रं पतितं क्षुद्रंनरबुद्ध्याचरेद्. गुरुम्। सोऽशुचिस्तीर्थस्नातोऽपि नाधिकारीचकर्मसु
अभीष्टदेवः श्रीकृष्णो गुरुस्ते शङ्करः स्वयम्। शरणं गच्छ हे पुत्र देवात्पूज्यतमं गुरुम्
त्रिः सप्तकृत्वो निर्भूपा त्वया पृथ्वी कृता यतः। प्राप्ता त्वया हरेर्भक्तिस्तं शिवंशरणंव्रज
शिवञ्च शिवरूपञ्च शिवदं शिवकारणम्। शिवाराध्यं शिवं शान्तं गुरुं त्वं शरणं व्रज
गोलोकनाथो भगवानंशेन शिवरूपधृक्। य इष्टदेवः स गुरुस्तमेव शरणं व्रज ॥९९॥
आत्माकृष्णः शिवोज्ञानंमनोऽहंसर्वजीविषु। प्राणा विष्णोश्चप्रकृतिःसर्वशक्तियुतासुत
ज्ञानदं ज्ञानरूपञ्च ज्ञानबीजं सनातनम्। मृत्युञ्जयं कालकालं तं गुरुं शरणं व्रज ॥१०१
ब्रह्मज्योतिः स्वरूपं तं भक्तानुग्रहविग्रहम्। शरणं व्रज सर्वज्ञं भगवन्तं सनातनम् ॥
प्रकृतिर्लक्षवर्षञ्च तपस्तप्त्वा यमीश्वरम्। कान्तं प्रियपतिं लेभे तं गुरुं शरणं व्रज ॥
इत्युक्त्वा मुनिभिः सार्द्धं जगाम कमलोद्भवः। रामश्च गन्तुं कैलासं मनश्चक्रे च नारद।
इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे गणपतिखण्डे नारायणनारदसंवादे कार्त्तवीर्यवधवर्णनं
नाम चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः।

एकचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

भार्गवस्य कैलाशगमनम् ।

नारायण उवाच ।

हरेश्च कवचंधृत्वाकृत्वा निःक्षत्रियां महीम् । रामो जगाम कैलासं नमस्कर्त्तुं शिवंगुरुम्
गुरुं पत्नीं शिवामम्बां द्रष्टुं गुरुसुतौ च तौ । गुणैर्नारायणसमौ कार्त्तिकेयगणेश्वरौ ॥
मनोयायी महात्मा च शीघ्रं संप्राप्य तत्क्षणम् । ददर्श नगरं रम्यमतीव सुमनोहरम् ॥
शुद्धस्फटिकशङ्काशैर्मणिभिः सुमनोहरैः । सुवर्णभूमिसद्धशैः राजमार्गैर्विराजितम् ॥
सिन्दूराकारवर्णैश्च वेष्टितं मणिवेदिभिः । संयुक्तं मुक्तानिकरैः पूरितं मणिमण्डपैः ॥५॥
यक्षाणामालयैर्दिव्यैः संयुक्तं शतकोटिभिः । कपाटस्तम्भसोपानैः शोभितैर्मणिनिर्मितैः
सुवर्णकलसैर्दिव्यैः राजितैः श्वेतचामरैः । रत्नकाञ्चनपूर्णैश्च यक्षेन्द्रगणवेष्टितैः ॥ ७ ॥
रत्नभूषणभूषाढ्यैर्दीपितैः सुन्दरीगणैः । बालिकाभिर्बालकैश्च चित्रपुत्तलिकाकरैः ॥८॥

क्रीड़द्भिः सस्मितैः शश्वत् स्वच्छन्दश्च विराजितैः ।
पारिजातद्रुमगणैः स्वर्णदीतीरनीरजैः ॥ ९ ॥

आकीर्णं पुष्पजालैश्च पुष्पितैश्चसुगन्धिभिः । कल्पवृक्षाश्रितैः सिद्धैः कामधेनुपुरस्कृतैः
सिद्धविद्यातिनिपुणैः पुण्यवद्भिर्निषेवितम् । वटवृक्षैरक्षयैश्च त्रिलक्षयोजनोच्छ्रितैः ॥
शतयोजनविस्तीर्णैः शतस्कन्धसमन्वितैः । असंख्यशाखानिकरैरसंख्यफलसंयुतैः ॥१२
नानापक्षिगणाकीर्णैः सुमनोहरशब्दितैः । कल्पितैः शीतवातेन मण्डितञ्च सुगन्धिना ।
पुष्पोद्यानसहस्रेण सरसाञ्च शतेन च । सिद्धेन्द्रालयलक्षैश्च मणिरत्नविकारजैः ॥१४॥
रामश्च दृष्ट्वा नगरमतीव हृष्टमानसः । ददर्श पुरतो रम्यं श्रीयुक्तं शङ्कराश्रमम् ॥ १५ ॥
सुवर्णमूल्यशतकैर्मणिभिः स्वर्णवर्णकैः । खचितं रत्नसारेण रचितं विश्वकर्मणा ॥१६
चतुर्योजनविस्तीर्णं त्रिपञ्चयोजनाश्रितम् । चतुरस्रं चतुष्कोणं प्राकारं सुमनोहरम् ॥१७
द्वारं रत्नकपाटेन नानाचित्रान्वितेन च । युक्तं मणीन्द्रवेदिभिर्मणिस्तम्भविराजितैः ॥१८

तद्दक्षिणे वृषेन्द्रञ्च वामे सिंहञ्च नारद। नन्दीश्वरं महाकालं पिङ्गलाक्षं भयङ्करम्॥
विशालाक्षञ्च बाणञ्च विरूपाक्षं महाबलम्। विकटाक्षंभास्कराक्षं रक्ताक्षंविकटोदरम्
संहारभैरवं कालभैरवञ्च भयङ्करम्। रुरुभैरवमीशाभं महाभैरवमेव च॥ २१॥
कृष्णाङ्गभैरवञ्चैव क्रोधभैरवमुल्वणम्। कपालभैरवञ्चैव रुद्रभैरवमेव च॥ २२॥

सिद्धेन्द्रांश्च रुद्रगणान् विद्याधरांश्च गुह्यकान्।
भूतान् प्रेतान् पिशाचांश्च कुष्माण्डान् ब्रह्मराक्षसान्॥ २३॥

वेतालान्दानवांश्चैव योगीन्द्रांश्च जटाधरान्। यक्षान् किम्पुरुषांश्चैव किन्नरांश्च ददर्श ह
तान्दृष्ट्वा नन्दिकेशाज्ञां गृहीत्वाभृगुनन्दनः। तां सम्भाष्याभ्यन्तरञ्च जगामानन्दमानसः
रत्नेन्द्रसारनिर्माणं ददर्श शतमन्दिरम्। अमूल्यरत्नकलसैर्ज्ज्वलद्भिश्च विराजितम्॥
अमूल्यरत्नरचितैर्मुक्तानिर्म्मलदर्पणैः। हरीसारविकारैश्च कपाटैश्च विराजितम्॥ २७॥
गोरोचनाभिर्म्मणिभिर्युतं स्तम्भसहस्रकैः। मणिसारविकारैश्च सोपानैः परिसेवितम्
ददर्शाभ्यन्तरं द्वारं नानाचित्रेणचित्रितम्। मुक्तामाणिक्यग्रथितैर्मालाजालैर्विराजितम्
ददर्श कार्त्तिकं वामे दक्षिणे च गणेश्वरम्। वीरभद्रं महाकायं शिवतुल्यपराक्रमम्॥
प्रधानपार्षदगणान् क्षेत्रपालांश्च नारद। रत्नसिंहासनस्थांश्च रत्नभूषणभूषितान्॥ ३१॥
तान् संभाष्य भृगुः शीघ्रं महाबलपराक्रमः। पर्शुहस्तः पर्शुरामो गमनङ्कर्त्तुमुद्यतः॥३२
गच्छन्तं तं गणेशश्च क्षणं तिष्ठेत्युवाच ह। निद्रितो निद्रया युक्तो महादेवोऽधुनेति च
ईश्वराज्ञां गृहीत्वाहमत्रागत्य क्षणान्तरे। त्वया सार्द्धंगमिष्यामिभ्रातस्तिष्ठेतिसाम्प्रतम्
श्रुत्वा गणेशवचनं पर्शुरामो महाबलः। बृहस्पतिसमो वक्ता प्रवक्तुमुपचक्रमे॥३५॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे गणपतिखण्डे नारायणनारदसंवादे कैलासवर्णनं नामैकचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः।

———

द्विचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

गणेश्वरसमीपे रामस्य शिवशिवादर्शनप्रार्थनम् तयोः कथोपकथनञ्च

परशुराम उवाच ।

यास्याम्यन्तः पुरंभ्रातःप्रणामंकर्त्तुमीश्वरम् । प्रणम्यमातरं भक्त्या यास्यामित्वरितंगृहम्
त्रिःसप्तकृत्वो निर्भूपां कृतापृथ्वीच लीलया । कार्त्तवीर्य्यः सुचन्द्रश्च हतोयस्यप्रसादतः
नानाविद्या यतो लब्धा नानाशास्त्रं सुदुर्लभम् ।
तं गुरुं जगतां नाथं द्रष्टुमिच्छामि साम्प्रतम् ॥ ३ ॥
सगुणं निर्गुणञ्चैव भक्तानुग्रहविग्रहम् । सत्यं सत्यस्वरूपञ्च ब्रह्मज्योतिः सनातनम् ॥
स्वेच्छामयं दयासिन्धुंदीनवन्धुंमुनीश्वरम् । आत्मारामं पूर्णकामं व्यक्ताव्यक्तंपरात्परम्
परापराणां स्रष्टारं पुरुहूतं पुरस्कृतम् । पुराणं परमात्मानमीशानमादिमव्ययम् ॥ ६ ॥
सर्वमङ्गलमाङ्गल्यं सर्वमङ्गलकारणम् । सर्वमङ्गलदं शान्तं सर्वैश्वर्य्यप्रदं वरम् ॥ ७ ॥
आशुतोषं प्रसन्नास्यं शरणागतवत्सलम् । भक्ताभयप्रदं भक्तवत्सलं समदर्शनम् ॥ ८ ॥
इत्युक्त्वा पर्शुरामश्च तस्थौ गणपतेः पुरः । वाचा मधुरया तत्र तमुवाचगणेश्वरः ॥९॥

श्रीगणेश्वर उवाच ।

क्षणं तिष्ठ क्षणंतिष्ठ श्टणु भ्रातरिदं वचः । रहःस्थलनियुक्तो न द्रष्टव्यः स्त्रीयुतः पुमान्
स्त्रीसंयुक्तं पुरुषं यः पश्यति नराधमः । करोति रसभङ्गं वा कालसूत्रं व्रजेद्ध्रुवम् ११
तत्र तिष्ठति पापीयान् यावच्चन्द्रदिवाकरौ । विशेषतश्च पितरं गुरुं भूतपतिं द्विज १२
रहः सुरतसंसक्तं नं हि पश्येद्विचक्षणः । कामतः कोपतो वापि यः पश्येत्सुरतोन्मुखम्
स्त्रीविच्छेदो भवेत्तस्य ध्रुवं सप्तसु जन्मसु ।
श्रोणीवक्षःस्थलं वक्त्रं यः पश्यति परस्त्रियाः ।
कामतोऽपि विमूढश्च सोऽन्धो भवति निश्चितम् ॥१४॥
गणेशस्य वचः श्रुत्वा प्रहस्य भृगुनन्दनः । तमुवाच महाकोपान्निष्ठुरं वचनं मुने ॥१५॥

परशुराम उवाच ।

अहो श्रुतं किं वचनमपूर्वनीतिमुत्तमम् । इदमेवमथो नैवं श्रुतमीश्वरवक्त्रतः ॥ १६ ॥

श्रुतं श्रुतौ वाक्यमिदं कामिनाञ्च विकारिणाम् ।

निर्विकारस्य च शिशो र्न दोषः कश्चिदेवहि ।

यास्यास्यन्तःपुरं भ्रातस्तव किं तिष्ठ बालक ॥१७॥

यथा दृष्टिंकरिष्यामि कार्य्यञ्च समयोचितम् । तवैव तातो माता च एवं नैवनिरूपितम् ।

जगतां पितरौ तौ च पार्वतीपरमेश्वरौ । पार्वतीं स्त्री पुमान् शम्भुरितिकैर्न निरूपितः ।१६

सर्वरूपः शङ्करश्च सर्वारूपा च पार्वती । गुणातीतस्यका क्रीड़ा तद्भङ्गोवाकुतो विभो ।२०

क्रीड़ा लज्जा भीतिभङ्गो ग्राम्यस्य नेश्वरस्य च ।

स्तनान्धं बालकं दृष्ट्वा पित्रोर्लज्जा कुतो भवेत् ॥२१॥

लज्जायाश्च कुतो लज्जा लज्जेशस्य च तत्कुतः ।

लज्जा लज्जामवाप्नोति तापं किंवा हुताशनः ॥२२॥

शीतं शीतमहो भ्रातर्निदाघो दाहमेव च । भीतिर्भीतिमवाप्नोतिमृत्योर्मृत्युर्बिभेतिकिम् ॥

कुतोज्वरोज्वरंहन्तिव्याधिंव्याधिश्चजीर्य्यति । संहर्त्तानाश्चसंहर्त्ताकालःकालाद्बिभेतिच

स्रष्टासृजतिस्रष्टारं पातास्वंपातित्वन्मते । क्षुत्क्षुध्वंसमवाप्नोतितृष्णातृष्णांप्रयातिकिम्

निद्रा निद्राञ्च श्रीः शोभां शान्तिः शान्तिञ्च तन्मते ।

पुष्टिः पुष्टिमवाप्नोति तुष्टिस्तुष्टिं क्षमा क्षमाम् ।

आत्मनः परमात्मास्ति शक्तिः शक्त्या बिभेति किम् ॥२६॥

लोभमोहकामक्रोधाःस्वात्मनानहिबाधिताः । दयान वद्धादययानेच्छावद्धेच्छयाप्रभो ॥

ज्ञानबुद्ध्योःकोविकारोजरामाबाधते जरा । चिन्तानचिन्तयाग्रस्ताचक्षुःस्वञ्चनपश्यति

हर्षोमुदंकिंप्राप्नोतिशोकंशोकोनबाधते । काविपत्तिर्विपत्तेश्च सम्पत्तिः सम्पदः कुतः ॥

मेधायाधारणाशक्तिःस्मृतेर्वा स्मरणंकुतः । न दग्धः स्वप्रतापेनविवस्वानिव सम्मतः ॥

विपरीतमतोभ्रातस्त्वयैवाचरितोऽधुना । न श्रुतोऽयंगुरुमुखान्नदृष्टोन श्रुतौ श्रुतः ॥३१॥

इत्युक्त्वापरशुरामश्च प्रहस्यचपुनःपुनः । शीघ्रं गन्तु मनश्चक्रेगुरोरभ्यन्तरं मुदा ॥३२ ॥

परशुरामवचः श्रुत्वाजितक्रोधोगणेश्वरः। शुद्धसत्वस्वरूपश्च प्रहस्यतमुवाच ह ॥३३॥

गणपतिरुवाच ।

अज्ञानतिमिराच्छन्नोज्ञानंप्राप्नोतिज्ञानिनः। पितुर्भ्रातुर्मुखाज्ज्ञानंदुर्लभंभाग्यवान्लभेत् ॥
श्रुतंज्ञानंविशिष्टश्चज्ञानिनामपिदुर्लभम्। किञ्चिन्ममम्नन्दबुद्धेःश्रृणुभ्रातर्निवेदनम् ॥३५॥
योनिर्गुणःसोनिर्लिप्तःशक्तिभ्योनहिसंयुतः। सिसृक्षुराश्रितोशक्तौनिर्गुणःसगुणो भवेत्
यावन्तिच शरीराणिभोगार्हाणिमहामुने। प्राकृतानि च सर्वाणि श्रीकृष्णविग्रहं विना ॥
ध्यायन्ते योगिनस्तश्चशुद्धज्योतिःस्वरूपिणम्। हस्तपादादिरहितंनिर्गुणं प्रकृतेः परम् ॥
वैष्णवास्तं नमस्यन्ते भक्तानुग्रहकारकम्। कुतोबभूव तज्ज्योतिरहोतेजस्विनां विना ॥
ज्योतिरभ्यन्तरेनित्यंशरीरंश्यामसुन्दरम्। द्विभुजंमुरलीहस्तंसस्मितंपीतवाससम् ॥४०॥
अतीवामूल्यसद्रत्नभूषणेन विभूषितम्। ज्योतिरभ्यन्तरे मूर्त्तिं पश्यन्ति कृपया विभो ॥
तदादास्येनियुक्तास्तेभवन्त्येवेश्वरेच्छया। योगस्तपोवादास्यस्यकलांनार्हन्तिषोड़शीम्
यदा श्रृष्ट्युन्मुखः कृष्णःससृजेप्रकृतिमुदा। तद्योनौह्यर्पितंवीर्य्यंवीर्य्याड्डिम्बो बभूव ह॥
दिव्येन लक्षवर्षेणगर्भाड्डिम्बोविनिर्गतः। तदा चकार निश्वासं ततोवायुर्बभूव ह ॥४४॥
निश्वासेन समं भ्रातर्मुखविन्दुर्विनिर्गतः। ततो बभूव सहसा जलराशिर्हरेः पुरः ॥४५॥
तज्जले च स्थितोडिम्बोदिव्यवर्षश्चलक्षकम्। ततो बभूवसहसाविश्वाधारो महाविराट् ॥

यावन्ति गात्रलोमानि तस्य सन्ति महात्मनः।
ब्रह्माण्डानि च तावन्ति विद्यमानानि निश्चितम् ॥४७॥

तत्रैव प्रति ब्रह्माण्डे ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः। देवाश्च मुनयश्चैव विद्यमानाश्चराचराः ॥४८॥
महाविराडाश्रयश्च सर्वस्य च जनस्य च। निश्वासवायुर्भगवान् बभूव श्रीहरेर्मुने॥४९॥
महान्विष्णुःकलयाततःक्षुद्रविराडभूत्। तन्नाभिकमले ब्रह्मा शङ्करस्तल्ललाटजः ॥५०॥
विष्णुस्तदंशःपातायःश्वेतद्वीपनिवासकृत्। एवन्ते प्रति ब्रह्माण्डे ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥
स्वयञ्च स्वांशकलया नानामूर्त्तिधरो हरिः। तदाभवच्च सगुणः सर्वशक्तियुतस्तदा ॥५२॥
कथंलज्जादिरहितः स च स्वेच्छामयोमहान्। सर्वदा सर्वभोगार्हः सर्वशक्तिसमन्वितः ॥
लज्जानास्त्येवलज्जाया मतोऽयसर्वसम्मतः। या च लज्जावतीदेवीतस्यलज्जा कुतो गता॥

सर्वशक्तिमतीदुर्गाप्रकृत्यासाच शैलजा। तस्यालज्जादयःसन्ति सर्वदा सर्वसम्मता॥५५
पञ्चधा याच प्रकृतिः श्रीकृष्णस्य वभूवह। राधापद्मा च सावित्री दुर्गादेवी सरस्वती॥
प्राणाधिष्ठात्री या देवी कृष्णस्य परमात्मनः।
प्राणाधिका प्रिया सा च राधास्ति तस्य वक्षसि॥५७॥
विद्याधिष्ठात्रीयादेवीसावित्रीब्रह्मणःप्रिया। लक्ष्मीर्नारायणस्यैवसर्वसम्पत्स्वरूपिणी॥
सरस्वतीद्विधा भूत्वा कृष्णस्य मुखनिर्गता। सावित्रीब्रह्मणःकान्तास्वयंनारायणस्य च
बुद्ध्यधिष्ठात्री या देवी ज्ञानसूः शक्तिसंयुता।
सा दुर्गा शूलिनः कान्ता तस्या लज्जा कुतो गता॥६०॥
प्रकृतिः पञ्चधा भ्रातर्गोलोके च वभूवह। इमाः प्रधानाः कलया वभूवानेकधापि सा॥
विप्रेन्द्रनित्यंवैकुण्ठं ब्रह्माण्डात्परमुच्यते। अविनाशीस्थलंशश्वत्लयेप्राकृतिके ध्रुवम्॥
तत्र नारायणो देवःकृष्णार्द्धांशश्चतुर्भुजः। वनमाली पीतवासाःशक्त्या च पद्मया सह॥
स्वयंकृष्णश्चगोलोकेद्विभुजःश्यामसुन्दरः। सस्मितोमुरलीहस्तोराधावक्षःस्थलस्थितः॥
गोगोपगोपीभिः शश्वत् संयुक्तो गोपरूपधृक्।
परिपूर्णतमः श्रीमान् निर्गुणः प्रकृतेःपरः॥६५॥
स्वेच्छामयःस्वतन्त्रस्तु परमानन्दरूपधृक्। सुराःकलोद्भवायस्यषोड़शांशोमहाविराट्॥
यतो भवन्तिविश्वानिस्थूलसूक्ष्मादिकानि च। पुनस्तत्र प्रलीयन्ते एवमेव मुहुर्मुहुः॥
गोलोकमूद्र्ध्वं वैकुण्ठात् पञ्चाशत्कोटियोजनम्।
नास्ति लोकस्तदूद्र्ध्वे च नास्ति कृष्णात्परः प्रभुः॥६८॥
इदं श्रुतंशम्भुवक्त्रान्मयातेकथितंद्विज। क्षणंतिष्ठाधुना भ्रातरीश्वरः सुरतोन्मुखः॥६९॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे गणपतिखण्डे पर्शुराम संवादे ज्ञाननिरूपणं नाम द्विचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः।

———

त्रिचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

गमनव्याघाते रामस्य गणेशेन सह वाग्युद्धम् ।

नारायण उवाच ।

गणेशवचनं श्रुत्वा स तदा रागतः सुधीः । पर्शुहस्तः पर्शुरामो निर्भयो गन्तुमुद्यतः ॥
गणेश्वरस्तदा दृष्ट्वा शीघ्रमुत्थाययत्नतः । वारयामास संप्रीत्या चकार विनयं पुनः ॥२॥
रामस्तं प्रेषयामास हुंकृत्वातु पुनः पुनः । बभूव च ततस्तत्रवाग्युद्धं हस्तकर्षणम् ॥३॥
पर्शु निक्षेपणं कर्त्तुं मनश्चक्रे भृगुस्तदा । हाहाकृत्वा कार्त्तिकेयो बोधयामास संसदि ॥
अव्यर्थमस्त्रं हे भ्रातर्गुरुपुत्रे कथं क्षिप ।
गुरुवद् गुरुपुत्रश्च मा भवान् हन्तुमर्हति ॥ ५ ॥
पर्शुं क्षिपन्तं कुपितं रक्तपद्मदलेक्षणम् । गणेशो रोधयामास निवर्त्तस्वेत्युवाच तम् ॥
पुनर्गणेशं रामश्च प्रेरयामास कोपतः । पपात पुरतो वेगाच्छिन्नमानो गजाननः ॥ ७ ॥
गजाननः समुत्थायधर्मं कृत्वातु साक्षिणम् । पुनस्तंबोधयामास जितक्रोधःशिवात्मजः
निवर्त्तस्व निवर्त्तस्वेत्युच्चार्य्य च पुनः पुनः । प्रवेशने ते का शक्तिरीश्वराज्ञां विनाप्रभो
मम भ्राता त्वमतिथिर्विद्यासम्बन्धतो ध्रुवम् । ईश्वरप्रियशिष्यश्च सहामि तेन हेतुना ॥
नह्यहं कार्त्तवीर्य्यश्च भूपास्ते क्षुद्रजन्तवः । अतो विप्रन जानासिमाञ्चविश्वेश्वरात्मजम्
क्षणं तिष्ठ निवर्त्तस्व समरे ब्राह्मणातिथे । क्षणान्तरे त्वयासार्द्धं यास्यामीश्वरसन्निधिम्

नारायण उवाच ।

हेरम्बवचनं श्रुत्वा प्रजहास पुनःपुनः । पर्शुं क्षेप्तुं मनश्चक्रे प्रणम्य शङ्करं हरिम् ॥१३॥
पर्शुं क्षिपन्तं कोपेन पर्शुरामं गजाननः । दृष्ट्वा मुमूर्षुं देवेशो धर्मं कृत्वातु साक्षिणम् ॥
चकारहस्तं योगेन स तदा कोटियोजनम् । योगीन्द्रस्तत्र सन्तिष्ठन्भ्रामयित्वा पुनःपुनः
शतधा वेष्टयित्वा तु भ्रामयित्वा तु तत्रवै । ऊर्द्ध्वमुत्तोल्य वेगेन क्षुद्राहिं गरुड़ो यथा
सप्तद्वीपांश्च शैलांश्च काञ्चनीं सप्त सागरान् । क्षणेन दर्शयामास रामं योगेन स्तम्भितम्

हस्तपादाद्यनाथं तं जड़ं सर्वाङ्गकम्पितम् । पुनस्तं भ्रामयामास दर्पितं दर्पनाशनः ॥१८॥
भूर्लोकञ्च भुवोलोकं स्वर्लोकञ्च सुरेश्वरः । जनलोकं तपोलोकं ध्रुवलोकञ्च तत्परम् ॥
गौरीलोकं शम्भुलोकं दर्शयामास नारद । दर्शयित्वा तु ब्रह्माण्डं स पपौ सप्तसागरान्
पुनरुद्गीरणं चक्रे सनक्रसागरोदकम् । तत्र तमर्पयामास गभीरे सागरोदके ॥ २१ ॥

मुमूर्षुं तं सन्तरन्तं पुनर्जग्राह लीलया ।
पुनस्तत्र भ्रामयित्वा ब्रह्माण्डादूर्द्ध्वमुत्तमम् ॥ २२ ॥

वैकुण्ठंदर्शयामास सलक्ष्मीकं चतुर्भुजम् । क्षणं तत्र भ्रामयित्वा योगीन्द्रो योगमायया
पुनः करञ्च योगेन वर्द्धयामास लीलया । गोलोकं दर्शयामास विरजाञ्च नदीश्वरीम् ॥
वृन्दावनं शतशृङ्गंशैलेन्द्रं रासमण्डलम् । गोपीगोपादिभिःसार्द्धं श्रीकृष्णं श्यामसुन्दरम्
द्विभुजं मुरलीहस्तं सस्मितं सुमनोहरम् । रत्नसिंहासनस्थञ्च रत्नभूषणभूषितम् ॥ २६॥
तेजसा कोटिसूर्य्याभं राधावक्षःस्थलस्थितम् । एवंकृष्णं दर्शयित्वाप्रणमय्य पुनःपुनः
क्षणेन लम्बमानस्य भ्रामयित्वा पुनः पुनः । दृष्ट्वा कृष्णमिष्टदेवं सर्वपापप्रणाशनम् ।

भ्रूणहत्यादिकं पापं भृगोर्दूरं चकार ह ॥ २८ ॥

न भवेद् यातना नष्टा विनाभोगेन पापजा । स्वल्पाञ्च बुभुजेरामो गतान्या कृष्णदर्शनात्
क्षणेन चेतनां प्राप्य पपात वेगतो भुवि । बभूव दूरीभूतश्च गणेशस्तम्भनं भृगोः ॥ ३०॥
सस्मार कवचं स्तोत्रं गुरुदत्तं सुदुर्लभम् । अभीष्टदेवं श्रीकृष्णं गुरुं शम्भुं जगद्गुरुम्
चिक्षेप पर्शुमव्यर्थं शिवतुल्यञ्च तेजसा । ग्रीष्ममध्याह्नमार्तण्डप्रभाशतगुणं मुने ॥३२ ॥
पितुरव्यर्थमस्त्रञ्च दृष्ट्वा गणपतिः स्वयम् । जग्राह वामदन्तेन नास्त्रं व्यर्थञ्चकारह ॥
निपत्य पर्शुर्वेगेन छित्वा दन्तं समूलकम् । जगाम रामहस्तञ्च महादेवबलेन च ॥ ३४ ॥
हाहेति शब्दमाकाशे देवाश्चक्रुर्महाभिया । वीरभद्रः कार्त्तिकेयः क्षेत्रपालाश्च पार्षदाः ॥
पपात भूमौ दन्तश्च सरक्तः शब्दमुच्चरन् । पपात गैरिकयुक्तश्च महास्फाटिकपर्वतः॥३६॥

शब्देन महता विप्र चकम्पे पृथिवी भिया ।
कैलासस्था जनाः सर्वे मूर्च्छामापुः क्षणं भिया ॥३७॥
निद्रा बभञ्ज निद्राया निद्रेशस्य जगत्प्रभोः ।

आजगाम बहिः शम्भुः पार्वत्या सह सम्भ्रमात् ॥ ३८ ॥

पुरो ददर्श हेरम्बं लोहितास्यं क्षतं नतम् । भग्नदन्तं जितक्रोधं सस्मितं लज्जितं मुने ॥

पप्रच्छ पार्वती शीघ्रं स्कन्दं किमिति पुत्रक ।
स च तां कथयामास वार्त्तां पौर्वापरीं भिया ॥ ४० ॥

चुकोप दुर्गा कृपया रुरोदच मुहुर्मुहुः । उवाच शम्भोः पुरतः पुत्रं कृत्वा स्ववक्षसि ॥

सम्बोध्य शम्भुं शोकेन भिया विनयपूर्वकम् । उवाचप्रणतासाध्वी प्रणतार्त्तिहरंपतिम् ।

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे गणपतिखण्डे गणेशदन्तभङ्गो नाम त्रिचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

चतुश्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

गणेशदन्तभङ्गं दृष्ट्वा रामं प्रति गौर्या उपालम्भः ।

पार्वत्युवाच ।

सर्वे जानन्ति जगति दुर्गां शङ्करकिङ्करीम् । अपेक्षारहिता दासी तस्याश्च जीवनं वृथा

ईश्वरस्य समाः सर्वास्तृणपर्वतजातयः । दासीपुत्रस्य शिष्यस्य कस्य दोष इतिप्रभो॥

विचारं कर्त्तुमुचितं त्वञ्च धर्मविदांवरः । वीरभद्रः कार्त्तिकेयः पार्षदाः सन्ति साक्षिणः

साक्ष्ये मिथ्यांको वदेद्वा द्वावेषां भ्रातरौ समौ। साक्ष्ये समे शत्रुमित्रेसतां धर्मनिरूपणे

साक्षी सभायां यत् साक्ष्यं जानन्नप्य न्यथावदेत् ।
कामतः क्रोधतो वापि लोभेन च भयेन च ॥ ५ ॥

स याति कुम्भीपाकञ्च निपात्य शतपूरुषम् ।
तैश्च सार्द्धं वसेत्तत्र यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥ ६ ॥

अहंविबोधितुं शक्ता निर्णेत्री च द्वयोरपि। तथापि तव साक्षात्तु ममाज्ञा निन्दिता श्रुतौ

किङ्कराणांप्रभा कुत्र नृपे वसति संसदि। उदिते भास्करे पृथ्व्यां खद्योतो हि यथाप्रभो

सुचिरं तपसा प्राप्तं त्वदीयं चरणाम्बुजम्। परित्यागभयेनैव सन्ततं भीतया मया ॥६॥
यत्किञ्चित् कोपशोकाभ्यामुक्तं मोहन तत्परम्।
तत् क्षमस्व जगन्नाथ पुत्रस्नेहाच्च दारुणात् ॥ १० ॥
त्वयायदि परित्यक्ता तदा पुत्रेणतेनकिम्। साध्व्याः सद्वंशजायाश्च शतपुत्राधिकःपतिः
असद्वंशप्रसूताया दुःशीला ज्ञानवर्जिता। स्वामिनं मन्यते नासौ पित्रोर्दोषेण कुत्सिता
कुत्सितं पतितं मूढं दरिद्रं रोगिणंजडम्। कुलजा विष्णुतुल्यञ्च कान्तं पश्यतिसन्ततम्
हुताशनोवा सूर्य्यो वा सर्वतेजस्विनां परः। पतिव्रतातेजसश्च कलां नार्हन्तिषोडशीम्
महादानानि पुण्यानि व्रतान्यनशनानिच। तपांसि पतिसेवायाः कलां नार्हन्तिषोडशीम्
पुत्रोवापिपितावापिवान्धवोऽथ सहोदरः। योषितांकुलजातानांन कश्चित्स्वामिनःसमः
इत्युक्त्वा स्वामिनं दुर्गा ददर्श पुरतो भृगुम्। शम्भोः पदाब्जं सेवन्तं निर्भयं तमुवाचह

पार्वत्युवाच।

अयेराममहाभाग ब्रह्मवंशोऽसिपण्डितः। पुत्रोऽसि जमदग्नेश्च शिष्योऽस्ययोगिनांगुरोः
माताते रैणुकासाध्वी पद्मांशासत्कुलोद्भवा। मातामहो वैष्णवश्चमातुलश्च ततोऽधिकः
त्वञ्च रैणुकभूपस्य मनुवंशोद्भवस्य च। दौहित्रो मातुलः साधुः शूरो विष्णुयशा नृपः
कस्य दोषेण दुर्द्धर्ष स्त्वं न जानेऽथशुद्धतः। येषां दोषैर्जनो दुष्टस्तव ते शुद्धमानसाः
अमोघं प्राप्य पर्शुञ्च गुरुञ्च करुणानिधिम्। परीक्षां क्षत्रिये कृत्वा बभूवास्य सुतेपुनः
गुरवे दक्षिणां दातुमुचितञ्च श्रुतौ श्रुतम्। भग्नोदन्तस्ततसुतस्य छेदयस्वच मस्तकम् ॥
गणेश्वरं रणे जित्वा स्थितश्चेदावयोःपुरः।
मा त्वं लब्ध्वाशिषो भूत्वा पूजितोऽभूर्जगत्त्रये ॥२४॥
पर्शुनाऽमोघवीर्य्येण शङ्करस्य वरेण च। हन्तुं शक्तः शृगालश्च सिंहं शार्दूलमाखुभुक्
त्वद्विधं लक्षकोटिञ्चहन्तुं शक्तो गणेश्वरः। जितेन्द्रियाणां प्रवरोनहि हन्तिचमक्षिकाम्
तेजसा कृष्णतुल्योऽयंकृष्णांशश्च गणेश्वरः। देवाश्चान्ये कृष्णकलाःपूजास्य पुरतस्ततः
व्रतप्रभावतः प्राप्तः शङ्करस्य वरेण च। शोकेनाति कठोरेण नहिसम्पद्धिपद्धिना ॥२८॥
इत्युक्त्वा पार्वती रोषात्त रामं हन्तुमुद्यता।

रामः सस्मार तं कृष्णं प्रणम्य मनसा गुरुम् ॥ २९ ॥
एतस्मिन्नन्तरे दुर्गा ददर्श पुरतो द्विजम् । अतीव वामनं बालं सूर्य्यकोटिसमप्रभम् ॥
शुक्लदन्तं शुक्लवस्त्रं शुक्लयज्ञोपवीतिनम् । दण्डिनं छत्रिणञ्चैव दधतं तिलकोज्ज्वलम्
दधतं तुलसीमालां सस्मितं सुमनोहरम् । रत्नकेयूरवलयं रत्नमालाविभूषितम् ॥ ३२ ॥
रत्ननूपुरपादञ्च स्फुद्रत्नमुकुटोज्ज्वलम् । रत्नकुण्डलयुग्मेन गण्डस्थलविराजितम् ।३३॥
स्थिरमुद्रां दर्शयन्तं भक्तं वामकरेण च । दक्षिणेऽभयमुद्राञ्च भक्तेशं भक्तवत्सलम् ॥
बालिकाबालकगणैर्नागरैः सस्मितैर्युतम् । कैलासवासिभिः सर्वैरावृद्धैरीक्षितं मुदा ॥
तं दृष्ट्वा सम्भ्रमात् शम्भुःसभृत्यःसहपुत्रकः । मूर्द्धर्ना भक्त्या प्रणनाम दुर्गाचदण्डवद्भुवि
आशिषं प्रददौ बालः सर्वेभ्यो वाञ्छितप्रदम् ।
तं दृष्ट्वा बालकाः सर्वे महाश्चर्य्यं ययुर्भिया ॥ ३७ ॥
दत्त्वा तस्मै शिवो भक्त्या चोपचाराणि षोड़श । पूजाञ्चकार श्रुत्युक्तांपरिपूर्णतमस्यच
तुष्टाव काण्वशाखोक्तस्तोत्रेण नतकन्धरः । पुलकाङ्कितसर्वाङ्गो भगवन्तं सनातनम्
रत्नसिंहासनस्थञ्च प्रोवाच शङ्करः स्वयम् । अतीवतेजसा सर्वं प्रच्छन्नीकृतमेव च ।४०

शङ्कर उवाच ।

आत्मारामेषु कुशलप्रश्नोऽतीवविडम्बनम् । ते शश्वत् कुशलाधाराः कुशलाकुशलप्रदाः
अद्य मे सफलंजन्मजीवितञ्च सुजीवितम् । प्राप्तस्त्वमतिथिर्ब्रह्मन् कृष्णसेवाफलोदयात्
परिपूर्णतमः कृष्णो लोकनिस्तारहेतवे । कलया पुण्यक्षेत्रे हि भारते च कृपानिधिः ॥
अतिथिः पूजितो येन पूजिताः सर्वदेवताः । अतिथिर्यस्य संतुष्टस्तस्य तुष्टो हरिःस्वयम्
स्नानेन सर्वतीर्थानां सर्वदानेन यत्फलम् । सर्वव्रतोपवासाभ्यां सर्वयज्ञेषु दीक्षया ॥४५
सर्वैस्तपोभिर्विविधैर्नित्यैर्नैमित्तिकादिभिः । तदेवातिथिसेवायाःकलांनार्हन्तिषोड़शीम्
अतिथिर्यस्य भग्नाशो याति रुष्टश्च मन्दिरात् ।
कोटिजन्मार्जितं पुण्यं तस्य नश्यति निश्चितम् ॥ ४७ ॥
स्त्रीगोघ्नश्च कृतघ्नश्च ब्रह्मघ्नो गुरुतल्पगः । पितृमातृगुरूणाञ्च निन्दको नरघातकः ॥४८

सन्ध्याहीनो स्वघाती च सत्यघ्नो हरिनिन्दकः ।

ब्रह्मस्वस्थाप्यहारी च मिथ्यासाक्ष्यप्रदायकः ॥ ४९ ॥

मित्रद्रोही कृतघ्नश्च वृषवाहश्च सूपकृत्। शवदाही ग्रामयाजी ब्राह्मणो वृषलीपतिः ॥
शूद्रश्राद्धान्नभोजी च शूद्रश्राद्धेषु भोजकः। कन्या विक्रयकारी च श्रीहरेर्नामविक्रयी ॥
लाक्षा मांस लौह रस तिलानां लवणस्य च। विक्रेता ब्राह्मणश्चैव तुरगाणां गवां तथा
एकादशीकृष्णसेवाहीनो विप्रश्च भारते। एते महापातकिनस्त्रिषु लोकेषु निन्दिताः ॥
कालसूत्रे च नरके पतन्तिब्रह्मणःशतम्। एतेभ्योऽप्यधिकःसोऽपियश्चातिथिपराङ्मुखः

नारायण उवाच।

शङ्करस्य वचः श्रुत्वा सन्तुष्टःश्रीहरिः स्वयम्। मेघगम्भीरया वाचा तमुवाचजगत्पतिः

विष्णुरुवाच।

श्वेतद्वीपादागतोऽहं ज्ञात्वा कोलाहलश्च वः। पर्शुरामस्य रक्षार्थं कृष्णभक्तस्यसाम्प्रतम्
नैतेषां कृष्णभक्तानामशुभं विद्यते क्वचित्। रक्षामि ताञ्चक्रहस्तो गुरुमन्युं विनाशिव
नाहं पाता गुरौ रुष्टे बलवद् गुरुहेलनम्। तत्परः पातकी नास्ति सेवाहीनो गुरोश्च यः
मान्यः पूज्यश्च सर्वेभ्यः सर्वेषांजनको भवेत्। अहो यस्यप्रसादेन सर्वान्पश्यतिमानवः

जनको जन्मदानाच्च रक्षणाच्च पिता नृणाम्।
ततो विस्तीर्णकरणात् कलया स प्रजापतिः ॥ ६० ॥

पितुः शतगुणैर्माता पोषणाद्गर्भधारणात्। वन्द्या पूज्या च मान्या च प्रसूरूपावसुन्धरा
मातुः शतगुणैर्वन्द्यः पूज्योमान्योऽन्नदायकः। यद्विनानश्वरोदेहो विष्णुश्चकलयान्नदः
अन्नदातुः शतगुणोऽभीष्टदेवः परः स्मृतः। गुरुस्तस्माच्छतगुणो विद्यामन्त्रप्रदायकः
अज्ञानतिमिराच्छन्नं ज्ञानदीपेन चक्षुषा। यः सर्वार्थं दर्शयति तत्परःकोऽपि बान्धवः
गुरुदत्तेन मन्त्रेण तपसेष्टसुखं लभेत्। सर्वज्ञत्वं सर्वसिद्धिं तत्परः कोऽपि बान्धवः ॥
सर्वं जयतिसर्वत्रविद्यया गुरुदत्तया। तस्मात् पूज्योहिजगति कोवाबन्धुस्ततोऽधिकः
विद्यान्धो वा धनान्धोवायोमूढ़ोनभजेद्गुरुम्। ब्रह्महत्यादिभिःपापैःसलिप्तोनात्रसंशयः
दरिद्रं पतितं क्षुद्रंनरबुद्ध्याचरेद् गुरुम्। सोऽशुचिस्तीर्थस्नातोऽपि नाधिकारीचकर्म्मसु
पितरं मातरं भार्य्यां गुरुपत्नीं गुरुं परम्। यो न पुष्णाति कापट्यात्समहापातकीशिव

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः। गुरुरेव परं ब्रह्म गुरुर्भास्कररूपकः॥ ७०॥
गुरुश्चन्द्रस्तथेन्द्रश्च वायुश्च वरुणोऽनलः। सर्वरूपोहि भगवान् परमात्मा स्वयं गुरुः।

नास्ति वेदात् परं शास्त्रं नहि कृष्णात् परः सुरः।
नास्ति गङ्गासमं तीर्थं न पुष्पं तुलसीपरम्॥ ७२॥

नास्ति क्षमावती भूमेः पुत्रान्नास्त्यपरः प्रियः। न च दैवात्पराशक्तिर्व्रतं नैकादशींविना
शालग्रामात् परो यन्त्रो न क्षेत्रं भारतात्परम्। परं पुण्यस्थलानाञ्च पुण्यंवृन्दावनंयथा
मोक्षदानांयथाकाशी वैष्णवानांयथाशिवः। न पार्वतीपरासाध्वी न गणेशात्परो वशी
नच विद्यासमोवन्धुर्नास्तिकश्चिद्गुरोः परः। विद्यादातुः पुत्रदारौ तत्समौनात्रसंशयः
गुरुस्त्रियाश्च पुत्रे च बभूव रामहेलनम्। परं सम्मार्ज्जनां कर्त्तुमागतोऽहं तवालयम्॥

नारायण उवाच।

इत्येवमुक्त्वा शम्भुश्च दुर्गां सम्बोध्य नारद। उवाच भगवान् तत्र सत्यसारं परं वचः

विष्णुरुवाच।

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि मदीयं वचनं शुभम्। नीतियुक्तं वेदसारं परिणामसुखावहम्॥
यथा ते गजवक्त्रश्च कार्त्तिकेयश्च पार्वती। तथा परशुरामश्च भार्गवो नात्र संशयः।८०
नास्त्येषु स्नेहभेदश्च तव वा शङ्करस्य च। विचार्य्य सर्वं सर्वज्ञे कुरु मातर्यथोचितम्॥
पुत्रेण सार्द्धं पुत्रस्य विवादो दैवदोषतः। दैवं हन्तुं कोहि शक्तो दैवञ्च बलवत्परम्॥
पुत्राभिधानं वेदेषु पश्य वत्से वरानने। एकदन्त इति ख्यातं सर्वदेवनमस्कृतम्॥८३॥
पुत्रनामाष्टकं स्तोत्रं सामवेदोक्तमीश्वरि। शृणुष्वावहितं मातः सर्वविघ्नहरं परम्॥

विष्णुरुवाच।

गणेशमेकदन्तञ्च हेरम्बं विघ्ननायकम्। लम्बोदरं शूर्पकर्णं गजवक्त्रं गुहाग्रजम्॥८५॥
नामाष्टार्थञ्च पुत्रस्य शृणु मातर्हरप्रिये। स्तोत्राणां सारभूतञ्च सर्वविघ्नहरं परम्॥८६
ज्ञानार्थवाचकोगश्च णश्च निर्वाणवाचकः। तयोरीशं परं ब्रह्म गणेशं प्रणमाम्यहम्॥
एकशब्दः प्रधानार्थो दन्तश्च बलवाचकः। बलं प्रधानं सर्वस्मादेकदन्तं नमाम्यहम्॥८८

दीनार्थवाचको हेश्च रम्बः पालकवाचकः। दीनानां परिपालकं हेरम्बं प्रणमाम्यहम्॥

विपत्तिवाचको विघ्नोनायकःखण्डनार्थकः । विपत्खण्डनकारकं नमामिविघ्ननायकम्
विष्णुदत्तैश्च नैवेद्यैर्यस्य लम्बोदरं पुरा । पित्रा दत्तैश्च विविधैर्वन्दे लम्बोदरञ्च तम् ॥
शूर्पाकारौ च यत्कर्णौ विघ्नवारणकारणौ । सम्पदौ ज्ञानरूपौ च शूर्पकर्णं नमाम्यहम्
विष्णुप्रसादपुष्पञ्च यन्मूर्द्धिन मुनिदत्तकम् । तद्गजेन्द्रवक्त्रयुक्तं गजवक्त्रं नमाम्यहम् ॥
गुहस्याग्रे च जातोऽयमाविर्भूतो हरालये । वन्दे गुहाग्रजं देवं सर्वदेवाग्रपूजितम् ॥६४॥
एतन्नामाष्टकं दुर्गे नामभिः संयुतं परम् । पुत्रस्य पश्य वेदे च तदा कोपं यथा कुरु ॥
एतन्नामाष्टकं स्तोत्रं नानार्थसंयुतंशुभम् । त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नित्यंससुखी सर्वतोजयी
ततो विघ्नाः पलायन्ते वैनतेयाद् यथोरगाः । गणेश्वरप्रसादेन महाज्ञानी भवेद् ध्रुवम्॥
पुत्रार्थीलभते पुत्रंभार्य्यार्थीविपुलांस्त्रियम् । महाजड़ः कवीन्द्रश्च विद्यायाश्चभवेद्ध्रुवम

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे गणपतिखण्डे नारायणनारदसंवादे गणेश-
स्तोत्रकथनं नाम चतुश्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

पञ्चचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

गौरीं बोधयित्वा रामंप्रति स्तवादिकरणे विष्णोरुपदेशः ।

नारायण उवाच ।

पार्वतीं बोधयित्वा तु विष्णूराममुवाच ह । हितं सारं नीतिसारं परिणामसुखावहम्

विष्णुरुवाच ।

रामत्वमधुना सत्यमपराधी श्रुतेर्म्मते । कोपात्कृत्वा दन्तभग्नं गणेशस्य स्थितोऽशिवे
मयोक्तेनैवस्तोत्रेणस्तुत्वागणपतिं परम् । काण्वशाखोक्तस्तोत्रेणस्तौहिदुर्गां जगत्प्रसूम्
श्रीकृष्णस्य परा शक्ति बुद्धिरूपा जगत्प्रभोः । अस्याश्चतव रुष्टायां हताबुद्धिर्भविष्यति
सर्वशक्तिस्वरूपेयमनया शक्तिमज्जगत् । अनया शक्तिमान् कृष्णो निर्गुणः प्रकृतेः परः ।
सृष्टिं कर्त्तुं नशक्तश्च ब्रह्मा शक्त्याऽनया विना । वयमस्याः प्रसूताश्च ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः

सुरसङ्घेऽसुरग्रस्ते काले घोरतरे द्विज । तेजःसु सर्वदेवानामाविर्भूता पुरा सती ॥७॥
कृष्णाज्ञयाऽसुरान् हत्वादत्त्वा तेभ्यःपदन्ततः । दक्षपत्न्यां जनिं लेभे दक्षस्य तपसापुरा
भार्य्या भूत्वाशङ्करस्य पुनः पत्युश्चनिन्दया । देहं त्यक्त्वा शैलपत्न्यां जनिं लेभेपुरासती
शङ्करस्तपसालब्धोयोगीन्द्राणां गुरोर्गुरुः । लब्धोगणपतिः पुत्रः कृष्णांशःकृष्णसेवया
यमेव ध्यायसे नित्यं तं न जानासि बालक । स एव भगवान्कृष्णश्चांशेन पार्वतीसुतः

पुटाञ्जलिर्नतो भूत्वा स्तौहि दुर्गां शिवप्रियाम् ।
शिवां शिवप्रदां शैवां शिवबीजां शिवेश्वरीम् ॥ १२ ॥

शिवायाः स्तोत्रराजेन कृतेन शूलिना पुरा । त्रिपुरस्य वधे घोरे ब्रह्मणा प्रेरितेन च ॥
इत्युक्त्वा श्रीपदं शीघ्रं जगाम श्रीनिकेतनम् । गते हरौ हरिं स्मृत्वारामस्तांस्तोतुमुद्यतः
विष्णुदत्तेन स्तोत्रेण सर्वविघ्नहरेण च । धर्म्मार्थकाममोक्षाणां कारणेन च नारद ॥
पुटाञ्जलियुतो भूत्वा स्नात्वा गङ्गोदके शुभे । गुरुं प्रणम्य भक्तेशं धृत्वा धौतेचवाससी
आचम्यनत्वा मूद्धर्ना तां भक्तिनम्रात्मकन्धरः । पुलकाङ्कितसर्वाङ्गश्चानन्दाश्रुसमन्वितः

परशुराम उवाच ।

श्रीकृष्णस्य च गोलोके परिपूर्णतमस्य च ।
आविर्भूता विग्रहतः पुरा सृष्ट्युन्मुखस्य च ॥ १८ ॥

सूर्य्यकोटिप्रभायुक्ता वस्त्रालङ्कारभूषिता । वह्निशुद्धांशुकाधाना सुस्मिता सुमनोहरा ॥
नवयौवनसम्पन्ना सिन्दूरविन्दुशोभिता । ललितं कवरीभारं मालतीमाल्यमण्डितम् ॥

अहोऽनिर्वचनीया त्वं चार्वीं मूर्त्तिञ्च बिभ्रती ।
मोक्षप्रदा मुमुक्षूणां महद्विष्णोर्विधिः स्वयम् ॥ २१ ॥

मुमोह लक्षमात्रेण दृष्ट्वा त्वां सर्वमोहिनीम् । बालेसंभूयसहसासस्मिताधाविता पुरा ॥
सद्भिःख्याता तेन राधामूलप्रकृतिरीश्वरी । कृष्णस्त्वांसहसाहूय वीर्य्याधानञ्चकारह ॥
ततोडिम्बंमहदजज्ञे ततोभूतो महाविराट् । यस्यैवलोमकूपेषु ब्रह्माण्डान्यखिलानि च ।

तत् शृङ्गारक्रमेणैव त्वन्निःश्वासो बभूवह ।

स निःश्वासो महावायुः स विराड् विश्वधारकः ॥२५॥

तव घर्म्मजलेनैव पुप्लाव विश्वगोलोकम् । स विराड् विश्वनिलयोजलराशिर्वभूवह ॥
ततस्त्वं पञ्चधा भूय पञ्चमूर्त्तिश्च बिभ्रती । प्राणाधिष्ठात्री यामूर्त्तिःकृष्णस्य परमात्मनः
कृष्णप्राणाधिकां राधां तां वदन्ति पुराविदः ॥२७॥
वेदाधिष्ठात्री या मूर्त्ति र्वेदशास्त्रप्रसूरपि । तां सावित्रीं शुद्धरूपां प्रवदन्ति मनीषिणः ॥
ऐश्वर्य्याधिष्ठात्री मूर्त्तिः शान्तिश्च शान्तरूपिणी ।
लक्ष्मीं वदन्ति सन्तस्तां शुद्धां सत्वस्वरूपिणीम् ॥२६॥
रागाधिष्ठात्री या देवी शुक्लमूर्त्तिः सतां प्रसूः ।
सरस्वतीं तां शास्त्रज्ञां शास्त्रज्ञाः प्रवदन्त्यहो ॥३०॥
बुद्धिर्विद्यासर्वशक्तेर्या मूर्त्तिरधिदेवता । सर्वमङ्गलमङ्गल्या सर्वमङ्गलरूपिणी ॥३१॥
सर्वमङ्गलवीजस्य शिवस्य मन्दिरेऽधुना ॥३२॥
शिवे शिवस्वरूपा त्वं लक्ष्मीर्नारायणान्तिके ।
सरस्वती च सावित्री वेंदसू र्ब्रह्मणः प्रिया ॥३३॥
राधा रासेश्वरस्यैव परिपूर्णतमस्य च । परमानन्दरूपस्य परमानन्दरूपिणी ॥३४॥
त्वत्कलांशांशकलया देवानामपि योषितः ॥३५॥
त्वद्विद्यायोषितः सर्वास्त्वंसर्वबीजरूपिणी । छायासूर्य्यस्यचन्द्रस्यरोहिणीसर्वमोहिनी
शची शक्रस्य कामस्य कामिनी रतिरीश्वरी । वरुणानी जलेशस्यवायोःस्त्रीप्राणवल्लभा
वह्नेः प्रिया हि स्वाहा च कुवेरस्य च सुन्दरी । यमस्य तु सुशीलाचनैर्ऋतस्यचकैटभी
ईशानस्य शशिकला शतरूपा मनोःप्रिया । देवहूती कर्दमस्य वशिष्ठस्याप्यरुन्धती॥३६
अदिति र्देवमाता या मुद्रागस्त्यमुनेः प्रिया । अहल्या गौतमस्यापि सर्वाधारावसुन्धरा
गङ्गा च तुलसी चापि पृथिव्यां याःसरिद्वरा ।
एताः सर्वाश्च याःह्यन्याः सर्वास्त्वत्कलयाम्बिके ॥४१॥
गृहलक्ष्मी गृंहे नृणां राजलक्ष्मीश्च राजसु । तपस्विनां तपस्या त्वंगायत्री ब्राह्मणस्यच
सतां सत्वस्वरूपा त्वमसतां कलहाङ्कुरा । ज्योतीरूपानिर्गुणस्यशक्तिस्त्वंसगुणस्यच
सूर्य्ये प्रभास्वरूपा त्वं दाहिका च हुताशने । जले शैत्यस्वरूपा च शोभारूपा निशाकरे

त्वं भूमौ गन्धरूपा च आकाशे शब्दरूपिणी। क्षुत्पिपासादयस्त्वञ्चजीविनांसर्वशक्तयः
सर्वबीजस्वरूपा त्वं संसारे साररूपिणी। स्मृतिर्मेधा च बुद्धिर्वाज्ञानशक्तिर्विपश्चिताम्
कृष्णेन विद्या या दत्ता सर्वज्ञानप्रसूः शुभा। शूलिने कृपया सा त्वंयतोमृत्युञ्जयःशिवः
सृष्टिपालनसंहारशक्तयस्त्रिविधाश्च याः। ब्रह्मविष्णुमहेशानां सा त्वमेव नमोऽस्तु ते
मधुकैटभभीत्या च त्रस्तोधाताप्रकम्पितः। स्तुत्वामुमोचयांदेवींतांमूद्धर्नाप्रणमाम्यहम्
मधुकैटभयोर्युद्धेत्रातासौविष्णुरीश्वरीम्। बभूवशक्तिमान्स्तुत्वातांदुर्गांप्रणमाम्यहम्
त्रिपुरस्य महायुद्धे सरथे पतिते शिवे। यां तुष्टुवुः सुराः सर्वे तां दुर्गां प्रणमाम्यहम्
विष्णुना वृषरूपेण स्वयं शम्भुः समुत्थितः। जघान त्रिपुरंस्तुत्वातांदुर्गांप्रणमाम्यहम्

यदाज्ञया वाति वातः सूर्य्यस्तपति सन्ततम्।
वर्षतीन्द्रो दहत्यग्निस्तां दुर्गां प्रणमाम्यहम् ॥५३॥

यदाज्ञया हि कालश्च शश्वद् भ्रमति वेगतः। मृत्युश्चरतिजन्त्वोघेतांदुर्गांप्रणमाम्यहम्

स्रष्टा सृजति सृष्टिञ्च पाता पाति यदाज्ञया।
संहर्त्ता संहरेत् काले तां दुर्गां प्रणमाम्यहम् ॥५५॥
ज्योतिः स्वरूपो भगवान् श्रीकृष्णो निर्गुणः स्वयम्।
यया विना न शक्तश्च सृष्टिं कर्त्तुं नमामि ताम् ॥५६॥

रक्ष रक्ष जगन्मातरपराधं क्षमस्व मे। शिशूनामपराधेन कुतो माता हि कुप्यति ॥५७
इत्युक्त्वा पर्शुरामश्च प्रणम्य तां रुरोदह। तुष्टा दुर्गा सम्भ्रमेण चाभयञ्च वरंददौ ।५८
अमरो भव हे पुत्र वत्स सुस्थिरतां व्रज। सर्वप्रसादात् सर्वत्रजयोऽस्तु तव सन्ततम्
सर्वान्तरात्मा भगवांस्तुष्टोऽस्तु सन्ततं हरिः। भक्तिर्भवतुतेकृष्णेशिवदे च शिवे गुरौ
इष्टदेवे गुरौ यस्य भक्तिर्भवति शाश्वती। तं हन्तुं नहि शक्ताश्च रुष्टाश्चसर्वदेवताः ॥६१

श्रीकृष्णस्य च भक्तस्त्वं शिष्योहि शङ्करस्य च।
गुरुपत्नीं स्तौसि यस्मात् कस्त्वां हन्तुमिहेश्वरः ॥६२॥

अहो न कृष्णभक्तानामशुभं विद्यते क्वचित्। अन्यदेवेषु ये भक्ता न भक्तावानिरङ्कुशाः॥

चन्द्रमा बलवां स्तुष्टो येषां भाग्यवतां भृगो। तेषां तारागणारुष्टाःकिंकुर्वन्तिच दुर्बलाः

यस्य तुष्टः सभायाञ्चेन्नरदेवो महान् सुखी। तस्य किंवाकरिष्यन्तिरुष्टाभृत्याश्चदुर्बलाः
इत्युक्त्वा पार्वती तुष्टा दत्त्वा रामं शुभाशिषम्। जगामान्तःपुरं तूर्णं हरिशब्दोबभूवह॥

काण्वशाखोक्तस्तोत्रञ्च पूजाकाले च यः पठेत्।
यात्रा काले च प्रात र्वा वाञ्छितार्थं लभेत् ध्रुवम् ॥६७॥
पुत्रार्थी लभते पुत्रं कन्यार्थी कन्यकां लभेत्।
विद्यार्थी लभते विद्यां प्रजार्थी चाप्नुयात् प्रजाम्।
भ्रष्टराज्यो लभेद्राज्यं धननष्टो धनं लभेत् ॥६८॥

यस्य रुष्टो गुरुर्देवो राजा वा बान्धवोऽथवा। तस्य तुष्टश्चवरदः स्तोत्रराजप्रसादतः॥
दस्युग्रस्तोऽहिग्रस्तश्च शत्रुग्रस्तोभयानकः। व्याधिग्रस्तोभवेन्मुक्तःस्तोत्रस्मरणमात्रतः
राजद्वारे श्मशाने च कारागारे च बन्धने। जलराशौ निमग्नश्च मुक्तोभवति स्तोत्रतः
स्वामिभेदे पुत्रभेदे मित्रभेदे च दारुणे। स्तोत्रस्मरणमात्रेण वाञ्छितार्थंलभेद्ध्रुवम्॥
कृत्वा हविष्यं वर्षञ्च स्तोत्रराजं शृणोति या। भक्त्यादुर्गाञ्चसम्पूज्यमहावन्ध्याप्रसूयते
लभते सा दिव्यपुत्रंज्ञानिनंचिरजीविनम्। असौभाग्याचसौभाग्यं षण्मासश्रवणाल्लभेत्

नवमासं काकवन्ध्या मृतवत्सा च भक्तितः।
स्तोत्रराजं या शृणोति सा पुत्रं लभते ध्रुवम्॥७५॥
कन्यामाता पुत्रहीना पञ्चमासं शृणोति या।
घटे सम्पूज्य दुर्गाञ्च सा पुत्रं लभते ध्रुवम् ॥७६॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे गणपतिखण्डे दुर्गास्तोत्रं
नाम पञ्चचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः।

षट्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

गणेशाय तुलसीदान निषेधकथनम् ।

नारायण उवाच ।

स्तुत्वा दुर्गां पर्शुरामो हर्षविह्वलमानसः । हरिणोक्तेन स्तोत्रेण प्रतुष्टाव गणेश्वरम् ॥
पूजाञ्चकार भक्त्या च नैवेद्यैर्विविधैरपि । धूपैर्दीपैश्च गन्धैश्च पुष्पैश्च तुलसीं विना ॥२
सम्पूज्य भ्रातरं भक्त्या स रामः शङ्कराज्ञया । गुरुपत्नीं गुरुं नत्वा गमनं कर्त्तुमुद्यतः ॥

नारद उवाच ।

पूजां भगवतश्चक्रे रामो गणपतेर्यदा । नैवेद्यैर्विविधैः पुष्पैस्तुलसीञ्च विना कथम् ॥
तुलसी सर्वपुष्पाणां मान्या धन्या मनोहरा । कथं पूजां सारभूतां न गृह्णाति गणेश्वरः

नारायण उवाच ।

शृणु नारद वक्ष्येहमितिहासं पुरातनम् ।
ब्रह्मकल्पस्य वृत्तान्तं निगूढञ्च मनोहरम् ॥६॥

एकदा तुलसी देवी प्रोद्भिन्ननवयौवना । तीर्थं भ्रमन्ती तपसा नारायणपरायणा ॥७॥
ददर्श गङ्गातीरे सा गणेशं यौवनान्वितम् । अतीव सुन्दरं शुद्धं सस्मितंपीतवाससम् ॥
चन्दनोक्षित सर्वाङ्गं रत्नभूषणभूषितम् । ध्यायन्तं कृष्णपादाब्जं जन्ममृत्युजरापहम् ॥
जितेन्द्रियाणां प्रवरं योगीन्द्राणां गुरोर्गुरुम् । अरूपहार्य्यं निष्कामं सकामातमुवाच ह

तुलस्युवाच ।

अये किं ध्यायसे देव शान्तरूप गजानन । कथं लम्बोदरो देहो गजवक्त्रं कथं तव ॥
एकदन्तः कथं वक्त्रे वदामृष्य च कारणम् । त्यज ध्यानं महाभाग सायङ्कालउपस्थितः
इत्युक्त्वा तुलसी देवी प्रजहास पुनः पुनः । परं चेतसि दग्धा सा कामवाणैः सुदारुणैः
गणेशस्य प्रधानाङ्गे दत्त्वा किञ्चिज्जलं मुने । जघान तर्जन्यग्रेण निष्पन्दंकृष्णमानसम्
बभूव ध्यानभङ्गश्च तस्य नारद चेतनम् । दुःखञ्च ध्यानभेदेन सद्भिच्छेदोहि शोकदः ॥

ध्यानं त्यक्त्वा हरिं स्मृत्वा ददर्श कामिनीं पुरः ।
नवयौवनसम्पन्नां सस्मितां कामपीड़िताम् ॥१६॥

लम्बोदरश्च तां दृष्ट्वा परं विनयपूर्वकम् ।
उवाच सस्मितः शान्तः शान्तां कामातुरां वशी ॥१७॥

गणेश्वर उवाच ।

का त्वं वत्से कस्य कन्ये मातर्मां ब्रूहि किं शुभे ।
पापदोऽशुभदः शश्वद् ध्यानभङ्ग स्तपस्विनाम् ॥१८॥
कृष्णः करोतु कल्याणं हन्तु विघ्नंकृपानिधिः । मद्ध्यानभङ्गजो दोषोनाशुभवतुते शुभे
गणेशचनं श्रुत्वा तमुवाच स्मरातुरा । सस्मितं सकटाक्षञ्च देवं मधुरया गिरा ॥२०

तुलस्युवाच ।

धर्मात्मजस्य कन्याऽहमप्रौढ़ा च तपस्विनी ।
तपस्या मे स्वामिनोऽर्थं त्वं स्वामी भव मे प्रभो ॥ २१ ॥
तुलसी वचनं श्रुत्वा गणेशः श्रीहरिं स्मरन् । तामुवाच महाप्राज्ञः प्राज्ञीं मधुरयागिरा ॥

गणेश उवाच ।

हे मातर्नास्ति मे वाञ्छा घोरैदारपरिग्रहे । दारग्रहोहि दुःखाय न सुखाय कदाचन ॥
हरिभक्तेर्व्यवायश्च तपस्यानाशहेतुकः । मोक्षद्वारकपाटञ्च भवबन्धनपाशकः ॥ २४ ॥
गर्भवासकरः शश्वत् तत्वज्ञाननिकृन्तनः । संशयानां समारम्भोयस्त्याज्यो वृषभैरपि ॥
गेहोऽयं करणानाञ्च सर्वमायाकरण्डकः। साहसानां समूहश्च दोषाणाञ्च विशेषतः॥
निवर्त्तस्व महाभागे पश्यान्यं कामुकं पतिम् ।
कामुकेनैव कामुक्या सङ्गमो गुणवान् भवेत् ॥ २७ ॥
इत्येवंवचनंश्रुत्वा कोपात्तु सा शशापह । दारग्रहस्तेभविता सा साध्वीतिगणेश्वरम् ॥
इत्याकर्ण्य सुरश्रेष्ठ स्तांशशापशिवात्मजः । देवित्वमसुरग्रस्ता भविष्यति न संशयः ॥
तत्पश्चान्महतां शापाद्वृक्षत्वं भवितेति च । महातपस्वीत्युक्त्वैव विरराम च नारद ॥
शापं श्रुत्वा तु तुलसीप्ररुरोद पुनःपुनः । तुष्टावच सुरश्रेष्ठं स प्रसन्न उवाच ताम् ॥३१॥

गणेश्वर उवाच ।

पुष्पाणां सारभूता त्वं भविष्यसि मनोरमे । कलांशेन महाभागे स्वयं नारायणप्रिया ॥

प्रिया त्वं सर्वदेवानांश्रीकृष्णस्यविशेषतः । पूजाविमुक्तिदानॄणांममत्याज्याच सर्वदा ॥
इत्युक्त्वातां सुरश्रेष्ठो जगाम तपसे पुनः । हरेराराधनव्यग्रो बदरीसन्निधिं ययौ ॥३४॥
जगाम तुलसीदेवी हृदयेन विदूयता । निराहारा तपश्चक्रे पुष्करे लक्षवर्षकम् ॥३५॥
पश्चान्मुनीन्द्र शापेन गणेशस्य च नारद । सा प्रिया शङ्खचूड़स्य बभूव सुचिरं मुने ॥
ततः शङ्करशूलेन संममारासुरेश्वरः । सा कलांशेन वृक्षत्वं ययौ नारायणप्रिया ॥३७॥
कथितश्चेतिहासस्ते श्रुतो धर्ममुखात् पुरा । मोक्षप्रदश्च सारश्च पुराणे न प्रकीर्त्तितः ॥
पर्शुरामो महाभागो जगाम तपसे वनम् । प्रणम्य शङ्करं दुर्गां संपूज्य च गणेश्वरम् ॥
पूजितो वन्दितः सर्वैःसुरेन्द्रमुनिपुङ्गवैः । पार्वती शिवसान्निध्ये तत्रतस्थौ गणेश्वरः ॥
इदंगणपतेः खण्डं यः शृणोति समाहितः । स राजसूययज्ञस्य फलमाप्नोति निश्चितम् ॥
अपुत्रो लभते पुत्रं श्रीगणेशप्रसादतः । धीरं वीरञ्च धनिनं गुणिनं चिरजीविनम् ॥
यशस्विनं पुत्रिणञ्च विद्वांसं सुकवीश्वरम् । जितेन्द्रियाणां प्रवरं दातारंसर्वसम्पदाम् ॥
सुपवित्रं सदाचारं प्रशंस्यं वैष्णवं लभेत् । अहिंसकं दयालुञ्च तत्त्वज्ञानविशारदम् ॥
भक्त्या गणेशं संपूज्य वस्त्रालङ्कारचन्दनैः । श्रुत्वा गणपतेः खण्डंमहावन्ध्या प्रसूयते ॥

मृतवत्सा काकवन्ध्या ब्रह्मन् पुत्रं लभेद् ध्रुवम् ।
अदूषितं दूषितापि शुद्धा चैव लभेत् सुतम् ॥४६॥

संपूर्णब्रह्मवैवर्त्तं श्रुत्वा यल्लभते फलम् । तत्फलं लभते मर्त्यः श्रुत्वेदं खण्डमुत्तमम् ॥
वाञ्छाङ्कृत्वा तु मनसि शृणोति परमास्थितः । तस्मैददातिसर्वेष्टंसुरश्रेष्ठोगणेश्वरः
श्रुत्वागणपतेः खण्डं विघ्ननाशाय यत्नतः । स्वर्णयज्ञोपवीतञ्च श्वेतछत्राश्वमाल्यकम् ॥
प्रदीयते वाचकाय स्वस्तिकं तिललड्डुकम् । परिपक्वफलान्येव देशकालोद्भवानि च ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारद संवादे गणपतिखण्डे
षट्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

इति गणपतिखण्डं समाप्तम् ।

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

ब्रह्मवैवर्तपुराणस्थ ब्रह्म-प्रकृति-गणेशखण्डानां शुद्धिपत्रम्

पृष्ठाङ्काः	पङ्क्तिः	अशुद्धपाठः	शुद्धपाठः
६	१६	रक्षसः परमात्मानः	वक्षसःपरमात्मनः
१०	१५	सम्पुटाञ्जलिः	सम्पुटाञ्जलिः
१३	५	जृम्भनम्	जृम्भणम्
"	६	काटि	कोटि
१६	२२	कृष्णाङ्घि	कृष्णाङ्घ्रि
१६	१४	ददानि	दानानि
"	२२	तपखिनां	तपस्विनां
२०	१०	स्नेहात्	स्नेहात्
"	१२	ध्रवं	ध्रुवं
२२	२०	श्चक्रे	श्चक्रे
२४	७	तथौ	तस्थौ
२५	१६	यौबनः	यौवनः
२७	१३	पार्श्वदाः	पार्षदाः
"	१५	प्रियाणाञ्च	प्रियाणाञ्च
२८	१७	दुर्द्धषं	दुर्द्धर्षं
३०	१०	प्रणवल्लभम्	प्राणवल्लभम्
३२	७	गौतमाज्ञशे	गौतमाज्ञशे
३४	१२	पुषाञ्च	पुंसाञ्च

३५	११	करिष्यसि	करिष्यामि
”	२१	स्थिरस्त्वं	स्थिरत्वं
३७	३	कन्यायायां	कन्यायां
३८	३	शास्त्रश्च	शास्त्रश्च
३९	१०	स्निग्ध	स्निग्ध
”	१५	दुष्टासस्सम्भोग	दुष्टासम्भोग
”	१८	अकीर्तित	अकीर्ति
४०	६	द्वजश्च	द्विजश्च
”	१४	प्रयतौ	प्रययौ
४१	११	बभूवस्तु	बभूवतु
४३	१९	वविष्ठ	वशिष्ठ
”	२४	सर्वविश्वं	सर्वविश्वं पूतम्
४४	५	याबत्	यावत्
”	८	वंवरा	वंरा
”	२३	शिरायु	स्थिरायु
४६	६	जृम्भन	जृम्भण
४७	१८	निश्चिमम्	निश्चितम्
५१	२२	ब्रह्मणानां	ब्राह्मणानां
५४	१७	कृष्णववर्णां	कृष्णवर्णां
”	२५	स्ततन्धान्	स्तनन्धान्
५५	१७	सर्वापच्छन्ति	सर्वापच्छान्ति
५६	१९	ब्राह्मण्स्य	ब्राह्मणस्य
५७	२	यद्व	यत्
५८	८	शाश्वद्	शाश्वद्

५८	१३	प्राविष्युणो	प्रावृष्युष्णो
५९	५	सेवेत्	सेवेत
,,	११	चनकं	चणकं
६३	३	श्रोत्रेभिः	श्रोत्रिभिः
,,	९	निक्रति	निष्क्रति
,,	१४	हरित्रेति	हरिरत्रेति
६६	२०	कलम्	फलम्
,,	१५	प्रकाण	प्रकारेण
,,	२०	प्रध्याह्न	मध्याह्न
७५	२	प्राय	प्राप
,,	६	ग्रीष्य	ग्रीष्म
७७	२३	भक्तानुह	भक्तानुग्रह
,,	२५	भर्षिता	भूषिता
८०	१०	स्वरूश्च	स्वरूपश्च
८३	११	योगिन्द्राणां	योगीन्द्राणां
,,	१६	परिप्रहार्थं	परिग्रहार्थं
८४	२	साध्या	साध्याः
,,	३	बत्स	वत्स
८५	२१	प्रश्चात्	पश्चात्
८८	१३	हृद्पद्मे	हृत्पद्मे
,,	१५	ध्यायेद्दिष्टं	ध्यायेदिष्टं
९०	१९	ब्रह्मणा	ब्रह्मण
९२	१३	गुरुपदिष्टं	गुरूपदिष्टं
,,	१५	पात्रं	पात्रं

१०३	२	क्षत्	क्षुत्
१०४	६	परना	परमा
१०५	३	स्वरूापा	स्वरूपा
"	८	य	या
१०५	१६	पुत्रपौत्रा	पुत्रपौत्र
१०७	२३	प्यात्तं	व्याप्तं
१०८	१४	ग्राव	ग्राम
१०९	८	पश्चात्	पश्चान्
११३	४	कृष्णे	श्रीकृष्णे
११५	१	नीर्णय	निर्णय
"	२	क्षद्	क्षुद्
११६	१३	शयामो	श्यामो
"	१७	श्यानं	शयानं
१२८	८	चरिष्यमि	चरिष्यामि
१३०	३	तथौ	तस्थौ
१३१	१४	भवष्यन्ति	भविष्यन्ति
१३२	१०	कन्या	कन्य
१३३	५	वेदाज्ञा	वेदज्ञा
१३६	६	पर्य्यपस्थिता	पर्य्युपस्थिता
"	१४	स्दूदुर्ध्वै	स्तदूद्ध्र्वे
१४०	११	पृथ्वौ	पृथ्वी
"	१८	स्वरुपा	स्वरूपा
"	२१	सैव्या	शैव्या
१४२	१२	युगचादि	युगाद्यादि

”	१४	दशगुणं	दशगुणं
१४३	३	शततं	सततं
१४६	१०	मन्दकिनी	मन्दाकिनी
१४७	१०	भगीरथी	भागीरथी
”	११	पाख्यानन	पाख्यान
१५०	२१	शुभद्रां	सुभद्रां
१५२	१३	स्वरूपापै	स्वरूपायै
१५३	१२	परमात्मन	परमात्मान
१५४	१७	दास्यमी	दास्यामी
१५७	१०	पद्येर्षा	पद्येर्ष्या
”	१६	परमात्मन	परमात्मान
१५८	६	वृषध्वश्च	वृषध्वजश्च
१६१	१३	किश्च	किञ्चि
”	२१	न यौवनम्	नव यौवनम्
”	२५	पारायणः	परायणः
१६५	२०	शाप	शापा
१६६	७	विवर्जितः	वर्जितः
१७०	२	मुमुक्षणा	मुमुक्षूणा
”	१६	वास्तुवश्च	वास्तवश्चः
१७५	२५	तच्छ्रवा	तच्छ्रुत्वा
१७७	१०	स्पर्श्ये	स्पर्शि
१७८	२५	खङ्गं	खड्गं
१८०	२४	सुप्रातौ	सुप्रीतौ
१८१	१५	त्रीकृष्णं	श्रीकृष्णं

१८६	१४	मव्यार्थां	मव्यर्थां
१८७	१५	जगाह	जग्राह
"	२३	महद्भुतन्	महदद्भुतम्
१९४	११	वर्त्तला	वर्त्तुला
१९५	११	तिर्थानि	तीर्थानि
"	१२	त्यन्ते	प्यन्ते
"	१५	निस्तारतस्य	निस्तारस्तस्य
"	१८	धृत्वां	धृत्वा
१९६	४	रीस्वरस्य	रीश्वरस्य
"	७	तात्पा	तापा
१९७	२०	पविग्राणि	पवित्राणि
१९८	३	रुदन्ति	रुदन्तो
"	६	पठेताश्च	पठेत्ताश्च
२००	१४	सा	सदा
२०१	२	मुनीः	मुनिः
"	१७	मावहयेद्	मावाहयेद्
२०५	२	क्षणायु	क्षीणायु
"	११	निर्मुल	निर्मूल
२०६	४	वाञ्छन्नि	वाञ्छन्ति
"	६	कर्मं	कर्म
२०९	२२	वर्षाण	वर्षाणा
२१४	१२	संग्राप्य	संप्राप्य
२१५	५	शुक्लाष्टमी	शुक्लाष्टमीं
२१६	२४	बभञ्ज	बभञ्ज

२१७	५	वैष्णवानां	वैष्णवानां
”	६	पवित्राण	पवित्राणा
”	१०	सौभाग्य	सौभाग्या
२२०	८	सिद्धियोगीभि	सिद्धैर्योगिभि
२२१	२२	शुद्ध्य	शुद्ध
२२२	२१	भवे	भवेद्
२२३	४	लौहेण	लौहेन
”	७	भवेत्	भवेन्
”	१५	विधि	विधिं
”	२२	वसेत्	वसेद्
२२४	२	गोलकुन्दं	गोलकुण्डं
२३०	१०	गृन्दावने	वृन्दावने
२३१	२४	श्चतुर्ददश	श्चतुर्दश
२३३	२४	दुरिताति	दुरितानि
२३७	५	विस्तीणं	विस्तीर्णं
२४२	१२	जगताममि	जगतामपि
२४३	३	तद्गुणं	तद्गुणं
”	२१	यद्ज्ञान	यज्ज्ञान
२४७	१५	गृहणो	गृहिणी
२४८	१५	दुर्वासमः	दुर्वाससः
”	१६	दुःस्विता	दुःखिता
२५०	७	विशुद्धेत	विशुध्येत
२५१	६	प्रदर्शयेयत्	प्रदर्शयेत्
२५२	२	नाशायत्येव	नाशयत्येव

२५२	५	गोलोकमुत्तम्	गोलोकमुत्तमम्
२५५	१८	मुपवासना	मुपवासाना,
२५३	२	निसेव्य	निषेव्य
"	५	"	"
"	२०	भयङ्ककम्	भयङ्करम्
२५८	३	सर्वेणां	सर्वेषां
"	५	जर्मार्जितं	जन्मार्जितं
२५९	११	कथ्यामास	कथयामास
"	१५	जितेम्द्रियः	जितेन्द्रियः
"	२२	ढैवेन	दैवेन
२६०	१७	परमैश्वर्प्य	परमैश्वर्य्य
"	२५	श्रोः	श्री
२६१	५	भाग्पहीनश्च	भाग्यहीनश्च
"	६	शुद्राणां	शूद्राणां
"	१२	अवीरानश्च	अवीरान्नश्च
२६२	२	पद्मनिवासिनी	पद्मनिवासिनी
२६३	११	महालक्ष्मी	महालक्ष्मीं
"	१२	षोडशः	षोड़श
२६४	२२	दर्शन	दर्शनं
"	२५	विभ्रती	बिभ्रती
२६५	२०	स्तनान्धानां	स्तनन्धानां
२६७	७	साम्प्रतन्	साम्प्रतम्
२६९	९	विषहोनो	विषहीनो
२७२	१९	स्वहा	स्वाहा

२७३	१३	निष्ठरं	निष्ठुरं
२७४	९	परिरुच्यते	पतिरुच्यते
२७५	६	स्थलोज्ज्ञलाम्	स्थलोज्ज्वलाम्
२७८	८	दोवीनां	देवीनां
२७९	६	वालकं	बालकं
२८०	३	तद्वारा	तद्द्वारा
”	२२	यत्श्रुतं	यच्छ्रुतं
२८३	२	नांरद्	नारद्
”	६	कोमलाङ्गी	कोमलाङ्गीं
”	२१	तम्मङ्गलम्	तन्मङ्गलम्
”	२३	नृपेन	नृपेण
२८४	१२	वैष्ववी	वैष्णवी
२८६	८	ववत्रतः	वक्त्रतः
२८८	६	भयकषिता	भयकर्षिता
”	१८	मुदन्विता	मुदान्विता
”	१९	गर्मों	गर्भों
२८९	१४	श्रीकृष्णरणा	श्रीकृष्णचरणा
”	२०	यथ	यथा
२९१	१०	भूयः	भूयः
२९२	६	संक्रान्यां	संक्रान्त्यां
”	१५	गृहीत्व	गृहीत्वा
”	२०	देवै	देवैः
२९६	१२	बलबती	बलवती
२९७	१५	देवा	देवी

२६६	१२	गोपै	गोपैः
३०३	५	चुष्य	चोष्य
३०६	३	एव	एवं
„	१८	तत्सङ्गारे	तत्साङ्गारे
३१५	६	महाविष्ण	महाविष्णु
३१६	१३	नरमाण	नरमान
३१७	२२	सार्वाण	सावर्णि
३१८		शङ्कर्षण	सङ्कर्षण
„	४	व्यतिते	व्यतीते
३१६	१२	क्षद्र	क्षुद्र
३२१	२१	भनुम्	मनुम्
„	२५	मण्डितत्	मण्डितम्
३२३	२	त्तं	तं
३२५	१४	भूषण	भूषणं
३३१	५	सदैश्यानां	सदैशान्यां
३३३	२०	विप्णु	विष्णु
३३६	१२	विषय	र्विषय
३३७	११	सत्वीत्व	सतीत्व
३३८	६	स्नाययामास	स्नापयामास
३३६	३	नपुंसक्रः	नपुंसकः
३४०	१२	शुभाभिषम्	शुभाशिषम्
३४२	१८	ब्रह्माणा	ब्रह्मणा
३४७	४	मूर्च्छि	मूर्च्छि
३५५	११	धर्माम्यां	धर्माभ्यां

३५५	१२	सव	स एव
”	१५	यौवनस्थाश्च	यौवनस्थाश्च
”	१७	दध्नो	दध्नो
”	२३	मेधसात्	मेधसान्
३५६	१४	लोकाश्च	लोकाश्च
”	२१	पृथक्क्	पृथक्
३५७	१४	बन्धाति	वध्नाति
३६२	१६	चञ्चिताम्	चर्चिताम्
३६३	१७	जम्म	जन्म
३६६	७	ताम्रपिष्ठै	ताम्रपृष्ठै
३६८	३	प्राकृति	प्रकृति
३७०	४	सिद्धिानां	सिद्धानां
”	१४	मृतकवत्सा	मृतवत्सा
३७१	१०	धामिकः	धार्म्मिकः
३७३	१७	श्रृण	श्रृणु
३७४	४	नांरद	नारद
”	१०	श्चित्त	श्चित्र
३७७	३	केवलम	केवलम्
३७८	४	रस्नश्च	रत्नश्च
”	४	यया	यथा
”	२२	अक्षारा	अक्षरा
३८६	४	मूर्त्ति	मूर्ति
”	५	वहिः	वहिः
”	१२	पुहलश्च	पुलहश्च

३८७	२२	मानाश्च	मानश्च
"	२५	देवषि	देवर्षि
३८६	१०	लभेन्नर	लभेन्नरः
"	"	क्षद्र	क्षुद्र
"	२१	सर्बान्	सर्वान्
३६२	२२	निमेत्तेन	निमित्तेन
३६३	३	पूर्ण	पूर्णे
३६४	१२	कस्यजेत्	कस्यचित्
"	२०	भूषणषितैः	भूषणभूषितैः
३६५	२	सिंहसने	सिंहासने
"	१२	व्रतकलं	व्रतफलं
"	१४	मृना	मृदा
"	२०	निन्द्रादय	निद्रादय
३६७	२	ब्रह्मावाच	ब्रह्मोवाच
३६८	७	निलिप्तो	निर्लिप्तो
४०१	२१	पूजायिष्यसि	पूजयिष्यसि
४०२	६	व्यजनम्	व्यञ्जनम्
"	२०	ध्रवम्	ध्रुवम्
४०३	७	प्राप्तोति	प्राप्नोति
"	१७	श्चक्ष	श्चक्षू
४०४	१८	ानन्दकम्	निन्दकम्
४०५	१०	यद	यद्
४०६	१३	देवाश्चा	देवाश्च
"	१८	सर्य्यभाच्च	सूर्य्यभानु

४१७	२५	विनाकस्य	विनायकस्य
४२०	८	ब्रह्मणा	ब्रह्मणा
४२१	५	विश्वाघ्नश्च	विश्वासघ्नश्च
४२४	११	व्योप्यश्च	व्याप्यश्च
"	२४	मिथ्यैव	मिथ्यैव
४२५	१०	क्षद्रा	क्षुद्रा
"	२२	वर्द्धयितं	वर्द्धयितुं
४२७	५	श्वेरचामरम्	श्वेतचामरम्
४२८	२२	कुम्भपतकैः	कुम्भशतकैः
४३३	२	विभ्रतो	बिभ्रतो
४३४	८	पठेनित्यं	पठेन्नित्यं
"	११	व	वा
४३५	२५	तवाधना	तवाधुना
४४०	१५	लक्ष्यै	लक्ष्म्यै
"	१७	लक्ष्यै	"
"	१८	"	"
४४३	८	गृहस्थाणां	गृहस्थानां
"	२०	रूक्ष्म	रूक्ष
"	२४	मूद्धिन	मूर्द्धिन
४४४	१०	इत्येव	इत्येवं
४४८	"	विबिधश्च	विविधश्च
४४९	८	प्रात्य	प्राप्य
४५०	७	शमयायामास	शमयामास
४५६	२	राज्ञः	राज्ञो

४५१	१८	साद्धे	सार्द्धं
,,	२१	खण्डखण्डं	खण्डंखण्डं
४५३	७	महावाहो	महाबाहो
,,	२१	जलवुद्वुद	जलबुद्बुद
,,	२४	निर्वार्य्यंते	निवार्य्यंते
४५४	६	वाव्यं	वायव्यं
,,	१२	शोक	शोकं
४५५	३	श्चतुर्दश	श्चतुर्दशः
,,	२५	कौशकीं	कौशिकीं
४५६	१०	लोभलोह	लोभमोह
४५७	१२	कूङ्कुमेन	कुङ्कुमेन
,,	२२	साध्वौ	साध्वी
४५८	८	तेषामूर्द्धश्च	तेषामूदुर्ध्वश्च
,,	६	मेदनीम्	मेदिनीम्
,,	१४	विभ्रतः	बिभ्रतः
४६०	२	त्रिलाचनौ	त्रिलोचनौ
,,	८	विचित्रतान्	विचित्रितान्
४६२	१५	अनाथोहश्च	अनाथोऽहश्च
४६५	१६	विजयास्यास्य	विजयस्यास्य
४६७	२०	मन्त्रेपु	मन्त्रेषु
४६८	३	पाञ्चभौक्तिक	पाञ्चभौतिक
,,	६	द्धत	दधती
,,	२३	व्यानिशाय	व्याधिनाशाय
४६९	१३	[illegible]	[illegible]

४६६	२३	कामधेनूश्च	कामधेनुश्च
४७२	२०	पर्ण	पर्ण
४७५	१२	संक्षभितं	संक्षुभितं
४७६	१०	श्याशानं	श्मशानं
"	२४	नपेश्वरम्	नृपेश्वरम्
४८३	१२	शुद्राणां	शूद्राणां
"	२३	र्चलम्	र्वलम्
४८७	१०	श्छिच्छेद	श्चिच्छेद
४८८	१६	त्रैलक्य	त्रैलोक्य
४९१	१२	पर्शरामो	पर्शरामो
"	१७	तच्छिच्छेद	तच्चिच्छेद
"	१८	श्चिचेप	श्चिक्षेप
"	१८	तच्छिच्छेद	तच्चिच्छेद
४९२	६	ब्राह्मण	ब्राह्मणं
४९३	६	पद्मिनीं	पद्मिनीं
"	७	विवद्धंनीम्	विवर्द्धिनीम्
४९४	८	सदायतु	सदावतु
"	२१	पातूर्द्ध	पातूर्द्ध्वं
४९६	५	विनाशन्यै	विनाशिन्यै
४९७	२०	वधाय	वधाय
५०२	७	शङ्काशै	सङ्कासै
५०६	२१	विभो	विभो
५०८	८	अव्यर्थं	अव्यर्थं
५१२	६	रद्रव	सद्रव

५१२	१२	पुलकाङ्किकत	पुलकाङ्कित
५१३	१३	बलवद्	बलवद्
५१५	१०	ध्रुवम	ध्रुवम्
"	२२	कर्त्तं	कर्त्तुं
५१६	२३	महद्‌जज्ञे	महज्जज्ञे
५१७	२	विश्वगोलोकम्	विश्वगोलकम्
"	२४	शस्यि	शक्ति
५१८	३	स्मृतिर्मधा	स्मृतिर्मेधा
"	१८	सम्भमेण	सम्भ्रमेण
५१९	५	लभेत्	लभेद्
५२१	८	गणेशचेनं	गणेशवचनं
५२२	१६	चेव	चैव

इति श्री ब्रह्मवैवर्तमहापुराणस्य ब्रह्म-प्रकृति-गणेशखण्डानां शुद्धिपत्रम् ।

ॐ तत्सद् ब्रह्मार्पणमस्तु ।

————